ओंकार व्याख्या ५/५
प्रश्नोपनिषद् ६।११

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्
अथर्व
साम
यजु
ऋग्

वेद प्रका

वर्ष ५
अंक १

श्रावण सं० २०१३, अगस्त १९५६, दयानन्दाब्द १३२
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

वार्षिक मूल्य २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

सुख कामना

शं नो वातः पवताँ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देव पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥यजु० २६।१०

अर्थ (वातः नः शं पवतां) वायु हम सब के लिए कल्याणमय होकर बहता रहे और पवित्र करे (सूर्यः शं नः तपतु) सूर्य हमारे लिए सुखकारी होकर तपता रहे (कनिक्रदद्देवः पर्जन्यः शं नः अभिवर्षतु) गर्जता हुआ मेघ हम सब के लिए कल्याण कारी वर्षा करें ।

परमेश्वर ! पवन हमको सुखकारी होकर बहे, सूर्य सुखकारी होकर तपे, विद्युत सुखकारी हो, बादल हमारे लिये सब ओर से वर्षा करें ।

सूचना—जिन ग्राहकों के पते की चिट पर ० इस प्रकार का लाल स्याही का चिन्ह हो वे कृपया अपना चन्दा शीघ्र भेजें ।

--व्यवस्थापक

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

बत्तियाँ बनाना	३।)
ल इन्जन गाइड	६)
न्धित तम्बाकू बनाना	३।)
मा मशीन आपरेटर गाइड	५)
न्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
तिष शास्त्र	६)
न्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
पालिश बनाना	३।)
र मिकेनिक गाइड	६)
इसक्रीम बनाना	३।)
फैशन बुक	५)
लाउन्ड्री शिक्षा	३।।)
मन्त्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
के गुब्बारे बनाना	३।)
र गाइड	६)
क्ट्रिक गाइड	६)
क्ट्रिक वायरिंग	५)
न्सरसाजी	३।)
टोग्राफी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रँगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४।।)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२।।)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३।।)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३।।)
बैट्री विज्ञान	२।।)
सरल हिन्दी इँग्लिश टीचर	२।।)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२।।)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२।।)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४।।)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।।।)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२।।।)
स्वर्णकार शिक्षा	२।।।)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रिस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३।।)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२)
श्री प्रेमसागर सचित्र	४)
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

ाने का पता :—

ल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (रजि०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

अष्टाध्यायी के चुने हुए १३५०

सूत्रों की व्याख्या

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

सूत्रों की व्याख्या करके हिन्दी में इस प्रकार समझाया गया है कि वेद, उपनिषद, गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने के अभिलाषी व्यक्तियोंको प्रतिदिन एक घन्टा मात्र परिश्रम से ६ मास में व्याकरण का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है, अष्टाध्यायी के सूत्रों के पढ़ने के प्रकार पर हिन्दी में २० व्याख्यान हैं जिन में ४ व्याख्यान साधारण संस्कृत सीखने के लिए है। मूल्य ५।।।) डाक खर्च अलग।

संसार में भारतीय संस्कृति व राजनीति का

सर्वोत्तम ग्रन्थ

२२०० वर्ष प्राचीन सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री

आचार्य चाणक्य द्वारा लिखित

कोटिल्य अर्थशास्त्र

जिसको यूरोप के विद्वानों ने छापकर ७२) मूल्य रखा है और यूरोप में धड़ाधड़ बिक रहा है। हिन्दी अनुवाद सहित इस ग्रन्थ का मूल्य १०) है। विशेष प्रचार के उद्देश्य से अभी रियायती मूल्य ७।।) में मिलेगा। डाक खर्च अलग। शीघ्र मंगावें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

तेरे नाम को कहता (जपता) हूं

ओ३म् । न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते ताम स्वयशो विवक्मि ॥ ऋ० ७।२२।५

(ते) तेरी (गिरः) वाणियों को (अपि) भी (न) नहीं (मृष्ये) मसलता हूँ तिरस्कृत करता हूँ और (विद्वान्) जान बूझकर (तुरस्य) शीघ्रकारी (असुर्यस्य) तुझ जीवनाधार की (सु+स्तुतिम्) उत्तम स्तुति को भी नहीं छोड़ता हूँ, वरन् (सदा) सदा (ते) तेरे (स्वयशः) अपने यश वाले अपूर्वकीर्त्तिशाली (नाम) नाम को (वि+वक्मि) विशेष रूप से कहता हूँ, जपता हूं ।

प्रभु ! मैं सच कहता हूं। मुझे तुझसे बड़ी प्रीति है । मैं माता पिता बन्धु बान्धव पुत्र॰मित्र कलत्रादि की बात तो अनेक बार टाल देता हूं, सुनी अनसुनी कर देता हूँ । किन्तु तेरी वाणी सुनने को तो लालायित रहता हूं । तेरी बात सुनने को मेरा मन सदा तत्पर रहता है, तेरी बात सुनने, जानने को उसमें प्रबल तरंगें उठा करती हैं । मेरे कान सदा सावधान रहते हैं । प्रभो । पितः । गुरो ! तेरे वचन सुनने का सौभाग्य मैं क्यों हाथ से जाने देने लगा ? मेरे आत्मा के आत्मन् ! अन्तरात्मन् परमात्मन् ! तुझ से क्या कहूं ? तुझ से छिपा ही क्या है ? तू तो सब कुछ जानता है । मैं तो इतना कह सकता हूं—

न ते गिरो अपि मृष्ये—तेरी वाणियों का मैं तिरस्कार न करूंगा ।

उन्हें प्यार करूंगा । उनका भरपूर सत्कार करूंगा । नाथ ! उनके अनुसार विचार करूंगा, उनके अनुसार आचार-व्यवहार करूंगा, उनका और उनके अनुसार प्रचार करूंगा।

नाथाधिनाथ ! मैं समझ चुका हूं तू अत्यन्त शीघ्रकारी है, पल में प्रलय करदे सकता है । जगत् का जीवन तुझ पर ही अवलम्बित है । किसमें सामर्थ्य है कि तेरे गुणगण की गणना कर सके । अगणित और अगण्य तेरे गुण, और मैं नगण्य करूं गणना ! प्रभो ! मुझ में यह सामर्थ्य कहां ? तो भी तेरी स्तुति मैं करता ही हूँ । यही की तू पालनहार है, सिरजनहार है ।

हो सकता है प्रभो, अज्ञान के कारण, प्रमाद के वश, तेरे आदेश को न सुनूं, या सुनकर न समझूं । संभव है मेरे स्तवन में स्खलन हो जाता हो । हूँ तो अन्ततः अल्पज्ञ हो । अल्पज्ञता से अनेक बाधायें आती हैं । इसके कारण मैं अनेक बार ठोकर खा चुका । जाने, अभी कितनी बार इसके हाथों और मार खाता हुं । इससे बचने के लिए मैं तेरा आदेश सुनने को उत्सुक रहता हूँ अतः

सदा ते नाम स्वयशो विवाक्म—सदा तेरा अनुपम कीर्त्तिशाली नाम कहता रहता हूँ ।

मैं तो निपट अज्ञान हूँ । तेरी महिमा क्या जान पाऊं, किन्तु

मनीषी हवते त्वामित् (ऋ० ७।२२।६)=महाबुद्धिमान् भी तुझे ही पुकारता है ।

अतः भगवान्

श्रुधी हवं विपिपानस्य (ऋ० ७।२२।४)

अत्यन्त प्यासे की प्रकार सुन।

तू न सुनेगा, तो नाथ कौन सुनेगा । सुन या न सुन, मैं तो

सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि=सदा तेरी अनुपम कीर्त्तिशाली नाम जपता रहता हूँ ।

(स्वाध्याय सन्दोह से)

श्रावणी उपाकर्म के लिये विशेष लेख :-

स्वाध्याय

(लेखक :—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी, देहली)

स्वाध्याय मानव जीवन का सच्चा मित्र, जीवन की प्रेरणा और आत्मा का भोजन है। यह उन्नति का साधक और परम शान्ति का दायक है। स्वाध्याय मानव जीवन की समस्याओं के समाधान की कुंजी, जीवनोत्थान और आत्म उन्नति का विधायक, चरित्र निर्माण में सहायक, परमात्मा प्राप्ति का साधन, स्वर्ग का द्वार और मुक्ति का सोपान है।

संसार में जितने भी नेता, वैज्ञानिक, सन्त, महापुरुष ऋषि और महर्षि हुए हैं, वे सभी स्वाध्याय शील थे। स्वाध्याय मानव जीवन के लिये इतना ही उपयोगी है जितना शरीर पुष्टि के लिये भोजन। बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक बल के लिये सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। चाहे कोई कितना ही विद्वान क्यों न हो यदि वह स्वाध्याय को छोड़ देता है, तो अपने मार्ग से गिर जाता है, उन्नति के पथ से भटक जाता है, तथा पतित हो जाता है। मनु जी महाराज ने ठीक ही लिखा है—

वेदसन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न सन्यसेत।

(मनु० अ० ६)

वेदों का स्वाध्याय न करने से मनुष्य शूद्र बन जाता है अतः वेद को नहीं छोड़ना चाहिये।

स्वाध्याय का अर्थ

सु या स्व उपपद में होने पर आङ् अधि पूर्वक अध्ययनार्थक इङ् धातु से घञ् प्रत्यत्त करने पर स्वाध्याय शब्द सिद्ध होता है। स्वाध्याय का सीधा सादा अर्थ है भली भान्ति आवृत्ति पूर्वक अध्ययन करना, अपने लिये अध्ययन करना या स्वयं अध्ययन करना, अथवा अपनी जीवन घटनाओं, दैनिक क्रिया कलापों का मनन तथा अध्ययन करना। स्व का अर्थ आत्मा और आत्मीय आदि होने के कारण स्वाध्याय के भी अनेक अर्थ हो जाते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में स्वाध्याय का अभिप्राय आर्य ग्रन्थों का अध्ययन माना गया है। योग दर्शन व्यास भाष्य के अनुसार "स्वाध्यायः प्रणवादि पवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राध्ययनं वा (२। १ तथा २।३२) ओ३म् गायत्र्यादि का जप करना या मोक्षशास्त्र आध्यात्मिक ग्रन्थ वेद, दर्शन, उपनिषदादि का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है।

अश्लील, अनार्ष, गन्दे कामोत्तेजक तथा शृंगार रस पूर्ण नाटक, उपन्यास कहानी आदि की पुस्तकों का पढ़ना स्वाध्याय नहीं है। उपन्यास, नाटक आदि शृंगार रस पूर्ण ग्रन्थ पढ़ना मानो अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारना है। शृंगार रस प्रधान पुस्तकें ब्रह्मचारी को भी व्यभिचारी बना देती हैं। अश्लील पुस्तकों का पढ़ना बहुत बुरा है, ऐसी पुस्तकों का चरित्र पर दूषित प्रभाव पड़ता है। अतः कुग्रन्थों का त्याग करो, उन्हें छूना भी पाप समझना चाहिये। समाचार पत्र पढ़ने को स्वाध्याय समझना भी भारी भूल है।

स्वाध्याय की महिमा

स्वाध्याय से चिन्तायें मिट जाती है, संशय नष्ट हो जाता है, मन में सद्भाव और शुभसंकल्पों का उदय होता है तथा आत्मा को परम शान्ति प्राप्त होती है। ज्ञानाग्नि से मनुष्य के पाप भस्म होकर मनुष्य पापात्मा से धर्मात्मा तथा व्यभिचारी से सदा चारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय की महिमा का बड़ा वर्णन

वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोक मभिसम्पद्यते। न च पुनरा वर्तते। (८।१५।१)

ब्रह्मचारी आचार्य कुल से वेद को पढ़कर यथा विधि सेवा शुश्रूषा आदि करता हुआ समावर्तन संस्कार कराकर परिवार में रहता हुआ, पवित्र स्थान में बैठ कर स्वाध्याय करता हुआ, सन्तानों तथा अन्य जनों को धार्मिक बनाता हुआ समस्त इन्द्रियों को आत्मा के आधीन करता हुआ, तीर्थ स्थानों से अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, समस्त आयु इस प्रकार वर्तता हुआ मनुष्य मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है, तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

स्वाध्याय का फल

स्वाध्याय का फल भी स्वाध्याय के महत्व के अनुरूप ही है। सामवेद के उत्तरार्चिक के १२६८ से १३०३ तक के मन्त्रों में वैदिक स्वाध्याय का फल अत्यन्त प्रभाव जनक और उत्तम शब्दों में बताया है। उन मन्त्रों को यहां उद्धृत किया जाता है :—

य: पावमानीरध्येत्यृषिभि संभृतं रसम्।
सर्वं स पूतम श्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥
(सा० १२६८)

जो सब को पवित्र करने वाली प्रभू प्रदत्तऋचाओं का स्वाध्याय करता है, वह ऋषियों द्वारा भले प्रकार धारण किये हुए और ब्रह्मनिष्ठों द्वारा चखे हुए सारे पवित्र रस को स्वयं भी भोगता है।

पावमानी यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतंरसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥
(सा० १२६६)

जो पवित्र करने वाली वेद विद्या का अध्ययन करता है, और ऋषियों से धारण किये रस को विचारता है, ज्ञानाधार प्रभु उस के लिये दुग्ध, घृत शहद और मीठा जल देता है।

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्र ह्मणेष्वमृतं हितम्॥
(सा० १३००)

वेद की पवित्र ऋचाएं कल्याण तथा योगक्षेम को प्राप्त कराने वाली, उत्तम रीति से फल देने वाली तथा घृत = ज्ञान और तेज प्राप्त कराने वाली हैं उन से ऋषियों ने आनन्द प्राप्त किया है तथा उन्ही से ब्रह्मवेत्ताओं में मोक्ष डाला जाता है।

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृता॥
(सा० १३०१)

सब को पवित्र करने वाली ये ऋचाएं इह लोक और परलोक दोनों को धारण कराने में हमारी सहायक हों। सत्यनिष्ठ विद्वानों द्वारा प्राप्त कराई हुई ये ऋचायें हमारी शुभ कामनाओं को पूर्ण करें।

येन देवा: पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्र धारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥
(स० १३०२)

विद्वान् योगी लोग जिस पवित्र ज्ञान के द्वारा सदा अपने आत्मा को पवित्र करते हैं उस सहस्रों धारण शक्तियों से सम्पन्न ज्ञान के द्वारा वेद की पवित्र ऋचाऐं हम को पवित्र करें।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥
(ता० १३०३)

ये ईश्वर प्रदत्त ऋचायें कल्याण कराने वाली हैं, इन के द्वारा मनुष्य आनन्द को प्राप्त होता है। इन ऋचाओं का स्वाध्याय करने वाला इस लोक में उत्तम भोग भोगता है तथा अन्त में मोक्ष—परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

तैत्तिरीयारण्यक में स्वाध्याय को पापों से दूर होने और पवित्र होने का साधन बताते हुए ठीक ही कहा है :—

अपहत पाप्मा वै स्वाध्यायः देव पवित्रं वा ऐतत्--तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्य :। (तैतिरियारण्यक २।१५।

एक अन्य स्थान पर लिखा है :—

स्वाध्याय धर्मेण तपस्वी पुण्यों भवति, तपस्वी पुण्यो भवति।

अर्थात् स्वाध्याय रूप धर्म से तपस्वी पुण्यात्मा हो जाता है, निश्चय रूप से पुण्यात्मा बन जाता है।

महर्षि पतञ्जलि ने स्वाध्याय का फल इस प्रकार बतलाया है :—

स्वाध्यायदिष्टदेवतासम्प्रयोगः (यो० द० २'४४)

स्वाध्याय शील पुरुष का इष्ट देवता के साथ मिलाप या उस के साथ आलाप होता है। यद्यपि आज महर्षि व्यास, स्वामी शंकराचार्य, ऋषिवर दयानन्द इस संसार में नहीं हैं किन्तु उन के ग्रन्थों का स्वाध्याय कर हम उन से आलाप कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अति उचित है कि स्वाध्याय करता रहे क्योंकिः—

नित्यं स्वाध्याय शीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
(महा० शा० ११०।५)

नित्यं स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति दुखों से पार हो जाता है।

कहां तक कहें स्वाध्याय के बल पर एक साधारण व्यक्ति उच्च कोटि का विद्वान्, लेखक उपदेशक, वैज्ञानिक, गणितज्ञ तथा वेद भाष्य कार बन सकता है। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने अपने स्वाध्याय के बल पर संस्कृत का अध्ययन किया और बड़ोदा में तीन वेदों की परीक्षा पास करके त्रिवेदी की उपाधि प्राप्त की और उसी बुढ़ापे में अथर्व वेद और गोपथ ब्रह्मण का भाष्य किया।

धर्म वीर स्वामी श्रद्धानन्द जी को गंगा तट पर गुरुकुल स्थापित करने का विचार 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायतः (यजु- २६।८) इत्यादि वेद मन्त्रों के ऋषि दयानन्द कृत भाष्य का स्वाध्याय करते हुए ही उत्पन्न हुआ था। जिसमें बताया गया है कि पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के संगमादि स्थानों पर अध्ययन और ध्यान करने से मनुष्य विशेष बुद्धिमान् बनता है।

स्वामी दर्शनानन्द जी, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० पं० चमूपति जी एम० ए०, आर्य मुसाफिर पं० लेख राम, हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामी जी तथा महात्मा हंसराज जी ये सब स्वाध्याय का ही फल थे।

स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन में भी सहायक है। स्वाध्याय को ब्रह्मचर्य का प्राण कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वाध्याय के बिना ब्रह्मचर्य पालन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

स्वाध्याय से चरित्र निर्माण में भी सहायता मिलती है। स्वाध्याय मुर्दों में भी जीवन फूंक देता है। दुराचारी सदाचारी और व्यभिचारी ब्रह्मचारी बन जाता है। अतः अपना कल्याण और उद्धार चाहने वालों को नित्य प्रति स्वाध्याय करना चाहिये।

स्वाध्याय मानव जीवन के लिये कितना उपयोगी है इस विषय में महर्षि दयानन्द जी की एक घटना का उल्लेख करना अप्रासांगिक न होगा। तत्कालिन लाहौर आर्य समाज के प्रधान ला० मूलराज जी एम० ए० स्वामी जी से मिलने गये। स्वामी जी के मुखमण्डल पर कुछ उदासी झलकती थी अतः लाला जी ने कहा 'महाराज आज आप कुछ उदास प्रतीत होते हैं ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "हां, इस समय मैं संसार में हूँ।" लाला जी ने पूछा, "क्या कोई ऐसा समय भी होता है, जब आप संसार में नहीं होते ?" स्वामी जी ने कहा, जब मैं ईश्वर प्रदत्त वेद और ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूं, तो संसार में नहीं होता"। यदि ऋषि के लिये स्वाध्याय इतना आवश्यक है तो एक साधारण व्यक्ति के लिये कितना आवश्यक होना चाहिये, इस का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

यदि आप समुन्नत होना चाहते हैं, अपने जीवन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाना चाहते हैं तथा ऋषि ऋण से उऋण होना चाहते हैं, तो आलस्य और प्रमाद को छोड़ कर नित्य प्रति वेदों का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दीजिये क्योंकि 'नास्ति वेदात्पर शास्त्रम्।" वेद से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है, इतना ही नहीं 'वेदश्चक्षुः सनातनम्।' सबसे प्राचीन ज्ञान विज्ञान का स्रोत वेद ही है। वेद प्रभु की वाणी और प्रभु का अजर अमर काव्य है। वेद दिव्य ज्ञान और हमारा अक्षय कोष है। यह अलौकिक अतिन्द्रिय और विलक्षण ज्ञान है, समस्त विद्याओं का भण्डार है और महर्षि दयानन्द के शब्दों में 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" वेद की भावनाएं बड़ी

(शेष पृष्ठ ८ पर)

नारी उत्तराधिकार का परिणाम

जीप गांव की चौपाल के आगे जाकर रुकी। चार महिलायें तथा इलाका उन्नति अधिकारी नीचे उतरे। महिलाओं ने होठों पर लाली तथा चेहरे पर पाउडर लगाया हुआ था। नई पाड़ की बारीक बढ़िया साड़ियां तथा पांव में ऊंची एड़ी के बूंट पहने हुए थे। जीप का शब्द सुन तथा महिलाओं को देख कर गांव के पुरुष ही नहीं बड़ी संख्या में महिलायें भी आ गईं।

इलाका उन्नति अधिकारी ने बतलाया अब तक सरकार ने पुरुषों के सुधार पर ही ध्यान दिया था, भविष्य में स्त्रियों का भी सुधार किया जायगा। यह कुमारी लीलावती जिला इंचार्ज हैं तथा कुमारी प्रभा आप के गांव में रह कर महिला सुधार का काम करेंगी। आप सब बैठ कर कुमारी लीलावती का भाषण सुनें।

कुमारी लीलावती ने कहा 'अब तक स्त्रियां पुरुषों की दास या गुलाम रहीं, उनके लिए पति ही परमेश्वर था। सरकार ने स्त्रियों को इस गुलामी से छुटकारा दिलाने के लिये दो कानून बनाये हैं। स्त्रियें पति को छोड़ सकेंगी, लड़कियों को पिता की जायदाद में भाई की तरह भाग होगा। स्त्रियों को इसका लाभ उठाना चाहिये। प्रभा बहन आपके गाँव में रह कर स्त्रियों को शिक्षा देने, ठीक रहने, अपने अधिकारों की रक्षा करने का कार्य करेंगी, सब बहनें इन्हें सहयोग दें। आप इनके बतलाये मार्ग पर चलेगी तो पुरुषों की तरह आप भी स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त करेंगी।

प्रभा बहन ने सर्व प्रथम गाँव की नौजवान विशेषयता कंवारी लड़कियों की रात्रि पाठशाला जारी की। कुछ देर लिखाती पढ़ाती, अधिक समय हिन्दू विवाह विच्छेद तथा उत्तराधिकार विधेयक के लाभ समझातीं। चित्रों द्वारा स्त्रियों की स्वतन्त्रता के लाभ बतलाती। गांव की कुछ लड़कियाँ कुमारी प्रभा की देखा देखी मोटे कपड़े छोड़ कर नई छाप की साड़ियाँ पहनने लगीं, कुछ ने होठों पर लाली उगानी भी आरम्भ की, खेती का काम करना छोड़ दिया। गांव की कुछ बड़ी बूढ़ी स्त्रियों तथा पुरुषों ने लड़कियों की इस चाल ढाल का विरोध किया, पर काँग्रेस टिकट के उम्मीदवार श्री निहालदत्त के सरकारी काम में हस्तक्षेप किया तो पकड़े जाओगे यह धमकी देने पर किसी की विरोध करने मी हिम्मत न हुई। प्रभा का सिक्का जम गया।

श्री भागसिंह के दो लड़की तथा एक लड़का था। पचास बीघे जमीन पर खेती करके निर्वाह करता था। लड़के लड़कियों के विवाह किए। दामाद पढ़े लिखे थे, विवाह के दो तीन महीने बाद ही दोनों दामाद आकर उसी मकान में लड़कियों के साथ रहने लगे। भागसिंह के मरने पर भूमि के तीन हिस्से हुये। चौदह-चौदह बीघे जमीन मिली। अनुमान इतनी ही भूमि उन दोनों दामादों को अपने-अपने बाप से मिली। चौधरी भागसिंह के लड़के को भी उसके श्वसुर के हिस्से में से जिसके एक लड़का तथा एक लड़की थी आधी बीस बीघे जमीन मिली। पहले सब रिश्तेदार अलग-अलग एक ही गाँव में अपनी-अपनी भूमि में खेती करते। भूमि एक स्थान पर होने के कारण देख रेख ठीक होती, खेती की पैदावार अच्छी मिलती। पर हिन्दू उत्तराधिकार कानून के कारण भूमि अलग अलग गाँव में दो-दो जगह हो गई, एक ही व्यक्ति को दो स्थानों पर प्रबन्ध करना पड़ा, देख रेख पूरी न हो सकी। भूमि का उत्पादन कम होने से निर्वाह होना कठिन हो गया। महिलाओं ने खेती के कार्य में कम भाग लिया मकान भी इतना बड़ा न था जिसमें तीन कुटुम्ब रह

सकें। कुछ दिन तो शर्मा शर्मी लिहाज में पूरे हुये। पर जब मकान तथा धन की तंगी हुई, 'टोटा-खोटा भीड़ कपत्ति' की कहावत पूरी हुई। कुछ दिन भावज तथा ननदों में ही कहा सुनी रही। श्री भागसिह के पुराने विरोधियों को बदला लेने का मौका मिला। लड़कियों को बहकाकर अदालत में मकान तथा जमीन के कानूनी बटवारे का दावा भाई पर करवा दिया। जहाँ भागसिंह के लड़के का विवाह हुआ था वहाँ भी स्त्री ने अपने भाइयों पर भूमि बांटने का दावा किया।

दो स्थानों पर भूमि होने के कारण खेती की पैदावार तो कम हो गई मुकदमे बाजी ने रही सही कमर तोड़ दी। जिन गाँव में दामाद का अधिक रहना भी बुरा समझा जाता था वहाँ गाँव के गांव दामादों के बस गये। गांव गांव में ऐसे ही मुकदमे चल पड़े। जब भाई बहन अदालतों में जाते वकीलों की जिरह होती। सब निर्लज्ज बन गये, भाई बहन का प्रेम ही समाप्त हो गया। गाँव नर्क बन गये। कुछ बड़े बूढ़ों ने वकीलों से इस कष्ट का स्थायी हल पूछा तो उन्हों ने कहा जब तक भाई बहन का विवाह न होगा यह कष्ट स्थायी तौर पर दूर न होगा। यह सुनकर लोगों को बड़ा दुःख हुआ।

इलाके की बड़ी सर्व खाप पंचायत बुलाई गई, कष्ट सब को था, सबके ही बहनें थीं बहनोई थे, दामाद और श्वसुर थे। स्त्रियों ने भी अनुभव किया उन्हें कुछ मिला नहीं, पहले उनकी औलाद का सारी भूमि पर अधिकार होता था। अब दो स्थानों पर हो गया, स्त्रियों को अधिकार नहीं मिला, कोई लाभ नहीं पहुंचा, केवल स्त्री पुरुष को, भाई बहन को लड़ाने के लिए सरकार ने यह सेह का काँटा बोया है।

सर्व खाप पंचायत ने सब बातों पर विचार करके दो-दो सौ कोसके सब नगरों तथा गाँव की पंचायतों को कार्तिक पूर्णिमा को गढ़मुक्तेश्वर पर इकट्ठा होने का निमन्त्रण दिया। लोग इस दिन स्नान को तो आते थे ही इस बार इस पंचायत के कारण बड़ी भीड़ हुई। कार्तिक पूर्णिमा को सवेरे ही गंगा तट पर इकट्ठे हुए, विचार करने के बाद निश्चित हुआ कि सब गाँव तथा नगरों के दो दो पंच दिल्ली जाकर श्री नेहरू जी से हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक वापिस लेने की प्रार्थना करें। दस हजार लोग निश्चित दिन दिल्ली पहुँचे, प्रधान मन्त्री महोदय को सूचना दी गई।

(शेष पृष्ठ १३ पर)

(पृष्ट ६ का शेष)

उदात्त हैं। वेद की शिक्षाएं इतनी उच्च और स्फूर्तिदायक हैं कि मृतकों के अन्दर भी नवजीवन, नवचेतना और नवशक्ति का संचार कर देती है। वेद के स्वाध्याय से कर्तव्य पालन की भावना प्रबल रूप से जागृत हो जाती है "उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था।" अथर्व ८।१।४। हे पुरुष। आगे बढ़। ऊपर उठ। अवनति को प्राप्ति मत हो। इस प्रकार का उपदेश करने वाले वेदों का स्वाध्याय करने वाले के जीवन में निराशा कहां ठहर सकती है।

वेदों का स्वाध्याय परमावश्यक है। साथ ही साथ वेदों को अर्थ सहित पढ़ना चाहिये क्योंकि जो अर्थ नहीं जानता वह पशु के समान भार ही उठाता है और जो अर्थ को जानता हुआ तदानुकूल वर्तता है वह पवित्र होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। परन्तु सर्वथा न पढ़ने से तो मूल मात्र पढ़ना भी श्रेष्ठ है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है, "जो वेदों का पाठ मात्र करता है वह उत्तम है। जो अर्थज्ञान सहित पढ़ता है वह उत्तमतम है।" यदि आप अर्थ सहित नहीं पढ़ सकते तब भी अवश्य पढ़ना चाहिये क्योंकि यदि आप उत्तमतर नहीं तो उत्तम तो बनोगे ही।

स्वाध्याय के व्रत का दृढ़ता से पालन कीजिये। एक दिन के भी अनाध्याय से वर्षों का व्रत टूट जायेगा और फिर नये सिरे से साधना करनी पड़ेगी, अतः इस में आलस्य और प्रमाद न करें। यदि आप स्वाध्याय करने लगेंगे तो आगे बढ़ जायेंगे। संसार आप के सामने शिर झुकायेगा।

नारी ! तू महान है

—सुश्री कमल दीवान

ईश्वर ने सृष्टि रची और रचे उसके प्राणी। उस में अपने प्रतिनिधि स्वरूप मनुष्य को समस्त संसार के वैभव सौंप दिए । आदि पुरुष के मनोरंजन के लिए विधाता ने नीला अम्बर, मोतियों से झिलमिलाते सितारे, चमकता सूर्य, दमकता चाँद, ऊंची ऊंची चोटियाँ उठाए विशालकाय पर्वत, कलकल करती हुई नदियाँ, झरझर बहते हुए झरने, कारवाँ दर कारवाँ चलते बादल, फलों फूलों से लदे वृक्ष, चहचहाते पक्षी तथा फुदकते मृग आदि बहुत सुन्दर आयोजन किया। पुरुष ने सब देखा परन्तु मन मसोस कर रह गया क्योंकि यह सब प्रकृति के नजारे मूक थे उस सा चेतन अनुभूतिशील कोई भी तो नहीं था। पुरुषोत्तम ने फिर प्रयास किया।

सागर की गंभीरता, पृथ्वी की सहनशीलता, अम्बर की उदारता, चन्द्रमा का सौंदर्य, सूर्य का तेज, नदियों की चंचलता, फूलों की कोमलता और पक्षियों का संगीत बटोर ज्यों ही उसमें पुरुष का चैतन्य अनुभूतिपूर्ण हृदय रखा, ठीक उसी समय बड़े बड़े पर्वत स्थिर हो गए अम्बर का रंग नीला पड़ गया सागर में तूफान उठा चन्दा रानी ने अपना कलंकित मुंह छिपाने के लिए बादलों के घूंघट की ओट ली, बिजली छिप गई, प्रकृति ने नारी का रूप धारण कर लिया।

नारी ने आते ही विश्व की सर्वश्रेष्ठ रचना प्राणी, विधाता की श्रेष्ठ कृति मानव को झुक कर प्रणाम किया। मानव ने दौड़ कर उसे कण्ठ से लगा लिया। पुरुष नारी के अलौकिक रूप लावण्य को देख मुग्ध था। नारी ने लजाते लजाते आत्मसमपर्ण कर दिया तो वह हर्ष से नाच उठा। नारी रूप लावण्य यौवन और माधुर्य की प्रतिमा तपस्या विनय की प्रतिमूर्ति बनी तो पुरुष का अहंकार भी एक बार उसके आगे झुकने को उन्मत्त हो उठा प्रेम का विनिमय हुआ। विधाता के वरदान से दोनों सृष्टि का चक्र चलाने लगे।

प्रतिद्वान्द्वतः प्रकृति का नियम है। उत्थान की लंबी पगडण्डी पतन के संकीर्ण उद्यान में समाप्त होती है। समय ने करवट बदली। निष्ठुर पुरुष ने उसके उपकारों के बदले में उसे पैर की जूती कहा। बल्कि उससे भी बदतर। मनुष्य अपनी जूती को भी दूसरे दिन के लिए संभाल कर के रख देता है पर नारी की दशा शोचनीय थी। उसके सौंदर्य का माया जाल उसकी उदारता आत्मसमर्पण की दुर्बलता गंभीरता को छल का नाम दिया। नारी की सहनशीलता का अनुचित लाभ उठाया जाने लगा। उसे भक्ति में बाधक समझा जाने लगा। सर्वप्रिय महाकवि तुलसीदास ने—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी।

कह कर उसे प्रताड़ित किया तो कबीर ने—नारी की झांई परत अन्धा होता भुजंग। कह कर उसकी आत्मा को दुखाया। धरती सी सहनशीलता रखने वाली जगनजननी नारी ने सब सहा। धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने की आज्ञा उसे न थी उसकी अच्छाइयों का कोई मूल्य न था। घर की चारदीवारी ही उसके लाखों अरमान बेबस रह जाते थे लेकिन वह बोलने का अधिकार नहीं रखती थी। उसकी साँस का दर्द हवा के साथ उड़कर समाज के ठेकेदारों तक नहीं पहुँच सकता था, उसके आंसुओं की नदी बन कर पुरुष के हृदय गांव में नहीं जा सकती थी, उसके मासूम कलेजे की धड़कन कोई नहीं सुन सकता था। उसके हृदय की व्यथा, उसके अन्तर की पीड़ा को कोई नहीं देख पाता था कितनी विवश हुई वह।

उसका दोष था तो यह वह नारी थी। पुरुष ने उसके संचित पवित्र प्रेम की अवहेलना की। उसे अयोग्य समझ ठुकरा दिया उसके हृदय को भावना रहित समझ कर पुरुष ने अपनी क्रूरता से रौंद डाला। वह भी सोचने लगी विवशता का ही दूसरा नाम नारी है।

स्वर्ण पिंजरे में नन्दिनी मैना के समान नारी के जीवन में कई बसन्त आए और चले गए परन्तु निष्ठुर दुर्भाग्य की सताई नारी को घुट घुट कर जीना पड़ा। जलरहित सरिता, पंख हीन पक्षी की जो शोचनीय अवस्था होती है वही अभागी नारी की हो गई उसे अबला, वंचित व परित्यक्ता आदि नाम दिए जाने लगे।

परन्तु सब दिन होत न एक समान। नवयुग के सूर्योदय ने आशा की किरणों से नारी का भाग्योदय फिर चमत्कृत कर दिया। पुरुष के संग नारी भी अंगड़ाई ले उठ खड़ी हुई। पश्चिम के साथ साथ पूर्व भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। नारी भी स्वयं को कुछ २ समझने लगी। पुरुष ने अपनी भूल अनुभव की। वह एक बार फिर नारी के सौंदर्य लावण्य व्यग्रता से जागृत हुए यौवन की ओर आकर्षित हुए बिना न रह सका। परन्तु नारी रूठी रही। पुरुष को उसने जताने का प्रण कर लिया कि वह केवल कामुकता की वस्तु नहीं है। वह फूल नहीं जिसे पुरुष सूंघे और फेंक दे, मसल डाले वह भी अपना अस्तित्व रखती है। पुरुष की दया पर ही केवल निर्भर वह अब नहीं रह सकती। अबला नहीं वह सबला है।

क्रिया से प्रतिक्रिया सदैव जोरदार होती है। बांध में बंधी सरिता किनारों को तोड़ जब बाहर निकलती है तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि का संभावना अधिक होती है। ठीक वही दशा आधुनिक नारी की है। वह अपने गुणों को भुला कर अवगुणों में रत हो रही है। कर्तव्यों को रौंद अधिकारों की माँग कर रही है। आधुनिक नारी पाश्चात्य के वातावरण से काफी प्रभावित हो चुकी है। वह भारतीय रूप में पश्चिम की चलती फिरती प्रतिभा है। वह अपने उच्च आदर्श की अपनी स्थाई तपस्या को बिलकुल भुला बैठी है। वह सोचती है, "मैं पा रही हूँ"। मेरे विचार में वह खो रही है। समानाधिकार मांग रही हूं पर वह भूलती है कि वह देवी है। यह नहीं कि वह स्वतन्त्रता न मांगे, परन्तु किसी सीमा तक।

पति को देवता समझने वाली भारतीय संस्कृति की साक्षात प्रतिमा, पति को 'तलाक' दे रही है। इन बातों से उसका मस्तिष्क लज्जा से झुक जाना चाहिए। लेकिन वह इसमें अपना गौरव समझती है। उसे अपने अधिकारों की मांग करनी चाहिए परन्तु अपने देश के वातावरण को दृष्टि में रखते हुए। नारी की इस चंचलता का दोषी यदि पुरुष को समझा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी उसी ने नारी की दुर्दशा करके नारी को यह सब करने पर विवश कर दिया। नारी की जिस फैशन परस्ती की ओट में पुरुष नारी को बदनाम करते हैं, वह उनका दोष नहीं तो क्या है। उदाहरणतया यदि लड़का अपनी जीवन पगडण्डी पर चलने के लिए भावी साथिन को देखने जाता है तो सर्व प्रथम देखता है उसमें फैशन की लौ को। यदि लड़की सीधी साधी है तो खैर नहीं, वहीं मुंह पिचका लेता है।

नारी अपनी स्वतन्त्रता चाहती है, इस में किसी को दुख नहीं। किन्तु नारी! तुझे अपने गुणों का नहीं भुलाना चाहिए तेरी स्वतन्त्रता उच्छृंखलता का रूप न ले ले। पुरुष एक बार फिर तेरे कदमों में झुक झुक कह उठे—"नारी! तू महान है।"

(वीर अर्जुन से उद्दत)

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या

(गतांक से आगे)

तीसरे नियम के अभ्यासी को चाहिये कि जहाँ भी वेद-चर्चा हो वहां जाकर सुने, वेदोंके व्याख्यान और आर्ष ग्रन्थोंकी व्याख्या श्रद्धापूर्वक श्रवण करे। सन्तोंके सत्संगमें आदर और श्रद्धापूर्वक बैठे। उनके विचारों से लाभ उठाये। वैदिक तत्त्वको जाननेकी जिज्ञासा करे और प्रश्नोत्तर करके अपने सन्देह निवारण कराये। वैदिक वचनोंको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो !

जिस सत्संगमें, धर्म्म-मन्दिरमें, और वैदिक व्याख्यान में जाय, बड़ी सभ्यतासे जाय। सत्संगमें विनय, आदर और भक्तिका होना आवश्यक है। सुशीलतासे बैठना, विनीततासे पूछना और ध्यानपूर्वक सुनना सत्संगीकी योग्यताको प्रकट करनेवाले गुण हैं। जिज्ञासा करने पर जिस प्रश्न का उत्तर मिल जाय, उसके लिये धन्यवाद देना—आभार मानना—उचित हुआ करता है। वेदधर्म के अधिकारीको चाहिये कि प्रश्नोत्तरमें जो बात समझमें न आये, उस पर व्यर्थ विवाद न बढ़ाये। एक विषयमें दो तीन बार पूछकर निवृत्त हो जाय। किसी पक्षको खींचे चले जाना, उस पर हठ कर लेना, उत्तम अधिकारी का चिह्न नहीं।

आर्य्य जनको चाहिये कि ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना, वेदव्याख्यान और शास्त्रोपदेश सुननेके लिए आर्य्य समाज के साप्ताहिक सत्संगमें अवश्यमेव जाया करे। अपनी वशतासे कभी भी अन्तर न डाले। धर्म्ममें बड़ी शिष्टता और सभ्यतासे प्रवेश करे। जैसे कोई सभ्य जन किसी पूज्य और महामान्य व्यक्तिके पास जाते समय गम्भीर बन जाया करता है, उसी प्रकार मन्दिरके द्वारमें प्रवेश करते ही गम्भीर रूप धारण कर ले। इस प्रकार धीरे धीरे आगे बढ़े कि उसके पांवकी आहटसे भी किसीको विक्षेप न हो। आगे बढ़ते समय किसी की अवज्ञा न होने पावे। किसी के साथ स्पर्श करके जाना, किसी को लाँघना, ठोकर लगाना, ढकेलना, पीछे आकर आगे को बढ़ना, ये चंचलता और असभ्यता के चिह्न हैं। आर्य्य सत्संगमें ये नही होने चाहियें सत्संगमें बच्चोंको साथ ले आना, बातें करने लग जाना, इधर उधर ताकते रहना, टिककर न बैठना और बीचमें उठकर चल पड़ना, ये सब सभ्यताके सुन्दर ललाट पर बड़े भद्दे लांछन हैं। सत्संगमें ध्यानपूर्वक, एकाग्रता और आदर-बुद्धिसे श्रवण करना चाहिये।

साप्ताहिक सत्संगमें, वैदिक व्याख्यानों और शास्त्रोपदेशोंमें जो कुछ श्रवण किया हो, घर आकर उसका प्रसाद अपने पुत्र-पुत्रियोंमें बांटना चाहिये। उसका सार या मर्म बन्धुओंको सुनाना चाहिये। माता-पिता अड़ोसी-पड़ोसी, तथा इष्ट मित्रोंके सामने दुहराना चाहिए। हाट, बाट और घाट आदि स्थानों में जहां भी उठने-बैठने और मिलने-जुलनेका अवसर मिले, वहीं उस सुने हुए शास्त्र-सारको सुनाने लग जाना चाहिये। धर्म्म-चर्चा चलानेमें कभी भी हिचकिचाना न चाहिये। सत्संग और व्याख्यानमें जाते समय अपने बन्धु जनोंको साफ ले जाना, इष्टमित्रों को चलने की प्रेरणा करना, मिलने-जुलने वालों को बुला बुला और उठा उठाकर साथ लिये चलना, ये सब वेद सुनानेके साधन हैं। आर्य जनोंको चाहिये कि अपने घरों और मकानों पर कथायें बैठाकर भी लोगोंको वैदिक ज्ञान सुनायें।

जहाँ दो तीन भी आर्य्य जन हों, वहाँ भी वे वेदका पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना न छोड़ें।

सप्ताहमें तो अवश्य ही, परन्तु हो सके तो प्रति दिन भी एक समय अवश्य मिलकर बैठा करें। उसी को सत्संग समझें। उस समय अपढ़ों को सन्ध्या सिखावें और आर्य ग्रन्थपढ़ायें।उनमेंसे कोई विशेष जानने वाला सज्जन किसी आर्ष ग्रन्थ को सुनाये और शेष ध्यान से सुनें। कहीं भी कोई हो और कैसी भी अवस्था में हो, पर परम धर्म्म का पालन करने में त्रुटि न करे। इससे पतित होना पाप-कर्म्म समझे।

आर्य्य-समाजियों का यह कर्त्तव्य कर्म्म है कि इस सर्वोत्तम धर्म्म की सिद्धि के लिए साधन सभायें स्थापित करें, धर्म्म-पुरोहित रक्खें, और ऐसी रात्रि-पाठशालाओं की रीति चलायें जिनमें आर्य्य जनों को आर्य ग्रन्थों के पढ़ने पढ़ाने और सुनने-सुनाने का अवसर मिले। इस परम धर्म्म का पालन न करने वाला, आर्य्य-समाज के नियमों की दृष्टि से, आर्य्य-समाजी नाम का भी अधिकारी नहीं है।

जो नर-नारी वैदिक उपदेश सुनाने की सामर्थ्य रखते हैं, वे अपने आप को भाग्यशाली समझकर इस अमृत को अपनी बहनों और भाइयों में भी बांटें, और जनता को वेदों का सुसमाचार सुनावें। वैदिक-धर्म्म के उपदेशक का वेश-परिष्कार स्वच्छ, सभ्य और सादा होना चाहिए। उसका आकार-प्रकार गम्भीर और सुजनता का हो। उसके उठने-बैठने, लेन देन, मेल-जोल, कथन-श्रवण और रहन-सहन के व्यवहारों में सुशीलता, सभ्यता, विनय और धर्म्म-भाव दीख पड़े। वह सुनाते समय शान्ति और धैर्य्य से बोले। उसके शब्द कोमल, वाणी मधुर और भाषा सुन्दर तथा प्रेम पूर्ण हो। उसकी वर्णन शैली मनोरंजक, क्रमबद्ध, प्रमाणिक और यौक्तिक हो। वार्तालाप में उपदेशक मन्द मुस्कान-सहित मधुर वचन बोले। युक्ति, प्रमाण और उदाहरणमें पूर्णता दिखा दे उसके अवलोकन में हित और स्नेह हो और कथन में कोमलता जान पड़े।

प्रश्नोत्तर में उपदेशक को धैर्य्य, शान्ति, गम्भीरता और कोमलता से काम लेना चाहिये। वह युक्तियुक्त उत्तर दे। ऐसे स्पष्ट और गम्भीर स्वर में बोले जिसे सब सुन सकें। प्रश्न-कर्त्ता का आदर करे। उसकी योग्यता की प्रशंसा करे। उसके प्रश्न का गौरव और महत्त्व बताये। उत्तर में उसे उत्तेजित नहीं वरन् अनुकूल बनाये। उसके विचारों के साथ अपने मिलते हुए विचारों को मिला कर उत्तर दे। यदि प्रश्नकर्त्ता की सन्तुष्टि न हो तो उसे मनन करने को कहे। इस रीति से व्याख्यान और प्रश्नोत्तर का प्रभाव बहुत ही अच्छा होता है। तीसरे नियम का पालन करने के लिये यदि इन साधनों को सावधानता-पूर्वक काम में लाया जाय तो अधिक लाभ होगा।

चौथा नियम।

'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।'

जो बात अथवा पक्ष सत्य हो, प्रमाण-सिद्ध हो, युक्तियुक्त और अन्तःकरणानूकूल हो, और जिसकी साक्षी अपना आत्मा भी दे, उसे मानने के लिए और इससे विपरीत पक्ष वा बात को छोड़ने के लिए सदा तैयार रहना चाहिये। आर्य्यजन सत्य के ग्रहण करने में सदा उदार हों। सत्य के प्रवेश के लिए उसका हृदय द्वार सदा खुला रहे।

यह चौथा नियम पहले तीन नियमों का अपवाद नहीं करता। उनको स्वीकार कर लेने पर ही इसका प्रण किया जाता है। जिस जनको जगत् के आदि मूल में, ईश्वर के स्वरूप में, और वेद की सत्यता में में ही सन्देह हो उसके लिए चौथा नियम नहीं है। यह पहले तीन नियमों के विश्वासी के लिए ही नियत किया गया है। पहले तीनों की सत्यता सुनिश्चित हो जाने पर इसकी प्रवृत्ति होती है। इस कारण इस चौथे नियम की व्याप्ति पहले नियमों में न समझकर अन्य वार्त्तालाप में, वाद में, पक्ष-प्रतिपक्ष में, शास्त्र और समाज-चर्चा में, ग्रन्थों के अर्थ में तथा वर्णन-व्याख्यान आदि विषयों में माननी चाहिये।

चौथे नियमका पालन करने वाला धर्म्म में पक्का अवश्य हो, पर हठी न हो। वह यह समझे कि सत्य सनातन है। वह किसी देश या जाति की क्रीत वस्तु

नहीं। उस पर सर्वसाधारण का समान अधिकार है। सत्य किसी युग में और किसी स्थान में किसी मनुष्य ने उत्पन्न नहीं किया। जैसे दो और दो चार, यह सत्य तीनों कालों में दसों दिशाओं में सभी जातियों में बराबर बना रहता है, ठीक उसी प्रकार दूसरे सत्य भी सर्वत्र एक रस बने रहते हैं। इस कारण, चाहे कहीं से मिले पर सत्य है अपना, पराया नहीं। उस पर मेरे तेरे की मुहर लगाना महा मूर्खता की मिथ्या ममता है।

मनु महाराज ने कहा है कि "शुभ विद्या और सदाचार अधर्म मनुष्य से भी ले लेना चहिये। विचारवान जन सुन्दर बात एक बालक से भी सीख ले।" इसका भाव यही है कि सत्य के ग्रहण करने में कभी संकोच न करे, ऊंच-नीच को न विचारें। केवल सत्य से ही स्नेह रक्खे। प्राचीन काल के आर्यजन सत्य के सीखने में सदा उत्सुकता प्रकट किया करते थे। कई ब्राह्मण मिलकर अश्वपति राजा के पास केवल अध्यात्म-विद्या सीखने के प्रयोजन से ही गये थे। व्यासदेवने अपने सुयोग्य पुत्र शुकदेव को ब्रह्मविद्या सीखने के लिए, बड़े दूर देश से राजा जनक के पास भेजा था। जांजली नामक के तपस्वी ने तुलाधार नामक एक वैश्य से धर्म्मोपदेश लिया था। महाभारत में लिखा है कि एक तपस्वी ब्राह्मण ने अपनी तपोभूमि त्यागकर वाराणसीके वासी सुप्रसिद्ध वृद्ध व्याध से व्याधगीता का उपदेश श्रवण किया था। स्वामी श्री दयानन्दजी अनेक सन्त-सज्जनों के सत्संग से सुलाभ लेते हुए, अध्यात्म-योग की कई भूमियों को लाँघ जाने पर भी, वैदिक व्याकरण का अध्ययन करने- के भाव से श्रीविरजानन्द जी की चरण-शरण में जाकर बड़ी विनीतता से झुके थे। सत्यका संचय करने वाले को अन्त समय पर्य्यन्त सत्य-संग्रह में संलग्न रहना चाहिए। वह सीखने के संसार में सदा बालक ही बना रहे—विद्यार्थीपन ही प्रदर्शित करता रहे। कभी भी अपने को बड़ा और ज्ञानी मान कर सन्तुष्ट न हो जाय।

एक बार भारद्वाज से इन्द्रने कहा कि यदि आपकी सौ वर्ष की और आयु-वृद्धि हो जाय तो आप क्या काम करेंगे? इस पर उन्होंने उत्तर दिया—और क्या करूंगा, वेद-पाठ ही में समय बिताऊंगा। इन्द्र ने दूसरी बार कहा कि यदि उसके अनन्तर फिर एक सौ वर्ष की और आयु बढ़ जाय तब क्या कीजियेगा? भारद्वाज ने कहा तब भी में वेदाध्ययन ही में कालयापन करूंगा। इन्द्र ने तीसरी बार फिर कहा कि दूसरे शतक की समाप्ति पर पुनरपि आप की शतायु हो जाय तो बताइये तब उसका क्या काम होगा? तीसरी बार भी उत्तर में उन्होंने यही कहा कि मेरा कार्य तब भी वेद का स्वाध्याय ही होगा। वेद अनंत है, असीम है। उसका ज्ञान अगाध है। उसके आराधन के लिए जितनी भी आयु हो, थोड़ी है। इस आख्यायिका से सब को यह सुशिक्षा लेनी चाहिये कि सत्य की सम्पत्ति का संग्रह करने में, ज्ञान का भण्डार भरने में, और कलाकौशल का गुण ग्रहण करने में मन में संकोच और सन्तोष को कभी कोई न आने दे। अपना लक्ष्य ऊंचा रक्खे। जीवन के सच्चे आदर्श को क्षणिक सन्तोष की सीमा में न बाँधे। अनन्त सत्य के स्त्रोत का मुख हठधर्म्मी की शिला से सन्निरुद्ध न करे। क्रमशः

(पृष्ठ ८ का शेष)

उनके निजी मन्त्री ने कहा श्री नेहरू जी ने उत्तर दिया है कि हम उत्तराधिकार विधेयक वापिस नहीं लेंगे। जब लोग धरना देकर बैठ गये तो पुलिस ने अश्रु गैस छोड़ी लाठी चार्ज किया। पंच लोगों ने जमना तट पर पंचायत करके सब स्थिति पर विचार किया कि जब तक यह कानून वापिस न लिया जाय कांग्रेस को वोट न दिये जायें। अन्य स्थानों के लोग भी इस कानून से कम दुःखी न थे। गाँव-गाँव, नगर नगर में लोगों ने पंचायते करके इस निर्णय पर अमल करने का निश्चय किया।

(गोधन के सौजन्य से)

स्वाध्याय योग्य उत्तम पुस्तकें

उपनिषद्-आर्य भाष्य	पं० आर्यमुनि	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	२० पुस्तकों संग्रह	४॥)
वाल्मीकि रामायण	पं० प्रेमचन्द विद्या भास्कर	१२)
प्रभुदर्शन	महात्मा आनन्द स्वामी	२॥)
तत्त्व ज्ञान	,, ,, ,,	३)
आनन्द गायत्री कथा	,, ,, ,,	॥)
ओंकार निर्णय	शिवशंकर काव्य तीर्थ	१॥)
योगासन	गणेशदत्त "इन्द्र"	१॥)
वैदिक प्रार्थना	प्र० ले० स्वामी वेदानन्द	१॥)
बहनों की बातें	पं० सिद्धगोपाल	१।)
ईश्वरीय नियम मनुष्यधर्म	मास्टर कोट्रूराम	॥=)
कर्त्तव्य दर्पण	महात्मा नारायण स्वामी	॥।=)
प्राणायाम विधि	,,	।)
आर्य समाज क्या है	,,	॥)
सन्ध्या रहस्य	,,	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	,,	।=)
विद्यार्थी जीवन हस्य	,,	।=)
सन्ध्या विनय	पं० नित्यानन्द वेदालंकार	॥)
प्रार्थना प्रदीप	,,	॥)
श्री मह्यानन्द चित्रावलि	रामगोपाल विद्यालंकार	२।)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	राजेन्द्र जी	॥)
वेद परिचय	स्वामी वेदानन्द	।=)
गोरक्षा परमकर्त्तव्य	पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति	॥)
सत्यार्थप्रकाश शंकासमाधान	पं० लोकनाथ	।)
दयानन्द और वेद	योगीअरविन्द	।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	॥=)
गुरुधाम एकांकी	चन्द्रनारायण	॥)
स्वामी दयानन्द	बालोपयोगी	।=)
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	।=)
पं० लेखराम	,,	।=)
म० हंसराज	,,	।=)
वीर बच्चों की कहानियां	नन्दकुमार देव	॥।)
बाल शिक्षक	स्वामी दयानन्द	।=)
गृहस्थाश्रम	,,	॥=)
सस्कार विधि	,,	॥।–)

वैदिकधर्म शिक्षा	पं० शिवशर्मा	≡)
गायत्री रहस्यं	म० टेकचंद	२)
सामाजिक पद्धतिं	पं० मदनजित	।≡)
आर्य सत्संग गुटका	बढ़िया संस्करण	।–)
वैदिक सन्ध्या जपंत्री	पं० ताराचन्द	≡)
विश्वविज्ञान परमात्मावोध	स्वामी ब्रह्ममुनि	≡)
यवन मत समीक्षा	पं० लेखराम	१॥)
अनुराग रत्न	पं० नाथूराम शंकर शर्मा	२॥)
यज्ञोपवीत मीमांसा	विश्वनाथ शास्त्री	॥।)
संस्कार विधि विमर्श	अत्रिदेव विद्यालंकार	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग	,,	३)
कल्याण मार्ग का पथिक	स्वामी श्रद्धानन्द	२॥)
पारिवारिक दृश्य	पं० केशवदेव	१)
आर्यसमाज का इतिहास	हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	१।=)
सावित्री प्रकाश	स्वामी वेदानन्द	१)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति	पद्धतिमात्र	।=)
वेदांत रहस्य	हीरेन्द्रत्त	१॥)
वैदिक भक्ति स्तोत्र	श्री रणवीरजी	१।)
अखण्ड भारत	चन्द्रगुप्त वेदालंकार	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	पं० चन्द्रभानु शर्मा	।–)
द्वि राष्ट्र सिद्धान्त राष्ट्रीय मुसलमान	श्री ब्रह्मदत्त जी	१)
महर्षि दयानन्द	शिवा बावनी तर्ज में	॥=)
आर्य सिद्धांतदीप	मदनमोहन विद्यासागर	१।)
गीत श्रद्धांजलि	रामअवतार वीर	१।=)
ब्रह्मचर्य जीवन वीर्यनाश मृत्यु	पं० सत्यव्रत	।=)
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१)
बीरबल की हाजिर जवाबी	हास्य	१)
कौटिल्य अर्थ शास्त्र	आचार्य चाणक्य	१०)
सत्यार्थप्रकाश गान	उदयवीर	।)
शुद्धि शास्त्र सम्मत है	महता रामचन्द्र	॥)
सामवेद शतक	स्वामी अच्चुदानन्द	॥=)

गीतावचनामृत	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
विदुरधर्मोपदेश	=)
बालबोध प्रश्नोत्तरी	।–)

प्रेमकुमार पांडेय प्रेमी कृत ४) सैकड़े वाले ट्रैक्ट

सिनेमा और हम	–)
रोटी कपड़ा	–)
कृण्वन्तोस्वमार्यम	–)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

उपयोगी पुस्तकें

पं. जयदेव कृत	
ऋग्वेद भाष्य ७भाग	४२)
अथर्ववेद ४ भाग	२४)
यजुर्वेद २ भाग	१०)
सामवेद	६)
पं. तुलसीरामस्वामी कृत	
न्याय दर्शन	२)
योगदर्शन	१॥)
वेदान्तदर्शन	२॥)
वैशेषिकदर्शन	२)
मनुस्मृति	५)
स्वामी दर्शनानन्द कृत	
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उ)	२॥)
न्यायदर्शन	२॥)
वैशेषिक दर्शन	३॥)
गीता भाष्य	१॥)
म०नारायण स्वामी कृत	
मृत्युपरलोक	१।)
अमृत वर्षा	२)
पाप पुण्य	॥)
गृहस्थ जीवन रहस्य	२।)
महर्षिदयानन्द "इन्द्र"	२)
तरंगितहृदय 'अभय'	१)
कोटिल्य अर्थ शास्त्र	१०)
कुरानशरीफ	८)
एकादशोपनिषद	१२)
ब्रह्मचर्य सन्देश	४॥)
दयानन्दका पत्रव्यवहार	७)
जाति निर्णय	४)
योग प्रदीप	१२)
स्वामी सर्वदानन्द	
सन्मार्ग दर्शन	४)
आनन्द संग्रह	२)
ईश्वर भक्ति	२)
ईश्वर मिलाप	॥)

धर्म ज्ञान ४ भाग	२–)
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२)
संस्कार विधि	॥।–)
हितोपदेश भा०टी०	१॥)
पंचतन्त्र भाषा	३॥)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
हमारी माताएं	३)
भारतीय वीरांगनाएं	३)
वैदिक सम्पत्ति	६॥।)
दर्शन और गीता	१।)
दृष्टान्त महासागर	२॥)
दयानन्द और गांधी	२)
नैतिक जीवन	२॥)
भक्तियोग विवेकानन्द	२)
कर्मयोग ,,	२)
भक्ति और वेदान्त ,,	२)
आगे बढ़ो	१॥)
सफलता की कुंजी	१)
भारत में मूर्ति पूजा	२)
पूर्वजन्म स्मृति	।≈)
स्वामी ब्रह्मानन्द जी	
पितृ यज्ञ प्रसाद	॥।)
भगवत् यज्ञ प्रसाद	॥।)
अमृत प्रसाद	॥।)
ब्रह्म सोम प्रसाद	॥=)
प्रेम सुमन प्रसाद	॥)
ब्रह्म प्रसाद	।–)
ब्रह्म यज्ञ प्रसाद	।)
देव यज्ञ प्रसाद	≡)
यज्ञ प्रसाद	–)
मौन यज्ञ प्रसाद	–)
नारी कर्तव्य प्रसाद	॥।)
अथिति यज्ञ प्रसाद	॥=)

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगा

–) प्रति, तथा ४) रु० सैकड़ा, ३५) रुपया हज

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आयसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक संध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवादकी रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षासे हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ.स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आस.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

वेदप्रकाश के ग्राहक बनिए

वेदप्रकाश अपने चार वर्ष पूरे कर चुका है । श्रावणी पर्वमें पांचवें वर्षमें पदार्पण कर चुका है । पिछले चार वर्षों में वेदप्रकाश के द्वारा अनेक आर्य विद्वानों के सैद्धान्तिक उत्तम लेख प्रकाशित हुए । वेदप्रकाश ट्रैक्ट माला में ७० ट्रैक्ट के लगभग २ लाख की संख्या में प्रकाशित होकर प्रसारित हुए इनमें से कई ट्रैक्ट दो-दो, तीन-तीन वार भी छपे । ये ट्रैक्ट समाजों तथा श्रद्धालु सज्जनों के लिए प्रचार का अच्छा साधन बन गए हैं । साथ ही **दयानन्द ग्रन्थ संग्रह तथा वाल्मीकि रामायण** विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर लागत मूल्य में ग्राहकों को भेंट में दिये गये । इतना होते हुए भी आर्य बन्धुओं से जितना सहयोग मिलना चाहिए था नहीं मिला । यही कारण है कि गत तथा इस वर्ष कोई नवीन वृहदाकार विशेषांक नहीं प्रकाशित कर सके । अभी तक पिछले दोनों विशेषांक दयानन्द ग्रन्थ संग्रह तथा वाल्मीक रामायण सैकड़ों की संख्या में बचे हुए हैं । वेदप्रकाश के इतने स्थाई ग्राहक अभीतक नहीं हुए हैं कि प्रति वर्ष नए वृहदाकार विशेषांक निकाल सकें ।

यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि आप स्वयं ग्राहक बनें तथा प्रत्येक ग्राहक कम से कम तीन-तीन स्थाई ग्राहक बनाए । आपके सहयोग के बिना विशेषांक निकालना असम्भव है ।

यही कारण है कि उपहार की पुस्तकें अल्प मूल्य में ग्राहकों को देकर सन्तोष करना पड़ता है । इस वर्ण भी निम्न छः पुस्तकें जो ८) रुपये मूल्य की है आधे मूल्य में ग्राहकों को दे रहे हैं १, संस्कार विधि विमर्श ३) । २, स्त्रियों का स्वास्थ और रोग ३) । ३, आर्य सिद्धान्त प्रदीप १।) ४, वेद परिचय ।≈) । ५, उपासना के आठ अंग ≡) । ६, वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य ≡)

यदि सभी ग्राहकों ने इस उपहार को खरीद लिया साथ में आगामी वर्ण के वेदप्रकाश का मूल्य २) भेज कर ग्राहक बने रहे तथा आपके इष्ट मित्रों तथा समाजों एवं संस्थाओं ने वेदप्रकाश को अपनाया तो आशा करनी चाहिए कि आगामी वर्ण **महाभारत का आर्ष संस्करण** हम अवश्य प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे इसलिए प्रत्येक आय भाई का कर्तव्य है कि कम से कम २) वार्षिक चन्दा भेज कर ग्राहक बने रहें । ४) की उपहार की पुस्तकें भी अवश्य मंगावें यह भी सबके लिए उपयोगी पुस्तकें हैं ।

वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ 'वेद प्रकाश' के अधिक से अधिक ग्राहक बनाइये ।

गोविन्दराम हासानन्द, 'वेदप्रकाश कार्यालय' नई सड़क, देहली ।

वेदप्रकाश के आगामी वर्ष के लिए उपहार

८) रुपये में सर्वोपयोगी निम्न ६ पुस्तकें केवल ४) रुपये में,

(डाक खर्च अलग)

१—आर्य सिद्धान्त प्रदीप

लेखक :—श्री मदनमोहन विद्यासागर (स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

इस पुस्तक में ऋषिदयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल रीति से संकलन किया गया है जिससे अल्प प्रयास से ही वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के सम्पादन व संशोधन करने में आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों से सहयोग एवं परामर्श लिया गया है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितनी उपयोगी है मूल्य १।)

२—संस्कार विधि विमर्श

लेखक :—श्री पं० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न (गु. का.) अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि में वर्णित १६ संस्कारों पर आयुर्वेद परक व्याख्या और प्रजा शास्त्र के आधार पर लिखी गई पहली पुस्तक है।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट भाग में प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग भी दिए गये हैं जिससे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य ३)

३—वेद परिचय

लेखक :— वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती।

वेद हमारा धर्म ग्रन्थ है, इसका परिचय प्राप्त करना प्रत्येक का परम कर्तव्य है। इस में वेद विषयक जानने योग्य अनेक आवश्यक बातें हैं। मूल्य ।=)

४—वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य

सन्ध्या विषयक पद पदार्थ तथा भावार्थ सहित उत्तम पुस्तक। मूल्य ≡)

५—स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

लेखक :—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न

राष्ट्र एवं प्रजोत्पादन के लिए स्त्रियों का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। इस ओर असावधान रहना बहुत ही हानिकारक है।

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी अनेक सरल प्रयोग भी दिये गये हैं। जिससे गृहस्थ के अतिरिक्त वैद्य और डाक्टर भी लाभ उठा सकें। मूल्य ३)

६—उपासना योग के आठ अंग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा संशोधित

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण ध्यान, समाधि, विषयक मनन करने योग्य उत्तम गुटका पुस्तक है मूल्य ≡)

वेद प्रकाश का नवीन वर्ष इसी अंक से आरंभ हो रहा है। ग्राहक नं० २१०० तक के प्रायः सभी ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो चुका है। कृपा कर आगामी वर्ष का चन्दा २) तथा उपरोक्त ८) रुपये की ६ पुस्तकें लेना चाहें तो उसके रियायती मूल्य के ४) रुपये मिलाकर ६) का मनीआर्डर तुरंत भेज उपहार की पुस्तकें मंगा लेवें। जो उपहार की पुस्तकें न लेना चाहें वे वेदप्रकाश का चन्दा २) रुपये भेज कर ग्राहक बने रहें। जिनके चन्दे समाप्त नहीं हुए हैं वे भी उपहार की पुस्तकें मंगा सकते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

हासानन्द वर्मा गोचर भूमि पर ग्राम पंचायत का अधिकार क्यों ?

प्रसिद्ध गो सेवक पूज्य पिता श्री हासानन्द वर्मा ने आज से ५० वर्ष पूर्व कलकत्ते में गोवध बन्दी तथा गोरक्षार्थ गोचर भूमि का आन्दोलन आरम्भ किया। अपने अनथक परिश्रम से कलकत्ते के पास लिलुआ नामक स्थान में ३०० बीघा जमीन और कचरा पाडा नामक स्थान में १००० बीघा जमीन दानियों के सहयोग से प्राप्त करके गोचर भूमि का क्रियात्मक आदर्श उपस्थित किया। कलकत्ते की उपरोक्त जमीन कलकत्ता पिंजरा पोल सोसायटी के सदकार्य में आ रही है, जहां सहस्रों गायें चरती हैं।

इसी प्रकार वृन्दावन में भी गोचर भूमि का आन्दोलन करके सैकड़ों एकड़ भूमि खरीदी जिसके प्रधान महामना श्री पं० मदन मोहन मालवीय जी रहे, जमीन के लिए धन कलकत्ते के सेठ ताराचन्द घनश्याम दास के यहां जमा होता रहा। पिता जी की मृत्यु के वाद जितनी जमीन का सौदा जमीदार से हुआ था, रुपयों की कमी के कारण आधी के लगभग ६५० एकड़ जमीन खरीद कर "हासानन्द वर्मा गोंचर भूमि ट्रस्ट" के नाम से रजिस्ट्री करा ली गई।

श्री मालवीय जी के स्वर्गबास के पश्चात प्रसिद्ध दानी व धार्मिक प्रवृत्ति के धनी सेठ जुगल किशोर जी विडला उपरोक्त ट्रस्ट के प्रधान हैं।

उपरोक्त भूमि के आज भी उत्तम नसल के सांड तैयार करने तथा कलकत्ते से कसाई की छुरी से बचाई हुई, दूध सुखी गाये लाकर नसल सुधारने का कार्य आरम्भ हुआ है। गोचर भूमि में अधिक चारा पैदा हो इस दृष्टि से वर्षा का पानी रोकने के लिए डोल बन्दी की तजवीज की गई और यह भी कोशिश की जा रही है कि यह भूमि एक आदर्श गोचर भूमि हो।

पर इन्हीं दिनों इस गोचर भूमि को जिससे सदैव से आस पास ग्रामो तथा गोशालाओं की गायें चरती रही, सरकार ने ग्राम पंचायत को दिला दी। इससे पूर्व भी ६० एकड भूमि पर सरकारी बन विभाग न अनुचित अधिकार कर लिया था। अब खेती की भूमि को छोड़कर सब भूमि पर अधिकार कराने का निर्णय करके हजारों गायों को भूखों मरने के लिए बाध्य कर दिया है।

जब उत्तर प्रदेश सरकार गोधन और गोशालाओं को उन्नत करने की बड़ी बड़ी योजना बना रही है, ऐसे समय में गोचर भूमि पर अधिकार करना गोधन को हानि पहुंचाना है। अतः सरकार को चाहिये कि इस भूमि पर ग्राम पंचायत तथा बन विभाग को अधिकार न करने दे तथा इसकी उन्नति में इस भूमि के प्रबन्धकों को पूरा पूरा सहयोग दें।

उत्तर प्रदेश के संसद सदस्यों से भी प्रार्थना है कि इस गोचर भूमि को सरकारी कब्जे से मुक्त कराने में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी को प्रेरणा दें।

मथुरा वृन्दावन के गोभक्त आर्य हिन्दू जनता से भी प्रार्थना है कि आन्दोलन करके अपनी आवाज को प्रबल और प्रभावशाली बनावें। जिससे कि गोचर भूमि आपके ग्रामों की गायों के चरने के लिए बनी रहें।

गोचर भूमि के ट्रस्टि विशेषकर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला से प्रार्थना है कि ट्रस्टियों द्वारा सरकार से पत्र व्यवहार कर गोचर भूमि की रक्षा करें।

—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

कनफुकवे गुरू, बैल का पूँछ

प्यारे पाठको! आप इस बात को तो भली भाँति समझते होंगे कि भारतवासियों का एक अखंडित वर्णाश्रमी धर्म जो बहुत समय अर्थात सृष्टि के आदि से लेकर केवल वेदों के आधार पर चला आता था सो ईश्वरेच्छा या भारत दुर्भाग्य नष्ट हुआ वैदिक कर्मों का लोप होकर साम्प्रदायिक प्रणाली ने सर्वदा धर्म का नाश कर दिया, हमने वेदों को तिलाञ्जली देकर कल्पित सम्प्रदायों को धर्म समझ मृगतृष्णा से प्यास मिटाने वाले मृग की भांति धर्माभास में पड़कर अपना अनमोल मनुष्य जन्म और देश का गौरव नष्ट कर लिया। इस अविद्या का यह फल हुआ कि राज-काज बिगड़ा, धर्म नष्ट हुआ, ऐक्य नष्ट हुआ यहां तक तो हुआ कि वर्णाश्रम की बात ही क्या है मनुष्यत्व भी नष्ट हो गया। जो महात्मा "तन मन धन गुसाईं जी के अर्पण" की प्रसादी को जानते होंगे, उनको पूरा-पूरा विश्वास हो जायगा कि उनके शिष्यों में मनुष्यता का नाम भी नहीं। कोई आदमी मूर्ख भी क्यों न हो क्या वह अपनी स्त्री, बेटी और भगनी आदि को प्रसादों में जाने की आज्ञा दे सकता है? परन्तु विवेक के अभाव से यह सम्भव हो गया। क्या कोई विषयासक्ति मनुष्यों को ईश्वर मुक्ति प्रदाता मान सकता है? जड़ के समीप रहने से जिनका चित्त जड़ हो गया हो, ऐसे महात्माओं के इन गड़रिये गुरुओं की लीला के अनुकूल एक दृष्टान्त लिखता हूँ।

गड़रिये गुरू, बैल की पूंछ

एक दिन किसी धनी पुरुष का बालक सुन्दर वस्त्र और भूषण पहने घर के द्वार पर खेल रहा था। उस समय चोर उसको मूर्ख जानकर थोड़ीसी मिठाई का लोभ देकर वहाँ से उठा ले गये और किसी भारी बन में ले जाकर उसके सब भूषण उतार आँखों में पट्टी बाँधकर चलते हुए। जब बालक दुख से रोने चिल्लाने लगा और माता पिता की सुधि करके अति दुखित हो विलाप करने लगा, तब इतने में वहाँ एक गुरुघण्टाल आ निकले और उसकी इस अवस्था को देखकर आपने कहा—हे! बालक क्या हुआ चिल्लाकर क्यों रो रहा है? उससे उनसे सब वृतान्त कह दिया और अपने माता पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की, तब उस गुरू ने उसकी आँखें खोल दी और कहा यदि तू कुछ हमें दे तो हम तुझे तेरे घर पहुँचा दें, बालक ने कहा महाराज मेरे पास तो कुछ नहीं है; परन्तु मेरे माता पिता धनी हैं वे अवश्य देंगे आप मुझे पहुंचा दीजिये। तब गुरू ने कहा यह तो हम नहीं मानते कारण यह था कि गुरूजी को उसका घर ज्ञात न था, चाहते थे जो कुछ मिल जावे। मेरे हाथ में केवल एक अंगूठी रह गई है, अस्तु उसने उसे झट उतार कर उनको भेंट की। गुरुजी ने ने अंगूठी लेली एक जंगली बैल जो वहां चरता था, उसकी पूंछ उसको पकड़ा दी और कहा छोड़ना मत, यह तुमको तुम्हारे घर पहुँचा देगा। बालक दिन भर उस बैल की पूंछ पकड़े घूमता रहा। बैल कभी झाड़ी कभी कांटों में जाता ठीक मार्ग पर नहीं चलता था, सरदी और थकावट से वेचारा बालक अत्यन्त दुःखी हो गया, तब उसने विचारा कि चोर तो मुझे थोड़े से काल में ले आये थे; परन्तु यहां इतनी देर घूमते बीत गई और घर न पहुँचा—अब बेचारा बालक बैल की पूंछ को छोड़ भूख प्यास से व्याकुल हो माता पिता को याद कर दिन भर के दुःखों को सोच फूट-फूटकर रोने लगा, तब उस बन के एक तपस्वी ने उस पर दया करके पूछा कि हे बालक! तू क्यों रोता है? तब उस बालक ने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया और रोते-रोते उस महात्मा के पांवों में गिर पड़ा, जब उस महात्मा ने इसकी व्यवस्था को

विचारा तो अत्यन्त शोकाकुल हुआ, एक तो रात्रि का समय, जिसमें अन्धकार के कारण से कुछ सूझता ही न था, दूसरे बन के सिंह व्याघ्रों का प्रबल नाद, तीसरे बालक की दीन दशा अब उस महात्मा ने विचारा कि इस समय यह बालक घर पर नहीं पहुँच सकता, रात्रि भर इसको रक्षा के स्थान में रखना चाहिये। सूर्योदय होने पर घर पहुँचा दिया जावे। तब उस महात्मा ने बालक से कहा कि ऐ बालक। इस ससय एक तो अंधेरी रात्रि के कारण तू मार्ग नहीं जान सकेगा दूसरे यह शरीर भी शिथिल हो रहा है, तीसरे बन पशु भी अधिक हैं, चौथे मार्ग कठिन है। इससे उचित है कि तू किसी वृक्ष पर चढ़ जा जिससे रात्रि वीत जावे जब सूर्योदय होगा तब तूझे घर पहुँचा दिया जावेगा।

अब दृष्टान्त तो पूरा हो गया। इसका सारांश यह है कि वह जीव रूप बालक अपने माता पिता प्रकृति पुरुष के द्वार पर विचरता है अर्थात् जब वह अविवेक की ओट में चला जाता है तब काम क्रोध लोभ मोह अभिमानादि दोष रूपी चोर उसको संसार के घोर बन में ले जाते हैं और उसके ज्ञान रूपी चक्षुओं में अज्ञान की पट्टी बांधकर उसको संसार में छोड़ देते है। जब जीव ससार के दुखों से अत्यन्त दुःखी होकर और ईश्वर को स्मरण करके उससे मिलने की अभिलाषा में जिज्ञासा रूपी रुदन करता है तो यह संसार के भेषधारी गुरू महात्मा, जिनको सदा चेला बनाने और वृद्धि करने की होड लगी रहती है, उस जिज्ञासु से कहते हैं, कि तुम्हें ईश्वर को मिला दें तो तू हमको क्या देगा ? तब बेचारे संसारी जन जो सदा व्यापार की छाया में लोभ के गर्त (गढ़े) में गिरे हुए हैं, जिनके ज्ञान रूपी नेत्रों पर कामादि ने अज्ञान की पट्टी बांध दी है, वेचारे इनसे कहते हैं—महाराज ! साक्षात् ईश्वर का रूप गुरू है, भला हम आपको क्या दे सकते हैं ? केवल बुद्धि एक अंगूठा है तब गुरुजी महाराज कहते हैं—अच्छा 'तन मन धन अर्पण कर" हमारी सेवा करना, हमारे व्यवहारों में कभी तर्क न करना; क्योंकि तर्क करने वाली बुद्धि अब हमारी है -- हे शिष्य ! यदि गुरू लोभी हो तो बामन के समान है, यदि कामी हो तो कृष्णके समान, यदि क्रोधी हो तो परसराम के समान समझो। और कोई तुलसी की माला, कोई मुद्रा, कोई रुद्राक्ष इस तरह का कोई चिन्ह देकर अर्थात् जड़ पदार्थ का सेवन रूपी बैल की पूंछ उसको पकड़ा देते हैं।

जब जीव इन भेषधारियों के 'जाल में फंसकर इनके भेष रूपी बैल की पूंछ पकड़े बहुत दुःख पाता है और इनके दुराचारों को देखकर महा दुखित होता तथा अपने तन को धिक्कारता है। और ईश्वर को स्मरण करके रोता है, तब संसार रूपी मन में जो कोई महात्मा, योगीराज, परोपकारी, धर्मवर्द्धक, ईश्वर से भयभीत, सबके आत्मा को अपने आत्मा के समान देखने वाले, अपनी हानि करके भी दूसरों का भला करने वाले, वेद-विद्या से विभूषित वर्णाश्रमी ब्राह्मण सन्यासी मिल जाते हैं, तो उसको उपदेश करते हैं कि हे भाई ! तेरी बुद्धि में अज्ञान रूपी रात्रि का प्रवेश है, तेरा पुरुषार्थ रूपी बल बहुत न्यून हो रहा है। संसार के विषय वासना रूपी वनमें पशु घूम रहे हैं, जिसको अकेला अर्थात् कार्य से शून्य पाते हैं, झट उठा ले जाते हैं, और योग बल न होने से मनुष्य इन्द्रियों को रोक नहीं सकता यह सदा दुःखी रखते हैं और उस परमात्मा का मार्ग अर्थात् आत्मज्ञान अत्यन्त कठिन है। इससे उचित है कि हे जीव ! तू किसी शास्त्र रूपी वृक्ष पर चढ़कर अपने ज्ञान रूपी रात्रि को व्यतीत हो जाने दे अर्थात् विद्या पढ़ते-पढ़ते ज्ञान हो जायगा और आत्मानात्मा वा नित्या-नित्य पदार्थों का बोध हो जायगा और योगबल आ जाने से इन्द्रियों के दमन की शक्ति उत्पन्न हो जायगी, तब हे जीव ! तू परमात्मा को प्राप्त होकर सुख भोग करेगा। प्यारे देशवासियों ! आप विचार करो और और अपने धर्म की रक्षा करो—देखो वेद में बराबर लिखा है।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था
विद्यतेऽयनाय ।

उसी परमात्मा को जानकर अति मृत्यु अर्थात

(शेष पृष्ठ २४ पर)

"आर्यधर्म को समझिये" लेखमाला—१

आर्य कौन हैं ?

[लेखक—प्रेमकुमार प्रेमी, सिद्धान्त शास्त्री, आष्टा (भोपाल)]

मेरी 'सर्वहितकारी लेख माला' के चतुर्थ पुष्प 'कृण्वन्तो—स्वयमार्यम" में आप बन्धुओं ने स्वयं को श्रेष्ठ बनाने के लिये किया गया सानुरोध निवेदन पढ़ा होगा। उस लेख के बाद यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि यह भी बताया जावे कि वस्तुतः आर्य कहते किसे हैं ? फिर यह कि आर्य क्यों बनना चाहिये ? और फिर यह कि हम सब आर्य कैसे बन सकते हैं ?

आर्य किसे कहते हैं ?

पहले यही विचार हो कि यह "आर्य" है किस बला का नाम ? कुछ प्रिय बन्धु 'आर्य' शब्द को सुन कर निम्न लिखित मत व्यक्त करते हैं :—

(१) कुछ बन्धु कहते हैं कि अरे ये आर्य कहाने वाले दयानन्दीमत के मानने वाले आर्य समाजी है !

(२) दूसरे आर्यों के लक्षण इस प्रकार करते हैं कि आर्यों के अष्टकर्म हैं जिन से वे शीघ्र पहचाने जा सकते है वे कर्म हैं बात बात पर बहस करना, सब का खंडन करना, स्वामी दयानन्द के गुण गाना, हमेशा सुधार की ठेकेदारी करना, प्रचार करने के नशे में धुत रहना, सबको बेवकूफ़ अनाड़ी कहकर अपने को श्रेष्ठ कहना, समाज में वैमनस्यता फैलना और सबके नियम संयम तुड़वाकर भ्रष्ट कर देना। यह आठ कर्म आर्य समाजियों के हैं।

(३) कुछ कहते है कि आर्य कैसे बनना चाहिये यह प्रश्न ही बेकार है। आर्य बनने में क्या रखा है ? किसी भी आर्य समाज का फार्म भर दिया चार आना चंदा दिया और प्रेमकुमार पाण्डेय की जगह प्रेमकुमार आर्य लिखने लगे। पढ़ने और सुनने वाले एक दब रोब में कि आर्य महा पुरुष चले आ रहे हैं हट जाना भाई !

(४) कुछ बन्धु कहते हैं कि आर्य तो आर्य समाजी लोग हैं जो मनुष्यों को संध्या और हवन करना ही सिखाया करते हैं।

(५) पाँचवें बन्धु कहते है कि "कहना कुछ और करना कुछ" यह आर्य या आर्य धर्मियों की प्रमुख विशेषता।

और भी अनेकानेक छोटे मोटे आक्षेप हैं। हम यह देखकर बड़े अचरज में रहते हैं कि जहाँ बड़े पश्चिमी दार्शनिक, मनीषी, साहित्यकार और इतिहासकार भी आर्य जाति, आर्यसंस्कृति की प्रशंसा करते नहीं थकते वहाँ कुछ भारतीय व्यक्ति ही ऐसे हैं जो अपनी सारी शक्ति से आर्यत्व की पेट भर निन्दा करते और अपनी खीझ उतार सन्तोष करते हैं।

हम इस लेख में प्रथम तो हमारे परम प्रिय बन्धुओं के उपरोक्त पाँचों का तर्क युक्त उत्तर देकर समाधान करते हैं पुनः आर्य का लक्षण करेंगे।

(१) जो बन्धु यह कहते हैं कि आर्य समाजी मायने दयानन्दी मत का अनुयायी होता है, उन बन्धुओं से हम अति नम्र निवेदन कर कहते हैं कि अनजाने में उन्होंने यह भ्रामक बात मान ली है क्योंकि जब कोई दयानन्दी मत ही नहीं तो फिर दयानन्दी मत के अनुयायी कहाँ से आवेंगे यथा "नष्टे मूलं पत्रं न पुष्पम्" यदि दयानन्दी मत कोई कहीं होता भी तो उसके मानने वाले अपने आपको दयानन्दी कहते जैसे कि विष्णु के उपासक वैष्णव,

शिव के उपासक शैव, जिन के उपासक जैन, बुद्ध के उपासक बौद्ध और ईसा के उपासक (अनुयायी) ईसाई कहलाते हैं पर सारे संसार में कोई व्यक्ति भी दयानन्दी कहलाने वाला व्यक्ति नहीं पा सकता फिर दयानन्दी मत कहाँ रहा ? श्री स्वामी दयानन्द जी ने भी आर्य समाज का नाम 'दयानन्द समाज' न रख कर अपने सब के पूर्वज और संसार की प्राचीनतम श्रेष्ठ आर्य जाति की स्मृति में अपने "आर्यत्व" को जागृत करने के लिये आर्य समाज ही रखा ताकि समस्त जन अपने आपको आर्य जान कर आर्य कर्म करें । स्वामी जी ने कोई भी मत नहीं चलाया क्योंकि वे स्वयं ही गुरुडम, साम्प्रदायिकता अन्धानुकरण और मतमतान्तरों के विरोधी थे । वे अपनी बात कितनी स्पष्ट लिख गये हैं सो जरा सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३८२ पर मुलाहजा कीजिये । लिखते हैं "मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है । मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है"

विचार शील निष्पक्ष विद्वानों ! इस उद्धरण को पढ़ कर आप ही सत्य सत्य कहिये कि क्या दयानन्दी मत का मानना न्याय संगत हो सकता है ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक बुद्धिमान कहेगा कि "कदापि नहीं हो सकता" क्यों कि स्वामी जी ने अपने सिद्धान्त नहीं चलाये बल्कि वैदिक सिद्धान्तों का उद्धार उसी प्रकार पुनः उनकी स्थापना की जिस प्रकार श्री महावीर स्वामी जी ने कोई नया मत नहीं चलाते हुए पांच सिद्धान्तों की ही स्थापना फिर से की थी जो पाँच महाव्रत कहलाते हैं श्री स्वामी दयानन्द जी ने इसी पृष्ठ पर आगे लिखा है ज़रा देखिये—

"यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यवर्त में प्रचारित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्म युक्त चाल चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्यों कि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है"

इस मंतव्य से उनकी निष्पक्षता, निष्कपट भावना और सत्यप्रियता साफ साफ प्रकट हो जाती है फिर उनके द्वारा किसी विशेष मत की स्थापना करने की बात मेरे प्रियबन्धुओं को नहीं चाहिये । वे मेरी बात पर खूब विचार करें ।

(२) अब दूसरी बात पर आइये । हम हमारे इन बंधुओं के आठों आक्षेपों पर विचार कर अष्टकर्मों की विवेचना करते हैं ।

बात-बात पर बहस करना—प्रथम तो इस आक्षेप में कुछ अतिशयोक्ति है । क्योंकि बात बात पर कोई भी बहस नहीं करता, न कर सकता है । यहां तक कि वकील भी अदालत और मवक्किलोंके अलावा सभी स्थानों पर बहसें नहीं किया करते । इसी प्रकार आर्य बात बात पर तो बहस नहीं करते, हां ! जब कभी कोई जिज्ञासु, ज्ञानी और विद्याप्रेमी व्यक्ति कोई शंका करे वा जब कोई व्यक्ति हठधर्मी, दुराग्रह तथा अपमान कर मखौल उड़ाने की भावना से असत्य कर मिथ्या धर्म और मिथ्या सिद्धांतों की सिद्धि करने में प्रवृत्त होता है तब उसकी भ्रामक बातों का निराकरण करके सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश करने के लिये अवश्य बहस मुबाहिसा होता है जो बुद्धिमानी का लक्षण है । बहस करने के निम्नांकित चार कारण हैं :—

(अ) गीता में श्रीकृष्ण जी महाराज कहते हैं कि 'श्रद्धावान लभतेज्ञानम् और 'संशयत्माविनश्यति' श्रद्धावान को ही ज्ञान का होता है और संशय में रहने वाली आत्मा का पतन हो जाता है वह इधर

की रहती है न उधर की, अतः श्रद्धा रखो।

(ब) श्रद्धा शब्द संस्कृत का है जो श्रत+धा (यानी सत्य+विश्वास) से मिलकर बना है यानी सत्य पर ही विश्वास करने की श्रद्धा कहते हैं और असत्य पर विश्वास करने को अश्रद्धा (असत्य+धा) कहते हैं। अतः सत्य और असत्य का ज्ञान करके सत्य पर दृढ़ विश्वास और असत्य का तत्काल त्याग कर उस पर श्रद्धा न रखना प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुष का धर्म है।

(स) सत्य असत्य का ज्ञान शुद्ध और युक्त-युक्त प्रामाणिक तर्क कर के विचार विमर्श करने पर ही होता है। अपनी ही मति अनुसार हर बात को मानने वाला बुद्धिमान नहीं है। अतः सत्य की खोज करने के लिये शुद्ध तर्क की नितान्त आवश्यकता है। "बाबा वाक्यं किं प्रमाणम्" सिद्धान्त वाले तर्क करना पसन्द नहीं करते और जो असत्य सिद्धांतो को मानते हैं वे भी तर्क से जान बचाने का यत्न करते हैं वरना जिसके पास सौट ंच का शुद्ध सोना हो वह कसौटी पर कसने से क्यों घबरावे ?

(द) महर्षि श्री दयानन्द जी स्वामी ने प्रत्येक बालक युवक आबालवृद्ध और नर नारियों को गुटबाज़ी, साम्प्रदायिकता, हठधर्मी और अन्धविश्वास से बचाने के लिये आर्य समाज का चौथा नियम यह बनाया कि :—

"सत्य को ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये" अपनी गल्ती मानकर उसे ठीक कर लेना ही बुद्धिमानी है।

विद्वान पाठकों ! कितना निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक विचार है आपको भी इसी नियम के अनुसार सत्य को प्राप्त करने का यत्न कर कर असत्य को हमेशा के लिये भारी पत्थर के साथ बांधकर गहरे जल में डुबो देना चाहिये।

सबका खंडन करना—यह आरोप इसलिये ठीक नहीं कि आर्य सबका नहीं केवल असत्य का ही खंडन करते हैं। तभी उन्होंने जहां जहां असत्य पाया, चाहे वह अपने धर्म में मिला चाहे अन्य धर्म में, वहां वहां उसका खुले आम खंडन किया। स्वामी दयानन्द जी पर यह आरोप लगाना सर्वथा अन्याय है कि उन्होंने पक्षपात किया, अर्थ का अनर्थ किया अन्य मतों की निन्दा की, महापुरुषों को अपशब्द कहे और सब के दिलों को चोट पहुंचाई। स्वामी जी यदि पक्षपाती होते तो आर्य समाज के स्थान पर "शैव-समाज" की स्थापना कर शैव धर्म का ही प्रचार करते पर उन्हें कट्टर शैव, धनवान और सनातन रुढ़ियों को मानने वाले ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर भी शुद्ध वैदिक धर्म का ही प्रचार किया। उन्होंने अर्थ अनर्थ नहीं किया क्योंकि वे महाभाष्य, अष्टाध्यायी, निरुक्त आदि व्याकरणके निष्णात ज्ञाता और चारों वेदों के अद्वितीय विद्वान थे उनके जीवन काल में उन्हें कोई नही हरा सका। अब ये जो आलोचना करने वाले विद्वान हैं न तो वे आदित्य ब्रह्मचारी हैं, न योगिराज हैं, न वेदों, वेदागों और वेदोपांगों के निष्णात ज्ञाता हैं जो स्वामी दयानन्दजी की आलोचना कर सकें। सारे संसार में जो भी विद्वान गुणों में स्वामी दयानन्द जी के शुभ गुणों से भी ऊंचा उठकर उन से भी अधिक या बराबर का महापुरुष बन जावेगा केवल उसी को "स्वामी जी की आलोचना करने का अधिकार है अन्यन्य व्यक्तियों को कदापि नहीं। वैसे लेखनी प्रत्येक के हाथ में है जो चाहे मजे से लिखा करे उसका कोई मूल्य नहीं उन्होंने अन्य मतों में जो असत्य, अविद्या और अधर्म की बातें थीं उन्हीं का खंडन किया है सो तो अपने धर्म का भी किया फिर पक्षपात कहना स्वयं पक्षपात है। उन्होंने महापुरुषों को अपशब्द नहीं कहे बिल्कुल जिनकी शिक्षाओं में कुछ भी असत्य, अविद्या और अधर्म की बातें पाईं उनका विरोध किया सो जैसे खेत की जब निंदाई करते हैं

तो फालतू कचरे को अच्छी फसल के हितार्थ साफ करना ही पड़ता है। वैसे हीं स्वामी जी को भी सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये करना पड़ा। वे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १७१ पर कितना स्पष्ट लिखते हैं सो जरा ध्यान दीजिये :—

“इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी को हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य निर्णय करने कराने का है”

आगे दूसरे स्थान पर लिखते हैं :—

“जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ बाइबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ वैसा सबको करना योग्य है” देखिये भूमिका पृष्ठ ४।

उन्होंने जैनधर्म की तीन बातों की प्रशंसा कर उन्हें ग्राह्य बताया है (१) जीवों पर दया भाव अर्थात् अहिंसा (२) जल छान कर पीना और (३) रात्रि में भोजन न करना हाँ ऐसी बात का विरोध जरूर किया है कि कुरुक्षेत्र में ८४ हजार नदियां है” या ‘गंगा व यमुना नदी की १४-१४ हजार परिवार नदियां हैं” आप स्वयं नक्शे देख कर निर्णय कर लें।

इससे सिद्ध होता है कि श्री स्वामी जी महाराज न तो पक्षपाती थे न दुराग्रही। और न तो उन्होंने किसी की निन्दा की, दिल दुखाने की चेष्टा ही की। वे एक बड़े महापुरुष मानव मात्र के हितैषी, निःस्वार्थ परोपकारी सन्यासी और युग निर्माता थे। वे जिये तो हम सब की भलाई के लिये और मरे भी तो हम सब के लिये ही। उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

—क्रमशः

हिन्दू-संगठन क्यों और कैसे ?

लेखक :—अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

भूमिका लेखक :—प्रो० इन्द्रविद्यावाचस्पति

आर्य-हिन्दू जाति के महान नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक में हिन्दू जाति के पतन का इतिहास और उस पतन को रोकने के लिए उपाय बताए हैं। जो कि प्रत्येक आर्य-हिन्दू मात्र को अवश्य पढ़ने चाहिए। अपनी संस्कृति की रक्षा के उपाय करने में प्रयत्न शील होना चाहिए।

पुस्तक का मूल्य २) से घटा कर १) रुपया कर दिया गया है। शीघ्र मंगालें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

(पृष्ठ २० का शेष)

विविध दुःखात्यन्त निवृत्ति रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। प्यारे देशवासियो! जब वेद पुकार-पुकार कर आपको एक मार्ग दिखलाता है, फिर आप क्यों सम्प्रदाय के झगड़ों को फैलाकर संसार को दुःख देते और वेद विहित कर्म को छोड़कर अधर्म में धर्म की सदा बुद्धि करके दुःख पाते हो, क्यों सर्वोपरि वर्णाश्रमी धर्म को छोड़कर व्यर्थ सम्प्रदायी बखेड़ा करते हो? ब्राह्मणों! अपने ऋषि मुनियों के बनाये धर्म शास्त्रों को निकाल उनके अनुकूल अपने नित्य नैमित्तिक कर्म करने में तत्पर होओ। क्षत्रियो! अपने राजा महाराजों, महाराजा रामचन्द्रादि महानुभावों के अनुकूल आचरण करो। वैश्यों! आप भी अपने पूर्वज धर्मज्ञतलधारवत् सनातन धर्मानुकूल आश्रमों को ग्रहण करो और कनफुकवे गुरुओं की कण्ठी जो बैल की पूंछ के समान सदा दुखदायी है छोड़ दो और धर्म-कर्म को विचारो, तुम्हारी जगत् में प्रसिद्धि है, फिर क्यों धोखा खाकर अपनी जाति की लाज गंवाते हो? देखो धन कमाने में और सुवर्ण के परखने में, जो केवल इस जन्म में कमाने में, तुम्हें थोड़ी सी सहायता देता है, उसमें चित्त लगाते और धर्म विचार में जो इस संसार और दूसरे जन्मों में भी सहायक है, उसकी कुछ भी प्रतीक्षा नहीं रखते, ईश्वर तुम्हें विचार शक्ति दें।

आप के प्रश्न

राम एकबाल सिंह चतुर्भुज वराव

"संस्कार विधि में लिखा है—छुरे की ओर देखकर—ऐ छुरे ! तू धातु का बना है। मेरे बालक की हिंसा मत करना। क्या यह पौराणिकों की मूर्तिपूजा से कम है ? छुरा रहम कर सकता है ?"

—छुरे की ओर देख कर बालक का पिता निम्न मन्त्र का उच्चारण करता हुआ छुरे को हाथ में लेता है। "शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहि ꣳ सीः।" उस्तरे को हाथ में लेकर फिर कहता है "स्वधिते मैनꣳ हि ꣳ सीः।" यद्यपि साधारण तया देखने से यही प्रतीत हो रहा है कि उस्तरे की प्रार्थना की जा रही है परन्तु वास्तविकता यह कि मनसा वाचा कर्मणा तीनों से सम्पादित कार्य ही ठीक सम्पन्न होता है। अतः उस्तरा चलाने से पूर्व उस्तरा चलाने वाला सावधानता पूर्वक देख ले कि इसमें कोई दोष तो नहीं है। गन्दे उस्तरे के स्पर्श से अनेक रोगों की सम्भावना है। अतः भली भाँति उस्तरे को देखे भाले कि कहीं लगने न पाये और रोग कारक न हो। इसी अभिप्राय को लेकर यह लाक्षणिक प्रयोग है कि उस्तरे तू इसकी हिंसा न कर। जिस प्रकार कहा गया है 'मचान चिल्ला रहे हैं, मचान कभी नहीं चिल्लाते। लक्षणा से ज्ञात होता है कि मचान पर बैठे हुए आदमी चिल्ला रहे हैं। इसी प्रकार यहाँ उस्तरे से कहा गया है कि उस्तरे तू इस की हिंसा न कर परन्तु लक्षणा से ज्ञात होता है कि उस्तरे का प्रयोग करने वाले सम्भल कर प्रयोग करे कहीं हिंसा न हो जावे। और जैसे तांगे वाले को बुलाया जाता है तो "ओ तांगे" करके भी बुलाते हैं किन्तु तांगे वाला समझ जाता है कि उसे बुलाया गया है।

सच्चा समय बताने वाली जूलदार घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी

यह घड़ियाँ स्विस मेड (Swiss Made) बिल्कुल ठीक समय बताने वाली बहुत सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और आजकल के फैशन की है। टाइम बिल्कुल ठीक बताती है और ३६ घण्टे की चाबी वाली हैं। हर घड़ी की गारण्टी ५ वर्ष है। सुन्दर तस्मा मुफ्त। हर घड़ी के साथ गारण्टी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है।

नं० ७१ सफेद केस २ जूल २२) सुनहरी २३)
नं० ७२ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २७)
नं० ११ सफेद केस १५ जूल २८) सुनहरी ३०)

वाटर प्रूफ आल प्रूफ रेडियम डायल घड़ियां

नं० २० सफेद, स्टील केस १५ जूल ३७) सुनहरी ४०)
नं० १६ सफेद स्टील केस १७ जूल ४८) सुनहरी ५३)

नं ७ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २८)
नं० ८ सफेद केस १५ जूल ३२) सुनहरी ३५)

अति सुन्दर बढ़िया लेडी घड़ियाँ

नं० १४ सुनहरी केस १५ जूल ४०) नं० १५ सुनहरी केस १७ जूल ४५)

मंगाने का पता—स्वीस वाच कम्पनी.
(वी० पी०) ११६ 'ई' कमला नगर देहली—६

समाज शिक्षा केन्द्रों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लायब्रेरियों पुस्तकालयों गवर्नमेंट टैक्निकल इंस्टीट्यूशनों, बेसिक ट्रेनिंग सेण्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

टैक्नीकल इण्डस्ट्रियल तथा कृषि सम्बन्धी साहित्य

टैक्नीकल साहित्य

१. इलैक्ट्रिकल इंजीनियरिंग बुक	१०)
२. इलैक्ट्रिक गाइड	६)
३. इलैक्ट्रिक वायरिंग	४)
४. इलैक्ट्रिक पैट्रीज	३॥)
५. इलैक्ट्रिसिटी रूल्ज	१)
६. ई० सुपरवाइजर परीक्षा पेपर्स	३)
७. सुपरवाइजर वायरमैन प्रश्नोत्तर	३।)
८. इलैक्ट्रिक परीक्षा पेपर्ज दोनों भाग	६)
९. आयल व गैस इंजन गाइड	१०)
१०. आयल इंजन गाइड	६)
११. क्रूड आयल इंजन गाइड	४॥)
१२. वायरलैस रेडियो गाइड	६)
१३. रेडियो सर्विसिंग (रेडियो मैकेनिक)	६)
१४. घरेलू बिजली रेडियो मास्टर	२॥)
१५. मोटर कार वायरिंग	४॥)
१६. टांका लगाने का ज्ञान	२॥)
१७. छोटे डायनुमो इलैक्ट्रिक मोटर	३॥)
१८. प्रैक्टिकल आरमेचर वाईडिंग	६)
१९. खराद शिक्षा अथवा टर्नर गाइड	३)
२०. वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	३)
२१. खराद तथा वर्कशाप ज्ञान	६)
२२. इलैक्ट्रिक लाइटिंग	६)
२३. स्टीम ब्वायलर्स और इन्जन्स	६)
२४. स्टीम इन्जीनियर्स	१०)
२५. आईस प्लांट (बर्फ मशीन)	४॥)
२६. प्रैक्टिकल घड़ी साजी	४॥)
२७. साईकिल रिपेयरिंग	२॥)
२८. हारमोनियम रिपेयरिंग	२॥)
२९. ग्रामोफोन रिपेयरिंग	२॥)
३०. सिलाई मशीन रिपेयरिंग	२॥)
३१. इलैक्ट्रिक तथा गैस वैल्डिंग	४॥)
३२. फाउण्ड्री प्रैक्टिस ढलाई का काम	६)
३३. इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
३४. वीविंग गाइड	४)
३५. प्रैक्टिकल फोटोग्राफी शिक्षा	२॥)
३६. ट्यूबवैल गाइड	३॥)
३७. A लॉ कास्ट हाउसिंग टैक्निक (हिंदी)	५)
३७. B " " " इंगलिश	५)
३८. A जन्त्री पैमाइश चौब (हिन्दी)	१॥)
३८. B " " " इंगलिश	१॥)
३९. मोटर कार इन्सट्रक्टर	१०)
४०. मोटर ड्राइविंग	४॥)
४१. मोटर साईकिल गाइड	४॥)
४२. मोटर मैकेनिक टीचर	६)
४३. ट्रैक्टर और खेती (ट्रैक्टर गाइड)	६)
४४. सरकिट डायग्राम्ज आफ रेडियो	३॥)
४५. मोटर प्राइमर	१।)
४६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
४७. बिना बिजली का रेडियो	१।)
४८. बच्चों का रेडियो	१।)
४९. बच्चों का टेलीफोन	॥।)
५०. बच्चों के वैज्ञानिक खेल	१।)
५१. लोकल रेडियो सैट	१।)
५२. रेडियो का साधारण ज्ञान	१।)
५३. एम्प्लीफायर लाउडस्पीकर	१)
५४. बच्चों का वायरलैस	१।)
५५. लोकोफिटर गाइड (रेलवे)	१०)
५६. बिल्डिंग कन्सट्रक्शन (गृहनिर्माणकला)	१०)
५७. सोप मेकर्ज गाइड	६)
५८. मेटल पालिश	२।)
५९. फरनीचर बुक	१०)
६०. पम्पिंग गाइड	
६१. जनरल मैकेनिकल गाइड	
६२. ब्लैक स्मिथ लुहार	
६३. स्टीम टरबाईन	
६४. वर्कशाप प्रैक्टिस	

इण्डस्ट्रियल साहित्य

१. रंग साज़ी	२॥)
२. प्लास्टिक गाइड	२॥)
३. बूट पालिश	२॥)
४. अप्टूडेट इंक मास्टर (स्याही बनाना)	४॥)
५. कन्फेक्शनरी	२॥)
६. हेयर आयल (खुशबूदार तेल)	२॥)
७. बेकरीबहार (बिस्कुट, डबल रोटी, केक)	२।)
८. अचार चटनी मुरब्बा	१।)
९. पैन्ट्री का काम	४)
१०. चित्रकारी अथवा मुसव्वरी	४)
११. परफ्यूमरी मास्टर	२॥)
१२. वानिश मास्टर (वार्निश साज़ी)	२॥)
१३. आतिशबाज़ी का व्यापार	२॥)
१४. हलवाई मास्टर	२॥)
१५. तंबाकू का कारोबार (तंबाकू की दुकान)	२॥)
१६. पीन की दुकान	२॥)
१७. छपाई पारचाजात (कैलीकोप्रिंटिंग)	२॥)
१८. कुकरी बुक	४)
१९. व्यापार बढ़ाने की तरकीबें	१॥)
२०. मोमबत्ती का व्यापार	२॥)
२१ डेरी फार्म का व्यापार	२॥)
२२ फिनायलसाज़ी (कीड़े मार दवाइयाँ	२॥)
२३. शीशे बनाना (आईनासाज़ी)	२॥)
२४. धूप अगरबत्ती हवन सामग्री बनाना	२॥)
२५. फेस क्रीम तथा फेस पाउडर बनाना	२॥)
२६. स्लेट और स्लेट लीड पैंसिल बनाना	२॥)
२७. रबड़ की मोहरें बनाना	२॥)
२८. टूथ पेस्ट टूथ पाउडर बनाना	२॥)
२९. गाइड आफ इन्डस्ट्रीज़	६)
३०. सिलाई कटाई गाइड	३।)
३१. सत्य व्यापार लक्ष्मी भण्डार	४॥)
३२. लांड्री टीचर (धुलाई शिक्षा)	२॥)
३३. हरफन मौला	१॥)
३४. साबुन शिक्षा तथा साबुन उद्योग	२॥)
३५. शर्बत विज्ञान	२॥)
३६. बुक बाईंडिंग	३)
३७. दर्जी मास्टर	२॥)
३८. व्यापार दस्तकारी	२॥)
३९. नवीन बृहद् पाक विज्ञान	३)
४०. वीविंग कैल्कुलेशन	२)
४१. सूती ऊनी कपड़ों की रंगाई छपाई	३॥)
४२. कपड़े की बनावट और डिज़ाईन	३॥)
४३ पोल्ट्री फार्मिंग	४)
४४ कॉमर्शियल पोल्ट्री	४)
४५ पोल्ट्री सर्जन	५)

किसान विकास माला सीरीज

रामेश्वर अशांत लिखित १५ पुस्तकें

१. आलू की खेती	॥।)
२. टमाटर की खेती	॥)
३. गोभी की खेती	॥)
४. जीरा, धनिया, अजवाइन	॥।)
५. तरकारियों की खेती	१॥)
६. अच्छे बीज	॥।)
७. अच्छी खाद	२॥)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	॥।)
१०. फूल-फुलवारी	२॥)
११. धान की खेती	१॥)
१२. संतरे की बागवानी	२॥)
१३. आम की बागवानी	३)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५ तम्बाकू की खेती	॥।)
१६. खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
१७. फलों की खेती	३।)
१८ तरकारी साग भाजी की खेती	३॥)
१९. खेती और ट्रैक्टर हिन्दी	६)

(१) केवल चार आने के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेजकर ५००० पुस्तकों का १५० पृष्ठ का बड़ा सूची पत्र मुफ्त मंगायें।

(२) पुस्तकालयों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को पर्याप्त कमीशन। विशेष जानकारी के लिए पत्र-व्यवहार करें।

पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली ६.

सुन्दर सुन्दर पुस्तकें

आधुनिक इंजेक्शन बुक	५)
आधु० एलोपैथिक गाइड	८॥)
स्त्री शिक्षा (चतुर गृहणी)	२॥)
आधुनिक दुखती क० शिक्षा	३)
ऊषा कशीदाकारी	३)
आदर्श कशीदाकारी	३॥)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी (दाई? शिक्षा	३॥)
प्रैक्टि० हिंदी इंग्लिश टी०	५॥)
हिंदी संस्कृत शिक्षा	२)
दर्जी मा० फै० बुक सहित	२॥)
फिल्मी हारमोनियम गाइड	२)
भक्त बाणी	४॥)
राजस्थान का इतिहास	१०)
आर्य समाज के नेता	३)
गीतांजली (टैगोर)	१॥)
वेदान्त छन्दा०स० ५ भाग	२।=)
ज्ञान वैराग्य छन्दावली(१)	॥=)
" " दूसरा भाग	॥=)
वाल्मीकि रामायण भाषा	१२)
महाभारत बड़ा भाषा	१२)
बड़ी भजन पुष्पांजली	१।)
चाणक्य नीति (सटीक)	॥।=)
विदुर नीति (सटीक)	१॥)
भर्तृहरिशतक (सटीक)	१)
कथा पच्चीसी	॥।)
कौटिल्य अर्थशास्त्र	१०)
पंच तंत्र भाषा	३॥)
हितोपदेश भाषा	३)
वैदिक मनुस्मृति	४)
ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२।)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध अखाड़ा ज्ञान	१।)
ब्रह्मचर्य के अनुभव	॥।)
योगासन बड़ा	२॥)
शिवाजी (लाजपतराय)	१॥)
मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
राष्ट्र तप० महाराणा प्रताप	१॥)
हिंदू राष्ट्र के चार महापुरुष	३)
वीर पञ्चरत्न	३॥)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
भारत मां के सपूत	३)
स्वाधीनता के पुजारी	३)
हमारे स्वामी	३)
महर्षि दयानन्द	२॥)
जीवन का आनन्द सम्पूर्ण	४॥)
संन्यासियोंकी गुप्तबूटियां	७)
पैसे पैसे के चुटकले	४॥)
देहाती प्राकृतिक चिकित्सा	५)
संन्यासी चिकित्सा शास्त्र	५)
घर का वैद्य बड़ा	६)
बाल रोग चिकित्सा	१।)
स्त्री " "	१।)
पुरुष गुप्त रोग चिकित्सा	१।)

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रित और प्रकाशित ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलॉ
में

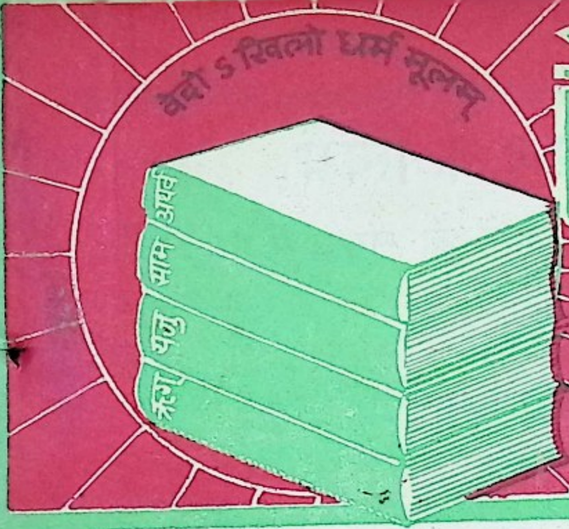

वेद प्रकाश

वर्ष ५
अंक २

भाद्रपद सं० २०१३, सितम्बर १९५६, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

वार्षिक मूल्य २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

सत्संग द्वारा कल्याण प्राप्ति

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सुर्या चन्द्रमसाविब ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ऋ० ५।५१।१५

अर्थ—(सूर्याचन्द्र मसौ इव) सूर्य चन्द्रमा सदृश (स्वस्ति पन्थामनुचरेम) सुख पूर्वक उत्तम मार्ग पर विचरें। उत्तम आचारण का अनुष्ठान करें। (पुनः ददता अघ्नता जानता संगमेमहि) बार २ दानी-ज्ञानी अहिंसक की संगति करें।

हे ईश्वर ! कल्याण के मार्ग में सूर्य और चन्द्र के सदृश आनन्द से हम लोग विचरें। सहायता देने वाले, किसी को दुःख न देने वाले विद्वानों के साथ हम मेल करें।

सूचना—जिन ग्राहकों के पते की चिट पर ० इस प्रकार का लाल स्याही का चिन्ह हो वे कृपया अपना चन्दा शीघ्र भेजें।

--व्यवस्थापक

ईसाईयत को रोकने के लिये

लागत से भी कम मूल्य वाले ट्रैक्ट हजारों की संख्या में मंगाइये

१—ईसाई-मत-खंडन-(स्व. स्वामी दर्शनानन्दजी कृत) पृष्ठ १६, मूल्य एक पैसा, १५॥=) हजार।

२—ईसाई-पादरियों से प्रश्न-(स्व. दर्शनानन्दजी कृत) पृष्ठ १६, मूल्य एक पैसा १५॥=) हजार।

३—ईसाई-मत-पोल प्रकाश—(पं. शांतिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी) पृष्ठ ३२, मूल्य दो पैसा, ३०) रु० हजार।

नोट—१—अपने रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।
२—रजस्ट्री के लिए ।।।) बारह आना अधिक भेजें।
३—मूल्य अगाऊ मनी आर्डर से आना चाहिए।
४—तीनों ट्रैक्ट १-१ हजार केवल ५५) रुपये में। आज ही मंगाइये-रोकें ईसाईयत को।

व्यवस्थापक-वैदिक प्रकाशन केन्द्र, गाज़ियाबाद।

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

मोमबत्तियाँ बनाना	३।)
आयल इन्जन गाइड	६)
सुगन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
सिनेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
सुगन्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ज्योतिष शास्त्र	६)
कान्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
बूटपालिश बनाना	३।)
मोटर मिकेनिक गाइड	६)
आइसक्रीम बनाना	३।)
इन्जेकशन बुक	५)
कम्पाउन्डरी शिक्षा	३॥)
सचित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
रबर के गुब्बारे बनाना	३।)
ट्रैक्टर गाइड	६)
इलैक्ट्रिक गाइड	६)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	५)
रोशनाईसाजी	३।)
फोटोग्राफ़ी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रंगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४॥)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२॥)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३॥)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३॥)
बैट्री विज्ञान	२।।)
सरल हिन्दी इँग्लिश टीचर	२॥)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२॥)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२॥)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४॥)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।।।)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२।।।)
स्वर्णकार शिक्षा	२।।।)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रिस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	
बिजली मशीन मास्टर	
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	
आतिशबाजी	३
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१
श्री प्रेमसागर सचित्र	
श्री सुखसागर	१
श्री राधेश्याम रामायण	
श्री वाल्मीकि रामायण	२
महाभारत सम्पूर्ण	१

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

गाने का पता :—

एल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

देवों की इच्छा का विघात नहीं होता

[लेखक—वेद शास्त्रज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती]

ओ३म् । यथा वशन्ति देवास्तथेंदसत्तदेषां नकिरा मिनत् ।

अरावा चन मर्त्यः ॥ऋ ८।२८।४

(देवाः) देव, निष्काम महात्मा (यथा) जैसा (वशन्ति) चाहते हैं, (तद्) वह (तथा+इत्) वैसे ही (असत) होता है। (नकिः) नहीं कोई (एषाम्) इन (आ+मिनत) विघात कर सकता, (चन) चाहे वह (अरावा) विरोधी (मर्त्यः) मनुष्य हो'।

देव=दिव्यगुण युक्त । दिव्य का अर्थ है जिसे चाहते तो सब हों किन्तु प्राप्त सब को न हो सके । अर्थात् असाधारण लाकात्तर गुणां वाले पदार्थों को देव सँज्ञा हैं। अथवा यास्काचार्य्य जी के अनुसार—

देवो दानाद् द्योतनाद् दीपमाद वा (निरुक्त)=जो दान करें, चमके, चमकावे, वह देव।

दाता, प्रकाशमान और प्रकाशक पदार्थ देव हैं। ये जड़ चेतन सभी हो सकते हैं। सूर्य्य प्रकाश तथा जीवन देता है; स्वयं प्रकाशमान है, अन्यों का प्रकाशक भी है, अतः वह देव है। एक ज्ञानी जो ज्ञानदान के आवश्यक कार्य में लगा है, वह भी देव है ।

इस मन्त्र में देव से दिव्यगुण वाले चेतन मनुष्य अभिप्रेत हैं । क्योंकि—

यथा वशन्ति देवाः (जैसे देव चाहते हैं) कहा गया है। चाहना=इच्छा चेतन का धर्म्म है ।

अचेतन में इच्छा होती ही नहीं । अतः यह इच्छा करने वाले चेतन ही हैं।

वैसे भी देव शब्द का एक अर्थ 'विजिगीषु' [विजय की इच्छा वाला] होता। इच्छा के साथ थोड़ा बहुत ज्ञान भी होता है। अतः ब्राह्मणों में "विद्वांसों हि देवाः" कहा गया है—

दिव्यगुणकर्म्मस्वभाव वाला जो चाहे उसके होने में कोई आश्चर्य नहीं है। अतः कहा है—

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत् जैसे देव चाहते हैं, वैसे ही हो जाता है।

देवों का एक प्रधान गुण ऋत=सत्य आचरण है । योगदर्शन के भाष्य में सत्यवादी की महिमा बताते हुए कहा गया है—अमोघास्य वग् भवति=इसकी वाणी निष्फल नहीं होती। अर्थात् सत्यवादी योगी जो कुछ कहता है, वह होकर रहता है। वेद इतना ही नहीं कहता। वरन् इससे भी अधिक वहता है--

तदेषां नकिरा मिनत् अरावा चन मर्त्यः—

उनकी उस इच्छा का विघात कोई नहीं कर सकता, चाहे वह उनका विरोधी भी हो।

वेद में अनेक स्थानों पर वणित है कि देवों के व्रत को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता । सचमुच सत्यव्रत देवों के कर्म्म में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता।

(स्वाध्याय सन्दोह)

हे देव मेरे देव !

श्री महावीर प्रसाद मिश्र 'निरीह'

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयुः श्रवः ॥

(हन्तो) तो फिर (इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (नु) अब (किं) क्यों (आससे) बैठे हो ? (नः) हमारे (रथं) रथ को (प्रथमं) सबसे आगे, प्रथम स्थान पर (कृधि) कर दो। (वाजयुः) वाज [बल, ज्ञान] चाहता हुआ (श्रवः) ऐश्वर्य तो (उपमं) तुम्हारे पास [विद्यमान ही है]।

कब से मैं तुमको रहा टेर टुक सोचो कितनी हुई देर।
अब तो न रहो यों उदासीन अब तो देखो इस ओर हेर ॥
हे देव, मेरे देव !

कितने मुझसे पहुँचे आगे कितने जाते आगे भागे।
पर अब भी तुम होते न सजग जागो, सोई किस्मत जागे ॥
हे देव, मेरे देव !

अब उठो, न जिससे और यहां मैं रहूं, मुझे ले चलो वहाँ।
सबसे पहले निज रथ पाऊँ सबसे आगे मैं शीघ्र जहाँ ॥
हे देव, मेरे देव !

तुम शक्तिमान, तुम ज्ञानवान तुम ऐश्वर्यों की सकल खान।
भरदो धरदो मुझमें अपनी सबकी सब जो निधियाँ महान ॥
हे देव, मेरे देव !

मैं जिससे मानव-धर्म पाल, सब तोड़ विश्व बन्धन कराल।
बन राम कृष्ण जगती में तुम में लय हो जाऊँ कृपाल ॥
हे देव, मेरे देव !

॥ गीत श्रद्धांजलि ॥

सम्पादक–रामावतार (वीर) संगीताचार्य

इस पुस्तक के दो खण्ड हैं, प्रथम खण्ड में प्रसिद्ध २ आर्य भजनिकोंके चुने हुए भजन एवं कविताओं का संग्रह है। दूसरे खण्ड में भारत के नामी प्रसिद्ध २ कवि यथा श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद मैथिली शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा नन्दन पंत, महादेवी वर्मा, बालकृष्ण नवीन, रामनरेश त्रिपाठी, सूर्यकान्त त्रिपाठी (निराला) जी आदि की चुनी हुई, देश जाति विषयक प्रभावशाली-कवित्वाओं के साथ सब कवियों का संक्षिप्त परिचय भी है।मूल्य मात्र १।=)

॥ अनुरागरत्न ॥

आर्य कवि श्री नाथूराम शंकर शर्मा कविताओं का सुन्दर संग्रह सम्पादक श्री हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न)

अनुरागरत्न की कविताएं भिन्न २ ललित छन्दों य वृत्त में लिखी गई हैं तथा काव्य चमत्कृति से परिपूर्ण हैं। स्वदेश और वैदिक धर्म सम्बन्धी अनुराग के अनेक उपदेश इस में भरे हैं, मूल्य २॥) मात्र शीघ्र मंगावें बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं।

मिलने का पत्ता—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

क्या हम जीवित हैं !

(स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती)

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । प्रशिषं यस्य देवा यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

यजुर्वेद, अध्याय २५, मंत्र १३ !

इस वेद मन्त्र में ईश्वर जीवों को इस बात का उपदेश करते हैं कि किस प्रकार से मनुष्य मृतक (मुरदह) कहलाता है ? और किस प्रकार से अमृत होता है ?

अर्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्मा का देने वाला है ?

यहां प्रश्न होता है कि जब जीवात्मा नित्य है, तो उसका देने वाला परमात्मा कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि आत्मा शब्द के अर्थ व्यापक के हैं, जब तक व्याप्य न हो तो वह व्यापक कहला ही नहीं सकता, इसीलिए शरीर के बिना उसको जीव तो कह सकते हैं, किन्तु जीवात्मा उस दशा में कहलाएगा, जब कि शरीर में व्यापक होगा । कतिपय मनुष्य यह शङ्का करेंगे कि शरीर तीन हैं ? प्रथम—स्थूल शरीर, दूसरा—सूक्ष्म शरीर, तीसरा—कारण । यद्यपि स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर उत्पत्ति वाले होने से अनित्य हैं, उनकी उत्पत्ति से प्रथम तुम उसे जीवात्मा न कहो, क्योंकि जिसमें आत्मा व्यापक रहे, वह शरीर विद्यमान् नहीं, परन्तु कारण शरीर में व्यापक होने से वह आत्मा के देने वाला बतलाया है, वह सत्य नहीं । इसका उत्तर यह है कि कारण शरीर सब जीवों का समान है, इसमें कोई शान्त आत्मा व्यापक नहीं कहला सकता । जीव को जो आत्मा कहा जाता है, वह स्थूल शरीर में व्यापक होने के कारण कहते हैं अथवा सूक्ष्म शरीर होने से तो परमात्मा ही व्यापक कहला सकता है ।

(बलदा) जो बल का देने वाला ।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार "गवर्नमेन्ट" का तीस रुपये का एक चपरासी बड़े से बड़े धनी को ले आता है, यद्यपि उन धनी के दशों भृत्य विद्यमान् रहते हैं, कुटुम्बी जन भी विद्यामान् रहते हैं परन्तु किसी को उस चपरासी के दूर हटाने की शक्ति नहीं होती । बताओ चपरासी में यह बल कहां से आया ? कहना होगा कि राजा की नौकरी से, इसी प्रकार जो परमात्मा के नियमों पर चलते और उसके आश्रय पर रहते हैं, उनमें भी यह बल आ जाता है कि समस्त सृष्टि का सामना कर सकते हैं, सृष्टि उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती ।

श्री स्वामी शंकराचार्य तथा श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का वृत्तान्त किसी से गुप्त नहीं, इन महात्माओं के पास ईश्वरीय नियमों के जानने के अतिरिक्त तथा उनके अनुसार आचरण करने के अतिरिक्त और क्या था ? समस्त संसार के मनुष्य उनसे विरोध करते रहे तो भी कार्य्य सिद्धि की ।

(यस्य विश्व उपासते) जिसकी समस्त सृष्टि के विद्वान् प्रशंसा करते हैं, जो सब जगत् का अन्तर्यामी हैं ।

(यस्यच्छायाऽमृतम्) जिसकी छाया अर्थात आज्ञानुसार चलना ही (अमृतम्) मुक्ति का कारण है, (यस्य मृत्यु) जिसकी आज्ञा के अनुसार न चलना ही (मृत्यु) अर्थात दुःख का हेतु है ।

(कस्मै) आनन्द के लिये (देवाय हविषा विधेम) उसी परमात्मा की उपासना कर्त्तव्य है ।

जब कभी मैं इस मन्त्र के विषय पर विचार करता हूँ, तो मेरे हृदय में यह प्रश्न होता है कि "क्या मैं जीवित हूं ? या क्या हम जीवित हैं ?" मेरे बहुत से मित्र इस प्रश्न को सुनते ही कहेंगे कि यह एक विचित्र पागल उपहासक है कि जो बोलता है; खाता पीता चलता है, फिर भी कहता है कि हमारे

जीवित होने में सन्देह है, परन्तु हमारे वे मित्र कुछ गम्भीरता के साथ विचारें तो उन्हें स्वयम् भी अपने विषय में यही सन्देह उत्पन्न होगा !

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या बोलने वाला जीवित नहीं ? क्योंकि बहुत से मतवाले बोलता पुरुष मानते हैं, परन्तु सोचना चाहिए कि यदि बोलने का नाम ही जीवित होना होता तो हमारा शब्द तो कदाचित् दस व बीस गज पर्य्यन्त जा सकता है, परन्तु इंजन जिसका शब्द अनेक कोस पर्य्यन्त जा सकता है, तो वह अवश्य ही जीवित कहला सकता है। परन्तु इस स्थान पर कहा जाता है कि इंजन तो केवल अनर्थक शब्द करता है, परन्तु जिस शब्द में सार्थक वाक्य निकलें, वह जीवित होने का चिन्ह है

ऐसा मानने पर भी अर्गन बाजा और फोनोग्राफ को जीवित मानना पड़ेगा। क्योंकि उनमें से निर्विघ्न शब्द तथा राग निकलते हैं, परन्तु इस अवसर पर वादी कह सकता है कि इनमें जो कुछ भर दिया जाता है, वही शब्द प्रकट होता है, तो उसका उत्तर यह है कि यदि वादी सोच कर देखे तो वह आप भी वही शब्द और वाक्य विचार वाणी से निकाल सकता है कि जो उसमें भरा है। क्या जिस भाषा को वादी ने नहीं पढ़ा, उसके शब्द बोल सकता है अथवा जिस विद्या को, सिद्धान्त को नहीं सीखा, उसको बतला सकता है ? कदापि नहीं। इस कारण यह बात फोनोग्राफ और मनुष्य के तुल्य है। सिद्ध हुआ कि बोलने के कारण फोनोग्राफ जीवित नहीं कहला सकता, इसी कारण बोलने से हम भी जीवित नहीं कहला सकते।

यदि कोई कहे कि हम चलते हैं तो क्यों जीवित नहीं तो इसका उत्तर यह है कि आप तो घण्टे में दो वा तीन मील जा सकते हैं, परन्तु इंजन एक घंटे में चवालीस से ८० मील पर्य्यन्त सहस्रों मन भार लेकर चला जाता है, तो उसे जीवित कहना चाहिये, परन्तु इंजन को कोई जीवित नहीं कहता। आप कहेंगे कि हम खाते हैं, पीते हैं, जीवित क्यों नहीं ? परन्तु हम तो अधिक से अधिक सेर भर खा सकते हैं, परन्तु वहां इंजन सहस्रों मन कोयला खा जाता है और सहस्रों मन पानी पी जाता है, तो इतना खाने पीने पर भी इंजन को जीवित नहीं कहते तो सेर भर खाने या पीने वाले को किस प्रकार जीवित कहेंगे ?

पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट प्रकट होता है कि खाने पीने, बोलने चालने का नाम जीवित होना नहीं, किन्तु जीवित होना इन से कोई पृथक वस्तु है, क्योंकि यह गुण तो जड़ वस्तु में भी पाये जाते हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि इन बातों का नाम जीवित होना नहीं, तो किस बात का नाम जीवित होना है ? इसका उत्तर यह है कि जीवात्मा (स्वतन्त्र) की सत्ता का नाम जीवित होना है, इसलिये कि इंजन में भी एक ड्राइवर विद्यमान है, जिसके कारण इंजन चलता खाता पीता बोलता है और जैसे ड्राइवर चलाता है, वैसे ही इंजन चलता है। यदि ड्राइवर जीवित हो, तो इन्जन उसके आधीन होगा कि जहां चाहे नियमानुसार ठहरादे, चाहे पीछे लौटा दे; परन्तु जब ड्राइवर चलती हुई गाड़ी में मर जाये, तो ड्राइवर ही इंजन के आधीन हो जावेगा। उस समय ड्राइवर इंजन का ठहराना ड्राइवर के आधीन नहीं रहेगा किन्तु जहाँ इंजन ठहरेगा, वहीं ड्राइवर को भी ठहरना होगा।

बस इस दृष्टान्त से स्पष्ट सिद्ध होता है कि 'यह शरीर जो इंजन के समान है और जीवात्मा ड्राइवर के समान है। यदि जीव के आधीन शरीर और उसके समस्त प्रदेश (मन इन्द्रियाँ) हैं तो वह जीवित है।' यदि मन इन्द्रिय और शरीर के आधीन जीव है, तो वह मृतक है। दूसरा चिन्ह जीवित मृतक का यह पाया जाता है कि जीवित अपने शरीर की किसी वस्तु को पृथक् नहीं होने देता। यदि किसी जीवित के शरीर से एक भी बिन्दु रक्त की निकल जावे तो वह घबरा जाता है। स्वेच्छा से रक्त का निकलना स्वीकार नहीं करता तथा बाह्य वस्तुओं को पचा जाता है; परन्तु मृतक की दशा इसके विरुद्ध हुआ करती है, वह बाहर की वस्तुओं को पहिचान नहीं सकता और उसके शरीर में से कितना ही भाग निकल जावे; उसे उपेक्षा रहती है। बहुत से मनुष्य यह कहेंगे कि यह इंजन का दृष्टांत शरीर के तुल्य नहीं, क्योंकि यह मन गढ़न्त है।

इसका उत्तर यह है कि जो सम्बन्ध जीवों का और शरीर का इस स्थान पर बतलाया है, कठोपनिषद् में भी लिखा है :—

"आत्मानं रथिम्बिद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धितु सारथिं बिद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
कठोप० अ० १ व० मं० ३ ॥

अर्थ—यह शरीर एक गाड़ी है और जीवात्मा इस गाड़ी में बैठकर चलने वाला पथिक है, बुद्धि सारथी है, इन्द्रिय घोड़े हैं तथा मन (प्रग्रह) अर्थात् बागें हैं।

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह शरीर रूपी गाड़ी जीव को अभीष्टोद्देश्य पर पहुँचाने के लिये दी गई हैं। जो, जीव अपने को शरीर के अधीन कर लेता है, वह वास्तव में मृतक है, इस कारण कि हम अहर्निश शरीर के आधीन रहते हैं, इस लिये मृतक हैं, जीवित नहीं। यदि हम में जीवन होता तो हमारे ६ कोटि भाई यवन तथा ३० लक्ष क्रिश्चियन न हो जाते। हमारे धर्म-रूपी काया में से इतने भाग का निकल जाना और हम में भी दूसरी जातियों की सम्मिलित शक्तियों का न होना स्पष्ट मृतक होने का प्रमाण है। यही कारण है कि हम अपने हृदय में किसी कार्य्य को पूर्ण करने की तथा उसका निर्वाह करने की शक्ति ही नहीं रखते, यद्यपि जड़, प्रकृति, चेतन जीवात्मा का किंकर है तथापि मृतक होने के कारण हम ही प्रकृति के दास बन गये। न तो हमें अपने परिश्रम पर विश्वास है न ही अपने भाइयों की सहायता पर विश्वास है। ईश्वर का विश्वास तो होने ही क्यों लगा था। क्योंकि वेद मन्त्र में स्पष्ट बतला दिया है कि जो ईश्वर के आश्रय पर रहता है, वह मृतक है। जो ईश्वर को त्याग देता है, वह मृतक है, क्योंकि हम लोगों ने ईश्वर के स्थान में प्रकृति का आश्रय लिया है।

यदि धन न हो तो हमारा कोई काम दृढ़ ही नहीं, जो ईश्वर के नियमानुसार न होने से उसके आश्रय पर हम किसी काम को दृढ़ ही नहीं समझते।

इसीलिए हम सरल मार्ग को छोड़ कर वाम अर्थात् उलटे मार्ग पर चलने लगे हैं।

कतिपय मनुष्यों को यह शंका होगी कि हम वाममार्गी कैसे हैं ? न हम मद्य पीते हैं, न मांस खाते हैं। परन्तु स्मरण रक्खो कि शास्त्रकारों ने स्त्री को पुरुष का वाम भाग बतलाकर समस्त रचना को दो भागों में विभक्त कर दिया।

जिस प्रकार वाम और दक्षिण दोनों विरोधी हैं। (जो वाम है वह दक्षिण नहीं तथा जो दक्षिण है वाम नहीं)।

जिस कारण से कि प्रकृति परमात्मा के विरुद्ध गुण युक्त हैं। परमात्मा चेतन है उसकी उपासना से ज्ञान बढ़ता जाता हैं, जड़ है, उस की उपासना से ज्ञान-ह्रास होता है; परमात्मा सर्वशक्तिमान है, उसकी उपासना से जीव का बल बढ़ता है। प्रकृति निर्बल है उसकी उपासना से शक्तिह्रास होती है। इस प्रकृति और परमात्मा को बहुत से मनुष्यों ने विष्णु तथा लक्ष्मी के नाम से बतलाया। किसी ने शिव तथा शक्ति के नाम से कहा अर्थात् शिव के मानने वाले दक्षिण मार्गी, और शक्ति के मानने वाले वाम मार्गी हैं। जिस कारण कि हम लोगों ने भी आर्य एवं वेदोक्त मार्ग को छोड़कर वाम-मार्ग को स्वीकार कर लिया, इसलिये धर्म-रूपी जीवन से शून्य होकर मृतक हो गये।

अनेक जन आग्रहपूर्वक अपने को महात्मा मानते हैं, यह साक्षात वेद के विरुद्ध है। क्योंकि यजुर्वेद ४० वें अध्याय में स्पष्ट लिखा है :—

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितन्मुखम्।'

अर्थ—आभासामयओं के इच्छा-रूपी आवरण से सत्यता का मुख आवृत हुआ है, यदि तुम चाहते हो कि सत्य धर्म को प्राप्त होकर उन्नति को प्राप्त हो तो उस पर्दे को उठा दो। क्योंकि इस आवरण की उपस्थिति में सत्य-धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता और सत्य धर्म के ज्ञान बिना तदनुसार आचरण नहीं हो सकता, एवं आचरण के बिना जीवन नहीं हो सकता।

(शेष पृष्ठ [illegible] पर)

स्त्री-पुरुष के अधिकारों का संघर्ष भयंकर सिद्ध होगा

मुनिश्री नगराज के प्रवचन : दो सौ छात्राओं द्वारा साहसपूर्ण प्रतिज्ञा

विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह के तीसरे दिन इण्डियन एज्युकेशनल इन्स्टीट्यूट में आयोजित एफ. ए. और बी. ए. की छात्राओं की एक सभा में भाषण करते हुए मुनिश्री नगराजजी ने कहा–"आज के युग में नारी और पुरुष के संघर्ष को काफी बढ़ावा मिला है, जो अतीत में कभी नहीं था। एक समय था जब यहां नारी के लिये पुरुष ने और पुरुष के लिए नारी ने अपना सर्वस्व बलिदान किया। आज अगर पुरुष और नारी के अधिकारों के संघर्ष की विचारधारा प्रसारित होती रही तो इससे घर-घर में विग्रह की लहर दौड़ जायेगी और नारी तथा पुरुषके अधिकारों का संघर्ष संसार में सब से अधिक भयंकर सिद्ध होगा। भारतीय संस्कृति का सन्देश हमेशा प्रेम सौजन्य और अहिंसा रहा है। यदि जीवन के इन नैतिक पहलुओं को प्रश्रय दिया गया तो संघर्ष की यह छोटी मोटी दीवारें अपने आप ढह जायेंगी। बहिन आन्तरिक और बौद्धिक विकास की तरह चारित्रिक विकास को स्थान देंगी तो उनका जीवन सादा, सदाचारी और सात्विक बनेगा।

सभा में उस समय बड़ा आकर्षक दृश्य हुआ जब मुनि श्री नगराजजो ने विद्यार्थी अणुव्रतों का समझाते हुए "रुपये आदि के ठहराव से विवाह सम्बन्ध नहीं कराऊंगा" इस व्रतकी सुविस्तृत व्याख्या की। मुनिश्री ने कहा—यह प्रतिज्ञा बहुधा मैं छात्रों से ही लिया करता हूँ। छात्राओं के द्वारा इस प्रतिज्ञा का वहन वर्तमान वातावरण में अत्यन्त कठिन लगता है। इसलिये आपको मैं यह भावना ही दे देता हूं। इस पर छात्राओं ने कहा—"हम अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिये भावनायें ही नहीं प्रतिज्ञायें लेंगी। हम ठहराव के साथ हुए विवाह सम्बन्ध की अपेक्षा कुमारापन अच्छा समझेंगी।

मुनिश्री ने कहा—"यदि छात्राओं में ऐसा साहस हो तो मैं कहता हूँ यह प्रतिज्ञा आप अवश्य लें। इससे बढ़कर इस समस्या का सुन्दर समाधान दूसरा नहीं। तदनन्तर एफ. ए. और बी. ए. में पढ़ने वाली लगभग दो सौ छात्राओं ने पूर्ण उत्साह और उच्च स्वर से प्रतिज्ञा ली—"हम रुपये आदि के ठहराव से विवाह सम्बन्ध नहीं करायेंगी।"

पांच सौ छात्राओं द्वारा प्रतिज्ञा

अणुव्रत सप्ताह के दूसरे दिन मुनिश्री नगराज जी ने कमर्शियल हायर सेकेण्डरी के विद्यार्थियों में प्रवचन किया। मुनिश्री ने विद्यार्थी अणुव्रतों का सुविस्तृत विवेचन किया। फलस्वरूप पांच सौ विद्यार्थियों ने धूम्रपान, मद्यपान व परीक्षाओं में अवैधानिक तरीके न अपनाने की प्रतिज्ञायें कीं।

नवभारत टाईम्स से साभार)

वेदप्रकाश के पिछले वर्षों के बृहद् विशेषांक

सचित्र बाल्मीकि रामायण

सचित्र धारावाही हिन्दी में संस्कृत सहित, समाज में, घर में सत्संग में कथा करने योग्य तथा विवाहादि अवसरों पर उपहार देने योग्य ग्रन्थ। मूल्य १२)

रियायती मूल्य ८) थोड़ी ही प्रतियां बची हैं शीघ्र ही मंगावें। दशहरे तक डाक खर्च माफ।

सचित्र दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

इस पुस्तक में स्वामी दयानन्दजी की २० पुस्तकों का संग्रह है। विशेषता यह है कि प्रत्येक पुस्तक के साथ पुस्तक का इतिहास भी है लगभग ४०० पृष्ठों और स्वामी जी के ७ असली फोटो सहित पुस्तक का मूल्य ४॥) रियायती मूल्य ३॥) रुपये, डाक खर्च माफ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

आराम हराम है

(लेखकः—महात्मा चन्द्रानन्द वानप्रस्थी पूर्व चाँदकरण शारदा, अजमेर)

पुरानी सामाजिक व्यवस्थायें बड़ी तेजी से बदल रही हैं। आर्थिक संगठन डांवाडोल स्थिति में हो रहा है। मनुष्यों के संस्कार बदल रहे हैं, नये विचार जड़ पकड़ते जा रहे हैं। संघर्ष और विप्लव ने हमें चारों ओर से घेर रखा है। फलतः हमारी समस्यायें जटिल होती जा रही हैं और इन समस्याओं को सुलझाने के लिए नये समाज की कल्याणकारी भावनायें जागृत हो रही हैं। मनुष्य जीवन की समस्याओं और भावनाओं को मनोवैज्ञानिक तरीकों से हल करना चाहता है। कोई भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि के जाल में फंसकर समस्या को सुलझाने के बजाय उलझा रहा है। कोई दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास पढ़कर बौद्ध-जातकों का अध्ययन कर पौराणिक कथा आख्यायिकाओं को सुनकर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर जीवन के यथार्थ चरित्र का चित्रण कर रहा है। कोई जमींदारों, तालुकदारों, राजा-महाराजाओं, महाजन-मजदूरों, किसानों की सुख-दुःख की कहानियाँ सुनाकर जीवन की समस्याओं को हल करने की धुन में लग रहा है।

इस प्रकार भारत संक्रांतिकाल में से होकर गुजर रहा है। जमाना द्रुत-गति से बदल रहा है। साम्यवाद, पूंजीवाद के तथा उपनिवेशवाद के झगड़े, रूस और अमेरिका की परस्पर की घुड़दौड़ में रोमांचकारी नित्य नई घटनायें हो रही हैं। जमींदारी उन्मूलन हो गया। राजा, महाराजा, ताल्लुकदार मिट गये। सेठ, साहूकार, मिल-मालिक दिन प्रतिदिन खत्म हो रहे हैं, फिर भी किसान और मजदूरों की दुर्दशा है। बेरोजगारी, रोटी, कपड़े, मकान, दवादारू की समस्यायें ज्यों की त्यों खड़ी हुई हैं। सामाजिक रीति-रिवाज अन्दर ही अन्दर समाज को खोखला कर रहे हैं। निर्धन की कन्याओं के विवाहों की समस्यायें ज्यों की त्यों दहेज के रूप में खड़ी हैं। शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने की बातें तो सब करते हैं, परन्तु कार्यरूप में शून्य के बराबर प्रगति हुई है।

प्रश्न उठता है कि उपरोक्त माननीय आशा-निराशाओं का कैसे समाधान किया जाय। मनुष्य दीवा-रात्रि, सुख-दुःख, उत्थान-पतन की विषम परिस्थितियों में बहता चला जा रहा है और निराश होकर नैतिक निर्बलता में फंस जाता है। फलतः अवसरवादी, रिश्वतखोर, चोरबाजारिया, छली-कपटी बनता जा रहा है। और युवतियां पश्चिमी बहाव में बहकर सदाचारहीन, व्यभिचारिणियाँ बनती चली जा रही हैं।

प्राचीन सतित्व के आदर्श, पति-पत्नी के प्रेम की भावनायें, त्याग-तप बलिदान के उच्च आदर्श सब ताक में उठाकर रख दिये गये हैं। प्रश्न यह है कि किस प्रकार भारतीय युवक-युवतियों को आदर्श मानव बनाया जाय। किस प्रकार उनका आदर्श, सदाचार निर्माण किया जाय? किस प्रकार प्राचीनकाल के समान वे ऐसे दृढ़व्रती बनें कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में पड़कर भी आजकल के समान अवसरवादी, दुश्चरित्र बनकर कर्तव्यच्युत न हों? सारा संसार ही इस समय वायुयान आदि के कारण अत्यन्त निकट आ गया है और एक प्रकार से भारत की समस्यायें, संसार की समस्यायें बन गई हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इस वसुन्धरा की गोद में ठहरने वाले मानव का सुधार कैसे हो। हम उनके चरित्र-बल को किस उपाय से उन्नत करें ताकि उनके निराश हृदयों में आशा का संचार हो। उनका कुशल जीवन बनाने के लिये और उनको सुखी और शांत-

चित्त रखने के लिये तथा तीसरे महायुद्ध की तलवार जो उनके सिर पर हर पल और हर घड़ी लटक रही है, उससे कैसे छुटकारा दिलाया जाय।

भारत में देश के विभाजन के पश्चात् निम्न मध्य-वर्गीय जीवन महान दुःखमय होता जा रहा है। प्रश्न यह है कि हम कैसे उनके जीवन को सुखद बनावें ? हम प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व तथा सामाजिक जीवन किन उपायों से सुखमय और कलामय "सत्यं शिवं सुन्दरं" के आदर्शों वाला बनावें। हम कैसे उनको समझावें कि इस संक्रांतिकाल में प्रत्येक भारतवासी हमारे प्रधान मंत्री जी पंडित जवाहरलाल नेहरू के "आराम-हराम है" के नारे को कार्यरूप में परिणित करें। प्रत्येक भारतवासी परिश्रमी और स्वावलम्बी बनकर स्वाभिमान से सिर उठाकर चलना सीखे और हर तरह की कठिनाई का मुकाबला करके देश हितार्थ द्वितीय पंच-वर्षीय योजना को सफल बनाने में दत्त-चित्त होकर जुट जाय।

प्रश्न यह है कि हमारे नव युवक-युवतियों को आरामतलबी तथा व्यभिचार पूर्ण सिनेमाओं से हटाकर धर्मपरायण कैसे बनावें ? हमारी सरकार को चाहिये कि अच्छे उपदेशकों को रखकर घर-घर में सदुपदेश देकर धर्म-भावनायें जागृत करें, ताकि मनोविज्ञान द्वारा लोगों में आरामतलबी नाच-रंग से चित्त हटाकर पुरुषार्थ और कर्मयोग के प्रति उनकी भावनायें जागृत हों। हमारे उपदेशक घर-घर में जाकर छोटे-छोटे बच्चों को कर्मवीरों की कहानियाँ सुनाकर सबको पुरुषार्थी और कर्मयोगी बनावें और भारत के घर-घर में "आराम हराम" का मूल मंत्र फैला दें।

आजकल सौ में से निन्यानवें नवयुवक और नवयुवतियाँ यही नहीं जानते कि उनके जीवन का लक्ष्य और मुख्य-ध्येय क्या है ? बहुत से पुराण-पंथी तो अभी तक "ब्रह्मजीव की एकता में पड़कर संसार के प्रत्येक पदार्थ को ब्रह्म समझ कर पुरुषार्थहीन बन रहे हैं" वे अभी तक 'तत् त्वम् असि" और "सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन," के उपनिषद् वचनों को सामने रखकर दुःखसागर में अद्वैत के नाम से गोते खा रहे हैं। वे अज्ञानी लोगों को यही कहते फिरते हैं कि सत पदार्थ रूप ब्रह्म तुम ही हो, अतः तुम अपने को ब्रह्म समझ कर संसार में निठल्ले बैठकर मौज करो। इन उपदेशों का नतीजा यह होता है कि ये शरीर से तथा आत्मा से निर्बल होकर पुरुषार्थहीन बनकर प्रतिकार का सब पुरुषार्थ खो देते हैं और दूसरे धूर्त-जनों, चोर-लुटेरों और हिंसक पशुओं को ब्रह्म समझ कर प्रेम-जाल में फंस जाते हैं। चोर-लुटेरे इनके धन को लूट लेते हैं। ये अनेक अत्याचार सहते हैं और अन्त में दुःख सहते-सहते जीवन को निःसार समझकर आत्म-हत्या कर लेते हैं। ऐसे लोगों के लिये महर्षि दयानन्द ने कहा कि "जगत् मिथ्या नहीं है।" और जो लोग यह कहते हैं कि "जगत् मिथ्या है" और "ब्रह्म सत्य है" उनसे पूछना चाहिये कि आप और आपका वचन जगत में है या नहीं। यदि है तो जगत के मिथ्या होने से आप और आपका वचन मिथ्या ठहरा। इससे जगत सत्य सिद्ध होता है।

जगत मिथ्या होता तो ऋषि लोग धर्म के लक्ष्य में सांसारिक उन्नति अभ्युदय को क्यों स्थान देते ? अतः जगत का मिथ्यापन किसी भी युक्ति और प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। यदि जगत मिथ्या है तो इस बात का उपदेश करने वाले क्यों ऊंची-ऊंची अट्टालिकायें बनाते हैं ? क्यों लाखों, करोड़ों की सम्पत्ति बटोरते हैं ? हाँ, यदि मिथ्या का अर्थ परिवर्तनशील, एक रस न रहने वाला, तो यह ठीक है। हजारों वर्षों बाद स्वामी दयानन्द ने ललकार कर कहा कि जगत सत्य है, मिथ्या नहीं है। अतः अपने शरीर की उन्नति करो, समाज को उठाओ और देश को बचाओ।

जो महाशय यह कहते हैं कि सब कुछ ब्रह्म है। उसका प्रतिफल यह होता है कि वे मांस खा जाते हैं, शराब पी जाते हैं। अनेक प्रकार के दुराचार कर लेते हैं, लोगों का धन हरण कर लेते हैं, फिर भी अपने आप को "सब ब्रह्म है" और जगत मिथ्या है यह कहकर शुद्ध ही मानते हैं। अतः इन मिथ्या-

वादी प्रचारकों से सबको सचेत रहना चाहिये और घर-घर में यह प्रचार करना चाहिये कि विद्यमान संसार की उन्नति करना हमारा कर्तव्य है। यदि विद्यमान संसार को माया और झूठा सपना मानोगे तो भ्रम में पड़कर गोते खावोगे।

दूसरी ओर अद्वैतवादी जगत को मिथ्या बताने के साथ-साथ भारत में भाग्यवादियों का जोर भी बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक दैनिक-यत्न में आजकल मीन मेष आदि की फल राशि लगाकर लोगों को भविष्यवाणी बतलाई जाती है। इस फलित ज्योतिष से भी मनुष्य भाग्यवादी और पुरुषार्थहीन बनता है। अतः "आराम हराम है" के पुरुषार्थी बनने के सिद्धान्त को भी इस फलित ज्योतिष से भी भारी धक्का पहुँचता है। अतः लोगों को फलित ज्योतिषियों के चक्कर से बचने की हमारे प्रधान मन्त्री जी की अपील सर्वथा समयोपयोगी है और उसके अनुसार कार्य करना हर एक देशभक्त का परम कर्तव्य है।

बहुत से लोग यह मानते हैं कि जो प्रारब्ध में होगा वही होगा, अतः पुरुषार्थ करना निरर्थक है। इसका फल यह होता है कि मनुष्य आलसी बन जाता है। विरक्त सा बना हुआ अपने आपको सन्तुष्ट मान लेता है और सत्यासत्य का निर्णय और किसी वस्तु में पुरुषार्थ करने की इच्छा छोड़ देता है। कुछ लोग संसारको असार जानकर और दुःख का हेतु मानकर विरक्त होकर रहते हैं। इस विचार धारा को भी रोकने की परम आवश्यकता है। क्योंकि ये लोग प्रयत्न करना निष्फल और व्यर्थ समझ लेते हैं। जिससे देश की समृद्धि 'अधिक अन्न उपजाओ'' "अधिक पुरुषार्थ करो अधिक उद्योग धन्धे खोलो," "जीवन स्तर ऊंचा करो" आदि आन्दोलनों को भयंकर क्षति पहुंचती है।

भाग्य में होगा तो सफलता होगी, नहीं तो करोड़ प्रयत्न करने पर भी असफल रहोगे। इस मिथ्या-विश्वास से पुरुषार्थ करने में परिश्रम करना मनुष्य बन्द कर देता है। और सब व्यथा जानकर हाथ पर हाथ घर कर बैठ जाता है। इससे भी देश को बड़ी हानि पहुँच रही है। बहुत से लोग काल के भरोसे पर बैठे रहते हैं और कहते रहते हैं कि जब जिस कार्य का अवसर आता है, तब ही वह कार्य हो जाता है। अतः पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं। बहुत से आदमी सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये धनोपार्जन करना असह्य क्लेश मानते हैं, इस वास्ते रूखी-सूखी खाकर हाथ पर हाथ धर-कर बैठ जाते हैं। बहुत से आदमी कहते हैं कि संसार में ऐश्वर्यों का और भोग-विलासों का अन्त नहीं। इस प्रज्वलित अग्नि में घी की आहुति देने से अग्नि उत्तरोत्तर प्रचण्ड होगी, भोगों, वासनाओं की तृप्ति असम्भव है। पुरुषार्थ करने से ईर्षा, द्वेष, मत्सरता, हिंसा, दूसरे पुरुषों को दुःख पहुंचाना आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते संसार से विरक्त हो कर जंगल में जाकर किसी गुफा में विरक्त-जीवन बिताना चाहिये।

उपरोक्त प्रकार की बातें बनाने वाले अज्ञान के कारण ऐसा करते हैं। मनुष्य तो बिना कर्म के पल भी नहीं सकता। जो मनुष्य सत्य प्रेम भक्ति से परमात्मा की उपासना करेंगे और मन की वृत्तियों को वश में रखेंगे, वे निश्चय ही पुरुषार्थी बनेंगे और अविद्या-अन्धकार की गहरी खाई में कदापि नहीं गिरेंगे। मनुष्य को चाहिये कि अपने मन और इन्द्रियों के आधीन न रह कर स्वतंत्रता-पूर्वक ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश में सदा कल्याणकारी काम करता रहे, नहीं तो अज्ञान-अन्धकारमय गहरे समुद्र में डूबकर वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगेगा। अतः मनुष्यों को चाहिये कि वे भ्रम में न पड़ें, ज्ञान और बुद्धि पूर्वक निरन्तर पुरुषार्थ करते रहें, तभी वे हमारे प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की आज्ञा पालन कर "आराम हराम है" के सिद्धांत को समझ कर पुरुषार्थी बनकर देश का कल्याण करेंगे।

★

“आर्यधर्म को समझिये” लेखमाला—१

आर्य कौन हैं ?

[लेखक—प्रेमकुमार प्रेमी, सिद्धान्त शास्त्री, सीहोर (भोपाल)]

(गतांक से आगे)

स्वामी दयानन्द के गुण गान—वैसे तो आर्य केवल एक ईश्वर के ही गुणगान करते और उसी की उपासना करते हैं लेकिन जिस २ महापुरुष का देश, धर्म, संस्कृति और मानवता पर उपकार हो उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना भी प्रत्येक आर्य अपना कर्तव्य समझता है। १९ वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द जी जैसा सर्वतोन्मुखी प्रतिभा वाला महापुरुष सारे संसार में नहीं हुआ। स्वामी जी ने भारत के भाग्य को अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर बदल दिया। उन्होंने क्या किया इस प्रश्न के स्थान पर यह पूछना ठीक होगा कि उन्होंने क्या नहीं किया ? उन्होंने जो कुछ किया उसके वर्णन के लिए एक पृथक मोटे ग्रन्थ की आवश्यकता है यहां उल्लेख नहीं किया जा सकता।

आप स्वामी जी की महानता पर जब निष्पक्ष बुद्धि से विचार करेंगे तो उनकी प्रतिभा में संसार के सभी महापुरुषों की प्रतिभाएं दीखती हैं जैसे देखिए।

जब हम उन्हें एक वीतराग, त्यागी और तपस्वी के रूप में देखते हैं तो हमें उनमें प्राचीन ऋषि-मुनियों के स्वरूप का दर्शन होता हैं, जब हम मर्यादाओं का पालन, आदर्श चरित्र और संयम की विशेषताओं पर दृष्टि पात करते हैं तो हमें उन में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की झलक दिखाई देती है। जब वे यौगिक क्रियाओं के कौतूहल बताते और दार्शनिक, राजनैतिक तथा कर्मयोग की शिक्षा देते तो हमें भगवान श्रीकृष्ण जी के दर्शन होते हैं। जब वे अपने ऊपर आक्रमण करने वालों; हत्या करने वालों को क्षमा करते, जहर देने वाले को जेब से रुपया देकर नेपाल जाने को कह अभयदान देते, जीव मात्र से प्रेम करके स्वयं जीने और दूसरों को भी जीने देने का उपदेश देते दिखाई देते हैं तो हमें उनमें भगवान महावीर स्वामी की दिव्य ज्योति का आभास होता है इसी प्रकार जाति पाति की प्रथा तोड़ने, मृत्यु और दुःख से छुटकारा पाने में प्रयत्न करने में बुद्ध भगवान की तरह, दया क्षमा में ईसामसीह की तरह, ईश्वर विश्वास और संगठन करने में हजरत मोहम्मद साहेब की तरह, शास्त्रार्थ करने में शंकराचार्य की तरह, अधार्मिक अंधविश्वासों का सुधार करने में मार्टिन लूथर की तरह महान दिखाई देते है तभी समस्त संसार के बड़े २ दार्शनिकों और महापुरुषों ने उनकी सादर वन्दना की है।

और यही कारण है कि स्वामी जी के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये ही आर्य स्वामी जी का गुणगान करते हैं क्योंकि स्वामी जी की कृपा की बदौलत ही यह जागृति भारतवासियों को नसीब हुई है। फिर अन्य मत वाले प्रिय बन्धुओं की भांति आर्य स्वामी जी महाराज को इष्ट देवता नहीं मानते। इष्ट तो वह 'ला इलाहा इल्लिल्लाह' की तरह एक ईश्वर को ही मानते हैं। आर्य तो स्वामीजी के अलावा श्री राम जी, कृष्ण जी, महावीर जी, बुद्ध जी आदि सभी को महापुरुष मानते और आदर करते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने ही सर्व प्रथम आर्यों को

जैन मंदिर में जाने को उत्तम कार्य बताते हुए 'हस्तिना ताडयमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरम्' को मूर्खता पूर्ण श्लोक कहा। देखिये सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ १८९।। इसी निष्पक्षता को देखकर प्रत्येक मानव मात्र का शीश पूज्य पाद श्री १०८ स्वामी जी महाराज के चरणों में सादर झुक जाता है।

हमेशा सुधार की ठेकेदारी—सुधार करना तो बुरा कार्य नहीं है हाँ बिगाड़ करना अवश्य बुरा है। फिर यदि आर्य सुधार करते हैं तो कोई बुराई की बात नहीं है। हां, यह आवश्यक बात जरूर है कि पहले प्रत्येक मनुष्य को वेदोक्त शुभ गुण कर्म स्वभाव बनाकर स्वयं का सुधार करना चाहिये और सुधार करने के योग्य हो जाने पर फिर परोपकारार्थ देश, धर्म जाति का सुधार कर सेवा करना चाहिये। आप किसी का बनता काम बिगाड़ेंगे तो वह अवश्य बुरा मानेगा लेकिन यदि आप बिगड़ता काम सुधार दोगे तो आप से वह व्यक्ति रुष्ट न होगा व्यक्ति प्रसन्न ही होगा। यदि वह रुष्ट होता हैं तो अवश्य ही वह मूर्खाधिपति है। मैंने अपने ट्रैक्ट 'कृण्वन्तो स्वयमार्यम्' में इसी बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक आर्य इस बात पर पूर्ण ध्यान दे कि 'वह कभी व्यर्थ वितडावाद न करे, खंडन या विरोध न करे और न दूसरों को उपदेश करे बल्कि स्वयं को ही आर्य बना अपने चरित्र और मृदुल स्वभाव से सब को प्रभावित कर आकर्षित करे तभी वह 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम' को पूरा कर सकते हैं। खंडन करना, आलोचना करना या किसी के दोष दिखाना बहुत बड़े पंडित और महा पुरुष का कार्य है। अपने ही धर्म की १०-१५ पुस्तकें पढ़ कर और २-४ लेक्चर सुनकर या भाषण झाड़कर पंडित या खंडन करने का अधिकारी नहीं बना जा सकता बल्कि सभी मतों की पुस्तकों का स्वयं अध्ययन करके ज्ञान बढ़ावे फिर कुछ बोले। किसी के पास कोई जादू की लकड़ी नहीं है आपके ऊपर घुमाकर चुर्रेंट' किया और आप शास्त्रार्थ महारथी बन गये। इसके लिये तो आप को नित्य एक घंटा समय निकाल कर नियमित अध्ययन करना चाहिये।

प्रचार करना—मैंने कह दिया है कि जब तक कोई भी व्यक्ति स्वयं श्रेष्ठ नहीं बन जाता तब तक उसे दूसरे को उपदेश देकर प्रचार करने का कोई अधिकार नहीं। हां जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म से प्रयत्न करके अपने गुण कर्म स्वभाव आर्यों जैसे बना चुके हैं, जिन्होंने सभी सिद्धांतों का पालन कर उनका फल चख लिया है जो तत्व को वास्तव में जान चुके हैं, जितेन्द्रिय, सच्चरित्र, परोपकारी, विद्वान और द्वेषादि से रहित हैं वे ही प्रचार करने के अधिकारी हैं और ऐसे महापुरुषों द्वारा श्रेष्ठ बातों का प्रचार होता हो तो उसे कोई भी श्रेष्ट बन्धु बुरा नहीं कह सकता।

सब को बेवकूफ कहना—जो सबको बेवकूफ कहता है वह स्वयं बेवकूफ है निन्दा करना मूर्खों का काम है। और आर्य, जो वास्तव में आर्य है कभी किसी की निन्दा नहीं करेगा न किसी को बेवकूफ कहेगा क्योंकि मिथ्या वर्णन, मिथ्या भाषण द्वारा गुणी को भी अवगुणी कहना निन्दा कहलाती है जैसे को तैसा कह देना निन्दा नहीं सत्य भाषण कहाता है। अतः यदि कोई आर्य किसी के गुण-दोषों का सच्चा कथन करे तो वह निन्दा नहीं होगी। हाँ, यदि कोई व्यक्ति ईर्ष्या, पक्षपात और हठधर्मी करके किसी की निन्दा व आलोचना करे व्यर्थ में खंडन करे तो आप उसे स्पष्ट शब्दों में अनार्य कह सकते हैं। पर पहले आपको उस आर्य का पक्षपात और असत्य के प्रति दुराग्रह ठीक

प्रमाणित करना होगा। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने वाला आर्य निश्चय ही अपने साथ २ दूसरों का भी सुधार विकास आदि करेगा।

समाज में वैमनस्यता फैलाना—यह बात अवश्य महत्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म में बहुत श्रद्धा रखता है। उसके सिद्धान्त दुनियां कीं नज़र में कैसे भी हों पर वह उन्हें एक दम सच्चे और और श्रेष्ठतम ही समझता है। बचपन से वह जिन सिद्धांतों को मानता आया है और जिस इष्ट में श्रद्धा रखता आया है उसे वह एक दम कैसे बुरा या झूठा मान लेगा ? वह उन सिद्धांतों के पीछे मरने मारने पर उतारु हो जाएगा। आप सर काट के उस के सामने रख दो तो भी शायद उसके दिमाग़ में आपकी बात नहीं समायेगी। हाँ, कुछ सज्जन और ज्ञानी या विद्यायुक्त व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो युक्ति तर्क प्रमाण आदि से समझाने पर समझ जाते हैं और गलत सिद्धांत को मैले वस्त्र की तरह उतार कर सहर्ष त्याग देते हैं पर ऐसों की संख्या उंगली पर गिनी जा सकती है यह बड़े शोक की बात है !

इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी समस्या यह है कि बुद्धिमान और जानकार हो तो उससे बात भी की जावे, पर अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही हैं जो कभी अपने शास्त्रों को हाथ भी नहीं लगाते और न अपने धर्म की अच्छाई बुराई के विषय कुछ सैद्धांतिक ज्ञान ही रखते हैं पर देखा देखी ही बस अपने मत की प्रशंसा और अन्यमत की निन्दा किये जावेंगे। उनसे बहस करो तो 'नहीं मालूम' 'पढ़ा नहीं' या "अमुक पुस्तक में लिखा है आप देख लेना सब समझ में आजावेगा" ऐसा कहकर टाल जाते हैं। ऐसे लोग अपने धर्म पर संस्कार और वातावरण के प्रभाव में आकर ही श्रद्धा करते हैं और वह भी इस लिये कि वे उस धर्म में ही जन्मे हैं। यदि वे दूसरे धर्म में उत्पन्न हुए होते तो बिल्कुल ऐसी ही अन्धश्रद्धा उस धर्म पर भी करते और उसकी तरफ से लड़ने मरने को तैयार रहते। ऐसे कठमुल्लों से सही मायने में धर्म को कोई लाभ नहीं पहुँचता, वे वस्तुतः उस धर्म के कलंक होते हैं जो खामखां परम्परागत "कुल धर्मः सनातनः" के अनुसार धर्म माने जाते हैं।

ऐसे व्यक्तियों से जब आर्यों का सामना होता है तो ये लोग अल्पज्ञानी होने के कारण रुष्ट होते, झल्लाते और विरोधी षडयंत्र किया करते हैं। 'ज्ञानी मारे ज्ञान से और मूरख मारे डाँड से' वाली बात होती है। जिसे धर्म शास्त्रों का अच्छा ज्ञान होगा वह शांति से विचार विमर्श करता रहेगा पर जिसे ज्ञान नहीं होगा वह पहले तो हठधर्मी चला कर, मखौल उड़ाकर और अनादर करके अपनी झेंप मिटाता है और फिर क्रुद्ध होकर लड़ाई झगड़े पर उतर आता है। ऐसों की संख्या अधिक है अतः समाज में जरा सी देर में कटुता और वैमनस्यता फैल जाती है। लोग असली बात तो समझते नहीं बस साम्प्रदायिक जोश में आकर विरोध करना शुरू कर देते हैं और फिर साम, दाम, दण्ड, भेद से विरोधी को धूल में मिलाने पर उतर आते हैं। सारे उपकार और मित्रता की विशेषताएँ उन्हें फिर याद नहीं रहती।

ऐसे वातावरण में आर्यों को सावधान रहना चाहिए। नीति में भी कहा है कि जिस प्रकार विद्वानों की सभा में मूर्ख को चुप ही रहना चाहिए उसी प्रकार मूर्ख, अज्ञानी, शास्त्र स्वाध्याय न करने वाले, हठी दुराग्रह ही और ईर्ष्यालु लोगों के समाज में विद्वान् भी चुप ही रहे। कहा है—"मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलै विरंच सम"।

नियम संयम तुड़वाना—यह कतई भ्रामक बात है। आर्य लोग लाभकारी और ज्ञान विज्ञान युक्त बुद्धिपूर्ण नियम तुड़वाते नहीं बल्कि और यम नियम का उपदेश देकर संयम निष्ट जीवन बिताने पर जोर देते हैं। हां अन्धविश्वास युक्त, अज्ञान के द्योतक

और वाहियात रुढ़िवादी नियमों को अवश्य तोड़ते तुड़वाते हैं।

तो सुविज्ञ पाठकगण ! दूसरे आक्षेप के निराकरण ने तो शायद आपको ऊबा दिया है। खैर अब संक्षेप में ही लिखेंगे।

तीसरे प्रकार के बन्धुओं का आक्षेप व्यर्थ है। केवल चार आने का प्रवेश फार्म भर कर अपने नाम के साथ आर्य लिखने वाले को आर्य नहीं कहते अपितु मन वचन कर्म से प्रयत्न करके जिसने गुण कर्म स्वभाव श्रेष्ठ बना लिये है जो ईश्वर भक्त, अहिंसावादी. धर्मात्मा, पण्डित और परोपकारी है वही आर्य है। आर्य का अर्थ भी यही है कि जो श्रेष्ठ विचार करे, श्रेष्ठ विचार प्रकट करे और श्रेष्ठ आचरण किया करे वही व्यक्ति आर्य है और कोई भी नहीं।

चौथे भाई साहब कहते हैं कि आर्य लोग तो संध्या और हवन सिखाया करते हैं। हाँ, विचारों की शुद्धि, प्यारे प्रभू का स्मरण, ईश्वर भक्ति और आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए नियम पूर्वक संध्या करना और वायु शुद्धि, जल वृष्टि और स्वास्थ्य लाभ के साथ वेद रक्षा के लिए हवन करना आर्य लोग अवश्य सिखाते हैं जो कोई बुरा कार्य नहीं है। हाँ, चोरी करना, जीव हत्या करना, जुआ खेलना या व्यभिचार करना सिखावें तो एक बात भी है। संध्या और हवन से क्या लाभ होता है यह जानने के लिए संध्या हवन सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ें।

पाँचवें बन्धुओं का आक्षेप आर्यों का नहीं बल्कि अहंकारियों और कपटी लोगों का लक्षण है। जो कहें कुछ और करें कुछ। ऐसे लोग श्रेष्ठ नहीं अतः यदि कोई आर्य कहलाने वाला व्यक्ति भी कहे और करे कुछ तो उसे आर्य नहीं बल्कि पतित और अनार्य ही कहा जावेगा आर्य कभी नहीं। स्वामी दयानन्द जी ने भी यही आदेश दिया है कि दो बातों का ध्यान रखना हर आर्य का प्रमुख कर्तव्य है। (१) अपने समस्त सिद्धांत सच्चे हों (२) अपना प्रत्येक कार्य और आचरण सच्चे सिद्धांतों के अनुकूल हों। अर्थात् अपने आचार और विचारों में कई फर्क नहीं होना चाहिए जैसा कहो वैसा ही स्वयं भी चरित्र में लाकर कर दिखाओ।

आदरणीय विचारशील पाठकों ! हमने अब तक इन पांचों आक्षेपों का निराकरण किया। हमें दृढ़ विश्वास है कि हमारा निराकरण आपको बिल्कुल ठीक युक्ति युक्त और समाधान कर देने वाला लगा होगा। इस निराकरण के बाद अब हम इस असली बात पर विचार करेंगे कि "आर्य कौन हैं ?"

लेकिन आपको इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये मेरा लिखा दूसरा लेख "सच्चाई क्या है ?" पढ़ना चाहिए इस लेख में मैंने यह सिद्ध किया है कि हम सभी हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी आदि वास्तव में आर्य ही हैं।

(पृष्ठ ५ का शेष)

क्योंकि हम में सद्धर्म का ज्ञान एवं आचरण भी नहीं।

अतः हम जीवित कैसे कहला सकते हैं ? जब तक परमात्मा की छाया में आकर अमृत न बन जावे। यद्यपि हमें परमात्मा की छाया के नीचे लाकर बहुत से महर्षियों ने जीवित बनाने का प्रयत्न किया: परन्तु वाम-मार्ग की उपासना से हमें कभी परमात्मा पर विश्वास हो नहीं हुआ। हम अपने लेख में बहुत से वाक्य ईश्वरीय विश्वास सम्बन्धी लिखते हैं; परन्तु आचरणों में रुपये पर ही विश्वास रखते हैं ?

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल्य-सहित]

भूमिका ले०—श्री डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तेत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वत –इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जायं, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जायं - दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए। इनाम देने के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—'आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी का 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिस आर्य-समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।'

३…'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है-'हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।'

३…'नव-भारत टाइम्स' लिखता है--'लेखक ने आर्य-संस्कृति अथाह समुद्र में बैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।'

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन सरस्वती, आज, आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द दाम चार रुपया।

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून

आर्य समाज के नियम

(गतांक से आगे)

चौथे नियम के पालन करने वाले को बाद में हठ और दुराग्रह करना उचित नहीं। वह अपने पक्ष का पोषण तो युक्ति प्रमाणों से करे; परन्तु यदि जान जाय कि प्रतिवादी-प्रतिपक्षी–का पक्ष सत्य है तो तुरन्त उसे स्वीकार कर ले। झूठी बात पर न डटा रहे सत्य के मानने के लिए अन्तःकरण के किवाड़ खुले रक्खे। इस बात को कभी न भूले कि सत्य के साक्षी आत्मा और परमात्मा दोनों हैं। जो जन जान-बूझकर हठ करता है, झूठ को खींचे लिये चला जाता है सनातन और परम सत्य आत्मारूप साक्षी के सामने सत्यका तिरस्कार कर देता है, उसके स्वरूप को स्वीकार करने में नकार करता है, वह नास्तिक ही सा है। जिस मनुष्य ने आत्मारूप साक्षी के ज्ञान के विरुद्ध वचन बोल दिया, उसके ज्ञानकी चोरी की, अपने अन्तरात्मा का हनन किया, उस आत्म अपहरण करने वाले के लिए किसी भी पाप का करना कठिन नहीं है। ऐसे जन ने मानो सभी अपराध कर लिये।

इस नियम के पालक को सामाजिक कार्यों में मतामत प्रकट करते समय शान्ति, धैर्य और कोमलता से काम लेना चाहिये। वह स्वपक्षी सिद्धि में अपने सारे यौक्तिक बलको लगाये, पुष्ट प्रमाण भी दे, परन्तु अधिक खींचातानी न करे। खेल में रस्से को को तभी तक खींचना चाहये जब तक दोनों दल व्यायाम-वृद्धि और परीक्षा के भाव से खींच रहे हों। रस्से को ऐसा खींचना कि वह टूट ही जाय और परस्पर सिर फट जायँ तो यह व्यवहार अच्छे खिलाड़ियों के कर्म-क्षेत्र से बाहर है। सभासदों को वहीं तक मतामत के प्रकट करने में बल लगाना उचित है, जहाँ तक मनों के मेल की माला बनी रहें—गुँथी रहे और कदापि टूटने न पावे। किसी बिगड़े हुए काम को ऐसे सुधारना कि वह मिट ही जाय अथवा रोगी को ऐसी औषधि देना कि उसका प्राणान्त ही हो जाय, यह काम किसी अच्छे सुधारक या चिकित्सक का नहीं। अनाड़ीपन से किया हुआ कोई भी काम हानिकारक हुआ करता है।

सभासद जन जब कभी परामर्श करने के लिए सभा में एकत्र हों, तब प्रस्तावित विषय पर गम्भीर भाव से विचार करें। जो पक्ष अनुचित और हानिकारक जान पड़े, उसकी आलोचना और प्रत्यालोचना करना उनका कर्तव्य कर्म है। परन्तु ऐसा करते समय उनके मनमें सभा-समाज की हित-बुद्धि आवश्यक हो। उत्तर-प्रत्युत्तर में, वचनों में परुषता, कटुता, आक्षेप और आवेश न दीख पड़े। पक्षी और प्रतिपक्षी एक दूसरे को आदर और सम्मान-सूचक शब्दों से सम्बोधन करें। परस्पर ताने देना और व्यक्तिगत आक्षेप करना सभा के नियम के विरुद्ध है। सब सभासदों को सभा में सुन्दर और सभ्य भाषा बोलनी चाहिये। उनके वाक्य मँझे और तुले हुए हों। उन सबका लक्ष्य सत्य और हित हो।

सम्वाद में समालोचना चाहे कितनी हो, कभी किरकिरापन नहीं आता। परन्तु जब भाषा और भाव दोष आता है तब सभा का सारा रंग भंग हो जाता है। यदि सभा में संवाद करते समय किसी से कोई भूल हो जाय या कोई अवज्ञा हो जाय तो उसे चाहिये कि इस पर अनुताप करे—उसका सुधार कर ले।

अपने मतको एक मत ही समझना उचित है। यदि बहुपक्ष से वह गिर जाय तो मत-प्रदाता शोक न करे। उसके गिर जाने से अपने को गिराया हुआ न माने। जीत में भी हर्ष से ऊपर रहे। पक्ष जीता हुआ जाने, सारांश यह कि मत को एक मत-मात्र मानने से उसके स्वीकार अथवा अस्वीकार पर मत-

प्रदाता को हर्ष-शोक नहीं होता। परन्तु जो मनुष्य अपने मत को अपना आप बना बैठते हैं, वे मतकी हार जीत को अपने ऊपर आरोपित करके सभा में नाना प्रकार के झगड़े बखेड़ों का विष-बीज बोने लग जाते हैं। उसको कलह का केन्द्र बना लेते हैं। वे कभी शान्ति स्थापित होने ही नहीं देते। इस कारण चौथे नियम के पालक जन को सत्य पर आरूढ़ रहने के लिये अधिक विवेकी, अधिक विचारवान्, अधिक शान्त अधिक मर्यादावान् और अधिक सभ्य हो जाना चाहिये।

पाँचवां नियम

“सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।’

सब काम धर्म्मानुसार करने चाहियें, अर्थात् सत्यासत्यका विचार कर करने चाहियें। यहाँ ‘धर्म्मानुसार’ वाक्य के आगे ‘अर्थात्’ शब्द रखकर सत्य और असत्य के विचार से उसकी व्याख्या की गई है। इसका भाव यह है कि सत्यासत्यके विचार से—विवेक-पूवेक—सब काम करना धर्मानुसार कर्म करना है। जो मनुष्य सत्यासत्यकी विवेक-बुद्धि से काम करेगा, वह निश्चित रूप से सत्य कर्म्म ही करेगा। सत्य कर्म्म ही धर्म्मानुसार कर्म है। धर्म्मा- नुसार कर्म करने के साथ सत्यासत्य के विचार-रूप पद को इसलिए लगाया है कि धर्म्म कर्म्म के जानने के लिए विवेक-बुद्धि का होना आवश्यक प्रतीत हो। भेड़िया धसाने के ही काम को धर्म्मानुसार काम न समझा जाय। आर्यजन अन्ध-परम्परा पर न चलें—लकीर के फ़कीर न वनें।

जब धर्म्मानुसार कर्म करने का आदेश है, तब धर्म्म के स्वरूप को जानना भी आवश्यक है।

आर्यजन आदि काल से यही मानते चले आये हैं कि ‘वेदका आदेश ही धर्म्म है।’ भगवान् मनुने भी कहा है—‘वेदाऽखिलो धर्म्ममूलम्,’ सम वेद धर्म्म का मूल है। तीसरे नियम में भी वेदज्ञान को ही परम धर्म्म कहा है। इन वाक्यों का यही तात्पर्य है कि जिन कर्मों के करनेका वेद में विधान है, जो कर्म वेदानुकूल हैं, जो यज्ञ वेद-विहित हैं, और जो संस्कार वैदिक हैं, उन सबका पालन करना वैदिक धर्म्म का पालन करना है। स्मृतियों और अन्य अनेक आर्ष ग्रंथों के जितने भी कर्म वेद से अविरुद्ध हैं, उनका पालन करना भी धर्म्म है। ‘सब काम धर्म्मानुसार करने चाहियें’ इस वाक्य का संकेत ऐसे ही कर्म्मों की ओर है।

इस पाँचवें व्रत के व्रत जन को शास्त्र का समादर करना चाहिये। वह शास्त्र के वचनों का अपमान न करे। उसका आदेश शिरोधार्य समझे। उसमें शुद्ध प्रीति कम न होने दे। परन्तु अपने विवेक-विचार से भी पूरा काम ले। जो जन अपने विचार का तिरस्कार करते हैं, और अपने अन्तःकरण में विवक-बुद्धि का प्रदीप उद्दीप्त नहीं करते, वे कभी न कभी सन्मार्ग से भ्रष्ट हो ही जाते हैं।

अपने हृदय-मन्दिर में विवेक-विचार की ज्वलन्त जोत जगाने की यही विधि है कि जब कभी किसी कार्य्य को करने का प्रश्न सम्मुख आवे, तब उस कार्य को आरम्भ करने के पूर्व सोच लिया जाय कि यह वेद-विरोधी कर्म तो नहीं, इसके विषय में आर्ष ग्रंथ क्या कहते हैं, स्मृतियों ने क्या व्यवस्था दी है, सत्यपुरुषों और सज्जनों का आचार—इतिहास—क्या बताता है, मेरा अपना आत्मा क्या साची देता है, इसके करने से मेरे मन पर, तन पर,. जीवन-चर्या पर, बन्धुवर्ग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, और इससे मुझे हानि होगी या लाभ। व्यक्तियों के कामों का समाज के साथ भी सम्बन्ध होता है, इसलिए यह भी विचारना चाहिये कि इस काम से समाज की तो कोई हानि न होगी—सार्वजनिक हित की हत्या तो न हो जायेगी। इत्यादि बातों को सोच विचार कर सत्यमय और हितमय कामों के करने में आर्यजनों को बड़ी भारी सुगमता हो सकती है। वे धर्म्म-मर्यादा का कभी लोप नहीं कर सकते।

सत्यासत्या का विचार किये बिना जो काम किये जाते हैं, उनमें उतावली हुआ करती है, सदा अन्धाधुन्धपन रहा करता है, प्रायः भूलें हो जाती हैं, और कई बार तो अनेक ऐसे कटु परिणाम निकल आते

है जिनसे चिरकाल तक पछताना पड़ता है, बहुत दिनों तक चित्त की चिन्ता चूर करती रहती है। मन में मोद प्रमोद का मानों नाम तक नहीं रहता। परंतु सत्यासत्यके विवेक-विचार पूर्वक किये कार्य्यों के फल सदा शुभ, स्वादु, मधुर और मनोगम हुआ करते हैं। इससे कर्त्ता का उत्साह और साहस उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। उसके मन की उमङ्गों की उमङ्गें और भी ऊँची उठने लगती हैं। उसका पाँव कभी भी पीछे नहीं पड़ता। वह सदा अग्रसर ही रहता है।

पांचवें नियम के पालन करने वाले को समझना चाहिये कि कर्म, मन, वचन और काया से किये जाते हैं। ये तीनों प्रकार के कर्म्म धर्म्मानुसार होने उचित हैं। मन के कर्म्मों को धर्म्मानुसार करने के साधन ये हैं कि आर्यजन सदा सबका हित ही चिन्तन करे। किसी की अनिष्ट-चिन्ता मन में न लावे। दुष्ट संकल्पों, दुर्भावनाओं और व्यर्थ विकल्पों को रोके। उन्हीं विचारों को हृदय में स्थान दे जिन को निकट भविष्य में कार्य्य रूप में परिणत करना हो—क्रियात्मक कलेवर देना हो। जो जन अपने संकल्पों और विकल्पों का ताना-बाना तो बहुतेरा तनते रहते हैं, परन्तु कर्म्म में लाकर उनका वस्त्र नहीं बुनते–उन को क्रियात्मक साकार स्वरूप नहीं देते—उन विचार माला को गूँथने वालों का मस्तिष्क निर्बल हो जाता है। कोरे चिन्तनशील की स्मरण-शक्ति शिथिल पड़ जाती है। विचार के ही संसार में रहने वाले का शरीर संस्थान बिगड़ जाया करता है। उसकी पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अन्त में जाकर कर्म करने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं रहती।

वाणी और काया में मनुष्य का मन ही आकर प्रकट होता है। जिस प्रकार कुएँ के भीतर का ही अच्छा बुरा जल रहट की हाँडियों में बाहर आता है, वैसे मानव-धनका ही प्रकाश उसके कर्म्मों में दीख पड़ा करता है। आकृति का प्रतिबिम्ब ही प्रत्याकृति होती है। मनुष्य का मन ही उसके वचन और कायिक कर्म बन जाता है। जो विचार, जो भाव, और जो संकल्प भीतर सूक्ष्म रूप से हैं, वे ही वाणी और कर्म्मों में आकर स्थूल और स्थूलतर बन जाते हैं। सारांश यह कि मनुष्य का जैसा और जो भाव भीतर होता है, ठीक वही ज्यों का त्यों उसके वाक्यों और कर्म्मों में आ जाता है। इस कारण बाहर की अपेक्षा भीतर को भद्रता से भरने का विशेष यत्न करना अधिक उपयोगी है। यह मार्ग अधिक सुगम है।

वाणी के कर्मों को धर्म्मानुसार बनाने के लिए उसमें सत्य और हित दो गुण होने अत्यावश्यक हैं। जिन शब्दों में सत्य और परहित, ये दोनों नहीं, वे अरण्य-रोदनवत् निःसार हैं। ऐसे शब्द बोलना वाणी का दुरुपयोग करना है। मनु महाराज ने कहा है—'सारे प्रयोजन वाणी में पिरोये हुए हैं, वाणी ही उनका मूल है, वाणी ही से वे प्रकट हुए हैं। ऐसी वाणी का जो चुराता है वह सब वस्तुओं को चुराने वाला चोर बन जाता है। ठीक भी है कि संसार के सारे व्यवहार वचन द्वारा ही होते हैं। सारा व्यापार, लेन-देन और सन्धि-सम्बन्ध वचन-रज्जु में बँधा हुआ है। ऐसे वचनों को जिस मन ने बदल डाला, मिथ्या कर दिया, उसके समान संसार के प्रबन्ध को अस्तव्यस्त करने वाला और दूसरा नहीं है।

वचन के कर्मों में कोमलता और माधुर्य का होना एक उत्तम गुण समझा जाता है। वचनों में प्रेम-प्रीती का प्रकट करना एक आकर्षणकारी कर्म है। बच्चे मार-पीट कर नहीं प्रत्युत् लाड प्यार से पालने से ही बड़े होते हैं। वे कोसने और डाँटने से उतनी अच्छी तरह नहीं बढ़ते जितने कि पितावत् प्रेम प्रदर्शित करने से। रोगी को भर्त्सना करने के अनन्तर औषध देना उसके रोग को चौगुना बढ़ाना है। उसके साथ तो गहरी सहानुभूति दिखाने और आशा बंधाने से ही उसका रोग दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी जन को समझाना अभीष्ट हो, सन्मार्ग पर लाना कर्तव्य कर्म्म हो तो उसे मीठे, मृदु, हित-भरे और प्रेम में पगे हुए शब्दों से समझाने बुझाने पर अधिक उत्तम और अधिक शीघ्र सिद्धि हुआ करती है।

वाणी के दोषों को दूर करने के लिए पहले मोटे मोटे दोषों को दूर करना चाहिये। इन दोषों में आगे लिखे चार दोष अत्यन्त हानिकारक हैं। वे ये हैं—निन्दा, पैशुन्य, दोषारोपण और समालोचना। ये चारों दोष मनुष्य को समाज में काँटा सा बना देते हैं।

निन्दा करने वाला प्रायः कायर होता है। वह सामने तो चिकनी चुपड़ी बातें किया करता है और पीठ पीछे अपवाद फैलाता फिरता है। निन्दक का मन सदा मैला रहता है। उसके हृदय में इस बात की चिन्ता बनी रहती है कि कहीं मेरे निन्दा रूप पाप-कर्म का भण्डाफोड़ न हो जाय; मेरी करतूत का लोगों को पता न लगे। रात-दिन पराये दोष ही देखते रहने की प्रकृति हो जाने से वह छिद्रान्वेषी हो जाता है। गुण-ग्राहकता का उसमें लेश भी नहीं रहता। निन्दा सदा दूसरे की अनुपस्थिति में ही की जाती है। इसलिए उस कर्म से उसका सुधार कदापि नहीं हो सकता। सुधार तो हित-बुद्धि से, प्रेम-भाव से और सहानुभूति-पूर्वक समझाने से हुआ करता है। अमुक मनुष्य आपके विरुद्ध षड़यन्त्र रच रहा है, आपको गिराना चाहता है; वह अमुक दलके विरुद्ध यह बात सोचता है; उसने यह करना निश्चय किया है, इत्यादि, एक की बातें दूसरे को जा बताना, विश्वासघात करना और मित्रद्रोह में प्रवृत्त होना पैशुन्य—चुगली—है और बड़ा भारी पातक है। यह दोष कायर, भीरु, कपटी और स्वार्थी जनों में प्रायः होता है। आर्य्य धर्म्मी जन नीचता के इस कीचड़ में कभी न कूदें।

दोषारोपण—लाञ्छन लगाना—भी वाणी का एक दुष्कर्म है। सुधार बुद्धि वाले जन को किसी पर आक्षेप करने से झिझकना चाहिये; और यह समझना चाहिये कि दोषारोषण कर देने मात्र से किसी का सुधार नहीं होता,—किसी का उत्थान नहीं हो सकता। किसी के दुर्गुणों को उसमें से निकाल देने के लिए हितेच्छुक भाव उत्तम साधन हैं। पितृ, मातृ और मित्र-भाव से समझाना उचित है। केवल दोषारोपण कर देना तो ऐसा ही है जैसे नगर की गली का कीचड़ निकाल कर सड़क पर इकट्ठा कर देना।

किसी कार्यकर्त्ता के काम पर टीका-टिप्पणी करना, उसकी त्रुटियाँ बताना, भूलें प्रकट करना समालोचना है। यद्यपि संसार को इस कर्म की आवश्यकता तो है, परन्तु यह काम अति कोमल है। यह प्रत्येक के करने का नहीं। सभाओं में कभी कभी तो यह कर्म कलहकी आग सी लगा देता है। उन्हीं सज्जनों को समालोचक बनना चाहिये जिनके कन्धों पर कोई उत्तरदायित्व का भार है, जो क्रियात्मक जीवन व्यतीत करते हैं, अनुभवी हैं और क्रियात्मक कार्य की कठिनाइयों को जानते हैं। जो जन खुले घुड़सवार हैं, जिन पर उत्तरदायित्व का भार राई के बराबर भी नहीं है, जो कार्य-क्षेत्र में कूद कर अपनी कोमल काया को कष्ट देना कदापि नहीं चाहते, केवल दूर खड़े तमाशा देखने वाले हैं, बातों के वीर हैं, ऐसे जनों को कोई अधिकार नहीं कि समालोचना का धनुष तान कर सदा वचनों के बाण ही बरसाया करें। आर्यजनों को चाहिये कि वे वाणी को इस कर्म से पवित्र रक्खें।

वाचिक कर्मों में अहंकारयुक्त वचन बोलना भी एक दोष है।

अभिमानी मनुष्य सदा अपनी विशेषता के ही गीत गाया करता है। दूसरों को तो वह तृण-तुल्य समझता है। समाज में, सभा में, जाति में, बिरादरी में अपने मान-मद के मस्तक को वह किंचित् भी नहीं झुकाता। अहंकार भरे वाक्यों से अभिमानी जन अपने मित्रों के अन्दर भी मनोमालिन्य उत्पन्न कर देता है ' अन्त में वह सबको मार्ग के तीखे काँटे और ऐंठे हुए खूँटे की भाँति, खटकने लगता है, जिससे पद पद पर उसका अपमान होने लगता है। अभिमानी को अपमान का दुःख मृत्यु से भी अधिक क्लेशकारी हुआ करता है। आर्य्य-धर्मी जनों को, जहाँ तक बन पड़े, विनीत, नम्र और निरभिमान होना चाहिये।

(शेष पृष्ठ २३ पर)

अपनी अपनी बात

भारतीय संस्कृति के ३ प्रतीक विषयक पुस्तक पर सनातनी (पौराणिक) दृष्टिकोण

लेखक—श्री पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश
[प्रिन्सिपल सं० हि० महाविद्यालय, रामदल दरीबा कलाँ, देहली]

> उपरोक्त नाम की पुस्तक प्रायः ३ वर्ष पूर्व हमारे यहाँ से प्रकाशित हो चुकी है, उसी पुस्तक पर विद्यावागीश जी ने अपने दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत किया है, आशा है इसके समाधान में श्रद्धय राजेन्द्र जी प्रकाश डालेंगे। गोविंदराम हासानन्द

'भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक' यह 'भारत में मूर्तिपूजा' के यशस्वी लेखक श्र राजेन्द्र जी द्वारा प्रणीत निबन्ध (ट्रैक्ट) आजकल हमें देखने को मिला। यही का यही 'वेद प्रकाश' पत्र में भीं हमने देखा था।

इसमें 'ओ३म्' 'आर्य' 'नमस्ते' इन तीन विषयों पर लिखा गया है। इनमें बहुत सी बातें गलत लिखी गई हैं। यदि उन सब पर विवेचना दी जाय, तो उनके इस निबन्ध से तिगुना और निबन्ध बन सकता है, परन्तु पत्र में उतना स्थान मिलने की आशा न होने से 'कुछ ही' बातों पर लिखते हैं।

इसके पृष्ठ १० में 'मूर्तिपूजा का प्रादुर्भाव बौद्धकाल के पश्चात्' माना गया है। और रामकृष्णादि नामों का ईश्वर-वाचक बन जाना अवतारवाद की सृष्टि के बाद माना गया है। और वेद में राम और कृष्ण शब्दों को अन्धकार वा काला-रंग वाचक बताया गया है।

यह बात प्रायः गलत है। मूर्तिपूजा जिसे 'प्रतिमोपासना' भी कहा जाता है, वह वैदिककाल से बराबर चली आ रही है। आपके अनुसार राम-कृष्ण ईश्वर-वाचक अवतारवाद की सृष्टि के बाद माने जांए, पर आजकल के काल में तो मंगल, शनैश्चर, राहु, केतु, ग्रह भी ईश्वर-वाचक बन गए। देखिये सत्यार्थप्रकाश। स्वामी दयानन्द जी ने इन्हें तो ईश्वर-वाचक बनाया ही, अग्नि, वायु, जल आदि को भी ईश्वर-वाचक बना दिया। यदि पहिले स्थान पर वह दोष हैं, तो यहाँ क्यों नहीं ?

'राम' शब्द यदि वेद में काले रंग का वाचक है, तो ईश्वरावतार का वाचक न हो, यह तो कोई तर्क नही। श्रीराम भी तो कृष्ण वर्ण के थे—'यथा नाम तथा गुणः'। आप लोग वेद में नामों को यौगिक तथा योगरूढ़ मानते हैं, तब कृष्ण-रंग वाले ईश्वरावतार विशेष का भी वाचक हो गया। 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषुच सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्'-(गोपथ ब्रा०(१।१।१६पूर्व भाग) 'राम': की 'रमन्तेऽस्मिन्' यह व्युत्पत्ति है। हलश्च' (अ० ३।३·१२१) इस वेदाङ्ग के सूत्र से घञ् प्रत्यय करने पर उक्त प्रयोग बना। तो जब यह ईश्वरावतार कृष्ण-रंग वाले श्रीराम का वाचक हुआ, तब रमन्तेऽस्मिन् योगिनः' यह उसकी व्युत्पत्ति भी ठीक हो गई। शेष जो आपने 'भद्रो भद्रया' मन्त्र में रामावतार हटाने के लिए सायण भाष्य उपस्थित किया है, तो यदि आपकी सायण-भाष्य में श्रद्धा है, तो उसके 'इदं विष्णुर्विचक्रम' (ऋ० सं १।२२।१७) मन्त्र का भाष्य देखिये। उसमें उसने त्रिविक्रमावतारधारी विष्णु (वामनावतार) का वर्णन किया है। 'विष्णो-

स्त्रिविक्रमावतारे' पादत्रयक्रमणस्य पृथिव्यपादानम्' (सायण० १।२२।१६-१७) उसमें आपने श्री उवट तथा श्री महीधर का नाम भी लिख दिया है। सो उवट तथा महीधर का भी 'कुचरः—मत्स्यकूर्मादि रूपेण इन : पृथिव्यां चरति' (यजु० वा० सं ५।२०) यह भाष्यसन्दर्भ देख लीजिए उसने भी तथा श्री सायण ने भी वेद में अवतार की स्थिति मानी है। तब आप इन **प्राचीन भाष्यकारों** की बात मानकर अवतारवाद की सृष्टि वैदिककाल में ही मान लीजिए। तब यदि 'राम' और कृष्ण का उन्होंने अवतार रूप में उक्त मन्त्रों में वर्णन नहीं किया, तब कोई बात नहीं, पर अवतारवाद तो उनके मत में वेदोक्त सिद्ध हो गया। उक्त मन्त्रों में वह अर्थ न करने का कारण यह है कि उन्होंने वेद का भाष्य, याज्ञिक-दृष्टि को **मुख्य** रखकर किया है। पर यह कोई इयत्ता नहीं कि यही अर्थ वेद का हो।

आप लोग भी मानते हैं कि वेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों प्रकार के अर्थ होते हैं, तब जब 'राम' का अर्थ 'अन्धकार' है तब दूसरा अर्थ ईश्वरावतार 'राम' भी हो सकता है देखिये—

'प्रतद् दुःशीमे पृथवाने, वेने प्र रामे वोचमसुरे' (ऋ० सं० १०।६३।१४) **यहां पर क्या आप 'राम' का अर्थ काला-रंग' कर सकते हैं?** यहां श्री सायण ने "राम" नाम का राजा माना है, सो यहाँ वही तो है—

'रघुपति राघव **राजाराम**' "असुर" यहाँ राम का विशेषण है। विशेषण सदा यौगिक होता है, सो (असुर' का अर्थ है 'बलवान्'। जैसे कि–वरुण देवता (यजुः १४।२०) के लिए भी वेद में 'असुर' शब्द का प्रयोग एतदादि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसे कि— 'वरुण !···असुर। (ऋ० १।२४।१४)। अर्वाचीन विचारों को रखने वाले श्रीविनायक चिन्तामणि वैद्य रावबहादुर ने भी उक्तमन्त्र में श्रीरामावतार का वर्णन माना है।

आपको वेद में 'राम' इस ईश्यरावतार के नाम को उड़ाने के लिए रात्रि के 'अन्धकार' अर्थ सिद्ध करने का इतना उत्साह हुआ कि आपने वेद में प्रक्षेप भी कर दिया। आपने इस विषय में सबसे **पहिला मन्त्र** 'सचन्त यदुषसः···राममविन्दन्' (ऋ० १०।१११।१) यह दिया, और यहाँ 'राम' का अर्थ काला-रंग कर दिया। हम आपको चैलेन्ज करते हैं कि यहाँ 'राम' शब्द ही नहीं। यहाँ 'राममविन्दन्' पाठ ही नहीं, किन्तु 'रामविन्दन्' पाठ है जिसका छंद है—'राम अविन्दन्' यह "रै" शब्द का द्वितीया का प्रयोग है जिसका अर्थ है 'श्रियम्' पर आपने रामावतार को उड़ाने के लिए यहाँ 'राम' शब्द बनाकर उसका 'अन्धकार' वा 'काला' अर्थ कर दिया, बहुत खेद ! खण्डन करने की प्रसन्नता इतनी नहीं होनी चाहिये कि वेद में भी प्रक्षेप कर दिया जाय।

अथर्ववेद-संहिता में–'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शन्तिवाम् (३।३०।२) मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा' (३) इत्यादि मंत्रों में रामावतार का संकेत रूप से वर्णन कर दिया है। वेद में 'अयोध्या' नगरी का भी बर्णन आया है जैसे कि—'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूर योद्धा। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः (अथर्व० १०।२।३१) यहां अयोध्या में 'ज्योति' से आवृत, विष्णु का अवतार श्रीराम 'हिरण्मयः कोशः' शब्द से इष्ट हैं। 'स्वर्गः' यह उसका विशेषण है—'स्वः-स्वर्गं गच्छतीति स्वर्गः' स्वर्ग में जाने की यह कथा उत्तर–काण्ड के अन्त में स्पष्ट है।

'सरयूः सिन्धुरूर्मिभिः। (१०।६४।६) यहां वेद में सरयू नदी का वर्णन है। सरयू-नदी का अयोध्या के साथ विशेष सम्बन्ध है, तब अयोध्या नगरी भी सत्ययुग से सिद्ध है, उसे मनु ने बनाया था, (वाल्मीकि रा० १।५।५-६) मनु का नाम भी वेद में स्पष्ट है। जब वेद में सरयू नदी का वर्णन है, तब उसके किनारे पर बसी अयोध्या नगरी का वर्णन भी वेद में सङ्गत है। इससे वेद पीछे के सिद्ध नहीं हो

जाते, क्योंकि उत्तररामचरित में लिखा है—

'ऋषीणां मुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' । (१।१०) ऋषि (वेद) की वाणी पहले चलती है कि अयोध्या और वह अयोध्या पदार्थ पीछे अपने समय में होता है। जैसे कि—"सूर्याचन्द्रमसौ धाता" (ऋ० १०।१९१।३)--यहां वेद में सूर्य-चन्द्रमा का नाम पहिले आया, पर वे पीछे, संमय पर बने।

'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः'(ऋ०सं०१।२६।४) यहां पर राजा दशरथ का संकेत है। जो वेद भाविनी सरयु तथा अयोध्या को जानता है, वैसे वह राजा दशरथ तथा श्रीराम को भी। 'अर्वाची सुभगे! भव सीते! वन्दामहे त्वा' (ऋ० सं०४।५७।६) यहाँ सीता की वन्दना आई है। लाङ्गलपद्धति जड़ है। यदि उसे नमस्कार मानी जाएगी, तो प्रतिपक्षी के मत में वेद में मूर्तिपूजा सिद्ध हो जायगी। सो यहां लाङ्गलपद्धति की अधिष्ठात्री श्रीसीतादेवी ही इष्ट है। वाल्मीकि रामायण में भी श्री सीता का आविर्भाव लाङ्गल से ही स्वीकार किया गया है—तभी तो उसका नाम 'सीता' रखा गया था, 'यथा नाम तथा गुणः'। 'अर्थ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गला दुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता' (१।६६।१४) सूर्य-मण्डलाधिष्ठाता देव को भी 'सूर्य' कहा जाता है। इस प्रकार सीताधिष्ठात्री देवी को 'सीता'। इस कारण उत्तरकाण्ड के अन्त में भीं सीता उस पृथिवी में ही प्रविष्ट हो गई हुई दिखलाई है।

'इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाऽनुयच्छतु' (ऋ० सं० ४।५७।७) यहाँ राम-द्वारा सीता की निग्रह की कथा तथा पूषा (अग्नि-देवता) द्वारा उसको वापिस लौटाना सूचित किया है। यहाँ 'इन्द्र' से 'रामावतार' इष्ट है आपके मान्य श्री उवट ने जिसका आपने 'प्राचीन भाष्यकार के नाते' अवतार-वाद के खण्डनार्थ, नाम-निर्देश किया था, उसी ने यजुर्वेद के 'प्र तद विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः' (५।२०) इस यजुर्वेद-संहिता के मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—'सर्वैरेतैर्मृगादिभिः पदैः इन्द्रो विशिष्यते। स हि विष्णोरुपमानं भवितुमर्हति। मृगो न—मृजूष् शुद्धौ। यथा शुद्धोऽपहत-पाप्मा इन्द्रः······कुचरः—कौ पृथिव्यां चरतीति कुचरः मत्स्यकूर्मादिरूपेण'। इसी प्रकार जिस अवतारवाद के खण्डनार्थ आपने-श्री महीधर को मान्य किया था, उसी श्री महीधर ने भी यहाँ लिखा है—'कुचरः मत्स्कूर्मादिरूपेण इन्द्रः पृथिव्यां चरति'। मत्स्यकूर्मादि अवतारों में श्रीराम की गिनती भी है, श्री उवट-महीधर ने मत्स्यकूर्मादि में 'आदि' शब्द लिखा है। सो इन्द्र वा विष्णु के अवतार रामद्वारा सीता के निग्रह वा ग्रहण की कथा से वेद में अवतार-वाद की पुष्टि हो गई। तब 'राम' शब्द वेद में केवल 'काला रंग' अर्थ वाला न होकर काले रंग वाले रामवतार का भी वाचक हो गया। वेद में दशमुख वाले रावण का भी संकेत है—'ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः' (अथर्व ४।६.१) इन बातों से स्पष्ट है कि 'भद्रो भद्रया' मंत्र में राम से श्याम-रंग वाले श्री रामावतार का भी वर्णन है। जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वान् भी रामायणीय कथा के बीज वेद में मानते हैं।

महाभाष्यकार ने 'चत्वारि शृङ्गा' का अर्थ शब्द (व्याकरण) की ओर लगाया है। 'सुदेवोअसिवरुण' (ऋ० ८।६९।१२) इस मंत्र में सात नदियों का वर्णन होने पर भी इसका 'शब्द की सात विभक्तियों' का अर्थ लगाया है। आप अपने मान्य स्वामी दयानंदजी को ही देख लीजिए 'द्वादश प्रधयः' चक्रमकं···त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिता षष्टिः' (ऋ० १।१६४।४०) यह एक मंत्र है, इसका उन्होंने स्वयं अपने वेदभाष्य में 'संवत्सरात्मा कालः' यह देवता माना है देवता' का अर्थ यहां है 'वर्णनीय-विषय', तब उनको इसका अर्थ वर्ष का लगाना चाहिये था, है भी उसका यही अर्थ कि-वर्ष के १२ मास हैं, ३६० दिन आरे हैं; इत्यादि। निरुक्तकार ने भी इस मंत्र का यही अर्थ किया है। देखिये—श्री यास्क ब्राह्मण-भाग द्वारा उक्त मंत्र का अर्थ बताते हैं—'द्वादश प्रधयः चक्रमेकम् इति मासानाम्। तस्मिन् त्रिशता न शङ्कवः षष्टिः'। षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि 'संवत्सरस्य अहोरात्राः'

(४।२७।१) पर स्वामी दयानंद जी ने इस मंत्र का हवाई-जहाज अर्थ कर डाला है, १२ दरवाजे विमान के बता दिये, तीन सौ खूंटियाँ, ६० कला यंत्र बता दिये, देखो 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—(पृ० २०८) और उनका यजुर्वेद भाष्य--उसमें ३६० खूंटियाँ बता दीं । इन्हें तो श्रीराजेंद्रजी डांटते नहीं कि—इन्होंने प्राचीन भाष्यों के तथा अपने मान्य निरुक्तकार श्रीयास्क से भी विरुद्धअर्थ कर डाला और डांटते हैं सनातनधर्मियों को, कि उन्होंने 'भद्रोभद्रया' का रामावतार अर्थ कर डाला ? अपनों पर उलाहना न देकर दूसरों को उलाहना देना क्या ? स्वामी दयानंद जी पर कृपा क्यों ? 'भद्रोभद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येतिपश्चात् । सुप्रकेतैद्युभिरग्निर्वितिष्ठन् उशद्भिर्वर्णैः अभि राममस्थात् (ऋ० १०।३।३) में 'विनापि-प्रत्ययं पूर्वोत्तरपद लोपः' इस वार्तिक से 'रामभद्र' शब्द में राम का लोप होकर 'भद्र' बच गया, 'उत्तररामचरित' में भी 'रामभद्र' शब्द श्रीराम के लिए आता है, तब यहां अर्थ हुआ—'भद्रः—रामभद्रः भद्रया-सीतया सह आगात्-दण्डकारण्यं प्राप्तः, स्वसारं—सीतां ग्रहीतुं जारः-रावणः-पश्चात्—रामपरोक्षे अभ्येति-आगतः, [ततो रावणे हते अग्निदेवता] द्युभिः-रामदारैः सीतया इत्यर्थः, सह राममभि-श्यामवर्णं-श्रीरामस्याभिमुखम्, अस्थात् यह अर्थ कैसा अन्वित हो रहा है ? यह सनातन धर्मियों की अपनी कल्पना नहीं, इसमें मंत्र-रामायण तथा श्रीनीलकण्ठभाष्य की भी उसमें साक्षी है । यदि अर्वाचीन होने से उस भाष्य को आप अमान्य मानें, तो स्वामी दयानद जी का भाष्य उससे भी अर्वाचीनतम, कल का बना होने से आपको भी अमान्य मानना पड़ेगा । वेद में किसी सिद्धांत-के बीज ही तो देखने पड़ते हैं नहीं तो वेद में न तो स्पष्ट रूप से शिखा का वर्णन आया है, न यज्ञोपवीत का, न ही क्रम से सोलह संस्कारों का । केवल बीज मात्र देखकर शेष बातों का अनुमान करना पड़ता है, वैसा यहां पर भी समझ लें—फलतः, ओम् की सिद्धि करते हुए अप्रासङ्गिक अवतारवाद को उपक्षिप्त कर देना, श्री राजेंद्र जी को योग्य नहीं था ।

आप कहते हैं–वेद में प्रतिमोपासना नहीं है, यह बौद्ध-काल में चली, तभी अवतारवाद को पोषण प्राप्त हुआ, पर प्रियवर, ऐसी बात नहीं है । प्रतिमोपासना, वेद से ही तो निकली है, देखिये 'संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्रि ! उपास्महे । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज' (अथर्ववे०-सं० ३।१०।३) यहाँ पर रात्रि की संवत्सर की प्रतिमा (मूर्ति) रूप में उपासना मानी है और फिर उस प्रतिमा से संतान की समृद्धि प्रार्थित की गई है । यदि वेद प्रतिमा की उपासना न मानता तो रात्रि को संवत्सर की प्रतिमा तथा उसकी प्रार्थना तथा उपासना न कराता,-'प्रतिमामुपास्महे' यह शब्द प्रतिमोपासना को वैदिक सिद्ध कर रहे हैं । अवतारवाद भी वेद से ही निकला है । देखिये, 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते (यजुः वा० सं० ३१।१९) यहाँ पर प्रजापति-परमात्मा का प्राकट्य बताया गया है । 'विजायते' का अर्थ स्वामी दयानंदजी ने भी 'विशेषकर प्रकट होता है' यह किया है । 'विशेषकर प्रकट होना' ही तो 'अवतार' होता है, वैसे वह अप्रकट-रूप में तो सर्वत्र व्यापक रहता ही है । एतदादिक वेदमंत्रों के अनुवाद में अजोपि सन्नव्ययात्मा-भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया (४।६) यह भगवद् गीता में कहा है । तब वेद में सभी अवतारों का चाहे स्पष्ट वर्णन न हो; क्योंकि—वेदों का मुख्य विषय यज्ञ है । जैसा कि—'यज्ञो मंत्र-ब्राह्मणस्य' (न्यायदर्शन ४।१।६२।) इत्यादि; अतः वहाँ अवतारों का वर्णन मुख्यतया कैसे आता ? पर उसका बीज उसमें मिल रहा है, अतः आपको उचित है कि—अवतारवाद के खण्डनांश को भारतीय-संस्कृति से निकाल दें ।

इस प्रकार 'कृष्ण' शब्द 'काले रंग के लिए' यदि आता है; तो श्रीकृष्ण भी तो काले थे, उनके लिए वह शब्द क्यों नहीं आ सकता ? 'यथा नाम तथा गुणः' । अतः वेद में 'कृष्ण' यह नाम भी आ

सकता है। देखिये—'नभो न कृष्णं' (ऋ० ८।६६।१४) यहाँ कृष्ण एक असुर का नाम है। 'अयं वां कृष्णो अश्विना ! हवते' (ऋ० ८।८५।३) यहाँ पर कृष्ण एक ऋषि का नाम है, काले रंग का नहीं, तब 'कृष्णं त एम' (ऋ० ४।७।६) यहाँ पर श्रीकृष्ण-अवतार का नाम भी हो सकता है। इस पर श्री नीलकण्ठ-भाष्य भी देखा जा सकता है। 'कृष्णो दशभिः सहस्रैः।' (ऋ० ८.९६।१३ यहाँ पर कृष्ण एक नाम है, काले रंग का वाचक नहीं।

आप 'रामचद्र' 'कृष्णचंद्र' पूरे नाम मानते हैं; तो वहाँ पर 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से 'सत्यभामा, भामा, सत्या' की भांति 'राम' और 'कृष्ण भी बच सकता है। जब आप 'रामचंद्र' और 'कृष्णचंद्र' इन पूरे नामों में 'अन्धकार युक्त गृह में चंद्र के प्रकाश' से तुलना मानते हैं; तब तो आपने भी हमारा पक्ष सिद्ध कर दिया, 'राम' वेद में 'रामचद्र' 'कृष्ण' वेद में कृष्णचंद्र' सिद्ध हो गये; उन्होने अन्धकार-युक्त भारत में अपने आविर्भाव से प्रकाश कर दिया। यही अवतार का प्रयोजन होता है। श्री गांधी जी की 'रामधुन' में राम 'दाशरथि' नहीं थे, ऐसा कोई नहीं कह सकता। उस में 'रघुपति राघव राजाराम' आदि शब्द दाशरथि को ही तो संकेतित कर रहे हैं। गांधी जी के राम दाशरथि नहीं थे—यह आपकी कल्पित बात है। 'रामराज्य' भी दाशरथि का ही तो था। अन्य कौन 'राम' राजा हुए हैं—जिसके राज्य को गांधी जी घोषित किया करते थे। मालूम होता है कि—श्री धर्मदेवजी सिद्धांतालंकार ने अपनी गांधी जी की मुलाकात में जो यह कल्पित शब्द लिख दिये थे, आपने भी उन्हें ही ब्रह्मवाक्य मान लिया है। गांधीजी का यह भाव था, हम राम को केवल दशरथ के पुत्र में ही सीमित क्यों करें, वह अवतार हैं, अतः परमात्मा हैं।

नाम-कीर्तन को भी आपने व्यर्थ ही आक्षिप्त किया है। वेद में भी उसका मूल मिलता है—'सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि' (साम० सं० २०।३।४।२) यहां परमात्मा का नाम-कीर्तन कहा गया है। 'नामानि ते शतक्रतो ! विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे' (अथर्व २०।१६।३) 'यत् ते नाम सुहवं' (अथर्व ७।२०।२१) इत्यादि अन्य भी बहुत से मंत्र उपस्थित किये जा सकते हैं। तब आप नाम कीर्तन को आक्षिप्त करके वेदों को भी आक्षिप्त करते है। इसी मूल से भगवद्-गीता में कहा है—'सततं कीर्तयन्तो माम्' (९।१४) छांदोग्य-उपनिषद् में भी कहा है—'नाम उपास्स्व' (७।१।४)।

(क्रमशः)

(शेष पृष्ठ १८ का)

काया के कर्मों में दान देना, स्वच्छ और शुद्ध रहना तथा सारे सांसारिक व्यवहारों को धर्म्म पूर्वक निभाना आदि ये सब पुण्यकर्म है। इनका प्रतिदिन अनुशीलन करना आर्य्य सामाजिक जनका कर्तव्य है। आर्य्यों को लेन देन में, बर्ताव-व्यवहार में ऐसे सच्चे, और पक्के होना चाहिए कि उनके सत्य की सब में साख हो, उनकी धर्म्म-धारणा की सर्वत्र धाक हो।

कायिक पापकर्म्म और दोषकर्म्म प्राणियों को पीड़ा देना है, हिंसा करना है, निर्बलों को सताना है, अनर्थ औ अन्याय में लिप्त होना है। किसी की वस्तु चुराना और किसी के अधिकार छीनना है। आर्य्य जनों को इन दुष्कर्म्मों से बचने के लिये सदा सावधान रहना चाहिये।

आर्य्य सामाजिक सज्जन को उचित है कि कायिक कर्म को धर्म्मानुसार बनाने के लिए वह वीर, धीर, निर्भय और निडर हो। वह सर्व धर्म्म-कार्यों में उत्साह दिखाये। कठिन से भी कठिन काम में कूद पड़ने का साहस करे। अपने जीवन को जोखिम में भी डालकर धर्म्म-मान-मर्यादा को न मिटने दे। कर्त्तव्य-पालन में शीतोष्ण, सुख-दुःख भूख-प्यास और रात दिन सब एक ही समान समझे। कायर भाव से अपने धर्म्म को बट्टा न लगाये, अपने कुल को न लजाये, अपनी जाति को नीचा न दिखाये। सदैव पुरुषार्थी और उद्योगी बना रहे। आलस्य और प्रमाद में कभी न पड़े।

(क्रमशः)

वेदप्रकाश के इस वर्ष के उपहार की पुस्तकें

८) रुपये में सर्वोपयोगी निम्न ६ पुस्तकें केवल ४) रुपये में,

(डाक खर्च अलग)

१—आर्य सिद्धान्त प्रदीप

लेखक : श्री मदनमोहन विद्यासागर (स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल रीति से संकलन किया गया है जिससे अल्प प्रयास से ही वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के सम्पादन व संशोधन करने में आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों से सहयोग एवं परामर्श लिया गया है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितनी उपयोगी है, मूल्य १।)

२—संस्कार विधि विमर्श

लेखक :—श्री पं० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न (गु. का.) अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि में वर्णित १६ संस्कारों पर आयुर्वेद परक व्याख्या और प्रजा शास्त्र के आधार पर लिखी गई पहली पुस्तक है।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट भाग में प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग भी दिए गये हैं जिससे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य ३)

३—वेद परिचय

लेखक :— वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती।

वेद हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसका परिचय प्राप्त करना प्रत्येक का परम कर्तव्य है। इस में वेद विषयक जानने योग्य अनेक आवश्यक बातें हैं। मूल्य ।≈)

४—वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य

सन्ध्या विषयक पद पदार्थ तथा भावार्थ सहित उत्तम पुस्तक। मूल्य ≡)

५—स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

लेखक :—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न

राष्ट्र एवं प्रजोत्पादन के लिए स्त्रियों का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। इस ओर असावधान रहना बहुत ही हानिकारक है।

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी अनेक सरल प्रयोग भी दिये गये हैं। जिससे गृहस्थ के अतिरिक्त वैद्य और डाक्टर भी लाभ उठा सकें। मूल्य ३)

६—उपासना योग के आठ अंग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा संशोधित

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, विषयक मनन करने योग्य उत्तम गुटका पुस्तक है मूल्य ≡)

वेद प्रकाश का नवीन वर्ष इसी अंक से आरंभ हो रहा है ग्राहक नं० २,०० तक के प्रायः सभी ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो चुका है। कृपा कर आगामी वर्ष का चन्दा २) तथा उपरोक्त ८) रुपये की ६ पुस्तकें लेना चाहें तो उसके रियायती मूल्य के ४) रुपये मिलाकर ६) का मनीआर्डर तुरंत भेज उपहार की पुस्तकें मंगा लेवें। जो उपहार की पुस्तकें न लेना चाहें वे वेदप्रकाश का चन्दा २) रुपये भेज कर ग्राहक बने रहें। जिनके चन्दे समाप्त नहीं हुए हैं वे भी उपहार की पुस्तकें मंगा सकते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

संसार में भारतीय राजनीति का एक सर्वोत्तम ग्रन्थ
२२०० वर्ष प्राचीन सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री
आचार्य चाणक्य द्वारा लिखित

कौटिल्य अर्थ शास्त्र

* * *

का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हो गया है। यह अपने ढंग का अद्भुत ग्रन्थ है, कहा जाता है कि आज के युग में विज्ञान ने बहुत उन्नति की है परन्तु यही प्राचीन ग्रन्थ ऐसा मिला है जिसने यह सिद्ध कर दिया कि आज के यूरोपियन विज्ञान से, प्राचीन भारत का विज्ञान बहुत उन्नति के शिखर पर था। राजनीति का सर्वोत्तम ग्रन्थ होने के कारण ही स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए ता० १४ मई १९३२ को एक पत्र में अपनी सुपुत्री इन्दिरा को लिखते हैं।

"तुम्हें याद होगा कि अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ के विषय में मैंने तुम्हें एक बार लिखा था इस ग्रन्थ के लेखक नाम चाणक्य या कौटिल्य था। वह अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रधानमन्त्री था। उसने इस पुस्तक में उस समय के लोगों और शासन पद्धतियों के विषय में अनेक बातें लिखी हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानों एक खिड़की खोल दी गई हो, जिसके द्वारा चतुर्थ शताब्दी इ० पू० के भारत की एक झलक हमें मिल जाती है।

इस महान ग्रन्थ में

राजा राजकुमारों, राणियों के कर्तव्य, राज्य संचालन के लिये कितने ही विभागों की रचना, खुफिया पुलिस और पुलिस के कार्य, सैकड़ों प्रकार के स्वर्ण, चांदी आदि धातुओं और रत्नों की परीक्षा, युद्ध के तरीके, जहरीली गैस बनाने के नुसखे, महीनों भूख प्यास नष्ट करने की औषधियों का वर्णन है। यह वही ग्रन्थ है जिसको यूरोप के विद्व ने छापकर ७२) मूल्य रखा है और यूरोप में धड़ा धड़ बिक रहा है। इस महान ग्रन्थ का मूल्य १०) रखा है। अभी से आर्डर देने पर ७॥) में मिलेगा।

भारत के सभी विश्वविद्यालय एम० ए० में इसका अध्ययन कराते हैं।

आज ही पुस्तक मंगा लीजिए।

मिलने का पता:-

गोविंदराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली

हिन्दी में अनुवाद तथा व्याख्या के साथ अष्टाध्यायी के साथ चुने हुए क्रमबद्ध १३५० सूत्रों की व्याख्या

अष्टाध्यायी-प्रकाशिका

ले० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के शिष्य देव प्रकाश पातंजल शास्त्री *B.A.* व्याकरणाचार्य।

सत्यार्थ प्रकाश में प्रदर्शित आर्ष पद्धति के अनुसार प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, निर्देश, अर्थ, उदाहरण तथा आगे पीछे के आवश्यक सभी सूत्रों को लगा कर कार्य प्रदर्शन पूर्वक उदाहरणों की सिद्धि एवं रोचक व्याख्या। परिशिष्ट में सुबन्त और तिङन्त के रूपों में विस्तृत व्याख्या।

संस्कृत न जानने वालों के लिए तथा प्रत्येक श्रेणी के छात्रों के लिए सूत्रों के पढ़ने के प्रकार पर हिन्दी में २० व्याख्यान।

सूत्रों की व्याख्या करके हिन्दी में इस प्रकार समझाया गया कि वेद, उपनिषद, गीता रामायणादि, धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने के अभिलाषी एक घन्टे के परिश्रम से ६ मास में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, १८×२२ के आठ पेजी ६५० पेज के सजिल्द ग्रन्थ का प्रचारार्थ मूल्य ५॥।) डाक खर्च १।=) अलग।

मिलने का पता:– गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

हमारा उच्च कोटि का प्रकाशन

आपके पुस्कालय की शोभा

कृपया ध्यान दीजिये !

भोज प्रबन्ध

(मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित)

भारत के प्राचीन नरेश महाराजा भोज के दरबार में विद्वानो ी उत्तम २ उक्तियें, महा कवियो की महत्वपूर्ण कवितायें एवं हाराजा भोज के न्याय और दानशीलता की मनोरंजक घटनाओं भरपूर है।

इस ग्रन्थ पर मुग्ध होकर भारत सरकार के पूर्व मंत्री श्री काका डगिल महोदय ने भूमिका लिखी है। तथा राजस्थान के राज मुख महाराज श्री सवाई मानसिंह जी बहादुर को (उनके चित्र हित) यह ग्रन्थ समर्पण किया है। मूल्य केवल २।)

डा० बर्नियर की भारत यात्रा

जिस समय दिल्ली में शाहजहां और औरंगजेब का राज्य था उस समय फ्रांस के डा० ने दिल्ली आकर ८ वर्ष तक नौकरी की थी।

इस ग्रन्थ में डा० साहब ने उस समय का अपनी आंखो देखा हाल लिखा है। किस प्रकार शाहजहां और उसके पुत्रो में भयकर रक्त-पात हुआ ? महान शक्ति सम्पन्न होते हुए भी हिंदू नरेश किस प्रकार मुगलों के कुचक्रो में फंसे रहे

ग्रन्थ क्या है उस समय की देश की दुर्दशा का सजीव चित्र है। यही नहीं डाक्टर साहब ने ने अपनी आंखो देखी अनेक नारियो के सती होने का भयंकर वर्णन भी किया है।

पुस्तक का एक २ शब्द पढ़ने योग्य है।

बढ़िया कागज पर मू० ४॥)

एक बार हमारी पुस्तकें अवश्य मंगावें।

गोविंदराम हासानन्द

नई सड़क दिल्ली

सच्चा समय बताने वाली जूलदार घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी

यह घड़ियाँ स्विस मेड (Swiss Made) बिल्कुल ठीक समय बताने वाली बहुत सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और आजकल के फैशन की है। टाइम बिल्कुल ठीक बताती है और ३६ घण्टे की चाबी वाली हैं। हर घड़ी की गारण्टी ५ वर्ष है। सुन्दर तस्मा मुफ्त। हर घड़ी के साथ गारण्टी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है।

नं० ७१ सफेद केस २ जूल २२) सुनहरी २३)
नं० ७२ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २७)
नं० ११ सफेद केस १५ जूल २८) सुनहरी ३०)

वाटर प्रूफ़ आल प्रूफ़ रेड़ियम डायल घड़ियां

नं० २० सफेद, स्टील केस १५ जूल ३७) सुनहरी ४०)
नं० १६ सफेद स्टील केस १७ जूल ४८) सुनहरी ५३)

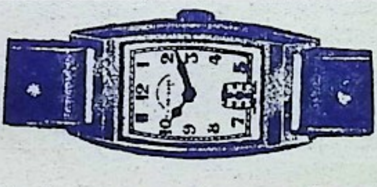

नं ७ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २८)
नं० ८ सफेद केस १५ जूल ३२) सुनहरी ३५)

अति सुन्दर बढ़िया लेड़ी घड़ियाँ

नं० १४ सुनहरी केस १५ जूल ४०) नं० १५ सुनहरी केस १७ जूल ४५

मंगाने का पता—स्वीस वाच कम्पनी
(वी० पी०) ११६ 'ई' कमला नगर, देहली—६

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगावें

-)प्रति, तथा ४)रु० सैकड़ा ३५) रुपया हजार

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य
३० सत्संग भजन
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवादकी रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षासे हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ.स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दों क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

समाज शिक्षा केन्द्रों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लायब्रेरियों पुस्तकालयों गवर्नमेंट टेक्निकल इंस्टीट्यूशनों, बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

टैक्नीकल इण्डस्ट्रियल तथा कृषि सम्बन्धी साहित्य

टैक्नीकल साहित्य

१. इलैक्ट्रिकल इंजीनियरिंग बुक	१०)
२. इलैक्ट्रिक गाइड	६)
३. इलैक्ट्रिक वायरिंग	४)
४. इलैक्ट्रिक बैट्रीज	३॥)
५. इलैक्ट्रिसिटी रूल्ज	१)
६. १० सुपरवाइजर परीक्षा पेपर्स	३)
७. सुपरवाइजर वायरमैन प्रश्नोत्तर	३॥)
८. इलैक्ट्रिक परीक्षा पेपर्स दोनों भाग	६)
९. आयल व गैस इंजन गाइड	१०)
१०. आयल इंजन गाइड	६)
११. क्रूड आयल इंजन गाइड	४॥)
१२. वायरलैस रेडियो गाइड	६)
१३. रेडियो सर्विसिंग (रेडियो मैकेनिक)	६)
१४. घरेलू बिजली रेडियो मास्टर	२॥)
१५. मोटर कार वायरिंग	४॥)
१६. टांका लगाने का ज्ञान	२॥)
१७. छोटे डायनुमो इलैक्ट्रिक मोटर्स	२॥)
१८. प्रैक्टिकल आर्मेचर वाईंडिंग	६)
१९. खराद शिक्षा अथवा टर्नर गाइड	३)
२०. वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	३)
२१. खराद तथा वर्कशाप ज्ञान	६)
२२. इलैक्ट्रिक लाइटिंग	६)
२३. स्टीम ब्वायलर्स और इन्जन्स	६)
२४. स्टीम इन्जीनियर्स	१०)
२५. आईस प्लांट (बर्फ मशीन)	४॥)
२६. प्रैक्टिकल घड़ी साजी	४॥)
२७. साईकिल रिपेयरिंग	२॥)
२८. हारमोनियम रिपेयरिंग	२॥)
२९. ग्रामोफोन रिपेयरिंग	२॥)
३०. सिलाई मशीन रिपेयरिंग	२॥)
३१. इलैक्ट्रिक तथा गैस वैल्डिंग	४॥)
३२. फाउण्ड्री प्रैक्टिस ढलाई का काम	६)
३३. इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
३४. पेंटिंग गाइड	४)
३५. प्रैक्टिकल फोटोग्राफी शिक्षा	२॥)
३६. ट्यूबवैल गाइड	३॥)
३७. A सों फास्ट टाइपिंग टीचिंग (हिंदी)	५)
३७. B ,, ,, ,, (इंगलिश	५)
३८. A [illegible] (हिन्दी)	१॥)
३८. B ,, ,, ,, इंगलिश	१॥)
३९. मोटर कार इन्स्ट्रक्टर	१०)
४०. मोटर ड्राइविंग	४॥)
४१. मोटर [illegible] गाइड	४॥)
४२. मोटर मैकेनिक टीचर	६)
४३. ट्रैक्टर और खेती (ट्रैक्टर गाइड)	६)
४४. सरकिट डायग्राम्स आफ रेडियो	३॥)
४५. मोटर प्राइमर	१।)
४६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
४७. बिना बिजली का रेडियो	१।)
४८. बच्चों का रेडियो	१।)
४९. बच्चों का टेलीफोन	।॥)
५०. बच्चों के वैज्ञानिक खेल	१।)
५१. लोकल रेडियो सैट	१।)
५२. रेडियो का साधारण ज्ञान	१।)
५३. एम्प्लीफायर लाउडस्पीकर	१।)
५४. बच्चों का वायरलैस	१।)
५५. लोकोफिटर गाइड (रेलवे)	१०)
५६. बिल्डिंग कन्स्ट्रक्शन(गृहनिर्माणकला)	१०)
५७. सोप मेकर्स गाइड	६)
५८. मेटल पालिश	२॥)
५९. फरनीचर बुक	१०)
६०. पम्पिंग गाइड	
६१. जनरल मैकेनिकल गाइड	
६२. ब्लैक स्मिथ लुहार	
६३. स्टीम टरबाईन	
६४. वर्कशाप प्रैक्टिस	

इण्डस्ट्रियल साहित्य

१. रंग साजी	४॥)
२. प्लास्टिक गाइड	२॥)
३. बूट पालिश	२॥)
४. फाउण्टेन इंक मास्टर (स्याही बनाना	२॥)
५. कन्फैक्शनरी	२॥)
६. हेयर आयल (खुशबूदार तेल)	२॥)
७. बेकरीव्यापार (बिस्कुट, डबल रोटी, केक)	२॥)
८. अचार चटनी मुरब्बा	१।)
९. पेन्टरी का काम	३)
१०. चित्रकारी अथवा मुसव्वरी	३)
११. परफ्यूमरी मास्टर	४॥)
१२. वार्निश मास्टर (वार्निश साजी)	२॥)
१३. आतिशबाजी का व्यापार	२॥)
१४. हलवाई मास्टर	२॥)
१५. तंबाकू का कारोबार (तंबाकू की दुकान)	२॥)
१६. पान की दुकान	२॥)
१७. छपाई कारखाना (लिथोप्रिंटिंग)	२॥)
१८. कुल्फी बुक	४)
१९. व्यापार बढ़ाने की तरकीबें	२॥)
२०. मोमबत्ती का व्यापार	२॥)
२१ डेरी फार्म का व्यापार	२॥)
२२ [illegible] (कीड़े मार दवाइयां	२॥)
२३. शीशे बनाना (आईनासाजी)	२॥)
२४. धूप अगरबत्ती हवन सामग्री बनाना	२॥)
२५. फेस क्रीम तथा फेस पाउडर बनाना	२॥)
२६. स्लेट और स्लेट लीड पैंसिल बनाना	२॥)
२७. रबड़ की मोहरें बनाना	२॥)
२८. टूथ पेस्ट टूथ पाउडर बनाना	२॥)
२९. गाइड आफ इन्डस्ट्रीज	६)
३०. सिलाई कटाई गाइड	१।)
३१. सत्य व्यापार लक्ष्मी भण्डार	४॥)
३२. लांड्री टीचर (धुलाई शिक्षा)	२॥)
३३. हरफन मौला	१॥)
३४. साबुन शिक्षा तथा साबुन उद्योग	२॥)
३५. शर्बत विज्ञान	२॥)
३६. बुक बाईंडिंग	३)
३७. दर्जी मास्टर	२॥)
३८. व्यापार दस्तकारी	२॥)
३९. नवीन वृहद् पाक विज्ञान	३)
४०. वीविंग कैल्कुलेशन	२)
४१. सूती ऊनी कपड़ों की रंगाई छपाई	३॥)
४२. कपड़े की बनावट और डिजाईन	३॥)
४३ पोल्ट्री फार्मिंग	४)
४४ कॉमर्शियल पोल्ट्री	४)
४५ पोल्ट्री सर्जन	४)

किसान विकास माला सीरीज

रामेश्वर अशांत लिखित १५ पुस्तकें

१. आलू की खेती	॥)
२. टमाटर की खेती	॥)
३. गोभी की खेती	॥)
४. जीरा, धनिया, अजवाइन	॥)
५. तरकारियों की खेती	१॥)
६. अच्छे बीज	॥)
७. अच्छी खाद	२॥)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	॥)
१०. फूल-फुलवारी	२॥)
११. धान की खेती	१॥)
१२. संतरे की बागवानी	२॥)
१३. आम की बागवानी	२)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५ तम्बाकू की खेती	॥)
१६ खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
१७ फलों की खेती	३।)
१८ तरकारी साग भाजी की खेती	३॥)
१९ खेती और ट्रैक्टर हिन्दी	६)

(१) केवल भाव जानने के लिए [illegible] भेजकर २२०० पुस्तकों का १२० पृष्ठ का बड़ा सूची पत्र मुफ्त मंगावें।
(२) पुस्तकालयों तथा पुस्तकविक्रेताओं को उचित कमीशन। विशेष जानकारी के लिए पत्र-व्यवहार करें।

पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली ६.

सुन्दर सुन्दर पुस्तकें

आधुनिक इंजेक्शन बुक	५)
आधु० एलोपैथिक गाइड	८॥)
स्त्री शिक्षा (चतुर गृहणी)	२॥)
आधुनिक दुसूती क० शिक्षा	३)
ऊषा कशीदाकारी	१)
आदर्श कशीदाकारी	३॥)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी (दाई) शिक्षा	३॥)
प्रैक्टि० हिंदी इंग्लिश टी०	४॥)
हिंदी संस्कृत शिक्षा	२)
दर्जी मा० कै० बुक सहित	२॥)
फिल्मी हारमोनियम गाइड	२)
[illegible]	४॥)
राजस्थान का इतिहास	१०)
आर्य समाज के नेता	३)
गीतांजली (टैगोर)	१॥)
वेदान्त छन्दा०स० १भाग	२।=)
ज्ञान वैराग्य छन्दावली(१)	॥=)
,, ,, दूसरा भाग	॥=)
वाल्मीकि रामायण भाषा	१२)
महाभारत बड़ा भाषा	१२)
बड़ी भजन पुष्पांजली	१।)
चाणक्य नीति (सटीक)	॥=)
विदुर नीति (सटीक)	१॥)
भर्तृ हरिशतक (सटीक)	१)
कथा पच्चीसी	॥)
कौटिल्य अर्थशास्त्र	१०)
पंच तंत्र भाषा	३॥)
हितोपदेश भाषा	३)
वैदिक मनुस्मृति	४)
ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२।)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध अखाड़ा ज्ञान	१।)
ब्रह्मचर्य के अनुभव	॥)
योगासन बड़ा	२॥)
शिवाजी (लाजपतराय)	१॥)
मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
राष्ट्र सप० महाराणा प्रताप	१॥)
हिंदू राष्ट्र के चार महापुरुष	३)
वीर पञ्चरत्न	३॥)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
भारत मां के सपूत	३)
स्वाधीनता के पुजारी	३)
हमारे स्वामी	३)
महर्षि दयानन्द	२॥)
जीवन का आनन्द सम्पूर्ण	५॥)
संन्यासियोंके गुप्तनुस्खे	७)
पैसे पैसे के चुटकले	४॥)
देहाती प्राकृतिक चिकित्सा	५)
[illegible] चिकित्सा शास्त्र	४)
घर का वैद्य बड़ा	६)
बाल रोग चिकित्सा	१।)
स्त्री ,, ,,	१।)
पुरुष गुप्त रोग चिकित्सा	१॥)
[illegible]	४)

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलाँ
देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

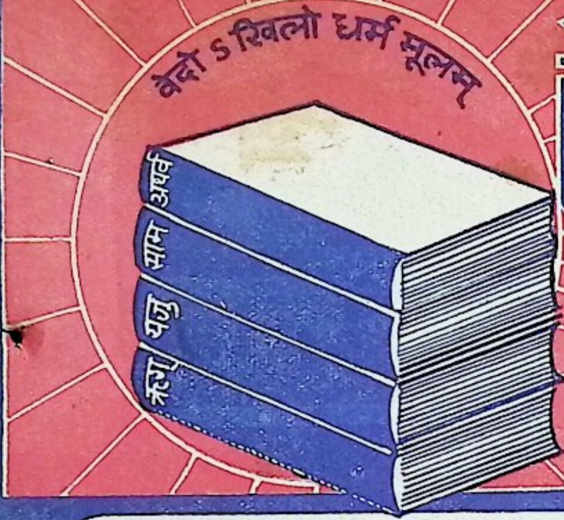

वेद प्रकाश

वर्ष ५ अंक ४ | कार्तिक सं० २०१३, नवम्बर १९५६, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द
मूल्य ≡) वार्षिक २) विदेशों मे ४ शिलिंग

ओ३म्

तेजस्विता

अभिवर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥

अथर्व ६ । ७८ । २

शक्तिवर्द्धक पदार्थों से शरीर को बलशाली बनाकर अपने राष्ट्र के साथ आगे बढ़ें । हजारों गुना तेज से युक्त होकर, राष्ट्रीय वित्त की वृद्धि करें ।

(भुजंगी)

बढो दूध पीके अगाड़ी सदा । बढो राष्ट्र के साथ में ही मुदा ॥
करो वृद्धि प्यारे सदा राष्ट्र की - हजारों गुणा हों धनैश्वर्य भी ।

(गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" आगर)

वेदप्रकाश के ग्राहक बढ़ाइये

ग्राहक बनाने में सहयोग दीजिये । ५ ग्राहक बनाने वालों को एक बर्ष तक वेदप्रकाश बिना मूल्य मिलेगा ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ।

भक्ति करो जन जन्म सुधारो ।
रोम रोम प्रभु देखन हारो ॥

महात्मा आनन्द स्वामी कृत स्वाध्याय योग्य ४ पुस्तकें

प्रभुभक्ति—हैदराबाद जेल में लिखी पुस्तक १।)

प्रभुदर्शन—गंगोत्री की तपोभूमि में लिखी शान्ति प्रदायनि पुस्तक २॥)

तत्वज्ञान—यह पुस्तक दुनिया के कोलाहल से दूर हिमालय के उत्तराखण्ड में तीन वर्ष के मनन तथा गम्भीर विचार के पश्चात् एकाग्रता प्राप्त करके लिखी गई लिखी गई है। पढने योग्य है। मूल्य ३)

आनन्द गायत्री कथा—गायत्री मन्त्र विषयक यह बड़ी रोचक, शिक्षाप्रद तथा आनन्द दायक है। मूल्य ॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

"आराम हराम है"
पं० नेहरू का यह नारा,
द्वितीय पंच वर्षीय
योजना की जान है।
कभी न थकने
आगे बढ़ने, और
निरंतर विजय के लिए
शक्ति की अजस्त्र स्रोत
यौवनदा
का सहारा लीजिए
उत्तराखंड आयुर्वैदिक रसायनशाला
गाज़ियाबाद (उ. प्र.)

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

मोमबत्तियाँ बनाना	३।)
आयल इन्जन गाइड	६)
सुगन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
सिनेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
सुगन्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ज्योतिष शास्त्र	६)
कान्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
बूटपालिश बनाना	३।)
मोटर मिकेनिक गाइड	६)
आइसक्रीम बनाना	३।)
इन्जेकशन बुक	५)
कम्पाउन्डरी शिक्षा	३॥)
सचित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
रबर के गुब्बारे बनाना	३।)
ट्रैक्टर गाइड	६)
इलैक्ट्रिक गाइड	६)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	५)
रोशनाईसाजी	३।)
फोटोग्राफी शिक्षा	३)
रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रंगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४॥)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२॥)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३॥)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३॥)
बैट्री विज्ञान	२।)
सरल हिन्दी इंग्लिश टीचर	२॥)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२॥)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२॥)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४॥)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।।।)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२।।।)
स्वर्णकार शिक्षा	२।।।)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३॥)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२)
श्री प्रेमसागर सचित्र	४)
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

मँगाने का पता :—

एस० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

सामुहिक पूजा विधान

ओ३म् । सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋ० १।८०।९

(सहस्त्रम्) हजारों (साकम्) इकट्ठे, एक साथ (अर्चत) पूजा करो, (विंशतिः) बीसियों एकत्र होकर (परि-स्तोभत) चारों ओर स्तुतिगान करो। और (ब्रह्मोद्यतम्) ब्रह्मचर्चायुक्त (स्वराज्यम) स्वराज्य का (अनु+अर्चन) योग्य सत्कार करते हुए (शता) सैंकड़ों (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (एनम्) इसको (अनोनवुः) प्रणाम करते हैं।

पूजा दो प्रकार की होती है—एक वैयक्तिक, दूसरी सामूहिक=वैयक्तिक पूजा एकान्य स्थान में होती है। सब चिन्तायें हटाकर प्रातः सायं भगवान् की अराधना करना, उसके आगे निष्कपट भाव से अपनी दुर्बलतायें, त्रुटियां कहना, उससे उनके अपाकरण के लिये बल मांगना, प्राणायाम, धारणा, ध्यान समाधि का अनुष्ठान, ईश्वरप्रणिधान आदि सब वैयक्तिक पूजायें हैं। वैयक्तिक पूजा से पूजा करने वाले व्यक्ति का संस्कार होता है, उसके मन और आत्मा का परिष्कार होता है। इस प्रकार से संस्कृत तथा परिष्कृत मनुष्य समाज-सेवा के लिये तैयार होता है।

जिस प्रकार व्यक्ति के संस्कार तथा परिष्कार के लिये वैयक्तिक पूजा—स्तुति प्रार्थना उपासना—अर्चना की आवश्यकता है, वैसे ही समाज के उद्धार के लिये, समाज के सुधार के लिये सामूहिक प्रार्थना-पूजा अनिवार्य्य हैं। सामूहिक पूजा से समूह में बल आता है। सारे समाज का मन एक करने का, विचार आचार एककरनेका यह सर्वोत्कृष्ट साधन है।

जैसे एक व्यक्ति-आस्तिक श्रद्धायुक्त-पूजा के समय साफ सुथरे उज्जवल वस्त्र पहनता है, उसी भांति सामूहिक पूजा के समय सब वस्त्र उजले हों, साफ सुथरे और धुले हों। सब के मन में उमंग हो। सब एक स्वर होकर जब संसार में आन्दोलन उठाते हैं, तो कुठार-कठोर सरकार भी मान जाती है। यदि हजारों एक मन से, एक स्वर से करुणावरुणालय के आगे अपना मनोभाव रखेंगे, तो वह अवश्य उसे पूरा करेगा। उसका तो स्वभाव ही है अपने भक्तों की कमनीय कामनाओं को सतत पूरा करना। अतः वह स्वयं आदेश करता है—

सहस्र साकमर्चत=हजारों इकट्ठे मिलकर पूजा करो।

इससे स्वराज्य-ब्रह्मोद्यत स्वराज्य-का सत्कार होगा।

"स्वाध्याय सन्दोहसे"

स्वाध्याय संग्रह इस पुस्तक में वेद के उपदेशप्रद मुख्य २ अनेक विषयक मंत्रों पर सुन्दर व्याख्या की गई है। सर्व प्रथम इसे आर्य प्रतिनिधि पंजाब ने प्रकाशित किया था : बहुत वर्षों के बाद अब प्रकाशित हुई है मल्य सजिल्द सुन्दर पुस्तक का केवल २) है।

वेदोपदेश—इस पुस्तक में वैदिक स्वदेश भक्ति विषयक अनेक मंत्र व्याख्या सहित है जिसके पाठ से मातृभूमि—प्रजा प्रेम, आदर्श स्वराज्य का सुख, उत्तम भाव हृदय में जागृत होते हैं। मूल्य १) मात्र

वेदपरिचय—वेद हमारा पवित्र ग्रन्थ है इसका परिचय प्रत्येक को होना आवश्यक है। इस पुस्तक में स्वामी जी ने वेदों के विषय में प्रचलित वादों और धारणाओं का विवेचन एवं वेदों की बहिरंग और अन्तरंग परीक्षा करके वेदों का महत्व बड़ी उत्तमता से दर्शाया है। वेद सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ है तथा वेद सरल है कठिन नहीं आदि विषयों पर स्वामी जी ने पूर्ण प्रकाश डाला है। मूल्य ।=)

गोबिन्द राम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

बाल-शिक्षा

(ले० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

धर्म प्र यज्ञा (ऋ० ३।१७।५)

(धर्म) धर्म का (प्र यज्ञा) आचारण कर।

भारत माता के नौनिहालो !

वेद की इस छोटी सी सूक्ति में एक कल्याणकारी उपदेश है 'धर्म का आचारण कर'। धर्म पथ पर चलना प्रत्येक मनुष्य के लिये परम आवश्यक है क्योंकि :—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षिताः। (मनु० ८।१५)

जो लोग धर्म को छोड़ देते हैं, धर्म उन्हें नष्ट कर देता है और जो धर्म की रक्षा करते हैं, धर्म उन की रक्षा करता है।

धर्म क्या है ? वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिन नियमों के पालन करने से लौकिक तथा परलौकिक उन्नति हो उन्हीं नियमों का नाम धर्म है। संक्षेप में कर्त्तव्य का ही दूसरा नाम धर्म है। धर्म का एक अर्थ धारण करने वाला भी होता है।

दार्शनिकों के मतानुसार जिस गुण से पदार्थ की सत्ता स्थिर रहती है वही उस का धर्म होता है। किसी भी वस्तु से उस का धर्म निकाल दिया जाये तो वह वस्तु नष्ट हो जाती है। प्राकृति की प्रत्येक वस्तु अपने अपने धर्म को धारण किये हुए है। अग्नि का धर्म है उष्णता यदि अग्नि अपने जलाने के धर्म को छोड़ दे तो पैरों तले कुचली जाती है। सूर्य का धर्म प्रकाश और उष्णता है, चन्द्रमा का धर्म प्रकाश और शीतलता है, वायु का धर्म प्राणदा, जल का धर्म द्रव्यता तथा शीतलता है, यदि इन में से कोई भी अपना धर्म छोड़ दे तो उस का क्या मूल्य रह जायेगा। इसी प्रकार यदि मनुष्य भी अपने धर्म को छोड़ दे तो उस का कोई मूल्य नहीं रहता वह बिना सींग और पूंछ का पशु बन जाता है।

आर्य कुमारो ! अपनी मनुष्यता स्थिर रखने के लिये धर्म का आचरण करो। प्रभु आप को शक्ति और सामर्थ्य दे कि आप निरन्तर धर्म पथ पर चलते रहें।

दयानन्द-महिमा

(बतर्ज़—शुक्रिया ऐ प्यार तेरा, फिल्म आराम)

शुक्रिया ऐ प्यारे ऋषिवर शुक्रिया ! शुक्रिया !!—टेक

देश को तूने दयालु, अपना सर्वस्व दे दिया !
डूबती थी नाव इसकी, इसको तूने खे दिया !!
हे दयानन्द ! क्या क्या कहूं,
क्या क्या किया ! शुक्रिया !!

त्याग माया मोह सुख औ; विलास वैभव आदि को !
त्याग पिता माता को तूने; अंत अपने आप को !!
हे दया मय ! क्या क्या न त्यागा,
सर्वस्व दिया ! शुक्रिया !!

भारत गारत हो रहा था, छुप रही थी सत्यता !
कट रहीं थी गौ यहाँ नित, धर्म वैदिक लापता !!
ले 'अर्थ' तुमने 'सत्य' का
'प्रकाश' किया ! शुक्रिया !!

देश जाति और धर्म के हित, तुमने अपनी जान दी !
डूबते इस आर्य कुल को, इन अनोखी शान दी !!
'प्रेमी' तूने खुद अमर पद,
पालिया ! शुक्रिया !!···शुक्रिया !!!

—प्रेम कुमार पाण्डेय 'प्रेमी' सिद्धान्त शास्त्री.

—x—

योगीराज दयानन्द

(लेखक—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी, देहली)

आदित्य ब्रह्मचारी, धर्मोधारक युग एवं राष्ट्र निर्माता, क्रान्ति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों के प्रकाण्ड विद्वान्, अद्वितीय शास्त्रार्थ महारथी और महान् तार्किक थे। परन्तु वे शुष्क तार्किक ही न थे अपितु अनन्य ईश्वर भक्त और एक महान् योगी राज भी थे। ऋषिवर घर से निकल कर बहुत काल तक योगियों की खोज में फिरते रहे। स्वामी जी ने आबू आदि पर्वतों पर जा जा कर अनेक योगियों से योगाभ्यास के गूढ़ रहस्यों को हस्तगत करके उन का अभ्यास भी किया था। उन की योग सिद्धि की कुछ घटनाओं का संकलन यहां किया जाता है।

जिस समय महाराज नर्मदा नदी का अनुसन्धान करने के लिये चले तो उन के समक्ष अनेक विघ्न बाधा, कष्ट और आपत्तियां आईं। एक घटना के विषय में स्वामी जो महाराज स्वयं लिखते हैं; "एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। वह गरज कर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और मुझे खाने के लिये मुंह खोला। मैं उस समय कुछ क्षण तक स्पन्दहीन अवस्था में खड़ा रहा और अपनी लाठी धीरे धीरे उस के मुंह पर मारने को उठाई। उसे देख कर न जाने किस कारण वह रीछ हट कर भाग गया।" यह घटना यह सिद्ध करती है कि ऋषि दयानन्द योगी थे। कर्नल अल्काट के कथनानुसार कि क्या योग शक्ति के प्रयोग किये बिना दयानन्द केवल एक पतली सी छड़ी से एक बड़े भारी रीछ को जो आक्रमण करने पर उद्यत हो, हटा कर भाग सकते थे ?

मथुरा में—स्वामी जी एक दिन ध्यान में बैठे थे, उसी समय कोई देवी यमुना में स्नान करने आई और एक भव्य, तेजस्वी, आकर्षक और देदीप्यमान मुर्ति को देख कर, श्रद्धा, प्रेम और भक्ति से अपना शिर उन के चरणों में झुका दिया। स्वामी जी एक दम चौंक पड़े और स्त्री स्पर्श का प्रायश्चित करने के लिये एक निर्जन स्थान में एक गुफा में तीन दिन और तीन रात्रि ध्यानावस्थित और निराहार रह कर प्रायश्चित किया। इस घटना से पता लगता है कि स्वामी जी तीन तीन दिन की समाधि लगा सकते थे।

एक दिन आदर्श शिष्य ऋषिवर को पाठ याद न रहा उन्हों ने दण्डी जी से दुबारा पूछा तो दण्डी जी ने कहा कि हम बार बार नहीं बताते, पाठ स्मरण करके लाओ। जब तक पहला पाठ नहीं सुनाओगे आगे पाठ नहीं पढ़ाया जायेगा। यदि तुम्हें वह प्रयोग याद नहीं आये तो यमुना में भले ही डूब मरना परन्तु मेरे पास न आना। स्वामी जी यह दृढ़ संकल्प करके कि यदि पाठ स्मृति पथ पर नहीं आया तो यमुना में कूद कर प्राण त्याग दूंगा, सीता घाट के ऊपर ध्यानावस्थित हो कर बैठ गये, और उस समाधि अवस्था में ही उन्हें वह पाठ याद हो गया।

कानपुर में :—एक बार पण्डित मोहन लाल विष्णु लाल पाण्डया एक अध्यापक के साथ कानपुर गये। एक दिन वे भ्रमण करते हुए गंगा तट पर निकल गये तो क्या देखते ह कि योगी राज दयानन्द जी एक घाट के बुर्ज पर अर्ध निमीलित चक्ष हो कर बैठे हैं और मधुर स्वर में साम गान आलाप रहे हैं। थोड़ी देर पीछे उन्हों ने पाण्डया जी और अध्यापक महोदय से कहा कि यहां से चले जाइये, यहां उपद्रव होने वाला है। वे जाने को ही थे कि कुछ व्यक्ति

लाठी और ढेले लिये हुए उधर आ गये और महाराज पर ढेले फेंकने लगे।

अहिंसा सिद्धि :—एक दिन स्वामी जी गंगा के प्रवाह में लेटे हुए थे। आधा शरीर जल में था और आधा शरीर जल से बाहर। उसी समय एक मगर आ निकला। पं० हृदय नारायण वकील के लघु भ्राता चिल्ला कर बोले, "स्वामी जी मगर आ गया।" किन्तु स्वामी जी जैसे पहले पड़े थे वैसे ही भय रहित वहीं लेटे रहे तथा कहा कि जब हम मगर का कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें दुःख न देगा।" ठीक है, "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" (यो० द० २।३५) अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के निकट सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं।

कर्णवास में :— एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामी जी को भोजन का निमन्त्रण दिया। स्वामी जी ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। जब भोजन सामने आया तो स्वामी जी ने भोजन करने से मना कर दिया और कहा कि हम उच्छिष्ट भोजन ग्रहण नहीं करते। वस्तुतः बात यह थी कि ब्राह्मण ने पहले ठाकुरों मूर्तियों को भोग लगाया था और फिर उस भोजन को स्वामी के पास लाया था और स्वामी जी ने यह बात योग दृष्टि से जान ली थी।

एक दिन पं० नन्द किशोर जी स्वामी जी के दर्शन करने गये और कुछ श्याम सेम की फलियां स्वामी जी के सामने रख दी। स्वामी जी ने कहा, "आप ये सेम की फलियाँ चोरी करके लाये हो"। पण्डित जी पहले तो कुछ घबराये परन्तु फिर कहा कि मैं ने किस की चोरी की है? स्वामी जी ने हंस कर कहा कि क्या आप ने ये फलियां खेत के स्वामी से आज्ञा लेकर तोड़ी थी। पण्डित जी बहुत लज्जित हुए और अपने अपराध की क्षमा मांगी।

एक बार कर्णवास के एक ठाकुर ने स्वामी जी के उपदेश से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। यज्ञ पिण्ड एक ब्राह्मणको जो अनूप शहर से यज्ञ में सम्मलित होने के लिये आया था, खाने को दिया गया। उस ने यज्ञ पिण्ड को खाने की बजाये फैंक दिया। उपस्थित जनता में से किसी ने भी उसे पिण्ड फैंकते हुए नहीं देखा। परन्तु स्वामी जी को यह बात ज्ञात हो गई। इस पर स्वामी जी ने उस ब्राह्मण का तिरस्कार किया और उस ने भी यह बात स्वीकार कर ली।

काशी में—एक दिन महाराज उपदेशामृत पान करा रहे थे। उपदेश करते करते बीच में रुक गये और कहा कि थोड़ी देर में एक कौतुक होगा। कुछ समय के पश्चात् एक ब्राह्मण स्वामी जी के लिये भोजन और पान लाया, तथा स्वामी जी से भोजन करने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया परन्तु उस के अत्यन्त अनुनय विनय और आग्रह पर पान ले लिया। पान लेकर स्वामी जी ने खोल कर देखा तो ब्राह्मण भाग गया। पान और भोजन दोनों में विष मिला हुआ था।

पटना में—स्वामी जी ने विद्यार्थी राजनाथ को अपने पास रखने की अनुमति दे दी। सायं काल वह अपने छात्रावास में चला गया। रात्रि के समय डिप्टी सोहन लाल ने उसे स्वामी जी के लिये दूध और मिश्री ले जाने को कहा। विवश हो कर डरता हुआ वह स्वामी जी के स्थल की ओर चला। बस्ती के बाहर पहुंचने पर उसे बहुत डर लगा क्योंकि रात अन्धेरी थी और वर्षा भी पड़ रही थी, इतना ही नहीं सड़क के दोनों ओर पानी भरा हुआ था। थोड़ी दूर चलने पर उसे मार्ग में सर्प दिखाई दिया। उसने सोचा पीछे लौट चलें तो पीछे भी सर्प दिखाई दिया। वह बहुत डरा और घबराया परन्तु कुछ सोच कर उस ने आगे बढ़ना ही निश्चित किया। जब स्वामी जी के पास पहुंचा तो स्वामी जी ने कहा कि क्या मार्ग में तू डर गया था, और क्या तू ने सर्प देखा था? राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी ने यह घटना किस प्रकार जान ली।

एक दिन स्वामी जी शौचादि के लिये जंगल गये हुए थे। ब्राह्मण उनके लिय रसोई बना रहा था। उसी समय उसका चचा वहां आया। उसने रसोइये से पूछा कि तुम स्वामी जी के भोजन करने के पश्चात भोजन करते होगे? उसके हां कहने पर चचा ने

कहा तब तो चौका झूठा हो जाता है इसलिए तुम्हें लकीर आदि का नियम बना लेना चाहिए। उस दिन स्वामी जी भोजन करने के चौके से बाहर ही बैठे। जब पाचक ने बाहर बैठने का कारण पूछा तो स्वामी जी ने कहा कि हमें किसी बरादरी का भय थोड़े ही है जो हमें बिरादरी अलग कर देगी।

मुङ्गेर में—एक दिन स्वामी जी का कहार एक लकड़ी की टाल पर सूखी लकड़ी लेने चला गया। जब कहार वापस आया तो स्वामी जी ने राजनाथ विद्यार्थी से कहा कि इसके जूते लगाओ। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ अतः उसने स्वामी जी से पूछा कि इसने क्या अपराध किया है। स्वामी जी ने कहा कि यह टाल पर ईंधन मांगने गया था। टाल उस स्थान से बहुत दूर थी और दिखाई न देती थी।

भागलपुर में—एक अग्रवाल स्वामी जी को अन्न और दूध पहुँचाने लगा। तीसरे दिन स्वामी जी ने कहा कि हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिये। हम ईश्वर नहीं जो तुम्हें पुत्र दें। वह अग्रवाल पुत्र हीन था और पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से ही स्वामी जी को अन्नादि भिजवाया करता था।

एक दिन राजनाथ भोजन बना रहा था तो स्वामी जी ने कहा कि तेरा पिता आ गया। वह रसोई से बाहर आया, उसके पिता का कहीं पता नहीं था परन्तु आधा घण्टा के पश्चात् उसका पिता आ गया।

प्रयाग में—एक दिन स्वामी जी ध्यान से निवृत होकर हंसते हुए बाहर आये। पण्डित सुन्दर लाल ने हंसने का कारण पूछा। स्वामी जी ने कहा कि एक व्यक्ति मेरे पास आ रहा है उसके आने पर आपको एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी देर पश्चात् एक व्यक्ति आया और स्वामी जी के सामने कुछ मिठाई रख कर उसे खाने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने उसे भी मिठाई लेने को कहा तो उसने न ली और कांपने लगा। स्वामी जी ने कहा कि यह विष युक्त मिठाई लाया है। पण्डित सुन्दर लाल ने थोड़ी सी मिठाई एक कुत्ते को खिलाई कुत्ता उसे खाकर मर गया।

अजमेर में—श्यामलाल सिंह रेलवे कार्यालय में एक क्लिर्क था। वह स्वामी जी का अत्यन्त भक्त बन गया। एक दिन उन्होंने स्वामी जी को अपने घर से दूध भिजवाया। उनकी माता को यह बहुत बुरा लगा तथा क्रोधित होकर कहा कि इस मुण्डिया को क्यों दूध पिलाता है? जब श्यामलाल सिंह का नौकर दूध लेकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुआ तो स्वामी जी ने तिरस्कारपूर्वक कहा कि मुझे चिन्ता युक्त दूध नहीं चाहिये इसे ले जाओ और भविष्य में कभी अनिच्छा से भेजा हुआ दूध मेरे लिए मत लाना। श्यामलाल सिंह को घर जाकर पूछने पर अपनी माता की कृपणता का पता चला।

मरने से कुछ ही समय पूर्व महाराज ने कहा था कि पण्डित सुन्दर लाल को बुलवाओ। इस पर लोगों ने कहा कि वे नहीं आये। महाराज ने कहा नहीं वे आ गये। लोग बड़े आश्चर्य चकित हुए जब उन्होंने देखा की महाराज की मृत्यु के पश्चात् ही वह आ गये।

लाहौर में—जिस समय महाराज लाहौर में ठहरे हुए थे उनके पास कालिज के कुछ विद्यार्थी संस्कृत अध्ययनार्थ आया करते थे, उनमें एक युवक गणपत राय भी था। स्वामी जी ने उससे कहा था कि तुम विवाह मत करना क्योंकि तुम्हारी आयु तीस वर्ष के भीतर है। उसने यह सुनकर विवाह करने का विचार छोड़ दिया। परन्तु पिता तथा सम्बिन्धियों के आग्रह पर उसे विवाह के लिये विवश होना पड़ा। २८ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

मुलतान में—पण्डित कृष्णनारायण अपने मुसलमान और ईसाई मित्रों के साथ स्वामी जी का व्याख्यान सुनने गये और सब लोग उनसे पूछने के लिये कुछ प्रश्न ले गये। महाराज ने उनके बिना पूछे ही उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ कर दिया जिससे वे आश्चर्य चकित रह गये। उन लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि स्वामी जी पूर्ण योगी हैं।

दानपुर में:—ठाकुर प्रसाद सुनार ने कुछ समय

पूर्व अपनी पहली पत्नी केहोते हुए दूसरा विवाह किया था। स्वामी जी को इस बात का पता नहीं था! एक दिन उसने महाराज से योग की विधि बताने के लिये कहा। स्वामी जी ने कहा "एक विवाह और कर लो तुम्हारा योग पूरा हो जायेगा।"

एक दिन एक व्यक्ति जो भांग बहुत पिया करता था स्वामी जी के पास आया और पूछा कि चित्त एकाग्र कैसे हो सकता है। स्वामी जी ने कहा "भांग पीने से।" स्वामी जी को उसके दुर्व्यसन का ज्ञान न था।

मेरठ में:—मेरठ में नहर के जिलेदार मुन्शी सेवा राम ने एक दिन महाराज से निवेदन किया कि यदि मैं नहर का डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गया तो पहले मास का वेतन वेद भाष्य की सहायता में दूंगा। कुछ समय के पश्चात वे डिप्टी मजिस्ट्रेट बन गये। उन्होंने यह समाचार किसी को नहीं बताया था परन्तु महाराज ने एक पत्र लिखा जिसमें उन्हें बधाई दी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई।

एक दिन कर्नल अल्काट ने स्वामी जी से कहा "क्या यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य ने अपने आत्मा को एक राजा के शरीर में प्रविष्ट कर दिया था?" स्वामी जी ने कहा, "यह इतिहास की बात है, इसके सत्यासत्य विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना तो मैं भी कर सकता हूं कि शरीर के किसी अङ्ग में अपनी सारी चेतना शक्ति को केन्द्रित कर दूं। इस से उस भाग को छोड़कर शरीर के अन्य भाग मृतवत् हो जायेंगे। यदि आप देखना चाहें तो मैं दिखा सकता हूं। परकाया प्रवेश इस से आगे एक पांव उठाना मात्र है।"

शिवलाल स्वामी जी का बड़ा भक्त था। एक दिन जब वह स्वामी जी से मिलने जा रहा था तो मार्ग में उसे एक सर्प मिला। जब वह स्वामी जी के पास पहुँचा तो स्वामी जी ने कहा कि क्या मार्ग में सर्प देखा था और आप डर गये थे? जब वह जाने लगा तो स्वामी जी ने कहा "छाता ले लिया होता तो वर्षा होने पर भीगने से बच जाते।" उस समय तो शिवलाल को वर्षा का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिया परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहुंचते पहुंचते वह खूब भीग गया।

बम्बई में: - बाबू जनक धारीलाल जी अपनी शंकाओं का समाधान कराने के लिये बम्बई गये परन्तु उन्होंने अपने बम्बई जाने का उद्देश्य स्वामी जी को नहीं बताया। स्वामी जी ने स्वयं ही कहा कि आप कुछ प्रश्न पूछने के लिये आये हैं, उन्हें एक कागज पर लिख लें ऐसा न हो कि भूल जायें। वह प्रश्न लिखने के लिये बैठ गये। परन्तु प्रश्न के लिखते लिखते ही उन्हें उस का उत्तर भासित हो जाता था। अन्त को एक प्रश्न भी ऐसा नहीं रहा जिसका उत्तर उन्हें सूझ न गया हो।

पण्डित आदित्य नारायण ने स्वामी जी से उपासना में मन लगाने की विधि पूछी। स्वामी जी ने कहा कि यम नियम का पालन करो। उनके दुबारा और तीसरी बार पूछने पर भी स्वामी जी ने वही उत्तर दिया। पण्डित जी पहले तो कुछ चिढ़े परन्तु जब ठण्डे मस्तिष्क से विचार किया तो ध्यान आया कि वह एक मुकद्दमे में झूठी साक्षी देकर आये थे और फिर भी देने वाले थे। इसीलिये महाराज ने यम नियम के पालन पर इतना बल दिया था। स्वामी जी यह बात अपनी योग शक्ति द्वारा जान गये थे।

उदयपुर में:—महाराणी गर्भवती थी। एक दिन महाराज ने महाराणा से कहा पुत्र होगा। प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि पुत्र ही हुआ। स्वामी जी की बात सत्य सिद्ध हुई।

नौलखा उद्यान के समीप ही एक बड़ा सरोवर है। स्वामी जी गौवर्धन पर्वत को उसी के किनारे २ जाया करते थे। एक दिन सहजानन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाये जल पर ध्यानावस्थित हैं सहजानन्द को यह देखकर आश्चर्य हुआ परन्तु गुरुदेव की योग विद्या में प्रवीणता देखकर वे अत्यन्त हर्षित हुए।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्री डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर–इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जांय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय - दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देने के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य-समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

३—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है-"हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—'नव-भारत टाइम्स' लिखता है—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, आज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून

॥ ओ३म् ॥

हमें क्या चाहिये

(लेखक :—पूर्ण चन्द्र, एडवोकेट, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र०)

आर्थिक दृष्टि से

आय में वृद्धि आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति ।
आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता से मुक्त रहना ।

आर्थिक दृष्टि से केवल आय की वृद्धि की चिन्ता करने से आर्थिक संकट दूर नहीं हो सकता । आवश्यक यह है कि आय की वृद्धि के साथ साथ व्यय में कमी भी करने पर विचार किया जाये । व्यय की कमी के लिये हमें अपना स्वभाव अपनी आदतें, अपना आदर्श, निर्माण करना पड़ेगा । महात्मा गांधी जब स्वराज्य का आन्दोलन कर रहे थे उस समय वह भारत को आर्थिक दृष्टि से सुखी बनाने के लिये सदैव व्यय की कमी पर बल देते थे । आज दशा यह है कि प्रत्येक को आय बढ़ाने की धुन है । परन्तु व्यय किस प्रकार कम हो सकता है उस पर ध्यान नहीं है । आय बढ़ाना किसी हद तक अपने आधीन है, परन्तु यदि लक्ष्य आय बढ़ाना ही होगा और व्यय की ओर ध्यान नहीं होगा तो सम्भव है कि पूरा पुरुषार्थ करने पर भी प्रर्याप्त आय न हो और ऐसे व्यय शेष रह जाये जिनकी पूर्ति के लिये हमें अनुचित उपाय प्रयोग में लाने पड़े । व्यक्तिगत दृष्टि से व्यय का लेखा प्रत्येक को रुणिवाद, रिवाज, सामाजिक परिस्थिति वंश परम्परा, के आधार पर नहीं बनाना चाहिये । यदि व्यय का लेखा उपरोक्त आधार पर बनेगा तो उनका पूरा होना सम्भव नहीं और उनकी पूर्ति के लिये अनुचित उपाय प्रयोग में लाने होगे । ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि व्यय को मर्यादित किया जाये और व्यय की मर्यादा से अभिप्राय यह है कि आवश्कताओं को मर्यादित किया जाये । जो अति आवश्यक हो उसके लिये व्यय करना तो अनिवार्य है । साधारणतया व्यय तीन श्रेणियों में विभाजित हो सकता है ।

(अ) सुख चैन, और मनोरंजन में

अंग्रेजी में इसे लगजरीज़ कह सकते हैं ।

(ब) आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति में नेसिसिटीज़ ।

(स) दुरव्यसनों में इविल्स ।

यदि प्रत्येक नागरिक अपने व्यय के बजट को उपरोक्त तीनों श्रेणियों में विभाजित करें तो उसको सबसे पहले जो उसके दुरव्यसन है उनका त्याग करना होगा । उसके पश्चात् उसको जो व्यय (अ) के अन्तर्गत अर्थात् सुख चैन और मनोरंजन के अन्तर्गत आते हैं उन पर विचार करना होगा । सब से अधिक बल उसको आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाना पड़ेगा । और क्या आवश्यक है इस पर भी प्रत्येक अवसर पर विचार करना होगा । अमेरिका के एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि यदि प्रत्येक प्राणी जब किसी पदार्थ के क्रिया करने की इच्छा करे तो उसको यह सोचना चहिये कि क्या इसका खरीदना अनिवार्य है । क्या इसके बगैर मैं नहीं रह सकता । क्या इस प्रकार की वस्तुए मेरे पास अभी प्रयाप्त नहीं है । क्या मैं इसमें व्यय करके अपनी अन्य आवश्यक कार्यों की पुरती से वंचित तो नहीं हो जाऊंगा । यदि उपरोक्त चार प्रश्नों पर विचार कर लिया जाये तो खरीदते समय एक प्रकार की चेतावनी स्वमेव, स्वभाव का अङ्ग बन जायेगी। और सम्भव है कि कई बार कोई व्यक्ति खरीददारी से रुक जाये और उस धन को अन्य आवश्यताओं के लिये बचा सकें । मनोरंजन भी जीवन के लिये

आवश्यक है। और वह भी किसी सीमा तक आवश्यकता की श्रेणी में आते हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध में निर्णय करने में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और भावनाओं को मर्यादित करना होगा। यदि इच्छायें मर्यादि हुई तो वहुधा जिन्हें हम केवल सुख चैन और मनोरंजन के आधार पर करने अथवा उस में संलग्न होगे, जरा सी भूल से वह परिवर्तन होकर दुरव्यसन का रूप धारण करेंगे। और दुरव्यसन में फंसा हुआ व्यक्ति किसी प्रकार के मनोरंजन में कुछ स्वरक्षित और मर्यादित नहीं रह सकता। और उस को अपने आवश्यक व्यय से वंचित होना पड़ेगा। व्यक्तिगत जीवन में हमें अपने स्वभाव को मनोविज्ञान की दृष्टि से ठीक बनाना है। और अपने दृष्टि कोण को ठीक रखना है। भारत की संस्कृति बड़ी बनाने के लिये अधिक व्यय की द्योतक नहीं थी। भारत की संस्कृति में बड़प्पन और महत्व, कम व्यय, कम दिखावा, और कम अनुकरण में था। जितने प्रसिद्ध राजनीति के विचारक हुए हैं उनके लिए तप और त्याग की गाथाए प्रसिद्ध हैं। चाणक्य जो प्रसिद्ध अर्थ शास्त्र का विद्वान था, राजनीति का विशारद था, उसके पलये प्रसिद्ध है कि वह प्रधान मन्त्री होता हुआ भी एक फूस के झोपड़े में नदी के तट पर निवास करता था। आज भारत देश के सामने एक समस्या है। ३६ करोड़ की आवादी है उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता और आवश्कताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार की योजनाए बनी जा रही है। परन्तु जो योजनाए बन रही है उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि देश के लिये हितकारी अवश्य है प्ररन्तु वतमान परिस्थति में उन में से बहुत ऐसी है जो आर्थिक दृष्टि से सामर्थ के बाहर है। जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में व्यय के मर्यादा की आवश्यकता है उससे अधिक आवश्यक समाजिक जीवन में और राष्ट्रीय जीवन में व्यय का मर्यादित होना अनिवार्य है।

सामाजिक जीवन में

हम केवल उदाहरण के लिये सामाजिक जीवन के दो आवश्यक उदाहरण उपस्थिति करेंगे, एक विवाह दूसरे मृत्यु के अवसर पर व्यय।

विवाह में बरात, बाजा, शान, दिखावा, दावत; धूम धाम, तड़क भड़क, विवाह के आवश्यक अंग बने हुए हैं। हर एक को दहज की कुप्रथा सता रही हैं। हर एक का विवाह के अवसर पर व्यय के साधन जुटाने में महान कठिनाई होती हैं परन्तु होती आई है करना ही पड़ेगा. नहीं करेंगे तो नाक कटगी, बदनामी होगी। ऐसे विचार सामने आते हैं और अच्छे से अच्छे व्यक्ति को मार्ग से विचलित कर देते हैं। वह व्यय के साधन जुटाने में तत्पर हो जाते है और उपायों को उचित और अनुचित होने पर ध्यान नहीं दे पाते। व्यय के अधिक होने से आर्थिक परिस्थिति चिन्ताजनक हो जाती है। इसी प्रकार जब परिवार में मृत्यु हो जाय तो मृत्यु के पश्चात जो व्यय करना पड़ता है, दावत देनी पड़ती है, बिराद्री को एकत्रित करना पड़ता है। यह सब व्यय बड़ा आवश्यक प्रतीत होते हैं परन्तु यदि विचार की दृष्टि से देखा जाय तो मृत्यु के पश्चात् व्यय करना प्राचीत आर्य संस्कृति के बिल्कुल विपरीत है। मृत्यु के पश्चात किसी भी प्रकार का आनन्द, उत्सव मनाना, एक दूषित मर्यादा है। इस प्रकार और जो व्यक्तिगत जीवन व कृत्य है और जो सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है उनमें भी आवश्यक व्यय करना पड़ता है। संस्कार बड़े लाभदायक है, परन्तु संस्कारों के साथ जब से व्ययों का प्रश्न सम्बन्धित हुआ उस समय से संस्कारों का महत्व कम हो गया है। केवल दिखावा और धूम धाम सन्मुख है। बहुत से परिवार और व्यक्ति ऐसे हैं जो व्यय नहीं जुटा सकते और व्यय न जुटाने क कारण समय और अवसर आने पर भी आवश्यकता अनुभव करते हुए भी संस्कार नहीं करा सकते और नहीं कराते। सामाजिक दृष्टि कोण से इस मनोविज्ञान का प्रचार होना चाहिए कि बड़ा वह है जो व्यय कम करता है। अधिक व्यय करने वाला बड़ा नहीं है। यदि इस प्रकार का मनोविज्ञान प्रचलित हो जायेगा तो सामाजिक दृष्टि से आर्थिक

संकट का निराकरण हो सकता है ।

राष्ट्रीय जीवन में

राष्ट्रीय जीवन में भी व्यय की मर्यादा अति आवश्यक है। संचालक और संचालित राष्ट्र के दो अंग हैं। हाकिम, अफसर, संचालिका की श्रेणी में है और शेषन संचालिता की। यदि संचालन की रुप रेखा और शान अधिक वेतन कार और कोठी से सम्बन्धित है तो व्यय की मर्यादा बहुत कठित होगी। अधिक वेतन, अधिक व्यय यह साथ साथ चलता है और राष्ट्र की समस्या सुलझनी जाती है। महात्मा गाँधी ने नौकरियों के सम्बन्ध में अधिक से अधिक ५०० रुपया मासिक की सीमा निधारित करदी थी। और उनका अभिप्राय था कि यदि नागरिकों में यह भावना है कि स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् उनसे संचालक इस भावना के है कि वह तप और त्याग से जीवन व्यतीत करते हैं वास्तविक अर्थ में जन सेवकताकी उनके अन्दर अधिक श्रद्धा उत्पन्न होगी वह अपने अपने संचालक के जीवन से शिक्षा लेने और स्ययं भी नागरिक अपने जीवन को मर्यादित करने के लिये उत्साहित होगा। यदि यह भावना रही कि विना कार के व्यक्ति बेकार है तो कार के लिए अवश्य चिन्ता होगी। और कार जुटाने के लिये हर प्रकार के कार करने पड़ेंगे,बुरे,भले, अनुचित इसलिये जहां वर्तमान संचालक कर लगाकर आय बढ़ाने की चिन्ता कर रहा है उनका नवीन कर लगान के साथ साथ व्यय में कमी करने के उपाय पर विचार करना चाहिये। और यदि वह बहुत अधिकार साधारण भावना में रहा केवल आवश्यक राष्ट्रीय कामों के लिये मोटर प्रयोग कर सका तो एक राष्ट्र में एक ऐसा मनोविज्ञान उत्पन्न होगा जिससे स्वयमेव व्यय में कमी हो सकेगी। और अधिक व्यय होने के कारण जो अधिक आय बढ़ाने की चिन्ता होती है जिसका नाम भ्रष्टाचार बहुदा हो जाता है उसमें कमी हो जायगी। आगामी नर्वाचन में यह पृथक होनी चाहिये कि जो उम्मीदवार सबसे कम व्यय करे वह सच्चा देश, सेवक है। अधिक व्यय करेगा तो उसके लिये यह धारणा होती है कि यह अधिक व्यय अधिक कमाई के लिये कर रहा है। अधिक व्यय करके निर्वाचन में सफल होगा। और निर्वाचित होकर अपने पद का दुप्रयोग करना और किसी न किसी प्रकार से आय बढ़ाने की चिन्ता करना और अपने व्यय की पूर्ति करना। जो कमाइ की दृष्टि से निर्वाचन में भाग लेता है वह राष्ट्र के लिये अहितकर है और मर्यादा भंग करता है। आज कृषि में बड़े बड़े जमीदारों को मिटाकर राजाओं को मिटाकर भूमियाँ नागरिकों में इस प्रकार विभाजित की जा रही है कि किसी व्यक्ति के पास १०० बीघे से अधिक भूमि न हो। और इस का अभिप्राय यह कि जितनी भूमि जिसके पास है वह उसको ठीक २ रख सके और उसकी आय से अपना निर्वाह कर सके। जो दृष्टिकोण व्ययवसाय, वाणिज्य और अन्य विभाग में है वह दृष्टिकोण सब से पहले राष्ट्र के संचालकों का अपने सम्बन्ध में चरितार्थ करना चाहिये। यदि आगामी निर्वाचन से पूर्व अपने राष्ट्र के संचालक, मन्त्री मन्डल और अधिकारी अपने त्याग का परिचय देकर : व्यय के सम्बन्ध में मासिक परिवर्तन करके अपने साम्यवादके प्रेम और नीति का परिचय दे तो जनता में एक विशेष श्रद्धा की लहर उत्पन हो सकती है। आज पंचवर्षीय योजना के नाम पर निमक, अनाज, चीनी, आटा, कपड़ा सब पर कर लगाया जा रहा है। परन्तु एक ओर जनता को अपनी और खींचना है दूसरी ओर विशेष, नवीन कर लगाकर उनका अपने से विरुद्ध करना है। यदि योजना की पूर्ति के लिये व्यय की आवश्यकता है तो जिन के द्वारा व्यय होता है जो सामवाद के प्रेमी और प्रचारक हैं जिन का आदर्श मोटा, पहनना हैं सादा जीवन है वह अधिक व्यय के लिये वेतन वृद्धि के लिए क्यों आन्दोलन करते हैं इससे जनता में एक बड़ी विपरीत भावना उत्पन्न होती है। आगामी वजट में व्यय की कमी में मौलिक परिवर्तन होना चाहिए। और उस परिवर्तन को निर्धारित करते समय पूर्वीय संस्कृति के आदर्श को लक्ष्य मे रखना होगा। अब हमारे राष्ट्र निमाताओ को पद यात्रा की अच्छी सूझी है

(शेष पृष्ट १५ पर)

ईश्वर में अविश्वास क्यों

पं० रामचन्द्र देहलवी का एक भाषण

यह भाषण पण्डितजी ने आर्य समाज बाजार सीताराम के वार्षिकोत्सव के अवसर पर लगभग ढ़ाई वर्ष पूर्व दिया था । पाठकों के लाभार्थ उसे यहां दिया जा रहा है ।

—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

आज कल कुछ मित्रादि अथवा दूसरे व्यक्ति जब मुझसे मिलते हैं तो मुझसे प्रायः यह प्रश्न किया करते हैं, "क्या कारण है कि ईश्वर के अस्तित्व के विषय में इतने भाषण होते हैं फिर भी लोगों का ईश्वर में विश्वास समाप्त होता जा रहा है ? बात सत्य है और मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि लोगों का ईश्वर में अविश्वास बढ़ता जा रहा है। आज मैं ईश्वर में अविश्वास क्यों बढ़ता जा रहा है, इसके क्या कारण हैं, इसी विषय पर अपने विचार रक्खूंगा ।

(१) परिवार में ईश्वर भक्ति या पूजा का न किया जाना:—आज कल परिवारों में न ईश्वर भक्ति है, न ईश्वराधन किया जाता है, संध्या, अग्नि होत्र आदि की ओर भी कोई ध्यान नहीं है । इनके न होने के कारण ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास समाप्त होता जा रहा है । जहाँ हर समय रेडियो बजता है, सनिमा के गाने गाये जाते हैं और अल्ला से ज्यादा नम्बर सुरैया का है, वहाँ ईश्वर को कौन पूछता है। जैसा घर का वातावरण होता है वैसा ही प्रभाव पड़ता है। घर में ईश्वर भक्ति या पूजा न होने के कारण ईश्वर को भूल जाते हैं, ईश्वर का विचार ही नहीं रहता। ईश्वर में आस्था और विश्वास उत्पन्न करने के लिये ईश्वर भक्ति और पूजा जारी रहनी चाहिये।

(२) ईश्वर को ऐसे रूप में रखना जो समझ में न आये:—ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु सर्वव्यापक है, परन्तु साम्प्रदायी लोगों ने उस को साधारण जनता के सामने उल्टे ढग से रक्खा है । साम्प्रदायी लोगों ने परमात्मा को गलत समझा और उसको उसी गलत रूप में लोगों के सामने रख दिया । इसमें परमात्मा का कोई दोष नहीं क्यों कि परमात्मा तो सबको ज्ञान देता है, जब भी कोई बुरा कर्म करने लगता है तो उसे उस कार्य के करने में भय, शंका और लज्जा होती है, परन्तु इस ज्ञान को लेता कोई कोई है । जैसे मच्छर सारे 'पिन पिन' करता है परन्तु सुनाई उस समय देता है जब वह कान के पास आता है । साम्प्रदायी लोगों ने अपने अज्ञान के कारण मकान के एक आले में गणेश की मूर्ति रखकर ईश्वर घोषित कर दिया । परन्तु क्या गणेश ईश्वर हो सकता है ? कदापि नहीं । क्या हाथी का सिर कभी किसी बच्चे के सिर पर आ सकता है ? ऐसी बातों से अविश्वास तो होगा ही। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में मूर्ति पूजा को अवैदिक बताते हुए इसके खंडन में १६ युक्तियां दी हैं । मूर्ति पूजकों ने मूर्तियों को ईश्वर का प्रतिनिधि बना दिया। मूर्ति ने भी इतनी गैरत (शर्म) तो की कि ईश्वर नहीं खाता तो वह भी नहीं खाती क्योंकि वह ईश्वर का प्रतिनिधित्व कर रही है। आज सारी बातें उल्टी हो गई हैं। लोग ईश्वर को बनाकर उसके मालिक हो गये है। जो सब का ख्याल रखता है, लोग उसका ख्याल रखने लगे हैं। उसको ताला लगाकर रखते हैं। उसे जगाने

और खिलाने का ध्यान भी पुजारी रखता है। वास्तव में तो पुजारी लोगों को यह शिक्षा देता है कि मूर्ति जड़ है, चेतन नहीं है, इसकी पूजा नहीं करनी चाहिये परन्तु लोग छोड़ते नहीं हैं। पुजारी का अर्थ है पूजा+अरि=पूजा का शत्रु। दिन के प्रकाश में बत्ती जलाकर और घण्टी बजाता हुआ पुजारी लोगों को मूर्ति का एक एक अवयव दिखाता है और उन्हें यह बताता है कि अच्छी प्रकार देख लो, यह पत्थर है, जड़ है चेतन नहीं है। इसी प्रकार एक बार नहीं दोबार नहीं सात बार ऊपर से नीचे तक दिखाता है कि पत्थर है। लोग फिर भी हाथ जोड़े ही खड़े रहते हैं तो वह हाथ में पानी लेकर उनके ऊपर फैंकता है कि अब भी समझ में नहीं आता तो एक चल्लु पानी में डूब मरो। परमात्मा का वास्तविक स्वरूप तो वेद ही बताता है:—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४०।८ ॥

वह प्रभु सर्वत्र व्यापक, सर्वोत्पादक, शरीर तथा नस नाड़ी के बन्धन से मुक्त, शुद्ध और पाप रहित है। वह क्रांतदर्शी, मन की बात जानने वाला, सर्वत्र प्रकट और स्वतन्त्र सत्ता है तथा ठीक ठीक रचना करता है।

कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्म ही ब्रह्म है और सब कुछ मिथ्या है परन्तु यह भी गलत बात है। कोई भी वस्तु अकेली बेकार होती है चाहे डाक्टर हो या प्रोफैसर, दुकानदार हो या दस्तकार। एक डाक्टर है परन्तु न उस के पास दवाई हैं न औजार हैं तो उस का होना और न होना बराबर है। डाक्टर है, दवाई भी है परन्तु मरीज नहीं तब भी बेकार है अतः सिद्धान्त यह निकला कि किसी भी कार्य के लिये तीन वस्तुओं का होना आवश्यक है। इसी प्रकार परमात्मा जीवात्मा और प्रकृति तीनों का होना अत्यन्तावश्यक है। यह सिद्धान्त भी अशुद्ध है कि जीवात्मा परमात्मा बन जाता है, जीवात्मा परमात्मा कदापि नहीं बन सकता।

(३) बहुत प्रार्थना करने पर भी इच्छा की पूर्ति न होना। कभी कभी ऐसा होता है कि बहुत बार प्रार्थना करने पर भी इच्छा पूरी नहीं होती। इस से ईश्वर में अविश्वास उत्पन्न होता है। जब लोगों की इच्छा पूरी नहीं होती तो वे कहते हैं कि परमात्मा अपने पुत्र जीवात्मा की इच्छा पूरी करने में (Miserably fail) बुरी तरह फैल हो गया। परन्तु यह बात ठीक नहीं। इस का समाधान एक दृष्टान्त द्वारा बहुत अच्छी प्रकार समझ में आ जायेगा। एक पिता अपने बच्चे के साथ बाजार जा रहा है। बाजार में जाते हुए बच्चा बड़े पकोड़े देखता है और पिता से कहता है दिलवा दो। पिता कहता है तुम्हें (Hopping cough) काली खांसी है। यह हानि करेंगे। बच्चा दूसरी और तीसरी बार कहता है परन्तु पिता दिलवाता नहीं। घर आकर बच्चा अपने सब भाई बहनों को इकट्ठा करके कहे कि हमारे पिता जी हमारी इच्छा की पूर्ति में (Miserably fail) हो गये हैं तो क्या यह ठीक है ? इसी प्रकार बच्चा पतंग उड़ाने जा रहा हो और पिता कहे कि नीचे चलो, तो क्या पिता बच्चों की इच्छाकी पूर्ति करने में फैल हो गया ? ठीक यही दशा उस प्रार्थना की है। जब ईश्वर देखता है कि इस प्रार्थना से लाभ नहीं होगा तो वह इच्छा की पूर्ति नहीं करता। ईश्वर फैल नहीं होता।

प्रार्थना का फल इच्छा की पूर्ति नहीं, अपितु प्रार्थना का फल है अभिमान का नाश, उत्साह की वृद्धि और सहाय का मिलना। कभी मनुष्य जब किसी कठिन कार्य को कर लेता है तो उस को अपनी शक्ति का अभिमान हो जाता है, परन्तु जब वह यह सोचता है कि ईश्वर अधिक शक्तिशाली है तो उस का अभिमान चूर हो जाता है। जब मनुष्य का ईश्वर में पूर्ण विश्वास होता है तो उस में उत्साह की वृद्धि होती है और कार्य करते हुए उस में सहायता भी प्राप्त होती है।

उपासना से पहाड़ के समान दुःख आने पर भी मनुष्य घबराता नहीं क्योंकि वह समझता है कि इस

कष्ट में भी मेरी भलाई ही है। एक बच्चे को उस के माता पिता नश्तर लगवाने के लिये ले गये। माता पिता दोनों ने बच्चे के हाथ और पैरों को कस कर पकड़ लिया। बच्चा सोचता है कि यह क्या हो रहा है, जो माता पिता मेरे लिये दूसरों से लड़ते थे, आज क्या कर रहे हैं ? परन्तु माता पिता किसी बुरी भावना से ऐसा नहीं कर रहे अपितु अपने पुत्र की भलाई के लिये ऐसा कर रहे हैं। आपत्ति और कष्ट आने पर भी ईश्वर पर दृढ़ विश्वास होना चाहिये। ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।

(४) भगवान् जागरूक नहीं प्रमाद में पड़ा हुआ है। पुलिस कितनी सतर्क है। दिन का तो कहना ही क्या रात में भी चोर और डाकूओं को पकड़ती है, किन्तु ईश्वर कुछ नहीं करता इस लिये प्रमादी है, और उस के प्रमादी होने से ही लोगों में ईश्वर अविश्वास बढ़ता जा रहा है।

समाधान :—यहां एक ही बात के दो हिस्से कर दिये हैं। गवर्नमेण्ट परमात्मा का ही प्रबन्ध है। यह ईश्वर के कार्य में सहायक है। ईश्वर सब कुछ देखता है परन्तु सब कुछ नहीं कर सकता और सब कुछ करना आवश्यक भी नहीं। परमात्मा कर्मों के अनुसार जीव को फल देता है, इस में तनिक भी त्रुटि नहीं हो सकती। परमात्मा सदा जागरूक रहता है, वह प्रमादी कदापि नहीं हो सकता।

(५) किसी प्रिय व्यक्ति का नाश हो जाना या मर जाना :—जब किसी व्तक्ति का कोई प्रिय सम्बन्धी मर जाता है तो उसे ईश्वर में अविश्वास हो जाता है। एक पीर जी की घर वाली मर गई तो कहने लगा, "तेरा क्या गया, मेरा घर बिगड़ गया। इन बच्चों को तू पालेगा क्या ?"

समाधान :—जब ईश्वर की ओर से विपत्ति आती है तो समझना चाहिये कि इस में हमारी भलाई है क्योंकि Adversity makes man pure. विपत्तियां मनुष्य को ऊंचा उठाती हैं। संसार के महा पुरुषों पर विपत्तियां आई हैं। विपत्तियां तो प्रभु की याद दिलाने के लिये आती हैं, परन्तु लोग फिर भी ईश्वर को भूल जाते हैं। मृत्यु क्या है ? प्रकृति और जीवात्मा के मिलाप का नाम जन्म और प्रकृति तथा जीवात्मा के वियोग का नाम मृत्यु है। जो उत्पन्न हुआ है यह मरेगा अवश्य। योगेश्वर कृष्ण ने भी गीता में ऐसा ही कहा है :—

> जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
> (गी० २।२७)

जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उसका जन्म भी अवश्य होगा। जब जन्म के पीछे मृत्यु और मृत्यु के पश्चात जन्म लगा हुआ है तो घबराहट और निराशा किस लिये ?

(६) पापियों को सुख में और पुण्यात्माओं को दुःख में देख कर ईश्वर में अविश्वास पैदा होता है।

समाधानः-पापियों को सुख में और पुण्यात्माओं को दुःख में देख कर लोग कारण और कार्य का सम्बन्ध लगा लेते हैं। इसी उल्टी धारणा से ईश्वर में अविश्वास उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति कर्म तो अच्छा कर रहा है और उसका फल उसे दुःख मिले, यह कदापि नहीं हो सकता। अच्छा कर्म करते हुए आ गया यह बात तो ठीक है परन्तु यहां (cause and effect) कार्य और कारण का सम्बन्ध नहीं है। दूसरी ओर एक व्यक्ति कार्य बुरा कर रहा है और उसे फल अच्छा मिल जाये यह भी ठीक नहीं। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। एक व्यक्ति ने चोरी की और फिर सन्ध्या करने लगा। पुलिस आई। और उसे पकड़ कर ले गई। इस व्यक्ति को सन्ध्या के कारण नहीं पकड़ा गया अपितु सन्ध्या के समय पकड़ा गया। पापियों को सुख और पुण्यात्माओं को दुःख पूर्व जन्म के कर्मों के कारण है।

(७) घातक का न पकड़ा जाना और निर्दोष का फंस जाना। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कत्ल करने वाला बच जाता है और निर्दोष व्यक्ति फंस जाता है तो लोग कहते हैं कि यह क्या प्रबन्ध है ?

समाधानः—यह ठीक है कि कभी कभी निर्दोष व्यक्ति भी फंस जाते हैं। फंसने वाला व्यक्ति

निर्दोष अवश्य है परन्तु उसका पहला कोई ऐसा कर्म हो सकता है जिस का दण्ड उसे भोगना शेष हो। और बहुत से व्यक्ति पकड़े जाने के पश्चात छूट भी जाते हैं।

(८) विद्वानों का निर्धन और भूखों का धनी होना। यह भी ईश्वर अविश्वास का एक कारण है। परन्तु सभी विद्वान निर्धन हो और सभी मूर्ख धनी हो यह बात गलत है। स्वामी दर्शनानन्द जी भूत पूर्व श्री कृपा राम जी अद्भुत तार्किक और विद्वान् होते हुए भी बहुत धनवान थे। ऐसे अनेकों उदाहण हैं।

(६) भगवान् के कामों में कोई व्यवस्था नहीं जैसी मनुष्य के कार्यों में है। भगवान् की रचना में कोई क्रम नहीं है। एक बाग और एक पहाड़ को लो। बाग में नीबू की लाईन एक ओर सन्तरे की लाईन एक ओर और आम के वृक्ष अलग लाईन में, प्रत्येक वस्तु एक नियम में होगी। इसके विपरीत पहाड़ पर एक वृक्ष यहाँ, एक वृक्ष वहाँ है, कोई कहीं और कोई कही, किसी प्रकार का कोई क्रम नहीं है।

समाधानः—परमात्मा की सृष्टि में क्रम है और अत्यन्त उत्कृष्ट क्रम है। परमात्मा की सृष्टि रचना में क्रम न मानना ऐसा ही है जैसे एक चींटीं मनुष्य के ऊपर चढ़ जाये और पेट तथा छाती के ऊपर जाकर सोचे यह बड़ा अच्छा मैदान है फिर ऊपर चलकर डाढ़ी और मूछों में पहुंच जाये तो कहे यहाँ तो बड़ा भारी जंगल है, नाक के छिद्रों पर आकर कहे कि यहां तो छिद्र हो रहे हैं और ऊपर चढ़कर आँखों के गढ़ों को देखकर कहे कि यहां तो बड़ी उबड़ खाबर जगह है। इस प्रकार एक चींटी की दृष्टि में यह शरीर बड़ा बेढंगा है, कहों मैदान है कही जंगल है कहीं छिद्र है और कहीं उबड़ खाबड़ है परन्तु किसी शरीर के विशेषज्ञ से पूछिये तो वह कहेगा कि यह तो प्रभु सर्वोत्कृष्ट रचना है। एक और उदाहरण लीजिये एक शब्द कोश में वर्णमाला के अनुसार क्रम होगा परन्तु एक विद्वान की पुस्तक में शब्द कोश का क्रम नहीं होता अपितु विद्या सम्बन्धी क्रम होता है। इसी प्रकार प्रभु की रचना में बाग का क्रम नहीं होता अपितु एक विशिष्ट प्रकार का क्रम होता है जो ईश्वर की बुद्धिमत्ता और सर्वोत्कृष्ट रचना का पूर्ण परिचायक होता है।

ईश्वर अविश्वासके इन आक्षेपों पर तनिक विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर अविश्वास के आक्षेप सर्वथा निराधार हैं। यदि ईश्वर को उस के वास्तिक रूप में लोगों के सामने रक्खा जाये और घर घर में ईश्वर भक्ति और ईश्वर पूजा हो तो फिर वह दिन दूर नहीं जब भारत का बच्चा बच्चा फिर आस्तिक होगा।

(पृष्ठ ६ का शेष)

स्वामी जी कभी कभी लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। ऐसी अवस्था में श्वास प्रश्वास की गति रुक जाती थी। शरीर अडोल और कम्पन रहित हो जाता था। मुख मण्डल पर दिव्य तेज, आभा और लावण्य दृष्टि गोचर होने लगती थी। सहजानन्द ने इस दृश्य को कई बार देखा था।

एक बार स्वामी जी को ध्यानावस्थित देखा गया तो उनका आसन भूमि से ६ इञ्च ऊंचा उठा हुआ था। स्वामी जी अधर ध्यानावस्थित थे।

सहजानन्द ने कई बार स्वामी जी को अठारह अठारह घण्टे की समाधि में भी बैठे हुए देखा था।

एक दिन महाराना तथा सहजानन्द आदि स्वामी जी के पास बैठे हुए थे और विविध विषयों पर बातचीत हो रही थी कि स्वामी जी ने कहा, "पं० सुन्दरलाल आ रहे हैं यदि पहले सूचना दे देते तो थान का प्रबन्ध हो जाता।" जब महाराज ने कहा कि थान का प्रबन्ध तो अब भी हो सकता है तो स्वामी जी बोले कि अब तो वे बैलगाड़ी में आ रहे हैं वह कल यहाँ पहुँच जायेंगे। उनकी गाड़ी के एक बैल का रंग सफेद है और एक पर लाल धब्बा है। दूसरे दिन पण्डित जी उदयपुर पहुँच गये और स्वामी जी का कथन सत्य सिद्ध हुआ।

(पृष्ठ १० का शेष)

आचार्य विनोवा भावे ने पैदल चल कर वह प्रभाव उत्पन्न किया है कि हवाई जहाज और मोटरों में बैठने वाले उनकी ओर बड़ी आदर की दृष्टि से दखल है। निर्वाचन में सफलता के लिये जिस प्रकार पद यात्रा पर बल दिया गया है उसी प्रकार यदि राष्ट्र संचालन इस दृष्टिकोण से हो कि संचालक अपने आप को जनता के सम्पर्क में आन में गौरव अनुभव करे, उंच रहन दूर रहन रोब गाठन में नहीं। जो मनोविज्ञान पद यात्रा में है वह मनोविज्ञान साधारणतया राष्ट्र प्रबन्ध का आधार बानना चाहिये। अभिनन्दन, पत्र, प्रति भोज, उदघाटन, उनकी संख्या वहुत कम होनी चाहिये। यदि जनता यह देखे कि संचालक उच्च विचार और सादा जीवन के प्रेमी हैं तो वह अपने जीवन में भी उसी प्रकार की मर्यादा लाने का यत्न करेंगे। यदि कई हजार लेने वाला मन्त्री जनता को त्याग कें लिये उपदेश करे और जनता यह देख कि वह स्वयं मन्त्री पद प्राप्त करने से पूर्व एक साधारण नागरिक थे तो उनपर ऐसे उपदेश का कोईप्रभावनहीं हो सकता। कर बढ़ाने की आन्धि का युग है। मैं न इस आन्धिमें व्ययकी कमीकी ब्रेंक लगाने का यत्न किया है यदि इसकी ओर ध्यान दिया गया तो आशा है कि राष्ट्र की आर्थिक परिथिते में मोलिक परिवर्तन उत्पन्न हो जायेगा।

यजुर्वेद भाषाभाष्य

इस संस्करण को उच्चकोटि के ८ आर्य विद्वानों ने ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य को लेकर सरल और सुबोध भाषा में सम्पादन किया है जिसे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने उत्तम कागजों पर प्रकाशि। किया है, दो भागों में कपड़े की सुन्दर जिल्द सहित मूल्य ६ डाक खर्च प्रथक है शीघ्र मंगाकर स्वाध्याय आरम्भ करें।

ऋग्वेद रहस्य

लेखक-आर्य विद्वान् श्री अलगुराय शास्त्री एम०पी०

वेदों के सम्बन्ध में जितने भी भ्रामक विचार पाश्चात्य शिक्षा में रंगे विचारकों ने फैलाये हैं सब के भ्रम को दूर करने का अयास किया गया है। वेदज्ञान प्राप्त करने के लिये पढ़ने योग्य पुस्तक हैं। ७२० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ५)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

स्त्री व पुरुष की प्रत्येक दुर्बलता पर
शत प्रतिशत लाभ प्रद

यौवनदा
(आयुर्वैदिक-महौषधि)

प्रमेह, प्रदर, स्वप्न-दोष, नपुंसकता, स्नायुदौर्बल्य, स्मरण शक्ति की कमी, गर्भाशय की दुर्बलता, बंध्यापन, हाथ पैरों की जलन, मधुमेह, रक्ताल्पता, हिस्टीरिया आदि सभी रोग एक कोर्स के सेवन से पूर्णतः जड़मूल से समाप्त हो जाते हैं

७ दिन की औषध का मूल्य १।-)
२१ दिन के कोर्स का " ३॥)
४० दिन के पूरे कोर्स का " ५॥-)
डाक व्यय ।॥≡) पृथक्

एजेन्सी के इच्छुक पत्र व्यवहार करें

उत्तराखंड आयुर्वेदिक रसायनशाला
गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

वेदप्रकाश के इस वर्ष के उपहार की पुस्तकें

८) रुपये में सर्वोपयोगी निम्न ६ पुस्तकें केवल ४) रुपये में,

(डाक खर्च अलग)

१—आर्य सिद्धान्त दीप

लेखक :– श्री मदनमोहन विद्यासागर (स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल रीति से संकलन किया गया है जिससे अल्प प्रयास से ही वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के सम्पादन व संशोधन करने में आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों से सहयोग एवं परामर्श लिया गया है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितनी उपयोगी है, मूल्य १।)

२—संस्कार विधि विमर्श

लेखक :—श्री पं० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न (गु. का.) अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि में वर्णित १६ संस्कारों पर आयुर्वेद परक व्याख्या और प्रजा शास्त्र के आधार पर लिखी गई पहली पुस्तक है।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ठ भाग में प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग भी दिए गये हैं जिससे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य ३)

३—वेद परिचय

लेखक :– वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती।

वेद हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसका परिचय प्राप्त करना प्रत्येक का परम कर्तव्य है। इस में वेद विषयक जानने योग्य अनेक आवश्यक बातें हैं। मूल्य ।≈)

४—वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य

सन्ध्या विषयक पद पदार्थ तथा भावार्थ सहित उत्तम पुस्तक। मूल्य ≡)

५—स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

लेखक :—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न

राष्ट्र एवं प्रजोत्पादन के लिए स्त्रियों का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। इस ओर असावधान रहना बहुत ही हानिकारक है।

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी अनेक सरल प्रयोग भी दिये गये हैं। जिससे गृहस्थ के अतिरिक्त वैद्य और डाक्टर भी लाभ उठा सकें। मूल्य ३)

६—उपासना योग के आठ अंग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा संशोधित

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि, विषयक मनन करने योग्य उत्तम गुटका पुस्तक है मूल्य ≡)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित उपरोक्त छओं पुस्तकें प्रत्येक के लिए उपयोगी हैं जिन ग्राहकों ने अभी तक न मंगाई हो शीघ्र मँगालें थोड़ी प्रतियां शेष हैं। कृपा कर आगामी वर्ष का चन्दा २) तथा उपरोक्त ८) रुपये की ६ पुस्तकें लेना चाहें तो उसके रियायती मूल्य के ४) रुपये मिलाकर ६) का मनीआर्डर तुरंत भेज उपहार की पुस्तकें मंगा लेवें। जो उपहार की पुस्तकें न लेना चाहें वे वेदप्रकाश का चन्दा २) रुपये भेज कर ग्राहक बने रहें। जिनके चन्दे समाप्त नहीं हुए हैं वे भी उपहार की पुस्तकें मंगा सकते हैं।

गोविन्दाम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

ईश्वर विचार

१

'ईश्वर का अस्तित्व'

ईश्वर बिचार की विभिन्नता साम्प्रदायिक मतभेदों का मुख्यकारण है, अतः सत्य निर्णय के लिए श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी के तीन लेख पाठकों के बिचारार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। पढ़कर सोचिये और सत्य निर्णय पर आइये – "सम्पादक"

विचारशील महात्माओ ! प्रमाणादि से सत्य की परीक्षा करने वालो ! आप कृपा करके मेरे इस लेख पर दृष्टि देकर विचार करें, यद्यपि मेरा विचार आप लोगों के सामने बुद्धिमत्ता का न होगा, तथापि आप अपनी सद्वृत्ति के अनुसार मेरे दोषों को मिटायेंगे। महाशयो ! जब हम संसार में किसी पदार्थ को देखते हैं तो हमें उसमें दो प्रकार के पदार्थ प्रतीत होते हैं, एक परिणामी, दूसरे अपरिणामी। जितने साकार पदार्थ हैं वे सब परिणामी और जितने निराकार पदार्थ हैं वे अपरिणामी हैं। जब हम इन साकार पदार्थों में प्रथम मनुष्य के शरीर को देखते हैं जो माता पिता के संयोग से उत्पन्न होता है, बढ़ता है, घटता है, अन्त को नष्ट हो जाता है। इससे हमें क्या अनुमान होता है कि जो पैदा हुआ है वह नष्ट होगा, जिसमें परिणाम है, वह पैदा हुआ है। इस तरह जब परिणामी पदार्थों को उत्पत्ति वाला सिद्ध कर लेते हैं और व्यष्टि पदार्थ अर्थात एक व्यक्ति को छोड़ कर समष्टि जगत् को विचारते हैं तो हमें सबही पदार्थों में परिणाम प्रतीत होता है। जिस अवयवी के अवयव परिणाम को प्राप्त होते हैं वह अवयवी भी परिणामी होता है क्योंकि सम्पूर्ण अवयवों का नाम अवयवी है। जब हम इस प्रकार सूक्ष्म विचार करते हैं तो हमें जगत् परिणामी प्रतीत होने लगता है, हम जगत् के परिणामी होने से उसकी उत्पत्ति का अनुमान कर लेते हैं यद्यपि मध्य अवस्था में उसकी उत्पत्ति का बोध अनुमान के बिना नहीं होता तथापि शब्द प्रमाण से जगत् उत्पन्न हुआ और जगत् संसार, सृष्ट इसके पर्यायवाचक जितने शब्द दिये हैं सबके अर्थ उत्पत्ति वाले के हैं। जब हमने जगत् को उत्पत्ति वाला अनुभव किया तो हमारा विचार यह होता है कि यह उत्पत्ति स्वाभाविक है या नैमित्तिक ? दूसरे हम जिस पदार्थ की उत्पत्ति जिस पदार्थ से देखते हैं उस का लय भी उसी पदार्थ में होता है, इससे कार्यरूप सब पदार्थों में अनित्यता और कारणरूप पदार्थों में नित्यता का बोध होता है। जब हम पंचभूतों में अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश में सब पदार्थों का लय देखते हैं तो उन्हीं पंच पदार्थों से इस जगत् की उत्पत्ति का विचार करते हैं। यद्यपि कार्यव्यवस्था इन पदार्थों की अनित्य है परन्तु कारणावस्था में यह नित्य होते हैं। जब हम जगत् के उपादान कारण पंचभूतों को जान चुके तो हमको यह विचार होता है कि जगत भूतों के स्वभाव से उत्पन्न हुआ वा इसमें कोई निमित्त भी है! अथवा जगत् पचभूतों ही से उत्पन्न हुआ वा इसके विना कोई और भी पदार्थ है ? जब हम पृथ्वी को विचारते हैं तो जड़ प्रतीत होती है, जल भी ज्ञानशून्य है, अग्नि भी ज्ञान नहीं रखता, वायु में भी ज्ञान का अभाव ही प्रतीत होता है, आकाश ज्ञान से हीन है, इस प्रकार के विचार से हम सम्पूर्ण भूतों को ज्ञान से रहित पाते हैं, परन्तु हम संसार में जो सोने के बने भूषणों में सोने के गुण और चांदी में चाँदी के गुण पाते हैं इससे हमको बोध होता है कि कारण के गुणके अनुकूल कार्य में गुण रहते हैं। जब भूतोंमें ज्ञान गुण नहीं है तो भूतों के कार्यरूप जगत् में भी ज्ञान नहीं हो सकता और जगत् में मनुष्यों को ज्ञान से युक्त देखते हैं तो शीघ्र विचार

उत्पन्न होता है कि यह ज्ञान गुण किसका है ? बहुत से लोग कहते हैं कि पृथक् भूतों में तो चैतन्यता नहीं किन्तु संयोग से उत्पन्न होती है। परन्तु जो गुण एक में न रहे वह संयोग से उत्पन्न नहीं होता। जैसे मैदा में मधुरता नहीं, जल में मधुरता नहीं तो मैदा और जल के संयोग से मधुरता नहीं उत्पन्न होती। चीनी में मधुरता है जो जल में मिलाने से उत्पन्न हो जाती है। दूसरे रेल के अंजन में पृथ्वी है, जल है, अग्नि है, वायु है, आकाश है, परन्तु ज्ञानशक्ति नहीं है। मृतक शरीर में पांचों भूत हैं परन्तु ज्ञान शक्ति नहीं। इससे निश्चय होता है कि ज्ञान शक्ति का आधार कोई दूसरी वस्तु है। जब हम इस प्रकार सृष्टि में जड़ चैतन्य को दो स्वरूप करके विचार लेते हैं तो हमको सृष्टि में इनका संयोग, और सृष्टि में स्वभाव से संयोग है या निमित्त से, यह विचार उत्पन्न होता है। जब हम बाजार जाते हैं और हमको कभी कहीं ईंटें पड़ी पाती हैं तो हम जानते हैं कि यह स्वाभाविक गिरी होंगी, परन्तु यदि एक स्थान में दस ईंटें गिनकर ऊपर नीचे रखीं हों तो विचार होगा कि ये किसी ने गिनकर रखी हैं, इससे यह सिद्ध होता है, कि जहाँ पर नियम है वह नैमित्तिक और जो नियम रहित है वह स्वाभाविक है। जब सृष्टि में नियम को देखते हैं तो इसके हर एक पदार्थ में नियम प्रतीत होता है। स्त्री पुरुष के संयोग से लड़का उत्पन्न होता है, घोड़े घोड़ी के संयोग से घोड़ा, घोड़ी और गधे के सयोग से खच्चर। इसी प्रकार सब पदार्थ नियमानुसार प्रतीत होते हैं। गरमी में दस घन्टे की रात्रि होती है, सर्दी में १४ घंटे की; इस तरह जिधर देखो नियम बंध रहा है। फिर इसे किस युक्ति से स्वाभाविक मानें ? दूसरे जो स्वाभाविक गुण हैं, वे सर्वदा एकरस रहते हैं, वे बिना किसी निमित्त के बदलते नहीं, जैसे - जल का स्वभाव शीत स्पर्श वाला है, उसमें बिना अग्नि सयोग के उष्णता न होगी सो वह उष्णता अग्नि की है न कि जल की। यदि भूतों का स्वभाव उत्पत्ति मान लें—तो विनाश किसका गुण होगा, क्योंकि एक पदार्थ में दो विपरीत गुण रह नहीं सकते। यदि भूतों में किसी का गुण उत्पत्ति मानें और किसी का विनाश, तो भी व्यवस्था ठीक न होगी, क्योंकि संयोग के समय वियोग बाधक होगा, वियोग के समय संयोग। जब इस प्रकार से विचार करते हैं, तो भूतों के स्वभाव से जगत की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसका निमित्त कारण ज्ञानशक्ति सम्पन्न कोई सर्वशक्तिमान् अवश्य मानना पड़ेगा। जब इस प्रकार ईश्वर को मानेंगे तो यह शंका उत्पन्न होगी कि "लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्नतु प्रतिज्ञामात्रेण" अर्थात् लक्षण और प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि होती है, ईश्वर में प्रमाण का अभाव है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान तो होता नहीं, प्रत्यक्ष के अभाव में व्याप्ति न होगी, व्याप्ति के अभाव में अनुमान भी नहीं हो सकता। निराकार और अनुपम होने से उपमान भी न होगा। आप्तोपदेश से शब्द को प्रमाण माना जाता है। आप्त उसको कहते हैं जो धर्म से धर्मी का लक्ष्य करके कहे। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसमें शब्द प्रमाण भी न होगा ?

समाधान यह है कि यदि प्रमाण के अभाव में ईश्वर की सिद्धि नहीं तो प्रमाण की परीक्षा के समय प्रमाण में भी प्रमाण होना चाहिये। यदि प्रमाण है तो उसका प्रमाण किस प्रमाण से है ? इस तरह तो प्रमाण अनवस्था दोष में पड़ जाओगे। यदि कहो प्रमाण में प्रमाण नहीं—तो उसकी असिद्धि है, तो आपका प्रमाण जो स्वयं साध्य कोटि में है वह दूसरे की सिद्धि में कैसे हेतु होगा ? यदि "मूले मूलाभावादमूलं मूलम्" इस प्रकार प्रमाण बिना प्रमाण के मान लोगे तो तुम्हारे सिद्धांत की हानि होगी। यदि कोई शङ्का करे कि ईश्वर ने जगत् उत्पन्न किया है तो ईश्वर को किसने उत्पन्न किया है तो उसका उत्तर यह है कि परिणामी पदार्थ कार्य्य होते हैं उनको कारण की अपेक्षा होती है जब ईश्वर परिणामी हो तो उसका भी कारण हो। परन्तु ईश्वर नित्य है अपरिणामी है उसका कर्ता नहीं हो सकता। यदि कोई कहे ईश्वर कहां है तो उत्तर यही ठीक है 'कहां पद एकदेशी के लिए होता है विभु के लिए नहीं। बहुत लोग उसको देखना

चाहते हैं परन्तु ज्ञानचक्षू के अभाव में देख नही सकते। जैसे तिलों में तेल है परन्तु पीडने के विना दृष्टि नहीं पड़ता, दधि में घी है परन्तु मथने के विना मालूम नहीं होता। इसी प्रकार जगत् में आत्मा व्यापक है परन्तु योगाभ्यास के विना नहीं जान पड़ता, जैसे दीपशलाका में आग है परन्तु घिसने के विना नहीं मालूम देती, जैसे गुड़ में मिठास है परन्तु खाने के बिना प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार जगत् में परमात्मा है परन्तु मिथ्या ज्ञान से छिप रहा है, प्रतीत नहीं होता।

प्यारे पाठको! अब विचार करके देखो यदि एक अन्धा रूप को देखना चाहे कौन दिखला सकता है जब तक चक्षु का सुधार न हो? इसी प्रकार जब तक ज्ञान चक्षु न हों क्योंकर परमात्मा को देख सकते हैं? यदि कोई बहरा राग सुनना चाहे कौन सुना सकता है? जब तक उसके कान ठीक न किये जांय। यदि कोई गूंगा मिठाई का स्वाद लेना चाहे कौन दिला सकता है? जब तक उसकी जीभ दुरुस्त न हो, यदि जिसकी नासिका में दोष से गन्ध ग्रहण करने की शक्ति न हो कौन बिना नासिका के बने फूल सुँघा सकता है? इसी कारण हे पाठको! जब तक हमारे पास वह वस्तु नहीं जिससे परमात्मा जाना जाता है तो हमको कोई भी उसका दर्शन नहीं करा सकता, जब हमारे ग्रहण की शक्ति ठीक होगी तो हम देख सकेंगें। हे पाठको! जिस धारणावती उग्र बुद्धि से परमात्मा देखा जाता है जब तक वह बुद्धि उत्पन्न न हो तब तक परमात्मा को कोई भी जान नहीं सकता। वह बुद्धि वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से शुद्ध बुद्धि होती है जैसे अञ्जन से चक्षु ठीक होकर देखने का काम देता है। अब बहुत से महात्मा यह कहेंगे कि तुमने मन से मान लिया कि ईश्वर है क्योंकि दो वस्तुओं के संयोग से जीव उत्पन्न हो जाता है, जैसे गोबर और दही के मिलाने से बिच्छू पैदा होते हैं फिर ईश्वर का मानना व्यर्थ है। परन्तु जो लोग इसको विचारते हैं उनको ज्ञात होगा कि प्रथम तो दही भी ज्ञानवान् निमित्त से उत्पन्न हुआ है पृथ्वी से दही नहीं उत्पन्न होती। दूसरे गौ के गोबर में छोटे जीव रहते हैं वह दही से पल जाते हैं। जैसे भूमि में घास की जड़ रहती है वह वृष्टि से बढ़ जाती है, परन्तु ऊसर में घास नहीं होती। इससे सिद्ध है जो वस्तु होती है वही उत्पन्न होती है पहिले कारण रूप में रहती है फिर कार्य में बदल जाती है। जैसे घट के आकार का ज्ञान कुम्हार को है घट बनने की शक्ति मृत्तिका में है तब घट उत्पन्न होता है। यदि कुलाल न हो या मृत्तिका न हो तो घट नहीं बनता है। पाठको! बिना उपादान और निमित्त के कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। इससे आप जगत् का कर्त्ता ईश्वर को माने बिना विचार को बढ़ा नहीं सकते। परमात्मा आपको धारणावती बुद्धि दे जिससे आप तत्वज्ञान को प्राप्त होकर संसार के दुःख जाल से छूट जावें॥

* * *

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर विचार

२

'ईश्वर साकार या निराकार'

प्रिय पाठकवृन्द! ईश्वर-विचार के प्रथम भाग में ईश्वर का अस्तित्व तर्क से सिद्ध किया गया है। उस पुस्तक में वेद और शास्त्रों के प्रमाण इस हेतु से नहीं दिये गये कि उसका सम्बन्ध नास्तिकों से है और नास्तिक किसी पुस्तक को प्रामाणिक नहीं मानते।

अब हम ईश्वर विचार का दूसरा भाग आपके समक्ष भेंट करते हैं जिसमें इस विषय पर कि 'ईश्वर साकार है वा निराकार' विचार किया गया है।

ईश्वर का लक्षण सच्चिदानन्द है और इस शब्द में तीन पद अर्थात् (१) सत् (२) चित् और (३) आनन्द हैं। तीन काल में रहने वाले को सत् कहते हैं, ज्ञान वाले को चित् और तीनों

काल में दुःख के अत्यन्ताभाव को आनन्द कहते हैं। अब वह साकार होगा वा निराकार। तात्पर्य यह है कि सत् मूर्तिमान् है या अमूर्तिमान् है? यदि कहा जाय कि मूर्तिमान् है तो कहा जायगा कि वह मूर्ति संयोग से बनी है या तत्वस्वरूप है अर्थात् सावयव है या निरवयव? यदि कहा जाय सावयव अर्थात् अनेक वस्तुओं से मिलकर बनी है तो यह प्रश्न होगा कि भौतिक है या अभौतिक? यदि इसका उत्तर हो भौतिक है तो अवश्यमेव वह सत् भूतों का कार्य होगा जब कार्य हुआ तो किसी काल में कारण से उत्पन्न हुआ होगा और अपनी उत्पत्ति से पूर्वकाल में नहीं होगा। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जो उत्पन्न हुआ वह नाश भी अवश्य होगा और नाशानन्तर नहीं रहेगा। तात्पर्य यह है कि भौतिक मूर्ति होने से आदि और अन्त में न रहा केवल मध्य अवस्था में हुआ परन्तु सत् तीनों काल में रहने वाले को कहते हैं अतएव जो वस्तु एक काल में रहे वह सत् नहीं हो सकती। यदि कहा जाय अभौतिक मूर्ति है तो हो नहीं सकती क्योंकि अभौतिक मूर्ति में दृष्टान्त का अभाव है और प्रत्यक्ष का विरोधी होने से इसमें अनुमान भी नहीं हो सकता क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक होता है और शब्द प्रमाण भी नहीं हो सकता है यदि कहें कि निरवयव मूर्ति है तो सत् परमाणु धर्मवाला होगा और परमाणु एक देशी है अतएव सत् भी एक देशी होगा, यह भी असम्भव है क्योंकि कोई सान्त पदार्थ अनन्त नहीं हो सकता अतएव सत् से सारे जगत् के नियम नहीं चल सकते; परन्तु परमात्मा सारे जगत् का नियन्ता है इसलिए सत् को अमूर्ति मानना पड़ेगा। अब रहा चित् यह कभी मूर्तिवाला हो ही नहीं सकता क्योंकि मूर्तिमान् पदार्थ भौतिक हैं और भौतिक जड़ पदार्थ हैं अर्थात् ज्ञान शून्य चित् जो ज्ञान का अधिकरण है वह किस प्रकार जड़ हो सकता है।

द्वितीय भौतिक पदार्थ अनित्य हैं। यदि चित् अनित्य है तो सत् के साथ तीन काल में किस प्रकार रह सकता है? अनएव चित् भी मूर्तिवाला नहीं हो सकता-अब रहा आनन्द, यह भी तीन काल में सत् के साथ रहता है अतएव उसको भी मूर्ति वाला नहीं कह सकते।

पाठक वृन्द! उपरोक्त लेख से सिद्ध हो गया कि सच्चिदानन्द साकार नहीं प्रत्युत निराकार है और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, साकारवस्तु सीमाबद्ध होगी और जो सीमाबद्ध होगी उसके गुण तथा शक्ति भी वैसी ही होगी और जिसकी शक्ति सीमाबद्ध होगी वह सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता। इससे ज्ञात हुआ कि निराकार ही सर्वशक्तिमान् हो सकता है। इसका प्रयोजन यह नहीं कि प्रत्येक निराकार सर्वशक्तिमान् है किन्तु सर्वशक्तिमान् अवश्य निराकार है। बहुत से महाशय कहेंगे कि जिसका रूप नहीं वह वस्तु ही नहीं, परन्तु स्मरण रहे कि वायु रूप रहित है क्या वहवस्तु नहीं? मन, बुद्धि, सुख, दुःख, गरमी, सरदी, काल, दिशा, आकाश यह सारी वस्तुएं आकार से रहित हैं क्या यह नहीं हैं?

प्रिय पाठको! ईश्वर अजन्मा और जगत् का कर्त्ता है, परन्तु साकार पदार्थ स्वयं परमाणु संयोग से बना हुआ है वह किस प्रकार जगत् का आदि कारण हो सकता है, ईश्वर अमृत है परन्तु साकार पदार्थ सावयव होने से नाशवाला होता है अतएव वह अमृत नहीं हो सकता, ईश्वर सर्वव्यापक है और अनन्त है। अनन्त दो प्रकार का होता है एक देश योग से दूसरा काल योग से, परन्तु साकार पदार्थ सावयव और जन्य होने से काल योग से तो सान्त ही हैं और सीमा वाला होने से देश योग से भी सांत होगा। इस कारण कोई साकार पदार्थ अनन्त नहीं हो सकता और ईश्वर अनन्त है इस कारण वह साकार नहीं!

ईश्वर निर्विकार है परन्तु साकार पदार्थ सावयव होने से छः प्रकार के विकारों अर्थात् जन्म वृद्धि स्थिति परिणाम घटने और नाश होने से बच नहीं सकता अतएवईश्वर निराकार है। ईश्वरसर्वाधार है साकार पदार्थ एक देशी होने सेसर्वाधार हो नहीं सकता और दूसरे उसको स्वयं आधार की आवश्यकता होगी। साकार मानने वालों ने यह स्वयं स्वीकार किया है। किसी का मन्तव्य है कि ईश्वर सिंहासन पर विराज-

मान है और उसी सिंहासन का आधार देवता है। किसी का मन्तव्य है कि क्षीर सागर में परमात्मा शेष की शय्या पर शयन करते हैं किसी ने उसका स्थान वैकुण्ठ माना है। परिणाम यह है कि साकार मानने वाले स्वयं उसको आधार की आवश्यकता मान रहे हैं।

महाशय ! जब मनुष्यों में यह अज्ञान आ गया कि परमेश्वर साकार है तो उसी समय उसको एक देशी समझ कर उसके प्रबन्ध के वास्ते सहायक ढूँढने आरम्भ किये। किसी ने कहा फरिश्तों के द्वारा उसके कार्य होते हैं और दुनियाँ में पैगम्बर का होना तसलीम कर बैठे। इतना विचार न हुआ कि पैगम्बर के अर्थ पैग़ाम लाने वाले के हैं और पैग़ाम कुछ दूरी से आया करता है। क्या कोई बतला सकता है कि परमेश्वर और मनुष्य के बीच में कितना अन्तर है जिसके कारण पैगम्बरों की आवश्यकता हुई—नहीं नहीं किन्तु पैगम्बरों पर वही का फरिश्तों द्वारा प्रकट होना स्वीकार करना पड़ा, अर्थात् परमेश्वर को बिल्कुल असमर्थ सा बना दिया। दूसरी तरफ किसी ने साकार मानकर उसको बेटा बना लिया और उसको खुदा के दक्षिण हाथ की ओर जा बिठलाया और यह न सोचा कि दायाँ बायाँ सीमाबद्ध पदार्थ का होता है, सीमाबद्ध पदार्थ नाशवान होता है अतएव परमेश्वर भी नाशवान हो जायगा और प्रायः लोगों ने उसका सिंहासन, उसके गण, उसके स्त्री आदि बातें कल्पना कर लीं। इन्होंने वास्तव में गृहस्थी मनुष्य बना दिया है और इस प्रकार की चिन्ताओं में ग्रसित कर दिया है कि वास्तविक उसको ईश्वर की पदवी से गिरा दिया। जब यह दशा हुई तो सारे संसार में पाप विस्तीर्ण हो गया मनुष्य लोग ईश्वर से अधिकाँश राजा और कुटुम्बियों का भय खाने लगे। उन्होंने समझ लिया कि ईश्वर किसी स्थान पर होगा।

महाशयो ! इस समय जो पाप संसार में विस्तीर्ण हुआ दृष्टिगत हो रहा है यह सब ईश्वर के साकार मानने से फैल गया है। यदि ईश्वर को निराकार माना जाता तो संसार में पाप फैल ही नहीं सकता था क्योंकि यह तो हम दृष्टिगत करते हैं कि जीव फलप्रदाता शक्ति से नित्य भयातुर होता है। जैसे यदि कहीं पुलिस विद्यमान हो वहाँ कोई चोर चोरी नहीं करता। जब पुलिस को स्वप्न में अथवा दूर दृष्टिगत करता है तब पाप करता है। कोई मनुष्य अपने माता पिता के सम्मुख व्यभिचार नहीं करता। इससे ज्ञात होता है कि यदि मनुष्य को इस बात का निश्चय हो कि परमात्मा प्रत्येक स्थान में विद्यमान है और संसार का अंधेरे से अंधेरा कोण अथवा पर्वत की अंधेरी गुफा परमात्मा से शून्य नहीं है तो इस दशा में वह किसी प्रकार और किसी स्थान में भी छिप कर पाप कर्म नहीं कर सकता। परन्तु साकार मानने से तो ईश्वर एकदेशी होगा और उसको सब स्थान में विद्यमान किसी प्रकार नहीं मान सकते और समीप वस्तु से बच कर निकलने के लिए मनुष्य की आत्मा कोई न कोई मार्ग निकाल लेती है जैसे ससीम राजा की ससीम शक्ति से बचने के लिए देश से भाग कर अन्य देश में चला जाना प्रथम उपाय है। पुलिस को घूस देकर बच जाने का प्रयत्न करना द्वितीय उपाय है। असत्यवादी साक्षियों से मिथ्यासाक्षी दिला कर और अन्य मनुष्यों के असत्य वचन से लाभ उठाने का यत्न करना तीसरी युक्ति है और वकीलों के द्वारा न्यायकारियों को भ्रम में डालने का यत्न करना चतुर्थ मार्ग है। इसी प्रकार अन्य भी अधिक मार्ग जो ससीम शक्ति के निवृत्त्यर्थ बर्ते जाते हैं यह सब साकार दशा में हो सकते हैं निराकार और चैतन्य शक्ति को सर्व अंतर्यामी होने की दशा में इस प्रकार का कोई यत्न लाभदायक नहीं हो सकता। उस दशा में मनुष्य पाप करके सुख की प्राप्ति की आशा नहीं रख सकता और दुःख की आशा रख कर कोई कार्य किया ही नही जाता इससे स्पष्ट विदित होता है कि निराकार के मानने से मुक्ति है साकार से नहीं, क्योंकि मुक्ति ईश्वर ज्ञान के अतिरिक्त हो ही नहीं सकती और ईश्वर को साकार मानने से भी मुक्ति नहीं हो सकती अतएव साकार

ईश्वर में मुक्तिदाता होना जो ईश्वर का गुण है रह नहीं सकता, अतएव ईश्वर निराकार है ।

महाशय गण ! युक्तियों से तो आप समझ गये होंगे कि ईश्वर साकार नहीं क्योंकि साकार पदार्थ अनित्य और जन्य होते हैं और सर्वशक्तिमान और सच्चिदानन्द भी नहीं हो सकते । अब शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है कि ईश्वर निराकार है ।

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढ़म् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥

श्वेताश्वतरो०॥३।७॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥ श्वेताश्वतरोप०॥३।१०॥

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

श्वेताश्वतरोप० ॥३।१६।।

उससे परे बड़ा ब्रह्म है जो अशरीर होकर सब जीवों में छिपा हुआ है सारे संसार को आच्छादन करने वाला जो एक परमात्मा ईश्वर है इसके ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

अतएव वह सब से बड़ा है और वह सब क्लेशों से रहित और अनादि है अर्थात निराकार है और जो लोग उसको जानते हैं वह लोग अमृत्यु होते हैं और जो इसके ज्ञान से शून्य हैं वह सब संसार में दुःख ही भोगा करते हैं ॥ १० ॥

उस ईश्वर के हस्तपाद नहीं परन्तु वह गमन करता और पदार्थों को धारण करता है, वह चक्षु रहित है परन्तु वह देखता है और श्रोत्र रहित होकर सुनता है, वह सब संसार का ज्ञाता है और इसका यथावत् जानने वाला कोई नहीं उसी को अग्रय, पुरुष और व्यापक कहते हैं । १६ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥कठ ।५।१२॥

वह परमात्मा एक है और सारे जगत में व्यापक और सर्व प्राणियों का अन्तर्यामी है । जिसने प्रकृति से इस नाना प्रकार के जगत को नाना प्रकार के रूपों में किया और जो आत्मा में रहने वाला है जिसको धीर पुरुष प्रकृति के अन्दर व्यापक देखते हैं वही मुक्ति अर्थात् निर्विकल्प सुख को प्राप्त करते हैं अन्य नहीं ।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ।कठ०५।१३

वह परमात्मा नित्य पदार्थों में नित्य है अर्थात उसमें स्वरूप से अथवा ज्ञान से परिणाम नहीं है वह चैतन्य जीवों से भी चैतन्य है अर्थात् जीव अल्पज्ञ है और वह सर्वज्ञ है जो एक होकर अनेकों के अर्थ पूर्ण करता है अर्थात् संसार में कर्मों का फल प्रदाता है उस जीवात्मा में रमण करने वाले को जो धीर पुरुष देखते हैं उन्हीं को शांति निरंतर प्राप्त होती है, अन्यों को नहीं ।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ-शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ॥४०।८॥

वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी शरीर से रहित और नाड़ी आदि के बन्धन से शून्य, शुद्ध और पाप से शून्य है । तीन काल के ज्ञाता अन्तर्यामी और जगत में व्यापक उस परमात्मा ने निरन्तर सुखों की प्राप्ति के लिए यथार्थ ज्ञान प्रत्येक वस्तु का वेदों द्वारा प्रदान किया है ।

ईशावास्यमिदं ँ सर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
यजु०॥४३।१॥

यह सारा जगत और जगत् के प्रत्येक पदार्थ सब ईश्वर का निवास स्थान है और ईश्वर ने सब आच्छादन किया हुआ है जो इस परमात्मा को छोड़ते हैं वह जन्म मरण रूपी महा क्लेश को भोगते हैं। ईश्वर फलप्रदाता सब का अन्तर्यामी प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है इस लिए हे जीव तू ! किसी का धन लेने की इच्छा न कर। यदि तू ईश्वर को त्याग कर अन्य की वस्तु लेगा तो अवश्य दुःख पावेगा।

महाशयो ! जब प्रमाणों से भी सिद्ध हो गया कि ईश्वर निराकार और जगत् में व्यापक है; इसमें भोले भाले भ्राता यह प्रश्न करते हैं कि यदि ईश्वर निराकार है तो उसका ध्यान किसी प्रकार नहीं हो सकता मानो विचारानुसार साकार निराकार का ध्यान नहीं कर सकता और निराकार साकार का तो विचार करना चाहिये कि जीवात्मा साकार है अथवा निराकार चूंकि जीवात्मा भी निराकार है अतएव निराकार का ध्यान निराकार ही करता है और जो साकार पदार्थ है उनमें निराकार गुण का ही जीवात्मा ग्रहण करता है जैसे फूल को जब देखते हैं तो प्रथम रंग का ज्ञान होता है जो निराकार है द्वितीय गन्ध का ज्ञान होता है वह भी निराकार है, तीसरे परिमाण का ज्ञान होता है वह भी निराकार है इस प्रकार जीवात्मा गुणों के अतिरिक्त किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं करता और गुण निराकार है और जो लोग कृष्णादि महात्माओं की मूर्त्ति में ध्यान लगाते हैं वह भी निराकार गुणों का ही ध्यान होता है जैसे काला रंग आकार और गुण यह सब निराकार पदार्थ हैं इन्हीं का ज्ञान होता है। महाशयो ! चूंकि मनुष्य का उद्देश्य संसार में मुक्ति प्राप्त करना है और मुक्ति दृष्टपदार्थ से हो नहीं सकती जैसा कि महात्मा कपिल जो अपने सांख्य सूत्र में बतलाते हैं।

न दृष्टात् दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्
सांख्य ॥ १ । २ ॥

अर्थात् द्रश्य पदार्थों से अत्यन्त दुःखनिवृत्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि दृश्य पदार्थ के संयोग से जो दुःख दूर होता है वह इस पदार्थ के वियोग से फिर उत्पन्न हो जाता है यह नित्य प्रति का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है। अतएव उपनिषदों में लिखा है कि देवता लोग परोक्ष अर्थात् जो पदार्थ आंखों से दृष्टिगत नहीं होते अर्थात् जिनको ज्ञान इन्द्रियों से न जानने योग्य पदार्थ समझते हैं अर्थात् विद्वान् लोग आत्मा जो इन्द्रियों से नहीं जाना जाता उसको प्यार करते हैं और प्रत्यक्ष जो प्राकृत पदार्थ है उनसे घृणा करते हैं क्योंकि प्रकृति दुःख स्वरूप है अतएव इस से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या ज्ञान से राग व द्वेष उत्पन्न होते हैं और राग से वस्तु की प्राप्ति का यत्न उत्पन्न होता है और इस यत्न से धर्म अधर्म दो प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं और मनुष्य पाप और पुण्य करता है और उस पाप और पुण्य का फल दुःख सुख भोगने के अर्थ जन्म मरण धारण किया जाता है जो महा दुःख रूप है। महाशयो ! इससे आपको विदित होगा कि निराकार ईश्वर और साकार प्रकृति है। और साकार के संयोग से दुःख और निराकार से सुख लाभ होता है। अतएव आप ईश्वर को निराकार मान कर शान्ति की प्राप्ति करें।

॥ इति शं भूयात् ॥

ईश्वर विचार

३

'ईश्वर उपासना क्यों करनी चाहिए'

इस बात को तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि बिना प्रयोजन कोई मूर्ख से मूर्ख आदमी भी किसी काम को आरम्भ नहीं करता और बुद्धिमान् तो सदैव अन्वेषण करके काम आरम्भ करते हैं। इस लिए विचारना यह है कि ईश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिये ? विशेषकर उन लोगों पर जो कर्मों की फिलासफी के कायल (मानने वाले) हैं जिनका

सिद्धान्त यह है कि ईश्वर कर्मों का फल देते हैं और कर्म के बिना कुछ नहीं मिलता—आवश्यक है कि वह इस मसले (विषय) को स्पष्ट करें कि ऐसी दशा में ईश्वर की उपासना से कुछ हो सकता है या नहीं ? प्यारे पाठकगण ! इससे पहले कि इस विषय पर विचार किया जाय यह बात आवश्यक विदित होती है कि हम इस शब्द के अर्थ जान जावें कि ईश्वर उपासना किसे कहते हैं और वह किस प्रकार हो सकती है । ईश्वर शब्द के अर्थ मालिकेकुल (सर्वेश्वर) या ऐसी शक्ति के हैं कि जो सत् चित् और आनन्द के शब्द से व्यवहृत की जाती है और उपासना के अर्थ पास या समीप वैठने के हैं । यहां प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या ईश्वर हमसे दूर है जिससे हमें उसकी उपासना करनी चाहिये । दूरी का आधार तीन दशाओं पर आमद (निर्भर) होता है एक मकानी दूरी (स्थान सम्बन्धी) दूसरी जमानी (काल संबंधी) तीसरी इल्मी (ज्ञान सम्बन्धी) जैसे हमसे सूर्य लोक करोड़ों कोस दूर है तो उसको स्थान की दूरी कहते हैं या पांडवों के पांच सहस्र वर्ष पश्चात् हम लोग उत्पन्न हुए इसे काल की दूरी कहते हैं या बहुत बार हम अपने को भूल जाते हैं या समीप की वस्तुओं को भ्रांति के कारण नहीं देख सकते इसका ज्ञान की दूरी कहते हैं अब देखना चाहिये कि ईश्वर में और हम में किस प्रकार की दूरी है, क्योंकि उपासना शब्द में यह सिद्ध करना है कि किसी न किसी प्रकार की दूरी अवश्य है जिनके दूर करने के लिये उपासना की आवश्यकता है । बहुत से मनुष्य ईश्वर और मनुष्यों में देश दूरी मानते हैं और वह इस दूरी को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और ऐसे ही मनुष्यों ने ईश्वर के लिए किसी स्थान विशेष को नियत कर लिया है परन्तु बुद्धिमाम् मनुष्य को महदूद (परिमित) नहीं मान सकता क्योंकि महदूद (परिमित) वस्तु की शक्ति भी महमूद (परिमित) होती है । पस ला महदूद (अपरिमित) के साथ स्थान दूरी तो हो नहीं सकती, यदि काल दूरी मानलें तो भी मुमकिन (संभव) नहीं, क्योंकि समय का भेद अनित्य पदार्थों में होता है और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य पदार्थ हैं इनमें काल का फर्क (भेद) भी नहीं वरन नित्य पदार्थ की किसी वस्तु के साथ कभी काल दूरी नहीं हुआ करती । अब रही ज्ञान दूरी सो यह प्रत्येक मनुष्य को मानना पड़ता है क्योंकि हर एक मनुष्य ईश्वर के ज्ञान से पूर्ण परिचय नहीं रखता और जब यह सिद्ध हो गया है ज्ञान दूरी है तो अब हमें ईश्वर के ज्ञान को प्राप्त करना ही उसकी उपासना विदित होती है । अब सोचना चाहिये कि दुनियां में उपासना किसकी और क्यों की जाती हैं हम देखते हैं कि जब किसी आदमी को सरदी सताती है तो वह गर्मी के लिए अग्नि और वस्त्र की उपासना करता है और जब गर्मी सताती है तो वह जल और ठण्डी वायु और इसी प्रकार की ठण्डी वस्तुओं की उपासना करता है । इससे स्पष्ट विदित होता है कि जब हमें किसी वस्तु की उपासना से कष्ट पहुँचता है तो उसके दूर करने के लिए उसके प्रतिकूल शक्ति की उपासना करते हैं या जिस वस्तु को हम सुखदायक समझते हैं वह जहाँ से मिले उसकी उपासना की जाती है । अब तो आप स्पष्ट समझ गये होंगे कि उपासना दुःख से बचने और सुख को प्राप्त करने के लिए की जाती है । प्यारे पाठकगण ! अब सोचना यह है कि हमको दुःख किस किस वस्तु से प्राप्त होता है कि ताकि हम उस के प्रतिकूल शक्ति की उपासना करें । जिससे दुःख दूर हो जावें । जब हम संसार की वस्तुओं की ओर देखते हैं जो यद्यपि बहुत सी शक्तियों के होते हुए जो हमारे सन्मुख होती हैं, केवल दो शक्तियां हैं कि जिनसे हमारा सम्बन्ध है । एक तो ज्ञात शक्ति है, दूसरी अज्ञात शक्ति है । जिन वस्तुओं का हमें इन्द्रियों द्वारा अनुभव होता है यह सब की सब अज्ञात हैं । इन शक्तियों के समूह को प्रकृतिके नाम से पुकारते हैं और जितनी इच्छायें हैं वे सब उत्पन्न होकर कष्ट का कारण होती हैं वह सब इसी संघात का कारण हैं । प्रत्येक दुःख का कारण प्रकृति है परंतु यदि विचार किया जावे कि हम ज्ञाता होते हुए भी इस अज्ञात साधन के सेवक क्यों हो जाते हैं इसका उत्तर यह है कि हमारा ज्ञान निर्बल है और संघात भिन्न भिन्न प्रकार की दशाओंमें दृष्टिगोचर होता है ।

(क्रमशः)

सच्चा समय बताने वाली जूलदार घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी

यह घड़ियाँ स्विस मेड (Swiss Made) बिल्कुल ठीक समय बताने वाली बहुत सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और आजकल के फैशन की है। टाइम बिल्कुल ठीक बताती है और ३६ घण्टे की चाबी वाली हैं। हर घड़ी की गारण्टी ५ वर्ष है। सुन्दर तस्मा मुफ्त। हर घड़ी के साथ गारण्टी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है।

नं० ७१ सफेद केस २ जूल २२) सुनहरी २३)

नं० ७२ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २७)

नं० ११ सफेद केस १५ जूल २८) सुनहरी ३०)

वाटर प्रूफ आल प्रूफ रेडियम डायल घड़ियां

नं० २० सफेद, स्टील केस १५ जूल ३७) सुनहरी ४०)

नं० १६ सफेद स्टील केस १७ जूल ४८) सुनहरी ५३)

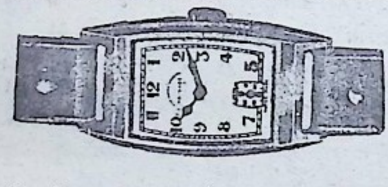

नं ७ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २८)

नं० ८ सफेद केस १५ जूल ३०) सुनहरी ३५)

अति सुन्दर बढ़िया लेडी घड़ियाँ

नं० १४ सुनहरी केस १५ जूल ४०)

नं० १५ सुनहरी केस १७ जूल ४५

मंगाने का पता—**स्वीस वाच कम्पनी**

(वी० पी०) ११६ 'ई' कमला **नगर, देहली**—६

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगावें

-) प्रति, तथा ४) रु० सैकड़ा ३५) रुपया हजार

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी वन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य
३० सत्संग भजन
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवादकी रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षासे हानि
२६ सत्य की महिमा
३७ आ स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयो का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ.स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तो स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१ आलू की खेता	।।।)
२ टमाटर की खेती	।।)
४ गोभी की खेती	।।)
४ जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५ तरकारियों की खेती	१।।)
६ अच्छे बीज	।।।)
७ अच्छी खाद	२।।)
८ कपास की खेती	१)
९ गन्ने की खेती	।।।)
१० फूल फुलवारी	२।।)
११ धान की खेती	१।।)
१२ संतरे की बागवानी	२।।)
१३ आम की बागवानी	३)
१४ आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५ तिलहन की खेती	।।।=)
१६ सोयाबीन की खेती	।)
१७ तम्बाकू की खेती	।।)
१८ खेत की तैयारी	२।)
१९ फसल रक्षक औषधियां	२।)
२० व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१ खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।)
२२ फलों की खेती	३।।)
२३ पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४ तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५ ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६ ट्रैक्टर प्राइमर	१)
२७ पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८ उन्नत सिंचाई	२)
२९ खेती और ट्रैक्टर	६)
३० फल संरक्षण	२।।)

नोटः— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀. ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।–)।। पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें।

केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय नई सड़क दे

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

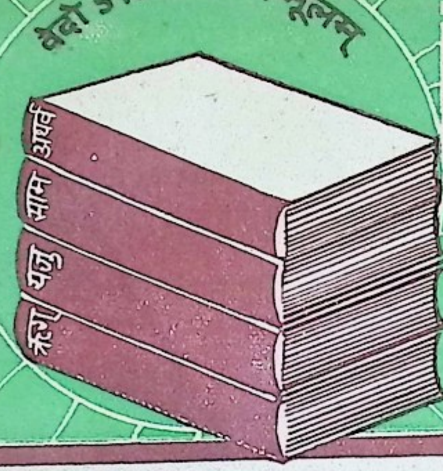

वेद प्रकाश

वर्ष ५
अंक ५
मार्गशीष सं० २०१३, दिसम्बर १९५६, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—[illegible]
मूल्य =) वार्षिक २)
विदेशों से ५ शिलिंग

ओ३म्

अमर धर्मवीर का दिव्यसंदेश

(यह दिव्यसंदेश अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आर्य समाज मंगलौर (कर्नाटक) के वार्षिकोत्सव पर २१-५-१९२४ को देहली से मेरे द्वारा भेजने की कृपा की थी। जो अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। (धर्मदेव विद्या मार्तण्ड)

प्रिय आर्यो ! तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। यह
वह सत्यसनातन धर्म है जिसके विना संसार की सामाजिक व्यवस्था एक पल के लिए भी नहीं
रह सकती। प्राचीन काल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों को खोलने वाली चाबी तुम्हारे ही
हाथों में दी गई थी और अब भी अशान्त संसार को शान्ति देना तुम्हारा ही काम है किन्तु पहले
तुम्हें अपनी सब अपवित्रताओं को दूर करना होगा। आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि
तुम दैनिक पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान से कभी प्रमाद न करोगे, तुम अस्वभाविक जाति भेद
के बन्धन को तोड़कर वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन में परिणित करोगे। तुम अपनी
मातृ भूमि में से अस्पृश्ता के कलङ्क का समूल नाश कर दोगे और तुम आर्यसमाज के सार्वभौम
मन्दिर को देश, मत, सम्प्रदाय, जाति, रंग आदि के भेदभाव का कुछ भी विचार न करके मनुष्य-
मात्र के लिए खोल दोगे। परम पुरुष परमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा के पालन में तुम्हारे सहायक हों।

तुम्हारा धर्मबन्धु—श्रद्धानन्द संन्यासी

श्री श्रद्धानन्द बलिदान जयन्ती श्रद्धा पूर्वक मनाते हुए प्रत्येक आर्य को इस बात पर विचार
करना चाहिए कि वह श्रद्धेय स्वामी जी के इस संदेश पर कहां तक आचरण कर रहा है और
त्रुटियों को दूर करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

मोमबत्तियाँ बनाना	३।)
आयल इन्जन गाइड	६)
सुगन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
सिनेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
सुगन्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ज्योतिष शास्त्र	६)
कान्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
बूटपालिश बनाना	३।)
मोटर मिकेनिक गाइड	६)
आइसक्रीम बनाना	३।)
इन्जेकशन बुक	५)
कम्पाउन्ड्री शिक्षा	३॥)
सचित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
रबर के गुब्बारे बनाना	३।)
ट्रैक्टर गाइड	६)
इलैक्ट्रिक गाइड	६)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	५)
रोशनाईसाजी	३।)
फोटोग्राफी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रँगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४॥)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२॥)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३॥)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३॥)
बैट्री विज्ञान	२॥)
सरल हिन्दी इँगलिश टीचर	२॥)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२॥)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	३॥)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४॥)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।॥)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२।॥)
स्वर्णकार शिक्षा	२।॥)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रिस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३॥)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२)
श्री प्रेमसागर सचित्र	४)
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

मँगाने का पता:—

एल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

बिल्कुल नई असली और सच्चा समय देने वाली जूलदार घड़ियाँ, सेल टैक्स माफ

मूल्य में भारी कमी तथा विशेष रियायतें—

यह असली और ठीक समय बताने वाली ३६ घन्टे चाबी की स्विस तथा जर्मन मेड (SWISS & JARMAN MADE), घड़िया बहुत सुन्दर टिकाऊ और आज कल के फैशन की खास आर्डरों से बढ़िया मशीनें बनवा कर बड़ी संख्या में मंगवाने के कारण नीचे के कम से कम मूल्य पर बेची जा रही है। आप को जो पसन्द हो मंगवा कर लाभ उठावें। आर्डर में घड़ी का माडल नम्बर तथा मूल्य जरूर लिखें ताकि बिल्कुल आप के पसन्द की घड़ी भेजी जाये। हमें पूरा विश्वास है कि आप को मंगवाई हुई घड़ी देखकर आप के मित्र तथा सम्बन्धी भी जरूर मंगवाएंगे। विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने के लिये भी यह घड़ियां बहुत उपयुक्त हैं। सेल टैक्स भी नहीं लिया जावेगा।

हर घड़ी के साथ सुन्दर फीता मुफ्त तथा गारंटी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है। डाक व्यय हर घड़ी का अलग। ३ घड़ियों पर डाक व्यय माफ। कोई सी ६ घड़िया मगवाने पर सातवीं आधी कीमत पर। १२ मंगवाने पर तेरहवीं मुफत इनाम! विज्ञापन में जिन घड़ियों पर रेडियम डायल नहीं लिखा वे रेडियम चाहिये तो प्रति घड़ी १॥) अधिक लिये जावेंगे। ३ से अधिक घड़ियों के आर्डर के साथ १०) मनीआर्डर द्वारा अगाऊ भेजें, बाकी का वी० पी० होगा।

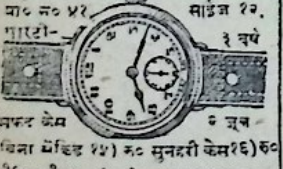

बिना सैकिंड १४) रु० सुनहरी केस१६) रु० सैकिंड सेहत सफेद केस २ जुल १६) रु० सुनहरी केस २ जुल १७) रु०

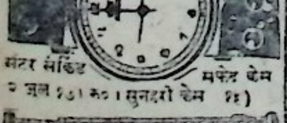

२ जुल १७) रु०। सुनहरी केस १६)

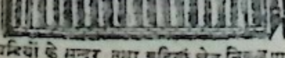

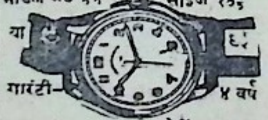

सफेद केस २ जुल मैच सैकिंड १८) सुनहरी केस २ जुल २०) सफेद केस ५ जुल २१) रु०। सुनहरी केस ५ जुल २३) रु० सफेद केस १५ जुल २६) रु० सुनहरी केस १५ जुल २८ रु०। ८½ साईज १५ जुल ३२) सुनहरी केस ३४) १७ जुल सफेद ३६) सुनहरी ४०)

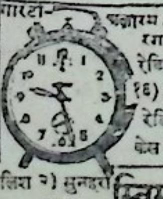

अलारम टाईमपीस ५ साल रंगदार केस बिना रेडियम १४) रेडियम १६) सफेद केस बिना रेडियम १५॥) सफेद केस रेडियम १७॥)

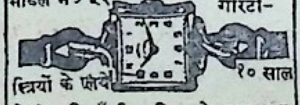

लेडी घड़ियाँ. भिन्न भिन्न शेप बहुत खूबसूरत सुनहरी केस ५ जुल ३५) रु० १५ जुल ३६) रु० पिन लीवर सुनहली १७ जुल ४५) बहुत खूबसूरत बिल्कुल सोने की मालूम पड़ती है १५ जुल ४५) रु० बढ़िया १७ जुल ५०) व ६०) बैंगल चूड़ीसहित

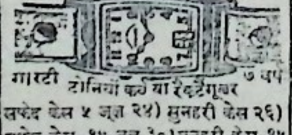

टोनियों कर्व या रैक्टेंगूलर सफेद केस ५ जुल २४) सुनहरी केस २६) सफेद केस १५ जुल ३०) सुनहरी केस १५ जुल ३३) सफेद केस स्टील लीवर १५ जुल ६०) गोल्ड स्टील बैक १५ जुल ६५)

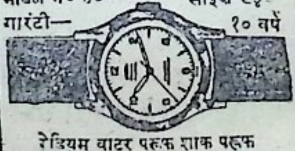

रेडियम वाटर प्रूफ शाक प्रूफ ऐंटीमगनेटक सफेद स्टील बैक केस १५ जुल ३७) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १५ जुल ४०) रु० सफेद स्टील बैक केस १७ जुल ४३) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १७ जुल ४६) सफेद स्टील बैक केस २१ जुल ६०) सुनहरी स्टील बैक केस २१ जुल ६३)

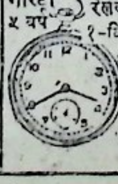

रेलवे टाइम कीपर पाकेट वाच १-बिना सैकिंड ६) रेडियम १०) २-सैकिंड सेहत १० रेडियम ११। ३-सैकिंड सेहत ५ जुल १५) रेडियम १६) नं० ४-जर्मन मेड बहुत बढ़िया २५) रेडियम २७। रु०।

घड़ियों के सुन्दर तथा बढ़िया चेन निकल पालिश २) सुनहरी पालिश ३। स्टील का ५) रङ्ग रोल्ड गोल्ड १२) पता _स्विस वाच कम्पनी (वी० पी० २) ११६. 'ई' कमला नगर, देहली-६

राष्ट्र के लिये

(लेखक—वेदशास्त्रज्ञ पूज्यपाद स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

ओ३म् । येन देवं सवितारं परि देवा आधारयन् ।
तेनेम ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ अ० १९।२४।१

हे (ब्रह्मणस्पते) महाज्ञानिन् । (देवाः)—निष्काम महात्मा (येन) जिसके द्वारा (सवितारम्) सविता=सर्वोत्पादक (देवम्) भगवान् को (परि+आधारयन्) सब प्रकार धारण करते हैं, (तेन) उसी के द्वारा तुम सब लोग (इमम्) इसको (राष्ट्र) राष्ट्र के लिये (धत्तन) धारण करो ।

कोई सज्जन अपना जन धन राष्ट्र को अर्पण करने की भावना से राष्ट्र रक्षक के पास आया है और कह रहा है—इमं······परि राष्ट्राय धत्तन = इसे राष्ट्र के लिए धारण करो ।

कई लोगों का विचार है, वेद में राष्ट्रनिर्माण की कल्पना है ही नहीं। ऐसा कहने वाले वेद को देखे बिना ऐसा कहते हैं । वेद में राष्ट्रकल्पना है, और वह अत्यन्त उदात्त और ऊंचे दर्जे की है । यजुर्वेद के दशम अध्याय के पहले चार मन्त्रों में तो राष्ट्र को मानो मुहारनी ही है । य० २२।२२ में राष्ट्र में क्या क्या होना चाहिये, इसका संक्षिप्त किन्तु प्राञ्जल वर्णन है । अथर्वबेद के १२ वें काण्ड का पहला सूक्त (वर्ग) समस्त मातृभूमि विषयक है । ऋग्वेद का १।८० सूक्त स्वराज्य-परक है । इन मन्त्रों में जो विचारतत्त्व हैं, वे इतने गम्भीर और विमल भावों से भरे हैं कि उनके अनुसार आचरण मानवसमाज के सभी दुःखों को मिटा दे सकता है ।

वे सदा उत्तम राष्ट्र की भावना का प्रचारक है । यथा

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे (अ० १२।१।८

वह हमारी भूमि मातृभूमि उत्तम राष्ट्र में [उत्तम राष्ट्र के निमित्त] कान्ति और शक्ति धारण करें । मातृ-भूमि से कान्ति और शक्ति धारण करने की कामना की गई है । उस कान्ति और शक्ति के धारण कर प्रयोजन-उत्तम राष्ट्र है ।

राष्ट्र-धारण करने के लिये बहुत बड़ा सामर्थ्य चाहिए । उस सामर्थ्य की चर्चा मन्त्र के पूर्वार्द्ध में है—

येन देवं सवितारं परि देवा आधारयन् =

देव = निष्काम ज्ञानी जिस सामर्थ्य से सविता देव को धारण करते हैं ।

देव को अदेव नहीं धारण कर सकता । देव को धारण करने के लिए देव बनना पड़ता है ।

राष्ट्र धारण करने के लिये भी उतना सामर्थ्य चाहिए, जितना भगवान् के धारण करने के लिये । स्वार्थत्याग से ऊपर उठकर सर्वहित साधन के भाव से प्रेरित होकर जो जन राष्ट्रकार्य करते हैं, वही राष्ट्र-धारण कर सकते हैं । इसी वास्ते कहा—

तेनेमं··········धारय=उसी सामर्थ्य से इसे राष्ट्र के लिये धारण कर ।

अर्थात् मनुष्य के धन, जन, तन का उपयोग राष्ट्र के लिये होना चाहिये ।

स्वाध्याय सन्दोह से

दुख–सुख

[श्री हरिशङ्कर शर्मा]

दुख में सुख, सुख में दुख है,
इस मन का क्या समझाना।
विघ्नों के पर्वत आएं,
या संकट-घन घहराएं।
व्याधा-व्यालिन मुंह फाड़े,
चिन्ता-चुड़ैल चिंघाड़े।
सत पथ पर रख कर पैर,
भला क्या कष्टों से घबराना।
इस मन का क्या समझाना,
भय तो कोरी कायरता।
कायर जीते जी मरता,
जो नही मृत्यु से डरता।
पाता है वही अमरता,
है वही महा मानव जिसने।
जन-सेवा का प्रण ठाना,
इस मन का क्या समझाना।
यश हो या अपयश पाएँ,
जुग जिएं, अभी मरजाएँ,।
धन पाएं सभी गंवाएँ,
सुख भोगें कष्ट उठाएँ।
पर विश्व प्रेम की भव्य भावना,
जन-जन तक पहुंचाना।
इस मन का क्या समझाना,

मन मानवता का बंधन।
है यही मुक्ति का साधन,
सुख में सरसाता है मन।
दुख में घबराता है मन,
सुख दुख द्वन्द्वों में।
समता भाव दिखाना,
इस मन का क्या समझाना।

बाल–शिक्षा

(लेखक—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी, देहली)

अक्षैर्मा दीव्यः

(ऋ० १०।३४।१३)

(अक्षैः) पाशों से, जूआ (मा) मत (दीव्यः) खेल। राष्ट्र निधियो !

इस छोटी सी सूक्ति में एक दिव्य संदेश है। जुआ मत खेलो। आजकल जुआ से सदा डरने वाले आर्य लोगों के घरों में भी इस कुप्रथा का प्रवेश हो गया है। प्रायः दीपमालिका के अवसर पर जुआ खेला जाता है। परन्तु जुआ शास्त्र विरुद्ध, कलहकारी, भेद डालने वाला निन्दनीय पाप है। कोई भी समझदार व्यक्ति इसे पसन्द नहीं करता। अच्छा आप ही बताइये क्या यह अच्छा काम है ?

जुआ खेलने के कारण ही राजा नल पर महान् संकट आया, राजपाट छिन गया तथा अनेकों वर्ष जंगलों में मारे मारे फिरे। इस जुए से ही धर्मराज युधिष्ठर को अपने भाइयों सहित दुर्योधन का दास बनना पड़ा। इतना ही नहीं जो सम्पत्ति एवं विभूति कोश और रत्नमाला संसार के राजाओं ने लाखों वर्षों में एकत्रित कर प्रेम भाव से राजसूययज्ञ में भेंट की थी वह सब कुछ ही पलों में दुर्योधन की भेंट हो गई। जिन खजानों को सदियों में न समाप्त होने वाला और अनन्त वर्षों में न जलने वाला धर्मराज स्वयं समझता था, वह द्यूत की प्रचण्ड ज्वाला में युधिष्ठर ने अपने हाथों से कुछ ही समय में भस्म कर दी। यह है जुए का भयंकर दुष्परिणाम।

अतः नवयुवको ! यदि कल्याण चाहते हो तो किसी प्रकार का भी जुआ मत खेलो। गोली खेलना भी जुआ है। अपने मित्रों से शर्त लगाना भी जुआ है इन को छोड़ दो।

वेद तथा स्मृतियों में जुए की बड़ी निन्दा की गई है मनु महाराज कहते हैं कि जुआ खेलने वाले राजा का भी नाश करने वाले होते हैं अतः उन्हें राज्य में से निकाल देना चाहिए। उन्होंने तो यहां तक भी कहा है:—

> तस्माद् द्यूतं न सेवेतहास्यर्थ मपि बुद्धमान्।
> (मनु० ६।२२७)

बुद्धिमानों को चाहिये कि हंसी से भी जुआ न खेलें।

अतः देश के नवयुवको ! आप भी आज प्रतिज्ञा लो कि जुआ कभी नहीं खेलेंगे।

सैद्धान्तिक चर्चा

चन्द्रमा के प्रकाश पर वैदिक दृष्टिकोण।

[लेखक:—वैदिक गवेषक, आचार्य शिव पूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए० सिद्धान्तवाचस्पति, कानपुर]

'सूर्य के पश्चात् चन्द्रमा समस्त ग्रह, उपग्रहों में सबसे बड़ा दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रमा सदैव घटता बढ़ता है ऐसा वेद में लिखा है :—

'···चन्द्रमा जायते पुनः ।' [१] [यजु० २३।१०,४६]

अर्थात—'(चन्द्रमाः) चन्द्र जिस प्रकार बार बार पैदा होता है कला घटते २ नामशेष होकर पुनः कलावृद्धि से बढ़ता है ।'

पाश्चात्य वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को मानते हैं कि चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है। वह सुर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। यह सिद्धान्त वेदों का है जिसको पाश्चात्यों ने अपना लिया है । महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने ग्रन्थों[२] में यही बात लिखी है ।

वेदों के कतिपय मन्त्र इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये प्रस्तुत किए जाते हैं : -

'अत्राह गोरमन्वतनाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे।' (ऋ० १।८४।१५)

श्री सायणाचार्य जी :—'उदकमये स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्य किरणाः प्रतिफलन्ति ।'

'अर्थात - जलमय स्वच्छ चन्द्रबिम्ब में सुर्य किरणों प्रतिफलित होती हैं। इस मन्त्र पर श्री यास्काचार्य लिखते हैं :—

'अग्राह गोः सममंसतादित्यरश्मयः। स्वं नामापीच्यमचित, अपगतं अपहितं अन्तर्हितंवा (मुत्र चन्द्रमसो गृहे) (निरुक्त, नैगम काण्ड ४।२५)

मंत्र का देवता इन्द्र है। (अत्र चन्द्रमसो गृहे) इस चन्द्र मन्डल में (ह) निश्चय पूर्वक (इत्थात्वष्टुःअपीयच्म्) उस आदित्य से निकल कर गए हुए (गोःनाम) सुषुम्णा नामकसुर्य रश्मि के अवस्थान को (अमंसत) आदित्य रश्मियें अपना अवस्थान मानती हैं।

इस मंत्र से दो वैज्ञानिक सिद्धान्तों की पुष्टि भली प्रकार होती है (१) चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान नहीं, प्रत्युत सुर्य से प्रकाश लेता है। (२) अंत से समीप निर्देश होता है। और 'इत्था' दूरका।'[३]

ऋग्वेद के अपनेअंग्रेजी भाषा के अनुवाद में इस मंत्र की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर एच० एच० विलसन एम० ए० एफ० आर० एस०

(H. H. Wilson M. A. F. R. S) टिप्पणी में लिखते हैं :—

"The purpose of the stanza is, apparently, the obscure expression of an astronomical fact. Known to the authors of the vedas, that the moon shone only through reflecting the light of the sun.[4]

अर्थात—इस मन्त्र में अस्पष्ट रूप से ज्योतिष की एक घटना का वर्णन किया गया प्रतीत होता है वह यह कि केवल सुर्य के प्रकाश द्वारा चन्द्रमा प्रकाशित है। यह घटना वेदों के ऋषियों को ज्ञात थी।

---

[१] पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार कृत 'यजुर्वेद संहिता भाषा भाष्य, द्वितीय खण्ड द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ६४

[२] 'सत्याथ प्रकाश' अष्टम समुल्लास तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका 'प्रकाश्य प्रकाशक विषयः।

[३] पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार,पालीरत्न कृत निरुक्तभाष्य' पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २६०

[४] मासिक पत्र"वैदिक विज्ञान" अजमेर, वर्ष जुलाई सन् १६३३ ई०, सं० १०, पृष्ट ४५८

पौराणिक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्त-शास्त्री लिखते हैं :—

'इस गतिशील चन्द्रमण्डल में अन्तर्हित जो तेज है, वह आदित्य किरण ही है, ऐसा जाना ।' ५

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार' मीमाँसातीर्थ:—'(अत्र) इस संसार में विद्वान जन (त्वष्टुः) सुर्य के (गोः) किरणों जैसे (अपीच्यम) उत्तम, प्रकट उज्जल (नाम) स्वरूप को (अमन्वत) जानते हैं (इत्था) इसी प्रकार के स्वरूप को वे (चन्द्रमसःगृहे) चन्द्रमा के लोक के भीतर भी जानें, अर्थात् वहां भी वहीं सुर्य रश्मियों का प्रकाश हैं ।' ६

इस मंत्र द्वारा विद्वान् एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि चन्द्रमा, सुर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है । 'सुषुम्णः सुर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्य-प्सरसो भे कुरयोनाम स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ।'

(यजु० १८।४०)

पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार—'इस मन्त्र के प्रथमापाद से हमारा यहाँ अभिप्राय है । इस प्रथमपाद का अर्थ है कि:— सूर्य से निकली हुई रश्मि उत्तम सुख के देने वाली है । चन्द्रमा इसी रश्मि को धारण करता है अतः चन्द्रमा गन्धर्व है । 'गो' का अर्थ है, सूर्य से निकली हुई उसकी रश्मि तथा 'धर्व' का अर्थ है धारण करने वाला । इस लिए गो × धर्व = गन्धर्व । अर्थात् गो नामी सूर्य किरणों का धारण करने वाला चन्द्रमा ।'···७

श्री उव्वटाचार्य—'सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः ।' ८

श्री महीधराचार्य—'सूर्य्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मय इति ।' ९

अर्थात्-सूर्य से ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है ।

पं जयदेवशर्मा विद्यालंकार—'(चन्द्रमाः) चन्द्र जिस प्रकार (सुषुम्णः) उत्तम सुखप्रद, अथवा सुखस्वप्न या निद्रा का देने वाला और (सूर्यरश्मिः) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला और (गन्धर्वः) रश्मियों को धारण करने से 'गन्धर्व ।'···१०

पं०प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनिजी):— 'इस मंत्र की निरुक्त 'गौ' सूर्यरश्मि को कहते हैं यह प्रमाणित करने के लिए दिया है जिससे चन्द्रमा प्रकाशित होता है 'अथाप्येको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते-आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति सुषुम्णः सुर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः ··· सोऽपिगौरुच्यते अत्राह गोरमन्वत- इति तदुपरिष्टाद् व्यख्यास्याम :

'(निरुक्त २।६)

एक रश्मि चन्द्रमा के प्रति दीप्त है सुर्य से चन्द्रमा की दीप्ति होती है ऐसा कहा है ।' ११

आचार्य पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री प्रभृतिः— 'आल्हादक तथा सुर्यरश्मि को धारण करने वाला जो चन्द्रमा है नक्षत्र उसकी दीप्ति करने वाली व्यापक शक्तियाँ है ।'···१२

'सुर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।'···

[यजु० २३।१०,४६]

---

५. "वैदिक साहित्य "द्वाविंश अध्याय, प्रथम संस्करण पृष्ठ ३१३ तथा "ऋग्वेदसंहिता" प्रथम अष्टक संस्करण, पृष्ठ १२५

६. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य, प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४८६

७. मासिक पत्र "वैदिक विज्ञान" वर्ष १, जुलाई १९३३ ई०, अंक १०, पृष्ठ ५५६

८. 'शुक्लयजुर्वेद संहिता"· द्वितीयखण्डम् पृष्ठ ६४७ [सन १९१३ ई० चौखम्बा संस्कृत बुकडिपो काशी द्वारा प्रकाशित]

९. वहीं

१०. "यजुर्वेद संहिता, भाषाभाष्य, द्वितीयखंड द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २६

११. "वैदिक ज्योतिष शास्त्र" प्रथमसंस्करण, पृष्ठ १४६

१२. "यजुर्वेद संहिता भाषानुवाद, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४६५ (वैदिक संस्थान के विद्वानों द्वारा)

महर्षि दयानन्दकृतभाष्यम्— 'अस्मिन्संसारे सूर्य्य एकाकी चरति, स्वयं प्रकाशमानः सन्नन्यान्सर्वान् लोकान् प्रकाशभति। तस्मैव प्रकाशेन चन्द्रमाः पुनः प्रकाशितो जायते, नहि चन्द्रमसि स्वतः प्रकाशः कश्चिदस्तीति। ···१३

अर्थात्—'इस संसार में सूर्य ही एकाकीअर्थात् अकेला विचरता है और अपनी ही कील पर घूमता है। तथा प्रकाश स्वरूप होकर सब लोकों का प्रकाश करने वाला है। उसी सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है।'···

सूर्य निखिल ज्योतिस्मण्डल को प्रकाश देता है:-

'तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिस्कृदसि सूर्य विश्वमाभासि रोचनम्।'

(ऋ० १।५०।४; यजु० ३३।३६, अथर्व १३।२।१६)

'सूर्य शीघ्रकारी तुरन्त विश्व को दर्शनीय बनाने वाला प्रकाश का कर्त्ता समस्त ज्योतिष्मण्डल को चमकाता है। ऐसा यहां कहा है। १४

'निरुक्त में पृथवी नामों की व्यख्या के प्रसंग में 'गौ' शब्द की व्याख्या श्री यास्काचार्य जी ने विशेष रूप से की है। इस प्रसंग में लिखते हैं :—

'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, तदेतेनोपोक्षितव्यम्। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति।'

[निरुक्त, नैघण्टुककाण्ड २।६]

अर्थात्—"सूर्य की रश्मियो का एक पुन्ज चन्द्रमा को चमका रहा है। यह बात वेदज्ञों को ध्यान में रखनी चाहिए। इस चन्द्रमा की दीप्ति अर्थात् प्रकाश आदित्य के कारण हैं।"

पं चन्द्रमणि विद्यालंकार 'पालीरत्नः— "किंच, इस सूर्य की एक रश्मि चन्द्रमा में जाकर प्रकाशित होती है। अतः वेदार्थ करने वाले को यह जान लेना चाहिए कि इस चन्द्रमा की दीप्ति आदित्य से होती है।"···१५

श्री यास्काचार्य के लेख पर डा० लक्षमण स्वरूप एम० ए० डी० फिल निरुक्त के अपनी अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणी में लिखते हैं कि—

"This shows that yaska was aquainted with the noneself luminons character of the moon"

अर्थात्—"यह लेख दर्शाता है कि यास्क चंद्रमा के स्वतः प्रकाशित न होने की घटना से परिचित था।"

"सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिताद्यौः
ऋतेनादित्यास्तिस्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥"

—[ऋ० १०।८५।१, अथर्व० काण्ड १४, सक्त १ मंत्र १]

महर्षि दयानन्द जी महाराजः—"(सत्येनो०) सत्य स्वरूप परमेश्वर ने ही अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि सब लोकों को धारण किया है, और उसी के सामर्थ्य से सत्य अर्थात् सूर्यलोक ने भी अन्य लोकों का धारण और प्रकाश किया है। (ऋतेन) काल, सूर्य और वायु के सहारे ही क्रमशः आदित्य अर्थात् बारह महीने, किरणें और त्रसेरणु स्थित है। (दिविसोमी०) इसी प्रकार दिवि अर्थात् सूर्य के प्रकाश के सहारे चन्द्रमा प्रकाशित होता है अर्थात् चन्द्र आदि लोको में अपना प्रकाश नहीं है। सब चन्द्र तथा पृथिव्यादि लोक सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। उनमें जितना प्रकाश है सब सूर्य लोक का ही है, और ईश्वर का प्रकाश तो सब में है।" १६

पुनः—"जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं···"१७

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थः—···(दिपि) प्रकाशमान सूर्य के आश्रम पर (सोमः) सोम, चन्द्र (आश्रितः) आश्रित है।"···१८

---

१३ "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रकाशक विषयः।

१४ "वैदिक ज्योतिष शास्त्र, पृष्ठ १३०

१५—"निरुक्तभाष्य" वेदार्थदीपक, पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ११७

१६—"ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रकाश्यप्रकाशक विषयः।

१७—"सत्यार्थ प्रकाश" अष्टम समुल्लास।

१८—"अथर्व वेद संहिता भाषा भाष्य 'तृतीय खण्ड, द्वितीया वृत्ति, पृष्ठ ४६६

"सोमेनादित्य बलिन: सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित:।"

—[ऋ० १०।८५।२. अथर्व० १४।१।२]

महर्षि दयानन्द जी:—"(सोमेनादित्य०) आदित्य की किरणें चन्द्रमा के साथ युक्त होके उससे प्रतिक्षिप्त होकर भूमि को प्राप्त होके बलकारक होती है, क्योंकि बल देना उसका स्वभाव है वे शीतल भी होती हैं।"···१६

"चन्द्रमा आस्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।"···

—[ऋ०१।१०५।१, अथर्व० १८।४।८७]

पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार: मीमांसा-तीर्थ:—"(आसु अन्तरा) ज्ञान और कर्मों के बीच वर्तमान (चन्द्रमा:) चन्द्र के समान सूर्य रुप परम-आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर स्वयं सबको आल्हादित करने हारा (सुपर्ण) उत्तम, ज्ञानवान् आत्मा (दिवि) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर में (धावते) वेग से गति करता है।"···२०

ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह "सुधांशु" हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी, वर्तमान सम्पादक "अवन्तिका" मासिक पत्रिका, अपने "वैदिक काल का विवाह विधान" शीर्षक लेख २१ में लिखते हैं:—"विज्ञान ने यह प्रतिपादित किया है कि सूर्य की किरणों से ही चंद्रमा प्रकाशमान रहता है।"

इस लेख पर 'गङ्गा' के सम्पादक वर्ग, श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री, पं० गौरीनाथ झा व्याकरणातीर्थ, श्री शिवपूजन सहाय जी अपनी पाद टिप्पणी में लिखते हैं—"ऋग्वेद (१।८४।१५)-और निरुक्त (२।६) में सूर्य किरणों से चन्द्र के प्रकाशित होने का स्पष्ट उल्लेख है।" २२

१६—"ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, प्रकाश्य प्रकाशक विषय:

२०—"अथर्व वेद संहिता भाषा भाष्य, चतुर्थ खण्ड, द्वितीया वृत्ति, पृष्ठ १३७-१३८

२१—मासिक पत्रिक "गङ्गा" का "वेदाङ्ग" प्रवाह २, जनवरी १६३२ ई०, तरङ्ग १, पृष्ठ २२७

२२—वही

हर्ष सूचना

समस्त वैदिक धर्म प्रेमियों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि गायत्री मन्त्र का चार्ट मन्त्र अर्थ सहित तथा यज्ञ की आरती के साथ नये वर्ष के कैलेन्डर के रूप में अत्यन्त आकर्षक आर्ट पेपर पर प्रकाशित हो गया है।

पंचांग सहित प्रचारार्थ इस कलेन्डर का मूल्य केवल ।-) प्रति है शीघ्रता कीजिए आज ही आर्डर दीजिए वेद प्रचार कीजिए, प्रथम संस्करण केवल दस हजार प्रकाशित हुआ है।

यदि आर्य्य जनता की मांग हुई तो अविलम्ब लाखों प्रतियाँ इस चार्ट को प्रकाशित कराकर हम आपकी मांग को प्रसन्नता पूर्वक पूर्ण करेंगे।

कम से कम १०० प्रति मंगाने वाले आर्य्य समाजों, साहित्य विक्रेताओं, व गुरुकुलों, कालेजों, विद्यालयों को हम कमीशन भी देंगे।

यदि आप चाहते हैं कि विश्व में अमर शान्ति स्थापित हो, यदि आप चाहते हैं कि भूमण्डल में पुनः राम-राज्य स्थापित हो, यदि आप चाहते हैं कि विश्व युद्ध के काले बादल न छायें, यदि आप चाहते हैं कि पुनः भारतवर्ष देश विश्व के समस्त राष्ट्रों का पथ-प्रदर्शक बने यदि आप चाहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर इस मानव दुर्लभ जीवन यात्रा को, हम सफल बनायें तो वेद प्रचार में आज से ही तन मन धन तथा सर्वस्व की भी आहुति देकर जुट जाइये वेद मार्ग के पथिक बन कर वेद प्रचार से ही विश्व में शान्ति और सुख को हम देख सकेंगे।

गायत्री महामन्त्र का जप अर्थ सहित प्रतिदिन कीजिए इसीसे आपकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण होंगी यदि विश्व शान्ति का अमर संदेश है।

निवेदक आर्य्य जाति का सेवक
वेदपथिक धर्मवीर आर्य्यझंडाधारी उपदेशक
संचालक आर्ष ग्रन्थमाला प्रकाशन
रोहतक रोड़ सरायरुहेला देहली
२—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

चरित्र निर्माण

(लेखक :—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

चरित्र मानव जाति की सभ्यता की कसौटी है। जो व्यक्ति समाज, जाति, देश राष्ट्र जितने अंश में अपना चारित्रिक विकास कर लेता है वह उतना ही सुसंस्कृत सभ्य समादरणीय एंव पूजनीय समझा जाता है। सच्चरित्रता इहलौकिक उन्नति की कुंजी तथा पारलौकिक प्रगति का सोपान है। यह आत्मोन्नति का नायक और मुक्ति का विधायक है।

चरित्र क्या है ? कहने को तो चरित्र एक ही शब्द है परन्तु उसमें सत्यवादिता, धर्मप्रियता श्रद्धा, प्रेम, अस्तेय, समदर्शिता, शुद्धाचार, क्रोध त्याग, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, संतोष, तप, स्वाध्याय आदि कितने ही दिव्य गुणों का समावेश है। संक्षेप में व्यक्ति का व्यक्तित्व तथा समाजिक व्यवहार ही उसका चरित्र है।

चरित्र निर्माण मूल स्तम्भ है। चरित्र निर्माण हो जाने पर उसके सहारे से होने वाले समस्त धार्मिक मर्यादित श्रेय और प्रेय कार्य भी सुगमता से सम्पन्न हो जाते हैं। सच्चारित्र्य ही मानव का भूषण है और दुश्चारित्र्य ही मानव का दूषण है चरित्र निर्माण ही सब सुधारों का सुधार वास्तविक देश-भक्ति और राष्ट्र का सच्चा निर्माण है।

चरित्र बल के समान और कोई बल नहीं है। चरित्र बल से मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को भी सुगमता और सरलता से साध लेता है। संसार में वे ही जाति, देश, राष्ट्र समृद्धि शाली और उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो सकते हैं जहां सच्चारित्र एवं सदाचार को महत्त्व दिया जाता है। वर्तमान समय में जितने भी देश और राष्ट्र आदरणीय और गौरवान्वित हो सके हैं उसका कारण है सच्चरित्रता–सम्पत्ति की वृद्धि और समृद्धि।

आज विश्व में कोई आदरणीय संस्कृति है तो वह है भारतीय वदिक संस्कृति क्यों कि इसकी शिक्षा में आरम्भ से ही चरित्र बल का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक संस्कृति का यह अटल सिद्धान्त है। आचार हीनं न पुनन्ति वेदा:' अर्थात् आचार हीन व्यक्ति को तो वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

संसार में कोई देश सौन्दर्य का उपासक है तो भक्त कोई धनधान्य प्रदान है तो कोई अविष्कार प्रधान। हमारा भारत वर्ष देश धर्म प्रदान रहा है। धार्मिक और अध्यात्मिक विज्ञान इतना बढ़ा चढ़ा है कि आज भी संसार मुक्त कंठ से गदगद होकर इसकी प्रशंसा कर रहा है, उदाहरणार्थ "भारतीयों की मुखाकृति में जीवन के प्रकृत रूप का दर्शन होता है। हम तो (पाश्चात्य लोग) कृत्रिमता का आवरण ओढ़े हुए हैं भारतीय मुख मण्डल की सुकुमार रूप रेखाओं में ही कर्त्ता के करांगुष्ट की छाप दिखाई देती है।

— जार्ज बर्नार्डशा

हिन्दु लोग धार्मिक, प्रसन्न न्यायप्रिय सत्यमता, कृतज्ञ प्रभु भक्ति से युक्त होते हैं।

– कवि सैम्युएल जौन्शन

हिन्दु अनुकुल आचरण करने वाले तथा सबके प्रति दयालु होते हैं। उनका संसार में किसी से बैर नहीं होता।

—इतिहासकार अब्बुल फ़ज़द

भारत वर्ष के करोड़ों व्यक्ति वहां के साधुसंतो की भांति रहते आए हैं। सहज रूप से सरल, कपट रहित और ऋणरहित हैं।

— प्रो० पी जार्ज

इस प्रकार अनेक विदेशियों ने भारत वासियों के चरित्र की प्रशंसा की है परन्तु हमारी जाति और राष्ट्र अपनी प्राचीन परम्पराओं की विस्मृत कर पतोन्मुख हो रही है। हमें पुनः अपने चरित्र का

निर्माण कर अपनी संस्कृति, सभ्यता और आदर्शों को पुनः गौरवान्वित करना चाहिए।

चरित्र ही मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाता है। देव दुर्लभ नर देह को प्राप्त करके भी जो मनुष्य अपने चरित्र की ओर से उदासीन रहता है वह नर से नरपशु अथवा असुर बनकर स्वयं ही अपने पतन का कारण बन जाता है! मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति उसके चरित्र निर्माण में ही सन्निहित हैं और चरित्र निर्माण का मूल बीज ब्रह्मचर्य के बिना कोई भी आचरण शुभ एवं सफल नहीं माना जा सकता। हमारे शास्त्रों में स्पष्ट आदेश है :—

ब्रह्मचर्ये स्थितो धर्मो ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः
ब्रह्मचर्यात्परं नास्ति धर्म साधन मुत्तमम्।

ब्रह्मचर्य व्रत में ही धर्म तथा तप अवस्थित रहते हैं ब्रह्मचर्य से बढ़कर और कोई धर्म का उत्तम साधन नहीं है।

ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन तथा वीर्य रक्षण यही ब्रह्मचर्य का स्वरूप है, हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा बहुत महान है—

मृत्यु व्याधि जरा नाशि पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्बलं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥
शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यं शुभ सन्ततिम्।
यदीच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ॥

ब्रह्मचर्य मृत्यु व्याधि एवं बुढ़ापे का नाशक श्रेष्ठ औषध है। अमृत के समान सुखदाता है। ब्रह्मचर्य ही शारीरिक आत्मिक तथा बौद्धिक बल है यह मैं सत्य ही कहता हूं। यदि मन की शान्ति, बुद्धि की स्मृति एवं ज्ञान, शक्ति, आरोग्य तथा शुभ संतान की कामना है तो महान धर्मरुप ब्रह्मचर्य का पालन करो।

संसार में मानव ने जब कभी उन्नति की है तो अपने चरित्र के बल ही के आधार पर, इतिहास इस बात का साक्षी है। कुछ उदाहरणों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा।

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के चरित्र की परीक्षा लेने में किसी ने कसर नहीं की। दशरथ ने उसकी परीक्षा ली, विश्वामित्र ने उसे परखा, जनक ने उनको तोला, परशुराम ने उनके बल को जांचा, कौशल्या, केकयी तथा सुमित्रा ने उनको कसा, बनवास में ऋषियों ने भी उनकी परीक्षा ली, सुग्रीव ने उनको जांचा और विभीषण ने भी परखा, किन्तु श्रीराम सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। श्री रामचन्द्र जी का आदर्श चरित्र हमको शिक्षा दे रहा है कि विघ्न बाधाओं और परीक्षाओं से घबराना और डरना नहीं चाहिए।

यतीवर लक्ष्मण का जीवन भी कितना आदर्श था। रामचन्द्र जी की सेवा के लिए अपनी नवयुवती धर्मपत्नी का चौदह वर्ष के लिए परित्याग कर कितना प्रशंसनीय एवं संयम-पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, यह उनके जीवन की एक घटना से भली भांति समझ में आजाता है।

जिस समय दुष्ट रावण माता सीता का अपहरण कर आकाश मार्ग से ले जा रहा था उस समय सीता जी ने अपने कुछ आभूषण पृथिवी पर डाल दिये थे। जब सीता को ढूंढते हुए राम और लक्ष्मण ऋषिमूक पर्वत पर सुग्रीव के पास आये तो सुग्रीव ने आभूषण राम को दिये। आभूषणों को देखकर राम लक्ष्मण जी से कहते हैं "ये आभूषण किसके हैं? क्या ये देवी सीता के हैं? इन्हें पहचानों।" और लक्ष्मण जी से कहते हैं—

"नाहं जानामि केयूरे नाहम जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभि जानाभि, नित्यं पादाभि बन्दनात् ॥"

मैं केयूरों को नहीं जानता क्योंकि ये हाथ के आभूषण हैं, मैं कुण्डलों को भी नहीं पहचानता ये कान के आभूषण हैं वहाँ तक मेरी दृष्टि जाती ही नहीं थी। मैं केवल इन चरणों के आभूषण नूपुरों को पहचानता हूं क्योंकि मैं नित्य प्रति माता सीता के चरणों की वन्दना करने जाया करता था। धन्य है यतीवर लक्ष्मण निरन्तर चौदह वर्ष तक देवी सीता के पास रहता है और उसका मुख नहीं देखता।

आय समाज के प्रवर्त्तक आदित्य ब्रह्मचारी, अनुपम सुधारक महर्षि दयानन्द के आदर्श जीवन की एक घटना उनकी अद्भुत एवं अलौकिक क्षमा मानव चरित्र के उत्कर्ष में सहायक बन सकती है।

तत्कालीन महाराजा जोधपुर को वैश्या प्रेम से पतोन्मुखी देखकर निर्भीक स्वामी जी ने वैश्या के सामने ही कहा, 'राजन् राजा लोग सिंह समान समझे जाते हैं, स्थान स्थान पर भटकने वाली वैश्या कुतिया के समान है। सिंह कुतिया कें साथ समागत नहीं करता।" महाराजा का विवेक जागृत हो गया उन्होंने अपनी कलुषित भावनाओं को सदैव के लिए तिलांजलि दे दी और एक आदर्श क्षत्रीय शासक बन गये। एक लंगोटधारी सन्यासी के द्वारा अपना यह अपमान वह वैश्या सहन न कर सकी। उसकी प्रतिहिंसा जागृत हुई और बदला लेने के लिए उसने स्वामी जी के पाचक को धन का लोभ देकर, दूध में कांच की पिसी मैदा मिलवा कर पिलवा दी। शीशे ने कुछ ही देर में अपना प्रभाव आरम्भ कर दिया, कुछ समय के बाद उल्टी हुई। प्रातःकाल उठने पर फ़िर वमन हुआ। इससे उन्हें सन्देह हुआ। उन्होंने इस विश्वास घात को विवेक दृष्टि से समझ लिया। जीवन लीला की समाप्ति सन्निकट जान उन्होंने जगन्नाथ (पाचक) को पास बुलाया और पूछा "तुमने ऐसा काम क्यों किया जगन्नाथ? कितना धन दिया उस वैश्या ने तुम्हें।"

पापी में साहस नहीं होता, जगन्नाथ कांप गया और सारी घटना ज्यों की त्यों सुनादी। संत का हृदय बड़ा कोमल होता है। संसार को बंधन से मुक्त कराने वाले, सबको अभय देने वाले ऋषिवर ने उस को क्षमा कर दिया और कहा, तुम इसी समय यहाँ से भाग जाओ अन्यथा इस समाचार को सुनकर लोग तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे।" इतना ही नहीं स्वामी जी ने उसे चले जाने के लिए पर्याप्त धन भी दिया। महर्षि की इस अद्भुत क्षमा से लोगों में सदैव ही संत चरणों की ओर विमल अनुराग की प्रेरणा मिलती रहेगी और सन्तों में अनुराग का तात्पर्य है अपने चरित्र का निर्माण।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि चरित्रवान व्यक्ति आकर्षण का केन्द्र बन जाता है वह लाखों को प्रभावित कर उनमें नवशक्ति का संचार कर सकता है। संसार उसकी पूजा करता है। मृत्यु के पश्चात भी संसार में उसके आदर्श चरित्र का गुणगान होता है। स्वामी शंकराचार्य, भगवान बुद्ध, भीष्म पितामह, भक्त हनुमान, महात्मा गांधी आदि अपने उज्ज्वल एवं महान चरित्र के प्रभाव से संसार के इतिहास में तब तक चमकते रहेंगे जब तक सूर्य और चन्द्रमा अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करते रहेंगे।

जीवन संग्राम में सफल मनोरथ होने के लिए चरित्र बड़ा मुल्यवान है, अतः अपने चरित्र का निर्माण करना प्रत्येक मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। चरित्र निर्माण के लिए कुछ साधन यहाँ दिये जाते हैं:—

ईश्वर विश्वास: ईश्वर में दृढ़ विश्वास चरित्र निर्माण में बड़ा सहायक है। जो मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक एवं सर्वान्तरयामी समझता है, वह जागृत में तो क्या स्वप्न में भी कोई कुकर्म नहीं कर सकता जो व्यक्ति यह जानता है कि प्रभु हमारे गुप्त से गुप्त भेदों को भी जानता है, उसने हमारी आंख की पलकों का झपकना तक गिना हुआ है, वह हमारी प्रत्येक शुभ और अशुभ भावना को जानता है, वह दुराचारी हो ही नही सकता। मनुष्य पाप कर्म उस समय करता है जब वह अपने को अकेला समझता है उदाहरणत: जूते पड़े हुए हैं, परन्तु चारों ओर से भय है इस लिए नहीं उठाता अकेलेपन में उठाने लगता है, किन्तु जो व्यक्ति परमात्मा को अंग संग मानता है वह पाप से बच जाता है। फ्रांस के एक लेखक के अनुसार ऐसे समय में यदि ईश्वर न भी हो तो भी मान लेना चाहिए।

आत्म विश्वास :- आत्म विश्वास संसार के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्रदान करता है। आत्म विश्वास के बिना मनुष्य में स्वावलम्बन की भावना जागृत नहीं होती और स्वावलम्बन के बिना मनुष्य

ऊंचा नहीं उठ सकता। आत्मविश्वास स्फूर्ति देता है तथा मनुष्य के सोये हुए बल को जागृत करता है। संसार में बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें मनुष्य जानता है कि ये कार्य नहीं करने चाहिए, परन्तु स्वंय नहीं करता। इस अभाव को पूरा करने के लिए अर्थात जीवन को नियमित और संयमित करने के लिए आत्म विश्वास का होना आवश्यक है।

आत्म निरीक्षण :—आत्म निरीक्षण का अर्थ है अपने जीवन की दैनिक जाँच पड़ताल. अपने जीवन का सतत अध्ययन। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन का प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिए। रात्रि को सोने से पूर्व अपने दिन भर के कार्यों को विचार कर यह देखना चाहिए कि हमारा जीवन अवनति की ओर तो नहीं जा रहा; हम दुराचार की ओर तो प्रवृत्त तो नहीं हो रहे। इस प्रकार अपने जीवन का अध्ययन करते हुए दुष्टगुण दुष्टविचार, दुष्ट स्वभाव, दुराचार को त्याग कर श्रेष्ठ गुण कर्म, स्वभाव और सदाचार को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रकृति निरीक्षण:—प्रकृति निरीक्षण का अर्थ है प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन। प्रातःकाल निद्रा त्याग कर भ्रमणार्थ निकल जायें और प्रकृति का निरीक्षण करें। आपको कण कण में ईश्वर दर्शन होंगे। प्रोफैसर गोपाल जी के वे शब्द आज भी कानों में गूंजते हैं! मुझ से एक व्यक्ति ने पूछा "क्या आपने ईश्वर को देखा है?" मैंने कहा, "हाँ" "कहां देखा है?" उसने फिर पूछा। मेंने कहा, "शिमला के निकट शाहपुर के गार्डन (Garden) में। वहां का दृश्य इतना मनमोहक है कि बरबस परमात्मा की याद आती है।" आप भी प्रकृति का निरीक्षण करते हुए सागर की तरल तरंगों में, वायु के झकोरों में, सूर्य की किरणों में, चन्द्रमा की आभा में प्रभु के दर्शन करें। आपको एक नई प्रेरणा मिलेगी तथा जीवन उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा।

सदग्रंथावलोकन : सद्ग्रन्थों का अध्ययन मनुष्य के सामने उच्च आदर्शों की कल्पना लाता है एक अपूर्व झाँकी उपस्थित करता है तथा बुद्धि की वृद्धि करता है। मनु जी महाराज ने कहा।

यथा यथाहि पुरुषः शास्त्रं समाधि गच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्यरोचते॥

जैसे जैसे मनुष्य शास्त्रानुशीलन करता है वैसे वैसे अधिकाधिक जानता है एवं विज्ञान की अभिरुचि बढ़ने लगती है।

सत्संग : सत्संग भी चरित्र निर्माण में अत्यन्त सहायक है सत्संग से समाज का सुधार होता है, परस्पर प्रेम बढ़ता है तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। भर्तृहरि जी के शब्दों में सत्संग बुद्धि की जड़ता को नष्ट करता है, वाणी में सत्य सींचता, मान को चढ़ाता, पाप को दूर करता और और चित्त को प्रसन्न करता है। दिशाओं में कीर्ति को फैलाता है।

"सत्सँगतिः कथन किं न करोति पुंसाम्" सत्सँगति मनुष्य का क्या नहीं देती, सभी कुछ देती है। अतः चरित्र निर्माण के इच्छुकों को महापुरुषों का सँग करना चाहिए।

सुन्दर शरीर अथवा फैशनेबल वेष भूषा से से मानवता नहीं, अपितु सच्चरित्रता ही मानवता है। सुन्दर शरीर, विपुल धन धान्य, वैभव, श्रेष्ठ कुल तथा गोत्र अथवा महान राज्यादि ऐश्वर्य से मनुष्य बड़ा नहीं कहला सकता। बड़ा तो वही है जिसमें गुण अधिक हों। चरित्रवान बनो अन्त में चरित्र निर्माण पर वेद तथा महापुरुषों के कुछ विचार याद आ रहे हैं जिन्हें लिखे बिना नहीं रहा जाता।

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज। (य० ४।२८)

हे प्रकाश स्वरूप प्रभो, मुझे दुराचार से हटाकर सदाचार में स्थापित करो।

चरित्र बल दो शक्तियों पर अवलम्बित है दृढ़ संकल्प और आत्म दमन। इस लिए सुशक्त भावों के साथ उनपर दृढ़ अधिकार होना भी सच्चरित्रता का आवश्यक अंग है।

(एफ० डबलू० राबर्टसन)

चरित्र एक शक्ति है, प्रभाव है, वह मित्र उत्पन्न करती है सहायक और सँरक्षक प्राप्त कराता है और धन मान और सुख का निश्चित मार्ग खोल देता है।

(जे० हावेज)

चरित्र हर एक चीज़ का पोषक और सहायक होना चाहिए— धर्मोपदेश, कविता, चित्र, नाटक बिना चरित्र के किसी भी बात का रत्ती भर मुल्य नहीं होता। (जे जी० हालैण्ड)

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या

(गतांक से आगे)

संसार की शारीरिक उन्नति के दो भेद हैं—एक तो अपनी शारीरिक उन्नति और दूसरे जनों की। अपनी शारीरिक उन्नति के लिए आर्य्य व्रतीको चाहिए कि स्वास्थ्य-संरक्षण पर विशेष ध्यान दे। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त्त में जग जाय, शय्या छोड़ दे। आवश्यक कामों से निवृत्त और शुद्ध होकर दतून ले और दांतों का मार्जन करे। कुल्ले करके मुखको स्वच्छ बनाये। अवस्थानुसार किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना भी आवश्यक जाने। नियम से भ्रमण करना स्वास्थ्य बनाने का एक बड़ा साधन है। यदि ऐसी क्रीड़ाओं में भी सम्मिलित हो सके जिन में दौड़ना भागना और उछलना-कूदना पड़ता है तो उनमें अवश्य भाग ले। व्यायाम क्रिया को अपने आजीविकाके काम-धन्धे और खाने-पीने-सोने के समान आवश्यक जानना उचित है !

आर्य व्रती स्नान करने में आलस्य न करे। प्रातः काल शीतल और स्वच्छ जलसे स्नान करना आदि शरीर को आरोग्य, शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करता है। इससे अंग सुदृढ़ होते हैं और आलस्य का नाम तक नहीं रहता। खुले पानी में भली भांति मलकर नहाना उत्तम है स्नानान्तर तनको तौलिये से पोंछ डालना अच्छा है ठण्डे पानी में नहाकर यदि हलका सा व्यायाम कर लिया जाय तो तनमें तुरन्त ऊष्मा भर जाती है।

ब्रह्मचर्यका पालन करना, मर्यादानुसार गृहस्थ बने रहना शारीरिक उन्नति के साधन हैं। वाजीकरण ओषधियों और मादक द्रव्यों का सेवन शरीर के संगठन का सत्यानाश कर देता है इनसे स्वाभाविक पाचन-शक्ति, स्वाभाविक सामर्थ्य और स्वाभाविक प्रसन्नता का लोप हो जाता है। आर्य्य दीक्षित को ऐसे कुव्यसनों से बचे रहना चाहिये।

छठे नियम के पालक को स्वच्छ और शुद्ध वस्त्र धारण करना उचित है। उसका वेश विहङ्गम न हो वरन् सभ्य और सरल हो। बाहरका बेढगापन प्रायः भीतर की विक्षिप्तताका सूचक हुआ करता है।

शरीर-संरक्षणका बड़ा साधन भोजन है। इसके बिना देहका देवालय देर तक स्थिर नहीं रह सकता। वेश-परिच्छेद में, व्याह बरात में और बाहर के आडम्बर में जितना कम व्यय हो सके, करे। पर आर्य्यजन भोजन के व्यय में अधिक संकोच से काम न ले। आर्य्यों का आहार शुद्ध और सात्विक हो, पौष्टिक हो, रस-सार सहित हो। दूध, दही, घृत और मिष्ट पदार्थ उनके भोजन के मुख्य भाग हैं। जहां तक होसके भोजन में हित, मित और काल का अवश्य ध्यान रक्खे। अच्छी प्रकार पका और सिंका हुआ अन्न चबाकर खाना स्वास्थ्यजनक कहा गया है। बार बाररखाना, जहां तहां, जिस समय, जो भी वस्तु मिले खाने लग जाना दूषित और हानिकारक है।

आर्य्यों को अपने घर-आंगन स्वच्छ रखने चाहिए। गृहों को मैले कुचैले रखना, आँगनों में कूड़े-कर्कट के ढेर लगाये रहना रोग को निमन्त्रण देना है। आर्य जन का घर लिपा-पुता, धुला-बुहारा रहना चाहिये। कोठरियों में पवन के गमनागमन के लिए गवाक्ष अवश्य रक्खे जायं। शयन स्थान स्वच्छ और पवन के आने जाने वाली नियत किया जाय।

दूसरों का शारीरिक उन्नति के लिए आर्य्यों को ये उपाय करने चाहिये—आर्य सभासद अपने बन्धुओं में, बाल-बच्चों में सात्विक आहार की रीति प्रचलित करे। व्यायाम का स्वभाव डाले। बालकों को खेल कूद में, दौड़ने भागने, उछलने-फांदने में तथा अन्य अनेक साहस के कामों में प्रोत्साहन दे।

जनता के हितार्थ कूप, तड़ाग और बावड़ी का लगाना शारीरिकउन्नति के कारण हैं। धर्म्मशालाएं और सरायें बनवाना भी पुण्य कर्म हैं। समर्थ आर्य-जन जनहित के लिये व्यायाम की सामग्री सहित व्यायाम-शालाओं की स्थापना करे; व्यायाम-समितियों की नींव डाले; जातीय खेलों का प्रचार करे; सुगठित, परिपुष्ट, बलिष्ट और व्यायाम में निपुण जनों को पारितोषिक देकर प्रोत्साहित करे। स्नानागार बनाना और घाटों की रचना करना भी सुधार के साधन हैं।

सामर्थ्यवान आर्य आतुरों के लिए औषधालय खोले, दीन-दुःखियों को सहायता दे, अनाथालय चलाये, सदावर्त्त—अन्न सत्र—की स्थापना करे; असमर्थ जनों में अन्न-वस्त्र बांटे, विधवाओं और असहाय गृहस्थों कों गुप्त सहायता भी दे।

छठे नियम का दूसरा भाग आत्मोन्नति है। इस अंग को पालने वाले आर्य भक्त को प्रातः सायं, दोनों समय, सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। वह नियमपूर्वक ईश्वराराधन के साधन करे विवेक-बुद्धि से आत्मसत्ता को समझे और विचारे। प्रतिदिन आत्मा भावनाओं का चिन्तन किया करे। वे आत्म भावनायें ज्ञान, अमर भावना और आनन्द भावना के भेद से, तीन हैं

आर्य भक्त को ज्ञानात्म-भावना का चिन्तन करते समय इन भावों को विचारना चाहिए कि मैं रंगों का, रूपों का, आकारों का साक्षी हूँ। मैं छओं ऋतुओं के आने-जाने को देखता हूं। मैं रात दिन के बढ़ने-घटने और ज्योतिष-चक्रकी चाल का द्रष्टा हूं। मेरे सामने अनेक रूप-रंग, आकार-प्रकार परिवर्तित हुए अनेक बार सुर्यदेव उदय होकर अस्त हो गये; ऋतुराज वसन्त अनेक अनेक बार आया और चला गया, परन्तु मेरा ज्ञान एकरस बना हुआ है। मैं आज से अनेक वर्ष पहले भी इन वस्तुओं का ऐसा ही साक्षी था जैसा आज हूं। दिन नहीं रहे, रातें चली गई. रूप बदल गये, आकार दिखाई नहीं देते, परन्तु उनका ज्ञान मेरे भीतर विद्यमान है। जिस प्रकार एक दर्शक के सामने से लाखों सैनिक निकल जाते हैं, पर उसका दर्शन जो पहले पहल आगे से निकलने वाले सैनिक के ज्ञानको अन्तिम सैनिक के ज्ञान के साथ मिलता है, एक बना रहता है, ठीक उसी प्रकार मेरे सम्मुख लाखों परिवर्तन आकर चले गये, पर मैं उनके ज्ञानकी लड़ी पिरोने वाला द्रष्टा स्थिर हूं। विकारों के नाश के साथ मेरा ज्ञान नष्ट नहीं होता। इसी कारण मैं ज्ञानस्वरुप हूं।

मैं गणना-शास्त्र द्वारा लाखों वर्षों की गिनती करता हूँ। बीते हुए बहुत वर्षों की बातकी कड़ी आजके कालके साथ मिलाता हूं। सैंकड़ों वस्तुओं की संख्या करके उनकी एक क्रमयुक्त माला बना देता हूँ भूतकाल के ज्ञानको वर्त्तमान कालके ज्ञानके साथ जोड़कर उनको एक लम्बी लड़ी में ले आता हूं। इसलिए अनेकों का जानने वाला एक, पूर्वापर का संयोजक, भूत काल के भावों का वर्त्तमान में ज्ञाता, दोनों कालों का साक्षी, मैं आत्मा हूँ और ज्ञानरूप हूँ।

बाल्य काल में मैं जिस स्थान में बैठ कर पढ़ा करता था, उसे आज भी देख रहा हूँ। मेरा तन बदल गया, मन बदल गया, मस्तिष्क बदल गया, पर ज्ञान नहीं बदला। वह अब भी वही का वही है।

मेरे बाल्यकाल के दिन युवाकाल में लय हो गये, मेरी उस समय की कोमलता मेरा उस समय का भोलापन आज नहीं है। वह मिट गया परन्तु ज्ञान नहीं मिटा। इन दिनों भी वे दिन मुझे रह रहकर स्मरण हो आते हैं। मेरी अवस्थाएं नहीं रहीं, उस समय के सारे खेल मिट गये, पर मैं हूं ज्ञानस्वरूप, जो उनके होने की आज साक्षी दे रहा हूं। दस वर्ष पहले जिस सज्जन को मैंने यहां पर देखा था, आज इतने कालके अनन्तर भी उसे वहीं देख रहा हूं। यह ज्ञानका अटूट तार मेरे ज्ञानमय होने का प्रबल प्रमाण है। कल जो मित्र मुझे मिले थे, वे आज यहाँ नहीं हैं। परन्तु उनका ज्ञान मुझ में विद्यमान है। मेरी जाग्रत अवस्था स्वप्न में नहीं रहती। इसके सारे ठाट बाट वहाँ नहीं दिखाई देते। स्वप्न

के राग-रंग और दर्शन-स्पर्शन गाढ़ निद्रा में मिट जाते हैं। उस समय जाग्रत और स्वप्न दोनों का दृश्य अदृश्य हो जाता है। जागने पर स्वप्न और निद्रा के पदार्थ तो नहीं रहते, पर स्मृति—ज्ञान—ज्योंका त्यों बना रहता है। एक अवस्था में दूसरी दो नहीं रहती—मिट जाती हैं—परन्तु मुझ ज्ञानी का ज्ञान नहीं मिटता। वह तद्वत् एकसा बना रहता है। इसी कारण अवस्थाओंका साक्षी, उनके साथ न मिटनेवाला मैं, आत्मा, ज्ञानस्वरूप हूँ। क्योंकि वस्तुओं और अवस्थाओं के भेद के साथ मेरे ज्ञान में भेद नहीं आता। उसकी एकरूपता, काल अवस्था वस्तु और देश के भेद से बाधित नहीं हो सकती।

दूसरी अमर भावना है। इसके अभ्यासी को विचारना चाहिए कि जब तीनों कालों में, तीनों अवस्थाओं में मेरा ज्ञान एकरस बना रहता है, उसका नाश नहीं होता, तो ज्ञानस्वरूप तो मैं ही हूँ, इस कारण में अमर हूं। मैं ज्ञानी किसी काल में, किसी देश में और किसी अवस्था में नहीं मर सकता। मेरी सत्ता कदापि कहीं भी नष्ट नहीं हो सकती।

यह अटल नियम है कि नास्तिसे कभी अस्ति नहीं होती। कभी भाव से अभाव और अभाव से भाव नहीं होता। यदि कोई अभावसे भाव को मान भी ले तो ऐसी कोई युक्ति नहीं है जिससे वह यह सिद्ध कर सके कि जिसका कारण अभाव है, नास्ति है, वह अभाव और नास्तिसे भिन्न भी कुछ है। इस नियम से मैं अपने होने का साक्षी हूं। लाखों मनुष्यों के मेले में अपने आपको मैं नहीं भूलता। मुझे अपने व्यक्तित्व और पृथकत्वका पूरा ज्ञान है। 'मैं हूँ' इस बिन्दु को मान और स्थिर करके ही मेरे ज्ञान की रेखा लम्बी होती है, कार्यका चित्र खिंचता है, क्रिया कलापका मार्ग निश्चित किया जाता है। इस कारण मैं वस्तु हूँ। वस्तु का कभी नाश नहीं होता। अतएव मैं अविनाशी हूं।

मैं अपनी पृथ्वी से सूर्य पर्यन्त और तारामण्डल को भी प्रकाशित करता हूँ। मैं ही इनकी लम्बाई चौड़ाई को मापता हूं। मैं सारे सौर लोक का उदयास्त बना रहा हूं। मैं अंक हूँ और ये सम्पूर्ण प्राकृतिक पदार्थ बिन्दु हैं। मेरे होने से इनकी गिनती हो रही है। मेरे अस्तित्व के बिना के अंक, बिना बिन्दु की भाँति निरर्थक हो जायँ। दूसरे पदार्थों का प्रकाशक मैं काल के कृपाण से ऊपर हूं। वह मुझे मार नहीं सकता।

तत्वों के मिश्रण से अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। उन विकारों के रुप-आकार आदि में नया पन भी आ जाता है। दूसरे जड़ विकारों की भांति हमारी देह भी, तत्वों का, एक विकार ही है। जब नाना जड़ विकारों में जीवन और चेतना दोनों का अभाव है, तब उन्हीं के सदृश इस विकार में प्राण और ज्ञान कैसे उत्पन्न हो गये? प्राण और ज्ञान यदि विकार-जन्य होते तो दूसरे समान विकारों में भी पाये जाते। जड़ विकारों में इन दोनों का अभाव है। इस कारण आत्मसत्ता जड़ वस्तु से भिन्न है, विकार-जन्य नहीं है, किन्तु वह एक स्वतन्त्र वस्तु है। वस्तुका कभी भी नाश नहीं हो सकता। मैं वस्तु हूं। इसलिए मैं अमर और अविनाशी हूँ।

जितने कर्म हैं वे सब कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। कर्म में कारण का गुण बराबर बना रहता है। कार्य उत्पन्न होता है इसी लिए नष्ट भी हो जाता है। जो उत्पन्न नहीं होता वह कार्य नही हुआ करता और न नष्ट होता है। मेरा आत्मा जड़ तत्वों का कार्य नहीं है क्योंकि यह जीवन और ज्ञान है। जीवन और ज्ञान किसी भी जड़ तत्व में नहीं ज्ञात होते। उसमें ये दो गुण नहीं दीख पड़ते। इस कारण आत्मा कार्य न होने से अजन्मा है—अनुत्पन्न है। जो कार्य नहीं है कभी भी नहीं बना. वह अमर, अविनाशी कहलाता है। अतएव मेरा आत्मा अमर. अमिट और नित्य है।

तीसरी आनन्द भावना है आत्मोन्नतिके अभिलाषी को आनन्दभावना के भावों का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए:-सब सुख भीतर है। अन्तरात्मा में है। बाहर तो केवल तृष्णा है वासना है और इच्छाओं के जटिल जाल के फैलने का क्षेत्र है। जब मनुष्य को किसी वस्तु की चाह होती है तब उस वस्तु की प्राप्ति के लिए उसका चित्त व्याकुल

बना रहता है। जब उस वस्तु की प्राप्ति हो जाती है तब उसके चित्त में संतोष आ जाता है। उसे सुख प्रतीत होने लगता है। यह सुख विषयों में भटकती हुई चित्तवृतियों के भीतर जाने—आत्मता प्राप्त करने—के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

जिस समय चित विषयाकार होता है बाह्य जगत में भटकता फिरता है जिस समय मन ठिकाने नहीं रहता और चारों आर दुर दुरकी दौड़ लगाया करता है उस समय भोगोपभोग चाहे कितने ही प्राप्त हो परन्तु उसे सुख नहीं होता शांति नहीं मिलती। सुख और शाँति तो चित के प्रशाँत और मन के एकाग्र होने पर प्राप्त होते हैं। जब वे प्रशांत और एकाग्र होने हैं. तब इनका निवास आत्मा में हुआ करता है। इसी लिए कहा जाता है कि सुख सन्तोष है; और सन्तोष मन के संयम में है। मनोनिग्रह और इन्द्रिय विजय ये सब अपने भावों को बाहर से भीतर लाने के भेद हैं। इन को संक्षेप से आत्मदेव का अपने आप में स्थिर होना कहा जा सकता है।

सुखानन्द आत्मा में है। सन्तों ने इस पर सुषुप्तिका उदाहरण दिया है कि सुषुप्ति में पाँचों इन्द्रियों के विषय नहीं रहते, संकल्प-विकल्पका लय हो जाने के कारण मन को मनमोदक भी नहीं मिलते, परन्तु सुख असीम होता है। सुषुप्तिका वह सुख निर्विषय होता है, उसमें मनोराज्य का लेश भी नहीं दिखाई पड़ता। उस समय सारी इन्द्रियों की सब शक्तियाँ, मनका सारा सामर्थ्य और बुद्धि का सम्पूर्ण बल, बाहर से लौटकर, आत्मा में चला जाता है। आत्मा में इनका एक प्रकार का लय हो जाता है। ऐसी अवस्था में जो आनन्द हुआ करता है, उसका स्रोत आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है। अनन्त आत्मा का निवास स्वात्म में ही है। इसलिए सुख का सागर भी वही ठाठें मार रहा है।

(क्रमशः)

लाल डब्बे वाला
दन्त कल्प मन्जन
सब से अच्छा
मन्जन है।
पायरिया व समस्त दन्त रोगों को
जड़ से नष्ट करता है
उत्तराखंड
आयुर्वैदिक रसायनशाला
ग़ाज़ियाबाद

स्त्री व पुरुष की प्रत्येक दुर्बलता पर
शत प्रतिशत लाभ प्रद
यौवनदा
(आयुर्वैदिक–महौषधि)
प्रमेह, प्रदर, स्वप्न-दोष, नपुंसकता, स्नायुदौर्बल्य, स्मरण शक्ति की कमी, गर्भाशय की दुर्बलता, बंध्यापन, हाथ पैरों की जलन, मधुमेह, रक्ताल्पता, हिस्टीरिया आदि सभी रोग एक कोर्स के सेवन से पूर्णतः जड़मूल से समाप्त हो जाते हैं
७ दिन की औषध का मूल्य १।=)
२१ दिन के कोर्स का " ३॥)
४० दिन के पूरे कोर्स का " ५॥=)
डाक व्यय ।।।=) पृथक
एजेन्सी के इच्छुक पत्र व्यवहार करें
उत्तराखंड आयुर्वैदिक रसायनशाला
ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.)

हमारे अद्वितीय तीन ग्रंथ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्त्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इस लिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके है, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४॥)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका—आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार' दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिल्कुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े तीन रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठास साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठास साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैल, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्ण से टक्कर लेती है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, ओज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलबीर एवेन्यू देहरादून।

"वेद प्रकाश" के पिछले दो वशेषांक

सचित्र वाल्मीकि रामायण

(धारावाही हिन्दी में भूल सहित)

भारतीय सस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले इस ग्रन्थ का पाठ तथा कथा प्रत्येक घर में होनी लाभप्रद होगी। प्रक्षिप्त, अनावश्यक तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को निकाल दिया गया है। शुद्ध भारतीय मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी का जीवन ऐतिहासिक होने के साथ कल्याणकारी भी है। भाषा सरल सुबोध, धारावाही होने के कारण, पढ़ना आरम्भ करने के बाद, पूरी कथा पढ़े बिना रहा नहीं जाता। १०-१२ रंगीन व एकरंगे चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १०) "वेद प्रकाश" के ग्राहकों से डाक व्यय सहित मूल्य ८) विवाह आदि में उपहार देने योग्य एक ही पुस्तक है। प्रत्येक समाज घर में रखने योग्य पुस्तक है।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

ऋषि के प्रामाणिक ७ असली फोटो चित्र सहित २० पुस्तकों का संग्रह, जिसमें ऋषि की आत्मकथा ऋग्वेद के प्रथम सुक्त का भाष्य, हुगली शास्त्रार्थ ईसाइयों के साथ लिखित ३ दिन का 'बरली शास्त्राथ' आदि नवीन पुस्तकें भी सम्मलित हैं। सबसे मुख्य चीज है प्रत्येक पुस्तक के साथ उसका इतिहास जो कि विशेष महत्व का है। बड़ी साइज़ के लगभग ४०० पृष्ठ के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४॥) हैं। "वेद प्रकाश" के ग्राहकों को डाक व्यय सहित सजिल्द पुस्तक केवल ३॥) में मिलेगा।

गोविन्दराम हासानन्द, "वेदप्राश" कार्यालय, नई सड़क, देहली।

श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थी

कृत कुछ प्राप्य पुस्तकों के नये संस्करण

उपनिषद कथा	१।)
मातृशक्ति का वैदिक स्वरूप	१=)
मनुष्य के कर्तव्य	१=)
गायत्री महत्व	१)
THE GRANDEUR OF GAYATRI	१॥)

मिलने का पता—

(१) श्री रामलाल मलिक ५/६० कनाट
सरकस, नई देहली

(२) गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८
नई सड़क, देहली।

दैनिक तिथि प्रकाश

(आर्य डायरी सन् १९५७ की)

सार्वदेशिक प्रेस द्वारा प्रकाशित

हर वर्ष की भाँति वेद-मन्त्रादि युक्त सजिल्द मूल्य ।॥)
१२ प्रतियों से अधिक मंगाने पर ।।=) प्रति। डाक ख०अ०।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

शोक ! शोक !! महा शोक !!!

आर्य जगत् के प्रसिद्ध, वेदादि शास्त्रों के प्रज्ञात पण्डित पुज्यपाद १०८ श्री स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी का ता० २७-११-५६ मंगलवार सायंकाल ६ बजे दयानन्द वाटिका सब्जी मण्डी देहली में हृदय गति रुक जाने से देहान्त हो गया। स्वामी जी के देहान्त से आर्य जगत के साहित्य क्षेत्र में महान् क्षति पहुँची है।

ईश्वर विचार (गतांग से आगे)

यद्यपि हमने इसको प्रथम किसी दशा में अस्वीकार भी किया हो परन्तु नूतन दशा में उसके पश्चात् हममें फिर उसकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है और इस प्रकार हम सदैव अपनी ज्ञानशक्ति को ढिलमिल दशा में देखते हैं जिससे सदैव हमको कष्ट होता है। यथाः—एक मनुष्य ने उत्तम फल खाया जो उदर में जाकर पुरीष, मूत्र, रुधिर, अस्थि, मांस, मज्जा, वीर्य इत्यादि की भिन्न-भिन्न दशाओं में परिवर्तित हो गया। हमें इन वस्तुओं से पूर्ण घृणा हो गई। परन्तु जब यह वस्तुएँ पुनः पृथ्वी के नीचे से दूसरे फल के रूप में उत्पन्न होवें तो हमारा मन जो पहिली दशा में घृणा करता था फिर ललचाने लगा। इसी भांति के व्यवहार प्रतिदिन हमारे सन्मुख प्रत्येक वस्तुओं में दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। परन्तु हम प्रकृति के मूल कारण से परिचित नहीं, इसलिए इसकी आनन्दप्रद दशा पर आनन्दित होकर जीवन को इसके प्राप्त करने में व्यय किया करते हैं। इससे न तो इच्छा ही पूरी होती हैं, और न ही दुःख दूर होता है, और हमको मन, इन्द्रिय, और शरीर की निष्फल सेवा करनी पड़ती है।

पाठकगण ! अब आप समझ गये होंगे, कि हमारे दुःखों का कारण प्रकृति के स्वरूप को न जानना है। संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं, जिसने अपनी ही अन्वेषणा (छानबीन) से प्रकृति की सम्पूर्ण दशा का ज्ञान उपार्जन कर लिया हो, अतः प्रकृति की जड़ और उसकी विरुद्ध-शक्ति के न जानने से संसार में हमको दुःख हो रहा है—इसका कारण हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसी वस्तु को जो प्रकृति के प्रतिकूल गुणों वाली हो, जानने का प्रयत्न करें और उसकी उपासना से प्रकृति से उत्पन्न हुए दुःखों को दूर करें।

प्यारे पाठकगण ! जब प्रकृति की दशाओं को हम देखते हैं तो विदित होता है प्रकृति सर्वव्यापक अपरिणामिनी और जड़ है, अतः प्रकृति की दशा से वही परिचित हो सकता है जो सर्वव्यापक और चैतन्य हो। अतएव कोई जीवात्मा तो सर्वव्यापक हो नहीं सकता। इस कारण सर्वव्यापक ज्ञाता एक परमात्मा है और उसी को प्रकृति का यथार्थ ज्ञान उसी से मिल सकता है। दूसरे जीवात्मा दुःख सुख दोनों से रिक्त है और परमात्मा आनन्द स्वरूप है, तो अब दुःख का आधार प्रकृति के सिवाय और कौन हो सकता है, जीवात्मा संसार में दुःख को छोड़ना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है और दुःख प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा होता है और प्रकृति के व्यापक और नित्य होने से जीवात्मा का प्रकृति से सदैव सम्बन्ध रहता है जिससे जीवात्मा सर्वदा दुःख पाता रहता है। दुःख स्वरूप प्रकृति के विरुद्ध परमात्मा आनन्दस्वरूप शक्ति है जिसको उपासना से जीव दुःख से छूट सकता है इस कारण जीव को परमात्मा की उपासना करनी योग्य है।

प्यारे पाठकगण ! हमारे बहुत से मित्र बहुधा यह प्रश्न करते हैं कि हमने एक बार परमात्मा को जान लिया अब प्रतिदिन उपासना करने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु उनको स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार सर्दी के दिनों में कोई मनुष्य अग्नि और कपड़े के कारण सर्दी से छूट जावे जब उसका शरीर गर्म हो जावे तो वह अग्नि और कपड़े को फैंक दे तो अवश्य थोड़ी देर में उसे फिर सर्दी सताने लगेगी और उसे दुबारा अग्नि और वस्त्र की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार नित्य प्रति ईश्वर की उपासना की आवश्यकता है। कुछ तो उपासना प्रकृति ने स्वतः ही नियत कर दी है जिससे जीव संसार में जीवित रहता है। यदि यह उपासना न होती तो पापी जीवात्मा दुःख के बोझ से विवश हो जाता। परन्तु परमात्मा की कृपा से कुछ देर इसी ईश्वर को बिना जाने उपासना करनी पड़ती है जिससे उसके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो कर उसे पुनः काम करने की शक्ति आ जाती है। इस उपासना को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। जब जीव के बाह्य ज्ञान के साधन मन, इन्द्रिय, बुद्धि इत्यादि बाह्य सम्बन्धों से दुःख पाते-पाते थक जाते हैं और वह अधिक दुःख उठाने के योग्य नहीं रहते, तो वह सब थककर अपना काम छोड़ देते हैं उनके काम त्याग न करने से जीवात्मा से प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाता है। जीवात्मा का यह नियम है कि वह

किसी न किसी वस्तु की उपासना ज्ञान प्रयत्न के द्वारा करता रहे। इस कारण प्रकृति की उपासना के साधनों के न होने से वह अपने भीतर जाकर परमात्मा की उपासना आरम्भ करता हैं, जिससे वह सम्पूर्ण दुःखों को भूल कर आनन्द में ऐसा मग्न होता है कि उसे किसी की सुध नहीं रहती, परन्तु परमात्मा की उपासना से शांति होकर जीव के मन, इन्द्रिय इत्यादि उस थकावट से विश्रान्ति प्राप्त कर लेते हैं, तब वह जीव को पुनः प्रकृति के बाह्य पदार्थों की उपासना में लगा देते हैं। प्यारे पाठक गण ! हमारे बहुत से मित्र प्रश्न करेंगे कि इन्द्रियों को क्या आवश्यकया पड़ी कि वह आत्मा को परमात्मा से हटा कर प्रकृति की ओर लगाते हैं, उसका उत्तर यह है कि ब्रह्मानन्द सुषुप्ति आदि दशाओं से प्राप्त होता है वह इन्द्रियों को अनुभव नहीं होता, क्योंकि वह उनका विषय नहीं और विषय का आनन्द इन्द्रियों को अनुभव होता है जिस प्रकार जगत् में बहुत से दलाल व्यापारी को झूठी दुकान पर ले जाते हैं, कभी सच्ची दुकान पर नहीं ले जाते क्योंकि सच्ची दुकान से उन्हें दलाली मिलने की आशा नहीं और झूठी दुकानों से दलाली अवश्य मिलती है इसलिये वह व्यापारी की हानि को जानकर भी उसे योंही झूठी दुकान पर ले जाते हैं। ऐसे ही आत्मा के दुःख को अनुभव करके भी मन और इन्द्रियाँ जीवात्मा को प्रकृति के विषयों में ही लगाना चाहती हैं। हमारे बहुत से मित्र जो सुषुप्ति को तमोगुण की वृत्ति मानते हैं, हमारी सुषुप्ति को ईश्वर उपासना मानने के विरुद्ध युक्ति प्रविष्ट करेंगे और हमारी बात को मनघड़न्त बतलावेंगे, परन्तु उन को स्मरण रखना चाहिये कि हमारी ही राय नहीं, वरन् महात्मा कपिल मुनि ने अपने सांख्य शास्त्र में भी इस बात को माना है। वह महात्मा कहते हैं:—

"समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता" अ० ५।११६

अर्थात् ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जीव सत् चित् है और जीव की तीन दशाओं में ब्रह्म के सम्बन्ध से आनन्द की प्राप्ति होती है। अर्थात् सत् चित् आनंद होता है, वह तीन दशाओं में से समाधि, दूसरी सुषुप्ति और तीसरी मुक्ति है—हमारे पाठकगण ! इस बात पर शंका करेंगे कि जब इन तीन दशाओं में जीव में आनन्द आ जाता है तो जीव ब्रह्म में भेद नहीं रहता ? परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि आनन्द ब्रह्म का स्वाभाविक गुण है, और जीव को नैमित्तिक ब्रह्म की उपासना से प्राप्त होता है। जैसे गरमी के दिनों में वायु में गरमी आ जाती है परन्तु गर्म स्पर्श वाली होने से भी वायु अग्नि नहीं हो जाती, इसी भांति ब्रह्म की उपासना से जीव में आनन्द आ जाता है, परन्तु जीव ब्रह्म नहीं हो जाता। प्यारे पाठकगण ! आप कहेंगे कि इन तीन दशाओं में क्या भेद है ? इसका उत्तर यह है कि जब ज्ञान रहित और शरीर सहित जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है उसे सुषुप्ति कहते हैं और जब ज्ञान सहित और शरीर सहित जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है तो उसे समाधि कहते हैं और जब ज्ञान सहित और शरीर रहित जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो उसे मुक्ति कहते हैं। अब आप सोच सकते हैं कि जिस सुषुप्ति में ज्ञान के न होने पर भी ब्रह्म की उपासना सम्पूर्ण दुःखों को दूर करती है, क्या उस ब्रह्म की उपासना जीव को दुःख से छुड़ाने के लिए न करनी चाहिये ? बहुधा मनुष्य हमारी समाधि और सुषुप्ति की तुलना पर शंका करेंगे, परन्तु स्वामी शंकराचार्य भी लिखते हैं (शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः) अर्थात् प्रश्न था सुखसे कौन सोता है। उत्तर दिया गया कि जो समाधि में चित्त की वृत्तियों को स्थिर करता है।

प्यारे पाठकगण ! आप नित्य स्नान कर शरीर के मैल को दूर करते हैं जो थोड़ी देर में पुनः लग जाता है या नित्य वस्त्र धुलानेमें जो फिर मैला हो जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा प्रकृति के सम्बन्ध से सदैव अज्ञान और पाप के मैल को प्राप्त करता है। इस कारण प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष का काम है कि इस प्रकृति से उत्पन्न होने वाले अज्ञान और पाप को दूर करने के लिए सदैव शुद्ध विज्ञान वाले परमात्मा की उपासना किया करें, जिससे यह मैल जमने न पावे क्योंकि यदि शरीर नित्य शुद्ध किया जावे तो बड़ी

सुगमता से मैल उतर जाता है परन्तु मैल अधिक देर का हो जाने से कठिनता से दूर होता है, इस भांति जब तक पाप का स्वभाव पुष्ट नहीं हो जाता तब तक थोड़ी देर तक उपासना करने से जीव के मन के भाव बुराई की ओर कम चलते हैं परन्तु उनके स्वभाव बुरे हो गये तो फिर बहुत कठिनता से यह पाप की टेव छूटती है। प्यारे पाठकगण! चूंकि प्राकृतिक नियम है कि वस्त्र बिना परिश्रम के मैला हो जाता है। परन्तु उसके शुद्ध करने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है। अब आप समझ गये होंगे कि प्रकृति और विषयों का सम्बन्ध तो जीव को सदैव स्वयं होता रहता है जिससे जीव को सदा दुःख ही प्राप्त होता है। इस दुःख से छूटने के लिए जीव को पुरुषार्थ करके परमात्माकी उपासना करनी चाहिए। प्यारे पाठकगण! यह भी आपको विदित रहे कि मन किसी न किसी पदार्थ के साथ सम्बन्ध अवश्य रखता है। यदि प्रकृति की उपासना करेंगे तो प्रकृति की उपासना से अवश्य दुःख मिलेगा चूंकि मन प्रकृति की प्रत्येक वस्तु की इयत्ता पर पहुँच जाता है इस कारण वह प्रकृति की उपासना से शान्त नहीं होता और एक वस्तु को छोड़ने तथा दूसरी को प्राप्त करने में जो पुरुषार्थ होता है तब इस मन के विचार थक जाते हैं, परन्तु परमात्मा की इयत्ता को मन किसी प्रकार नहीं जान सकता। इस कारण परमात्मा की उपासना में मन को छोड़ना और ग्रहण करना नहीं पड़ता। इस कारण मन इस गहरे समुद्र में डूब जाता हैं जहाँ उसे तनिक भी थकावट और दुःख का अनुभव नहीं होता।

प्यारे मित्रो! अब आप समझ गये होंगे कि ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य अपने अभीष्ट स्थान को भी प्राप्त नहीं कर सकता और न ही संसार के दुःखों से छूट सकता है। यद्यपि बहुत से मनुष्य विषयों में भी सुख मानते हैं परन्तु वह उनकी भूल है, क्योंकि विषय में तनिक भी सुख नहीं है। हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि यदि विषयों में सुख नहीं तो लोग किस प्रकार विषय सुख मानते हैं। इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कुत्ते के मुंह में हड्डी होती है और उसके मुंह से जो रुधिर निकलता है वह उसको समझता है कि यह रुधिर हड्डी से ही मिल रहा है। इस प्रकार जब मन विषय में कुछ समय एकाग्र होता है तो मनुष्य को सुख अनुभव होता है। यथार्थ में सुख तो मन के एकाग्र होने से मिला था परन्तु मनुष्य समझते हैं कि विषय से सुख मिला है।

प्यारे मित्रो! संसार में प्रकृति और परमात्मा के सिवाय ,सम्बन्ध किसी वस्तु से नहीं हाता है और प्रकृति से दुःख मिलता है और परमात्मा से सुख प्राप्त होता है, इस कारण जीवात्मा को सदैव परमात्मा की उपासना अर्थात् उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जब जीवात्मा और परमात्मा को जान जाओगे तो पाप कर्मों से स्वयं घृणा हो जायगी, जब पाप से घृणा हो गयी तो कष्ट भी उत्पन्न न होगा। इसलिए संसार में मनुष्य का बहुत भारी कर्तव्य परमात्मा को जानना है जिसके जानने से फिर दुःख की आशा नहीं रहती। फिर पाठकगण, आप विचार कर लीजिए कि मनुष्य को कहाँ तक ईश्वर उपासना की आवश्यकता है और इस उपासना से कितने लाभ होते हैं। हमारे बहुत से लोग कहते हैं कि जब ईश्वर उपासना से भी किये हुये कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है तो फिर उपासना से क्या होगा? परन्तु उनको स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर उपासना से पाप का फल भोगते हुए भी कष्ट नहीं अनुभव होता क्योंकि दुःख का अनुभव करने वाला मन परमात्मा की उपासना में लगा है, इसलिए कष्ट किसको अनुभव हो?

इति शम्।

सचित्र वाल्मीकि रामायण

धारावाही हिन्दी मूल संस्कृत सहित प्रक्षेप तथा अनावश्यक भाग निकालकर शुद्ध करके छापा गया है मूल्य ११) दीपावली तक रियायती मूल्य डाकव्यय सहित ८) में शीघ्र मंगावें।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली।

❀ ओ३म् ❀

ईश्वर प्राप्ति

(१)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ (यजु० ३१ । १८)

इस वेदमन्त्र में परमात्मा जीवों को मोक्ष के साधन का उपदेश करते हैं और बताते हैं कि संसार में मोक्ष के बहुत से साधन नहीं, किंतु जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिए प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं हो सकता और न ही सरदी को दूर करने के लिए गरमी के अतिरिक्त और से काम चल सकता है इसी प्रकार संसार में मनुष्य के जीवन उद्देश्य अर्थात् दुःखों से छूटने का नाम या आगे को दुःख न उत्पन्न होने का नाम मोक्ष बतलाते हुए उसके एक ही साधन को (जिसके अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता) उपदेश करते हैं कि—तुम सर्वव्यापक परमात्मा को जानो, जो परमात्मा सूर्यवत् प्रकाशमय है, जिसमें किसी प्रकार की अज्ञानता या दोषादि का सम्भव ही नहीं, जो सर्व प्रकार के दूषणों से पृथक् है । उसी परमात्मा को जानने से ही अतिमृत्यु अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है । मोक्ष के लिए कोई दूसरा मार्ग हो ही नहीं सकता । वेद के इस मन्त्र को सुनते ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि—

"लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्थ तु प्रतिज्ञामाण"

अर्थात् जब तक किसी वस्तु का लक्षण न कहा जावे और उसकी सत्ता के लिए कोई प्रमाण न उपस्थित किया जावे तब तक उसकी सत्ता प्रतिज्ञामात्र से सिद्ध नहीं हो सकती । इस कारण जब तक ईश्वर का लक्षण न किया जावे तब तक उसके जानने से मुक्ति नहीं होती है और परमात्मा के जानने के अतिरिक्त अन्य कारणसे मोक्ष नहीं हो सकता, प्रतिज्ञा मात्र ही है, इस सिद्धांत को लेकर महात्मा व्यास जी अपने वेदान्तदर्शन में ईश्वर का लक्षण कहते हैं कि—

जन्माद्यस्य यतः ॥ वे० द० १ । १ । २ ॥

अर्थ—जिस से इस संसार का जन्म, स्थिति और नाश होता है वह ईश्वर है । अर्थात् जो इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला, पालने वाला और नाश करने वाला है, वह ईश्वर है । इस लक्षण को सुनते ही वादी शंका करता है कि तुम्हारा यह ईश्वर का लक्षण ठीक नहीं, क्योंकि यह संसार अनादि है । जब तक जगत् की उत्पत्ति सिद्ध न की जावे तब तक ईश्वर का यह लक्षण किस प्रकार ठीक हो सकता है । इस कारण से कि वादी की प्रतिज्ञा जगत् को अनादि मानने की है । इस पर प्रश्न होता है कि जगत् स्वरूप से अनादि है या प्रवाह से ? यदि यह कहो कि जगत् स्वरूप से अनादि है, यह तो किसी दशा में सत्य हो ही नहीं सकता । इस दशा में जगत् का अविकारी अर्थात् ६ विकारों से पृथक् होना आवश्यक है । वह विकार ये हैं कि—

'जायते वर्द्धते संस्थीयते विपरिणम्यते क्षीयते विनश्यते'

जिस वस्तु में इन ६ विकारों में से कोई पाया जावे वह अनादि नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्यक्ष में भी इन ६ विकारों का उत्पत्तिमान् वस्तु में ही होना पाया जाता है । जैसे एक बालक उत्पन्न होता है, बढ़ता है, युवावस्था पर्य्यन्त बढ़ कर बढ़ना बन्द हो जाता है, फिर मूंछ दाढ़ी का निकलना, शरीर में भोजन का आना, फिर पक कर निकल जाना आदि विकार होते हैं, पश्चात् वृद्ध होना, अर्थात् घटना आरम्भ होता है और अन्त को मर जाता है । यही दशा एक वृक्ष की है, वह बीज से छोटा सा अंकुर निकल कर उत्पन्न होता है, फिर बढ़ता है, फिर एक अवधि तक बढ़ कर बढ़ना बन्द हो जाता है, फिर पतझड़ और वसन्त के कारण कभी हरा भरा होकर फल लाता है, कभी शुष्क होकर नङ्गा हो जाता

है, अंत को नष्ट हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु में छहों विकार एक साथ ही हों, किंतु अपने समय में एक या दो ही रहते हैं। जो उस में अपने दूसरे सहचारियों के होने को सिद्ध करते हैं, जब कि हम सम्पूर्ण जगत् को विकार वाला प्रतीत करते हैं; तो उसको किस प्रकार अनादि स्वीकार कर सकते हैं ? अनादि वस्तु के लिये निर्विकार अर्थात् बढ़ने घटने से पृथक् होना आवश्यक है। जबकि यह सृष्टि किसी प्रकार भी विकार रहित सिद्ध नहीं होती तो किसी प्रकार यह स्वरूप से अनादि नहीं कहला सकती। यदि कहो कि प्रवाह से अनादि है तो इस प्रवाह के चलाने वाले का होना (अर्थात् जो किसी समय बनावे और किसी समय न बनावे) उचित है। इस पर वादी यह कहता है कि यद्यपि जगत् में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दशा बदलती हुई दृष्टि पड़ती हैं, परन्तु समष्टि सृष्टि दशा नहीं बदलती, इस कारण पूछते हैं कि वास्तव में सृष्टि इन सब वस्तुओं के समूह का नाम है या कोई दूसरी वस्तु है ? यदि कहो कि वस्तुओं के समूह का नाम सृष्टि है तो जिस समूह के अवयव दशा बदलते हैं वह समूह विकार रहित नहीं हो सकता। जैसे एक मनुष्य के हाथ, पांव, उदर, शिर आदि सम्पूर्ण अवयव निर्बल हो गये और वह कहे कि मेरा शरीर निर्बल नहीं हुआ तो उसे मूर्ख ही कहना पड़ेगा। क्योंकि इन अवयवों के समूह के अतिरिक्त शरीर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इस कारण सृष्टि के सम्पूर्ण अवयवों को विकारी मानकर सृष्टि को समष्टिरूप से निर्विकार बतलाना सर्वथा अज्ञानता है। यदि वादी कहे कि इन वस्तुओं के समूह के अतिरिक्त सृष्टि कोई दूसरी वस्तु है तो उसकी सत्ता का प्रमाण देना चाहिये। वादी कहता है कि यदि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु के उत्पत्तिमान् होने से और उसका नाश देखने से सृष्टि को उत्पत्तिमान् ही स्वीकार किया जावे तो उसका कर्त्ता ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि सृष्टि स्वभाव से उत्पन्न होती है, स्वभाव के अतिरिक्त सृष्टि का उत्पादयिता कोई नहीं। वादी की इस शङ्का में भी 'कि सृष्टि का उत्पन्न करने वाला स्वभाव है' यह वादी की प्रतिज्ञा है। इस कारण इस प्रतिज्ञा की परीक्षा आवश्यक है। इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि स्वभाव द्रव्य है या गुण है ? यदि वादी कहे कि स्वभाव द्रव्य है तो उसके गुण क्या हैं? यदि कहे गुण है, तो किस द्रव्य का है?दूसरे गुणोंसे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता। सृष्टि द्रव्य है इस कारण कोई द्रव्य ही हो सकता है। वादी कहता है कि स्वभाव गुण है जो प्रकृति में रहता है। प्रकृति के विशेष मिलाप से सम्पूर्ण वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अब वादी से कहते हैं कि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार हम स्वभाव को प्रकृति का गुण मान कर उससे सृष्टि की उत्पत्ति मान लेवें तो नाश किस से होगा क्योंकि उत्पन्न होना और नाश होना ये दो विरुद्ध गुण हैं, जो किसी एक वस्तु में रह ही नहीं सकते। अब वादी इसका उत्तर देता है कि प्रकृति में संसार के नाश और उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है। उत्पत्ति संयोग या मिलाप से होती है। प्रकृति के अन्तर्गत जल है, जिसका गुण संयोग है और दूसरी वस्तु प्रकृति में अग्नि है, जिसका काम विभाग करना है। इस कारण जल से मिलाप होकर वस्तुओं की उत्पत्ति और अग्नि से अवयव छिन्न-भिन्न होकर वस्तुओं का नाश हो सकता है। इस कारण अग्नि और जल दो प्रकार की वस्तुएँ प्रकृति के अन्तर्गत होने से विरुद्ध गुणों की एकता का दोष इस स्थान पर नहीं घटता। वादी के इस उत्तर को सुनकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकृति में उत्पन्न करने और नाश करने की शक्तियां तीन दशाओं में रह सकती हैं या तो उत्पन्न करने की शक्ति अधिक और नाश करने की शक्ति न्यून हो, या नाश करने की शक्ति अधिक और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून हो, या दोनों सम हों। परन्तु प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति आदि का होना, इन तीनों दशाओं में असम्भव है, चौथी दशा कोई हो ही नहीं सकती। यदि वादी उत्पन्न करने की शक्ति अर्थात् संयोग को अधिक मानेगा तो प्रत्येक वस्तु बढ़ती ही चली जाएगी कोई वस्तु घटेगी नहीं क्योंकि जिस क्षणमें संयोग की शक्ति की अधिकतासे उस वस्तुमें पाँच परमाणु मिलेंगे, उस क्षण में वियोग अर्थात् घटने की शक्ति के कम

होने से चार परमाणु पृथक होंगे अर्थात प्रतिक्षण एक परमाणु बढ़ता जायेगा, घटने का अवसर कभी आवेगा ही नहीं, परन्तु यह प्रतिज्ञा सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि सृष्टि में वस्तु घटती बढ़ती दोनों दशाओं में पाई जाती है। सो ऐसा मानना असम्भव है इसलिए यह प्रतिज्ञा स्थिर नहीं हो सकती कि प्रकृति में उत्पन्न करने की शक्ति अधिक हो, दूसरे यदि नाश करने की शक्ति अधिक मानी जावे और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून, तो उस दशा में जिस क्षण में पांच परमाणु पृथक होंगे और चार मिलेंगे तो इस दशा में प्रत्येक क्षण प्रत्येक वस्तु से एक परमाणु घटता ही चला जायेगा कोई वस्तु बढ़ेगी नहीं, परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध प्रतीत होती है क्योंकि जगत में बहुत वस्तुएं बढ़ती हुई दृष्टिगत होती हैं। तीसरी दशा यह है कि दोनों शक्तियाँ तुल्य स्वीकार की जावें, उस दशा में जिस क्षण में एक वस्तु में पाँच परमाणु संयुक्त होंगे उसी क्षण में पाँच ही वियुक्त होंगे क्योंकि दोनों शक्तियें अव्याहत और तुल्य काम कर रही हैं। इस दशा में सृष्टि की कोई वस्तु न बढेगी और न घटेगी किन्तु सर्व सृष्टि एक ही दशा में रहेगी, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से स्पष्ट असत्य है क्योंकि प्रत्येक वस्तु सृष्टि में एक सी नहीं दीखती, सब बढ़ती घटती हुई पाई जाती है जैसा दिन कल था वैसा आज का दिन नहीं है, क्योंकि उससे अनुमान डेढ मिनट के अधिक होता है आज की रात कल की गत रात के बराबर नहीं, वह उससे न्यून होगी। इस प्रकार विचार करने से सम्यक्तया बोध होता है कि स्वभाव से उत्पत्ति का होना असम्भव है। दूसरे संयोग और वियोग दोनों गुण कर्म से उत्पन्न होने वाले हैं। और कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक यह प्रश्न होता है? यदि कर्म प्रकृति में स्वाभाविक धर्म मान लिया जावे तो कोई प्राकृत वस्तु स्थिर नहीं पायेगी क्योंकि स्वाभाविक धर्म किसी वस्तु का रुक नहीं सकता, परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि हम बहुत वस्तुओं को स्थिर देखते हैं।

अब वादी कहता है कि कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है, परन्तु जिन वस्तुओं को हम स्थिर देखते हैं उनको पृथिवी की आकर्षण शक्ति ने रोका हुआ है, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगी फिर कोई प्राकृत वस्तु चलती हुई नहीं दीखेगी क्योंकि पृथिवी की आकर्षण शक्ति उस पर प्रभाव डालती है। जैसे एक गाड़ी चल रही है, दूसरी स्थिर है, जब कि पृथिवी की आकर्षण शक्ति दोनों पर तुल्य प्रभाव रखती है।

प्रकृति कर्म को स्वाभाविक धर्म मानने से एक का चलना और दूसरी का न चलना किस प्रकार सम्भव हो सकता है? उक्त दोषों के अतिरिक्त पृथिवी भी प्रकृति से बनी है वह भी गतिमान होने से किसी नियम के आधीन नहीं हो सकती, उसका प्रत्येक परमाणु गतिमान है, इस कारण उनका संयोग हो ही नहीं सकता। क्योंकि पृथिवी के प्रत्येक परमाणु में उनका स्वाभाविक धर्म जो कर्म हैं, उसे पृथक करने के लिए उपस्थित है जिससे पृथिवी का आकर्षण भी नहीं हो सकता। इस पर वादी कहता है कि प्रकृति का प्रत्येक परमाणु गतिमान है और पृथिवी का आकर्षण उनको रोके हुए है जिसको दूसरी शक्ति अर्थात् अग्नि आदि से सहायता मिलती है, वह पृथ्वी की शक्ति को दबाकर चली जाती है, जिसको सहायता नहीं मिलती वह रुकी रहती है।

अब फिर प्रश्न होता है कि दूसरी शक्ति जिसकी सहायता से एक गाड़ी चलती है और दूसरी उसकी सहायता न होने से रुकी हुई है यह सहायता देना उस शक्ति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक? यदि कहो स्वाभाविक धर्म है तो उसको दोनों गाड़ियों को सहायता देना चाहिए जिससे दोनों गाड़ियां चलेगी या स्थिर रहेंगी। एक का चलना, एक का न चलना, दोनों असम्भव हैं। इस कारण जगत् को उत्पत्तिमान् और ईश्वर को उसका उत्पन्न करने वाला मानने के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से व्यवस्था हो ही नहीं सकती। इसी अवसर पर वादी फिर शङ्का करता है कि यदि यह भी स्वीकार कर लिया जावे

कि कोई जगत का कर्त्ता है तो उसके होने में प्रमाण क्या है ? क्योंकि यदि उसके होने में कोई प्रमाण हो तो उसके जानने से मुक्ति हो सकती है, परन्तु जिसके होने में कोई प्रमाण ही नहीं तो उसको किस प्रकार जान सकते हैं ? क्योंकि ईश्वर का तीन काल में प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं और जिसका प्रत्यक्ष न हो उसे अनुमान से कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जान कर फिर उसके अनुसार अनुमान होता है और जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो उसके लिए शब्द प्रमाण हो ही नहीं सकता। जब ईश्वर को प्रमाण से जान नहीं सकते इसलिए ईश्वर का होना सत्य नहीं और न ही उसके जानने से मुक्ति हो सकती है। परन्तु जब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं का इन्द्रियों से ज्ञान न होवे वह नहीं होती, यदि ऐसा मानों तो जिन इन्द्रियों से न देखने से तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो, उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो ? यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं तो आत्माश्रय दोष है अर्थात् स्वयं ही दृश्य वस्तु और स्वयं ही देखने का साधन नहीं हो सकता। यदि कहो हम दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं इसलिए आंख का होना आंख से ही प्रतीत होता है, परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्योंकि दर्पण में आंख नहीं दीखती किन्तु आँख का आभास होता है उससे अनुमान के द्वारा जानना तो मान सकते हैं परन्तु यह कहना कि आंख से आंख को देखते हैं सत्य नहीं, किन्तु आँख से आंख के आभास को देखकर उससे आंख के होने का अनुमान करते हैं कि यह सत्य होगा। अस्तु, आँख का तो अनुमान से ही ज्ञान हो गया परन्तु रसनेन्द्रिय का किससे ज्ञान होगा। न तो वह रूप है जो आंख से दीखे और न शब्द है जिसका कान से ज्ञान हो, प्रयोजन यह है कि रसना इन्द्रिय का ज्ञान किसी इन्द्रिय से नहीं हो सकता। ऐसे ही अन्येन्द्रियों की दशा है, जिन इन्द्रियों से न दीखने के कारण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते वे तुम्हारी इन्द्रियां ही प्रत्यक्ष नहीं, तो तुम्हारा सिद्धाँत स्वयमेव खण्डित होता है। इसके अतिरिक्त जो पुरुष ऐसा विचार रखते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणों का मूल है और जिस वस्तु का प्रत्यक्ष न हो उसका अभाव है वे बहुत ही भ्रान्ति में पड़े हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष से किसी वस्तु का अनुमान के बिना ज्ञान हो ही नहीं सकता। प्रत्येक वस्तु के एक ही भाग का प्रत्यक्ष होता है शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है। जब केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना जावे तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न होगा, दूसरे अनेक ऐसी दशा हैं कि जिनके कारण वस्तुओं के विद्यमान होने पर भी उनका ज्ञान नहीं होता। प्रथम अति समीप होने से, जैसे नेत्र में सुरमा होता है परन्तु वह नहीं दीखता; दूसरे बहुत दूर होने से, जैसे लन्दन यहां से नहीं दीखता; तीसरे अति सूक्ष्म होने से, जैसे परमाणु दृष्टि में नहीं आते, चौथे अति स्थूल होने से, जैसे हिमालय पहाड़ सम्पूर्ण नहीं दीखता, पांचवे वस्तु और इन्द्रिय के बीच में व्यवधान होने से, जैसे आंख पर हाथ रखने से कोई वस्तु भी नहीं दीखती अथवा भित्ति (दीवार) के दूसरी ओर की वस्तुएं नहीं दीखतीं; छठे इन्द्रियों में दोष हो जाने से, जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता और बहरे को शब्द का ज्ञान नहीं होता इत्यादि, सातवें मन के अव्यवस्थित होने से भी नेत्रों के सामने चली जाने वाली वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता। जब कि इन सात दशाओं में विद्यमान वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष नहीं होता तो प्रत्यक्ष न होने से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सत्य नहीं किन्तु ईश्वर के होने में अनुमान और शब्द प्रमाण विद्यमान है।

वादी शङ्का करता है कि अनुमान किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि जब तक व्याप्ति का ज्ञान न हो तब तक अनुमान नहीं हो सकता और व्याप्ति प्रत्यक्ष से ग्रहण की जाती है, ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ नहीं इस लिए व्याप्ति के न होने से अनुमान नहीं हो सकता। परन्तु वादी का यह कथन सत्य नहीं, क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि प्रकृति में क्रिया नहीं जब तक चेतन उसको क्रिया देता है तब तक ही क्रिया होती है। जिसको प्रणाम मृतक, और जीवित शरीर को देखने

से स्पष्ट प्रतीत होता है अर्थात् जब तक क्रिया देने वाला क्रिया दे रहा था तब तक यह शरीर क्रिया कर रहा था और जब चेतन पृथक हो गया तब वह शरीर जो प्रकृति से बना था क्रिया शून्य हो गया। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राकृतिक वस्तु में क्रिया चेतन के बिना नहीं हो सकती, दूसरे जिस क्रिया में नियम पाया जावे वह तो किसी प्रकार नियम बनाने वाले के बिना हो ही नहीं सकता। जैसे कोई घड़ी १२ घंटे में और कोई सप्ताह में चाबी लेती हैं, वह घूम फिर कर फिर अपने उसी स्थान पर आ जाती है, इन उदाहरणों के होने से सम्यक्तया विद्वान् घड़ी बनाने वाले का होना प्रतीत होता है। कोई मनुष्य भी जिसको बुद्धि हो घड़ी को उत्पत्तिमान् मान कर किसी अचेतन वस्तु द्वारा बनाई हुई नहीं जानता, यद्यपि घड़ी बनाने वाले को घड़ी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा, परन्तु अनुमान से घड़ी के कर्त्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है। क्योंकि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तु में लौट कर उसी स्थान पर आने का नियम हो नहीं सकता। जैसे कि आगे चलना इञ्जन में भाप के होते हुए और किसी कल के बिगड़े जाने से रुक जाना भी सम्भव है, परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्भव नहीं जब तक कोई चेतन न लौटावे। इसलिए जिन वस्तुओं की कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसी स्थान पर लौट आने की शक्ति है, वह अवश्य ही चेतन के नियम से बंधी हुई है। इसलिए सृष्टि के सम्पूर्ण भूगोल नियम के आधीन देखने में आते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी और तारागण सबके बीच में नियत क्रिया के अतिरिक्त और किसी प्रकार का नियम प्रतीत नहीं होता जिसके नियमों की परीक्षा हम सौ वर्ष पहले से ही जान सकते हैं कि अमुक तिथि में इतने बजे सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहण होगा। जिस प्रकार हम घड़ी को देखकर प्रतीत कर सकते हैं कि इतनी देर के पश्चात् घड़ी की सुइयां अमुक स्थान पर मिल जायेंगी, ऐसे ही सूर्य और चन्द्र ग्रहण भी नियम के आधीन होने से हमें पहले से प्रतीत हो सकते हैं। यद्यपि घड़ी को बनाने वाला चेतन मनुष्य हमें सृष्टि में दीखता है जिससे व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर हम कह सकते हैं कि इस नियमपूर्वक जगत् को बनाने वाला चेतन परमात्मा है।

महात्मा आनन्द स्वामी कृत चार स्वाध्याय योग्य पुस्तकें

तत्त्व ज्ञान

वेदों उपनिषदों, गीता और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका आदि तथा अपने अनुभव के आधार पर कठिन विषयों को सरल शैली पर समझाने का सफल प्रयत्न किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। सभी विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। पुस्तक की छपाई सुन्दर तथा जिल्द आकर्षक है मूल्य ३)।

आनन्द गायत्री कथा

आनन्द स्वामी जी की गायत्री पर सप्ताह भर की कथा रोचक शिक्षाप्रद दृष्टान्तों से युक्त पढ़ने पढ़ाने योग्य है एक बार पुस्तक हाथ में उठाकर बिना समाप्त किये नहीं छोड़ी जा सकती। पृष्ठ संख्या १३४ मूल्य ॥)

प्रभु दर्शन

प्रस्तुत पुस्तक में प्रभु-प्राप्ति के संबंध में जैसे प्रभुदर्शन के लिए क्या चाहिए, और उसके साधकों को किन किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए, आदि यह पुस्तक श्री आनन्द स्वामी जी के साधनामय जीवन का निचोड़ है। कागज़ मजबूत छपाई बढ़िया तथा जिल्द बहुत ही आकर्षक है मूल्य २॥)

प्रभु भक्ति

यह पुस्तक स्वामी जी ने अपने पूर्वाश्रम में जब वे खुशहालचन्द आनन्द थे लिखी थी। हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर जब स्वामी जी गुलबर्गा जेल में थे लिखी गई थी। पुस्तक का यह आठवां संस्करण है। सजिल्द का मूल्य १॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

उपयोगी पुस्तकें

पं. जयदेव कृत	
ऋग्वेद भाष्य ७भाग	४२)
अथर्ववेद ४ भाग	२४)
यजुर्वेद २ भाग	१०)
सामवेद	६)
पं. तुलसीरामस्वामी कृत	
न्याय दर्शन	२)
योगदर्शन	१॥)
वेदान्तदर्शन	२॥)
वैशेषिकदर्शन	२)
मनुस्मृति	५)
स्वामी दर्शनानन्द कृत	
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उत्तरार्द्ध)	२॥)
न्यायदर्शन	२॥)
वैशेषिक दर्शन	३॥)
गीता भाष्य	१॥)
म०नारायण स्वामी कृत	
मृत्युपरलोक	१।)
अमृत वर्षा	२)
पाप पुण्य	॥)
गृहस्थ जीवन रहस्य	२।!)
महर्षिदयानन्द "इन्द्र"	२)
तरंगितहृदय 'अभय'	१।)
कौटिल्य अर्थ शास्त्र	१०)
कुरानशरीफ	८)
एकादशोपनिषद	१२)
ब्रह्मचर्य सन्देश	४॥)
दयानन्दका पत्रव्यवहार	७)
जाति निर्णय	४)
योग प्रदीप	१२)
स्वामी सर्वदानन्द	
सन्मार्ग दर्शन	४)
आनन्द संग्रह	२)
ईश्वर भक्ति	२)
ईश्वर मिलाप	॥)

धर्म ज्ञान ४ भाग	२–)
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२)
संस्कार विधि	॥।–)
हितोपदेश भा०टी०	१॥)
पंचतन्त्र भाषा	३॥)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
हमारी माताएं	३)
भारतीय वीरांगनाएं	३)
वैदिक सम्पत्ति	६॥।)
दर्शन और गीता	१।)
दृष्टान्त महासागर	२।)
दयानन्द और गांधी	२)
नैतिक जीवन	२॥)
भक्तियोग विवेकानन्द	२)
कर्मयोग ,,	२)
भक्ति और वेदान्त ,,	२)
आगे बढ़ो	१॥)
सफलता की कुन्जी	१)
भारत में मूर्ति पूजा	२)
पूर्वजन्म स्मृति	।=)
स्वाध्याय संग्रह	२)
स्वाध्याय सन्दोह	६)
अष्टाध्यायी प्रकाशिका	५॥।)
हिन्दू संगठन	१)
सत्य हरिश्चद्र	१)
गीत श्रद्धांजली	१।=)
बीरबल की हाजिर जवाबी	१)
अमीरी के दिन	३)
जागृत एशिया	२)
सरस भोजन कैसे बनावे	३॥।)
स्त्री शिक्षा पाक प्रकाश	४!)
नारी धर्म शिक्षा	२)
भारत के स्त्रीरत्न	७॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ।

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगावें

–) प्रति, तथा ४) रु० सैकड़ा. ३५) रुपया हजार

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद मात
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य
३० सत्संग भजन
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवादकी रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षासे हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ.स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ.स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धम क्यों प्यारा है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीज की पुस्तकें

१	आलू की खेती	॥।)
२	टमाटर की खेती	॥)
४	गोभी की खेती	॥)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	॥।)
५	तरकारियों की खेती	१॥)
६	अच्छे बीज	॥।)
७	अच्छी खाद	२॥)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	॥।)
१०	फूल फुलवारी	२॥)
११	धान की खेती	१॥)
१२	संतरे की बागवानी	२॥)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	॥।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	॥)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१॥)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
२२	फलों की खेती	३॥)
२३	पशुओं का घरेलू [illegible] डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३॥)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३॥)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२॥)

नोट:— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६२॥।=) होती है एक साथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ॥—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादि[illegible]द्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां
देहली में छपवाकर वेदप्रक[illegible] कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्
ऋग्
यजु
साम
अथर्व

वेद प्रकाश

वर्ष ५ | पौष सं० २०१३, जनवरी १९५७, दयानन्दाब्द १३३ | मूल्य ≡) वार्षिक २)
अंक ६ | सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द | विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

शांति की याचना—

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रा-
सोमा सुविताय शंयोः श नः इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ ऋ० ७।३५।१॥

अर्थ—(इन्द्र अग्निः) क्षात्र तथा ब्रह्म तेज (अवोभिः) अन्नों और रक्षा साधनों द्वारा (शंनः भवताम्) हमारे लिये शान्ति दायक हों। (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा अथवा विद्युत और जल (रात हव्या) ग्रहण तथा देने योग्य जल अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने वाले (नः शम्) हमें सुख दें। (इन्द्रा सोमा शम्) विद्युत और औषधिगण अथवा आचार्य शिष्य शान्ति दायक हों (सुविताय) सुखमय जीवन व्यतीत और (वाजसातौ इन्द्रा पूषणाशम्) अन्नादि लाभ के लिये इन्द्र और वायु हमारे लिये कल्याणकारक हो।

हे ईश्वर! बिजली और अग्नि रक्षा सामग्री के द्वारा हमें सुखकारक हों। ग्रहण योग्य वस्तु देने वाले बिजली और जल हमें सुखकारी हों, चन्द्रमा और औषधिगण उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भयनिवर्त्तक हों। बिजली और पवन अन्नादि लाभरूप में हमें सुखदायक हों।

बिल्कुल नई असली और सच्चा समय देने वाली जूलदार घड़ियाँ, सेल टैक्स माफ

मूल्य में भारी कमी तथा विशेष रियायतें—

यह असली और ठीक समय बताने वाली ३६ घन्टे चाबी की स्विस तथा जर्मन मेड (SWISS & JARMAN MADE) घड़िया बहुत सुन्दर टिकाऊ और आज कल के फैशन की खास आर्डरों से बढ़िया मशीनें लगवा कर बड़ी संख्या में मंगवाने के कारण नीचे के कम से कम मूल्य पर बेची जा रही है। आप को जो पसन्द हो मंगवा कर लाभ उठावें। आर्डर में घड़ी का माडल नम्बर तथा मूल्य जरूर लिखें ताकि बिल्कुल आप के पसन्द की घडी भेजी जाये। हमें पूरा विश्वास है कि आप को मंगवाई हुई घड़ी देखकर आप के मित्र तथा सम्बन्धी भी जरूर मंगवाएंगे। विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने के लिये भी यह घड़ियां बहुत उपयुक्त हैं। सेल टैक्स भी नहीं लिया जावेगा।

हर घड़ी के साथ सुन्दर फीता मुफ्त तथा गारंटी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है। डाक व्यय हर घड़ी का अलग। ३ घड़ियों पर डाक व्यय माफ। कोई सी ८ घडिया मगवाने पर सातवी आधी कीमत पर। १२ मंगवाने पर तेरहवीं मुफत इनाम! विज्ञापन में जिन घड़ियों पर रेडियम डायल नहीं लिखा वे रेडियम चाहियें तो प्रति घडी १॥) अधिक लिये जावेंगे। ३ से अधिक घड़ियों के आर्डर के साथ १०) मनीआर्डर द्वारा अगाऊ भेजें, बाकी का वी० पी० होगा।

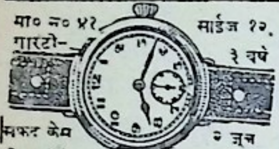

बिना सैकिंड १५) रु० सुनहरी केस १६) रु० सैकिंड सहित सफेद केस ७ जूल १६) रु० सुनहरी केस ७ जूल १७) रु०

मा० नं० ४२
गारंटी—
साइज १२.
३ वर्ष
संटर सैकिंड
सफेद केस

७ जूल १८) रु०। सुनहरी केस १६)

घड़ियों के सुन्दर तथा बढ़िया चेन निकल पालिश २) सुनहरी पालिश ३) स्टील का ४) रद्द रोल्ड गोल्ड १२)

माडल नं० ४४
साईज १०½
या
६½
गारंटी—
४ वर्ष

सफेद केस ७ जूल मैय सैकिंड १८) सुनहरी केस ७ जूल २०) सफेद केस ५ जूल २१) रु०। सुनहरी केस ५ जूल २३) रु० सफेद केस १५ जूल २६) रु० सुनहरी केस १५ जूल २८ रु०। ६½ साईज १५ जूल ३२) सुनहरी केस ३४) १७ जूल सफेद ३६) सुनहरी ४०)

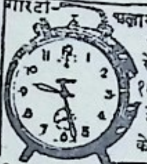

अलारम टाईमपीस ५ साल रंगदार केस बिना रेडियम १४) रेडियम १६) सफेद केस बिना रेडियम १५॥) सफेद केस रेडियम १७॥)

माडल नं० ५२
साईज ५½
गारंटी—
स्त्रियों के लिये
१० साल

लेडी घड़ियाँ, भिन्न भिन्न शेप बहुत खूबसूरत सुनहरी केस ५ जूल ३५) रु० १५ जूल ३६) रु० पिन लीवर सुनहली १७ जूल ४५) बहुत खूबसूरत बिल्कुल सोने की मालूम पडती है १५ जूल ४५) रु० बढ़ियां १७ जूल ५०) व ६०) बैंगल चूड़ी सहित

माडल नं० ४६
साईज ७½
गारंटी
७ वर्ष
टोनियों कर्व या रैक्टेंगूलर

सफेद केस ५ जूल २४) सुनहरी केस २६) सफेद केस १५ जूल ३०) सुनहरी केस १५ जूल ३३) सफेद केस स्टील लीवर १५ जूल ६०) गोल्ड स्टील बैक १५ जूल ६५)

माडल नं० ४७। १०½ व
साईज ६¾
गारंटी—
१० वर्ष

रेडियम वाटर परूफ शाक परूफ ऐंटीमगनेटक सफेद स्टील बैक केस १५ जूल ३७) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १५ जूल ४०) रु० सफेद स्टील बैक केस १७ जूल ४३) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १७ जूल ४६) सफेद स्टील बैक केस २१ जूल ६०) सुनहरी स्टील बैक केस २१ जूल ६३)

रेलवे टाइम कीपर पाकेट वाच १-बिना सैकिंड ६) रेडियम १०) २-सैकिंड सेहत १० रेडियम ११) ३-सैकिंड सेहत ५ जूल १५) रेडियम १६) नं० ४-जर्मन मेड बहुत बढिया २५) रेडियम २७) रु०।

पता—**स्विस वाच कम्पनी** (वी० पी० २) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

ोमबत्तियाँ बनाना	३।)
ायल इन्जन गाइड	६)
ुगन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
िनेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
गन्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ोतिष शास्त्र	६)
द्धक औषधियाँ	३।)
पालिश बनाना	३।)
टर मिकेनिक गाइड	६)
सक्रीम बनाना	३।)
शन बुक	५)
म्पाउन्ड्री शिक्षा	३॥)
चित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
र के गुब्बारे बनाना	३।)
टर गाइड	६)
लैक्ट्रिक गाइड	६)
लैक्ट्रिक वायरिंग	५)
ानाईसाजी	३।)
टोग्राफ़ी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रँगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४॥)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२॥)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३॥)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३॥)
बैट्री विज्ञान	२॥)
सरल हिन्दी इँगलिश टीचर	२॥)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२॥)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२॥)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४॥)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।॥)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२॥)
स्वर्णकार शिक्षा	२।॥)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३॥)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२)
श्री प्रेमसागर सचित्र	४)
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

ाने का पता :—

एल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

दीर्घ जीवन का उपाय

(लेखक—स्वर्गीय वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी महाराज)

ओ३म् । जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ् त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥ अ० ८।२।२

(जीवताम्) जीवों के (ज्योतिः) प्रकाश को (अर्वाङ्) सामने होकर (अभि आइहि) उद्योग से प्राप्त कर । मैं (त्वा) तुझको (शत-शारदाय) सौ वर्ष के जीवन के लिये (आ+हरामि) चलाता हूँ । (अशस्तिम्) अप्रशस्तता, गन्दगीरूप (मृत्युपाशा न्) मौत के फंदों को (अवमुञ्चन्) दूर कराता हुआ (ते) तुझे (प्रतरम्) बहुत बड़ी (द्राघीयः), लम्बी (आयुः) आयु (दधामि) देता हूं ।

मनुष्य की साधारण जीवन-अवधि सौ वर्ष की है, जैसा कि जिजीविषेच्छतँ समाः(य० ४०।२) (मनुष्य सौ वर्ष जीने की इच्छा करे कहा गया है । प्रकृत मन्त्र में ही भगवान् ने कहा है ।

आत्वा हरामि शतशारदाय=तुझे इस संसार में सौ वर्षों के जीवन के लिये लाया हूँ ।

जैसे जलते दीपक से दूसरे दीपक जलाये जा सकते हैं, ऐसे ही जीते जागतों से ही जीवन-ज्योति मिल सकती है । इसी भाव से कहा है—

जीवतां ज्योतिरभ्येहि=जीते जागतों से जीवन प्रकाश ले ।

अर्थात् दीर्घजीवी लोगों के पास उठो, बैठो, उनकी दिनचर्य्या का निरीक्षण करो कि कैसे उन्हें दीर्घ जीवन मिला । जैसी संगति होती है प्रायः वैसे ही आचार विचार बनते हैं । अतः दीर्घ-जीवन के अभिलाषियों को दीर्घजीवियों का संग करना अतीव उपयुक्त है । इसी प्रकार मरों का चिन्तन छोड़ देना चाहिये । जो मर गये, सो गये । इस रूप में वे आने के नहीं । उनको पुनः पुनः स्मरण करने से मरण के संस्कार ही पुष्ट होंगे । अतः वेद कहता है ।

मा गतानामादीधीथा ये नयन्ति परावतम् । (अ० ८।१।८)=मरों का चिन्तन मत कर, वे जीवन से परे ले जाते हैं । प्रत्युत आ रोह तमसो ज्योतिः (अ० ८।१।८)=मृतक चिन्तन रूप अन्धकार से ऊपर उठ कर जीवन ज्योति प्राप्त कर ।

जीवन के विघ्नों का नाम मृत्यु या मृत्युपाश है । दीर्घ जीवन के अभिलाषी को इन मृत्युपाशों को काटना होगा । वेद कहता है —

अवमुंचन मृत्युपाशानशस्तिम्=अर्थात् अशस्ति=गन्दगी, दुराचाररूप मृत्युपाशों को छोड़ । समस्त अशस्त=निन्दित आचार, यथा व्यभिचारादि, युक्त आहार-विहार का अभाव जीवन को घटाने वाले हैं । ये मृत्यु को समीप लाने वाले हैं । अतः इनका त्याग ही करना चाहिये । अशस्ति के विपरीत ब्रह्मचर्य्य=परमात्मा के आदेशानुसार आचार, मौत को मारने का प्रबल हथियार है । जैसा कहा है—

ब्रह्मचर्य्येणतपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत (अ० ११५।१९)=ब्रह्मचर्य्य तप के द्वारा विद्वान् मृत्यु को मार भगाते हैं । ब्रह्मचर्य्य से दीर्घ जीवन मिलता है, जैसा कि वेद में आदेश है—

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परि वेधिरे । सा त्व परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ अ० ६।१३३।५

हे मेखले (कौपीन) ! जिस तुझ को सत्यकारी पूर्ण ऋषि बांधते हैं, वह तू दीर्घ जीवन के लिये आलिंगन कर । मेखला ब्रह्मचर्य्य का बाह्य चिह्न है । दीर्घ जीवन-अभिलाषी को ब्रह्मचर्य्य धारण करना चाहिए और उसके साधनों—मेखलाबन्धन—आदि में कभी प्रमाद न करना चाहिये । (स्वाध्याय सन्दोह से)

बाल शिक्षा

(ले० —जगदीशचन्द्र विद्यार्थी)

अशोणा दन्ताः (अथर्व १९।६०।१)

(दन्ताः) 'तुम्हारे' दान्त (अशोणाः) निर्मल हों।

राष्ट्र की विभूतियो !

दांत मुख मण्डल को सौन्दर्य प्रदान करते हैं। सुन्दर दांतों में एक जादू और मन मोहकता होती है।

परन्तु परमात्मा ने दांतों को केवल सुन्दरता के लिए नहीं दिया। परमात्मा ने दांत भोजन को चबाने के लिए प्रदान किये हैं, अतः इन्हें स्वस्थ और स्वच्छ रखना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वास्थ्य और दांतों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दांतों में दोष होने पर अनेक प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। यदि दाँत अस्वस्थ हों, तो दांतों से भोजन ठीक नहीं चबाया जायेगा, भोजन न पचने से आमाशय पर कर्तव्य भार बढ़ेगा। यदि दांतों पर मैल लगा होगा तो वह भोजन में मिलकर पेट में जायेगा और वहाँ पहुँच कर स्वास्थ्य को गिराने का प्रयत्न करता रहेगा तथा अनेकों रोगों को उत्पन्न करेगा। अतः स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए दांतों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योंकि good teeth good health. निर्मल दांत और अच्छा स्वास्थ्य।

दांतों की रक्षा न करने से अपच, मन्दाग्नि, कै आना, अजीर्ण, पेट दर्द, सिर दर्द. दुर्बलता आदि अनेक रोग हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्वास, कुष्ट, यक्ष्मा आदि की व्याधियाँ भी दांतों के कुफल के कारण होती हैं। इसके अतिरिक्त युवावस्था में कार्य करने का उत्साह कम हो जाता है, आलस्य बढ़ जाता है।

अपने मुख मण्डल की शोभा और शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल उठ शौचादि से निवृत्त हो दांतों को साफ करना चाहिये। दांतों को साफ करने के लिए दांतुन का प्रयोग करें अथवा किसी उत्तम दन्त मंजन का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु मंजन ब्रुश से कदापि नहीं करना चाहिए, अपितु तर्जनी अंगुली से करें।

दांतों की ओर विशेष ध्यान रक्खो क्योंकि 'दांत नहीं तो भोजन का आनन्द नहीं।'

ओ३म्

उपासना अष्टक

लेखक—शास्त्रार्थ केसरी, सिद्धान्त मार्तन्ड
पं० अमर सिंह जी 'अमर' आर्य पथिक (दीर्घ रोगी)

१ आप निरन्तर छू रहे, प्रभु मेरे सब गात।
यह निश्चय करके 'अमर, शुद्ध रहूँ दिन रात॥
२ तुम तो मुझ को छू रहे, मुझको लगती लाज।
मैं अशुद्ध तुम परम शुचि, 'अमर' सुधारो साज॥
३ मेरे मन में आपका, है हर समय निवास।
यत्न करूंगा 'अमर' यह पाप न आवे पास॥
४ जगदीश्वर हैं हृदय में, करके यह विश्वास।
'अमर' न आने दूं कभी, द्वेष दम्भ को पास॥
५ प्रभु प्रकाश के पुंज हैं, करते ज्ञान प्रकाश।
करो 'अमर' अज्ञान के अन्धकार का नाश।
६ दयासिन्धु के निकट है, निर्दय का क्या काम।
यह विचार करके 'अमर' बनो दया के धाम॥
७ सदा न्याय करते 'अमर' प्रभु है दया निधान।
सब अन्याय विसार के भक्त भजे भगवान॥
८ मैं सुपुत्र हूं आपका, आप सुपिता महान्।
'अमर' ने इस सम्बन्ध को तोड़े हे भगवान्॥

प्रभु

लेखक—पं० प्रकाशचन्द्र कविरत्न

ज्यों गन्ध है सुमन में और ज्योति है नयन में,
इस भांति बस रहे हो तुम प्राणनाथ ! मन में।
कस्तुरी नाभि में है पर मृग सुगन्ध पाकर,
व्याकुल भटक रहा है बीहड़ उजाड़ वन में।
शुभ कर्म ईश्वराधन उद्देश्य को भुलाकर,
जीवन बिता रहे हैं मतिहीन दुर्व्यसनों में।
संसार के दुखों से छूटा 'प्रकाश' वो नर,
तल्लीन हो गया जो प्रभु भक्ति कीर्तन में।

ओंकार-व्याख्या

(ले० श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी बी० ए० वैदिक रिसर्चस्कालर कलकत्ता)

संसार में ईश्वर की सत्ता मानने वाले जितने भी धार्मिक सम्प्रदाय हैं, उन सब में अपने अपने उपास्य देव के अनेकानेक नाम उनकी भाषा में विद्यमान हैं। उन नामों में से प्रायः समस्त नाम उनके उपास्य देव के भिन्न-भिन्न गुणों, कर्मों और स्वभाओं के परिचायक हैं अर्थात् कतिपय नामों में तो परमात्मा के किसी विशेष गुण का ही बोध होता है तथा अन्य नामों से उसके कर्म का परिचय मिलता है और बहुत से नामों से उपास्यदेव के स्वभाव का परिज्ञान होता है। हमारी संस्कृत भाषा में उपास्य देव के कितने नाम हैं। इसकी गणना नहीं हो सकती। संस्कृत भाषा में जितने भी शब्द हैं, प्रायः उन सब शब्दों द्वारा परमात्माके किसी न किसी विशेष गुणों का परिचय मिलता है। अतः उन शब्दों से परमात्मा का बोध हो जाता है। जैसे आदित्य शब्द है, "दो अवखण्डने" इस धातु से अदिति और तद्धित के प्रयोग से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है। अर्थात् जिसका विनाश कभी न हो, उसी ईश्वर की यह आदित्य संज्ञा है। पर भौतिक अर्थमें सूर्यको भी आदित्य कहते हैं। इसी प्रकार "अञ्चु" धातु 'गति' और 'पूजा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अग्, अगि, और इण, ये सब धातु भी गति अर्थमें प्रयुक्त होते हैं तथा इन्हीं धातुओं से अग्नि शब्द भी सिद्ध होता है सर्वसाधारण की दृष्टि में इसका अर्थ "आग" है, पर ईश्वर के पक्ष में ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य होनेके नाते उस परमेश्वर का नाम भी अग्नि है। स्पर्श ज्ञानसे वायुको भी सब जानते हैं "वा गति गन्धनयोः" इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है, तथा जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन प्रलय करता, और सब बलवानों का भी बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम वायु अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषः' यजुर्वेद के इस मन्त्र भाग के अनुसार सूर्य जड़ और चेतन पदार्थों का प्रकाशक है, संसार सूर्य को इस प्रकार भौतिक जगत् का अग्नि का गोला समझता है, परन्तु समस्त जङ्गम और स्थावर पदार्थों का भी जो प्रकाशक स्वरूप है, अतः "सूर्य" परमपिता-परमेश्वर का भी द्योतक है। इसी प्रकार "पृथ विस्तारे" इस धातु से पृथ्वी शब्द सिद्ध होता है, साँसारिक अर्थों में इसका अर्थ भी जमीन है, पर जो इस विस्तृत जगत्का विस्तार करने वाला है, ऐसा वह परमपिता परमात्मा "पृथ्वी" भी है। ऐसे ही प्यास लगने पर हमारे मुंह से जल शब्द उच्चरित होता है, बिना इसके संसार का काम नहीं चल सकता क्योंकि वह हमारे व्यवहारकी वस्तु है. परन्तु यही जल शबद "जलघातने" धातुसे व्याकरण द्वारा सिद्ध होता है जिसका ईश्वर परक अर्थ दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओंका अन्याऽन्य संयोग व वियोग करना है। अतः वह परमात्मा जल संज्ञक कहलाता है।

"कुवि-आच्छादने" इस शब्द से 'कुबेर' शब्द सिद्ध होता है, लौकिक अर्थ में तो धनके स्वामी का अर्थ कुबेर है, पर 'जो अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम कुबेर है। इसी प्रकार राहु, शनि, शुक्र, मंगल, बुध, चन्द्र केतु, यम,—आदि ये सब भौतिक पदार्थों में प्रयुक्त हुए संस्कृत के शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में ईश्वर के भी बोधक हैं। इसी प्रकार और भी अनेकानेक परमात्मा के भिन्न-भिन्न असंख्य नामों के उल्लेख किये जा सकते हैं, उन नामों में से प्रत्येक नाम प्रभू परमेश्वर के किसी न किसी विशेष गुण व कर्म के परिचायक होते हैं। परन्तु उस उपास्यदेव का एक मुख्य नाम

ऐसा भी होना चाहिये जिस नाम के अन्तर्गत उसके असंख्य नामों का समावेश हो जावे। और उस एक नामसे ही उसके समस्त गुणों, कर्मों और स्वभावों का बोध हो सके। वह परम पवित्र नाम प्रणव अथवा "ओ३म्" ओंकार है जैसा कि महर्षि पतञ्जलिने योग दर्शन में कहा है।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ योग० १।२८॥

(प्रणव) अर्थात् 'ओ३म्' जिस जगन्नियन्ता सर्वव्यापक सर्वेश्वर सर्वाधार और सच्चिदानन्द प्रभु का अपना नाम है, इस "ओ३म्" के साथ इसका नित्य सम्बन्ध है। इसी प्रकार यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में "ओ३म्" शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

यथा :— ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर

अर्थात्—हे कर्म करने वाले जीव! मृत्यु को प्राप्त होते हुए भी तू अपने अन्तिम क्षण पर्यन्त "ओ३म्" इस नाम वाच्य ईश्वर को स्मरण कर, अपने सामर्थ्य के लिये "ओ३म्" रूपी परमपिता परमात्मा और अपने सामर्थ्य का स्मरण कर, तथा इसी ओंकार के साथ मनका सम्बन्ध जोड़ते हुए अपने किये कर्मों का स्मरण कर।

आगे चलकर यजुर्वेद के अन्तिम १७ वें मन्त्र को देखें।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥
ओ३म् खं ब्रह्म ॥

संसार के समस्त मनुष्यों के प्रति प्रभु उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यों! जैसे मैं इहलोक में हूँ, वैसे ही अन्यान्य सूर्यादिलोकों में भी अवस्थित हूँ विशाल व्योम की व्यापकता के तुल्य मेरा अस्तित्व है, मुझसे अधिक कोई व्यापक नहीं,और न ही मुझसे अधिक कोई बड़ा ही है। मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से भी प्यारा मेरा अपना महान् नाम "ओ३म्" है, अतः प्रेम और सत्य व्यवहार के साथ जो मेरा नाम ओ३म् के रूपमें स्मरण करते हैं तथा इसकी जब शरण में आ जाते हैं, उनके अविद्यादि दोषों को अन्तर्यामी रूप से नष्ट करके विज्ञान द्वारा सुख प्रदान करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता हूँ।

यजुर्वेद के अन्य स्थान पर भी किस प्रकार "ओ३म्" का वर्णन है वह आप देखें:—

ओ३म्ः—मनो जुतिर्जषतामाज्यस्य वृहस्पति-
र्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टम् । यज्ञंसमिमन्दधातु
विश्वेदेवासइह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ ॥ यजु २।१३॥

इस मन्त्र में भी ईश्वर आदेश देता है, कि हे मनुष्यों! अति तीव्र गतिवाला तुम्हारा चंचल मन यज्ञानुष्ठान में लगा रहकर सुखी होवे, तथा संसार के समस्त प्राणियों को भी सुखी बनावे, "ओ३म्" यह मेरा उत्तम नाम है, जैसे पिता और पुत्रका प्रिय सम्बन्ध है, वैसे ही मुझ परमेश्वर के साथ भी ओंकार का अनुपम सम्बन्ध है। "ओं प्रतिष्ठ" हे ओंकार प्रभो! आप मेरे हृदय में प्रतिष्ठित होवें।

अतिरिक्त इसके ऋग्वेद में "ओ३म" शब्द किस प्रकार आया है यह भी यहां देखने योग्य है।

ओमासश्चर्षणी धृतो विश्वेदेवास आ गत।
दाश्वाँसो दाशुषः सुतम् ॥ ऋ० १।३।७॥

इस मन्त्र में "ओमासः" यह एक पूर्ण पद है, परन्तु सन्धि विच्छेद होने पर "ओम+आसः" ऐसा रुप हो जाता है। परब्रह्म "ओं" परमेश्वर का नाम है, तथा—"आस" का अर्थ समीप बैठनेवाले का, है, अर्थात् ब्रह्म के पास बैठनेवाले ब्रह्मज्ञानी। इस मन्त्रका पूर्ण अर्थ इस प्रकार है कि हे समस्त विद्वानों सोम आदि पदार्थ और विज्ञान के प्रकाशक एवं सत्कार से परिपूरित मेरे घर पर कृपा करके आप आवें, आप लोग कैसे हैं ? (ओमासः) ब्रह्म के निकट बैठने वाले, ब्रह्म के तत्व को जाननेवाले तथा प्रजाओं को धारण व उनके पोषण करने वाले और विविध विज्ञान को देनेवाले हैं।

इससे विदित होता कि 'ओंम्' की शरण में जाने वाले व्यक्ति ही इस प्रभु के संसार में रहने वाले प्राणियों पर समदृष्टि रखकर सबको सुखी बना सकते

हैं, और वे ही "तत्वदर्शी" संज्ञा को प्राप्त होते हैं। तथा जो विषम दृष्टि से देखते हुए प्राणियों को कष्ट देते हैं हिंसा में रत रहते हैं, वे कभी "ओमासः", अर्थात्—प्रभु के पास तक नहीं पहुँच सकते, और न ही तत्वदर्शी ही बनकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

"ओ३म्" के महत्व के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में भी कितना स्पष्ट लिखा है :—

तान्वेदानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि-शुक्राण्यजायन्तः भूरित्येव ऋग्वेदादजायतः भुवरितियजुर्वेदात्स्वरितिसामवेदात्। तानिशुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयोवर्णाअजायन्ताकार उकारोमकार इति तानेकधा समभरत्तदो३मिति ॥

ऐत० ५।३२॥

अर्थः—वेदों को तपाया उन तपाये हुओं से तीन शुक्र उत्पन्न हुए—ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, और सामवेद से स्वः, फिर उन तीनों शुक्रों को तपाया गया, उन तपाये हुओं से तीन वर्ण उत्पन्न हुए, अकार उकार और मकार इन तीनों को इकट्ठा किया गया, तब "ओ३म्" यह शब्द बना। तात्पर्य यह कि "ओ३म्" शब्द ही वेदों का सार एवं आधार है "ओ३म्" शब्द ही वेदों का परम और मुख्य विषय है।

तैत्तरियोपनिषद् में आता है कि :—

ओंमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम। ओमित्येतदनु कृतिहस्म वा अप्योंश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति ओंꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति, ओमिति अग्निहोत्रमनुजानातिः ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह, ब्रह्मोपाप्नवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥

"ओ३म्" ब्रह्म है। "ओ३म्" ही सब कुछ है अर्थात् ओ३म् नामक प्रभु ही इस संसार में सारवस्तु है। यज्ञ में "ओ३म्" यह शब्द अनुकरण वाचक है। यह प्रसिद्ध है यज्ञ में इसी को सुनते हैं। सामवेदज्ञ ओ३म् का ही गान करते हैं। ऋग्वेदी लोग विविध शास्त्र विधान से इसी ओ३म् का स्तुति गान करते हैं। यजुर्वेदी अध्वर्यु भी ओ३म् का उच्चारण करता है। ब्रह्मा "ओ३म्" के द्वारा ही आज्ञा करता है। ओ३म् कहकर ही अग्निहोत्र की आज्ञा देता है। ब्रह्मवित् पुरुष "ओ३म्" शब्द के द्वारा प्रार्थना करते हुए कहते हैं, कि मैं इसके द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होउं, वे अवश्य ही ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

कठोपनिषद् में लिखा है कि:—

सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठोपनिषद् ॥२।१५॥

अर्थात् सब वेद जिस पद का कथन करते हैं, सारे तप जिसको कहते हैं जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस पद को तेरे लिये संक्षेप से कहता हूँ वह "ओ३म्" है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छसितस्यतत् ॥
॥ २।१६ ॥

यह ओ३म् अक्षर ही परम ब्रह्म है। यही अक्षर सर्वोत्तम है। इसी अक्षर को जानकर जो भी मनुष्य जो कुछ भी चाहता है, वह उसको अवश्य ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये :—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।

यह (ओ३म्) ओङ्कार रूपी आश्रय श्रेष्ठ है, यही आश्रय सर्व श्रेष्ठ है, इसी आश्रय को जानकर प्राणी मोक्ष को प्राप्त होता है।

मुण्डकोपनिषद् में आता है कि:—

प्रणवो धनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मस्तल्लक्ष्य मुच्यते
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।
मुण्डकोपनिषद् ॥२।२।४॥

ओ३म् :-नाम के धनुष पर आत्मा रूपी बाण को चढ़ाकर योगी लोग अप्रमत्त अवस्था में तन्मय

होकर ब्रह्म रूपी लक्ष्य को बींधते हैं जिससे उनको अनन्त और सुख का अक्षय भण्डार प्राप्त हो जाता है।

बेद प्रतिपादित सिद्धान्तो से भिन्न मति रखने वाले वैदिकेतर जैन, बौद्ध आदि सम्प्रदायों में भी "ओ३म्" शब्द का वर्णनातीत मान है, इस विषय में एक उदाहरण मोनिअर विलियम्स् अपने कोष A sanskrit English Dictionary में देते हैं कि "Budhists Place Om at the Beginning of their Shadakshari or mystical Formulary in Six Syllables Viz; "Om mani Padme Hum",

अर्थात् बौद्ध-ओ३म् शब्द को अपनी षडाक्षरी या छ अक्षरों वाले मन्त्र के प्रारम्भ में रखते हैं। अर्थात "ओं मणिपद्मेहूम"

मूल—क्योंकि इसमें अ, उ, और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओम् समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं। जैसे—अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, और तेजसादि, मकार से ईश्वर, आदित्य और प्रज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। (पृष्ठ १)

भाष्य—यह भाव माण्डूकोपनिषद् के निम्नलिखित वाक्यों के आधार पर लिखा गया है।

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोन्कारोऽधि मात्र पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा ॥९॥
स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रा ॥१०॥
सुषुप्त स्थानः प्राज्ञः मकार स्तृतीया मात्रा ॥११॥

इसी विषय में पुनः आता है कि—

आप्लेरादिमत्वादाप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

यहाँ अकार को "आप्लृ व्याप्तौ" धातु से सिद्ध किया गया है।

जाग्रत अवस्था वाला विश्व नामक प्रथम पाद ही ओंकार की प्रथम मात्रा अकार है। जिस प्रकार अकार सबसे प्रथम अक्षर सब वर्णों में व्याप्त है, उसके बिना कोई वर्ण नहीं बोला जाता, इसी प्रकार सब पादों में पहिला विश्व नाम पाद तीनों पादों में व्याप्त है। व्याप्त होने से ही उसका नाम विराट् है।

उत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञान सन्तति समानश्च भवति।

"उ" उत्कर्ष वा उभय से बना बताया गया है। उत्कर्ष कृष् धातु से बना है जिसका अर्थ खींचना होता है। (चित्र खींचना) इसलिये "उ" का अर्थ चित्र तैयार करना (Design) और बनाना (Execute) है।

मितेरपीतेर्वा वा मिनोति ह वा इदं सर्वम्
........॥ ११ ॥

"म्" का अर्थ यह हुआ, कि जो सबको नाप रहा है, अथवा सबका आश्रय है। और:—

इधर मनु महाराज ने सृष्टि की तीन अवस्थाओं को ब्रह्मा की तीन अवस्थायें कल्पना करके "ओ३म्" की तीन मात्राओं के साथ मिलाया है। जैसे:—

अकारन्चाप्युकारन्च मकारन्चप्रजापतिः
वेद त्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरतीति च
॥ मनु० २।७३ ॥

अर्थात -प्रजापति ने, जिस प्रकार दूध से मक्खन निकाला जाता है, इसी प्रकार, अकार, उकार, और मकार को ऋग, यजु, और साम रूपी दूध से मक्खन के रूप में निकाल लिया है साथ ही भूः भुवः और स्वः इन तीन महा व्याहृतियों को भी।

जो प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण ५। ३२॥ का ऊपर दिया गया है, उसका भी यही भाव है।

आप्टे के कोष में भी इस विषय में लिखा है।

The letter "A" is Vaisvanar the Spirit of waking Soul in the waking

World, "U." is Taijas the Spirit of dreaming Soul in the world of dreams and "M." is Prajna the Spirit of Sleeping and undreaming soul.

अर्थात् 'अ' यह अक्षर वैश्वानर है, जो सृष्टिकी जागृत अवस्था में आत्माओं की जागृत् अवस्था है 'उ' तैजस् है जो सृष्टि की स्वप्नावस्था में आत्माओं की स्वप्नवास्था है। और 'म' प्राज्ञ है जो कि आत्माओं की सुषुप्तावस्था है। इस प्रकार यहां सृष्टि की तीनों अवस्थाओं को आत्मा की तीनों अवस्थाओं के साथ मिलाया गया है। तथा इस प्रकार. से ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि इन तीनों अवस्थाओं का ब्रह्म के साथ क्या सम्बन्ध है।

अब इन तीनों अवस्थाओं का ब्रह्म से क्या सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध में प्रश्नोपनिषद् के पञ्चम प्रश्न को ध्यान पूर्वक देखिये।

अथ हैवं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन् मनुष्येषु प्रायष्णान्तयोङ्कारमभिध्यायतेनति कतमं वाव स नि लोकं जतीति ॥१॥

शिवि ऋषि के पुत्र ऋषि सत्यकाम ने महर्षि पिप्पलाद् से पूछा कि गुरुवर ! संसार में वह अत्यन्त तपस्वी पुरुष जीवन पर्यन्त जितेन्द्रिय रह कर बस ओंकार रूपी ब्रह्म को उपासना के साथ चिन्तन किया है, वह पुरुष उस ध्यानमय चिन्तन द्वारा इन पृथिव्यादि लोकों में से किस लोक का अधिष्ठातृत्व पद प्राप्त करता है ?

सत्यकाम के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पालाद् बोले—

एत द्वै सत्यकाम परश्चापरश्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्याद्विद्वानेते नैवायतनेन कतरमन्वेति ॥ २ ॥

हे सत्य काम ! (इस संसार में रहते हुए मुक्ति लाभ के लिये की गई उपासना) 'पर' और (सांसारिक सुख की कामना से की गई उपासना) 'अपर' ब्रह्म यही ओंकार है, इस प्रकार शब्द और अर्थ के सम्मिलन से उत्पन्न इस ज्ञान को विद्वान, लोगों ने ओंकार के नाम से उच्चारित किया है, इसी ओंकार के ज्ञान से ज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान की प्राप्ति के साधन में 'पर' और 'अपर' की उपासना से उपासना विधि के पर वा अपर फल को अनुकूलता से प्राप्त करता है।

आगे चलकर महर्षि पिप्पलाद पुनः 'ओम्' की तीन मात्राओं के सम्बन्ध में लिखते हैं।

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत, सतेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभि संपद्यते। तम्मृचो मनुष्य लोकमुपयन्ते, स तत्र तसपा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्तो महिमानमनुभवति ॥३॥

अर्थात् जो प्रभु भक्त ओंकार की इस प्रथम मात्रा 'अ' का अभिध्यान करता है वह उपासक इस केवल 'अ' एक मात्रिक अकार की छोटी सी उपासना से सचेत होकर अपने कर्त्तव्य पथ पर उद्योग के साथ अग्रसर होता हुआ ब्रह्म ज्ञान से प्रकाशित होकर अवनितल पर राज्यादि सर्वोत्तम सुखों को प्राप्त होता है। उस उपासक पुरुष के लिये ओंकार के 'अ' की ऋग्वेद रूप एक मात्रा पवित्र यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा प्रतिष्ठा व आदर प्राप्त हुए तुल्य मनुष्यों में मान का हेतु होता है। तप, ब्रह्मचर्य, और श्रद्धा से अभिप्रेत वह मनुष्य परमेश्वर की महिमा का अनुभव करता है अर्थात् उस सच्चिदानन्द के महत्व को जान कर स्वयं महा आनन्द को प्राप्त होता है।

और :—

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते, स्सोऽन्तरिक्षयजुर्भि रुन्नीयते सोमलोकं, स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥

यदि 'अ', 'उ' इन दो मात्राओं से युक्त उस ओंकार वाच्य ब्रह्म का यावजीवन मनन पूर्वक ध्यान किया जाय, तो इहलीला समाप्त करते हुए वह उपासक कर्म काण्ड युक्त उपासना द्वारा युक्त

(शेष पृष्ट ८ पर)

स्वामी वेदानन्द जी के देहान्त से आर्य साहित्य को हानि

स्वामी जी के देहान्त पर महाशय कृष्ण जी ने ठीक ही लिखा है कि "मृत्यु निश्चित है, उसका समय निश्चित नहीं। यदि समय निश्चित होता तो मनुष्य घबरा जाता और कोई कार्य न कर सकता। कम से कम सार्वजनिक कार्यों से तो विमुख ही रहता।"

स्वामी वेदानन्द जी जैसे विद्वान से समाज ने वैसा लाभ नहीं उठाया जैसा उठाना चाहिए था। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज के कर्णधार कार्यकर्त्ताओं की प्रवृत्ति वैदिक साहित्य की वृद्धि की ओर तनिक भी नहीं है। स्वामी वेदानन्द जी का हस्त लिखित बहुत सा साहित्य लाहौर में ही छूट गया। समाज के कार्य कर्ताओं का इस ओर ध्यान होता तो वह साहित्य छप जाता और विद्वान लेखक का परिश्रम वृथा न जाता और साथ ही स्वामी जी की देन भी स्थाई हो जाती।

मथुरा शताब्दी के पश्चात् पंजाब प्रतिनिधि सभा ने स्वामी जी द्वारा संशोधित "वेदामृत" की द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित कराई थी, उसको समाप्त हुए १५-१६ वर्ष हो गये उसकी द्वितीय आवृत्ति नहीं छपी।

प्रादेशिक सभा ने अपनी हीरक जयन्ती पर स्वामी जी को प्रेरित कर "स्वाध्याय सन्दोह" लिखा कर छपवाया। लोगों ने उसे अपनाया, शीघ्र बिक गया। दूसरी आवृत्ति छपाने का विचार सभा ने छोड़ दिया स्वामी जी ने स्वयं छपवाया।

स्वामी जी का विचार था कि ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य, सायण और महीधर के साथ साथ छपाकर जनता के सम्मुख रक्खा जाये ताकि जनता को अर्थ अनर्थ का पता लगे। यह विचार २५-३० वर्ष पूर्व स्वामी जी ने पत्रों में प्रकट किया था परन्तु किसी ने नहीं सुना।

इधर स्वामी जी ऋषि दयानन्द के ग्रंथों में जो अशुद्धियाँ प्रेस तथा संशोधकों के आलस्य और असावधानी के कारण आगई हैं, उसके संशोधन में लगे। सर्व प्रथम उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को आरम्भ किया उसको प्रायः समाप्त भी कर दिया। अभी जनता के समक्ष नहीं आया। आशा है शीघ्र ही आ जायेगा। छप चुका है।

सत्यार्थ प्रकाश के संशोधन तथा उसके प्रमाणों को देखने और टिप्पणियों को लिखने के लिए स्वामी जी ने लगभग ३-४ हजार रुपये की पुस्तकें खरीदी थीं।

सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात् स्वामी जी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के संशोधन का कार्य हाथ में लेने वाले थे वह मन का मन में रह गया, कराल काल ने उन्हें अपने पंजे में ले लिया।

अब परमात्मा ही हमारे साहित्य का रक्षक है, फिर किसी स्वामी जी जैसे महा विद्वान् को हमारे मध्य में भेजेगा, जो हैं उन्हें चिरायु करेगा।

(पृष्ट ७ का शेष)

यजुर्वेद के अभिप्राय में एकाग्रचित होता हुआ, सब ओर से मन को खींच कर अन्तरिक्ष में रहने वाले लोकों में उन्नत दशा को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वही उपासक चन्द्रलोक में मन सम्बन्धी समस्त सुख दायिनी सामग्री से उत्पन्न होने वाले आनन्द का अनुभव करके पुनः पृथिवि तल पर उच्च कोटी के ज्ञान सम्पन्न कुलों में जन्म लेता है।

यः पुनरेतत्त्रि मालेत्रेणै वौमित्यनेनै वाक्षरेण परं पुरुष मभिध्यायीतः स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्सना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीय ब्रह्म लोकं, स एतस्मा ज्जीव घनात्परापरं पुरुषमीक्षते: तदेतौ श्लोकौ भवतः !! क्रमशः

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य-भारत मासिक मुखपत्र
"आर्यावर्त" का
"स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान भवन"
नई सजधज के १ जनवरी को प्रकाशित होगा इसमें आर्यजगत के महात्माओं विद्वानों तथा विचारकोंके लेख संदेश तथा उद्गार होंगे। आप भी इसके ग्राहक बनकर लाभ उठायें। इस अंक का मूल्य १) वार्षिक मूल्य ३)।
पता—व्यवस्थापक 'आर्यावर्त' नया बाजार, लश्कर।

वह ज्योति स्तम्भ........

(-नारायणचन्द्र पाराशर, लुधियाना)

आँखों ने पढ़कर विश्वास न किया पर हृदय तो चीत्कार करने लगा। १४ मार्गशीर्ष के दिन प्रातः दैनिक 'प्रताप' का यह समाचार कि स्वामी वेदानन्द जी हार्ट फेल होने से चल बसे मेरे लिए एक बज्राघात था। मिलाप को देखने पर दुःखद समाचार की पुष्टि हो गई।

और तन में शोक छा गया। कल तक जो मुझे प्रेरणा दे रहे थे, नहीं २ आर्य्य जगत के कर्णाधार थे वही नहीं रहे। तभी मुझे डेढ़ वर्ष पहले के उस समय का स्मरण हो आया। जब स्वामी जी के द्वारा लिखे और 'वेदप्रकाश' में छपे दो लेखों ने मेरी निराशा को समूल नष्ट कर दिया था। और वह वेद की मधुर झंकार मुझे पुनः वैदिक धर्म की ओर आकर्षित करने लगी थी।

परन्तु आज उन सबके प्रेरक हमारे मध्य में नहीं, दुःख है तो यही, शोक है तो यही! आप में वेदों के गूढ़तम तत्वों को सरस बना देने की शक्ति और योग्यता थी। "स्वाध्याय सन्दोह" जैसी अनेक पुस्तकें इस बात की ठोस प्रमाण है। वेद, ब्राह्मण, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण, निरुक्त, विज्ञान और इतिहास आदि सब शास्त्रों और संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी आदि अनेक भाषाओं के आप विद्वान् थे यह कहना कोई अत्युक्ति न होगा कि वेदों का आप सा प्रकाण्ड पण्डित हिन्दुओं को कठिनाई से ही मिल सकेगा।

प्रभु में विलीन होने से दो तीन महीने पहले जो आदर्श उन्होंने हमारे सामने रखा वह महान है। विरजानन्द वैदिक संस्थान खेड़ा खुर्द देहली के आप संचालकाध्यक्ष होते हुए अपना बहुत सा समय वेदाध्ययन में व्यतीत करते थे। परन्तु जब आर्यों की सेवा के लिए आपको आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का महामन्त्री चुना गया, तो आपने इस कार्य भार को अपने कन्धों पर लेते हुए अपने पवित्र और भक्तिशील जीवन में बाधा स्वीकार करली समाज और धर्म सेवा के लिए आपसा कर्मशील आदर्श पुरुष आर्य समाज को और कहां मिल सकेगा। जिस प्रकार आर्य समाज के लिए स्वामी आत्मानन्द जी ने अपनी योग साधना छोड़ दी, उसी प्रकार आपने उसी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अदम्य साहस और अनुपम त्याग का परिचय दिया।

"आर्य" के सम्पादक बनते ही आपने सोए हुए आर्य जगत् में क्रान्ति लानी चाही। वेद प्रचार कोष को बढ़ाने की आपने आर्य समाजों से प्रार्थना की। "आर्य" को अपनाने का निवेदन किया। तभी से लेखक ने आर्य लेना आरम्भ कर दिया। एक और लेख में आपने आर्य समाजों को अपने उत्सवों पर पढ़े लिखे वर्ग को मिलाने को कहा। कौन नहीं जानता कि यदि ये तीनों योजनाएं क्रियान्वित हो जायें तो कृण्वन्तो विश्वमार्यम के महान् आदर्श को पूरा कर सकती हैं। बहु भाषा विज्ञ होते हुए भी आप विशुद्ध हिन्दी प्रेमी थे और वैदिक संस्कृति के अनुगामी।

कैसी विधि विडम्बना है कि आपका अन्तिम लेख आपके मृत्यु दिवस पर "वीर अर्जुन" में छपा। पर ऐसा कई बार होता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग की रचनाओं का अन्तिम संग्रह भी तो उनके मृत्यु दिवस पर प्रकाशित हुआ था वेदों के आनन्द प्रदाता तो चले गए। उनकी स्मृति अवशेष रह गई। परन्तु जिस प्रकार उन्होंने इस जीवन में हमारा नेतृत्व किया। आशा है कि उनकी आत्मा भी स्मृति के अक्षय कोष में ज्योति स्तम्भ बनकर हमारा मार्ग प्रदर्शन करती रहेगी। प्रभु से याचना है कि वे आर्य समाज की इस हानि को वह शीघ्र पूरा करें। और आर्य वीरो! आओ आज प्रण लें कि उनके दर्शाए हुए पथ पर हम चलें। उनकी इन इच्छाओं को क्रियात्मक रूप देना हमारी उनके पवित्र चरणों में श्रद्धांजलि होगी।

अनन्त परमात्मा में विलीन होने पर वह हमसे जुदा नहीं हुए।

आर्यो उनकी अन्तंध्वनि को सुनो! और उनके जीवन को साकार बनाने के लिए जीवन की आहुतियाँ लिए हुए वैदिक धर्म प्रचार रूपी यज्ञ की ओर बढ़ो। वह ज्योति स्तम्भ तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।

"वेद प्रकाश" के पिछले दो विशेषांक

चित्र वाल्मीकि रामायण

(धारावाही हिन्दी में मूल सहित)

भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले इस ग्रन्थ का पाठ तथा कथा प्रत्येक घर में होनी लाभप्रद होगी। प्रक्षिप्त, अनावश्यक तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को निकाल दिया गया है। शुद्ध भारतीय मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी का जीवन ऐतिहासिक होने के साथ कल्याणकारी भी है। भाषा सरल सुबोध, धारावाही होने के कारण, पढ़ना आरम्भ करने के बाद, पूरी कथा पढ़े बिना रहा नहीं जाता। १०-१२ रंगीन व एकरंगे चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १=) "वेद-प्रकाश" के ग्राहकों से डाक व्यय सहित मूल्य ८) विवाह आदि में उपहार देने योग्य एक ही पुस्तक है। प्रत्येक समाज घर में रखने योग्य पुस्तक है।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

ऋषि के प्रामाणिक ७ असली फोटो चित्र सहित २० पुस्तकों का संग्रह, जिसमें ऋषि की आत्मकथा ऋग्वेद के प्रथम सुक्त का भाष्य, हुगली शास्त्रार्थ ईसाइयों के साथ लिखित ३ दिन का 'बरेली शास्त्रार्थ' आदि नवीन पुस्तकें भी सम्मलित हैं। सबसे मुख्य चीज है प्रत्येक पुस्तक के साथ उसका इतिहास जो कि विशेष महत्व का है। बड़ी साइज के लगभग ४०० पृष्ठ के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४॥) हैं। "वेदप्रकाश" के ग्राहकों को डाक व्यय सहित सजिल्द पुस्तक केवल ३॥) में मिलेगा।

गोविन्दराम हासानन्द, "वेदप्रकाश" कार्यालय, नई सड़क, देहली।

लाल डब्बे वाला

दन्त कल्प मन्जन

सबसे अच्छा मन्जन है।

पायरिया व समस्त दन्त रोगों को जड़ से नष्ट करता है

उत्तराखंड आयुर्वैदिक रसायनशाला

ग़ाज़ियाबाद

स्त्री व पुरुष की प्रत्येक दुर्बलता पर

शत प्रतिशत लाभ प्रद

यौवनदा

(आयुर्वैदिक – महौषधि)

प्रमेह, प्रदर, स्वप्न-दोष, नपुंसकता, स्नायुदौर्बल्य, स्मरण शक्ति की कमी, गर्भाशय की दुर्बलता, बंध्यापन, हाथ पैरों की जलन, मधुमेह, रक्ताल्पता, हिस्टीरिया आदि सभी रोग एक कोर्स के सेवन से पूर्णतः जड़मूल से समाप्त हो जाते हैं

७ दिन की औषध का मूल्य	१।-)
२१ दिन के कोर्स का "	३॥)
४० दिन के पूरे कोर्स का "	५॥-)

डाक व्यय ॥।=) पृथक

एजेन्सी के इच्छुक पत्र व्यवहार करें

उत्तराखंड आयुर्वैदिक रसायनशाला

ग़ाज़ियाबाद (उ॰ प्र॰)

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या

(छटा नियम गतांक से आगे)

आत्मोन्नति के अभिलाषी को उचित है कि ये साधन उपयोग में लावे:—इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह में वह पूरा प्रयत्न करे। कठिन से कठिन कार्य में भी उत्साह और साहस को हाथ से न जाने दे। विपत्ति और विरोध के वज्रपात पर भी चट्टान की भाँति धैर्यवान् बने रहना, प्राणों तक को जोखिम में डालकर, कार्य-क्षेत्र में निर्भयता से खड़े रहना, ये सब आत्मोन्नति के चिंह हैं। जिसका आत्मा उन्नत है, वह कार्य करने में कुशल, पुरुषार्थी और पराक्रमी हुआ करता है। वह दान-दक्षिणा में दर्यादिल और उदारचेता होता है। जनता की सेवा में तन, मन, धन देता है। दीन दुःखी और दरिद्रों को सहायता देने में कभी भी संकोच नहीं करता। पीड़ित प्राणी को देखकर उसके हृदय से सहानुभूति और दया की नदी बह निकलती है। वह क्षमाशीलता और सन्तोष का धाम बन जाता है।

आत्मोन्नति का इच्छुक अपने-पराये पर प्रेम प्रदर्शित करे, आत्मा परमात्मा में, गुरुजनों में, वेद-शास्त्र में और कर्म्म-धर्म्म में श्रद्धा-भक्ति और विश्वास बनाये रक्खे, सत्संग में बड़े भक्ति भाव से जाप, भजन कीर्तन में भावना पूर्वक भाग ले।

आर्य दीक्षित जनको जनता की आत्मोन्नति के लिए जो साधन उपयोग में लाने चाहिए, वे ये हैं:—सामर्थ्यवान् जन मनोगम धर्म-मन्दिर निर्माण कराये, धर्म्म-पुस्तकें बाँटे, सन्त जनों के सत्संगों का प्रबंध करे, कथा-कीर्त्तन बैठाये, भजन-संगीत सुनने के साधन और अवसर उपस्थित करे। इन शुभ कर्म्मों में प्रत्येक आर्य सामाजिक सज्जन को यथाशक्ति भाग लेना उचित है।

आर्य दीक्षित जन ऐसे साधन अवश्यमेव करें जिनसे जनता में सुशिक्षा फैले, लोगों को आत्म-ज्ञान का दान मिले, सदाचार की शिक्षा उपलब्ध हो, महापुरुषों के पवित्र जीवनों को जानने, पढ़ने और सुनने का सुअवसर हाथ लगे, कुव्यसनों का निवारण हो और लोग निर्भय, साहसिक, पराक्रमी, धीर और वीर बनें।

छठे नियम का तीसरा भाग सामाजिक उन्नति है। उसका अनुशीलन इस प्रकार करना चाहिए:—आर्य व्रती जन अपने गृह संस्कारों को चलावे, जहाँ तक हो सके भ्रम को न आने दे, पुत्र पुत्रियों को सुशिक्षा प्रदान करे, उन्हें गुणी, विनीत, सभ्य और सुशील बनाये, शिष्टाचार की रीति बताये, अपने पारिवारिक जीवन को पूर्णतया पाले, सम्बन्ध-धर्म्म को दूषित न होने दे। परिवार में मेल-मिलाप, प्रेम-प्रीति-रीति-भाँति, विनय-नियम और आदर-सम्मान आदि शुभाचारों को प्रचारित रक्खें। आप भी सभ्यता और उदारता आदि गुणों को धारण करके समाज का एक उपयोगी अंग बन जाय।

दूसरों की सामाजिक उन्नति के लिए आर्य सभासद को चाहिए कि अपने जीवन का कुछ भाग सार्वजनिक कामों में भी लगाये। सार्वजनिक हितकर कार्यों में, यथाशक्ति, तन मन धन प्रदान करे, जनता की सुशिक्षा में भाग ले, जैसे भी बन पड़े, जनता का आचार-विचार सुधारे—समुन्नति करे।

जन-समाज की जड़ में कई ऐसी कुरीतियों का घुन लग जाया करता है कि वह घुने दाने की तरह भीतर खोखली हो जाती है। जाति के महावृक्ष पर कभी कभी कृपणता और कायरता की आकाश-बेल फैल जाया करती है कि उसके प्रत्येक पत्ते, पुष्प और शाखा को सर्वथा शुष्क बनाकर ही छोड़ती है।

इसी कारण जनता के हितार्थ समाज-संशोधन की आवश्यकता हुआ करती है। संशोधन के बिना समाज जी नहीं सकता। आर्य सभासद का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि जन-हित से प्रेरित होकर समाज-संशोधन और समाज-सुधारक के क्षेत्र में जितना बन सके, काम करे। इसमें पीछे न हटे। समाज में विवाह की रीतियों का सुधार करना जाति बिरादरी के व्यय में कमी करना अपने कार्यक्षेत्र का काम समझे, मादक वस्तुओं का सेवन बन्द कराये और लोगों को खोटे व्यसनों से बचाने के लिए बल लगाये।

दीन-दलित जनों का उद्धार भी आर्य्य जनों का करणीय कर्म है। इस काम में जितना सामर्थ्य लगाया जाय, थोड़ा है। आर्य्य-समाज की आधार शिला रखते समय ही दलित जनों के उद्धार का गुरुतर भार आर्य्यजनों ने अपने कन्धों पर लिया था। गिरे हुए भाइयों को उठाना, बिगड़ों को फिर बनाना, भूलों भटकों को सन्मार्ग पर ले आना, दीन-दलितों को सुधारना और निर्बलों का पक्ष अवलम्बन करना आर्य्य समाज की जीवन-जड़ है—आर्य्य कर्तव्य की माला जपने का मूल मंत्र है। इस कर्तव्य-कर्म को करने के लिए जो भी साधन प्राप्त हो, उन्हें पूर्ण रीति से उपयोग में लाना, जनता की आर्थिक दशा को सुधारना भी सामाजिक उन्नति का एक भाग है। इस कर्तव्य का पालन करने के लिए आर्य स्त्री-पुरुषों को आर्यशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त पहले आप समझकर फिर दूसरों को समझाने चाहिए। वे जिस देश और जाति में हों उसका हित करें, वहीं की बनी वस्तुओं का उपयोग करें और कला-कौशल को बढ़ायें।

समाज के सुधार और उत्थान के लिए सभाएँ लगाना, सामाजिक पत्रिकाएं निकालना, सामाजिक महोत्सव मनाना समाजोन्नति के समुज्वल अंग हैं। इनसे जनता में ज्ञान, एकता, कर्मण्यता उत्साह, साहस और आवेश आदि गुण दुगुने चौगुने बढ़ जाते हैं। उपर्युक्त कार्यों में आर्य जनों को अवश्य योग देना चाहिए, उनका प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसी विधि से काम किये जायँ जिनसे जनता की सभ्यता का प्रकाश हो। कोलाहल से आकुल और बच्चों के रोने झीकने से गर्जायमान सभाएं असभ्यता का शिक्षणालय बन जाया करती हैं। जिस सभा में, यात्रा में, लोग गम्भीर न हों, सातवें सुरमें एक दूसरे को पुकार रहे हों, परस्पर बातें करने लग जायँ, ठेलम ठेली से आगे धँसें, धक्के-धमाके से आगे बढ़ें, समझो कि उस सभा में और यात्रा में असभ्यता का पूर्ण राज्य है, शिष्टाचार का नाम तक नहीं। ऐसी सभा और यात्रा का मानव जाति के काम का कोई नाम रखना मनुष्यता को अपनी पदवी से पतित करना है। इस कारण आर्यजनों को अपने मेले-महोत्सव में, सभा-सत्संग में और यात्रा आदि में गम्भीरता, सभ्यता और शिष्टता की पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। उन्हें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे ये काम दूसरों के लिए आदर्श और दृष्टान्त बन जायँ।

सामाजिक उन्नति के इच्छुक आर्यजनों को उचित है कि परस्पर मेल-मिलाप बढ़ावें, जनता में ऐक्य-सम्पादन करें, संगठन तथा सुनियमता को उन्नति दें, अपनी न्याय-सभा नियत करके सामाजिक झगड़ों को शान्त कर लिया करें, दूसरों को भी वैर-विरोध मिटाने में सहायता दें, और जो भी बातें आर्य समाज के लिए हितकर हों उनको क्रियात्मक रूप में लायें।

सातवाँ नियम।

'सबसे प्रीति पूर्वक, धर्म्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।'

इस नियम में दूसरों से मिलकर वर्त्तने के लिए धर्म्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना बताया है।

मनुष्य जन्म से ही सामाजिक जीव है। यदि इसे बन्धु वर्ग की सहायता और देख-रेख प्राप्त न होती तो यह पशु के समान जीवन व्यतीत करता। उस अवस्था में न उसे मानवी भाषा आती और न वह सभ्यता की सीढ़ियों पर ही पदार्पण कर सकता। आज जो मानव ज्ञान विज्ञान का विशाल और

अति सुन्दर मन्दिर दीख रहा है, उसकी एक ईंट भी दृष्टिगोचर न होती। इसके वेष-भूषा का कोई नाम भी न जानता। इसकी षट्रस का स्वादु पाकशाला की आधारशिला भी न रक्खी जाती। इसके कला-कौशल कहीं कल्पना में भी न आ पाते। इसके मार्ग में यदि कहीं कोई जलाशय आ पड़ता तो यह डूब ही जाता, क्योंकि अन्य प्राणियों की भांति यह स्वभाव से तैरने वाला नहीं है। मनुष्य का प्रायः सारा ज्ञान सीखने पर निर्भर है। माता, पिता, बन्धु-बांधुवों आदि के संयोग के विना शिक्षा का मिलना असम्भव है। मनुष्य को जन्मते ही उक्त समाज मिल जाता है। इसी से वह उत्तरोत्तर उन्नति करने लगता है। यहाँ तक कि अन्त में राई से पहाड़ और चिंगारी से सूर्य्य बन जाता है।

मनुष्य जब सामाजिक जीव है और इसका निर्वाह समाज के बिना नहीं हो सकता, तब समाज में रहने के लिए, व्यवहार करने के लिए, इसमें कुछ गुण होने चाहिएँ, मेल-जोल के कुछ नियम होने चाहिए। उन गुणों में पहला गुण, जो समाज के सम्बन्ध में परमावश्यक है, प्रेमपूर्वक व्यवहार है। पारिवारिक प्राणी में यदि प्रेम-प्रीति-पूर्वक बर्तने का भाव मन्द हो जाय, उसका बन्धु-बान्धुवों के सम्बन्ध का स्नेह शिथिल पड़ जाय तो इसके जीवन में प्रसन्नता नहीं रहती। सारे सुख नीरस हो जाते हैं। संसार की सारी सामग्री इसे दुःखदायी दीखने लगती है। इसी कारण, इस मनुष्य रूप सर्वश्रेष्ठ सृष्टि में सिर्जनहार ने स्नेह का स्वभाव अनिवार्य रूप से भरा है।

आर्य्यजनों को चाहिए कि वे अपने व्यवहारों में प्रीति-वृत्ति का प्रतिदिन अनुशीलन किया करें। सहानुभूति और स्नेह-सहित वर्त्ताव को सकल सफलताओं का साधन समझें जिस जन के मेल-मिलाप में कोमलता होगी, विनीतता होगी, सहानुभूति और सौहार्द भाव होगा वह अवश्य ही प्रीतिपूर्वक व्यवहार करेगा। ऐसा जन चाहे जहाँ जाय, जनता उसे चाहेगी। उसके विचारों का, कथनों का, आदर करेगी। लोग उसके अनुयायी बन जायेंगे।

बहुतेरे लोगों का विश्वास है कि नर-नारियों को वशीभूत कर लेने वाला कोई वशीकरण मन्त्र भी हुआ करता है। ऐसे मन्त्र की बात तो भ्रम मूलक है, परंतु प्रेम का व्यवहार एक ऐसा मनोमोहक मंत्र अवश्य है कि जिससे मनुष्यों के मण्डल के मण्डल, आप ही आप वशीभूत हो जाते हैं। श्रीराम ने इसी मोहिनी शक्ति के प्रभाव से वानर जाति के लाखों लोग अपने वश में कर लिए थे। युग युग के जन प्रीति के पुण्य पाठ से बड़े उत्तमोत्तम कार्य्य कर गये हैं। सच पूछें तो इस असार संसार में प्रायः सार प्रीति ही है, दुःखमय जगत में सुख प्रीति है। आर्य धर्म्म के अनुयायियों को भी अपना प्रेममय बर्त्ताव ऐसा बनाना चाहिए कि लोग उनकी ओर खिंचे चले आवें, आर्य समाजी बनने में अपना सुख और सौभाग्य मानें।

प्रीति के व्यवहार के अभ्यासी को मन निर्मल रखना चाहिए। उसमें वैर-विरोध और द्वेष न हो। द्रोह और दांव-घात न हों। उसमें मनुष्य के प्रति घृणा का भाव न समाये। आर्य धर्म्मी वाणी को कटुता, कठोरता अक्खड़पन, परुषता, अपवाद और कुवचन आदि दोषों से बचावें। उसके कर्म कोमल विनय-युक्त हों। उनमें अवज्ञा, निरादर, अपमान, तिरस्कार और तर्जनादि लाञ्छन न लगने पावें।

आर्यों के व्यवहारों में कलह, विवाद; वितण्डा, अवज्ञा, लड़ाई-झगड़ा और खींच-तान का होना धर्म्म विरुद्ध है। उनकी सभाओं में तू तू, मैं मैं, न होने पावे, आपस में नोकझोंक न दिखाई दे। वे अपने धर्म्म आदि के कार्य्यों में और सभाओं में प्रीति के व्यवहार से गम्भीरता और सभ्यता का पूरा समय बनाये रक्खें। सभासद आपस में फूट न फैलने दें। यदि दो चार में कभी मन मुटाव हो भी जाय तो पहले तो जिसमें धर्म्म-भाव अधिक हो, जो संघशक्ति के, मेल की मिठास को और सभासदों के भ्रातृ-भाव को अधिक अनुभव करता हो उसे अपने धर्म्म-भाई से क्षमा माँग लेनी चाहिए। यदि दोष दूसरे का ही हो तो भी अपने बन्धु से क्षमा याचने में लजाना अच्छा नहीं है। (क्रमशः)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति का

एक ही रास्ता

—महात्मा आनन्द स्वामी

यह पुस्तक स्वामी जी के सात उपदेशों का संग्रह है। स्वाध्याय प्रेमी नर नारी के लिए एक अपूर्व उपयोगी पुस्तक है। पुस्तक एक बार आरम्भ कर के समाप्त किये बिना नहीं रह सकते।

लगभग १५० पृष्ठों की बढ़िया कागज और मोटे टाइप में छपी इस पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ॥-) डाकखर्च =) मिलाकर ॥≡) के टिकट भेजें। १२ प्रतियां मगाने वाले ५॥) तथा डाकखर्च १।॥) मिलाकर ७।) भेजें।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

कैलैंडर मुफ्त

महर्षि दयानन्द का (तिरंगा) स्वामी दर्शनानन्द, पं० लेखराम के कैलेन्डर मुफ्त मंगाने के लिए =) प्रति कैलेन्डर डाक व्यय के भेज मंगा सकते हैं। समाजें १० कैलेन्डर तक मंगा सकती हैं। एक व्यक्ति को एक ही मिलेगा।

वैदिक प्रकाशक केंद्र गाजियाबाद

पं० इन्द्रसेन जी प्रेमी स्वामी दयानन्द की जीवन कथा बड़े रोचक और सरल ढंग से करते हैं आप इन्हें विवाह, मुन्डन संस्कार, कथा तथा वार्षिकोत्सव पर आमन्त्रित कर सकते हैं।

पता यह है पं० इन्द्रसेन प्रेमी, अलवर

उपदेशार्थ बुलाइये

पं० जितेन्द्रशर्मा महोपदेशक तथा नागेन्द्रशर्मा उपदेशक तथा भजनीक वीरेन्द्रशर्मा, महोपदेशिका पं० सन्ध्या देवी, उपदेशिका लक्ष्मीदेवी तथा भजनोपदेशिका कुमारी धर्मशिला देवी जिसको बुलाना चाहें लिखिये—

पं० जितेन्द्रशर्मा महोपदेशक तथा पुत्री धर्मशीला देवी।

ग्राम पो० खड़का, जि० दर्भंगा

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्री डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर–इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जांय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय - दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देने के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्यसमाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है-"हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—'नव-भारत टाइम्स' लिखता है—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, आज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून

वेदप्रकाश के इस वर्ष के उपहार की पुस्तकें

८) रुपये में सर्वोपयोगी निम्न ६ पुस्तकें केवल ४) रुपये में,

(डाक खर्च अलग)

१—आर्य सिद्धान्त दीप

लेखक :–श्री मदनमोहन विद्यासागर (स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल रीति से संकलन किया गया है जिससे अल्प प्रयास से ही वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के सम्पादन व संशोधन करने में आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों से सहयोग एवं परामर्श लिया गया है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितनी उपयोगी है, मूल्य १।)

२—संस्कार विधि विमर्श

लेखक :—श्री पं० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न (गु. का.) अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि में वर्णित १६ संस्कारों पर आयुर्वेद परक व्याख्या और प्रजा शास्त्र के आधार पर लिखी गई पहली पुस्तक है।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट भाग में प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग भी दिए गये हैं जिससे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य ३)

३—वेद परिचय

लेखक :- वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती।

वेद हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसका परिचय प्राप्त करना प्रत्येक का परम कर्तव्य है। इस में वेद विषयक जानने योग्य अनेक आवश्यक बातें हैं। मूल्य ।=)

४—वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य

सन्ध्या विषयक पद पदार्थ तथा भावार्थ सहित उत्तम पुस्तक। मूल्य ≡)

५—स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

लेखक :—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न

राष्ट्र एवं प्रजोत्पादन के लिए स्त्रियों का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। इस ओर असावधान रहना बहुत ही हानिकारक है।

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी अनेक सरल प्रयोग भी दिये गये हैं। जिससे गृहस्थ के अतिरिक्त वैद्य और डाक्टर भी लाभ उठा सकें। मूल्य ३)

६—उपासना योग के आठ अंग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा संशोधित

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, विषयक मनन करने योग्य उत्तम गुटका पुस्तक है मूल्य ≡)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित उपरोक्त छओं पुस्तकें प्रत्येक के लिए उपयोगी हैं जिन ग्राहकों ने अभी तक न मंगाई हो शीघ्र मँगालें थोड़ी प्रतियां शेष हैं। कृपा कर आगामी वर्ष का चन्दा २) तथा उपरोक्त ८) रुपये की ६ पुस्तकें लेना चाहें तो उसके रियायती मूल्य के ४) रुपये मिलाकर ६) का मनीआर्डर तुरंत भेज उपहार की पुस्तकें मंगा लेवें। जो उपहार की पुस्तकें न लेना चाहें वे वेदप्रकाश का चन्दा २) रुपये भेज कर ग्राहक बने रहें। जिनके चन्दे समाप्त नहीं हुए हैं वे भी उपहार की पुस्तकें मंगा सकते हैं।

गोविन्दाम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

❀ ओ३म् ❀

ईश्वर प्राप्ति

२

जिस प्रकार घड़ी को नियम पूर्वक चलती हुई देखकर और उसके बनाने वाले को जो पाताल यानी अमेरिका आदि में हो, भारतवर्ष में कभी आया नहीं दूर होने के कारण न देखकर, हम यह भी नही कहते कि इस घड़ी का कर्त्ता कोई नहीं,अनादि हैं।

ऐसे यद्यपि अति समीप होने के कारण तथा अति सूक्ष्म होने के कारण हम प्रकृतिजन्य आंखों से परमात्मा को नहीं देख सकते तो उसके नियम से कामों को देखकर उसकी सत्ता की प्रतीति होती है। इस अवसर पर वादी यह कहता है कि यदि तुम अनुमान से ईश्वर को जगत्कर्त्ता बतलाओगे तो बहुत से दोष आवेंगे। प्रथम ईश्वर राग अर्थात् इच्छा से सृष्टि उत्पन्न करता हैं वा इच्छा के बिना? यदि कहो इच्छा से, तो इच्छा दुःख से छूटने और सुख की प्राप्ति की होती है, या न्यून वस्तु को समाप्त करने की होती है? जब ईश्वर में इच्छा होगी तो वह अपूर्णकाम हो जायगा, जिससे कि ईश्वर और सांसारिक मनुष्यों में कोई भेद नहीं रहेगा। यदि कहो राग अर्थात् इच्छा नहीं तो बिना इच्छा के कोई काम नहीं हो सकता क्योंकि इनके लिये सृष्टि में कोई दृष्टान्त नहीं मिलता जो जैनी इस प्रकार की शङ्का करते हैं। जब हम उनसे यह प्रश्न करते हैं कि तुम्हारे जिन तीर्थङ्करों ने तुम्हारे शास्त्र बनाये हैं वे राग अर्थात् इच्छा वाले थे वा इच्छा रहित थे? यदि कहो इच्छा वाले थे तो राग द्वेष आदि मिथ्या ज्ञान के कार्य हैं जैसा कि न्यादर्शन में लिखा है:—

दुःखंजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये
तदनन्तरापायादपवर्गः॥ अ० १ सू०२ आ०१॥

अर्थ—यहाँ पर प्रश्न था कि तत्त्वज्ञान से दुःख का विरोध नहीं है वा तत्त्वज्ञान और दुःख में विरोध नहीं तो तत्त्वज्ञान से दुःख का नाश किस प्रकार होगा? क्योंकि नियम यह है कि जो विरोध होता है वह नाश करने वाला होता है। अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य के प्रकाश से अतिरिक्त और कोई नहीं होता, इसके उत्तर में महात्मा गौतम जी कहते हैं कि तत्त्वज्ञान मिथ्या ज्ञान का विरोधी है। जब तत्त्वज्ञान होगा तो मिथ्याज्ञान का नाश हो जायेगा और मिथ्याज्ञान के नाश से उससे उत्पन्न होने वाला दोष अर्थात् राग और द्वेष नहीं होंगे। इस सूत्र से स्पष्ट प्रकट है कि राग द्वेष मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होते हैं, जहां मिथ्या ज्ञान है वहीं राग द्वेष होंगे।

अभिप्राय यह है कि राग द्वेष का होना मिथ्याज्ञान के होने का प्रमाण है। कोई मिथ्याज्ञान के बिना राग और द्वेष वाला हो ही नहीं सकता। यदि आपके तीर्थङ्करों में राग द्वेष था तो वे मिथ्याज्ञान हुए। जिससे उनकी बनाई पुस्तकों का प्रमाण ही नहीं हो सकता। यदि कहो वे राग से शून्य थे तो उन्होंने पुस्तक कैसे बनाई, यदि कहो जो कर्म अपने लिए किया जाता है उसमें राग द्वेष की आवश्यकता है, परोपकार सम्बन्धी कर्मों में राग द्वेष की आवश्यकता नहीं इसलिये तुम्हारे तीर्थङ्करों ने हमारे उपकार के लिए रचे हैं। जब एक मनुष्य परोपकार के लिए बिना राग कर्म कर सकता है तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा सबके उपकार के लिए सृष्टि क्यों नहीं रच सकता! दूसरे हमें बिना राग द्वेष के ही अयस्कान्त (चुम्बक पत्थर) आदि लोहे को खींचने का काम या लोहे से चुम्बक पत्थर की ओर चले जाने का काम होता हुआ प्रतीत होता है, जिससे बिना राग के कर्म का होना स्पष्ट प्रतीत होता है।

वादी कहता है यदि तुम ईश्वर को परोपकार के कारण राग के बिना सृष्टिकर्त्ता कहोगे तो यह सिद्ध नहीं होता। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति से बहुत से

जीवों को दुःख होता है जिससे तुम्हारा ईश्वर न्यायकारी और दयालु सिद्ध नहीं होता किन्तु निर्दय और पक्षपाती पाया जाता है। यदि दयालु होता तो किसी को दुःख क्यों देता ? यदि वह न्यायकारी होता तो सबको समान बनाता, किसी को मनुष्य का जन्म और उत्तम भोगने के सामान दिए, किसी को बहुत ही दुर्दशायुक्त मनुष्य बनाया। किसी को अन्धा, लूला, लङ्गड़ा बनाया, किसी को सिंह वृकादि दांतों वाले निर्दय शरीर दिये और किसी को गाय, भैंस आदि निर्बल शरीर दिये जो दांतों वाले मांसाहारियों का भोग बन गये; किसी को चींटी, मच्छरादिकों के बहुत ही तुच्छ शरीर दिये। प्रयोजन यह है कि इस सृष्टि को विचार कर देखने से सम्यक्तया बोध होता है कि कोई इस सृष्टि का उत्पादक हो तो वह निर्दय और पक्षपाती है। इसका उत्तर यह है कि यदि ईश्वर अपनी इच्छा से जीवों की नाना प्रकार की दशायें करता तो निःसन्देह निर्दय होता, परन्तु ईश्वर तो कर्मों के फल देता है जिससे यह भेद सङ्गत होता है। जब वह अपनी इच्छा से शरीर में कुछ भेद नहीं करता तो वह किस प्रकार पक्षपाती कहला सकता है और न निर्दय कह सकते हैं क्योंकि उसने न्याय किया है।

अर्थात् जीव के बुरे ही कर्मों का फल दिया है, अर्थात् जैसा जीव ने बोया है वैसा ही ईश्वर ने फल दिया है। इस दशा में उस में उस पर पक्षपात और निर्दयता का कलङ्क लगाना प्रत्यक्ष अज्ञान है।

वादी कहता है कि यदि कर्मों के फल से यह भेद है तो ईश्वर के होने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि कर्म स्वयं ही फल देते हैं। वादी की यह शङ्का भी सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि निर्बल सबल को बांध नहीं सकता, और न ही कोई अचेतन वस्तु चेतन वस्तु को बांध सकती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कर्म चेतन है या जड़ ? दूसरे वह जीव से निर्बल है वा प्रबल ! यह तो सिद्धान्तीय बात है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण से निर्बल होता है और यह भी सिद्धान्त है कि कर्म चेतन नहीं किन्तु जड़ है और न ही कोई उत्पन्न होने वाली वस्तु चेतन हो सकती है। इस दशा में कर्म स्वभावतः फल देते हैं अर्थात् कर्त्ता चेतन को (जोकि क्रियावान् तथा प्रबल है) बांध लेते हैं, किस प्रकार सत्य हो सकता है ! क्या किसी मनुष्य ने कभी देखा है कि किसी चोर ने चोरी की और चोरी ने ही उस चोर को कारागार में डाल दिया इस कारण यह सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है और इसलिए सर्वथा असत्य है, क्योंकि समयानुसार शासक (हाकिम) चोरों के लिये कारागार बनाते हैं और वे ही दण्ड देते हुये दिखाई देते हैं।

इस अवसर पर वादी यह कहता है जो मनुष्य मद्य पीता है वह अपने इस कर्म से मूर्छित हो जाता है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मद्यपान रूप अपने कर्म ने ही फल दिया। परन्तु वादी का यह कथन भी उसकी निर्बुद्धि का प्रमाण है, क्योंकि मद्य जोकि एक द्रव्य है उसने मन पर परदा डाला है जिससे विदित होता है कि मन सूक्ष्म है और मद्य स्थूल है, सूक्ष्म पर स्थूल का परदा पड़ जाना प्रत्यक्ष के अनुकूल है जो देखने में भी आता है। निर्बल कर्म अपने करने वालों को कदापि नहीं बाँध सकता। कर्म का फल देने वाला परमेश्वर है, वही फल देता है। जो संसार में व्यवहार से प्रतिक्षण ज्ञात होता है, उससे सम्यक्तया ईश्वर का होना सिद्ध है और मानसिक प्रत्यक्ष से भी ईश्वर जाना जाता है। जैसा कि उपनिषद् में लिखा है—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योःस मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।
। कठ० ४ । ११

यह परमात्मा योगी के मन से ही जाना जाता है, इस जीवात्मा के अन्तर्गत परमात्मा के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा में केवल परमेश्वर ही है क्योंकि यह नियम है कि स्थूल के अन्दर सूक्ष्म रह सकता है परन्तु सूक्ष्म में स्थूल नहीं रह सकता। परन्तु वादी यहाँ पर पुनः शङ्का करता है कि सूक्ष्म आकाश में स्थूल मृत्तिका और जल आदि रहते हैं, इस कारण जो ऊपर कह चुके हैं कि "सूक्ष्म

में स्थूल नहीं रह सकता" ठीक नहीं। परन्तु वादी का यह विचार आशय को न समझने के कारण है क्योंकि आधार दो प्रकार से होता है एक व्याप्य और व्यापक के सम्बन्ध से, दूसरा आधार और आधेय के सम्बन्ध से। प्रयोजन से हमारा प्रयोजन व्याप्य और व्यापक के सम्बन्ध से था। वादी का दृष्टान्त आधार और आधेय के सम्बन्ध से है, इसलिए प्रत्यक्ष ही मिथ्या है। और शब्द प्रमाण से भी ईश्वर का ज्ञान होता है। जबकि इतने प्रमाण ईश्वर के होने में विद्यमान हैं, तब यह कहना कि ईश्वर के होने में कोई प्रमाण नहीं, कैसे ठीक हो सकता है?

अब प्रश्न यह उठता है कि 'यदि ईश्वर का होना मान भी लिया जाय जावे तो उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है'? इसका उत्तर यह है कि प्राप्त वह वस्तु होती है जोकि पहले दूर हो। अब सोचना चाहिए कि ईश्वर हमसे दूर है वा नहीं। यदि कहो दूर है, तो उसकी प्राप्ति हो सकती है वा नहीं? यदि दूर ही नहीं तो प्राप्ति का क्या तात्पर्य है? जहां तक देखा गया है दूरी तीन प्रकार की होती है। १ देश की दूरी, २ काल की दूरी, ३ ज्ञान की दूरी। ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिए किसी वस्तु से भी देश (स्थान) की दूरी नहीं। वह नित्य है इसलिए काल की भी दूरी नहीं हो सकती। इसलिए 'कि जीवात्मा उसे जानता नहीं' ज्ञान की ही दूरी हो सकती है। बस ज्ञान की दूरी ईश्वर को जानने से ही दूर होगी। इसी का नाम 'ईश्वर प्राप्ति' है इस पर वादी कहता है कि ईश्वर को जानना तो किसी प्रकार सम्भव नहीं, क्योंकि उपनिषदों में लिखा है कि:—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो
न विद्मो न विजानीमो तथैतदनुशिष्यादन्य-
देवैतद्विदितादथो अविदितादधि इ० ॥

(केनोपनिषद्)

अर्थ—उस परमात्मा तक आँख नहीं जाती अर्थात आंख उसे देख नहीं सकती क्योंकि वह रूप नहीं, और न ही वाणी उसे कह सकती है क्योंकि उसके गुणों की अवधि नहीं और न ही यह इन्द्रियां जान सकती हैं क्योंकि ब्रह्म को अन्दर माना है और इन्द्रियां बाहर देखती हैं। इस कारण ब्रह्म इस प्रकार का है, ऐसा जानना सम्भव ही नहीं। किन्तु वह जाने हुए और न जाने हुए से भी पृथक् है।

इसका उत्तर उपनिषदों में यह भी लिखा है कि:—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥

कठ० ४।११

अर्थ—मन से ही यह ब्रह्म जाना जाता है, इस आत्मा के अन्दर केवल ब्रह्म रहता है और दूसरा कोई नहीं, वह बार बार जन्म मरण के दुखों को प्राप्त होता है, जो आत्मा जीव के अन्दर नाना वस्तुओं को देखता, समझता है।

इस कथन पर प्रश्न उठता है कि एक स्थान पर तो उपनिषदों ने लिखा है कि वह परमात्मा मनसे नहीं जाना जाता और दूसरे स्थान पर लिखा है वह मन से ही जाना जाता है, यह दोनों विरुद्ध बातें सत्य हो सकती हैं? इससे तो उपनिषदों का अप्रमाण होना सिद्ध होता है, क्योंकि महात्मा गौतम जी ने न्याय-दर्शन के शब्द परीक्षा प्रकरण में कहा है कि:—

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।

न्याय० २ आ० १ सू० ५६ ॥

अर्थ:—जिस शब्द में ३ प्रकार के दोषों में से कोई भी दोष पाया जावे, वह शब्द अप्रमाण होता है। वे तीन प्रकार के दोष ये हैं कि—१ अनृत २ व्याघात ३ पुनरुक्ति। जब उपनिषदों में व्याघात दोष हैं तो वे अप्रमाण होंगी? इसका उत्तर यह है कि इस स्थल में व्याघात दोष नहीं, किन्तु मन की दो दशाओं के होने का प्रमाण दिया है अर्थात् जब मन मलिन होता है तब उस मन से परमात्मा को जान लेना असम्भव है। परन्तु जब मन शुद्ध हो जाता है तो उससे जीव और परमात्मा का दर्शन हो सकता है, और दूसरे यह बात है कि मन से परमात्मा नहीं

जाना जाता किन्तु जैसे शुद्ध दर्पण से नेत्र अपने अन्तर्गत सुरमे और अपनी दशा को देखते हैं, वैसे ही जब मन शुद्ध हो जाता है तो उससे जीवात्मा अपने स्वरूप और अपने अन्तर्व्यापक परमात्मा के स्वरूप को जानता है।

जब तक मन शुद्ध न हो तब तक उससे ब्रह्म का आनन्द उपलब्ध नहीं होता, जैसे सूर्य का अभास समस्त पृथ्वी मात्र पर पड़ता है, परन्तु शुद्ध जल वा शुद्ध दर्पणादि के अतिरिक्त सर्वत्र नहीं दीखता। ऐसे ही यद्यपि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है परन्तु मन के मलिन होने से प्रतीत नहीं होता, ब्रह्म को जानने के लिए जो मनुष्य मन की शुद्धि के बिना ही परिश्रम करते हैं उनका परिश्रम निष्फल जाता है और वे मनुष्य ब्रह्म के स्वरूप (भाव) से विरोधी हो जाते हैं। जैसे किसी मनुष्य के नेत्र में सुरमा है वह उसे प्रतीत नहीं होता वह जब दूसरे मनुष्य से सुनता है कि नेत्रों का अँजन दर्पण से प्रतीत होता है, जब दर्पण लेकर देखने लगता है तो दर्पण के मलिन होने से उसे प्रतीत नहीं होता तो वह उस मनुष्य को (जिसने बताया था दि दर्पण से अँजन प्रतीत होगा) झूठा समझता है। यह उसकी मूर्खता है क्योंकि शुद्ध दर्पण में प्रतीत होता है मलिन में नहीं, इस लिए जब तक मन की मलिनता दूर न हो जब तक ईश्वर का दर्शन कैसे हो सकता है ?

अब यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि मन में मलिनता क्या है ? इसका उत्तर यह है कि दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार (चिन्तन) ही मलिनता है। यदि विचार किया जावे हो सम्प्रति प्रत्येक मनुष्य इसी चिन्ता में हैं कि कोई नेत्रों का अन्धा और गांठ का पूरा मिल जावे। यदि दुकानदारों की ओर जावें तो यही उनकी जिह्वा में है किं "हे शिवजी महाराज ! कोई नेत्रों का अन्धा गांठ का पूरा भेज। प्राड्विवाक (वकील) लोग भी फौजदारी के संकट में फंसे हुए निर्बुद्धि धनी की आशा करते हैं। वैद्य (डाक्टर) जन भी ऐसे ही रोगियों के अन्वेषक (मुतलाशी) हैं। घूँसग्राही अहलकार तो यह चाहते ही हैं। प्रयोजन यह है कि जिसको देखो इसी चिन्ता में लगा हुआ है। ऐसे ही मन में मैल रखने वाले ईश्वर के भाव (हस्ती) से इन्कार करते हैं।

अब प्रश्न होता है कि हम कैसे जानें कि मन अब शुद्ध हो गया। इसका उत्तर यह है कि जब निष्काम कर्म करने से तीन प्रकार की एषणा दूर हो जावे अर्थात लोकैषणा (प्रतिष्ठादि की इच्छा) पुत्रैषणा (पुत्रादि सन्तान की इच्छा), वित्तैषणा (धन की इच्छा); तब समझ लेना चाहिये कि अब मन शुद्ध हो गया। वादी कहता है कि ऐसे अनेक जन संसार में वर्त्तमान हैं कि जो दूसरों का निष्काम उपकार करते हैं और उनको यह एषणा भी नहीं, परन्तु ईश्वर उनको भी नहीं प्रतीत होता।

इसका उत्तर यह है कि जैसे दर्पण के मलिन होने से उसमें नेत्र और तद्गत अञ्जन प्रतीत नहीं होता, इसी प्रकार दर्पण के हिलते हुए होने से भी आभास प्रतीत नहीं होता। बस, जहां मन के मलिन होने से जीव और ईश्वर का ज्ञान नहीं होता वहां मन के चञ्चल होने से भी परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। जैसे हिलते हुए दर्पण को आंख और अञ्जन को देखने के लिये ठहरना आवश्यक है ऐसे ही जीव और ईश्वर के जानने के लिये मन की चञ्चलता को दूर करना आवश्यक है; जिसका प्रतीकार केवल उपासना काण्ड है।

तत्त्व ज्ञान

वेदों उपनिषदों, गीता और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका आदि तथा अपने अनुभव के आधार पर कठिन विषयों को सरल शैली पर समझाने का सफल प्रयत्न श्री आनन्द स्वामी जी ने किया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। सभी विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। पुस्तक की छपाई सुन्दर तथा जिल्द आकर्षक है मल्य ३)।

पता:—गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, देहली।

ईश्वर प्राप्ति

(३)

योग के आठ अंग हैं। १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि।

प्र०—यम किसे कहते हैं ?

उत्तर—अहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥ योगदर्शन २ । ३२

अर्थ—अहिंसा अर्थात् किसी को न मारना और न किसी प्रकार का दुःख देना, सत्यभाषण अर्थात अपने ज्ञान के विरुद्ध कभी न कहना, चोरी का त्याग अर्थात् किसी का स्वत्व (अधिकार) लेने का प्रयत्न न करना, ब्रह्मचारी रहकर अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके वैदिक शिक्षा का लाभ करना, हठ, आग्रह और पक्षपात से पृथक् (रहित) होना, ये पाँच यम कहलाते हैं।

प्रश्न—नियम किसे कहते हैं ?

उ०—शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः। योगदर्शन २ । ३२

(१) प्रथम-शुद्धि (शौच) चार प्रकार की होती है जैसा कि मनु जी ने लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्याँ भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥
मनु० ५।१०६

अर्थात—जल से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं, स्नान आदि समस्त बाह्य शुद्धि के हेतु हैं। मन "सत्येन" अर्थात सत्य भाषण, सत्यकर्म करने, एवं सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की आज्ञा पालन से शुद्ध होता है। विद्या और तप से जीवात्मा शुद्ध होता है, तथा बुद्धि अर्थात जीवात्मा का ज्ञान वेद से शुद्ध होता है।

(२) द्वितीय—सन्तोष अर्थात जो कुछ भोगवश प्राप्त हो उसी से प्रसन्न रहना, अधिक प्राप्त करने की इच्छा न करना।

(३) तृतीय—तप अर्थात इन्द्रियों को विषयों से रोकने में जो कष्ट होता है, अथवा शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा आदि का दुःख धर्म सम्बन्धी कृत्य करने में सहना पड़ता है उसे सहन करना, किसी समय भी चित्त को इन्द्रिगों के (विषयों के) आधीन न होने देना।

(४) स्वाध्याय—नियम पूर्वक वेद वेदाङ्गों का अध्ययन, किसी दिन को पढ़ने से शून्य न जाने देना। वेद वेदांगों और उपांगों के अतिरिक्त दूसरी शिक्षा का नाम स्वाध्याय नहीं।

(५) ईश्वर पर पूर्ण विश्वासी होकर यह निश्चय रखना कि जो कुछ ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है, जो किया अच्छा ही किया, जो करेगा अच्छा ही करेगा। क्योंकि ईश्वर दया और न्याय के अतिरिक्त कुछ नहीं करता और दया तथा न्याय दोनों अच्छे हैं। बुरा कोई भी नहीं। यद्यपि पापी को न्याय बुरा प्रतीत होता है (जो वास्तव में तो बहुत ही उत्तम है)। इस पर गाथा है कि—

एक राजा के मन्त्री के चित्त में दृढ़ विश्वास हो गया कि ईश्वर जो कुछ करता है, किया है, करेगा, सब अच्छा ही करता है किया और करेगा। एक दिन आखेट (शिकार) के समय राजा की दो अंगुलियाँ कट गईं। मन्त्री भी सङ्ग में था, उसने कहा कि जो कुछ ईश्वर ने किया उसमें कुछ लाभ ही होगा। मन्त्री का यह कथन महाराज को बहुत बुरा लगा, उसने मन्त्री को निकाल दिया। जिस समय मन्त्री के समीप निकल जाने की आज्ञा पहुँची तब उसने अति प्रसन्नता पूर्वक कहा कि ईश्वर जो कुछ करता है उसमें कोई लाभ ही होगा।

जब महाराज ने इस कथन को सुना तो चित्त में विचारा कि वास्तव में मन्त्री की बुद्धि बिगड़ गई, क्योंकि उसे प्रत्येक हानि मात्र लाभ प्रतीत होता है।

निकल जाने से प्रथम तो मन्त्री नित्य महाराज के संग रहा करता था। अब महाराज एकाकी (अकेले) मृगयार्थ गए। घोड़ी के वेग तथा आंधी आदि के कारण एक ही बारमें अपने राज्य से निकल कर किसी अन्य राजा के राज्य में जा पहुँचा। राजा दीर्घ रोगी था। उसको कहा गया कि देवी की भेंट के लिए एक मनुष्य को बलिदान दो, राजा ने यह आज्ञा दे रखी थी कि प्रातःकाल में जो मनुष्य अमुक द्वार से आवे उसे बलिदान दे दो। दैवात राजा निर्दिष्ट द्वार से ही पहुँचा। राजा के भृत्यवर्ग आज्ञानुसार बलिदान करने को ले गये। राजा ने आत्म रक्षा के लिये अनेक उपाय किये परंतु भृत्यों ने एक न सुनी। जिस समय राजा के वस्त्र उतरवा कर स्नान कराना चाहा त्योंही उसकी दो अँगुलियां कटी हुई मिलीं। पुजारियों ने कहा कि अङ्गभङ्ग की बलि देवी को नहीं चढ़ सकती। तब महाराज को भृत्यों ने छोड़ दिया।

महाराज ने मन में विचार किया कि उन अँगुलियों का कटना ही शरीर रक्षा का कारण हुआ, नहीं तो आज कोई आशा न थी। वास्तव में मन्त्री ने ठीक ही कहा था कि—

"ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है।"

जब राजा लौट कर अपने स्थान पर पहुँचा, तो मन्त्री को बुला कर पुनः नौकर रख लिया, मन्त्री ने पुनरपि वे ही वाक्य कहे कि ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है। राजा ने मन्त्री से कहा कि हमारी जो अँगुलियां कट गई थीं उनका प्रयोजन तो हमने समझ लिया, परन्तु तुम्हारे निकल जाने में प्रयोजन था वह नहीं समझा। मन्त्री ने कहा कि यह तो सुगम बात है कि यदि मैं निकल न जाता तो अवश्य आपके संग होता, आप तो अंग-भंग हो जाने के कारण बच जाते परन्तु मेरा बलिदान हो जाता, अतः ईश्वर ने मुझे सुरक्षित किया।

बस उपर्युक्त पांच नियम हैं।

प्र०—आसन क्या है?

उ०—स्थिरसुखमासनम्॥ यो० द० २।४६॥

अर्थात् जिससे सुखपूर्वक प्राणायाम आदि कर सकें वही आसन हैं। कितने ही आचार्य पद्मासन आदि चौरासी प्रकार के आसन बतलाते हैं, कितने ही इनसे भी अधिक कहते हैं। प्रयोजन इससे यह है कि निर्विघ्न काम जिससे हो सके वही आसन है।

प्र०—प्राणायाम किसे कहते हैं?

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। यो० द० २।४९॥

अर्थात आसन पर बैठकर अन्दर आने वाले श्वास और बाहर जाने वाले श्वास की जो स्वाभाविक गति है उसे दूर करके स्वेच्छा के अनुकूल कर लेने का नाम प्राणायाम है। बाहर को श्वास को निकाल कुछ देर अन्दर न जाने देना बाहर ही रोकना अन्दर रोकना, एक ही बार छोड़ देना। इत्यादि

उत्तर—प्राणायाम का क्या फल है?

उत्तर—दहयन्ते ध्मायमानानाँ धातूनां हि यता मलाः॥ तथेन्द्रियाणां दहयन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ मनः ६।७१॥

अथित जैसे अग्नि में फूंकनी आदि से तपाने से सुवर्णादि धातुओं के निःशेष मल भस्म हो जाते है, वैसे ही प्राणों के निग्रह (प्राणायाम से अपने को वश में करने) से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं। इसके अनन्तर—

योगाङ्गानष्ठानादशुद्धिक्षयज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। ॥ योगदर्शन २८॥

जो मनुष्य योग के अंग प्राणायामादि को करते रहते हैं उन मनुष्यों की जब तक मोक्ष न हो तब तक अन्तःकरण की मलिनता का क्षय, और ज्ञान का प्रकाश रात दिन निरन्तर होता रहता है। इन्द्रियों के दोष नष्ट होने से ज्ञानोत्पत्ति इसलिए कही है कि इन्द्रियों के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है। जैसा कि महर्षि कणाद ने भी अपने वैशेषिक दर्शन में कहा है कि—

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या । वै० अ० ६।२।११

अर्थात इन्द्रियों के दोष से तथा संस्कारों के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है जब इन्द्रियों के दोष प्राणायाम से मनु जी के कथनानुसार भस्म हो जायेंगे तब ज्ञान की वृद्धि होगी । तथा जो मनुष्य प्राणों को अनियम व्यतीत करते हैं वे थोड़े ही काल में मर जाते हैं । क्योंकि शास्त्रों में प्राणों को ही आयु माना है, जैसा कि लिखा है—

प्राणो वै भूतानामायुः ।

अर्थात प्राण ही प्राणियों की आयु है । और देखा भी है कि जब तक प्राण रहते हैं तभी तक मनष्य जीवित रहता है, प्राणों के निकल जाने पर पुनः जीवित नहीं रहता । जैसे इन्जन में बाष्प (भाप) ही काम करती है, यदि उनका नियन्ता [ड्राइवर] उस वाष्प को अनियम में चला कर काम लेता है तब कभी भी उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और न ही वाष्प के निकलने देने पर सिद्ध होता है । इसी प्रकार यदि इस शरीर का नियन्ता जीवात्मा प्राणों को अनियम में चला कर अपना मुख्य प्रयोजन सिद्ध करना चाहे तो भी कभी सिद्ध नहीं हो सकता ।

प्रश्न—तुम तो आयु को नियतपरिमाण मानते हो, पुनः प्राणायामादि के करने से न बढ़ेगी । तथा प्राणायामादि के करने से घटेगी नहीं, पुनः यह क्यों कहा कि प्राणायाम न करने से अल्पकाल में ही मर जाता है ।

उत्तर—प्रियवर ! यह प्रश्न तुमने बहुत अच्छा किया, इस पर बहुतों को भ्रम है । इसका उत्तर यह है कि हम आयु को (जो वास्तव में उपनिषदों के अनुसार प्राण ही हैं) बढ़ने वाली तथा घटने वाली नहीं मानते, किन्तु काल को घटने वाला तथा बढ़ने वाला मानते हैं । "थोड़े काल में मर जाते हैं" यह कहा था न कि थोड़े ही आयु में मर जाते हैं । इससे शङ्का आपकी पक्षपोषक नहीं है । इसका उदाहरण यह है कि जैसे किसी मनुष्य को ३० तीस सेर अन्न मासिक मिलता है यदि वह मनुष्य आध सेर अन्न प्रतिदिन खाता है तो उसका १५ सेर अन्न अब शेष रहेगा अर्थात् वह आध सेर यदि प्रतिदिन खाता रहे तो दो मास पर्य्यन्त निर्वाह कर सकता है । यदि वही मनुष्य उस तीस सेर अन्न में से दो सेर प्रतिदिन खाता रहे तो १५ ही दिवस निर्वाह कर सकता है अर्थात् १ मास भी व्यतीत नहीं कर सकता । यहाँ यह विचारणीय है कि उस मनुष्य का तीस सेर अन्न उतना ही रहता है अर्थात् यहि वह उक्त प्रकार से दो मास पर्य्यन्त निर्वाह कर लेता है तब क्या उसका अन्न तीस सेर से बढ़ जाता है ?

उत्तर नहीं ! तो क्या जब वह उक्त प्रकार से १५ दिन ही निर्वाह करता है तो क्या उसका वह तीस सेर अन्न कुछ घट जाता है ।

उ०—यह भी नहीं ! अभिप्राय यह है कि काल तो घटता बढ़ता ही है । परन्तु अन्न उतना ही रहता है । बस इसी प्रकार जो मनुष्य प्राणों को नियमानुसार प्राणायामादि के द्वारा रोकता हुआ कम व्यय करता है वह मनुष्य अधिक जीता है और जो अनियम प्राणों को व्यय करता है, वह अल्प काल तक जीवित रहता है जो मनुष्य महान् हो, अल्प काल तक जीने वाला हो, वह उससे बढ़कर अधिक काल तक जीवित रहता है । परन्तु दोनों दशाओं में प्राणरूप में आयु उतनी ही रहती हैं । इस लिये आयु को नियय मानने पर भी काल के अधिक अथवा न्यून हो जाने से हमारे सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आ सकता ।

और दूसरा उत्तर इसका यह भी है कि बढ़ना एक और प्रकार से भी होता है अर्थात् जो मनुष्य तत्त्वज्ञानी होता है उसकी आयु बढ़ जाती है और जो मिथ्याज्ञानी होता है उसकी घट जाती है । उसका उदाहरण यह है कि जैसे यदि एक मनुष्य बाजार में अन्नादि खरीदने जावे और वह बाजार के भाव को ठीक जानता है तो १ रु० के जितने अन्नादि भाव अनुसार आते हैं उतने ही ले आता है परन्तु जो मनुष्य अन्नादि के भाव को यथावत् नहीं जानता वह मनुष्य उसी १ रु० के अन्नादि कम लेकर भी चला

आता है। परन्तु दोनों दशाओं में मूल्य उतना ही रहता है। बस इसी प्रकार जो मनुष्य तत्त्वज्ञानी होता है वह अपनी आयु से ज्ञान के अनुसार सिद्धान्तों को ग्रहण करता है परन्तु जो मनुष्य मिथ्याज्ञानी होता है वह शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को ग्रहण करके अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर लेता है, परन्तु दोनों दशाओं में प्राण रूप आयु उतनी ही रहती है।

इत्यादि अनेक प्रकार हैं! इस उपचार से आयु की भी वृद्धि मानी गई हैं। प्रयोजन यह है कि प्राणायामादि करने योग्य हैं। अब हम प्रकरण पर आते हैं प्राणायाम से आगे पञ्चमाङ्ग प्रत्याहार है। अब हम प्रत्याहार को बतलाते हैं।

प्रश्न—प्रत्याहार किसको कहते हैं?

उत्तर—स्वविषयाऽसंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानकार इवेन्द्रियाणा प्रत्याहारः।

योग दर्शन, पाद २—५४

अर्थात् जब यम, नियम, आसन, प्राणायाम रूप पूर्वाङ्गों के अनुष्ठान से मन अपने वश में हो जाता है क्योंकि मन की गीति प्राणों के अनुसार वैसे ही होती है, जब प्राण मनुष्य के वश में प्राणायामादि से हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य के अनुकूल गति करते हैं, तब प्राणो के अनुसारी होने से मन भी पुरुष के वश में हो जाता है और मन के पुरुष के वश में होने के पश्चात् इन्द्रियाँ भी पुरुष के वश में हो जाती हैं; क्योंकि इन्द्रियां मन के आधीन हैं, मन जिस ओर इन्द्रियों को प्रवृत्त करता है उसी ओर इन्द्रियां चली जाती हैं। इस बात को उपनिषदों में इस प्रकार विवरण किया है कि—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च
॥कठ॥ ३ ॥ ५७ ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँ स्तेषु गोचरान्।
। कठ २ ॥ ५८ ॥

अर्थात् इस शरीर को रथ रूपी मानकर यह अलङ्कार घटाया है कि यह शरीर रूपी एक रथ है इस रथ का स्वामी कौन है? इस शरीर रूप रथ का स्वामी आत्मा है। इस रथ का नियन्ता सारथि अर्थात् नियम पूर्वक घोड़ों को हांकने वाला कौन है? बुद्धि ही रथ का नियन्ता है। सारथि के हाथ में प्रग्रह (बागें) होती हैं जिनसे वह नियम में रखता है यहाँ मन जो है वह प्रग्रह रूप है। यदि प्रग्रह भी है तो वह हांकता किनको है अर्थात् घोड़े कौन हैं? इन्द्रिय ही घोड़े हैं। इन्द्रियरूप घोड़ों के चलने का मार्ग कौन है? इन्द्रियों के चलने का मार्ग विषय हैं, क्योंकि इन्द्रियां विषयों की ओर ही दौड़ती हैं।

अब यहाँ यह समझना चाहिये कि जो पुरुष बुद्धिमान होता है वह अपनी बुद्धि को प्रथम सुधारता है क्योंकि जब तक रथ को नियन्ता हांकने वाला ही स्वयं ठीक नहीं होता तब तक कभी घोड़े अभीष्ट स्थान को नहीं पहुँच सकते, क्योंकि सारथि के निपुण होने से घोड़े भी अभीष्ट स्थान को पहुंच सकते हैं। एबमेव बुद्धि रूपी सारथि के सुधर जाने से ही मनरूपी प्रग्रह वश में रह सकती है अन्यथा नहीं। यही कारण है कि दुर्बुद्धि पुरुषों का मन वश में नहीं होता। जब मनुष्य बुद्धिको यमादि से सुधारकर मन को निपुण सारथि प्रग्रह (बागों) को, अपने वश में कर लेता है तब घोड़े भी स्वाधीन हो जाते हैं।

बस, इसी प्रकार मन के वश में होने से इन्द्रियां रूपी घोड़ों का भी वश में होना समझ लेना चाहिए और जब इन्द्रियां वश में हो जाती हैं तब मनुष्य अधर्मरूप मार्ग से हट कर धर्म मार्ग में चलता है। जहां पहले मन में द्रोहादि रहते थे उस मनुष्य के चित्त में दया आदि शुभ गुण वास करते हैं। ऐसे ही जहाँ वाणी में मिथ्याभाषण आदि निवास करते थे वहाँ उस मनुष्य की वाणी में सत्यभाषणादि शुभ गुण रहते हैं। ऐसे ही जहाँ शरीर के कर आदि अङ्गों में हिंसा आदि रहते थे वहां दान आदि शुभ गुण रहते हैं, इत्यादि जानना। हमारे बहुत से भ्राता यह कहेंगे कि अनेक मनुष्य यम नियमों के बिना ही स्वतन्त्र रह सकते हैं, पुनः इतना झगड़ा क्यों रखा कि जो कि अति दुस्तर है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता चाहता है, धर्म अधर्मादि वह करे, वह स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र है उसके मन आदि सब बस में हैं ही, पुनः क्यों ये क्लेश सहे?

उपयोगी पुस्तकें

पं. जयदेव कृत

ऋग्वेद भाष्य ७भाग ४२)

अथर्ववेद ४ भाग २४)

यजुर्वेद २ भाग १०)

सामवेद ६)

पं. तुलसीरामस्वामी कृत

न्याय दर्शन २)

योगदर्शन १।।)

वेदान्तदर्शन २।।)

वैशेषिकदर्शन २)

मनुस्मृति ५)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उत्तरार्द्ध) २।।)

न्यायदर्शन २।।)

वैशेषिक दर्शन ३।।)

गीता भाष्य १।।)

म०नारायण स्वामी कृत

मृत्युपरलोक १।)

अमृत वर्षा २)

पाप पुण्य ।।)

गृहस्थ जीवन रहस्य २।।)

महर्षिदयानम्द "इन्द्र" २)

तरंगितहृदय 'अभय' १।)

कौटिल्य अर्थ शास्त्र १०)

कुरानशरीफ ८)

एकादशोपनिषद १२)

ब्रह्मचर्य सन्देश ४।।)

दयानन्दका पत्रव्यवहार ७)

जाति निर्णय ४)

योग प्रदीप १२)

स्वामी सर्वदानन्द

सन्मार्ग दर्शन ४)

आनन्द संग्रह २)

ईश्वर भक्ति २)

ईश्वर मिलाप ।।)

धर्म ज्ञान ४ भाग २—)

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका २)

संस्कार विधि ।।।—)

हितोपदेश भा०टी० १।।)

पंचतन्त्र भाषा ३।।)

आर्य समाज के नेता ३)

हमारे स्वामी ३)

हमारी माताएं ३)

भारतीय वीरांगनाएं ३)

वैदिक सम्पत्ति ६।।।)

दर्शन और गीता १।)

दृष्टान्त महासागर २।।)

दयानन्द और गांधी २)

नैतिक जीवन २।।)

भक्तियोग विवेकानन्द २)

कर्मयोग ,, २)

भक्ति और वेदान्त ,, २)

आगे बढ़ो १।।)

सफलता की कुन्जी १)

भारत में मूर्ति पूजा २)

पूर्वजन्म स्मृति ।=)

स्वाध्याय संग्रह २)

स्वाध्याय सन्दोह ६)

अष्टाध्यायी प्रकाशिका ५।।।)

हिन्दू संगठन १)

सत्य हरिश्चद्र १)

गीत श्रद्धांजली १।=)

बीरबल की हाजिर जवाबी १)

अमीरी के दिन ३)

जागृत एशिया २)

सरस भोजन कैसे बनावे ३।।।)

स्त्री शित्ता पाक प्रकाश ४।)

नारी धर्म शित्ता २)

भारत के स्त्रीरत्न ७।)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगावें

-) प्रति, तथा ४) रु० सैकड़ा. ३५) रुपया हजार

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आयसमाज के उद्देश्य
२५ वेद मात
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रत्ता करो
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य
३० सत्संग भजन
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवादकी रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शित्तासे हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ.स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शित्ता का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ.स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लत्त
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकाससमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
३	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२।।)
११	धान की खेती	१॥)
१२	संतरे की बागवानी	२।।)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।।)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२।।)

नोट:- ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) की रुपया कमीशन काटकर ।।-)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मंगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २५० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता—

देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां
दे. में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदो ऽखिलो धर्म मूलम्

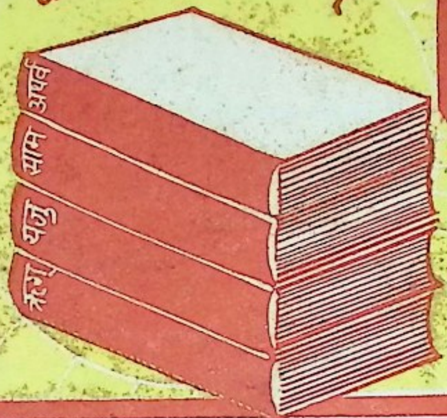

वेद प्रकाश

वर्ष ५
अंक ३
आश्विन सं० २०१३, अक्तूबर १९५६, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द
मूल्य≡) वार्षिक २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

सत्यव्रत ।

अग्ने व्रत पते व्रतंचरिष्यामि, तच्छकेयं
तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ यजु० १।५

हे तेजस्वी व्रतपालक, मैं नियमों का पालन करूंगा । मुझ में उन्हें पालन करने की शक्ति की वृद्धि हो । मेरा लक्ष्य पूर्ण हो । मैं असत्य से सत्य की ओर जाता हूँ ।

(वंशस्थ)

[illegible]
[illegible]

(गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" आगरा)

आवश्यक सूचना—वेदप्रकाश के ५वें वर्ष को आरम्भ हुए यह तीसरा मास है । अतः अनेक ग्राहकों के चन्दे समाप्त हो गये हैं, वी० पी० करने से ग्राहकों को २) रुपये के स्थान पर २॥।) देने पड़ते हैं, इसलिये वी० पी० हम भेजना उचित नहीं समझते कृपा कर ग्राहक महोदय स्वयं २) का मनीआर्डर भेज देवें ताकि वे हमारे सहायक बने रहें । व्यवस्थापक

महात्मा आनन्द स्वामी कृत स्वाध्याय योग्य चार पुस्तकें

तत्त्वज्ञान

वेदों, उपनिषदों, गीता और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका इत्यादि तथा अपने अनुभव के आधार पर कठिन विषयों को सरल शैली पर समझाने का सफल प्रयत्न किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। सभी विद्वानों में इस की प्रशंसा की है। पुस्तक की छपाई सुन्दर और जिल्द आकर्षक है संशोधित द्वितीय संस्करण मूल्य ३)

प्रभु दर्शन

प्रस्तुत पुस्तक में प्रभुप्राप्ति के सम्बन्धमें विशेष प्रकाश डाला है। प्रभु प्रर्शन के लिए क्या क्या चाहिए और उसके साधकों को किन किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए आदि आदि। यह प्रस्तुत पुस्तक आनन्द स्वामी जी के साधनामय जीवन का निचोड़ है। कागज उत्तम जिल्द बहुत ही आकर्षक मूल्य २।।)

आनद गायत्री कथा—आनन्द स्वामीजी की गायत्री पर सप्ताह भर की कथा जो कि रोचक शिक्षा प्रद दृष्टान्तों से युक्त पढ़ने पढ़ाने योग्य है पुस्तक रूप में छपी है एक बार पुस्तक हाथ में उठाकर समाप्त करनी ही पड़ती है। पृष्ट संख्या १३४ मूल्य ॥)

प्रभु भक्ति— यह पुस्तक स्वामीजी ने अपने पूर्वाश्रम में जब वे महात्मा खुशहालचन्द थे हैदराबाद जेल में लिखी थी पुस्तक का ८ वां संस्करण हैं। मूल्य १।) सजिल्द १।।)

चारों पुस्तक एक साथ मंगाने पर वी. पी. डाक खर्च माफ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवाली हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

मोमबत्तियाँ बनाना	३।)
आयल इन्जन गाइड	६)
सुगन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
सिनेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
सुगन्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ज्योतिष शास्त्र	६)
कान्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
बूटपालिश बनाना	३।)
मोटर मिकेनिक गाइड	६)
आइसक्रीम बनाना	३।)
इन्जेकशन बुक	५)
कम्पाउन्ड्री शिक्षा	३।।)
सचित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
रबर के गुब्बारे बनाना	३।)
ट्रैक्टर गाइड	६)
इलैक्ट्रिक गाइड	६)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	५)
रोशनाईसाजी	३।)
फोटोग्राफ़ी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इन्जन गाइड	६)
रँगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४।।)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पतिपत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२।।)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३।।)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३।।)
बैट्री विज्ञान	२।।)
सरल हिन्दी इंग्लिश टीचर	२।।)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२।।)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२।।)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४।।)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२।।।)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२।।।)
स्वर्णकार शिक्षा	२।।।)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रुस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३॥)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२)
श्री प्रेमसागर सचित्र	४)
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

मँगाने का पता :—

एल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

बलदातः ! बल दे

(ले०—वेदशास्त्रज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

ओ३म् । बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीव से त्वं हि बलदा असि ॥

ऋ० ३।५३।१८ ॥

हे (इन्द्र) अतुल बलपराक्रमशालिन् प्रभो ! (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बलम् बल (धेहि) डाल, दे (नः) हमारे (अनुडुत्सु शरीररूपी छकड़े की चलाने वाली इन्द्रियों में (बलम) बल डाल (तोकाय+तनयाय) बाल बच्चे के लिए तथा (जीव से) जीने के लिए (बलम्) बल दे । (हि) सचमुच (त्वम्) तू ही (बलदाः) बलदाता (असि) है ।

बलदाः निर्बलों के बल ! प्रबलों से प्रबल ! सबसे सबल ! तेरी दया से मुझ में बड़ी बड़ी शक्तियां हैं, मैं अद्भुत कार्य करने का सामर्थ्य रखता हूं । किन्तु फिर भी मैं अनुभव करता हूँ कि मैं निर्बल हूं ! जीव जन्तु के अतिरिक्त रोग शोक भी मुझे प्रबल दिखते हैं । मुझे समय समय पर आ दबाते हैं । परमदेव ! तू बल का भण्डार है, और तेरा भण्डार अखुट है । थोड़ा सा बल दे, मेरा शरीर बलहीन है इसे सबल बना दे । शरीर मेरा भारी भरकम है, इसको चलाने वाले, इसकी क्रिया को करने वाले बैल— आंख, नाक, कान दुबले हैं । यह कैसा भार ढोयेंगे ? दुर्बल ज्योतिःक्षीण नयन रूप कैसे पहुँचाएगा ? सांय सांय करने वाले बधिरप्रायः कान तेरे यशोगान को कैसे सुनेगा ? जिह्वा-निगोड़ी दुर्बल है, न रस ले सके । प्रभो ! इन सबको बल दे, यशो बल दे ।

बल वाले ! तेरे दिये बल का फल सन्तान हो । मुझे मेरी सन्तान के लिये बल दे । जीवन के लिए बल दे । निर्बल क्या जीता है ?

तुझी से मांगूगा, क्योंकि तू ही बलदाता है । (स्वाध्याय सन्दोह से)

भद्र कामनाएँ

(—गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" आगर)

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्ये माक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ऋ० १।८९।८ ॥

हम कानों से अच्छी वातें सुनें । आँखों से पवित्र दृश्य देखें, सुदृढ़ अवयवों से युक्त शरीरों से जीवन पर्यन्त सज्जनों का हित करत रहे ।

शिखरिणी

सुनेंगे कानों से शुभ वचन ही को हम सदा ।
भले दृश्यों को नयन नित देखें हर घड़ी ॥
महाशक्तीशाली अवयव हमारे बदन के ।
सदा श्रेष्ठों का ही उमर भर सच्चा हित करें ॥

अभयम्

[—ले० श्री पण्डित वागीश्वर जी]

यतो यतः समीहसे, ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यः, अभयं नः पशुभ्यः ॥
यजुः—३६. २२. ॥

(यतः यतः) जहाँ जहाँ से तुम (सं ईहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) वहाँ से (नः) हमें (अभय) अभय (कुरु) कर दो । (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शम्) कल्याण (कुरु) करदो और (नः पशुभ्यः अभयम्) हमारे पशुओं के लिए अभय कर दो ।

क्या विस्तृत वसुधा-तल में ।
या अतल जलधि के जल में ॥
क्या नील अनन्त गगन में ।
या हृदयों में, त्रिभुवन में ॥
तुम जहाँ जहाँ से भगवन् ।
कर रहे सूत्र संचालन ॥
भय रहित हमें प्रभु ! करदो ।
मंगल हो सबका, वर दो ॥
हों सुखी समस्त प्रजाएँ ।
पशु भी निर्भय हो जाएँ ॥
उमड़ें बस अन्तस्तल में ।
विश्वास प्रेम पल पल में ॥

(वेद गीतांजलि से)

बाल शिक्षा

(ले०—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी)

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।

(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य रूपी (तपसा) तप के द्वारा (देवाः) विद्वान् लोग (मृत्युम्) मृत्यु को (अप+अघ्नत) मार भगाते हैं । (अ० ११।५।१९)

राष्ट्र के कर्णधारों !

इस सूक्ति में ब्रह्मचर्य की महिमा पर प्रकाश डाला गया है । ब्रह्मचर्य का अर्थ है ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन और वीर्य रक्षण । विद्वान् ब्रह्मचर्य से मौत को मार भगाता है । हनुमान जी ब्रह्मचर्य को धारण करके ही महावीर बने । शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य के बल पर ही जगद्गुरु की उपाधि पाई थी । यतीवर लक्ष्मण ब्रह्मचर्य के आधार पर ही मेघनाथ को मारने में सफल हो सके थे । भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के बल पर मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी । आधुनिक युग के महान् सुधारक, आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द भी ब्रह्मचर्य का पालन कर मृत्युञ्जय बने थे । इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसमें दैवी तेज भरा रहता है, उसकी नेत्र ज्योति गरुड़ के समान तीक्ष्ण होती है । कपालों पर गुलाबी छटा, मुख मंडल पर तेज और ओज झलकता है । उभरा हुआ वक्षस्थल, हंसता हुआ चेहरा, दृढ़ता, धैर्य, साहस, गम्भीरता यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रताप है ।

ब्रह्मचर्य मृत्यु और बीमारियों को नष्ट करने के लिए एक उत्तम रसायण है । इतना ही नहीं, हमारे शास्त्रों ने तो यहां तक कहा है:—

आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः ।
पुण्यं च सत्प्रियत्वं च वर्धते ब्रह्मचर्य या ॥

ब्रह्मचर्य पालन से आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री, यश, पुण्य और प्रीति बढ़ती है ।

यदि आप तेजस्वी, बलवान् यशस्वी तथा मृत्युञ्जय बनना चाहते हो तो ब्रह्मचर्य का पालन करो ।

योगीराज श्रीकृष्ण के जीवन की एक झांकी

(श्री पं० पद्मसिंह शर्मा)

पाँच हजार वर्ष बीते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। जन्माष्टमी का शुभ पर्व प्रतिवर्ष हमें इस चिरस्मरणीय घटना की याद दिलाता है। आर्य जाति बड़ी श्रद्धा-भक्ति से इस परम पावन पर्व को मनाती है। विश्व की उस अलौकिक विभूति के गुण-कीर्त्तन से करोड़ों आर्यजन अपने हृदयों को पवित्र बनाते हैं। अपनी वर्त्तमान अधोगति में, निराशा के इस भयानक अन्धकार में, उस दिव्य ज्योति को ध्यान की दृष्टि से देखकर सन्तोष लाभ करते हैं। आज दुःख-दावानल से दग्ध भारतभूमि घनश्याम की अमृत-वर्षा की बाट जोहती है। दुःशासन निपीड़ित प्रजा-द्रोपदी रक्षा के लिये कातर स्वर में पुकारती है। धर्म अपनी दुर्गति पर सर धुनता हुआ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति' की 'याद-दिलाकर प्रतिज्ञा भंग की 'नालिश' कर रहा है। जाति जननी अत्याचार-कंस के कष्ट-कारागार में पड़ी दिन काट रही है, गौएँ अपने 'गोपाल' की याद में प्राण दे रही हैं, जान गंवा रही हैं। इस प्रकार भगवान् के जन्म दिन का शुभ अवसर भी हमें अपनी मौत का मर्सिया ही सुनाने को मजबूर कर रहा है। आनन्द बधाई के दिन भी हम अपना ही दुखड़ा रो रहे हैं, विधि की विडम्बना से 'प्रभाती' के समय 'विहाग' अलापना पड़ रहा है। संसार की अनेक जातियाँ क्षुद्र और बहुधा कल्पित आर्शों के सहारे उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो गई हैं और हो रही हैं। उत्तम आदर्श उन्नति का प्रधान अवलम्ब है। अवनति के गर्त में पतित जाति के लिए तो आदर्श ही उद्धार-रज्जु है। आर्य जाति के लिए आदर्शों का अभाव नहीं है। सब प्रकार के, एक-से-एक बढ़कर, आदर्श सामने हैं। संसार की अन्य किसी जाति ने इतने आदर्श नहीं पाये, फिर भी इतने महत्त्वशाली आदर्श पाकर भी—आर्य-जाति क्यों नहीं उठती ! यही नहीं, कभी-कभी तो 'आदर्शवादी' ही दुर्दशा का कारण बन जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण संसार-भर के आदर्शों में सर्वाङ्ग सम्पूर्ण आदर्श हैं। इसी कारण हिन्दू उन्हें सोलह-कला-सम्पूर्ण अवतार, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' मानते हैं। अवतार न मानने वाले भी उन्हें आदर्श योगिराज, कर्मयोगी, सर्व श्रेष्ठ महापुरुष कहते हैं। मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाने के लिए जो आदर्श अपेक्षित हैं वह सब स्पष्ट रूप में, प्रचुर परिमाण में श्रीकृष्ण चरित में विद्यमान हैं। ध्यानी, ज्ञानी, योगी, कर्मयोगी, नीति-धुरन्धर, नेता और महारथी योद्धा, जिस दृष्टि से देखिये, जिस कसौटी पर कसिये, श्रीकृष्ण अद्वितीय ही प्रतीत होंगे। संस्कृत भाषा का साहित्य कृष्ण चरित की महिमा से भरा पड़ा है। पर दुर्भाग्य से हम उसके तत्त्व को हृदयंगम नहीं करते। हम 'आदर्श' का अनुकरण करना नहीं चाहते, उल्टा उसे अपने पीछे घसीटना चाहते हैं और यही हमारी अधोगति का कारण है। यदि हम कर्मयोगी भगवान् कृष्ण के आदर्श का अनुकरण करते तो आज इस दयनीय दशा में न होते। कृष्ण चरित के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीबंकिमचन्द्र ने एक जगह खिन्न होकर लिखा है—

'जब से हम हिन्दू अपने आदर्श को भूल गये और हमने कृष्णचरित्र को अवनत कर दिया तब से हमारी सामाजिक अवनति होने लगी। जयदेव (गीतगोविन्द निर्माता) के कृष्ण की नकल करने में सब लग गये पर 'महाभारत के' कृष्ण को कोई याद भी नहीं करता।'

× × ×

पुराणों और इतिहास में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरित का वास्तव में कैसा वर्णन है यह जानने के

लिए मैंने जहाँ तक बना इतिहास और पुराणों का मन्थन किया। इसका फल यह हुआ कि श्रीकृष्ण-चन्द्र के विषय में जो पाप-कथाएँ प्रचलित हैं वे अमूलक जान पड़ीं। उपन्यासकारों ने श्रीकृष्ण के विषय में जो मनगढ़न्त बातें लिखी हैं उन्हें निकाल देने पर जो कुछ बचता है वह अति विशुद्ध, परम पवित्र, अतिशय महान् मालूम हुआ है। मुझे यह भी मालूम हो गया है कि ऐसा सर्व गुणान्वित और पाप-रहित आदर्श चरित और कहीं नहीं है। न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।'

श्रीकृष्ण-चरित का मनन करने वालों को श्री-बंकिमचन्द्र की उक्त सम्मतियों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित के रहस्य को अच्छी तरह समझ कर उसके आधार पर यदि हम अपने जाति-जीवन का निर्माण करें तो सारे संकट दूर हो जायँ। उदाहरण के तौर पर नेताओं को लीजिये। आजकल हमारे देश में नेताओं की बाढ़ आई हुई है, जिसे देखिये वही 'सार्वभौम नेता' नहीं तो 'आल-इण्डिया लीडर' है। इस बाढ़ को देखकर चिन्ता के स्वर में कहना पड़ता है—

लीडरों की धूम है और फालोअर कोई नहीं।
सब तो जनरल हैं यहाँ, आखिर सिपाही कौन है॥

पर उनमें कितने हैं जिन्होंने आदर्श नेता श्रीकृष्ण के चरित से शिक्षा ग्रहण की है? नेता नितान्त निर्भय, परम निष्पक्ष और विचारों का शुद्ध होना चाहिये, ऐसा कि संसार की कोई विपत्ति या प्रलोभन उसे किसी दशा में भी अपने व्रत से विचलित न कर सके।

महाभारत के युद्ध की तैयारियाँ हो चुकी हैं, सन्धि के सारे प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं, धर्मराज युधिष्ठिर का सदय हृदय युद्ध के अवश्यम्भावी दुष्परिणाम को सोचकर विचलित हो रहा है, इस दशा में भी वह सन्धि के लिए व्याकुल हैं। बड़ी ही कठिन समस्या उपस्थित है। श्रीकृष्ण स्वयं सन्धि के पक्ष में थे। सन्धि के प्रस्ताव को लेकर उन्होंने स्वयं ही दूत बनकर जाना उचित समझा। दुर्योधन जैसे स्वार्थान्ध, कपट-कुशल और 'अजीते-जुआरी के' दरबार में ऐसे अवसर पर दूत बनकर जाना जान से हाथ धोना, दहकती हुई आग में कूदना था। श्रीकृष्ण के दूत बनकर जाने के प्रस्ताव पर सहसा कोई सहमत न हुआ। दुर्योधन की कुटिलता और क्रूरता के विचार से श्रीकृष्ण का वहाँ जाना किसी ने उचित न समझा, इस पर वाद-विवाद हुआ। उद्योग-पर्व का वह प्रकरण 'भगवद्यानपर्व' बड़ा अद्भुत और हृदयहारी है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण के सन्धि प्रस्ताव को लेकर जाने का वर्णन है। श्रीकृष्ण जानते थे कि सन्धि के प्रस्ताव में सफलता न होगी, दुर्योधन किसी की मानने वाला जीव नहीं है, यात्रा आपद्जनक है, प्राण-संकट की सम्भावना है, परन्तु कर्तव्यानुरोध से जान पर खेलकर भी उन्होंने वहाँ जाना ही उचित समझा।

दुर्योधन को जब मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तो उसने श्रीकृष्ण को साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा जाल में फँसाने का कोई उपाय उठा न रक्खा। मार्ग में जगह-जगह उनके स्वागत का धूम-धाम से प्रबन्ध किया गया। रास्ते की सड़कें खूब सजाई गईं। दुर्योधन जानता था कि सब कुछ श्रीकृष्ण के हाथ में है, जो वह चाहेंगे वही होगा, उनकी आज्ञा से पाण्डव अपना सर्वस्व त्याग कर सकते हैं, श्रीकृष्ण को काबू में कर लिया जाय तो बिना युद्ध के ही विजय हो सकती है, श्रीकृष्ण के बल-बूते पर ही पाण्डव युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे हैं। निदान दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को फंसाने की प्राणपण से चेष्टा की। पर 'अच्युत' श्रीकृष्ण अपने लक्ष्य से कब चूकने वाले थे। सन्धि का प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि अपने साथियों के साथ सभा से उठ कर चला गया। जब उसने साम-दाम से काम बनते न देखा तो आवश्यक दण्ड देने—कैद कर लेने का षड्यन्त्र रचा, उन्हें अपने घर पर निमन्त्रित किया। दुर्योधन की इस दुरभिसन्धि को विदुर आदि दूरदर्शी ताड़ गये, उन्होंने श्रीकृष्ण को वहाँ जाने से रोका। श्रीकृष्ण स्वयं भी सब कुछ समझते थे, पर वह जिस काम को आये थे उसके लिए एक बार फिर प्राणपण से प्रयत्न करना ही उन्होंने उचित समझा।

वह दुर्योधन के घर पहुँचे और निर्भयतापूर्वक सन्धि का औचित्य समझाया। पाण्डवों की निर्दोषिता और दुर्योधन का अन्याय प्रमाणित किया, पर दुर्योधन किसी तरह न माना। श्रीकृष्ण उसे फटकार कर चले गये, दुर्योधन ने भोजन के लिए आग्रह किया, इस पर जो उचित उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने दिया वह उन्हीं के योग्य था। कहा कि—

सम्प्रीति-भोज्यान्यन्नानिह्यापद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन्, न चैवापद्गता वयम् ॥

अर्थात् या तो प्रीति के कारण किसी के यहाँ भोजन किया जाता है, या फिर विपत्ति में—दुर्भिक्षादि संकट में। तुम हम से प्रेम नहीं करते और हम पर कोई ऐसी आपत्ति भी नहीं आई है, ऐसी दशा में तुम्हारा भोजन कैसे स्वीकार करें ?

इस प्रत्याख्यान से क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने उन्हें घेर कर पकड़ना चाहा, पर भगवान् श्रीकृष्ण के अलौकिक तेज और दिव्य पराक्रम ने उसे परास्त कर दिया। वह अपनी धृष्टता पर लज्जित होकर रह गया।

हमारे लीडर लोग भगवान् के इस आचरण से शिक्षा ग्रहण करें तो उनका और लोक का कल्याण हो।

पाण्डव और कौरव दोनों ही श्रीकृष्ण के संबंधी थे, दोनों ही उन्हें अपने पक्ष में लाने के लिए समान रूप से प्रयत्नशील थे। 'लोक-संग्रह' के तत्त्व से भी भगवान् अनभिज्ञ न थे, पर उन्होंने सर्वप्रियता के मोह में पड़ कर धर्म को अधर्म नहीं बताया। निरपराध को अपराधी बता कर अपनी 'समदर्शिता' या उदारता का परिचय नहीं दिया। श्रीकृष्ण अपने प्राणों का मोह छोड़ कर दुर्योधन को समझाने गये और भयानक संकट के भय से भी कर्त्तव्यपराङ्मुख न हुए।

आर्य जाति के लीडर और शिक्षित युवक-श्रीकृष्ण-चरित को अपना आदर्श मान कर यदि अपने चरित का निर्माण करें तो वे देश और जाति का उद्धार करने में समर्थ हो सकेंगे। परमात्मा ऐसा ही करे।

(पृष्ठ ६ का शेष)

गये। हमें कोई निजी द्वेष तो था ही नहीं पर अगले दिन ही नगर में उन्होंने इस घटना का ढिंढोरा पीटा और कहा कि भारतेन्द्र तो मेरी शरण में आ गए मुझे श्रद्धांजली अर्पित की और घर पर भोजन कराया। कहिए है ना यह महानता की पराकाष्ठा।

(५) और हां देखिए १८० व्यक्तियों की उपस्थिति उनकी दृष्टि में असंख्य होती है गाजियाबाद में उनकी कथा हुई हमने हाजिरी गिनी, १८० थी, प्रो० रत्नसिंह जी आदि कई आर्य पुरुष साथ थे, पर "न्याय" में छपा, जो विदेह जी का ही निजी पत्र है, कि गाजियाबाद की कथा में असंख्य नर नारी उपस्थित थे।

(६) एक नई बात "महर्षि दयानन्द की जय" बोलना अब उचित नही उनकी जय बोलोगे तो बहुतों को बोलनी पड़ेगी। यह है विदेह जी का आदेश है आर्य समाज को···

आत्म प्रशंसा, धन लोलुपता, स्वार्थ परायणता और गुरुडम अन्धविश्वास के जागृत प्रतीक विदेह जी···ऋषि बन, वेद भाष्यकार बन, महान संत वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द के सारे श्रम को समाप्त कर देने की प्रतिज्ञा, संकल्प लेकर, पुलिस विभाग के सारे हथकण्डों को अपनाकर आर्य जनता की आंखों में धूल झोंकने का प्रयास करते रहते हैं किन्तु हमारा प्रश्न है कि क्या इस सर्वनाश के ग्रास को ग्रहण करना हम स्वीकार करेंगे।

हम आर्य जनता से पूछना चाहते हैं कि क्या वह उदात्त पवित्र वैदिक आदर्शों को विदेह जी के माया जाल में फंस समाप्त होने देगी। यदि नहीं तो स्मरण कर लीजिए कि सूर्य का पूर्व में निकलना बन्द हो सकता है पर श्री विद्यानन्द विदेह का बदलना संभव नहीं। वे जानबूझ कर पाप के, अज्ञान के, सर्वनाश के मार्ग पर चल रहे हैं आर्य समाज बचे इस भयंकर अंधड़ से, जो विदेह रूप में हमारी समस्त साधनाओं को समाप्त करने बढ़ा चला आ रहा है।

अपनी अपनी बात

यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक का मत
लेखक से मिलता हो ।

आर्य समाज भयकर अंधड़ से बचे !

(लेखक :—भारतेन्द्रनाथ जी)

व्यक्ति व्यक्ति में भेद होता है । कुछ भूलें अज्ञान से करते हैं । कुछ स्वार्थ पूर्ति के कारण जान बूझकर । अनजान में भूलें करने वाले को सुधारा जा सकता है किन्तु जान बूझकर ही अज्ञान पथ पर चलकर सर्वनाश को निमंत्रण दे स्वार्थ पूर्ति में संलग्न रहने वाले का सुधार त्रिकाल में भी असंभव है ।

···और हमारे कथन का जीवित उदाहरण है श्री विद्यानन्द "विदेह"। कलियुग का मूर्तिमान प्रतीक यदि किसी को खोजना हो तो अधिक भटकने की आवश्यकता नहीं सीधा अजमेर का टिकट कटाइये और वेद संस्थान नाभक स्थान में जाकर श्री विद्यानन्द विदेह जी के दर्शन कर आइये । आपका कुछ परिचय इस प्रकार है—

(१) आप सार्वदेशिक सभा से अपने पत्रों में कई बार अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा याचना कर चुके हैं पर एकान्त में, सार्वजनिक व्याख्यानों में आपकी घोषणा है कि जन्म से आज पर्यन्त मैंने कोई भूल नहीं की । कहिए है न ऊंचा आदर्श !

(२) देखिए क्या आप किसी ऋषि की खोज में हैं तो भी भटकिए नहीं आप "विदेह" जी के दर्शन कीजिए । क्यों चौंकते हैं आप, क्या आप यह नही जानते कि "विदेह" जी का पत्र उन्हें पूरे बल से ऋषि घोषित करने में लगा है । आप उनका सारा जीवन "ऋषि" जीवन के विपरीत देख निराश न होइयेगा । यह कलियुग है न, इसमें सभी कुछ उलटा होता है तो ऋषि की परिभाषा भी उलट जाए तो क्या हानि ?

(३) अरे भाई, अब वेद उद्धार की चिन्ता क्यों, क्या आपने नहीं सुना कि वेदों का अपूर्व उद्धारक आ पहुँचा । हमने तो सविता के नवीनतम अङ्क में पढ़ा है कि वेदों के बारे में जितना तप सृष्टि के आदि से आज विदेह जी ने किया उतना किसी ने नहीं किया । क्षमा कीजिएगा, दयानन्द, शंकराचार्य, गौतम, कणाद, वेदव्यास, कपिलादि तो विदेह के समक्ष कुछ नहीं थे और जानिए यह भी, कि भविष्य वाणी हो चुकी है कि ऐसा वेदव्रती भविष्य में भी न होगा । धन्य है कि विदेह जी यह बात तो दूसरी है कि उन्हें संस्कृत, निरुक्त, व्याकरण, दर्शन की ए. बी. सी. डी. भी न आती हो । करना भी क्या है जानकर । उन्हें पढ़े लिखों को वेद नहीं पढ़ाने । पढ़ाने हैं अनपढ़ों को । इसलिए, अनपढ़ों को वेद पढ़ाने के लिये वेद पढ़कर पढ़ाना तो बेकार है, व्यर्थ है, यह हमें समझना होगा । और हे आर्य समाजियो अपने पुस्तकालय से दयानन्द के भाष्य को निकाल आचार्य पद विभूषित, आचार्य कहां के हैं यह ज्ञात नहीं । विदेह जी का महान (?) भाष्य अपने मन्दिरों में स्थापित करो ।

(४) चौथी बात यह कि पत्र में, वाणी में एकता स्थापित करना बन्द करो, यह तो पाप है हां बाहर मीठे, मीठे भीतर विष, यही ऋषि कर्त्तव्य है । कैसे ? एक उदाहरण से समझिये यहीं गाजियाबादमें उनकी कथा हो रही थी, सौजन्यवश हम भी स्टेशन पर भ्रमण करते हुए उनके पास मार्ग में चले गये । मेरी धर्मपत्नी साथ थीं, विदेह जी बोले, माता जी कभी आपने अपने घर के दर्शन नहीं कराये, उत्तर में उनसे घर पर अगले दिन पधार भोजन का निमंत्रण दिया । वे प्रेमपूर्वक आए और भोजन कर चले

(शेष पृष्ठ ५ पर)

हमारे अद्वितीय तीन ग्रंथ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्त्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इसीलिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके है, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४।।)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका - आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार' दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिलकुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े तीन रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्ण से टक्कर लेती है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, ओज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलवीर एवेन्यू देहरादून।

आप के प्रश्न

उत्तरदाता:—महेन्द्र कुमार शास्त्री, देहली

भंवरलाल भाटी, सुसनेर

प्रश्न—हम यह कैसे समझ लें कि परमात्मा या ईश्वर अनादि है। जब कि किसी के होने का कारण या कर्म का कारण अवश्य होता है। तब ईश्वर का अनादि होना कैसे सम्भव है।

उत्तर—भौतिक पदार्थों में कार्य करने की व्यवस्था होती है, परन्तु अनादि प्रकृति में उपभोक्ता जीवों में व्यवस्था रखने के लिए अनादि ईश्वर का होना आंवश्यक है। अनादि ईश्वर का कोई कारण नहीं हो सकता।

विद्याराम वर्मा गोरमी

प्रश्न—क्या सृष्टि ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न हुई ? यदि हाँ, तो क्या ईश्वर में इच्छायें हैं ? यदि नहीं तो किस प्रकार उत्पन्न हुई ?

उत्तर—(१) इच्छा स्वार्थ से होती है और यह जीव का गुण है। परार्थ की दृष्टि से जो जगदादि का निर्माण करता है, उसके कर्म करने की विधि को ईक्षण कहते हैं न कि इच्छा।

(२) सांप, बिच्छुओं का काटा हुआ मनुष्य मंत्रों द्वारा रामकृष्ण, हनुमानादि का नाम लेकर आराम को क्यों पा जाता है ? इनके नामों में कौनसी शक्ति मानी जावें ? क्या ईश्वरीय शक्तिमान ली जावें !

—मंत्र का अर्थ यदि विचार पूर्वक चिकित्सा आदि की जाए तो सर्पादि का विष अवश्य दूर हो सकता है। किसी के भी नाम श्रवण मात्र से विष-आदि दूर नहीं हो सकते तद विषयक कर्त्तव्य आवश्यक हैं।

(३) ग्रहण किस प्रकार पड़ते हैं सूर्य चन्द्र कौन सी चाल से चलते हैं या पृथ्वी किस चाल से चलती है कि सूर्य उत्तराय में और दक्षिणाय में हो जाते हैं ?

—सूर्य चन्द्र पृथिवि आदि नक्षत्र गणों की अपनी अपनी गति से छाया प्रति छाया के कारण ग्रहण आदि एवं सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायण होता है।

(४) मांस किसे कहते हैं ? नित्य प्रति के पानी में भी तमाम कीटाणु नष्ट होते हैं जिन्हें हम पीकर नष्ट करते हैं क्या यह हिंसा नहीं हैं यदि नहीं तो हिंसा क्या है ?

—आत्माभिमानी सुख दुखों का अनुभव करने वाले शरीर धारी जीवात्माओं के खाए हुए अन्न से बने हुए रस और रस से बने हुए रक्त और रक्त से बनी हुई वस्तु विशेष ही मांस कहलाता है। जल और वायु में रहने वाले कीटाणुओं के शरीर प्रयोग करने से कभी नष्ट नहीं होते जैसे कि चूल्हे के नीचे रहने वाले कीटाणुओं के शरीर अग्नि जलने पर भी नष्ट नहीं होते।

विश्वनाथ आर्य, नानपारा

प्रश्न—क्या मृत व्यक्तियों के आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने से उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

उत्तर—प्रार्थना करने से किसी मृत व्यक्ति को शांति नहीं मिलती। यदि उसके कर्म शांति देने वाले हैं तो शांति मिलेगी अन्यथा नहीं !

वेद भाष्यकारों की स्थिति।

(लेखक :—वैदिकगवेषक शिव पूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए० विद्यावाचस्पति, कानपुर)

चारों वेद संहिता ईश्वरीय ज्ञान है और उनकी भाषा वैदिक संस्कृत है। वेद मन्त्रों के अर्थों को समझना एक टेढ़ी खीर है। वेदों को समझने के लिए निरुक्त निघण्टु का पढ़ना अनिवार्य हैं। वर्तमानकाल में महर्षि दयानन्द जी कृत 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' वेदों तक पहुँचने का एक सोपान है।

ऋग्वेद के प्राचीन भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी नारायण, उद्गीथ, हस्तामलक, वेङ्कटमाधव, लक्ष्मण धानुस्कयज्वा, आनन्दतीर्थ, जयतीर्थ, नरसिंह, राघवेन्द्रयति, आत्मानन्द, सायण, रावण, मुद्गल, चतुर्वेदस्वामी, देवस्वामी, भट्ट भास्कर, उवट. हरदत्त, के नाम विशेष उल्लेखनीय है। सबों का भाष्य संस्कृत भाषा में है।+

यजुर्वेद के प्राचीन भाष्य कारों में शौनक, हरिस्वामी, उव्वट, गौरधर, रावण, महीधर, का नाम उल्लेखनीय है।

सामवेद के भाष्यकार माधव, भरतस्वामी, सायण, सूर्य दैवज्ञ, महास्वामी, शोभाकर भट्ट, गुण विष्णु, हैं।

अथर्ववेद के भाष्यकार सायण हैं।

ये तो प्राचीन भाष्यकार हैं। अब **अर्वाचीन भाष्य कारों** को देखिए :—

ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ६१ मंत्र २ तक महर्षि दयानन्द जी ने भाष्य किया है जो संस्कृत और आर्य भाषा दोनों में है।

सायण, उव्वट आदि के भाष्यों में माँस भक्षण, श्राद्ध आदि पौराणिक विचार धाराएँ हैं। सायण ने गौ माँस भक्षण तक का समर्थन किया है। यज्ञ में पशु बलि माना है। महर्षि दयानन्द जी का भाष्य यौगिक और त्रिविध प्रक्रियानुसार है। मैं ने अपनी पुस्तक 'महर्षिदयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन'★ में इस पर ऊहापोह से विचार किया है।

जहाँ तक महर्षि का भाष्य है उसके पश्चात् आर्य समाजी विद्वान् **पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ** जी ने ऋग के ७—८—९ मंडलों का भाष्य आर्य शैली से किया तथा ऋ० ८—९ में मंण्डलों पर महामहोपाध्याय **पं० आर्यमुनि जी ने** भाष्य किया। दोनों ने १० म मण्डल पर भाष्य नहीं किया है। गुरुकुलकांगड़ी के स्नातक **पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार'** मीमांसातीर्थ ने समस्त ऋग्वेद का आर्य भाषा में भाष्य किया है जो आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से प्रकाशित हुआ है। यह भाष्य भी आर्य शैली के अनुसार कहा जा सकता है। जिस समय यह भाष्य प्रकाशित हुआ था उस समय स्वामी कर्मानन्द जी (अब जैन श्रमणक्षुल्लक मुनि) ने प्रबल विरोध किया था। पुनः गुरुकुलकाँगड़ी के स्नातक व वेदोपाध्याय **विश्वनाथ विद्यालंकार** ने संशोधन किया। उसके पश्चात् शायद किसी

+ इन सभी भाष्यकारों का विस्तृतवर्णन पं० भगवद् जी बी० ए० ने अपनी पुस्तक 'वैदिक-वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, खण्डद्वितीय, वेदों के भाष्यकार प्रथम संस्करण पृष्ठ १ से ७२ तक, पं० राम गोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'वैदिक साहित्य' प्रथम संस्करण' पृष्ठ ३८१ से ४०० तक किया है।

★ जयदेव ब्रदर्स. आत्मारामपथ, बड़ौदा से प्रकाशित।

ने विरोध नहीं किया। **राय शिवनाथ अग्निहोत्री** तथा **योगी अरबिन्द घोष** ने भी कुछ सूक्तो का भाष्य आंग्ल भाषा में किया है।

पं० युधिष्ठर जी मीमांसक ने महर्षि दयानदजी कृत ऋग्वेद संस्कृत भाष्य मण्डल १, सूक्त ४६, मंत्र १५ तक का आर्य भाषा में अनुवाद टिप्पणी सहित किया है जो श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर से प्रकाशित हुआ है। अभी प्रथम भाग ही प्रकाशित हुआ है।

महर्षि दयानन्द जी का ऋग्वेद पर जहां तक भाष्य है उसको स्पष्ट करने के लिए अनु भाष्य की परम आवश्यकता है। मीमांसकजी का प्रयास स्तुत्य है। आर्य समाज में कई पंडित हैं जो केवल डींग मारते हैं कि मैं अनुभाष्य करूंगा, यह करुंगा, वह करुंगा और उसके नाम पर रुपया लेकर हज़म कर जाते हैं और दूसरा कोई प्रयास करता है तो उसका प्रबल विरोध करते हैं।

सार्वदेशिक आर्य प्रति निधि सभा वेंदों का भाष्य करा रही है यह प्रसन्नता की बात है पर सर्व प्रथम महर्षि के भाष्य होना चाहिए जैसा आद्यशंकराचार्य जी के शिष्यों ने किया है। यह ठीक है कि महर्षि जी किसी की बुद्धि पर ताला नहीं लगा गए हैं। सभी को अपना २ विचार प्रकट करने का अधिकार है, पर जो व्यक्ति एक अक्षर संस्कृत न जानता हो १० विभिन्न टीकाओं के आधार पर अपनी टीका रचने का ढोंग करता है और आर्य जनता से पैसा ऐंठता है तो उसका प्रबल विरोध होना चाहिए। अजमेर के श्री विद्यानन्द विदेह 'जीवन पर्यन्त पुलिस विभाग में नौकरी किए, संस्कृत में कोरे हैं फिर भी वेद भाष्य का व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। जो सब प्रकार की विद्याएँ (वेदांग, योग, आयुर्वेद, विज्ञान प्रभृति) जानता हो उसी को वेद भाष्य करना चाहिए। जो कोई भी लौकिक व्याकरण के अनुसार वेदों का भाष्य करेगा वह दो कौड़ी का भाष्य होगा। पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद का अनुवाद करने का प्रयास किया है जो उपाहास्पद है। प्रो० मोक्षमूलर ने ऋग्वेद सायण भाष्य का आंग्ल भाषा में अनुवाद किया था।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्त शास्त्री' तथा पं० गौरी नाथझा 'व्याकरणतीर्थ' ने ऋग्वेद का हिंदी भाषा में अनुवाद किया है जिसका प्रथम संस्करण कई जिल्दों में 'वैदिक साहित्य माला सुल्तानगंज (भागलपुर) से प्रकाशित हुआ था। उसमें ऋग्वेद के मन्त्र भी थे और नींचे हिन्दी टीका। अब इण्डियन प्रेस लि० इलाहबाद से 'ऋग्वेद की टीका' हिन्दी में जिल्द में प्रकाशित हुई है जिस पर अनुवादकका नाम केवल पं० रामगोविन्द त्रिवेदी का है। इस में वेद के मन्त्र नहीं हैं, केवल हिन्दी में अर्थ हैं। यह टीका प्रायः सायण का छायानुवाद है और इससे सङ्कुचित पौराणिक विचारधाराएँ हैं।

यजुर्वेद (शुक्ल) पर विद्यावारिधि **पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र** की हिन्दी टीका 'मिश्र भाष्य' से दो जिल्दों में श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई में प्रकाशित हुई थी जो प्रायः महीधर का छायानुवाद है और सङ्कुचित पौराणिक विचार धाराएँ हैं।

वैदिक संस्थान, गुरुकुल वृन्दावन से हिन्दी टीका दो जिल्दों में प्रकाशित हुई है। अनुवादक मण्डल में आर्य समाज के कई पण्डितों के नाम हैं। इस भाष्य का प्रबल विरोध हुआ स्वामी रामेश्वरानन्द जी का 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' काशी तथा पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य का 'दयानन्द सन्देश' दिल्ली में कई लेख विरोध में प्रकाशित हुए थे। पं० धर्मदेव जी ने महीधर के भाष्य से तुलना करके यह सिद्ध किया था कि यह भाष्य महीधर भाष्य का प्रायः छायानुवाद है। आर्य ससाज का यह भी रुपया नष्ट हुआ।

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार का हिन्दी भाष्य दो जिल्दों में आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर से प्रकाशित हुआ है।

महर्षि दयानन्द जी ने सम्पूर्ण यजुर्वेद पर संस्कृत व आर्य भाषा भाषा मेंभाष्य किया है। महर्षि का भाष्य

कैसा है इस पर मैं अपनी पुस्तक 'महर्हि दयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन' में विचार कर चुका हूँ। महर्षि का भाष्य निरुक्त निघण्टु के अनुसार है।

इस भाष्य पर विरोधियों ने प्रहार किया था जिनका उत्तर आर्य समाज की ओर से दिया जा चुका है।

महर्षि के भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु सम्पादक 'वेदवाणी' ने १० अध्याय तक अनुभाष्य टिप्पणी सहित प्रकाशित कराया था। इस पर प्रबल विरोध हुआ। आचार्य विश्वश्रवाः ने साप्ताहिक 'आर्य मित्र' में कई लेख विरोध में लिखे जिसका उत्तर जिज्ञासु जी ने 'आर्य मित्र' के द्वारा दिया। पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार का लेख भी 'आर्य मित्र' में प्रकाशित हुआ था जिसका उत्तर जिज्ञासु जी ने १९४९ के अंकों में ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के विषय में मेरी धारणा' शीर्षक लेख में दिया। श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर ने पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार के द्वारा महर्षि दयानन्द जी के यजुर्वेद-भाष्य और प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के अनुभाष्य की तुलना करवाई जो संवत २००९ ई० में अ० ८ मन्त्र ५८ तक की तुलना १२ पृष्ठ की प्रकाशित हुई। पुनः सं० २००७ वि० में अ० १ से १० तक की तुलना १५९ पृष्ठ की सभा द्वारा प्रकाशित हुई। जिज्ञासु जी पर महर्षि भाष्य में परिवर्तन करने का आरोप किया गया। उन्होंने 'यजुर्वेद भाष्य-विवरण सम्बन्धी पं० जयदेव जी विद्यालङ्कार कृत समालोचना का विवेचन' नामक २० पृष्ठ की ट्रैक्ट द्वारा उत्तरदिया कि उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया है वरन् टिप्पणी में सब बातें देते गए हैं। किसी प्रकार यह विभीषिका शान्त हुई। यह है अनुभाष्य का परिणाम।

सामवेद पर पं० तुलसीराम स्वामी संस्कृत व आर्य भाषा में भाष्य लिख कर प्रकाशित करवाया जो अब अप्राप्य है। इसका किसी ने विरोध नहीं किया।

पं० जयदेवशर्मा विद्यालंकार व आचार्य **पं० वीरेन्द्रजी शास्त्री** एम ए० का केवल आर्य भाषा में भाष्य प्रकाशित हुआ है। **पं० हरिश्चन्द्र** विद्यालंकार का भी 'आर्यभाषा' में सार्वदेशिक प्रेस द्वारा भाष्य प्रकाशित हुआ है। पं० वीरेन्द्र जो और पं० हरिश्चन्द्र जी दोनों के भाष्यों में पदच्छेद नहीं है जो पं० विश्वश्रवाः जी के शब्दों में **रनिंग** (Running) भाष्य है। पं० चमूपति जी एम. ए. ने सामवेद का कोई भी भाष्य नहीं लिखा है। उन्होंने **'साम-सरोवर'** एक पुस्तक अवश्य लिखी थी जिस में 'सामवेद' में कुछ मंत्रों का अनुवाद है। इस 'सोम-सरोवर' का प्रबल विरोध **पं० प्रियरत्नजी आर्ष** (अब स्वामी ब्रह्ममुनि जी) ने अपनी पुस्तक **'सोम-सरोवर का स्नान'** में किया था। आपने सैद्धांतिक दृष्टिकोण से बहुत सी अशुद्धियों का निर्देश किया था।

अथर्ववेद पर **पं० राजा राम शास्त्री, पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी और पं० जयदेव शर्म विद्यालंकार पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर** का भाष्य आर्य भाषा में प्रकाशित हुआ है। **ह्विटनी और लांगमैन** का आंग्ल भाषा में अनुवाद है। **ग्रिफिथ ने** आंग्लन भाषा में दो भागों में अनुवाद किया है।

पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी और पं० जयदेव शर्मा के भाष्य का विरोध प्रायः नहीं हुआ। सातवलेकरजी के भाष्य में मृतक श्राद्ध आदि पौराणिक विचार धाराएँ हैं। पं० राजा राम शास्त्री के भाष्य का भी विरोध हुआ था। विद्वानों ने सिद्ध किया था कि इनका भाष्य प्रायः ग्रिफिथ के भाष्य का छायानुवाद है। शास्त्री जी ने कई ग्रन्थों का अनुवाद किया था पर प्रायः उनके अनुवाद में सैद्धान्तिक दोष है। जब तक कोई प्रमाणिक भाष्य नहीं प्रकाशित होता तब तक त्रिवेदी जी का भाष्य माननीय हो सकता है।

अब आर्य समाज में वेद भाष्य करना टेढ़ी खीर है। कोई स्वतन्त्र विचार से अपना भाष्य प्रकाशित

(शेष पृष्ठ १२ पर)

टके सेर मुक्ति

एक सज्जन लिखते हैं कि ''मैं एक ईसाई पादरी से हिन्दी सीखता हूँ वार्तालाप के दौरान में वे कहते हैं कि ''मुक्ति हजरत ईसा और बाइबल पर विश्वास लाने से ही प्राप्त हो सकती है वेदों में मुक्ति है ही यदि हो तो कोई मंत्र दिखाओं।''

इस प्रश्न के उत्तर में मैं अपने भाई की बतलाना चाहता हूं कि "मुक्ति" किसी मजहब में है कि नहीं सिवाय "वैदिक धर्म" के इस विषय में सत्यार्थ प्रकाश का ६वां सम्मुलास तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का "मुक्ति विषयक" प्रकरण देखना आवश्यक है जहाँ अनेक प्रमाण तथा युक्ति में दी गई है वेद प्रकाश में इतना स्थान नहीं कि इस विषय को विस्तार से दिया जा सके ।

"मुक्ति" विश्वास भाव से प्राप्त नहीं होती, विश्वास भी वास्तविकता में करनी चाहिए, केवल विश्वास अन्धविश्वास कहा जायगा अन्धविश्वास से मनुष्य ठगे जाते हैं यह हम प्रत्यक्ष नित्य व्यवहार में देख रहे हैं, सोना और पीतल एक हीं रंग के होते हैं धूर्त और ठग पीतल के गहने अथवा पीतल की डली बनाकर सोना कहकर भोले भाले लोगों के हाथ बेच जाते हैं, पीछे से लेने वाले प्राय: पछताया करते हैं, ऐसे वैकुण्ठ और मुक्ति की बात है ।

ईसाईयों कि अपेक्षा पौराणिक हिन्दुओं में मुक्ति सस्ती है, गंगा, जमुना का नाम सैकड़ों हजारों मील दूर बैठे लेने से मुक्ति होगी, रास्ते चलते दूर से मूर्ति के आगे नमस्कार करने से मुक्ति होगी, पीपल, तुलसी आदि वृक्षों पर जल डालने से मुक्ति होगा, चौराहे पर गोबर पर लाल सिन्दूर तथा चावल और दीवा जलाने पर नमस्कार करने पर मुक्ति होगी। ईसाई और मुसलमानों की अपेक्षा पौराणिकों में मुक्ति सस्ती है यदि विश्वास मात्र से ही मुक्ति लेनी है तो अन्य मतवालों की अपेक्षा हिन्दू पौराणिकों की बातों पर ही विश्वास लाइये ।

वास्तव में मुक्ति के विषय को जानने के लए ऋषि कृत ग्रन्थों को पढ़िये । (सम्पादक)

(पृष्ठ ११ का शेष)

करता है तो उसका उत्तर दायित्व उसके ऊपर है न कि आर्य समाज के ऊपर । आर्य समाज पर तो केवल महर्षि दयानन्द जी के भाष्य का उत्तर दायित्व है। परोपकारिकी सभा तो सुना रेलवे का कागज छापती है। यदि यह बात सही है तो महर्षि भाष्य का बढ़िया संस्करण कैसे प्रकाशित होगा ?

वेदों पर पाश्चात्य व उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले भारतीय विद्वानों के बहुत से आक्षेप हुए हैं और हो रहे हैं। आर्य समाज को उन सभी आक्षेपों का सप्रमाण, युक्ति युक्त उत्तर विद्वानों से दिलवाना चाहिए। आज का आर्य समाज तो संस्थावाद में फंसा हुआ है। आर्य समाज में नवयुवकों के लिए कोई आकर्षण नहीं है। उनको सदस्य नहीं बनाया जाता है, केवल लकीर पीटी जा रही है और वेद भाष्य के नाम पर, कोई ब्राह्मणग्रन्थ के भाष्य के नाम पर, कोई अनुभाष्य लिखने के नाम पर व्यक्तिगत रूप से आर्य जनता से पैसा ऐंठता है ।

यजुर्वेद भाषाभाष्य

इस संस्करण को उच्चकोटि के ८ आर्य विद्वानों ने ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य को लेकर सरल और सुबोध भाषा में सम्पादन किया है जिसे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने उत्तम कागजों पर प्रकाशित किया है, दो भागों में कपड़े की सुन्दर जिल्द सहित मूल्य ६) डाक खर्च प्रथक है शीघ्र मंगाकर स्वाध्याय आरम्भ करें।

ऋग्वेद रहस्य

लेखक-आर्य विद्वान् श्री अलगुराय शास्त्री एम०पी०

वेदों के सम्बन्ध में जितने भी भ्रामक विचार पाश्चात्य शिक्षा में रंगे विचारकों ने फैलाये हैं सब के भ्रम को दूर करने का प्रयास किया गया है। वेद-ज्ञान प्राप्त करने के लिये पढ़ने योग्य पुस्तके हैं। ७२० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ५)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या

(गतांक से आगे)

आर्य जनों का कर्त्तव्य है कि वे वर्णाश्रम के कर्म्मों को, सोलह संस्कारों को, मातृ-कर्त्तव्य को और पितृ-कर्त्तव्य को पालें; पुत्रपन के धर्म्म को पूर्ण रीति से निभायें, पति-पत्नी के कर्तव्यों को पवित्रता से पालें। बन्धु-भावना में, मैत्री कर्म्म में, और जातीय जीवन में दोष और त्रुटि न आने दें। आर्य्य धर्म्मी का व्यवहारिक, परमार्थिक, सांसारिक और परिवारिक जीवन उच्च हो, आदर्श हो, और सर्वाङ्ग सुन्दर हो, जिससे अन्य धर्म्मावलम्बी भी आप ही आप आर्य्य धर्म्म में खिंचे चले आयें।

पाँचवें व्रतके व्रतियों को उचित है कि अपने व्यापार में, अपनी जमींदारी में और नौकरी चाकरी में सच्चे रहें और किसी पर अन्याय न करें, किसी के साथ पक्षपात से न वर्त्तें। चापलूसी में न फंसें। न किसी को घूस दें और न किसी से लें। आर्य्य जनों का आचार ऐसा हो कि लोग उसका प्रमाण दिया करें। वे ऐसे सत्यवादी और विश्वास-पात्र हों कि अन्य जन उनको मध्यस्थ मानने में अपना मान मानें। आर्य्य व्रती स्पष्टवक्ता, प्रण का पूरा और यथानियमकारी अवश्य हो। वह दया, करुणा और सहानुभूति प्रदर्शित करे। अतिथियों और आगन्तुकों का आदरातिथ्य करें; अधिकारियों को दान, मान और दक्षिणा आदि से पूजे।

छठा नियम

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

इस—आर्य—समाज का मुख्योद्देश्य—इसकी स्थापना का प्रधान—वास्तविक—प्रयोजन वा लक्ष्य संसार—जनता—का उपकार करना है। और यह उपकार तीन प्रकार का है—संसार की शारीरिक उन्नति करना। इस नियमों में आत्मिक उन्नति के अनन्तर सामाजिक उन्नति इसलिये रक्खी गई है कि आत्माकी उन्नति के बिना समाज की उन्नति कदापि नहीं हो ककती।

इस छठे व्रत के दीक्षितों को मन में विचारना चाहिए कि यह जगत् परस्पर उपकार के बन्धन में बंधा हुआ है। एक लोक अपने आकर्षण से दूसरे लोक को थाम रहा है—धारण कर रहा है। प्रत्येक लोक का अस्तित्व किसी दूसरी वस्तु के लिए है। सूर्य का होना जो कुछ उसके अपने आपके लिए होगा, सो तो आज तक किसी को ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु असंख्य जीव-जन्तु उसकी ज्योति से जीवन-लाभ करते हैं, इसे सुजान-अजान सभी जन जानते हैं। यही अवस्था चन्द्रलोक की है। तारा मण्डल में भी परार्थ होने का नियम कर रहा है। हमारी अपनी पृथ्वी भी कोटि कोटि मन बर्फ जो अपने सिर पर उठाये रहती है, वह इसीलिए न कि नदियों और स्रोतों को जन्म देकर अन्न-जल, फल-फूल, कन्द-मूल और साग-पात आदि से जगत् का लालन-पालन करे। नाना फलों और फूलों से लदे हुए पेड़ और बेल-बूटे जंगम-जगत के लिए एक सुन्दर रसोई घर बने हुए हैं। इन स्वाभाविक पाकशालाओं से स्वादु और रसयुक्त भोजन क्या कहीं अन्यत्र तैयार किये जा सकते हैं? और क्या ये भोजनागार—अन्नपूर्णा के भण्डार—परार्थता और परोपकार-कर्म का उपदेश नहीं दे रहे हैं? दिन के समय वनस्पति-जगत यदि जंगम-जीवों को प्राण-पवन प्रदान न करे तो इनका सर्वनाश होने में सन्देह ही क्या है। वनस्पतियों को भी अपने प्राणों के लिए ऐसी ही

पवन के अर्थ परापेक्षा करनी पडती है । यदि विवेक-बुद्धि से अवलोकन करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक तुच्छातितुच्छ जन्तु के जीवन के लिए भी सारा ब्रह्माण्ड अपना बल लगा रहा है–अपने को बलि बना रहा है । सूर्य का देदीप्यमान होना, तारागण का चमकना, चांद की चांदनी, बदली की बूंदें, मेघ का बरसना, नदियों का बहना, स्रोतों का स्रवन, पवन का स्पन्दन और वनस्पति आदि का अस्तित्व एक क्षुद्र कीट के लिए भी उतना ही उपयोगी और आवश्यक है जितना कि एक मनुष्य के लिए । इस परार्थ होने के अटूट तार में अखिल लोक लोकान्तर ओत प्रोत हैं । और यह रचना मनुष्य को परोपकार के मूल मन्त्र का उपदेश दिन रात दे रही है ।

हमारे तन-मन्दिर की रचना भी परार्थ अस्तित्व वाद का ही एक उदाहरण है । इसके सभी अवयव अन्योन्याश्रित हैं । इस पर प्रत्येक अंग दूसरे के लिए ही अपनी क्रिया करता है । अपने किये कर्म के फल को दूसरे के पास भेजता है । एक मोटे से दृष्टांत से देह-क्रिया में परार्थ अस्तित्ववाद का—परार्थ-कर्म और परोपकार का–कितना उत्तम भाव प्रदर्शित किया है, यह विषय विचार के ही साथ संबन्ध रखता है । जब किसी स्वादु फल को, उत्तम भोजन को आँख देखती है, तब वह उसका समाचार मस्तिष्क-मन्दिर में रहने वाले ज्ञानी प्रेरक को पहुंचा देती है । वहां से बिजली का तार तत्काल हाथ के नाम आ जाता है कि अमुक स्वादु, अनुकूल और इष्ट पदार्थ को विधिपूर्वक तोड़ मरोड़कर, काट बनाकर होठों के द्वार तक पहुंचा जाओ । जब वह वस्तु ग्रास-परिणाम में ओष्ठ-द्वार पर जाती है, तब वह उसे धकेल कर दांतों को दे देता है । वे इसे जीभ को सौंपते हैं । वह इष्ट और अनिष्ट का निर्णय करके उसे पीसने के लिए जबड़ों की चक्की में डाल देती है । पीसने की क्रिया में वह आप भी सहायता करती है । यद्यपि सारे तन में एक मात्र रसना ही रस की, स्वाद की, लोलुपा—लोभिन–है, तो भी परार्थ अस्तित्ववाद को वह इतना मानती है कि पिसकर मलाई समान बने हुए उस ग्रासको, उसी क्षण, गले की नाली से उदर देश में जाने के लिए विदा कर देती है । वहाँ आशामय उसे खट्टे मीठे रसों में भली भाँति मिलाकर उसका मिश्रण तैयार करता है । फिर उसका रस निकालने के लिए उसको अपने मन्दिर-द्वार से बाहर कर अंतड़ियों के कोल्हू में डाल देता है । अंतड़ियाँ जिस जिस निर्मल रस को निकालती हैं, उसे अपने पास नहीं रखतीं, वरन् गाड़ी में सवार कर हृदय-देश की ओर भेज दिया करती हैं । हृदय-यन्त्र में पहुंचकर वही रस रक्त का रूप धारण कर लेता है । उस समय वह सारे अंगों के लिए पोष्य पदार्थ बन जाता है । यद्यपि हृदय उसी रक्त से पोषण पाता है जिसे वह बनाता है, परन्तु उस समय वह उसकी एक बूंद भी अपने पास नहीं रख लेता । लालोलाल बनाकर, सारे रस को, नखसे शिखा तक बसी हुई अपनी जाति के लिए, बँटने को बाहर भेज देता है । फिर बाहर से भागानुसार जो अंश उसके पास लौटकर आता है–उसे मिलता है—उसी पर वह सन्तोष से निर्वाह करता है । परन्तु स्वार्थ को पास तक फटकने नहीं देता । परार्थ अस्तित्व का, परार्थ क्रिया का, और परोपकार कर्म का इससे बढ़कर उदाहरण मिलना नितान्त दुर्लभ है ।

जहाँ पीछे आर्य-समाजियों का परम धर्म वेद कहा है, तो इस नियम में उनका उद्देश्य परोपकार करना बताया है । परम धर्म का अधिक सम्बन्ध धार्मिक व्यक्ति के साथ है और संसार का उपकार रूप उद्देश्य जनता के साथ सम्बन्ध रखता है । ये दोनों नियम आर्य समाज का जीवन और प्राण, धर्म और कर्म, परलोक और इहलोक, तथा मन्तव्य और कर्तव्य कहे जा सकते हैं । तीसरे नियम में जहां आर्य समाज के धर्म को सुनिश्चित कर दिया है, वहाँ इस छठे नियम ने उसके उद्देश्य को, कार्य-क्षेत्र को, और कर्तव्य-कर्म को अति स्पष्ट रूप से बता दिया है ।

छठे नियम का पालन करने वाले आर्य को साधनशील होना चाहिए । शारीरिक उन्नति के साधनों को वह आगे लिखी विधि से उपभोग में लावें । क्रमशः

वेदप्रकाश के इस वर्ष के उपहार की पुस्तकें

८) रुपये में सर्वोपयोगी निम्न ६ पुस्तकें केवल ४) रुपये में,

(डाक खर्च अलग)

१—आर्य सिद्धान्त दीप

लेखक : - श्री मदनमोहन विद्यासागर (स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का बहुत ही सरल रीति से संकलन किया गया है जिससे अल्प प्रयास से ही वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के सम्पादन व संशोधन करने में आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों से सहयोग एवं परामर्श लिया गया है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितनी उपयोगी है, मूल्य १।)

२—संस्कार विधि विमर्श

लेखक :—श्री पं० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न (गु. का.) अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि में वर्णित १६ संस्कारों पर आयुर्वेद परक व्याख्या और प्रजा शास्त्र के आधार पर लिखी गई पहली पुस्तक है।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट भाग में प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग भी दिए गये हैं जिससे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य ३)

३—वेद परिचय

लेखक :– वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती।

वेद हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसका परिचय प्राप्त करना प्रत्येक का परम कर्तव्य है। इस में वेद विषयक जानने योग्य अनेक आवश्यक बातें हैं। मूल्य ।=)

४—वैदिक सन्ध्या और उसका रहस्य

सन्ध्या विषयक पद पदार्थ तथा भावार्थ सहित उत्तम पुस्तक। मूल्य ≡)

५—स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

लेखक :—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषगरत्न

राष्ट्र एवं प्रजोत्पादन के लिए स्त्रियों का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। इस ओर असावधान रहना बहुत ही हानिकारक है।

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी अनेक सरल प्रयोग भी दिये गये हैं। जिससे गृहस्थ के अतिरिक्त वैद्य और डाक्टर भी लाभ उठा सकें। मूल्य ३)

६—उपासना योग के आठ अंग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा संशोधित

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, विषयक मनन करने योग्य उत्तम गुटका पुस्तक है मूल्य ≡)

वेद प्रकाश का नवीन वर्ष इसी अंक से आरंभ हो रहा है। ग्राहक नं० २१०० तक के प्रायः सभी ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो चुका है। कृपा कर आगामी वर्ष का चन्दा २) तथा उपरोक्त ८) रुपये की ६ पुस्तकें लेना चाहें तो उसके रियायती मूल्य के ४) रुपयें मिलाकर ६) का मनीआर्डर तुरंत भेज उपहार की पुस्तकें मंगा लेवें। जो उपहार की पुस्तकें न लेना चाहें वे वेदप्रकाश का चन्दा २) रुपये भेज कर ग्राहक बने रहें। जिनके चन्दे समाप्त नहीं हुए हैं वे भी उपहार की पुस्तकें मंगा सकते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

हमारे सस्ते प्रकाशन की आर्य जगत में धूम

पाँच नई पुस्तकें, धड़ाधड़ बिक रही हैं

यजुर्वेद भावार्थ प्रकाश

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कृत सम्पूर्ण यजुर्वेद पर केवल हिन्दी भावार्थों का संग्रह। सफेद कागज, ३०० पृष्ठ, २५ लेने पर मू० ॥≡)

इस ग्रन्थ की आर्य जगत में सर्वत्र प्रशंसा हुई है।

ऋषियों के उपदेश

अनेक ऋषियों के सैकड़ों धार्मिक उपदेशों का संग्रह। आर्य युवक संघ दिल्ली इसका लाखों की संख्या में प्रचार करना चाहता हैं तभी तो इस ६८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ५) सैकड़ा रक्खा है।

धड़ाधड़ बिक रही हैं

वैदिक ज्ञान भण्डार का मूल यज्ञ

वैदिक सम्पत्ति के लेखक ने—यज्ञ के सम्बन्ध में बड़ा ही खोजपूर्ण अध्याय लिखा था उसे ही छापा है। बढ़िया कागज १०० पृष्ठ २५ लेने पर ।)॥

दैनिक यज्ञ प्रकाश

अब तक १॥ लाख से अधिक छप गया। मू० ५) सैकड़ा, ५०० लेने पर नाम भी छापवे हैं।

ऋषि अर्चन

कट्टर सनातनी कविके महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति हार्दिक उद्‌गार है पूज्य श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी ने तो इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की है। मूल्य =) २५ लेने पर −)॥। में

१—सामवेद (मूल और हिन्दी भाष्य)	२)
२—संस्कार विधि मूल्य	।॥−)
३—आर्य समाज क्या है	।)
४—आर्य सभ्यता	।−)।
५—विदुर प्रजागर	१)
६—नारद नीति	।)
७—कणिक नीति	≡)
८—भोज प्रबन्ध	२।)
९—ऋषि दृष्टान्त प्रकाश	=)
१०—ईसाइयों के देश में	=)
११—आर्याभिविनय	।)
१२—आर्य नेताओंके व्याख्यान	≡)
१३—सीनेमा या सर्वनाश	=)
१४—सांख्य दर्शन	॥।)
१५—उपनिषद् सुधासार श्री स्वामी ब्रह्ममुनि कृत	२।)
१६—व्यवहार भानु	=)
१७—किस की सेना में भरती होगे कंस की या कृष्ण की	।)
१८—योगासन (८४ आसनों के चित्रों सहित)	।)
१९—रजिस्टर चन्दा और सभासदों का	१)
२०—रसीद बुक चन्दा	१)

दैनिक तिथि प्रकाश (आर्य डायरी १९५७) छप रही है। अभी से आर्डर भेजें। मू० ।।=) ५० लेने पर ॥) में देंगे। तुरन्त लिखें।

सैंकड़ा के भाव सस्ते ट्रेक्ट

१—ऋषि की सुनो	१।) सै०
२—खान पान	१।) ,,
३—ईश्वर	१।) ,,
४—स्वमन्तव्या मन्तव्य	१।) ,,
५—पुरुषार्थ करो	१।) ,,
६ आर्योद्देश्यमाला	२) ,,
७—ब्रह्मचर्य साधन	२।) ,,
८—गो करुणा निधि	४) ,,
९—गो हत्या और सरकार	२।) ,,
१०—प्रजापालन	३।।) ,,
११—वेदामृत	२) ,,
१२—प्रवेश पत्र	१) ,,

मुफ्तः—आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली के निर्माता सर्वस्व दानी ला० दीवानचन्दजी की जीवनी मुफ्त मंगाइये।

सार्वदेशिक प्रेस, पटौदीहाऊस, दरियागंज दिल्ली।

मनुष्य के कर्त्तव्य

(लेखक—महात्मा नारायण स्वामी)

एक विद्वान् का कहना है कि मनुष्यको अपना जीवन संसार में इस ढंग से व्यतीत करना चाहिए कि जब वह दुनियां को छोड़े तो दुनियां का जितना हर्ष-समुदाय है, जगत के उल्लास का जितना जोड़ है, उसमें उसे कुछ वृद्धिकरके जाना चाहिए। यदि हम वृद्धि करके जाते हैं तो समझ लो कि हमने धर्म का जीवन व्यतीत किया, परन्तु यदि हम दुनियां की हर्ष की मात्रा कम और शोक की मात्रा को बढ़ा कर दुनियां को छोड़ते हैं तो सभी स्वीकार करेंगे कि हमने धार्मिकता का जीवन व्यतीत नहीं किया, धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है कि उसकी तय्यारी की जाय। कोई काम तय्यारी किए बिना नहीं हुआ करता, इसलिए उसकी तय्यारी ही करनी होगी तय्यारी का उपाय यह है कि एक मनुष्य की हैसियत से हमें सोचना चाहिए कि हमारे कर्त्तव्य क्या हैं। यदि हम उन्हें समझ कर उन्हें पूरा करने का यत्न करेंगे, तो यह न केवल तय्यारी होगी अपितु तय्यारी के साथ हर्ष की मात्रा में वृद्धि इस उद्देश्य की पूर्ति का क्रियात्मक साधन भी होगा।

मनुष्य के कर्त्तव्य—

मनुष्य के कर्त्तव्य संक्षिप्त रीति से, यदि कहा जाय तो तीन भागों में विभक्त हो सकते हैं, वे विभाग ये हैं:-

(१) मनुष्य को, अच्छा मनुष्य बनने के लिए, अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिये।

(२) उसके दूसरे प्राणियों के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं।

(३ ईश्वर के सम्बन्ध में उसे क्या करना चाहिये।

इन्हीं को दूसरे शब्दों में (१) शारीरिक, (२) सामाजिक और (३) आत्मिक उन्नति कहते हैं। कर्त्तव्य के इन विभागों का कुछ विवरण देना उचित है; ताकि जिससे सभी को उनका ज्ञान हो सके :--

कर्त्तव्य का पहला विभाग—

पहला कर्त्तव्य--इस विभाग में, मनुष्य को अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिए, इस पर विचार करना होगा। उन्हीं का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है:-

(१) पहला कर्त्तव्य, अपनी इन्द्रियों को बलवान बनानाहै मनुष्यका बाह्यस्थूल-शरीर पांव से शिर तक इन्द्रियमय है। फलतः इन्द्रियों को बलवान बनाने के अर्थ यह हुए कि बाह्य शरीर को बलवान बनाना। शारीरिक बल प्राप्त करने की प्रत्येक को इतनी चिन्ता रहती थी

कि चार आश्रमों में से पहले आश्रम में विद्याध्यन के सिवा ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने को बलवान बनाना मुख्य कर्त्तव्य था। इस देश की माताऐं, यदि उनसे निर्बल संतान पैदा हो जाय तो उसे अपने लिए घातक समझती थीं। महाभारतमें एक जगह आया है कि सप्तऋषि, जिनमें अरुन्धती नाम वाली एक ऋषिका भी थी, यात्रा कर रहे थे। एक सरोवर से कमल के डँठल तोड़ कर उन्होंने एक जगह रखे परन्तु उन्हें वहाँ से कोई उठा ले गया। जब ले जाने वाला कोई दिखाई नहीं दिया तो फिर एक दूसरे पर, सन्देह होने पर यह ठहरा कि प्रत्येक अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कस्म खाये उस मौके पर देवी अरुन्धती की कस्म यह थी—"अभोग्याऽवीर सूरस्तु बिसरस्तेये करोति या" अर्थात जो पाप माता को अनाचार करने और निर्बल सन्तान पैदा करने से लगता है, वही उसको लगे, जिसने इन डंठलों को चुराया हो। स्पष्ट है कि उस समय माताऐं निर्बल संतान पैदा करने को, अनाचार और चोरी करना जैसा घातक समझती थीं। इसलिए निर्बलता को घातक समझते हुए, शारीरिकोन्नति प्रत्येक को करनी चाहिए।

दूसरा कर्त्तव्य–अपने को पवित्र बनाना पवित्रता से बल का दुरुपयोग नहीं हुआ करता। इन्द्रिय और मन में, पवित्रता का संचार होने से मनुष्य सदाचारी बना करता है। पवित्रता के लिए मन का शुद्ध होना अनिवार्य है। मन, शुद्ध अन्न के सेवन और सत्य के क्रियात्मक प्रयोग से शुद्ध हुआ करता है। छल और कपट से पैदा किया हुआ अन्न, मन को दूषित कर दिया करता है। संस्कृत में कहावत है—"यथा अन्नं तथा मनः"

तीसरा कर्त्तव्य–अपने को अच्छा बनानेके लिए मनुष्यकातीसरा कर्त्तव्य यह है कि वह अपने अन्दर श्रद्धा के भावपैदा करे। श्रद्धा, यास्काचार्य्यके निर्वचनानुसार, "श्रतसत्यं दधाति या सा श्रद्धा" सचाई का धारण करना है। सचाई का ज्ञान और चीज़ है, सचाई का धारण करना दूसरी चीज़। सचाई का ज्ञान रखने से मनुष्य सचाई पर अमल करने के लिए बाधित नहीं होता परन्तु सचाई के धारण कर लेने से, अर्थात् स्वाद चखने के सदृश, उसके अनुभव कर लेने से, वह उस सचाई के विरुद्ध अचम्भा न कर सकने के लिए मजबूर हो जाता है।

कर्त्तव्य का दूसरा विभाग—

मनुष्य को दूसरों के प्रति क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में उसके कर्त्तव्य इस प्रकार हैं:—

१. अपने हृदय में उसे किसी के लिए भी ईर्षा और द्वेष के भाव नहीं रखने चाहिएँ। इन भावों के रखने से किसी दूसरे को हानि हो या न हो, यह तो संदिग्ध है, किन्तु यह निश्चित् है कि इनसे उसका हृदय मलिन हो कर किन्हीं अच्छी बातों के सोचने और विचारने के योग्य नहीं रहता।

२. मनुष्य नास्तिक हुए विना किसी दूसरे को तकलीफ नहीं दे सकता। ईश्वर व्याप्त-कत्व से सभी मनुष्यों के "शरीरों में व्याप्त" रहता है। जब प्रत्येक प्राणीके शरीर में ईश्वर मौजूद है, तब उस का निरादर किये विना कैसे उसके निवास-मन्दिर को कोई तोड़-फोड़ सकता है ? यही निरादर तो नास्तिकता है।

३. मनुष्य को दूसरों की भी उतनी ही चिन्ता करनी चाहिए जितनी कि वह अपनी करता है। उसे अच्छी तरह से यह बात समझ लेना चाहिए कि उसकी उन्नति का रहस्य अन्यों की उन्नति में छिपा हुआ है।

कर्त्तव्य का तीसरा विभाग—

ईश्वर-प्रेम और ईश्वर-विश्वास से मनुष्य अपने आत्मा को बलवान् बना सकता है। ईश्वर के जानने के लिए, अपने को पहले जान लेना आवश्यक है। क्यों ? इसलिए कि ईश्वर-ज्ञान-प्राप्ति इन्द्रियों के द्वारा नहीं हुआ करती। इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने बाह्य नियमों की ओर है और इसीलिए वे अपने बाह्य विषयों के सिवा, अन्य कुछ नहीं देख सकते और इसीलिए उन्हें बहिरमुखी कहा जाता है। इनके विपरीत आत्मा, अन्तर्मुखी होने से, अपने को भी देख सकता है और भीतर मौजूद परमात्मा को भी देख सकता है। यदि वह अपने को नहीं देख (जान) सकता होता तो फिर परमात्मा को किस प्रकार देखसकता ? इसीलिए अपने को जान लेने की शिक्षा, विद्वान्, जगत के प्रारम्भ से अब तक, बराबर देते चले आये हैं। "Know thy-Self"प्रसिद्ध कहावत है। स्पिनोता ने एक जगह लिखा है कि "जिस व्यक्ति को अपना और अपनी भावनाओं का ज्ञान है, उसके लिए, स्वीकार करना पड़ेगा, कि वह परमात्मा से प्रेम करता है। जब हम कहते हैं कि परमात्मा का ज्ञान हमें है तो इसका केवल अभिप्राय इतना होता है कि हम उसे जानते हैं जो हमारे कल्याण के लिए आवश्यक है। उसे ठीक-ठीक जान लेना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। एक उर्दू के कवि ने लिखा है और बहुत अच्छा लिखा है:—

क्या तुरफा है खूबी मेरे महबूब की देखो।
दिल में तो वह आता है, समझ में नहीं आता॥

हमें क्यों उसके जानने अथवा उसे प्रेम करने की ज़रूरत है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए निम्न पंक्तियां विचारणीय हैं—

संसार में शांति, मनुष्यों में भ्रातृ-भाव बिला लिहाज रंग, नसल और देश समस्त देशवासियों को प्रेम के एक उत्कृष्ट सूत्र में बांधे रखने का कारण और एकमात्र कारण, वास्तविक आस्तिकता है। वेद में इस बात को असंदिग्ध शब्दों में कहा गया है कि "इस पृथिवी पर बसने वाले समस्त मनुष्यों का एक विशाल परिवार है, जिनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा, अपितु सब भाई हैं उन सबका पिता ईश्वर और उन सबकी माता

पृथिवी है *।" वेद प्रतिपादित, इस सार्वत्रिक भ्रातृभाव का अनुभव,मनुष्य उसी समय कर सकता हैं, जब पहले ईश्वर के सार्वत्रिक पितृभाव का विश्वास उसे हो जाय। इसी विश्वास को पहले आजाने की जरूरत है। ईश्वर के प्रेम का प्रारंभिक रूप वह होता है, जब मनुष्य के हृदय में ईश्वर-विश्वास का सूत्रपात हुआ करता है। यह विश्वास बढ़ते बढ़ते निश्चयात्मक ज्ञान का रूप धारण कर लेता है और तभी प्रेम का उत्कृष्ट रूप प्रादुर्भूत होता है। उस में प्रेमी प्रियतम के रूप में मग्न होकर अपनी सुधबुध भुला देता है। यही प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था भक्ति है। भक्ति की भावना में भक्त केवल स्वयं ही शांत और प्रसन्नवदन नहीं रहता अपितु अपने संपर्क में आने वाले प्राणीमात्र के आह्लाद का कारण बन जाता है। यह निश्चित् है कि संसार के अधिकतर प्राणी ऐसे नहीं हो सकते, परंतु यदि ध्येय सब का यही हो जाय तो जो कोई इस मार्गमें जितना भी चलेगा, वह उतने ही से, सुख और शाँति के साम्राज्य की वृद्धि का एक दरजे तक अवश्य कारण बनता जायगा। इसलिए आस्तिक भावना आज भी पुराने ढांचे की त्याज्य वस्तु नहीं, अपितु जीती जागती, संसार के वर्तमान अशांति रूपी रोग की एक मात्र चिकित्सा है। फलतः अशांति से पीड़ित, संसारी पुरुष को, चाहे वे योरोप में निवास करते हों या एशिया में, खुशी और ना खुशी से इस चिकित्सा विधि का सेवन करना ही पड़ेगा। अस्तु, यह बात कही जा चुकी है कि सब चिकित्सा-विधि के सेवन रूप ईश्वर विश्वास से मनुष्य का आत्मा बलवान बना करता है। अब हम यहाँ यही बतला देना चाहते हैं कि किस प्रकार आत्मा में शक्ति और बल आया करता है? इसके मुख्यतया पाँच साधन हैं :—

पहला साधन—

आत्मा के प्रतिकूल कार्यों से बचना और आत्मानुकूल कार्य्यों का करना।

प्रतिकूल कार्य्यों से निर्बलता और अनुकूल कार्य्यों से आत्मा में सरलता आया करती है। ईश्वर के दिव्य गुण एक से लेकर अन्त तक, प्राणीमात्र के कल्याण के लिए काम में आया करते हैं। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि यथासंभव, वह उनमें से जितने गुणों को भी अपने आत्मा में ला सके, लाये। आत्मा के प्रतिकूल कार्य्य वही होते हैं जिनसे अन्यों को कष्ट पहुँचे। ईश्वरीय गुणों के अनुगमन से वह ऐसे ही कार्य्य कर सकेगा जो आत्मानूकूल हैं,और किसी को भी कष्ट देने वाले न हों। गुणों को अपने अन्दर लाने का साधन जप है। इसलिए दैनिक जप में कुछ समय अवश्य प्रत्येक व्यक्ति को लगाने का यत्न करना चाहिए।

---

* अज्येष्ठासो अकनिष्ठासएते सं भ्रातरो वावृधुः सौभागाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एपां सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥
ऋग्वेद ।५।६०।५

दूसरा साधन—

आत्म निरीक्षण (Self-inspection) से मनुष्य के भीतर से वे सारे कार्य्य, जो आत्मा के प्रतिकूल होते हैं आत्म-निरीक्षण का अभिप्राय यह है कि मनुष्य किसी खास समय दूसरों पर ध्यान न देकर केवल अपने कृत्यों पर विचार किया करे और उन कृत्यों में, जो उसे मालूम हों कि दुष्कृत्य हैं, उन्हीं के छोड़ने का निश्चय परमात्मा को साक्षी करते हुए, कर लेना चाहिये और फिर उस निश्चय को बराबर स्मरण करते रहना चाहिये। सोते समय यह काम अधिक से अधिक उत्तम रीति से किया जा सकता है। फलतः प्रति दिन उसी समय २० मिनट इस कार्य्य में लगाने चाहियें। इसका फल यह होगा कि अनेक दुर्गुण और कुकृत्य उससे छूटते रहेंगे। जप से जहाँ मनुष्य में अच्छे गुण आया करते हैं, आत्म-निरीक्षण से वहाँ उसके अन्दर से दुर्गुण निकला करते हैं।

तीसरा साधन—

आत्म-बल वृद्धि का तीसरा साधन तप है। तप कहते हैं कठोरताओं के सहन करने को। कठोरताओं को सहन करने से मनुष्य के भीतर साहस की वृद्धि होती है, जिससे उसे कोई कष्ट, कुण्ठित नहीं कर सकता। आरामतलब आदमी सदैव दुख उठाया करते हैं। परन्तु तपस्वी और अपनी ओर से प्रसन्नता के साथ-साथ दुखों को सहन करने वाले व्यक्ति सुखमय जीवन व्यतीत किया करते हैं। महाभारत में, एक जगह द्रौपदी द्वारा सत्यभामा को शिक्षा देने की बात अंकित है। द्रौपदी ने उसे कहा कि "सुखं सुखेन नेह जातु लभ्यम्, दुःखेन साध्वी लभते सुखानि" दुख और सुख के चक्र एक के बाद दूसरा, मनुष्य के सामने क्रमशः आया करते हैं। यदि एक व्यक्ति अपनी ओर से दुख के चक्र को तपस्या द्वारा अपने सामने ले आता है, तो निश्चित् रीनि से उसके बाद का चक्र सुख का होगा और मनुष्य तपस्वी जीवन रखते हुये, जब तक चाहे इस सुख के चक्र को अपने सामने रखता है। दुखी मनुष्य निर्बलात्मा; और सुखी, सदैव सबलात्मा हुआ करता है।

चौथा साधन—

स्वाध्याय चौथा साधन है। उत्तम ग्रन्थों के अध्ययन से मनुष्य के विचार विशाल हुआ करते हैं और तंग-दिली और सङ्कोच के संकुचित-क्षेत्र से वह बाहर हो जाया करता है। सङ्कोच से आत्मा में ग्लानि और उदारता से आत्मा आल्हादित हुआ करता है। ऐसे ग्रन्थ, जो मनुष्यों की रुचि बिगाड़ने और उनमें कुवासना और कुरुचि पैदा करने वाले हैं, कभी नहीं पढ़ने चाहिएँ। उत्तम पुरुषों और महान् व्यक्तियों के जीवन-चरित्र और धार्मिक तथा आचारिक जीवन का दर्जा ऊँचा करने वाले ग्रन्थ ही स्वाध्याय के ग्रंथ हो सकते हैं।

पाँचवा साधन—

उत्कृष्ट सेवा के भावों का मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाना पाँचवा साधन है। सेवा से मनुष्य का हृदय विशाल होता है और उसके भीतर निरभिमानता आती है। सेवा से केवल सेवक ही का उपकार नहीं होता किन्तु जिसकी सेवा करते हैं, उसका भी भला हुआ करता है। मान लो, तुम्हारे पडोस में एक व्यक्ति रहता है, जिसमें चोरी करने की कुटेव आ गई है, तो तुम किस प्रकार उसका सुधार कर सकते हो ? यदि तुम उसे वार-वार चोर कहकर लज्जित करना चाहते हो और चाहते हो कि इससे उसका सुधार हो जाय तो यह संभव नहीं, तुम्हारे वार-वार के चिढ़ाने से खीझ कर वह एक दिन कह देगा कि अच्छा; मैं चोर हूँ, तुम जो कुछ करना चाहते हो करो। अब वह निर्लज्ज हो गया, अब उसे चोर कहे जाने की लज्जा बाकी नहीं रही। किसी भी पतित व्यक्ति का सुधार उसके अवगुणों को बार २ दुहरा कर चिढ़ाने से नहीं हुआ करता। सुधार का मार्ग दूसरा है। उसका अवलंबन करने ही से सफलता हुआ करती है। तुम किसी व्यक्ति में, जो अवगुण है, उसका जिक्र भी न करो किंतु यत्न करो कि उसके दुःख सुख, और विशेषकर दुःखमें सहायक बनो। ऐसा दो चार बार करने से वह तुमसेइतना प्रभावित और तुम्हारा इतना कृतज्ञ होगा कि बिना तुम्हारे कहे, स्वयमेव अपने अवगुणों को छोड़ देगा।

सेवा का एक उदाहरण—

बङ्गाल में भक्तिमार्ग के प्रचारक चैतन्य के जीवन की एक घटना बड़ी शिक्षाप्रद है। चैतन्य एक समय अपने कुछ शिष्य और अनुयाइयों के साथ बङ्गाल के एकनगर में गये और एक वाटिका में अपना आसन जमाया। नगर के लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। उन्होंने, इन आगन्तुकों में अधिकांश से, एक प्रश्न किया और वह यह था कि तुम्हारे नगर में सबसे अधिक खराब आदमी कौन है ? प्रत्येक ने उत्तर दिया कि मघाई नाम का एक व्यक्ति उनके नगर में, सबसे अधिक बुरा और प्रायः सभी के लिए कष्टों का कारण है। चैतन्य ने अपने दो शिष्यों को भेजा कि जाओ मघाई को बुला लाओ। दोनों शिष्य मघाई के पास पहुँचे। वह उस समय अपने किसी मित्र के साथ बैठा हुआ शराब पी रहा था। जब शिष्य ने गुरु का संदेश उसे दिया तो उसने एक खाली बोतल उसके सिर में दे मारी। सिर में जख्म हो गया और खून निकलने लगा। शिष्यों ने गुरु के पास जाकर घटित घटना सुना दी। गुरु ने अपने आठ दस शिष्यों को भेजा कि जाओ, और यदि मघाई खुशी से न आये तो उसेपकड़ कर ले आओ। इस प्रकार पकड़ा हुआ मघाई चैतन्य के समीप पहुँचा। चैतन्य ने एक अच्छा गुदगुदा फ़र्श बिछवा रखा था।

मघाई उसी फ़र्श पर लिटाया गया। वह सोच रहा था कि उसे दण्ड मिलेगा। परन्तु देखता क्या है कि चैतन्य आकर उसके पैरों के पास वैठ गये, और उन्होंने अपने हाथ उसके पैर पर इस प्रकार रखे, जैसे कोई किसी के पाँव दवाता है। मघाई घवरा कर उठ वैठा। उसका हृदय उलट पलट हो गया और वह चैतन्य के हाथों को पैर से हटाकर घवराये हुये दिल और तर आंखों से चैतन्य से कहने लगा कि महाराज ! मैं वड़ा पातकी हूँ। मैंने अनेक अपराध किये हैं, आपने क्यों अपने पवित्र हाथों को मेरे शरीर से लगा कर अपवित्र किया ! अव यह मघाई पहला मघाई नहीं रहा था। अव उसके भीतर आत्म-ग्लानि पैदा हो चुकी थी और वह अपने दुष्कृत्यों से घृणा करने लगा था। अधिक कहने की जरूरत नहीं, चैतन्य का जीवन-चरित्र वतलाता है कि मघाई उनके शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ शिष्य वन गया। यह सव चैतन्य के सेवाभाव का फल था। अस्तु—

इन उपर्युक्तपाँच वातों पर अमल करने से मनुष्यका आत्मा वलवान वन जाया करता है। निष्कर्ष यह कि मनुष्य पहले तीनों प्रकार के कर्त्तव्यों को करके श्रेष्ठ मनुष्य वन जाता है, और इन अन्त में वर्णित पाँच वातों पर अमल करके अपने आत्मा को भी वलवान वना लिया करता है। तभी उसके भीतर उच्च-आस्तिकता के भाव जागृत होते हैं और तभी वह ईश्वरोपासना की ओर रुजू होकर, भक्तिमार्ग का पथिक वना करता है।

सूचना—यह लेख महात्मा खुशालचन्द (आनन्द स्वामी) लिखित "प्रभु भक्ति" की भूमिका से लिया गयाहै। इसका ट्रेक्ट भी पृथक छपा है प्रचारार्थ मूल्य ―) सैकड़ा ४) है.।

सचित्र वाल्मीकि रामायण

(धारावाही हिन्दी में मूल सहित)

भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले इस ग्रन्थ का पाठ तथा कथा प्रत्येक घर में होनी लाभप्रद होगा। प्रक्षिप्त, अनावश्यक तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को निकाल दिया गया है। भाषा सरल सुबोध, धारावाही होने के कारण, पढ़ना आरम्भ करने के वाद, पूरी कथा पढ़े बिना रहा नहीं जाता। १०-१२ रंगीन व एक रँगे चित्रों से युक्त। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १२) आगामी दीपावली तक रियायती मूल्य डाक व्यय सहित केवल ८) रुपये में विवाह आदि में उपहार देने योग्य एक ही पुस्तक है।

दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह

ऋषि के प्रमाणिक ७ असली फोटो चित्र सहित २० पुस्तकों का सग्रह जिसमें ऋषि की आत्मकथा ऋग्वेद के प्रथम सुक्त का भाष्य, हुगली शास्त्रार्थ, ईसाइयों के साथ लिखित ३ दिन का 'बरेली' शास्त्रार्थ' आदि नवीन पुस्तकें भी सम्मिलित हैं। सबसे मुख्य चीज है कि प्रत्येक पुस्तकके साथ उसका इतिहास जो कि विशेष महत्व का है। बड़ी साइज के लगभग ४०० पृष्ठों से सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४॥) है। दीपावली तक रियायती मूल्य डाक खर्च सहित ३॥)। शीघ्र मंगावें।

मिलने का पता— **गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ६।**

पढ़ने और प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रेक्ट

१ मनुष्यबन—ले०स्वामी वेदानन्द सरस्वती।
२ गायत्रीमाता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी।
४ आस्तिक नास्तिक सवाद—महर्षि दयानन्द।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्रजी देहलवी।
८ कल्याणी बन—पं० गणेशदत्त 'इन्द्र'।
९ आर्यों का आदि देश—काशीनाथजी शास्त्री।
१० धर्म और अधर्म—पं० रामचन्द्र देहलवी।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी।
१३ पं० लेखराम—रामगोपालजी विद्यालंकार।
१४ सीता माता—सरस्वतीदेवी 'प्रभाकर'
१५ गोमाता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी कविरत्न।
१७ चोटी का महत्व—पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस
२० मर्यादा पुरुषोतमराम—प्रह्लाद 'प्रभाकर'।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य वेदव्रत।
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य —जगदीशचन्द्र
२५ वेदमाता।
२६ श्रद्धामाता।
२७ धरती माता।
२८ धर्म की रक्षा करो। ब्र० प्रभुदत्त जी।
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य—स० नारायण स्वामी।
३० सत्संग भजन।
३१ ऋषिदयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व।
३२ गोपालदयानन्द।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा।
३४ वैदिक भक्तिवाद।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द।
३७ आर्य समाज की उन्नत्ति का साधन।
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक-शिव पूजन सिंह
४० पति व्रतधर्म -- एक विदूषी महिला
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ती पूजा--राजेन्द्र जी
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द--भगवत शरण बी०ए०
४३ ईश्वरावतार--स्वामी नित्यानन्द जी
४४ कर्म योगी श्री कृष्ण--श्री प्रेम चन्द
४५ ईसाइयों का भयंकर षड्यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार -- श्री लाल चन्द्र जी
४७ शिक्षा का उद्देश्य -- श्री पूर्णचन्द्र जी
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी
४९ वर्णव्यवस्था --स्वामी दर्शनानन्द।
५० कर्मव्यवस्था ,, ,,
५१ वेदज्ञान -- विष्णु दयाल जी।
५२ तुलसी रामायण और आर्य समाज।
५३ सत्य की खोज -- काशीनाथ शास्त्री।
५४ मुर्दा क्यों जलावें -- प्रेम शरण जी।
५५ स्वामीदयानन्द का उद्देश्य -- स्वा० दर्शनानन्द
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य --
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध - पं० राजेन्द्रजी
५८ श्रेय और प्रेय -- प्रो० नित्यानन्द जी एम० ए०
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त--रवि वर्मा सि० शास्त्री
६२ जीवन की समस्यायें - पं० रामचन्द्र देहलवी।
६३ देवताओं की कहानी -- कैलाश बिहारी।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय।
६५ धूम्रपान - ,, ,,
६६ सीनेमा और हम— ,, ,,
६७ दयानन्द कौन — देवेन्द्रनाथ मुखाधध्याय।
६८ कृण्वन्तोस्वयमार्यम् — प्रेमकुमार पाण्डेय।
६९ चाय भयंकर विष — जगदीश चन्द्र।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है — ज० विद्या०
७१ ईश्वर सब जगह है — विष्णु दयाल जी।
७२ कनफूंक वे गुरु बैल की पूंछ - दर्शनानन्द।
७३ क्या हम जीवित हैं — स्वामी दर्शनानन्द।

प्रत्येक ट्रेक -) सैकड़ा ४) हजार ३५) रु०

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

सच्चा समय बताने वाली जूलदार घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी

यह घड़ियाँ स्विस मेड (Swiss Made) बिल्कुल ठीक समय बताने वाली बहुत सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और आजकल के फैशन की है। टाइम बिल्कुल ठीक बताती है और ३६ घण्टे की चाबी वाली हैं। हर घड़ी की गारण्टी ५ वर्ष है। सुन्दर तस्मा मुफ्त। हर घड़ी के साथ गारण्टी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है।

नं० ७१ सफेद केस २ जूल २२)
सुनहरी २३)
नं० ७२ सफेद केस ५ जूल २५)
सुनहरी २७)
नं० ११ सफेद केस १५ जूल २८) सुनहरी ३०)

वाटर प्रूफ़ आल प्रूफ़ रेडियम डायल घड़ियां

नं० २० सफेद, स्टील केस १५ जूल ३७) सुनहरी ४०)
नं० १६ सफेद स्टील केस १७ जूल ४८) सुनहरी ५३)

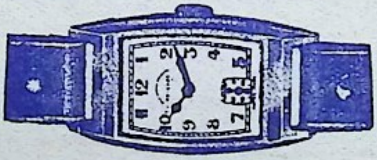

नं ७ सफेद केस ५ जूल २५) सुनहरी २८)
नं० ८ सफेद केस १५ जूल ३२) सुनहरी ३५)

अति सुन्दर बढ़िया लेड़ी घड़ियाँ

नं० १४ सुनहरी केस १५ जूल ४०)
नं० १५ सुनहरी केस १७ जूल ४५)

मंगाने का पता—स्वीस वाच कम्पनी
(वी० पी०) ११६ 'ई' कमला नगर, देहली—६

उपयोगी पुस्तकें

पं. जयदेव कृत

ऋग्वेद भाष्य ७भाग	४२)
अथर्ववेद ४ भाग	२४)
यजुर्वेद २ भाग	१०)
सामवेद	६)

पं. तुलसीरामस्वामी कृत

न्याय दर्शन	२)
योगदर्शन	१॥)
वेदान्तदर्शन	२॥)
वैशेषिकदर्शन	२)
मनुस्मृति	५)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उत्तरार्द्ध)	२॥)
न्यायदर्शन	२॥)
वैशेषिक दर्शन	३॥)
गीता भाष्य	१॥)

म० नारायण स्वामी कृत

मृत्युपरलोक	१।)
अमृत वर्षा	२)
पाप पुण्य	॥)
गृहस्थ जीवन रहस्य	२।)
महर्षिदयानन्द "इन्द्र"	२)
तरंगितहृदय 'अभय'	१।)
कौटिल्य अर्थ शास्त्र	१०)
कुरानशरीफ	८)
एकादशोपनिषद	१२)
ब्रह्मचर्य सन्देश	४॥)
दयानन्दका पत्रव्यवहार	७)
जाति निर्णय	४)
योग प्रदीप	१२)

स्वामी सर्वदानन्द

सन्मार्ग दर्शन	४)
आनन्द संग्रह	२)
ईश्वर भक्ति	२)
ईश्वर मिलाप	॥)
धर्म ज्ञान ४ भाग	२-)
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२)
संस्कार विधि	॥।-)
हितोपदेश भा०टी०	१॥)
पंचतन्त्र भाषा	३॥)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
हमारी माताएं	३)
भारतीय वीरांगनाएं	३)
वैदिक सम्पत्ति	६॥।)
दर्शन और गीता	१।)
दृष्टान्त महासागर	३॥)
दयानन्द और गांधी	२)
नैतिक जीवन	२॥)
भक्तियोग विवेकानन्द	२)
कर्मयोग ,,	२)
भक्ति और वेदान्त ,,	२)
आगे बढ़ो	१॥)
सफलता की कुन्जी	१)
भारत में मूर्ति पूजा	२)
पूर्वजन्म स्मृति	।=)
स्वाध्याय संग्रह	२)
स्वाध्याय सन्दोह	६)
अष्टाध्यायी प्रकाशिका	५॥।)
हिन्दू संगठन	१)
सत्य हरिश्चद्र	१)
गीत श्रद्धांजली	१।=)
बीरबल की हाजिर जवाबी	१)
अमीरी के दिन	३)
जागृत एशिया	२)
सरस भोजन कैसे बनावे	३॥।)
स्त्री शिक्षा पाक प्रकाश	४।)
नारी धर्म शिक्षा	२)
भारत के स्त्रीरत्न	७॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
४	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	॥।)
५	तरकारियों की खेतो	१।।)
६	अच्छे बीज	॥।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२॥)
११	धान की खेती	१॥)
१२	संतरे की बागवानी	२॥)
१३	आम की बागवानी.	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३॥)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२॥)

नोटः— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) की रुपया कमीशन काटकर ।।—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर [illegible] में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि [illegible] आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

DEL 4-10-56 10 AM

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेद प्रकाश

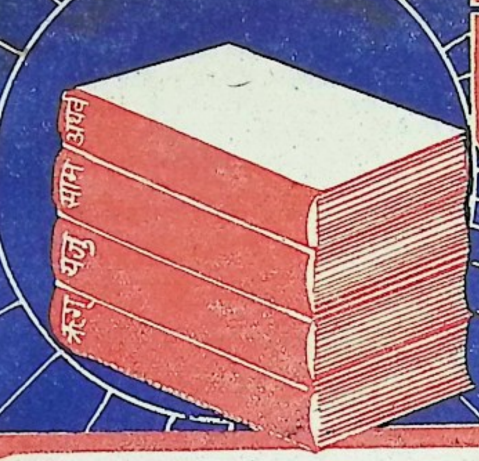

वर्ष ५
अंक ७
माघ सं० २०१३, फरवरी १९५७, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द
मूल्य =) वार्षिक २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

अभिमान त्या

शंनो भगः शमुः नः शंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥
ऋ० ७।३५।२॥

अर्थ—(भगः नः शम्) ऐश्वर्य हमारे लिये सुख दायक हो(शंसः नः शम् अस्तु) प्रशंसा अथवा उपदेश, अनुशासन हमारे लिये शान्ति, सुख दे (पुरन्धिः शम्) उत्कृष्ट बुद्धि शा न्त दायक हो (रायःशम् उ-सन्तु) धन भी सुख कारक हो (सुयमस्य सत्यस्य शंसः शम्) उत्तम नियन्ता का सत्य उपदेश हमें सुखकर हो (पुरुजातः अर्यमा शं नः अस्तु) अत्यन्त प्रसिद्ध न्यायकारी प्रभु हमें शान्ति सुख देने वाला हो ।

हमारे लिये ऐश्वर्य सुखदायक हो और हमारी प्रशंसा शान्तिदायक हो, हमारी बुद्धि शान्तिदायक हो और सब प्रकार के धन शान्तिदायक हों। मर्यादित सत्य कथन शान्तिदायक हों। हमारा बहुत प्रसिद्ध श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी भगवान् शान्तिदायक हो।

बिल्कुल नई असली और सच्चा समय देने वाली जूलदार घड़ियाँ, सेल टैक्स माफ

मूल्य में भारी कमी तथा विशेष रियायतें—यह असली और ठीक समय बताने वाली ३६ घन्टे चाबी की स्विस तथा जर्मन मेड (SWISS & JARMAN MADE), घड़िया बहुत सुन्दर टिकाऊ और आज कल के फैशन की खास आर्डरों से बढ़िया मशीनें लगवा कर बड़ी संख्या में मंगवाने के कारण नीचे के कम से कम मूल्य पर बेची जा रही है। आप को जो पसन्द हो मंगवा कर लाभ उठावें। आर्डर में घड़ी का माडल नम्बर तथा मूल्य जरूर लिखें ताकि बिल्कुल आप के पसन्द की घड़ी भेजी जाये। हमें पूरा विश्वास है कि आप की मंगवाई हुई घड़ी देखकर आप के मित्र तथा सम्बन्धी भी जरूर मंगवाएंगे। विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने के लिये भी यह घड़ियां बहुत उपयुक्त हैं। सेल टैक्स भी नहीं लिया जावेगा।

हर घड़ी के साथ सुन्दर फीता मुफ्त तथा गारंटी का सर्टीफिकेट भेजा जाता है। डाक व्यय हर घड़ी का अलग। ३ घड़ियों पर डाक व्यय माफ। कोई सी ६ घड़िया मगवाने पर सातवों आधी कीमत पर। १२ मंगवाने पर तेरहवीं मुफ्त इनाम। विज्ञापन में जिन घड़ियों पर रेडियम डायल नहीं लिखा वे रेडियम चाहियें तो प्रति घड़ी १॥) अधिक लिये जावेंगे। ३ से अधिक घड़ियों के आर्डर के साथ १०) मनीआर्डर द्वारा अगाऊ भेजें, बाकी का वी० पी० होगा।

मा० नं० ४१ साईज १२, गारंटी—३ वर्ष

सफेद केस २ जूल बिना सैकिंड १४) रु० सुनहरी केस १६) रु० सैकिंड सैहत सफेद केस २ जूल १६) रु० सुनहरी केस २ जूल १७) रु०

मा० नं० ४२ साइज १२, गारंटी—३ वर्ष

सेंटर सेकिंड सफेद केस २ जूल १८) रु०। सुनहरी केस १९)

माडल नं० ४४ साइज १०½ या ६½ गारंटी—४ वर्ष

सफेद केस २ जूल मैय सैकिंड १८) सुनहरी केस २ जूल २०) सफेद केस ५ जूल २१) रु०। सुनहरी केस ५ जूल २३) रु० सफेद केस १५ जूल २६) रु० सुनहरी केस १५ जूल २८ रु०। ८½ साईज १५ जूल ३२) सुनहरी केस ३४) १७ जूल सफेद ३६) सुनहरी ४०)

गारंटी—अलारम टाईमपीस ५ साल रंगदार केस बिना रेडियम १४) रेडियम १६) सफेद केस बिना रेडियम १५॥) सफेद केस रेडियम १७॥)

माडल नं० ५२ साईज ५½ गारंटी—१० साल

स्त्रियों के लिये लेडी घड़ियाँ, भिन्न भिन्न शेप बहुत खूबसूरत सुनहरी केस ५ जूल ३५) रु० १५ जूल ३६) रु० पिन लीवर सुनहली १७ जूल ४५) बहुत खूबसूरत बिल्कुल सोने की मालूम पडती है १५ जूल ४५) रु० बढ़ियां १७ जूल ५०) व ६०) बैंगल चूड़ी सहित

माडल नं० ४६ साईज ७½

गारंटी ७ वर्ष टोनियों कर्व या रैक्टेंगूलर सफेद केस ५ जूल २४) सुनहरी केस २६) सफेद केस १५ जूल ३०) सुनहरी केस १५ जूल ३३) सफेद केस स्टील लीवर १५ जूल ६०) गोल्ड स्टील बैक १५ जूल ६५)

माडल नं० ४७। १०½ व साइज ८¾ गारंटी—१० वर्ष

रेडियम वाटर परूफ शाक परूफ ऐंटीमगनेटक सफेद स्टील बैक केस १५ जूल ३७) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १५ जूल ४०) रु० सफेद स्टील बैक केस १७ जूल ४३) रु० सुनहरी स्टील बैक केस १७ जूल ४६) सफेद स्टील बैक केस २१ जूल ६०) सुनहरी स्टील बैक केस २१ जूल ६३)

गारंटी ५ वर्ष रेलवे टाइम कीपर पाकेट वाच १-बिना सकिंड ६) रेडियम १०) २-सैकिंड सेहत १० रेडियम ११। ३-सैकिंड सेहत ५ जूल १५) रेडियम १६) नं० ४-जर्मन मेड बहुत बढिया २५) रेडियम २७. रु०।

घड़ियों के सुन्दर तथा बढ़िया चेन निकल पालिश २) सुनहरी पालिश ३। स्टील का ५) हद रोल्ड गोल्ड १२) पता—**स्विस वाच कम्पनी (वी० पी० २) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६**

—रुपया कमाने का ढंग सिखानेवालो हिन्दो भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें—

.मबत्तियाँ बनाना	३।)
ायल इञ्जन गाइड	६)
गन्धित तम्बाकू बनाना	३।)
नेमा मशीन आपरेटर गाइड	५)
ान्धित तेल व इत्र बनाना	३।)
ोतिष शास्त्र	६)
न्तिवर्द्धक औषधियाँ	३।)
पालिश बनाना	३।)
टर मिकेनिक गाइड	६)
इसक्रीम बनाना	३।)
कशन बुक	५)
पाउन्ड्री शिक्षा	३॥)
चित्र बूटी-प्रचार वैद्यक	३)
र के गुब्बारे बनाना	३।)
क्टर गाइड	६)
ैक्ट्रिक गाइड	६)
क्ट्रिक वायरिंग	५)
ाईसाजी	३।)
ाटोग्राफ़ी शिक्षा	३)
क्रूड आयल इञ्जन गाइड	६)
रंगाई धुलाई शिक्षा	३।)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	६)
आयनासाजी	३।)
साइनबोर्ड पेंटिंग व चित्रकारी शिक्षा	४॥)
कारपेन्ट्री शिक्षा	१०)
स्कूल के चाक व स्लेट पेंसिल बनाना	३।)
पति पत्नी पथ-प्रदर्शक	३)
ताश के जादू तथा खेल	२॥)
आधुनिक साबुन शिक्षा—हर प्रकार के देशी व अँगरेजी साबुन बनाना	३॥)
तेजी-मन्दी सट्टा	५)
प्लास्टिक के सामान बनाना	३।)
घड़ीसाजी शिक्षा	३॥)
बैट्री विज्ञान	२॥)
सरल हिन्दी इँग्लिश टीचर	२॥)
कटाई-सिलाई शिक्षा नये फैशनों के कपड़े काटने व सीने की शिक्षा	३)
अपटुडेट फैशन बुक	२॥)
खराद शिक्षा टर्नर गाइड	३)
वर्कशाप गाइड फिटर ट्रेनिंग	४)
अचार, चटनी, मुरब्बे बनाना	३।)
जादूगरी शिक्षा	५)
व्यापार दस्तकारी	२॥)
शर्बत विज्ञान	३।)
रङ्ग-बिरंगी मिठाइयाँ बनाना	३।)
मिमारी शिक्षा (राजगीरी)	१०)
एम्ब्रायडरी शिक्षा	४)
बेकरी बिस्कुट आदि बनाना	३।)
रेडियो गाइड	४॥)
रबर की मोहरें बनाना	३।)
फिल्म एक्टिंग गाइड	२॥।)
पामिस्ट्री (हस्त रेखा ज्ञान)	६)
मीनाकारी शिक्षा	२॥।)
स्वर्णकार शिक्षा	२॥।)
लाण्ड्री ड्राई क्लीनिंग	३।)
क्रुस्टल रेडियो बनाना	२)
सोडावाटर लैमन बनाना	३।)
फिल्मी हार्मोनियम गाइड	३)
मोटरकार वायरिंग व मोटर सायकिल गाइड	६)
बिजली मशीन मास्टर	३॥)
बुनाई शिक्षा-स्वेटर आदि बुनना	४)
आतिशबाजी	३।)
रामायण तुलसीकृत भा०टी०	१२
श्री प्रेमसागर सचित्र	४
श्री सुखसागर	१२)
श्री राधेश्याम रामायण	५)
श्री वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत सम्पूर्ण	१२)

प्रत्येक पुस्तक का डाक-व्यय पृथक् है।

ाने का पता:—

एल० डी० आहूजा ऐण्ड सन्स, (वी० पी०) पो० बक्स १३४६, ११६ ई—कमला नगर, देहली ६

झण्डा ऊंचा रखो

लेखक:—स्वर्गीय वेदशास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द सरस्वती ।

ओ३म् । आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ऋ० ३।८।८

(सुनीथाः) उत्तम नीति वाले (आदित्याः) आदित्य, (रुद्राः) रुद्र, (पृथिवी) विशाल (द्यावाक्षामा द्यौ और पृथिवी, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (देवाः) और परोपकारी विद्वान् (सजोषसः) तुल्य प्रीति वाले होकर (यज्ञम्) यज्ञ की (अवन्तु) रक्षा करें, और (अध्वरस्य) यज्ञ के (केतुम्) झण्डे को (ऊर्ध्वम्) ऊंचा (कृण्वन्तु) करें, रखें ।

झण्डा जातियों के चिरकाल से संचित उदात्त धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय भावों का द्योतक होता है। जीवित जातियाँ आने झण्डे की रक्षा के लिये जाने तक लड़ा देती हैं। आर्य्य जाति में झण्डे से इतना प्रेम था कि प्रत्येक गृहस्थ अपने घर पर झण्डा लहराता था। गृहप्रवेश संस्कार का आरम्भ ही मुख्य द्वार के आगे ध्वजारोपण से होता है। ऋषिवर दयानन्द पारस्कर के प्रमाण से लिखते हैं—

ओम् अच्युताय भौमाय स्वाहा। पार० ३।४।३

इससे एक आहुति देकर, ध्वजा का स्तम्भ, जिसमें ध्वजा लगाई हो. खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे।" (संस्कारविधि, शालादिसंस्कारविधि)

उद्धृत पारस्कर वचन में 'अच्युत' शब्द ध्यान देने योग्य है। अच्युत=जो च्युत न किया जाये, गिराया न जाये। अर्थात् चाहे यह झण्डा भूमि में गाड़ा जा रहा है, किन्तु इस बात में सदा सावधानता रखना कि झण्डा गिरने न पावे। वेद ने तो कहा—

ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम्=यज्ञ का झण्डा ऊंचा रखो।

आर्य्यों के सभी कार्य्य यज्ञ से आरम्भ होते हैं। अतः आर्य्यों का झण्डा यज्ञ का झण्डा है। इसे ऊंचा ही रखना चाहिए, नीचे नहीं गिरने देना चाहिये। जाति की ध्वजा की रक्षा किसी एक का कार्य्य नहीं, वरन् सब का है।

इसी भाव से कहा—

सजोषसो यज्ञमवन्तु देवाः=परोपकारी विद्वान् तुल्य प्रीति वाले होकर यज्ञ की रक्षा करें।

झण्डे की रक्षा, झण्डे को ऊंचा बनाये रखना एक यज्ञ है, ऐसा यज्ञ जिस पर समस्त जाति की आन बान और शान अवलम्बित है। अतः सभी देव प्रीति पूर्वक इसकी रक्षा करें।

राष्ट्ररक्षक केवल यही देव नहीं हैं ? देव का अर्थ है जीतने की इच्छा वाला। आर्य्य=देव भाव सदा विजीगीषा के रहे हैं। झण्डे की रक्षा में सभी को सम्मिलित होना चाहिये—

आदित्या रुद्रावसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम्

आदित्य=नेता, रुद्र=सैनिक, वसु=धनिक, द्यौ पृथिवि और अन्तरिक्ष उत्तम नीति से रक्षा करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र तथा राष्ट्र की समूची शक्ति राष्ट्र के झंडे को, मान को ऊपर रखें।

(स्वाध्याय सन्दोह से)

महर्षि दयानन्द

लेखकः—धर्म देवे विद्यामार्तण्डः

१ निखिल निगमवेत्ता, पाप तापास नेता
रिपुनिचय विनेता, सर्व पाखण्ड भेत्ता।
अतिमहित तपस्वी, सत्यवादी मनस्वी
जयति स समदर्शी, वन्दनीयो महर्षिः॥
२ विमल चरितयुक्तः, पाप मुक्तः प्रशस्तः।
सकल सुकृत कर्ता, कर्म राशावसक्तः॥
दलितजन सुधारे, सवदा दत्त चित्तः।
जयति सकमनीयो, वन्दनीयो महर्षिः॥
३ प्रथित धवल कीर्तिः, शुद्ध धर्मस्य मूर्तिः
प्रभृतनिगमरीतिः, शत्रु वर्गेऽप्यभीतिः।
अनुसृतशुभनीति, वेदशास्त्रेष्वधीती॥
विबुधगमवरेण्यो, वन्दनीयो महर्षिः॥
४ अधिकतम उदारो, धर्म सम्बोधकेषु।
अतिविहितविचारो, लोक संरक्षकेषु॥
विदितनिगम सारो, ब्रह्मचार्यनुगण्यो।
जयति स कमनीयो, वन्दनीयो महर्षिः॥

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी

आप को यह जान प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल के आगामी वार्षिकोत्सव के अवसर पर कुलपिता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। शताब्दी के देशव्यापी विविध आयोजनों में हमारी योजना 'गुरुकुल-पत्रिका' का एक विशाल विशेषांक निकालने की है। इस में स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में तथा उन के कार्य-कलाप के बारे में विद्वानों, समाज व देश के नेताओं के लेख, कविताएं संस्मरण आदि प्रकाशित किए जावेंगे। श्री स्वामी जी द्वारा लिखे हुए महत्त्वपूर्ण पत्र भी इस अंक में देने का हमारा विचार है।

अपने कृपालु लेखकों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएं तथा स्वामी जी के पत्र यथासम्भव शीघ्र भेजने की कृपा करें। स्वामी जी के जीवन के विविध पहलुओं से सम्बद्ध फोटो, चित्र या स्केच जिन महानुभावों के पास सुरक्षित हों वे हमें प्रकाशित करने के लिए भेज देंगे तो बड़ी कृपा होगी। यदि वे चाहेंगे तो उपयोग करने के बाद मूल चित्रों तथा पत्रों को हम सुरक्षित लौटा देंगे।

गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

बाल शिक्षा

(ले०—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

मा गृधः (यजु० ४०।१)

(गृधः) लालच, लोभ (मा) मत 'कर'।

आर्य बालको!

वेद की यह सूक्ति एक दिव्य सन्देश दे रही है 'लालच मत करो ? लालच का अर्थ है बिना परिश्रम किये दूसरों के धन को प्राप्त करने की इच्छा।

लालच बुरी बला है। यह पापों का मूल है और समस्त बुराइयों की खान है। लोभ के द्वारा ही सम्पूर्ण पापों का प्रादुर्भाव होता है। एक संस्कृत के कवि ने ठीक ही कहा है:—

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातारं वा सुहृत्तमम्।
लोभाविष्टो नरो हन्ति, स्वामिनं वा सहोदरम्॥

लोभी मनुष्य माता पिता सहोदर भाई घनिष्ट मित्र तथा स्वामी को भी मार डालता है।

लालच के वशीभूत होकर मनुष्य न करने योग्य कार्यों को कर बैठता है। लोभ में आकर ही नर पिशाच जगन्नाथ ने महर्षि दयानन्द को हलाहल विष दिया था। लोभ के कारण ही योगी राज भर्तृहरि ने मीक में हाथ डाला था। लोभ में फंसकर ही दुर्योधन ने पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न किया, भीम को विष दिलवाया, युधिष्ठर को जुआ खिलवाया तथा लोभ के कारण ही महाभारत का युद्ध कराया, जिस की चोट से भारत आज तक संभल नहीं सका है।

लालच के कारण बहुधा अपमानित और लज्जित भी होना पड़ता है। यहीं तक नहीं कभी कभी तो जान से हाथ धोना पड़ता है। आप ने उस कुत्ते की कहानी तो अवश्य ही पढ़ी होगी जो अपने मुख में रोटी का टुकड़ा दबाये नदी के किनारे जा रहा था, पानी में अपनी परछाईं देखकर दूसरे टुकड़े को लेने के लोभ में उस में कूद पड़ा औए मर गया।

भोग्य पदार्थ न कभी किसी के साथ गये हैं और न जायेंगे। धन किस के साथ जाता है ? यह तो यहीं पड़ा रह जाता है। अतः लोभ नहीं करना चाहिये।

इति

ओंकार-व्याख्या

(ले० श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी बी० ए, वैदिक रिसर्च स्कालर कलकत्ता)

(गतांक से आगे)

और जो उपासक "अ", "उ", "म्", इन तीन मात्रा वाले अविनाशी ब्रह्म के नाम से संसार के सूक्ष्माति सूक्ष्म परमाणुओं में भी व्याप्त प्रभु के सन्मुख होकर तदाकार वृत्ति और योगाभ्यास की रीति से ध्यान करता है, वह मरण समय में स्वर्लोकस्थ प्राण से संयुक्त हुआ, जैसे कैंचली के छूट जाने से साँप निर्मल हो जाता है इसी प्रकार वह उपासक ऐषणाओं के विकार से छूट कर निर्मल हुआ प्राणों के साथ ज्ञान दृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म को प्राप्त होता है।

इसी विषय की पुष्टि के लिये दो मन्त्र और प्रमाण स्वरूप आगे देखिये:—

तिस्त्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्य सक्ता अनविप्रयुक्ताः क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः

अर्थातः—ओङ्कार को तीन मांत्राओं से युक्त योगाभ्यास के समय में अवस्थित ज्ञान योग में तत्पर योगी जाग्रत सुषुप्ति, एवं बाह्य वृत्तियों से आक्रान्त अवस्थाओं के वश में न होकर अपने कर्त्तव्य पथ पर स्थित रहता है।

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेन्मन्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमयं परं चेति ॥

उस शान्त स्वरूप, अजर, और अभय, सर्वान्तर्यामि प्रभु को विद्वान् एवं ज्ञान सम्पन्न योगी ऋगवेद की विज्ञान परक स्तुतियों से यजुर्वेदीय कर्मकान्ड-ज्ञान से सामवेद के प्राणायामादि ज्ञान सम्बन्धी कर्मों से मनुष्य लोक, परलोक और उस परोक्ष ब्रह्मलोक को जिसे पण्डित लोग जानते हैं क्रमशः अ, उ और म् के समुदाय "ओ३म्" की उपासना द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

अतिरिक्त इन उपरोक्त महत्व युक्त प्रमाणों के अन्याऽन्य उपनिषदों ब्राह्मण ग्रन्थों स्मृतियों और शास्त्रों के सैकड़ों प्रसिद्ध २ प्रमाण हैं जो सब केवल उस ओङ्कार स्वरूप प्रभु की उपासना के लिये ही आवाल वृद्ध वनिता को आदेश देते हैं। यथा "ओं खँ ब्रह्म" :—

अवतीत्योम् रक्षा करने वाला है इसलिये उस ब्रह्म का नाम "ओ३म्" है आकाश में व्यापक होने से "खम्" सबसे बड़ा होने के कारण "ब्रह्म" ईश्वर का नाम है।

ओमित्ये तदक्षरमुद्गीथ मुपासीत् ॥ छन्दोग्य उ० मं० १ ॥

जिसका नाम ओम् है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी को उपासना करने योग्य है।

ओमित्येतदक्षर मिदꣳसर्व तस्योपाख्यानम् ॥ मं० । १ ॥

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ओम् है। अन्य सब गौण है।

सर्वे वेदा यत्पदमामन्तित तेषाꣳ सर्वाणिच यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।

क्योंकि सब वेद सत धर्मानुष्ठान रूप श्रवण जिसका कथन और मान्य करते हैं जिसकी प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करते हैं। उसका नाम ओ३म है।

अतः पाठक गण स्वयं विचार करें, कि किस प्रकार वेद और शास्त्रों में ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उपनिषदों के तथा स्मृतियों में इस पवित्र ब्रह्म वाच्य ओङ्कार की सूक्ष्म बुद्ध या महिमा पायी गई है।

संसार में जितनी भी भाषायें हैं उन सब भाषाओं के अक्षर बिना 'अ' की सहायता के बोले नहीं जा सकते फिर उन भाषाओं में कितने ही ऐसे अक्षर भी हैं जिनका उच्चारण अत्यन्त कठिनता से होता है, और कितने ही मनुष्य ऐसे भी हैं जिन से आजीवन भी वे अक्षर उच्चारित नहीं हो पाते। इंगलैंड के रहने वालों सेयदि विशुद्ध 'ख' अक्षर का उच्चारण करवावें तो वे नहीं कर सभते, इंगलैण्ड के पड़ोसी फ्रांस से यदि "ट ठ ड ढ ण" इस टवर्ग का उच्चारण करावें, तो वे कहेंगे कि किस विपत्ति ' हम पड़ गये। किन्हीं महानुभावों से विशुद्ध 'र' अक्षर का उच्चारण नहीं हो सकता कोई 'श' 'ष' 'स' का उच्चारण नहीं कर सकते बंग भाषा-भाषी महानुभाव 'क्ष' अक्षर नहीं बोल सकते। इस प्रकार भिन्न २ देशों के भिन्न २ भाषाओं के अभ्यासी भिन्न २ अक्षरों के बोलने में अनभ्यस्त है। परन्तु किसी भी देश के निवासी, किसी भी भाषा के अभ्यासी व्यक्ति "अ" "उ" और "म" इन तीन अक्षरों को बोलने में कभी द्विविधा में नहीं पड़ेंगे, अपितु प्रसन्नता पूर्वक उन्हें आसानी से बोल सकेंगे।

यह तो रही पढ़े लिखे और भिन्न २ देश के भाषियों की बात, अब इन अबोध शिशुओं की ओर भी क्षणिक दृष्टि पात करें, जो जन्म लेने के साथ ही अँ, आ, आउ, उ, और "म्" 'म' आदि २ स्वरों के उच्चारण के साथ माँ की गोद में लिपटे हुए रोते हैं। तथा माता भी उस बच्चे को अँ, अँ, के उच्चारण से लोरियाँ करती हुई थपथपा कर उसे चुप कर देती है मां और बच्चों की इस स्वाभाविक "ओ३म" शब्द की पवित्र प्रणाली को किसी ने भी निमाण नहीं किया और नहीं किसी ने शिक्षा ही दी अपितु स्वभावतः ही उनके मुख से इस ओङ्कार के अक्षरों का उच्चारण न केवल आज से ही अपितु सृष्टि के आदि काल से ही होता चला आ रहा है। बच्चों के अतिरिक्त उन गूगें और बहरों से भी कुछ पूछ देखिए, वे भी अतिरिक्त किसी भी अक्षर को सरलता पूर्वक उच्चारण करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार संसार की जितनी भी भाषायें हैं उसमें "अ" "उ" और "म्" ये तीन अक्षर ही ऐसे सरल और उपयुक्त मिलेंगे जिनका विशुद्ध उच्चारण सहज ही सब कर सकते हैं।

इंगलिश भाषा में ईश्वर को God (गौड) कहते हैं परन्तु अरब के निवासी God शब्द का अच्छे प्रकार उच्चारण नही कर सकते क्योंकि अरबी भाषा में "ग" और "ड" का सर्वथा अभाव है। ठीक इसके विपरीत अंगरेज या फ्रैंच लोग "खुदा" शब्द का उच्चारण नहीं कर सकते। हिन्दू समाज में प्रभु के अर्थ में प्रयुक्त प्रसिद्ध "राम' शब्द को भी सब नहीं बोल सकते इन सब बातों से प्रतीत होता है कि मानव समाज ब्रह्म के अर्थों में "ओ३म" शब्द ही सरलता पूर्वक व्यवहार में ला सकता है।

गीता में योगीराज भगवान् श्री कृष्ण ने इस ओङ्कार नाम की महिमा के सम्बन्ध में कितना सुन्दर लिखा है :—

यदक्षरं वेद वदन्ति, विशन्ति यद्यतयो वीत रागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

अर्थात—जिस अक्षर को वेद वेत्ता कहते हैं, जिसमें वीतराग यति ओलों प्रवेश करते हैं जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, हे अर्जुन! उस पद को मैं तेरे लिये संक्षेप में कहता हूं। क्योंकि:—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सया परमां गतिम॥

"ओ३म" इस एकाक्षर ब्रह्म का मरते समय, परमात्मा को स्मरण कर जो मनुष्य उच्चारण करता

है। वह परमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार अनेकानेक आर्य ग्रन्थों के वाक्य उद्धरण स्वरूप लिखे जा सकते हैं जिनसे, "ओंकार" का महत्व तथा "ओ३म्" अक्षर ब्रह्म के ध्यान करने का निर्देश का पूर्ण परिचय मिल सकता है। इस विषय में पाठकों को प्रश्नोपनिषद् के पन्चम प्रश्न का अध्ययन विचार पूर्वक करना चाहिए, विस्तार भय से यहां उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों को ही पर्याप्त समझा जाता है।

संसार में मानव जाति के प्राचीन धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से भी इस बात का पता चलता है कि उस काल में परमात्मा मुख का नाम "ओ३म्" वा इसका कोई न कोई विकृत रूप उन धर्मावलम्बियों की भाषाओं में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिये इंगलैन्ड द्वीप को ही लीजिये ईसाई धर्म के प्रचार के पूर्व यहाँ के निवासियों का पैतृक धर्म Drudidism द्रुदवाद रहा Druid द्रुद लोग प्राचीन इंगलैन्ड निवासियों के पुरोहित थे, गृहस्थों को यज्ञ कराते थे। परमात्मा के लिये जो कई शब्द उन Druids 'द्रुद' लोगों में प्रचलित रहे उनमें एक तो 'ईसर' शब्द तथा दूसरा 'ओम्ह' शब्द विचारणीय हैं। इसमें तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि 'ईसर' शब्द संस्कृत भाषा के 'ईश्वर' शब्द का ही एक विकृत रूप मात्र है 'ओम्ह' शब्द के विषय में निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यह शब्द "ओ३म्" का ही दूसरा रूप है।

ईसाई तथा यहूदी धर्मावलम्बी बाइब्ल (Bible) को अपना माननीय धर्म ग्रन्थ समझते हैं बाइब्ल में "आमेन" Amen शब्द का प्रयोग कतिपय स्थानों पर हुआ है। यह "आमेन" शब्द "ओमन" शब्द ही का एक विकृत रूप है और 'ओ३म्' शब्द दोनों ही समानार्थक हैं। "ओ३म्" शब्द भी परमात्मा वाचक तथा स्वीकारोक्ति भी है "आमेन" Amen शब्द भी परमात्मा वाचक भी है तथा स्वीकारोक्ति में प्रयुक्त होता है। प्रमाण स्वरूप देखो बाइब्ल की अन्तिम पुस्तक "प्रकाशित वाक्य" Revelation अध्याय ३, आयत १४:—

And unto the angel of the Church of the Liodicans write; These things sayeth the Amen.

अर्थात्:—

और लाइयोदिकिया में की मन्डली के दूत के पास लिख आमेन इन बातों को कहता है।

स्पष्ट है कि यहां "आमेन" शब्द परमात्मा वाचक है, और इस में भाषा विज्ञान शास्त्र के पन्डितों का मत भेद भी नहीं हो सकता कि "आमेन", शब्द 'ओमन्' शब्द ही का रूपान्तर है। बाइब्ल की "Psalm" अर्थात् "स्तोत्र संहिता नामक पुस्तक में आया है :—

Blessed be the Lord God of Israel from everlasting to evelasting and let all the people say, Amen Praise ye the Lord.

अर्थात्:—

धन्य है इसराईल का परमेश्वर यहोवा अनादिकाल से वह धन्य ही है और अनन्त काल लों भी रहेगा और सारी प्रजा कहै "आमेन" याहू की स्तुति करो। स्तोत्र सहिता १०६-१४

इसी "आमेन" शब्द का विकृत रूप अरबी भाषा में "आमीन" शब्द है मुसलमान लोग प्रार्थना की आयतों को पढ़कर "आमीन" शब्द का उच्चारण करते हैं। अरबी भाषा में "आमीन" शब्द की व्युत्पत्ति 'अमन' वा 'अमान' धातु से की जाती है और 'अमन' वअमाका अर्थ निर्भय बना देना वा सुरक्षित कर देना है इसी धातु से 'मोमिन' शब्द बना है और अरबी में यह परमात्मा का एक नाम है (देखो अरबी लुगात सुराह) 'ओ३म्' शब्द का भी अर्थ रक्षा करने वाला है अतः मोमिन और ओ३म समानार्थक शब्द है। "आमीन" शब्द भी स्वीकारोक्ति में ओ३म के सदृश अरबी में प्रयुक्त होता है।

उपर्युक्त समस्त शास्त्रीय प्रमाणों तथा तार्किक युक्तियों द्वारा इस बात का सम्यक् प्रकारेण स्पष्टी

(शेष पृष्ठ १६ पर)

आवश्यक सूचना

वेदप्रकाश का आगामी मार्च अप्रेल का सँयुक्त अङ्क
प्रकाशित होगा, जिसमें—

ईसाई मिश्नरी गति विधि जांच समिति की सरकारी "नियोगी रिपोर्ट" प्रकाशित की जायगी

धर्म निरपेक्ष राज्य की हमारी घोषणा के बाद ईसाई मिश्नरियों ने जो विदेश से प्रचारक तथा ईसाई राज्यों द्वारा सहायता प्राप्त कर भारत की अनपढ़ तथा पिछड़ी जातियों को नाना विधि प्रलोभनो द्वारा अपने चंगुल में फंसाकर भारत विरोधी भावनायें पैदा कर रहे हैं, उसकी पूरी जानकारी इस रिपोर्ट से आपको पढ़ने को मिलेगी साथ में "नियोगी कमेटी" ने जो ईसाई मिश्नरियों के हथकंडो को रोकने के लिए सिफारिशें की हैं वह भी पढ़कर आप ईसाई प्रचार निरोध में सहयोग दे सकेंगे।

इस रिपोर्ट की पूरी रिपोर्ट जो सरकार द्वारा प्रकाशित हुई है उसका मूल्य तीन भागों का १०॥) है।

इस आवश्यक ज्ञानका संक्षिप्त विवरण है। जो कि सर्व साधारण तथा पढ़े लिखे ईसाइयों में प्रचार के लिए उपयोगी है। लागत मात्र मूल्य ॥) रक्खा है—प्रचार के लिये २५ प्रतियों से अधिक मंगाने पर ।=) प्रति में मिलेगी।

समाजें तथा ईसाई निरोध प्रचारक सभा समितियें शीघ्र अधिक से अधिक प्रतियों का आर्डर भेजें। ताकि आर्डर के अनुरूप ही प्रतियें छपाई जावें।

निवेदक—
गोविन्दराम हासानन्द
"वेदप्रकाश" कार्यालय नई सड़क, देहली।

हिन्दू संगठन क्यों और कैसे ?

लेखक—अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, भूमिका लेखक, प्रो० इन्द्र विद्या वाचस्पति, हिन्दू संगठन के बिना, देश, जाति, और धर्म की रक्षा कठिन ही नहीं असम्भव है जब देश के चारों ओर विरोधियों का प्रबल मोर्चा लगा हुआ है, ऐसे समम में संगठन का रूप क्या हो, अमर शहीद श्रद्धानन्द के विचार पढ़िये और प्रचार करें। १२० पृष्ठोंकी पुस्तक का मूल्य २) से घटाकर प्रचारार्थ १) कर दिया है,शीघ्र मंगावें। ५ प्रतियोंसे अधिक मंगानेपर डाकखर्च माफ

मिलने का पता—गोविदराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

सिद्धान्त विमर्श

आयु नियत है—एक नवीन गवेषणा

सति मूले ताद्विया को जात्यायुर्भोगः। योगदर्शन

मूल के रहते हुए उसका फल जाति आयु और भाग है। कर्मों का फल प्रदाता ईश्वर है 'संयोग-हेतुरपरोऽपिदृष्टः। श्वे०। यह वैदिक सिद्धान्त है। जैन और बौद्ध भी पुनर्जन्म को मानते हैं, परन्तु वे फल प्रदाता ईश्वर को न मान कर मद्य के नशे की भांति कर्म को ही फलदाता कहते हैं। परन्तु मद्य का नशा तो संयोग जन्य फल है। पुनर्जन्म तो न्यायजन्य कर्म फल है जो बिना न्यायकर्त्ता के सम्भव नहीं। कोई चोर स्वयं कारागार में नहीं चला जाता। ईश्वर किस रूप में फल प्रदान करता है? योग दर्शन के उपर्युक्त सूत्र के अनुसार जाति आयु और भोग तीन प्रकार से जन्म विशेष द्वारा, कर्म फल प्रदान करता है।

इनमें जाति में तो कोई विवाद नहीं परन्तु आयु के सम्बन्ध में दो विचार विद्वानों ने प्रकट किये हैं जो मेरे मतानुसार युक्ति संगत नहीं।

पहला विचार श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का बतलाया जाता है। तदनुसार आयु श्वासों पर नियत होती है। ब्रह्मचर्य योगाभ्यास द्वारा श्वास की चिर-काल की गति से दिनों में आयु बढ़ सकती है श्वास तो उतने ही रहेंगे। अब्रह्मचर्य से श्वास शीघ्र चलेंगे इस तरह दिनों में आयु कम होगी, श्वास उतने ही रहेंगे। यदि कोई किसी का शिरच्छेद करता है तो यह समझना चाहिए कि उसके श्वास समाप्त होने वाले थे कि घातक ने कृपाण चला दी।

इस पर पहला आक्षेप यह होता है कि सब शास्त्रों और देशों में काल की गणना नियमित गति वाले पदार्थों दिन वर्ष और इसके मध्य घटिका यन्त्रादि से होती है अनियमित श्वासों से नहीं। वेद में 'जीवेम शरदः शतम्। मनु जी ने 'शतं वर्षाणि जीवति' इसी प्रकार से काल गणना की है। श्वासों की गणना से आयु का कोई प्रमाण नहीं।

दूसरा आक्षेप यह होगा कि यदि घड़ी पल दिनादि में आयु घट बढ़ सकती है तो वस्तुतः आयु नियत नहीं रही। यदि नियत मानें तो यह ऐसा ही धोका होगा जैसा कि एक गुरु ने दो शिष्यों में एक को एक मोदक दिया और दूसरे को दो। जब पहले ने यह अन्याय जतलाया तो गुरु ने उसके दो मोदकों को मसल कर एक बना दिया और कहा देखो इसको भी तो एक ही दिया है।

तीसरा आक्षेप—घातक ने उस समय कृपाण चलाया जब उसके श्वास पूरे होने वाले थे। तो क्या घातक ने ईश्वरीय प्रेरणा से ऐसा किया? तब घातक लोक परलोक दोनों में जल्लाद की भांति दण्ड का भागी न होगा। यदि नहीं तो ऐसे घात प्रतिदिन होते हैं, यह सम्भव नहीं हो सकता कि कृपाण का वार ठीक उसकी आयु की समाप्ति पर ही हो। और प्रायः ऐसी अवस्थाओं में आयु समाप्ति का कोई दूसरा निमित्त दृष्टि गोचर नहीं होता अतः यह एक वृथा कल्पना मात्र है।

चौथा आक्षेप—जितनी मौतें होती हैं वे नैमित्तिक देखी जाती हैं और नैमित्तिक प्रायः अपने दोषों अथवा अदृश्य रूप में रोगाणुओं के प्रवेश से हुआ करते हैं। इनमें ईश्वरीय प्रेरणा कोई दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः इनको ईश्वर कृत श्वासों के पूरे हो जाने का निमित्त कहना यथार्थ नहीं कहा जा सकता। बिना निमित्त श्वास पूरे हो जाने से ही मृत्यु का कोई उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं होता।

इस प्रकार आयु को नियत मानने से क्रियात्मक रूप में मानव पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यह कोई बल और साहस का कार्य करने से झिझकेगा,

कि श्वास शीघ्र चलने से आयु न घट जावे। रोगादि का उपाय न करेगा कि नियत आयु से पहले मैं कैसे मर सकता हूं।

इसके विरुद्ध अधिक आर्य विद्वानों का यह विचार है कि नियत आयु का अर्थ मानत्र की स्वाभाविक आयु है। परन्तु यह शुभ कर्मों से उसे बढ़ा और दुष्कर्मों से घटाने में स्वतन्त्र है दूसरे जीव भी इसे नष्ट कर सकते हैं। घटिका यन्त्र की भांति।

इस पर पहला आक्षेप तो यह है कि विज्ञान ने स्वाभाविक आयु प्रत्येक प्राणी की युवा आयु से पाच गुणा निश्चत की है। तदनुसार मानव की २५×५=१२५ वर्ष है। यह तो जाति शब्द के भीतर ही आ जाती है महर्षि पतञ्जलि ने जाति से पृथक् क्यों लिखा?

दूसरा आक्षेप— जीवों के कर्मों की विविधता से इनका फल आयु आदि भी विविध प्रकार का होना चाहिए। परन्तु स्वाभाविक आयु जात्यानुसार सब प्राणियों की एक ही होती है अतः सूत्रोक्त आयु स्वाभाविक नहीं।

तीसरा आक्षेप— वाधक अवस्था में कोई वस्तु नियत नहीं रह सकती. अतः यदि आयु घट बढ़ सकती है तो वह नियत न रहेगीं। यह भी स्मरण रहे कि कर्म का पल अनियत नहीं हो सकता।

नियत आयु का ठीक अर्थ—सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने सिद्ध किया है कि ईश्वर त्रिकालावाधित है। त्रिकाल जीव के लिए है, जीवों की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है अतः वह भविष्य का भी ज्ञाता है। जीव को कर्मों का फल भावी जन्म द्वारा ही दिया जाता है। दूसरे शब्दों में दूसरे जीवों के कर्मों के फल में सांझी बनाया जाता है। पिता परिश्रम से धन कमाता है परन्तु पुत्र रूप में दूसरा जीव उसका सांझी बन जाता है। अतः जीव के कर्मों का फल सर्वज्ञ (जीवापेक्षा त्रिकालज्ञ) ईश्वर के बिना सम्भव नहीं।

आर्य समाज के बहुत से विद्वान असम्भव दोष से ईश्वर को भविष्य का ज्ञाता नहीं मानते। इस असम्भवता पर तो पुनः कभी विचार किया जावेगा, परन्तु ऐसा मानने से वह कर्म फल प्रदान नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए ईश्वर एक जीव को धन के सुख भोग के लिए एक बड़े धनी के घर जन्म देता है। उसे यह तो पता नहीं कि एक महीने के पीछे क्या होगा। परन्तु एक महीना पीछे व्योपार में घाटा के कारण वह सारा धन गंवा देता है तो उस बालक को सुख के स्थान पर दुःख भोगना पड़ गया।

यदि ईश्वर भविष्यज्ञ है तो ऊपर के उदाहरण में कहा जावेगा। कि उस धनी के घर में ऐसे जीव को भेजा जिसके कर्म ऐसे है कि एक मास के सुख भोग के पीछे दुःख भोगे। ऐसे ही ईश्वर जानता है कि किसी प्राणी ने किस निमित से कब मरना है, अतः भोग की भांति यही उसकी नियत आयु है।

(विश्वनाथ आर्योपदशेक घुग्घली)

समालोचना

कुछ महत्व पूर्ण ग्रन्थ—लेखक प्रो० विष्णुदयाल एम. ए (मारीशस)

भारत में मिलने का पता—युधिष्ठर मीमांसक प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, ४६४३ रेगर पुरागली न० ४० करोलबाग न्युदेहली ५। गोविंदराम हासानन्द नईसड़क देहली, १८× २२= अठपेजी, पृष्ट १२०+१२=१३२ मूल्य १।।)। छपाई सुन्दर।

प्राक्कथन में लेखक महोदय ने लिखां है आज कल भारत में और भारत से भिन्न देशों में भारतीय ग्रन्थों के साथ अन्याय किया जा रहा है। भारत की आत्मा के दर्शन तब तक नहीं कर पाएंगे जब तक उसके प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों की देन को नाचीज समझते रहेंगे।

वस्तुतः लेखक का कथन अक्षरशः सत्य है। योरोपियिन विद्वानों और उनके चरणचिन्हों पर चलने वाले भारतीय विद्वानों ने भारतीय प्राचीन साहित्य के साथ घोर अन्याय किया है उसमें अविश्वास की भावना का उदय करके समस्त प्राचीन इतिहास को झूठा तथा काल्पनिक सिद्ध करने की दुश्चेष्ठा की है। लेखक ने अपने देश वासी भाइयों को भारतीय साहित्य दर्शन की सच्चा करने और आधुनिक लेखकों के लांछनों को दूर करने जो प्रयास किया है वह अत्यन्त स्तुत्य है। वाचस्पति

नास्तिकों को सन्देश

(लेखक=जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक)

सोहन (नास्तिक):—मोहन ! मुझे प्रभु के दर्शन कराइये, जिस के सम्बन्ध में आप प्रतिदिन बहुत कुछ कहा करते हैं। यदि ईश्वर है, तो मैं उसे अपनी आंखों से देखना चाहता हूं।

मोहन (आस्तिक):—मुझे दर्द का आकाश का अथवा वायु का दर्शन करा दो मैं आपको ईश्वर दर्शन करा दूंगा।

सोहनः—आप का प्रश्न बड़ा हास्यस्पद है क्या दर्द, आकाश अथवा वायु का भी दर्शन हो सकता है ? ये तो अनुभव की वस्तुएं हैं।

मोहन :—ईश्वर का भी अनुभव होता है। वह इन चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता क्योंकिः—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो।
(केन १।३)

उस ब्रह्म में आंख नहीं जाती, न वाणी जाती है और न मन जाता है। वह इन्द्रियों से परे है। निरन्तर और अत्यन्त तीव्र योग साधन के द्वारा प्रभु का आत्मा में अनुभव होता है।

सोहनः—यदि ईश्वर अतिन्द्रिय है तो वह सत्ता रहित, शून्य और अभाव मात्र होगा। ऐसे प्रभु की प्राप्ति से क्या लाभ ? मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करता। मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूं, अतः मैं तो अनुसन्धान शाला के प्रमाण चाहता हूँ।

मोहनः—आप अनुसन्धान शाला के प्रमाण चाहते हैं ? बहुत खूब ! आप अनन्त और सर्व व्यापक को अपनी Test tube परीक्षा नली में बन्द करना चाहते हैं ? वह आपकी नली में बन्द नहीं हो सकता, परन्तु ध्यान रक्खो, प्रभु ही रसायनिक पदार्थों का संचालक है। उसके बिना एक परमाणु भी नहीं हिल सकता। प्रभु अन्तर्यामिन् और सर्व नियन्ता है। उसी की ज्योति से अग्नि जलती है, उसके प्रकाश से सूर्य प्रकाशित होता है उसी की शक्ति से वायु गति करती है। वही नियमों का निर्माता है। उसी पर विश्वास करो, उसी की भक्ति करो, उसी की कृपा से आप ब्रह्म विद्या को जानकर मोक्ष पद के अधिकारी होंगे।

मोहनः—क्या ब्रह्म विद्या भी कोई विद्या होती है ? मैंने ओक्स फोर्ड और कैम्ब्रेज (Oxfored and Combridge) विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की है, मैंने इस विद्या के सम्बन्ध में कभी नहीं सुना। ऐसा प्रतीत होता है आप असत्य भाषण भी करते हैं।

मोहनः—अश्लील शब्द प्रयोग न करो। शिष्ट, सभ्य और विनम्र बनो। ब्रह्म विद्या ही वास्तविक विद्या है। ब्रह्म विद्या ही समस्त विद्याओं का श्रोत एवं आधार है। ब्रह्म विद्या से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। इस विद्या को आप किसी विद्यालय में प्राप्त नहीं कर सकते। यह तो किसी ब्रह्म निष्ठ गुरु के चरणों में बैठ कर किसी अरण्य विश्व विद्यालय में ही प्राप्त की जा सकती है, लन्दन के विश्व विद्यालयों में नहीं।

सोहनः—जब ईश्वर आंखों से दिखाई नहीं देता तो मैं किस प्रकार विश्वास करलूं कि ईश्वर है ?

मोहनः—यद्यपि आप चन्द्रमा को दिन में नहीं देखते, परन्तु चन्द्रमा है। दूध में मक्खन दिखाई नहीं देखता, परन्तु दूध में मक्खन है। पृथिवी और सूर्य घूमते हुए दिखाई नहीं देते, परन्तु ये घूमते हैं। पृथिवी गोल दिखाई नहीं देती पृथिवी परन्तु गोल है। इसी प्रकार यद्यपि आप चरम चक्षुओं से ईश्वर को नहीं देख सकते परन्तु ईश्वर विद्यमान है। ईश्वर तो कण कण, अणु अणु और प्रत्येक परमाणु में ओत प्रोत है। वेद कहता है :—

स ओतः प्रोतः विभू प्रजासु (य० ३२।८)

वह प्रजाओं में ओत प्रोत है । एक कवि ने भी क्या ही सुन्दर कहा है :—

जिस तरह अग्नि को शोला हर संग में मौजूद है ।
इस तरह परमात्मा हर रंग में मोजूद है ॥
हर जगह मौजूद है पर दृष्टि में आता नहीं ।
योग साधन के बिना कोई उसे पाता नहीं ॥

ईख के निष्पीडन से मधुर रस की प्राप्ति होती है । स्वर्ण को तपाकर पीटने से स्वर्ण की कान्ति बढ़ती है । काष्ठ के अन्दर अग्नि है परन्तु संघर्ष से प्रकट होती है । दूध में मक्खन विद्यमान है परन्तु मथानी से मन्थन करने से प्रकट होता है । मेंहदी में लाली है परन्तु पीसने से अरुणिमा प्रकट होती है । ठीक इसी प्रकार निरन्तर अभ्यासे और योग साधन से ज्ञान चक्षुओं के प्राप्त होने पर परमात्मा का हृदय में साक्षात्कार होता है ।

सोहनः—ईश्वर. आत्मा; ज्ञान चक्षु, आदि कोई वस्तु नहीं, यह तो भक्तों की कल्पना मात्र है । पांच भूतों के संयोग से शरीर स्वयं बन जाता है । शरीर ही आत्मा है । शरीर से परे कुछ नहीं है । इन्द्रिय जनित सुख से परे कुछ भी नहीं है । मुझे तो विरोचन अथवा पाश्चात्यों का सिद्धान्त, Eat drink and be merry" खाओ पीओ और आनन्द लूटो बहुत अच्छा लगता है। चार वाकों का सिद्धान्त भी यही कहता है :—

यावज्जीवं सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥

जब तक जीओ आनन्द पूर्वक जीओ। ऋण लेकर घृतादि पदार्थों का भोग करो क्योंकि शरीर के छूट जाने पर फिर पुनर्जन्म नहीं होता। सांसारिक पदार्थों और इन्द्रियों से अधिक से अधिक सुख प्राप्त करना चाहिए। जप, तप, स्वाध्याय, योगाभ्यास, आत्म संयम की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक इन्द्रिय को अपने अपने विषय के साथ खेलने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए, यही बुद्धिमत्ता है। शरीर को कष्ट देना, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना तथा ध्यानादि का अनुष्ठान करना तो मूर्खों के कर्म हैं।

मोहनः—संसार के विषय भोग अनित्य हैं, स्थिर नहीं हैं । इतना ही नहीं ये मनुष्य की इन्द्रियों के तेज को नष्ट करते हैं । इन भोगों को भोगने के लिये सारा जीवन भी अत्यन्त थोड़ा है । महाराज ययाती ने सैकड़ों वर्ष इन भोगों को भोग कर अपने अनुभव के आधार पर ठीक ही कहा था—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवामि वर्धते ॥
(महा० आदि० ८५।१२)

विषयों की कामना इन विषयों के उपभोग से कभी शान्त नहीं होती, अपितु घी की आहुति पड़ने से अग्नि की भांति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है ।

कोई भी मनुष्य धन धान्य, पुत्र कलत्र और स्त्री आदि से सुखी नहीं बनाया जा सकता। जब धन सम्पत्ति नष्ट हो जाते हैं, पुत्र या पत्नी मर जाती है, अथवा कोई भयंकर व्याधि आ घेरती है तो मनुष्य चिन्ता के सागर में डूब जाता है। नचिकेता इन सांसारिक भोगों से तनिक भी विचलित नहीं हुआ था। उसने धन धान्य, हाथी घोड़े, पुत्र पौत्र और चक्रवर्ती राज्ज सबको ठोकर मारकर यमाचार्य से आत्मा और परमात्मा के विषय में ही पूछा था। महात्मा गौतम बुद्ध ने भी राज पाट स्त्री और पुत्र सब कुछ को त्याग कर जंगल की राह ली थी। आर्य समाज के प्रवर्तक आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी करोड़ों की गद्दियों को ठुकरा दियां था। तुम संसारी प्रपंच में फंसे हुए हो। इसीलिये विषयों के पीछे पड़े हुए हो और उन में ही सुख का अनुभव कर रहे हो परन्तु ध्यान रक्खो, तुम जैसे लोगों को ही जिन्हें चारवाक का सिद्धान्त प्रिय लगता है, यमाचार्य ने चेतावनी देते हुए कहा था:—

अयं लोको न अस्ति पर इति मानी,
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ (कठ० १।२।६)

जो यह मानता है यही संसार है, दूसरा जन्म

नहीं होता, वह बार बार मृत्यु के वश में आता है।

और वेद ने कहाः—

मैतं मन्थामनु गा भीम एष। (अथर्व० ८।१।१०)

इस मार्ग पर मत चल यह मार्ग बहुत भयंकर है।

यदि वास्तविक आनन्द चाहता है, सच्चे सुख, शान्ति और कल्याण की खोज में है तो वेद माता की शरण में आ। वेद माता के आदेशानुसार अपना जीवन बना। वेद माता का स्पष्ट आदेश है:—

संजीव स्थ सं जीव्यासं। (अथर्व० १९।६९।१)

स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो।

तुम्हारी मानसिक दशा बहुत शोचनीय है, इसीलिये तो कहते हो कि जप, `योगाभ्यास की आवश्यकता है। प्रभु से प्राथना है कि आप को विशुद्ध बुद्धि प्रदान करें जिस से तुम जप, तप, स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझ सको।

सोहनः—प्रकृति स्वयं सब कुछ कर लेती है! हमें ईश्वर का अस्तित्व मानने की क्या आवश्यकता है? प्रकृति ही उत्पन्न करती है, प्रकृति ही पालन करती है। बस प्रकृति ही सब कुछ है। ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकृति ही प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था कर सकती है।

मोहनः—प्रकृति जड़ है। प्रकृति में स्वयं बनने की सामर्थ्य नहीं है। जिस प्रकार मिट्टी से स्वयं घड़ा नहीं बन सकता जब तक कुम्हार न बनाये प्रकृति को गति अथवा क्रिया न दे। प्रकृति में स्वयं बनने की शक्ति है तो पदार्थ बन कर बिगड़ने नही चाहिए, परन्तु बने हुए पदार्थ बिगड़ते रहते हैं अतः सिद्ध है कि प्रकृति स्वयं कुछ भी नहीं बना सकती। प्रकृति में स्वयं न उत्पन्न करने की शक्ति है, न पालन करने की और न ही व्यवस्था करने की अतः प्रकृति को कार्य रूप देने के लिए परमात्मा को मानना परमावश्यक है।

सोहनः—अच्छा, कृपया अपने ईश्वर के कुछ मुख्य मुख्य गुण विशेषण बताइये।

मोहनः—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्ति मान्, सर्वोत्पादक, निराकार, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, नित्य, पवित्र, अजर, अमर, अभय और अनुपम है।

सोहनः—यदि परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, तो क्या वह अपने आप को मार सकता है, अपने अस्तित्व को अस्वीकार कर सकता है? अथवा क्या वह अपने जैसा एक दूसरा ईश्वर बना सकता है? क्या वह एक व्यक्ति को उसके अपने ही कन्धों के ऊपर कूदने के योग्य बना सकता है? क्या वह ऊंट को सुई के छिद्र से निकाल सकता है? क्या वह सूर्य को शीतल किरणें फैलाने वाला और चन्द्रमा को अग्नि बरसाने वाला बना सकता है? क्या वह बन्ध्या स्त्री को सन्तान प्रदान कर सकता है? यदि ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता तो फिर वह ईश्वर होने के योग्य नहीं है।

मोहनः—सोहन! वास्तव में तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, यही कारण है कि तुम ऐसे अशिष्ट, निष्प्रयोजन तथा अनर्थक प्रश्न पूछ रहे हो। आध्यात्मवादी ऐसे प्रश्न नहीं पूछते। प्रभु सर्वशक्तिमान है। वह निमेष मात्र में पदार्थों को बना और बिगाड़ सकता है। प्रभु यदि चाहे तो चन्द्रमा अग्नि बरसा सकता है। यदि उसकी कृपा हो जाये तो क्या नहीं हो सकता? वेद में कहा है :—

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्।
प्रेमन्धः ख्यन्नि श्रोणो भूत्॥ (ऋ० ८।७९।२)

जो नग्न है उसे प्रभु वस्त्र देता है, जो रोगी है उसे निरोग करता है। उसकी कृपा से अंधा देखता है और पगु गमन करता है।

परन्तु सर्व शक्तिमान् का ऐसा अर्थ नहीं जैसा तुम समझते हो। प्रभु अपने नियमों को नहीं तोड़ सकता। सर्व शक्तिमान का अर्थ तो यह है कि ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, पालना और संहार तथा जीवों को उनके कर्मों के अनुसार यथा योग्य फल देने में किसी की किंचित मात्र भी सहायता नहीं लेता। तुम्हारे प्रश्न अर्थ हीन और सार रहित हैं। बुद्धिमान बनो।

अपने हृदय को शुद्ध और पवित्र बनाओ तथा प्रभु की भक्ति करो।

सोहनः—मोहन ! तुम कहते हो 'प्रभु दयालु है ।' मैं कहता हूं, 'ईश्वर अत्यन्त निर्दयी तथा अन्यायी है, क्योंकि वह उत्पन्न होते ही किन्हीं को धनवान् बना देता है और किन्ही को निर्धन । किसी को दुःखी और किसी को को सुखी, किसी को स्वस्थ और किसी को रोगी बनाता है ।'

रामः—प्रभु पूर्ण दयालु है । प्रभु तो साक्षी मात्र है। यह संसार निश्चित नियमों के अनुकूल चल रहा है । संसार में निश्चित क्रम और व्यवस्था है । धर्म का फल है सुख, शांति और आनन्द तथा अधर्म का फल है दुःख और अशांति ! प्रभु न किसी व्यक्ति को दण्ड देता है और न किसी को पारतोषिक प्रदान करता है । मनुष्य को अपने ही शुभ और अशुभ कर्मों का फल प्राप्त होता है । जो जैसा बोता है । वह वैसा ही काटता है । वेद ने कितना सुन्दर कहा है :—

पक्तारं पक्वाः पुनराविशाति । (अथर्व १२।३।४८)

जो जैसा पकाता है वैसा ही खाता है । अतः इस में प्रभु का को कोई दोष नहीं है । यहां तो कार्य और कारण का नियम लागू है ।

सोहनः—यदि प्रभु दयालु हैं, दया का अनन्त सागर है, तो संसार में दुःख अशांति, रोग आदि क्यों हैं ?

मोहनः—संसार में दुःख सर्वोत्तम वस्तु है। वास्तव में यह छुपे रूप में एक आशीर्वाद है । दुःख, रोग और अशांति मानव मस्तिष्क को प्रभु के चरणों में प्रेरित करते हैं । इसी लिये एक कवि ने कहा है :—

सुख के माथे सिल पड़े नाम हृदय से जाये ।
बलिहारी वा दुःख को पल पल नाम रटाये ॥

दुःख ही मनुष्य को प्रभु की याद दिलाता है । दुःख संकल्प शक्ति को बढ़ाता है । दुःख ही मनुष्य को आनन्द प्राप्ति के लिए विवश करता है जिस से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है ।

सोहनः—संसार में दुःख की क्या आवश्यकता है ? क्या परमात्मा पूर्ण सुखमय सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता ? सुख और दुःख दोनों की क्या आवश्यकता है ।

मोहनः—दुःख और सुख सापेक्ष शब्द हैं। दुःख की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । सुख और दुःख एक ही सिक्के के ऊपर औरनीचे के दो भाग हैं । दुःख का अस्तित्व सुख का प्रकाश करने के लिये है । संसार में पूर्णानन्द प्राप्त नहीं हो सकता, पूर्णानन्द तो प्रभु से ही प्राप्त हो सकता है । मनुष्य का शरीर उसके पुण्य और पाप कर्मों का फल है, इसी लिए उसे दुःख और सुख प्राप्त होता है । अविद्या को समाप्त करो, इस विज्ञान को समझो और बुद्धिमान् बनो । मानव शरीर बड़ी कठिनता से मिलता है । अतः इसी जन्म में प्रभु प्राप्ति का यत्न करो । सुनो ! उपनिषद् पुकार कर कह रही है:—

इह चेद् वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनिष्टिः । (केन० २।५)

इस जन्म में ब्रह्म को जान लिया तो ठीक है नहीं तो महान हानि है, जन्म निष्फल है ।

सोहनः—मोहन ! आप का बहुत धन्यवाद । आप की अकाट्य युक्तियों और तर्कों से मेरा मस्तिष्क आप के पक्ष की ओर झुक गया है । अब कृपया ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में कुछ और अकाट्य प्रमाण दीजिये !

मोहनः—प्रभु तो स्वतः सिद्ध है ! क्या आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता है ? परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करने का अर्थ है अपने अस्तित्व को न मानना, मूर्खता है ! इस लिये आप परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते !

सोहनः—यह बात समझ में आगई ! अपने अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ! कृपया अब यह बताइये कि प्रभु को प्राप्त कैसे किया जाये !

(शेष पृष्ठ १६ पर)

हमारे अद्वितय तीन ग्रंथ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी. स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्त्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इसीलिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके है, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४॥)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका– आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार' दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिल्कुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े तीन रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१–'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२–'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैल, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्ण से टक्कर लेती है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, ओज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलवीर एवेन्यू देहरादून।

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या

(गतांक से आगे)

ऐसे कामों में क्षमायाचक की अपनी आत्मा अधिक उन्नत हो जाती है। और यदि वैमनस्य बहुत बढ़ गया हो तो आर्यों को अपनी न्याय-सभा से निर्णय करा लेना चाहिए। विरोध का कांटा, बहुत दिनों तक, हृदय में चुभा रहने देना बड़ा हानिकारक हुआ करता है। आर्यों का व्यवहार प्रीति-पूर्वक तो हो ही, परन्तु वह धर्म्मानुसार यथायोग्य भी होना चाहिए। "धर्म्मानुसार यथायोग्य" व्यवहार का तात्पर्य यह है कि जो जिस आदर-सम्मान का अधिकारी है, उसे धर्म्मानुसार वही आदर सम्मान दिया जाय। "धर्म्मानुसार" पद यह प्रकट करता है कि धर्म्म से गिरकर, धर्म्म को तिलाञ्जलि देकर किसी के साथ आदर सम्मान आदि का व्यवहार न किया जाय। उदाहरणार्थ, पुत्र का कर्तव्य है कि पिता की आज्ञा का पालन करे और सेवक का कर्तव्य है कि अपने स्वामी की सेवा करता रहे। परन्तु यदि पिता अपने पुत्र को मदिरा पान करने की, कुव्यसन में कूदने की आज्ञा दे, या स्वामी सेवक को धर्म त्याग देने को कहे, निरपराध को दंड देने की प्रेरणा करे तो ये व्यवहार धर्म्मानुसार नहीं हैं। इसलिए इन्हें न किया जाय।

'धर्म्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार' के कर्त्तव्य का पालन करने के लिए आर्यों को चाहिए कि यज्ञादि कर्मों को बड़े आदर से किया करें, वेदी में शुद्ध स्वच्छ वस्त्र धारण करके बैठें, पुरोहित को आदर से बैठावें, उनसे दीक्षा लें, विधि के अनुसार कार्य करें, यजमान के कर्मों को यथा विधि निभावें।

पुत्र-पुत्री को उचित है कि अपने माता-पिता को किसी प्रकार का भी कष्ट-क्लेश न होने दें। प्रति दिन प्रातः उठकर उनको नमस्कार करें। संतान को यह अवश्य समझना चाहिए कि आर्य धर्म्म में पितृ पूजन को परमात्म-पूजन की भांति ही एक आवश्यक और उत्तम कर्म माना है। शास्त्रों में माता-पिता दोनों साक्षात् देवता वर्णन किए गये हैं। पितृ व्रत का पालन करना पुत्र-पुत्रियों के लिए एक पवित्र कर्म है।

आर्यजन भ्रातृ-व्रत को भी कभी न भूलें। भ्रातृ-भाव के प्रेम बन्धन को कदापि ढीला न होने दें। इसी प्रकार मित्र-धर्म्म के विमल भाव में भेद-भावना और द्रोह आदि दोषों को प्रवेश करने देना आर्य-धर्म्म के प्रतिकूल कर्म है। आर्य-धर्म्मी को सारे सम्बन्धों के धर्म्म यथा विधि पालने चाहियें। भार्या-व्रत को पालने के लिए सरलता, सुशीलता, सदाचार और निःस्वार्थ भाव अत्यावश्यक गुण हैं। इनको धारण करने से पति-पत्नी का प्रेम मन्द नहीं पड़ता। यह सम्बन्ध-सूत्र सदा अटूट बना रहता है। जहां इस सम्बन्ध में भेद-भाव आ जाय, स्वार्थ प्रवेश कर ले, सरलता न रहे, आचार-विचार में दोष दिखाई दे, वहां आपस में किरकिरापन आ जाता है; सारा सम्बन्ध-सुख फीका पड़ जाता है। आर्यजनों के गृहों में कलह का होना, वैमनस्य का बना रहना, परस्पर अवाच्य बोलना, मार पीट तक की नौबत आना एक बड़ा भारी दोष है।

आर्यव्रती को अतिथि-व्रत का भी पालन करना चाहिये। जब कोई गुरु जन आंगन में प्रवेश करे, तब उसे आते देखकर प्रसन्न हो। विकसित नेत्रों से उनके दर्शन करे। गुरुजन, सम्मानित व्यक्ति और इष्ट मित्रों को आते देख उत्थान-पूर्वक खड़े होकर उनका स्वागत करना उचित है। अभ्यागमन-पूर्वक नम्र नमस्कार से उन्हें प्रतिग्रहण कर लिवा लाना आर्य्य का धर्म्म है। मान्य व्यक्तियों को आसन पर निमन्त्रित करके उनके बैठने पर आप भी आसन

पर बैठना आर्य रीति है। इस रीति के अनुसार मान्य व्यक्ति से ऊंचे आसन पर बैठना, उस के खड़े होने पर आप बैठे रहना, पूछने पर समीप आकर उत्तर न देना, बुलाने पर 'जी' 'हाँ जी' 'महाराज' इत्यादि शब्दों से न बोलना अथवा मौनी बन जाना अवज्ञा-कर्म समझा जाता है। आर्य रीति से. किसी मान्यजन को 'ओ' 'हे' 'तू' अरे, अबे, इत्यादि शब्दों से सम्बोधन करना, पाँव आदि से ठोकर लगाना विनय-धर्म्म के विरुद्ध है।

आर्यजन को उचित है कि आगत सज्जन का 'आइये, पधारिये, कृपा कीजिये, मैं आपका स्वागत करता हूँ, आपका मेरे आंगन में आना शुभ है, आप का शुभ आगमन मेरे लिए प्रसन्नकारी हुआ है' इत्यादि शब्दों से पूजन करे। किसी के जाने पर उसको अनुगमन-पूर्वक पहुँचाने जाय। यथायोग्य नमस्कार, हस्तपीड़न आदि व्यवहार पूर्वक विदा करे। 'फिर भी दर्शन दीजियेगा, सेवक के गृह को स्वशुभागमन से शोभा प्रदान कीजियेगा, स्मरण रखियेगा, इत्यादि वाक्यों से सत्कृत करे, 'स्वस्ति हो' कहे। किसी जन के वचनों को सुनकर अपनी स्वीकृति के प्रकाशक ये शब्द बोले:—सत्य वचन, बहुत अच्छा, तथास्तु।

आर्य जनों का यह कर्तव्य-कर्म है कि यदि कोई उन पर उपकार करे तो उसको इन शब्दों से सत्कृत करे।—'मैं आप का बड़ा आभार मानता हूँ; आप की अपार कृपा का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ; आपने मुझे अनुगृहीत किया; मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।' आर्यजन किसी से अक्खड़पन से प्रश्न न करें, वरन् इन वाक्यों को व्यवहार में लावें:—'आप मुझे बता सकते हैं कि अमुक वस्तु कहाँ मिलती है? मैं आप का निवासस्थान, श्रीगृह, शुभनाम पूछ सकता हूं? कृपया बताइयेगा कि फिर आप कब पधारेंगे?'

मेल मिलाप में छोटे बड़े को यथा योग्य आदर देना, समागत का आदरातिथ्य करना, किससे किस प्रकार मिलना, उसे कैसा सम्मान देना, इत्यादि व्यवहार धर्म्मानुसार होने उचित हैं।

आर्यजन के अधीन काम करने वाले जो मनुष्य हों, उनके साथ वह सत्य और न्याय का व्यवहार करे। किसी पर अत्याचार करने से कांपे। सदा ध्यान रक्खे कि कोई निरपाध कदापि दण्डित न हों; किसी को अनुचित कष्ट न उठाना पड़े, उसका भविष्य न बिगड़ जाये। और यदि कोई आर्यजन किसी के अधीन कार्य करता हो, किसी की सेवा कर रहा हो तो वह अपने स्वामी की सेवा धर्म्मानुसार, यथा योग्य रीति से—जैसी सेवक को करनी चाहिए वैसे—करे। अपने नियत कामों को नियत समय पर करने से न चूके। कार्यों में आलसी और प्रमादी न बने। अपने स्वामी का आज्ञाकारी, विनीत, विश्वासपात्र और सच्चा सेवक हो।

आर्य सभासदों को अपनी शक्ति सुगठित और बलवती बनानी चाहिये। उनमें भ्रातृभाव प्रीति-प्रेम-पूर्ण हो। वे दुःख दर्द, कष्ट क्लेश में, विघ्न-बाधाओं में एक दूसरे की पूरी सहायता करें। दुर्दिन और दीन दशा से अपने धर्म्म-बन्धु का उद्धार करना अपना धर्म्म समझें। आर्य सभासदों को यह पता होना चाहिये कि कौन सभासद कहां रहता है। उसकी अवस्था कैसी है! उसे सहायता की आवश्यकता तो नहीं है, इत्यादि। इसे साहाय्य के कार्यों के लिए आर्य-सेवक-संघ का प्रत्येक समाज में होना अत्यावश्यक है। इस आर्य सेवक-संघ का कर्त्तव्य-क्षेत्र कुछ विस्तृत हो तो बहुत अच्छा है। सेवक-संघ के कर्त्तव्य-क्षेत्र की सीमा में ये काम होने चाहिये कि वे पता रक्खें कि उनके भिन्न भिन्न मुहल्लों में कौन कौन जन असहाय हैं, कौन आतुर हैं, कौन अनाथ हैं। ऐसा कौन जन है जो लोभवश अथवा किसी वासनावश अपना धर्म्म त्यागने को तैय्यार है। किस पर कौन बलात्कार कर रहा है। सेवक-संघ ऐसी सावधानी से काम करे कि नगर का कोई भी वृत्त उनकी आंखोंसे ओझल न रहे। इत्यादि सब वृत्तान्तों का ज्ञान उस स्थान के समाज को अवश्य होना चाहिये। यदि ऐसे कार्य ऐसी सुगठित रीति से किसी समाज में नहीं किये जाते तो समझना चाहिये कि वह समाज अपने कर्त्तव्य-कर्म्म से आँखें

मूँदे बैठा है। उसने अपनी स्थापना के उद्देश्य को ही नही समझा।

आर्य्य समाज के काम से प्रभावित क्षेत्र सारी आर्य जाति है। आर्य जाति पर इसका प्रभाव अदि काल से बना चला आता है। आर्य समाज को सभासद इसी क्षेत्र में मिलते हैं। इसके साथ समाज का सा धर्म्म भी अधिकतर है। इस पर होने वाले आक्रमणों का उत्तर कई बार आर्य समाज ने दिया है। इसकी होती हुई हानि को समाज ने कभी सहन नहीं किया। और यह कार्य-क्रम महर्षि श्री दयानन्द जी से लेकर आज तक, अनवच्छिन्न शृंखला के रूपमें, चला आ रहा है। इस परम्परा से प्राप्त कर्तव्य को, उत्तरदायित्व को, आर्य-सेवक-संघ द्वारा भली प्रकार निभाना चाहिए।

(पृष्ठ १२ का शेष)

मोहनः—प्रभु में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न करो! इन्द्रियों को वश में करो! मन को शुद्ध और पवित्र बनाओ! यम और नियमों का श्रद्धा पूर्वक सेवन करो तब हृदय में प्रभु का दर्शन होगा!

सोहनः—आप का बहुत बहुत धन्यवाद! आप ने मुझे संसार रूपी गढ़े में गिरने से बचा लिया अब तक मैं बहुत भ्रम में था! मैं अविद्या और अंधकार में डूबा हुआ था! मैं आप का बहुत आभारी हूं कि आप ने अपनी अकाट्य, प्रबल तथा दृढ़ युक्ति और प्रमाणों से मेरी अविद्या और अज्ञान को नष्ट कर दिया है!

मोहनः—प्रभु का धन्यवाद है कि आप की बुद्धि ठीक मार्ग पर आगई और आप भी मेरे विचार वाले हो गये! अब आप भी इस ब्रह्मविद्या का प्रचार और प्रसार करो, नास्तिकता को छिन्न भिन्न करो और आस्तिकता का प्रचार करो!

सोहनः—बहुत अच्छा! आप की आज्ञा शिरोधार्य है मैं आप की आज्ञा को पालन करूंगा! आप का हार्दिक अभिवादन! अच्छा नमस्ते!

मोहनः—नमस्ते!

इति शम्

(पृष्ठ ५ का शेष)

करण हो गया कि जगन्नियन्ता प्रभु परमात्मन् का मुख्य नाम ओ३म् है और अन्यान्यों नामों की अपेक्षा सरलता तथा व्यापक है अतः प्रत्येक स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध विद्वान तथा अविद्वान व्यक्तियों को चाहिये कि सदा ओ३म् नाम के द्वारा प्रभु का चिंतन किया करे, तथा प्रत्येक शुभ कार्यों का अनुष्ठान ओ३म् के उच्चारण तथा ध्यान पूर्वक किया करे, जैसा कि कृष्ण भगवान् ने गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है :—

तस्मादीमित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रियाः।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्तः सततं ब्रवादिनाय ॥
गी० १७।२४

अर्थातः—इस हेतु ब्रह्मवादियों अर्थात् देवदत्व बिशारद पुरुषों की शास्त्रोक्त यज्ञ दान तप की क्रियायें ओ३म् शब्द का उच्चारण पूर्वक ही हुआ करती हैं।

इस श्लोक पर भाष्य करते हुए स्वामी रामानुजायार्य ने लिखा है :—

तस्माद् ब्रह्मवादिनां वेदवादिनां त्रैवर्णिकानां यज्ञ दान तपः क्रियः विद्यानोक्ताः वेदविधानोक्तः आदो "ओ३म्" इति उदाहृत्यः सततं सर्वदा प्रवर्त्तन्ते ॥

अर्थात्:—इसलिये ब्रह्मवादी वेदपाठी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की वेदमें विधान की हुई यज्ञ दान और तपरूपी सारी क्रियायें सदा पहिले 'ॐ' इस शब्द का उच्चारण करके आरम्भ की जाती है :—

परमात्मा के नाम स्मरण करने में किसी व्यक्ति के लिए प्रतिबन्ध हो स्त्री हो पुरुष हो चाहे किसी भी वर्ण का हो परमात्मा के ध्यान तथा चिन्तन से परमोत्तम गति को प्राप्त कर जाते हैं।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गातम् ॥

ईश्वर प्राप्ति (गतांग से आगे)

उत्तर— इसका उत्तर यह है कि बहुत सी वस्तुएं तो मन को लाभ पहुँचाती हैं जो कि प्रकृति की बनी हुई हैं, और बहुत सी वस्तुएँ आत्मा को लाभदायक हैं। बस जब यह आत्मा मन शरीर आदि को अपना समझता है तो यह मन के लाभ में ही अपना लाभ समझ कर प्राकृतिक पदार्थों की प्राप्ति करने में प्रवृत्त होता है। अर्थात् मन के आधीन हो जाता है। मनकी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता और मन की अप्रसन्नता में ही अप्रसन्न रहता है। तब यह काम क्रोध लोभादि से परिपूर्ण हो जाता है। जब तक इन काम क्रोधादि का प्रतिकार (निवृत्ति) नहीं कर चुकता, तब तक इसको शान्ति नहीं होती अर्थात् जीवात्मा अपने हितैषी एक सच्चिदानन्द ईश्वर से हित की आशा त्याग कर मन के हितकारी प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त होना ही परतन्त्रता है। यही परतन्त्रता दुःख नाम से कथन की गई है कि—

बाधनालक्षणं दुःखमिति । न्या० द० ।१।१।२१

अर्थात् परतन्त्रता ही दुःख है। जो मनुष्य अपने मन को वश में नहीं करते वे अपनी इन्द्रिय शरीरादि को भी वश में नहीं कर सकते, और जिनके वश में अपने शरीरादि नहीं होते, वे अपने कुटुम्ब को भी वश में नहीं कर सकते। जैसे दुर्बल वृद्ध पुरुष अपने पुत्र पौत्रादि को वश में नहीं कर सकते। जो अपने कुटुम्ब को भी वश में नहीं कर सकते, वे अपने ग्राम नगर देशादिकों को कैसे वश में कर सकते हैं? पुनः वे दूसरे देशों के मनुष्यों पर क्या शासन करेंगे? प्रयोजन यह है कि अपने मन का वश में करना ही इन्द्रिय शरीरादि के वश में होने का कारण है। मनुष्य को उचित है कि मन को ईश्वर की ओर लगावे। जब मन ईश्वर की ओर लगेगा तब प्रकृति की ओर न जायेगा, क्योंकि मन में दो ज्ञान एक काल में नहीं होते। मन के प्रकृति से निवृत्त होने से इन्द्रियाँ भी विषयों से निवृत्त हो जायेंगी, अर्थात् चिन्ता में लीन हो जायेंगी, इसका नाम प्रत्याहार है।

जब मन अपने वश में हो जाता है तब उसको वहीं स्थिर करके ईश्वर का ध्यान किया जाता है, उसके स्थिर करने का नाम धारणा है। जैसा कि कहा है कि:—

देशबन्धश्चित्तस्यधारणा । यो० द० पा० ३।१

मन की चंचलता को छुड़ा कर एक देश में ईश्वर ध्यानार्थ उसे स्थिर करना धारणा कहाती है। यही धारणा योग का छठा अंग है। इसके अनन्तर ध्यान है।

प्र०— ध्यान किसे कहते हैं?

उ० —सब प्राकृतिक विषयों से पृथक होकर एक निराकार सच्चिदानन्द की ओर मन को प्रवृत्त करना ध्यान है।

प्र० —वाह जी वाह! क्या कभी निराकार का ध्यान हुआ करता है? भला जिसकी कोई आकृति ही नहीं उसका ध्यान कैसा? ध्यान तो सर्वथा साकार का ही हुआ करता है।

उ० —प्रथम, तुम ध्यान किस को कहते हो? यदि कहो कि ध्यान उसे कहते हैं कि जिस वस्तु को हमने देखा वा सुना है उसका स्मरण हो जाना ही ध्यान है तो यह तुम्हारा भ्रम है। देखिये महात्मा कपिल मुनि अपने सांख्य शास्त्र में क्या बतलाते हैं कि—

ध्यानं निर्विषयं मनः । सां द० ॥६।२५

अर्थात् जब मन, रूप, रस, गन्ध, शब्द, दुःख, सुखादि सम्पूर्ण विषयों से रहित हो जावे उस दशा का नाम ध्यान है। जब तक मन में विषय रहेंगे तब तक यह ध्यान ही नहीं कहला सकता। और जिस को तुम ध्यान कहते हो वह तो इन विषयों के अन्तर्गत ही है क्योंकि साकार पदार्थों में रूप रसादि के अतिरिक्त अन्य होता ही क्या है जिसका वह ध्यान करे? और तुम जो यह कहो कि ईश्वर भी साकार है तो भी तुम्हारा भ्रम है क्योंकि तुम साकार के अर्थ से अनभिज्ञ हो, क्योंकि साकार उसे कहते हैं कि:—

नियतावयवसमूहत्वमाकारत्वम् तद्वान् साकारः इति ॥

अर्थात् नियत अवयवों के समूह को आकार कहते हैं, और जिस में नियत अवयवों का समूह हो, उसे साकार कहते हैं। अथवा मुफर्रद को निराकार और मुरक्कब को साकार समझना चाहिए। प्रयोजन यह है कि यदि हम ईश्वर को साकार (मुरक्कब) मान लें तो ईश्वर सावयव और अनित्य हो जायेगा, परन्तु ईश्वर को अनित्य मानना भी महामूर्खता है; इससे ईश्वर को साकार मानना बड़ा अज्ञान है।

* * *

★ जीवात्मा की हस्ती का सुबूत ★

(जीवात्मा के अस्तित्व में प्रमाण)

प्यारे पाठकगण ! आज हम अपने अस्तित्व के प्रमाण अर्थात् जीवात्मा के अस्तित्व पर कुछ लिखना चाहते हैं। यह तो आपको विदित है कि इस समस्त संसार में दो प्रकार की सृष्टि मालूम होती है। एक जड़ दूसरी चेतन। ऐसा तो कोई मनुष्य ही नहीं जिसको चेतन के होने से इन्कार हो। केवल झगड़ा इस बात का है कि चेतन शक्ति जड़ तत्वों के संयोग शक्ति से उत्पन्न होती है या एक भिन्न शक्ति है। यदि हम मान लें कि यह शक्ति भिन्न तत्वों से उत्पन्न होती है तो उस समय यह प्रश्न होगा कि यह शक्ति भिन्न तत्वों में से है या संयोग से उत्पन्न होती है ? यदि मान लें कि भिन्न तत्वों में है तो उस दशा में कोई वस्तु जड़ नहीं हो सकती क्योंकि चेतन तत्व का गुण हो गया। यदि यह कहा जावे कि मूल भूतों में यह शक्ति नहीं परन्तु संयोग से उत्पन्न होती है उस दशा में अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। जो सर्वांश में असम्भव तथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है; क्योंकि इस सम्पूर्ण जगत के भीतर "नास्ति से अस्ति" (न कुछ से कुछ) की उत्पत्ति अथवा जो शक्ति मूलभूत में वर्तमान न हो वह उसके संयोग से होती हुई किसी ने नहीं देखी। इसलिए उसके होने में कोई प्रमाण नहीं। महात्मा कपिल जी भी सांख्य शास्त्र में लिखते हैं कि—

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः साहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च । साँ० द० ५।१२९॥

अर्थ—अलग-अलग भूतों में चेतनता नहीं देखते, इसलिये उनके मिलाप से भी चेतनता उत्पन्न नहीं हो सकती।

महात्मा कपिल जी इस पर और प्रमाण देते हैं:—

"अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ।"

सां० ६।५

मैं मानता हूँ कि इस प्रकार प्रत्येक समय अनुभव होनेसे आत्माका होना तो अच्छी प्रकारसे विदित होता है और उसके नास्तित्व के लिये साधक प्रमाणों का अभाव विदित होता है, इसलिये आत्मा का होना सत्य है।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् । सां०६।१

वह आत्मा शरीर से नितान्त भिन्न वस्तु है, क्योंकि शरीर और आत्मा भिन्न धर्म वाले हैं। शरीर परिणामी है और आत्मा अपरिणामी है। यह अनुमान और शास्त्रों के प्रमाणों से भी सिद्ध है और आत्मा का अपरिणामी होना तो सदैव जाने हुए विषय का ज्ञाता होने से विदित होता है। जिस प्रकार से आँख का विषय रूप है और शब्द नहीं, इसी प्रकार पुरुष का विषय बुद्धि की वृत्ति को साक्षात् करना है। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु का सम्बन्ध होने पर भी वश नहीं होता।

"षष्ठी व्यपदेशादपि" । सां० द० ६।३॥

और इस ज़मीर (मन) से भी कि यह मेरा शरीर है और यह मेरी बुद्धि है, मेरा मन कहीं गया हुआ था, विदित होता है कि आत्मा, इन्द्रिय, मन, बुध्दि और शरीर भिन्न २ वस्तुएं हैं क्योंकि ज़मीर अर्थात मन के उभय होने पर व्यवस्था नहीं हो सकती, जैसे कोई नहीं कहता कि मैं मेरा हूँ।

न शिलापुत्रवध्दर्मिग्राहकमानवधात ।।सां० ६।।४

यदि मन को तुम शिलापुत्र की भाँति लगाना चाहो तो नहीं लग सकता; ऐसे स्थलों पर धर्मी के ग्रहण करने वाले प्रमाण के विरुध्द होने से यह कथन-मात्र है, क्योंकि शिला में पुत्र और जननशक्ति नहीं, तो उसके पुत्र का शरीर ही कैसे हो सकता है ?

प्यारे पाठकगण ! महात्मा कपिल जी ने इस बात का प्रमाण दिया है कि यदि चेतन तत्व का गुण है तो कभी सुषुप्ति और मरण का होना सिद्ध न होगा, क्योंकि गुण अपने गुणी से भिन्न नहीं हो सकता। और तुमने चेतन को तत्वों का गुण स्वीकार कर लिया, इसीलिए वह तत्व में सदैव रहेगा। जब चेतन रहा तो मृत्यु कभी नहीं होगी। महात्मा गौतम जी ने भी बहुत सी युक्तियाँ दी हैं कि आत्मा है।

दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥

न्याय द० ३ । १ । १ ।

जिस वस्तु को आँख से देखा हो उसको स्पर्शेन्द्रिय अर्थात् त्वचा से स्पर्श करके कहते हैं कि जिस को मैंने आँखों से देखा था उसको त्वचा से स्पर्श किया। इससे विदित होता है कि इन्द्रियों के विषयों के मानने वाला जीवात्मा है, यदि न होता तो आँख ने रूप देखा और 'स्पर्श' स्पर्शेन्द्रिय ने किया, फिर किस प्रकार कहा जाता कि जिसको मैंने देखा उसको स्पर्श करता हूँ।

न विषयव्यवस्थानात् ।। न्याय० ३।१।२।।

इस सूत्र में पूर्वपक्षी प्रश्न करता है कि शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं क्योंकि विषय नियत हो चुके हैं जैसे आँख के होने से देखते हैं और न होने से नहीं देखते, कान के होने से सुनते हैं व कान के न होने से नहीं सुनते, रसना(जिह्वा) के होने से रस लेते और रसना के न होने से रस नहीं लेते, इसी प्रकार शेष इन्द्रियाँ भी अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं। इस दशा में जब इन्द्रिय के ठीक और शुद्ध होने से विषय का ग्रहण होता है और नहीं होने से नहीं होता, फिर एक चेतन मानने की क्या आवश्यकता है ? इस पूर्वपक्ष में दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि इन्द्रिय जो विषय का ज्ञान प्राप्त करती हैं क्या उनमें चेतनता है या किसी चेतन की सहायता से ग्रहण करती हैं ? इसका उत्तर महात्मा गौतम जी देते हैं:—

तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः ।

न्याय० द० ३ । १ । ३

यदि एक इन्द्रिय सम्पूर्ण विषयों को ग्रहण करने वाली होती तो इस दशा में चेतन जीवात्मा की आवश्यकता न होती परन्तु जब एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियों के विषयों को अनुभव नहीं करती तो किस प्रकारएकके ज्ञान का दूसरे को बोध हो सकता है इसलिए सम्पूर्ण करने वाला जीवात्मा अवश्य है। इन्द्रियों का अपने नियत को छोड़कर दूसरे का काम न करना ही इसका प्रमाण है। 'स्मृति' इन्द्रिय का विषय है या आत्मा का ? यदि कहा जावे कि इन्द्रिय का तो किस इन्द्रिय का ? इस पर महात्मा गौतम जी कहते हैं कि:—

तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः ३।१।१४।।

स्मृति आत्मा का गुण है क्योंकि दूसरे के अनुभव का दूसरे को ज्ञान या स्मृति उत्पन्न नहीं होती, और इन्द्रियों के चेतन मानने से बहुतों से चेतन मानने पड़ेंगे जिससे विषय की व्यवस्था नहीं होगी। इस कारण एक ही चेतन है जो बहुतों को देखता है और वह देखने आदि का निमित्त इन्द्रियों से भिन्न है और वही पूर्व देखे हुए अर्थ का स्मरण करता है।

प्यारे पाठकगण ! बहुत से मनुष्य यहाँ पर यह प्रश्न करेंगे कि स्मृति मन अर्थात् दिमाग [मस्तिष्क] का धर्म है इस कारण जीव कोई नहीं, ऐसा ही पूर्व पक्ष इस सूत्र में कहा गया है—

नात्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ॥

न्यायद० ३ । १ । १६

देहादि से भिन्न कोई आत्मा नहीं क्योंकि आत्मा के साधक, मन में ही घट सकते हैं अर्थात् दर्शन स्पर्श से एकार्थ का ग्रहण करना इत्यादि, जो आत्मा को ज्ञानी बतलाने वाली युक्तियाँ हैं उनका होना मन में सम्भव है, इसका उत्तर यह है कि यदि तुम्हारा मन भौतिक है तो उसमें ज्ञान का होना, ज्ञान को भूतों का गुण सिद्ध करेगा, जिससे नींद और मृत्यु का होना असम्भव हो जायगा। यदि अभौतिक है तो आत्मा का दूसरा नाम हो जायगा। क्योंकि शरीर भौतिक है और अभौतिक सदैव इससे भिन्न होगा।

ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ।

न्याय० द० ३ । १ । १७

ज्ञान के साधन ज्ञाता के लिये होते हैं। आँखों से देखना, कानों से सुनना, स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श करना, इस प्रकार सब विषयों के ज्ञान का साधन मन है यदि मन ही को ज्ञाता मान लो तो ज्ञाता का नाम आत्मा न सही, मन सही इस दशा में केवल नाम का भेद होगा, मुख्य विषय में तो कुछ भेद न होगा।

पुनः उसी की पुष्टि करते हैं—

नियमश्च निरनुमानः । ३ ! १ । १८

उ०—नियम भी अनुमान (युक्ति) शून्य है।

प्रतिवादी ने जो यह किया है कि रूपादि के ग्रहण साधन चक्षुरादि इन्द्रिय तो हैं परन्तु सुख दुःख के अनुभव तथा मनन करने का कोई साधन नहीं है। यह नियम युक्तिशून्य है, क्योंकि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि रूपादि विषयों से सुख दुःख पृथक् हैं, इसलिए उनके ज्ञान का साधन भी नेत्र आदि इन्द्रियों से भिन्न अवश्य कोई मानना पड़ेगा। जैसे आँख से गन्ध का ज्ञान नहीं होता, उसके लिये दूसरा इन्द्रिय घ्राण माना गया। इसी प्रकार चक्षु और घ्राण दोनों से रस ग्रहण नहीं होता, तब उसके लिए तीसरा इन्द्रिय रसना मानना ही पड़ा, ऐसे ही शेष इन्द्रियों के विषय में समझ लीजिये। इसी प्रकार आँख आदि इन्द्रियों से सुखादि का ग्रहण नहीं होता, अतः उनके ग्रहण करने के लिए भी कोई इन्द्रिय अवश्य मानना पड़ेगा और वह मन है, जिसमें एक साथ अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति हो नहीं सकती अर्थात् जब जिस इन्द्रिय के साथ उसका संयोग होता है तभी तद्विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है और संयोग न होने पर इन्द्रिय के अविकल और समर्थ होने पर भी ज्ञान नहीं होता। इसलिये पूर्व आत्मसिद्धि के लिये जो हेतु दिये गये हैं, वे मन में कदापि नहीं घट सकते।

अब यह बात विचारणीय है कि देहादि संघात से भिन्न जो आत्म सिद्ध हुआ है वह नित्य है अथवा अनित्य ! विद्यमान वस्तु नित्य वा अनित्य भेद से दो ही प्रकार का होता है। आत्मा की सत्ता सिद्ध होने पर भी वह नित्य है अथवा अनित्य, यह सन्देह अवशिष्ट रहता है। देह से पृथक् होने से पहिले तो आत्मा की स्थिति, जिन हेतुओं से उसे सिद्ध किया उन्हीं से सिद्ध हो गई। अब देह के नष्ट होने पर भी आत्मा विद्यमान रहता है इस पक्ष को सिद्ध करते हैं—

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः । ३ । १ । १९

उ०—पहिले अभ्यास की स्मृति के लगाव से उत्पन्न हुए को हर्ष भय शोक की प्राप्ति होने से आत्मा नित्य है।

तत्काल जन्मा बालक (जिसने इस जन्म में हर्ष भय और शोक आदि के हेतुओं का अनुभव नहीं किया है) हर्ष, भय और शोक आदि से युक्त देखा जाता है और वे हर्षादि पूर्व जन्म में अभ्यास की हुई स्मृति के अनुबन्ध से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि बिना पूर्वाभ्यास के स्मृति का अनुबन्ध हो नहीं

सकता और पूर्वाभ्यास बिना पूर्वजन्म के नहीं हो सकता। अतएव इससे सिद्ध है कि यह आत्मा इस शरीर के नष्ट होने पर भी शेष रहता है, अन्यथा सद्योजात बालक में हर्षादि की प्रतिपत्ति असम्भव है। इससे आत्मा का नित्यत्व सिद्ध होता है।

प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।
न्याय द० ३ १।२२।

मर कर जब प्राणी जन्म लेता है तब उसी समय बिना किसी की शिक्षा वा प्ररणा के स्वयं दूध पीने लगता है, यह बात बिना पूर्वकृत भोजनाभ्यास के हो नहीं सकती, क्यों कि इस जन्म में तो अभी उसने भोजन का अभ्यास किया ही नहीं फिर उसकी प्रवृत्ति उसमें क्योंकर हुई ? हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि क्षुधा से पीड़ित बालकादि पूर्वकृत आहाराभ्यास के संस्कारों से प्रेरित होकर दुग्धपानादि भोजन करने में प्रवृत्त होते हैं। बिना पूर्वजन्म को माने जातमात्र की भोजन में प्रवृत्ति हो नहीं सकती इससे अनुमान होता है कि इस शरीर से पहिले भी शरीर था, जिसमें इसने भोजन का अभ्यास किया था। जब उस शरीर को छोड़ कर यह दूसरे शरीर में आया तब क्षुधा से पीड़ित होकर पूर्व जन्माभ्यस्त आहार का स्मरण करता हुआ दूध की इच्छा करता है, अतएव देह के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता:—

प्यारे पाठक ! महात्मा कणादजी इस विषय में लिखते हैं—

प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ।३।१।१।

घ्राण, रसना, चक्षु, त्वचा तथा श्रोत्र भेद से पांच प्रकार के 'इन्द्रिय' और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द ये पाँच उक्त इन्द्रियों के विषय हैं, यह दोनों प्रत्येक पुरुष को ज्ञात हैं। इनके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं।

अब इन्द्रियार्थ प्रसिद्धि को आत्मा की सिद्धि में लिङ्ग कथन करते हैं॥

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः
वै० ३-१-२ ॥

भाष्य—इन्द्रिय तथा उनके गन्धादि विषयों में 'यह घ्राण है' 'यह गन्ध है' इस प्रकार का ज्ञान इन्द्रिय तथा विषय से भिन्न पदार्थ की सिद्धि में हेतु है अर्थात् जैसे छिदिक्रिया के साधनभूत कुठारादिकों का प्रयोक्ता उनसे भिन्न होता है वैसे ज्ञान के साधनभूत घ्राणादि इन्द्रियों का प्रेरक उनसे भिन्न है क्योंकि 'जो प्रेरक है वह साधनों से भिन्न होता है' यह नियम। है इस नियमके अनुसार जो घ्राणादि इन्द्रियों का गन्धादि विषयों में प्रेरणा करने वाला उनसे भिन्न पदार्थ है वही आत्मा है, और जो गुण है वह द्रव्य के आश्रित होता है। द्रव्य को छोड़कर गुण कदापि नहीं रहता इस नियम के अनुसार 'यह घट है' 'यह रूप है' इत्यादि ज्ञानों का आश्रय भी पृथिवी आदि आठ द्रव्यों से अतिरिक्त कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए, क्योंकि पृथिवी आदि आठ द्रव्य तथा उनके कार्यभूत शरीरादि उक्त ज्ञान के आश्रय नहीं हो सकते। इसलिए जो उक्त ज्ञान का आश्रय द्रव्य है, वही 'आत्मा' है॥

दूसरी युक्ति देते हैं।

“कारणाज्ञानात्” वै० ३-१-४ ॥

शरीर के समवायिकारण सूक्ष्म भूतों में रूपादि विशेष गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं ज्ञान नहीं, यदि रूपादि की भांति उनमें ज्ञान भी समवेत होता तो वह अपने कार्य शरीर में ज्ञान का भी आरम्भ होता परन्तु नहीं है, इससे सिद्ध है कि वह शरीर समवेत नहीं।

कार्येषु ज्ञानात् ॥ वै० ३-१-५ ॥

यदि सूक्ष्म भूतों में ज्ञान को समवेत मानें तो शरीर की भाँति उनके कार्य घट पट आदि द्रव्यों में भी उसकी उपलब्धि होनी चाहिए अर्थात जैसे शरीर के आरम्भक सूक्ष्मभूतों में रूपादि विशेष गुणों के पाये जाने से शरीर की भांति उनके कार्य घट पट

आदि द्रव्यों में उक्त गुणों की उपलब्धि होती है वैसे ही ज्ञान की भी उपलब्धि होनी चाहिए परन्तु नहीं होती, इससे सिद्ध है कि सूक्ष्मभूतों में ज्ञान नहीं और उनमें ज्ञान के न होने से वह रूपादि की भाँति शरीर का विशेष गुण भी नहीं हो सकता।

अज्ञानाच्च । वै० ३-१-६॥

यदि यह कहा जावे कि घट आदि सम्पूर्ण वस्तुएँ चेतन हैं उनमें सूक्ष्म रूप से ज्ञान है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि यह किसी प्रमाण से भी निश्चय नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष से तो सर्वथा घटादि जड़ प्रतीत होते हैं। अनुमान के लिए भी कोई व्याप्ति नहीं और शब्द से भी जड़ और चेतन, दो प्रकार की सृष्टि का होना सिद्ध है। सारांश यह, किसी प्रमाण से भी घट आदि चेतन सिद्ध नहीं हो सकते।

प्यारे पाठक गण! उपर्युक्त युक्तियों से जीव का शरीर से भिन्न और अभौतिक होना अच्छी प्रकार से ज्ञात होता है। मृत्यु और निद्रा का होना इस बात को सिद्ध करता है कि शरीर से आत्मा भिन्न है क्योंकि यदि शरीर को चेतन मानें तो भूतों का कार्य होने से उनके कारण को चेतन मानना पड़ेगा और भूतों चेतन होने से घट पट आदि सब चेतन हो जायेंगे इस समय जड़ और चेतन का भेद सर्वांशं में नहीं रहेगा क्योंकि अब तो जड़ को भोग्य और चेतन को भोक्ता माना जाता है और फिर ज्ञेय और ज्ञान भी नहीं होगा क्योंकि सब ही चेतन हैं और चेतन द्रष्टा होता है दृश्य नहीं होता।

जीवात्मा द्रव्य है या गुण

बहुधा मनुष्यों को यह भ्रम उत्पन्न हो रहा है कि जीवात्मा द्रव्य है या गुण ? यद्यपि संस्कृत फिलासफी (दर्शन) या साइन्स [भौतिक विद्या] के ज्ञाताओं ने जीवात्मा को द्रव्य ही बतलाया है जैसा कि महात्मा कणाद मुनि ने वैशेषिक दर्शन में जो नौ द्रव्य बतलाए हैं उनमें से एक आत्मा भी है, जिससे ज्ञात होता है कि वैशेषिककार उसे द्रव्य मानते हैं।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि । वै० १ । १ । ५

अर्थ—पृथिवी, जल, तेज अर्थात् अग्नि, वायु, आकाश, काल दिशा, मन आत्मा ये नौ द्रव्य हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि द्रव्य का क्या लक्षण है ? जिससे हम जीवात्मा को द्रव्य स्वीकार करें ? और गुण का क्या लक्षण है ? कि जिससे न होने से जीवात्मा गुणों से भिन्न समझा जावे, महात्मा कणाद मुनि ने वैशेषिक दर्शन में द्रव्य का लक्षण किया है—

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्
॥ वै० १ । १ । १५

अर्थ—जिसमें क्रिया (कर्म) का होना पाया जावे, जिसमें गुण हों और जो वस्तुओं का समवायि कारण हो उसे द्रव्य कहते हैं अर्थात् यह द्रव्य के लक्षण हैं। अब सोचना यह कि आत्मा में इनमें से कोई लक्षण पाया जाता है या नहीं ? तो उत्तर मिलता है कि आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न दो गुण विद्यमान हैं जिसमें गुण उपस्थित हो उसके द्रव्य होने में बाधा [आपत्ति] ही क्या है ? और फारसी मंतक [न्याय] वालों ने भी रूह [जीव] को मुदरक बिज्जत [स्वाभाविक चेतन] मुतहर्रिक विलालात अन्य साधनों के संयोग से जो क्रिया कर सके] स्वीकार किया है जिससे रूह [जीवात्मा] में दरक [ज्ञान] तथा हरकत अर्थात् प्रयत्न का होना पाया जाता है। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि महात्मा कणाद ने जो चौबीस गुण बतलाए हैं उनमें ज्ञान को तो गुण

ही नहीं बतलाया, बस जब ज्ञान गुण ही नहीं तो ज्ञान के कारण से जीवात्मा को द्रव्य कह ही नहीं सकते ? रहा प्रयत्न, वह अङ्ग से मिल कर होता है इसलिए प्रयत्न भी जीवात्मा का स्वाभाविक गुण नहीं। अतः जीवात्मा को द्रव्य मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि कणाद जी ने गुण में बुद्धि की गणना की है बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं, जैसा कि महात्मा गौतम ने न्याय दर्शन में दिखलाया है।

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्

न्या० १।१।१५

अर्थ—बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान यह भिन्न भिन्न [पदार्थ] नहीं हैं किन्तु एक ही के नाम हैं जब कि बुद्धि और ज्ञान दोनों पर्यायवाची हैं तो कणाद जी का बुद्धि को गुण में संख्या करने से ज्ञान का गुण होना सिद्ध हो गया जब। ज्ञान गुण है तो ज्ञान वाला अवश्य ही द्रव्य है परन्तु कोई कोई यह आशङ्का करेंगे कि ज्ञान बुद्धि का विषय है बुद्धि का पर्याय नहीं। इसकी सिद्धि के लिये कि बुद्धि ज्ञान से भिन्न है महर्षि मनु का यह श्लोक देते हैं।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

मनु०।५।१०६

अर्थ—जल से शरीर के अंग शुद्ध अर्थात् पवित्र होते हैं और सत्य बोलने और सत्य परमात्मा की उपासना और उसकी आज्ञा के अनुकूल काम करने से मनशुद्ध होता है और विद्या तथा तपसे जीवात्मा शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्धि होती है जबकि महर्षि मनु ज्ञान से बुद्धि का शुद्ध होना स्वीकार करते हैं तो बुद्धि और ज्ञान एक वस्तु नहीं वरन् भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। इसलिये यहाँ पर गौतम का प्रमाण सर्वतन्त्र सिद्धान्त नहीं वरन् निज मत है क्यों कि मनु तथा गौतम के मत में विरोध है।

इसका उत्तर यह है कि मनु ने इस स्थल पर ज्ञान से तात्पर्य वेद लिया है अर्थात् वेद से बुद्धि की शुद्धि होती है जिस प्रकार सूर्य और नेत्र से सम्बन्ध है ऐसे ही बुद्धि और वेद से सम्बन्ध है चूंकि चेतन अर्थात ज्ञान वाले दो प्रकार के हैं, एक सर्वज्ञ दूसरा अल्पज्ञ, इसलिये उनके ज्ञान भी दो प्रकार के हैं, एक बुद्धि दूसरे वेद, ज्ञान शब्द का प्रयोग दोनों में हो सकता है। यहाँ पर वादी फिर प्रश्न कर सकता है कि क्या वेद का विद्या से तात्पर्य है ? जैसा कि इस श्लोक में आया है कि विद्या और तप से जीवात्मा शुद्ध होता है।

इसका उत्तर यह है कि विद्या और बुद्धि का भेद है, जैसा कि वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपाद भाष्य में स्पष्ट रीति पर लिखा है, (देखो—वैशेषिक दर्शन प्रशस्तपाद भाष्य पृष्ठ ३६ पंक्ति ७ से ८ तक) यद्यपि बुद्धि अर्थात् ज्ञान, (वस्तुओं के असंख्य होने से असंख्य भाँति का है परन्तु संक्षेप रीति से उसके दो भेद हैं एक विद्या दूसरे अविद्या। अतः जीवात्मा में अज्ञान के कारण दो प्रकार के ज्ञान रहते हैं एक अविद्या दूसरे विद्या तीसरे परमात्मा का ज्ञान है उसे सत्य विद्या कहते हैं उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीवात्मा द्रव्य है चूंकि उसमें द्रव्य के लक्षण पाये जाते हैं गुण के लक्षण नहीं पाये जाते इसलिये गुण नहीं और न वैशेषिकार ने उसको गुणों में गिना है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि गुण के लक्षण कहाँ हैं और वैशेषिक दर्शन में कौन से गुणों की गणना की गई है।

द्रव्याश्रय्य गुणवान् संयोग विभागेष्वकारण मनपेक्ष इति गुणलक्षणम् वै०।१।१।१६॥

अर्थ—जो द्रव्य के आश्रय पर अर्थात् द्रव्य न रहे और उसमें दूसरा गुण न रहता हो संयोग और विभाग में कारण न हो अर्थात् उसकी आवश्यकता न पड़े यह गुण का लक्षण है। जबकि जीवात्मा में ज्ञान इत्यादि गुण विद्यमान हैं तो उसे लक्षण में गुण किस प्रकार कह सकते हैं। अब जो लोग जीवात्मा को द्रव्य नहीं मानते उन्हें विचारना चाहिये कि जीवात्मा को द्रव्य न माना जावे तो उसके रहने के लिये किसी दूसरे द्रव्य की आवश्यकता होगी क्योंकि जब जीवात्मा को गुण मानेंगे तो प्रश्न उपस्थित होगा

कि वह किसका गुण है। और गुण दो प्रकारके होते हैं एक स्वाभाविक दूसरा नैमित्तिक जो किसी दूसरे के कारण से प्राप्त हो। फिर प्रश्न होगा कि वह गुण नैमित्तिक है या स्वाभाविक—यदि कहा जावे कि जीवात्मा शरीर का स्वभाव है तो वह शरीर की विद्यमानता से भिन्न नहीं हो सकता परन्तु हम शरीर से जीवात्मा को भिन्न होता हुआ ज्ञात करते हैं जिसखे मृत्यु का होना स्वीकार किया जाता है। साधारणतः मनुष्य मृत्यु के समय कहते हैं कि अमुक मनुष्य प्रेत्यभाव को प्राप्त हो गया, इन्तिकाल के अर्थ मकान का बदलना है। यदि जीवात्मा शरीर का स्वाभाविक गुण हो तो शरीर की उपस्थिति में किस प्रकार परिवर्तन हो सकता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह (जीवात्मा) शरीर का स्वाभाविक धर्म नहीं ? यदि कहो कि वह (जीवात्मा) शरीर का नैमित्तिक धर्म है तो वह किस कारण शरीर में आता है और किस कारण जाता है, और वह मुख्य गुण किसका है ? कल्पना करो—कि पानी का स्वाभाविक गुण शीतलता है और अग्नि के कारण उसमें उष्णता आ सकती है यदि अग्नि का स्वाभाविक धर्म उष्णता न होता तो किसी प्रकार पानी में न आ सकता। इसी भाँति जब तक जीवात्मा किसी का स्वाभाविक धर्म न स्वीकार कर लिया जावे और उसको विद्या तथा बुध्दि पूर्वक युक्तियों से सिद्ध न किया जावे तब तक जीवात्मा शरीर का नैमित्तिक गुण नहीं कह सकते। कतिपय लोगों का यह विचार है कि जीवात्मा प्रकृति की एक दशा का नाम है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह प्रकृति की दशा किस कारण से होती है क्योंकि दशा के लिए या तो शब्द अवस्था का प्रयोग हो सकता है या परिणाम का, परन्तु परिणाम और अवस्था कभी भी बिना कारण नहीं हो सकती क्योंकि यह प्रकृति का स्वाभाविक गुण तो है ही नहीं किन्तु इस दशा में उसे अस्वाभाविक गुण ही कह सकते हैं। जब जीवात्मा को नैमित्तिक गुण मानोगे तो उसके लिए कारण की आवश्यकता होगी, बिना कारण के कभी नैमित्तिक का अस्तित्व व नास्तित्व का होना सम्भव नहीं। दूसरे दशा भी गुण है अतः उसे नैमित्तिक गुण ही कह सकते हैं इस अवस्था में जबकि जीवात्मा नैमित्तिक गुण स्वीकार किया जावे तो उसमें ज्ञान इत्यादि दूसरे गुणों का होना किस प्रकार सम्भव हो सकता है क्योंकि गुण में गुण हो नहीं सकता जैसा कि गुण के लक्षणों में बतलाया गया है जबकि जीवात्मा में गुण विद्यमान हैं। इस लिए उसे प्रकृति की एक अवस्था या परिणाम भी नहीं कह सकते, बहुत मनुष्य कहते हैं कि जीवात्मा भी तो भूतों का कार्य है ? यदि हम जीवात्मा को भूतों का कार्य स्वीकार कर लें तो उसे द्रव्य ही मानना पड़ेगा क्योंकि कारण के गुण के अनुकूल कार्य के गुण होते हैं जैसा कि महात्मा कणाद जी ने भी वैशेषिक दर्शन में लिखा है कि भूतों के द्रव्य होने से जीवात्मा का द्रव्य होना स्वीकार करना पड़ेगा परन्तु भूत जड़ अर्थात् ज्ञान से रहित हैं उनका कोई कार्य चेतन नहीं हो सकता क्योंकि जो गुण कारण में न हो वह कार्य में कहां से आ सकता है, जब तक कोई भूत चेतन सिद्ध न किया जावे तब तक उनका कोई कार्य चेतन नहीं कहला सकता क्योंकि इससे अभाव से भाव की उत्पत्ति होना सम्भव हो जाती है जो असम्भव है। महात्मा कपिल जी ने सांख्य दर्शन में भूतों से जीव की उत्पत्ति का खंडन किया है।

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च। वै० ५-१-२६

अर्थ—भूतों में चेतनता अर्थात् ज्ञानशक्ति नहीं है क्योंकि भिन्न २ भूत ज्ञान से रहित है इसलिये उनके मिलाप (संयोग) से ज्ञान शक्ति का उत्पन्न होना असम्भव है, क्योंकि नियम यह है कि जो शक्ति खंडों में थोड़ी २ होती है वह मिलाप से बहुत हो जाती है परन्तु जो शक्ति खंडों में हो ही नहीं उसकी उत्पत्ति संयोग से नहीं हो सकती क्योंकि अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति असम्भव है।

(क्रमशः)

पठन पाठन और स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

—*—

उपनिषद्-आर्य-भाष्य

(महामहोपाध्याय स्व० प० आर्यमुनि कृत भाष्य)

मंत्रों का पद पदार्थ और विस्तृत भूमिका सहित आठ उपनिषदें भाषानुवाद सहित। सजिल्द ७०० पृष्ठों का ग्रन्थ मूल्य ६) मात्र।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह सचित्र

ऋषि के प्रामाणिक ७ असली फोटो सहित २० पुस्तकों का अपूर्व संग्रह। प्रत्येक आर्य और समाजों को संग्रहित करना और पढ़ना आवश्यक है। मूल्य सजिल्द ग्रन्थ का ४।।) रियायती मूल्य ३।।)

बाल्मीकि रामायण सचित्र

(धारावाही हिन्दी मूल संस्कृत सहित)

सम्पादक—श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ज्वालापुर म० वि०

भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

मूल श्लोक सहित संशोधित प्रक्षिप्त और अनावश्यक कथा तथा साम्प्रदायिक भावनायें निकालकर शिक्षाप्रद कथा-वार्ता के उपयुक्त संस्करण विवाहादि में उपहार देने योग्य। सुन्दर सजिल्द पुस्तक मूल्य १२) रियायती मूल्य ८) मात्र।

संस्कार विधि विमर्श

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० का०)

चिकित्सा-प्रजनन और प्रजाशास्त्र के आधार पर संस्कार विधि की व्याख्या मूल्य ३) रियायती मूल्य २)

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० का०)

संतति नियमन आदि विषयों के साथ साथ दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा के रूप में सरल और प्रामाणिक पुस्तक मूल्य ३) मू० रियायती २)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

(विद्वान तथा स्वाध्याय प्रेमियों ने पसन्द की हैं)

आनन्द गायत्री कथा	।।)	प्रभु भक्ति	१।), सजि० १।।)
प्रभु दर्शन	२।।)	तत्वज्ञान	३)
सुख का साधन	~)	एक ही रास्ता	।।=)

स्व० स्वामी वेदानन्द सरस्वती कृत

स्वाध्याय संदोह	४)	वेद परिचय	।=)
स्वाध्याय संग्रह	२)	सावित्री प्रकाश	१)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें

ओंकार निर्णय	१।।)	भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक, आर्य, ओ३म, नमस्ते की व्याख्या	।।)
योगासन सचित्र	१।।)		
वैदिक प्रार्थना	१।।)		
दयानन्द चित्रावली	२।)	ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	।।=)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)	वैदिक संध्या रहस्य	।=)
आर्य समाज क्या है ?	।।)	वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य		सामाजिक पद्धतियां	।=)
गोहत्या महापाप	।।)	गुरुधाम (नाटक)	।।)
सत्यार्थ प्रकाश शंका-समाधान	।)	स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वीर बच्चोंकी कहानी	।।।)	आदर्श सुधारक दयानंद	।।=)
गृहस्थाश्रम	।।=)	बाल शिक्षक	।=)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)	विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
दर्शनानंद ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध	२।।)	उत्तरार्द्ध	२।।)

विवाह और विवहित जीवन

लेखक गंगाप्रसाद उपाध्याय M. A.

पण्डित जी की Marriage and Married life पुस्तक का यह अविकल अनुवाद श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक जी ने किया है। पुस्तक विवाह आदि शुभ अवसरों पर उपहार देने योग्य है। आकर्षक टाइटल। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पताः— **गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ६**

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
४	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	॥।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२॥)
११	धान की खेती	१॥)
१२	संतरे की बागवानी	२॥)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३॥)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२॥)

नोटः— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ८२।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।–)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्टों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां
देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

ओ३म्

वेद प्रकाश

ईसाई मिश्नरी गतिविधि नियोगी जांच समिति
मध्य प्रदेश
की
सरकारी रिपोर्ट

वर्ष ५. अंक ८—९.

फाल्गुन-चैत्र सं० २०१३, मार्च-अप्रेल १९५७

वार्षिक मूल्य २)
विदेशों से ४ शीलिंग
इस अंक का आठ आना

सम्पादक :
गोविन्दराम हासानन्द
[illegible] नई सड़क, दिल्ली ६

महात्मा आनन्द स्वामीजी की अमृत कथा

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षप्राप्ति का

एक ही रास्ता

— महात्मा आनन्द स्वामी

पढ़िये, मूल्य ।।=) एक प्रति के लिए डाक खर्च सहित ।।।) भेजें । १२ प्रतियों के ६) तथा डाक खर्च १।।।=) कुल ७।।।=) भेजें ।

महात्मा आनन्द स्वामीकृत अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन २।।) तत्वज्ञान ३)
प्रभुभक्ति १।) सजिल्द १।।) गायत्री कथा ।।)

वेदप्रकाश के पिछले दो विशेषाँक

सचित्र वाल्मीकि रामायण

सम्पादकः—प्रेमचन्द शास्त्री स्नातक महाविद्यालय ज्वालापुर ।
भूमिका लेखकः—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय मूल्य १२)
रियायती मूल्य ८)

★

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह (सचित्र)

महर्षि के २० ग्रन्थों का अद्वितीय संग्रह सजिल्द मूल्य ४।।) रियायती मूल्य ३॥)

यजुर्वेद का सरल भाषार्थ

उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह पुस्तक २१ विद्वानों की समिति बना कर सम्पादित करवाई थी । बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द दो भागों में सम्पूर्ण यजुर्वेद का मूल्य ६) मात्र ।

मध्यप्रदेश की ईसाई मिश्नरी गतिविधि

नियोगी जाँच समिति की रिपोर्ट

एक प्रति का मूल्य ।।) २५ प्रतियां एक साथ मंगाने पर ।=) प्रति । मूल्य अग्रिम आ जाने पर डाक खर्च माफ ।

दैनिक तिथि प्रकाश

(आर्य डायरी सन् १९५७ की)
सार्वदेशिक प्रेस द्वारा प्रकाशित

हर वर्ष की भाँति वेद-मन्त्रादि युक्त सजिल्द मूल्य ।।।) १२ प्रतियों से अधिक मंगाने पर ।।=) प्रति । डाक ख० अ० ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थी

कृत कुछ प्राप्य पुस्तकों के नये संस्करण

उपनपद कथा	१।)
मातृशक्ति का वैदिक स्वरूप	१=)
मनुष्य के कर्तव्य	१=)
गायत्री महत्व	१)
THE GRANDEUR OF GAYATRI	१।।)

मिलने का पता—

(१) श्री रामलाल मलिक
५/९० कनाट सरकस, नई देहली
(२) गोविन्दराम हासानन्द,
४४०८ नई सड़क, देहली ।

मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली ।

ईसाई मिश्नरी गतिविधि नियोगी जांच समिति, मध्य प्रदेश की

सरकारी रिपोर्ट

संक्षिप्त हिन्दी संस्करण

* * *

ईसाई मिश्नरी गतिविधि जांच समिति की नियुक्ति मध्यप्रदेश सरकार के प्रस्ताव संख्या ३१८-७१६ वी० कान०, दिनांक १४ अप्रेल, १९५६ के अनुसार हुई थी।

मध्य प्रदेश सरकार के समक्ष यह बात बार बार रखी गयी कि अशिक्षित आदिवासी तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लोग ईसाई मिश्नरियों के द्वारा या तो दवाव से या छल कपट से अथवा आर्थिक प्रलोभनों के द्वारा ईसाई बनाये जा रहे हैं। सरकार को यह भी सूचित किया गया कि गैर-ईसाई लोगों की भावना को इस प्रकार के अनैतिक उपायों से किये गये धर्म-परिवर्तन के कार्यों से, आघात पहुंचा है। ईसाई मिश्नरियों ने अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का सरकार के समक्ष प्रतिवाद किया, साथ ही स्थानीय सरकारी कर्मचारियों तथा गैर-ईसाई लोगों के विरुद्ध उन्हें क्षति पहुंचाने का अभियोग लगाया। इस प्रकार मध्य प्रदेश सरकार को जब यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पक्ष की ओर से एक आन्दोलन चलाया जा रहा है, तो जनता के हित को दृष्टि में रखकर उसने यह निश्चित करना उचित समझा कि इस सम्बन्ध में अच्छी तरह जांच की जाय। अतः उक्त समिति नियुक्त की गयी, जिसके चेयरमैन (अध्यक्ष) डा० म० भवानी शंकर नियोगी, एम० ए०, एल० एल० एम०, एल० एल० डी०, भूतपूर्व चेयरमैन, पब्लिक सर्विस कमीशन, मध्यप्रदेश तथा रिटायर्ड चीफ जस्टिस, हाईकोर्ट आफ जूडिकेचर, नागपुर नियुक्त हुए तथा जिसके सदस्य श्री घनश्याम सिंह गुप्त, बी० एस० सी०, एल० एल० बी० भूतपूर्व स्पीकर, मध्यप्रदेश विधान सभा; श्री एस० के० जार्ज, एम० ए०, बी० डी०, प्रोफेसर, कामर्स कालेज वर्धा; श्री रतनलाल मालवीय, बी० ए०, एल० एल० एल० बी०, एम० पी, मानेन्द्रगढ़; श्री भानुप्रताप सिंह गिरिराज सिंह देव, एम० पी० कोमाखान, तहसील महासमुन्द, जिला रायपुर; श्री बी० पी० पाठक, एम० ए०, एल० एल० बी०, मन्त्री मध्यप्रदेश सरकार, जनस्वास्थ्य-विभाग (पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्ट) मनोनीत हुए।

उक्त समिति को सारी बातों के सम्बन्ध में भली प्रकार जांच करने का कार्य सौंपा गया तथा ऐतिहासिक तथा अन्य सभी दृष्टियों से इस समस्या का अध्ययन कर इस सम्बन्ध में उचित परामर्श भी देने को कहा गया।

समिति ने निम्नलिखित १४ जिलों का भ्रमण किया :—

१. रायगढ़, २. सरगुजा, ३. रायपुर, ४. विलासपुर, ५. अमरावती, ६. नीमार, ७. यवतमाल, ८. अकोला, ९. बुलडाना, १०. मांडला, ११. जबलपुर, १२. बैतूल, १३. छिंदवाड़ा और १४. बालाघाट।

समिति द्वारा ७७ ईसाई केन्द्रों का निरीक्षण किया गया और प्रायः ११३६० व्यक्तियों से इस सम्बन्ध में पूछताछ की गयी। ३७५ लिखित वक्तव्य प्राप्त हुए तथा समिति द्वारा प्रत्येक केन्द्र में जाकर वहां का विवरण एकत्र किया गया। मिश्नरियों की अनेक संस्थाओं द्वारा संचालित कार्यों की असन्दिग्ध जानकारी के लिये

समिति ने अस्पताल, स्कूल, चर्च, कुष्ठाश्रम, छात्रावास आदि जैसी अनेक संस्थाओं को जाकर देखा, जो मध्य प्रदेश में मिशन द्वारा स्थापित हैं। समिति ने उन व्यक्तियों से तथा उन क्षेत्रों से भी सम्पर्क स्थापित किये जिनके बीच मिश्नरियों का कार्य चल रहा है। उन सभी स्थानों में जहां समिति ने भ्रमण किया, मिश्नरियों द्वारा की गयी शिक्षा तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं के लिये लोगों के हृदय में कोई दुर्भावना नहीं पायी गयीं। किन्तु अन्य विषयों में गैर ईसाइयों की ओर से ईसाई मिश्नरियों के विरुद्ध यह एक आम शिकायत है कि उन स्कूलों और अस्पतालों का उपयोग गैर-ईसाइयों को ईसाई बनाने में हो रहा है। वे ईसा तथा ईसाइयत के लिये कोई बुरी भावना नहीं रखते। ईसाई धर्म के प्रचार में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है और न ईसाई धर्म में दीक्षा देने का ही वे विरोध करते हैं। यदि उन्हें कोई आपत्ति है तो अनुचित तरीकों के विरुद्ध है जो पादरी लोग प्रयोग में लाते हैं, जैसे कि बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का लालच तथा अन्य सुविधायें देना और उनके भारतीय नामों के आगे ईसाई नाम जोड़ देना, ईसाई लड़कियों से उनका विवाह करवा देना, कर्जा देना, अस्पतालों में ईसाई साहित्य का वितरण करना और रोगियों के लिये प्रार्थना करना इत्यादि। यह भी कहा गया है कि किस प्रकार रोमन कैथोलिक पादरी और प्रचारक लोग नवजात शिशु को ईसा के नाम पर आशीस देने जाते हैं, घरेलू झगड़ों में एक पक्ष का दूसरों के विरुद्ध साथ देते हैं, छोटे बच्चे तथा स्त्रियों को अपहृत करते हैं और आसाम के बगीचों तथा अण्डमान में भोलेभाले लोगों में ईसाइयत के प्रचार के लिये मजदूर भर्ती करते हैं। लोगों में वहां यह आम धारणा पायी गयी कि इस प्रकार से ईसाइयत के प्रचार के लिये बाहर से जो रुपया आता है उससे सन्देह उत्पन्न होता है कि अवश्य ही यह रुपया किसी विशेष राजनीतिक और धार्मिक उद्देश्य से आता है। आदिवासी तथा दूरवर्ती जंगली क्षेत्रों में मिश्नरियों के केन्द्रित कार्यो तथा विदेशी रुपयों के बल पर उन जंगली जातियों का सामूहिक धर्म-परिवर्तन कार्य, पाकिस्तान के ढंग पर एक अलग राज्य बनाने की योजना बतायी गयी। रायगढ़ तथा सरगुजा जिलों में ईसाइयों ने कुछ छोटे सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतें कीं, परन्तु अन्य जिलों में जिनमें बरार भी सम्मिलित है, कोई शिकायत नहीं सुनी गयी। रायगढ़, सरगुजा और विलासपुर में इस समिति की जो बैठकें हुईं उनमें रेवेरेन्ड लकड़ा, रांची रेवेरेन्ड कुजूर (लूथरन मिशन) रेवेरेन्ड गुरुवचन सिंह (अमेरिकन एवेन्जिलिकल मिशन), रेवेरेन्ड मसीह (डिसाइपुल्स आफ क्राइस्ट), श्री मीन्ज (जेनरल सेक्रेटरी, कैथोलिक सभा) जैसे उल्लेखनीय ईसाई प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। श्री मीन्ज ने बोको सरदार, श्री देशपांडे, श्री वैजनाथ मिश्र और ट्राइबल वेलफेयर डिपार्टमेन्ट के कार्यों की कड़ी आलोचना की। श्री जगदीश तिर्की ने जो आदिवासी झारखंड पार्टी के मन्त्री हैं, कहा कि उरावों की एकता सुरक्षित रखने के लिये झारखंड नितान्त आवश्यक है। उन्होंने और रेवेरेन्ड कुजूर ने इस आरोप का खंडन किया कि मिश्नरी स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के आन्दोलन को उकसाते हैं। उपरोक्त शिकायतों के अतिरिक्त और कोई विशेष शिकायतें अफसरों तथा गैर-ईसाईयों के विरुद्ध नहीं थीं। परन्तु एक आम शिकायत थी कि मिशन के स्कूलों को मान्यता नहीं दी जाती। खंडवा के रेवेरेन्ड नाथ ने पादरियों की सराहना की कि उन्होंने बलाहियों को हिन्दू समाज में उनकी गिरी हुई अवस्था से उन्नत किया। समिति की वैतूल जिले की बैठक में रेवेरेन्ड इ० रमन ने और बहुत से अमेरिकन पादरियों ने सरकारी अफसर और जनता के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की। मौखिक तथा लिखित रूप में ईसाइयों तथा अन्य लोगों की मौखिक तथा लिखित शिकायतों के आधार पर तथा सरकारी सूत्रों एवं प्रकाशित साहित्य से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह आवश्यक समझा गया कि इस समस्या की अच्छी तरह छानबीन की जाय। इसके लिये एक विस्तृत प्रश्नावली प्रसारित की गई जिससे कि दोनों पक्षों को हर सम्भव तरीकों से उक्त समिति को अपना सहयोग प्रदान करने का पूर्ण अवसर मिले।

इस प्रश्नावली का जिस प्रकार स्वागत हुआ वह उत्साह-वर्धक था, जिससे ज्ञात हुआ कि जनता का और प्रोटेस्टेन्ट मिश्नरी संस्थाओं का, जो राज्य के भिन्न २ जिलों में कार्य करती हैं, इससे सहयोग है। समिति के

कार्यालय में प्रश्नावली के जो ३८५ उत्तर प्राप्त हुए उनमें से ५५ ईसाई व्यक्तियों अथवा संस्थाओं की ओर से थे और ३३० गैर-ईसाइयों की ओर से थे। रोमन कैथोलिक चर्च के अधिकारी तथा सदस्यों ने समिति की रायगढ़, सरगुजा, विलासपुर, रायपुर और नीमार जिले की प्रारम्भिक जांच में अपना सहयोग दिया, श्री जी एस० फ्रैन्सिस, सभापति कैथोलिक रिजनल कौन्सिल और श्री पी० लोबो, एडवोकेट, नागपुर हाईकोर्ट, दोनों ने समिति को अपना सहयोग दिया। परन्तु बाद में कैथोलिक चर्च ने अपना सहयोग स्थगित कर दिया और अपनी ओर से न केवल विरोध का वक्तव्य दिया, प्रत्युत हाईकोर्ट में समिति के विरुद्ध "मेन्डामस पिटीशन" भी दायर कर दिया। न्यायधीशों ने उक्त प्रार्थना २२ अप्रैल १९५६ को अस्वीकृत कर दी और यह निर्णय दिया कि राज्य सरकार को यह पूर्ण अधिकार है कि वह एक तथ्य-जांच-समिति नियुक्त करे और सूचना एकत्रित करे। उन्होंने यह भी कहा कि समिति के निर्माण से प्रार्थियों के मौलिक अधिकारों की कोई अवहेलना नहीं हुई है।

— — —

अध्याय २

परिस्थितियां जिनके कारण समिति नियुक्त हुई

अशान्ति के कारणों और पादरियों की चालों तथा परिस्थितियों का जिनके द्वारा कमेटी की नियुक्ति हुई, उल्लेख करने के पश्चात् रिपोर्ट कहती है:—

अब हम अपना ध्यान पादरियों की उन गतिविधियों की ओर ले जाते हैं जो सरगुजा और उदयपुर इत्यादि राज्यों के एकीकरण के समय और बाद में विद्यमान थीं। पहले उल्लेख हो चुका है कि इन राज्यों के पहले नरेशों ने पोलेटिकल डिपार्टमेन्ट की स्वीकृति से पादरियों का प्रवेश उक्त राज्य में नितान्त वर्जित कर रखा था और ऐन्टी कन्वर्सन ऐक्ट (धर्म-परिवर्तन-निरोध कानून) पास कर रखे थे। इन कानूनों के रहते हुए भी पादरी व्यक्तिगत रूप से, विशेषकर रेवेरेन्ड स्टेनिस्लस टिग्गा, जो एक रोमन कैथोलिक पादरी थे और जिनका हेड क्वार्टर (सदर मुकाम) राँची में था, लुक छिप कर वहां प्रवेश करते रहे और धर्म की आड़ में प्रचार करते रहे। भूमि का वह भाग जिसमें सरगुजा, कोरेया, जशपुर, उदयपुर, चंगभाकर और उड़ीसा के कई छोटे छोटे राज्य सम्मिलित हैं, बिहार और उड़ीसा राज्यों से घिरा हुआ है। इसकी आबादी का अधिक हिस्सा आदिवासियों का है। यह अंचल जंगलों और खनिज पदार्थों से भरपूर है। विदेशी पादरी बेलजियम और जर्मनी से आये और बिहार तथा उड़ीसा में और जशपुर में १८३४ में बस गये। वे बहुत से लागों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने में सफल हुए। अपनी सत्ता को बढ़ाने तथा संगठित करने और संभवतः इस भाग में विदेशियों के पांव जमाने के लिये, यह कहा जाता था कि पादरी लोग आदिवासियों को अन्य जातियों से पृथक रखने के सम्बन्ध में प्रचार किया करते थे और इस प्रकार झारखंड आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इस आन्दोलन को आदिवासियों स्थानीय ईसाईयों और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था। पादरियों ने इस आन्दोलन को अपने प्रभाव में रखने के लिये इस में राष्ट्रवादी लोगों को सम्मिलित नहीं होने दिया। १९३८ में पाकिस्तान की मांग के साथ साथ आदिवासी-स्थान की मांग ने भी जोर पकड़ा। कहा जाता है कि मुस्लिम लीग ने इस प्रचार कार्य के लिये एक लाख रुपया प्रदान किया। जब भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ तब आदिवासी स्थान आन्दोलन और भी तीव्र कर दिया गया, विशेष कर इस दृष्टि से कि पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से संयुक्त करने के लिये एक कोरीडोर (गलियारा) प्राप्त किया जा सके और जिसका उपयोग भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के समय एक सैनिक चल के रूप में किया जाय। ईसाई लोगों ने जिनको रांची जिले के पादरियों की सहायता प्राप्त थी, अपने आप को रैयत वर्ग के रूप में संगठित किया। ऊपर से तो वे सामाजिक सेवा का स्वांग रचते रहे, किन्तु भीतर से वे आदिवासी आन्दोलन का संचालन करते थे। बिहार के पक्ष में यह आन्दोलन, प्रारम्भ में बिहार के राँची जिले के रोमन कैथोलिक लूथरन पादरियों की प्रेरणा से उठाया गया था, परन्तु शीघ्र ही उसको दूसरे ईसाई और गैर-ईसाई आदिवासियों तथा बिहार के कांग्रेसी सदस्यों का भी समर्थन प्राप्त हो गया। यह भी कहा जाता है कि उस समय के बिहार के प्रधान मन्त्री और

माल मन्त्री की भी इस में सहानुभूति थी, इसी लिये कुछ बिहार कांग्रेस के सदस्य तथा रेवेरेन्ड लकड़ा जो लूथरन मिशन के मुखिया थे और एक जमीदार, इन लोगों की एक संयुक्त पार्टी ने सन् १९४८ की जनवरी के दूसरे सप्ताह में सरगुजा का निरीक्षण किया, ताकि इन राज्यों को बिहार में सम्मिलित करने के लिये जनता का बहुमत एकत्रित किया जा सके। उक्त पार्टी के दो सदस्यों ने सरगुजा जिले के सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को सूचना दी कि वे बाकी के सदस्यों के साथ पूर्णतया सहमत नहीं है। उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को यह भी बताया कि पाकिस्तान और, कुछ अमेरिकन तथा जर्मन पादरियों के बीच यह षडयन्त्र रचा गया है कि वे आदिवासियों को इसलिये उकसाएं कि वे अपनी भूमि पर, जो प्राय: झारखंड के नाम से प्रसिद्ध है, जबर्दस्ती अधिकार जमा लें। अव बर १९४८ में सरगुजा के गौंथिया नाम के एक व्यक्ति को उसकी आपत्तिजनक गतिविधियों के कारण पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट के अन्तर्गत नजरबन्द कर दिया गया था। उसके घर की तलाशी हुई और उसमें उसके यहाँ से जो चिट्ठियां मिलीं, उनसे पता चला कि वह पादरियों द्वारा संगठित झारखंड आन्दोलन का एक उग्र कार्यकर्ता है। यह आन्दोलन एक अलग आदिवासी राज्य स्थापित करने के लिये चलाया गया था। अन्त में गौंथिया को एक लिखित रूप में यह वचन देने पर कि वह आपत्तिजनक कार्यवाहियों में भाग नहीं लेगा, छोड़ दिया गया।

उदयपुर के पड़ोसी राज्य में ९ जुलाई १९४६ को "ऐन्टी कन्वर्सन ऐक्ट" लागू कर दिया गया। यह उक्त राज्य के नरेश के दिसम्बर १९४४ में सिंहासनारूढ़ होने के डेढ़ साल बाद की बात है। परन्तु रोमन कैथोलिक पादरियों की अनुचित कार्यवाहियों को रोकनें के लिये उस समय के पोलेटिकल एजेन्ट ने २८ फरवरी १९४१ के आर्डर के द्वारा रोमन पादरियों के प्रवेश को केवल विशेष शर्तों पर ही स्वीकृति दी थी।

जो रोक राज्य के पहले शासन से लगी हुई थी, अब भी चालू थी और सरकार के पास यह सूचना थी कि ईसाई पादरी उदयपुर राज्य में आपत्तिजनक राजनैतिक कार्यों में भाग ले रहे हैं, जिससे दो राष्ट्रों की नीति उभड़ रही है, जिसके परिणाम स्वरूप अभी ही भारत के इतिहास में भयानक उपद्रव घटित हुए हैं। यह विचार कर कि ऐसी भयानक गतिविधियां किसी भी उत्तरदायित्व पूर्ण शासन के लिये सह्य नहीं हैं, सरकार इन रोकों को बिल्कुल ही उठा देने को तैयार न थी। पिछली अर्धशताब्दी में जिस राजनैतिक दृष्टिकोण से ईसाई पादरियों ने धर्म-परिवर्तन कार्य उक्त विलीन राज्यों में किया है और जिस प्रकार उन्होंने भयानक झारखंड आन्दोलन को अपनी सक्रिय सहायता प्रदान की है, उसको देखते हुए सरकार ने उन गतिविधियों को दबाना उचित समझा। २९ मार्च १९४९ को जो कांफ्रेन्स राज्य के मुख्य मन्त्री ने बुलाई थी, उसमें तीन रोमन कैथोलिक नेता (मेजर ए० बर्नार्ड, एम० एल० ए०, श्री ज़ी० एक्स० फ्रैंसिन्स और मेजर ए० डबल्यू० एफ० डकोस्टा) भी थे। मुख्य मन्त्री ने सरकारी नीति को भली प्रकार स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है और इसमें विचारों तथा धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु कठिनाई तब उपस्थित होती है जब धार्मिक संस्थायें राजनीति के साथ सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। उक्त कान्फ्रेंस में सरकारी वक्ता ने इस ओर इशारा किया कि कई गैर-ईसाइयों ने सरकार से अनुरोध किया है कि विलीन राज्यों में पादरियों का गतिविधियां बढ़ गयी हैं और विशेष रूप से यह कहा कि उनके स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दी जाती है। यह इसलिये आवश्यक हो गया था कि जब से "ट्राइबल वेलफेर डिपार्टमेन्ट" ने स्कूल खोले हैं तब से रोमन कैथोलिक पादरियों ने लगातार उन के स्कूलों के विरुद्ध आन्दोलन उठा रखा है और सरकार से शिकायत भी की है। यद्यपि फादर बर्मेरी कहते थे कि उनको कोई आपत्ति नहीं यदि सरकार जशपुर में मिशन स्कूलों के साथ साथ अपने स्कूल खोले, तथापि रांची के कैथोलिक बिशप सरकार से यही कहते रहे कि ऐसा नहीं होना चाहिये। हमारे विधान के लागू होते ही सरगुजा और उदयपुर के राज्यों में बेल्जियन जैसुइट्स, लूथरन और दूसरे मिशनों का प्रवेश प्रारम्भ हो गया। पहले ये रांची जिला से कार्य किया करते थे। उरांव में ईसाइयत का प्रचार करने के लिये उक्त मिशनों ने बहुत जोरदार कार्य किया। जशपुर में उस समय वहां के नरेश की अनुमति के विरुद्ध वहां अपने आपको पूर्णतया सुदृढ़ बनाकर तथा उन नरेशों पर सरकारी दबाव डलवा कर जशपुर को, उदयपुर और सरगुजा के क्षेत्रों में कार्य

बढ़ाने के लिये, एक अड्डा के रूप में बना लिया गया। पादरी लोग पहले ही कार्य प्रारम्भ कर चुके थे। वे देहातों में ऐसे ईसाइयों को भेजते थे जो अपने आपको ईसाई नहीं बतलाते थे और खेतों में श्रमिक के रूप में कार्य करते थे अथवा अपने सम्बन्धियों के पास रहते थे। जब कुछ समय के भीतर पर्याप्त रूप में ऐसे लोग उस क्षेत्र में रहने लग जाते थे। तो वहां प्रचारक जाते थे और उन ईसाइयों में से जो वहां पर रहने के लिये गये हुए थे, सहकारी नियुक्त कर लेते थे और तब सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता था। सरकार के पास धड़ाधड़ शिकायतें पहुंचने लगीं कि ये प्रचारक और उनके वेतन-भोगी सेवक ईसाइयों के हाथ में कठपुतली हैं। वे लोगों के दैनिक कार्यों में लगातार हस्ताक्षेप करते थे और एक दूसरे की वकालत करते थे। कैथोलिक लूथरन और स्वेडिश चर्चों ने सरगुजा बिहार सीमा और सीमा से लगे हुए स्थानों में केन्द्र स्थापित कर लिये थे। उन्होंने १९५० में अम्बिकापुर और सीतापुर में, जो सरगुजा जिले में हैं, अपनी शाखायें खोली थीं।

स्थानीय अधिकारियों ने सरकार को रिपोर्ट भेजी कि ईसाई पादरी निम्न प्रकार के साधन अपनाते हैं:—

ईसाई मिशन सर्वप्रथम अपने किसी जिम्मेदार सदस्य के द्वारा जो प्रायः विदेशी ही हुआ करता था, एक प्रारम्भिक जांच कराकर, किसी एक छोटे गांव में अड्डा जमा लेता था और वहां गांव वालों का विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी। तब शनैः शनैः वे गांव वालों की उनकी स्थानीय समस्याओं में सलाह मशविरा देने लग जाते थे और कई बार उनके लिये प्रार्थनापत्र और शिकायतें, जो अधिकारियों को देनी पड़ती थी, वे लिख देते थे। वे स्वयं अदालत में उनके मुकद्दमों की पैरवी करते थे और इस प्रकार उनका विश्वास प्राप्त करते थे। चुने हुए उरांव लड़कों को दस्तकारी अथवा उच्च शिक्षा के लिये मिश्नरियों के हेडक्वार्टर्स में जो जशपुर (बिहार) में था, भेजा करते थे। साथ साथ जो लोग बिहार में पहले ईसाई हो चुके हाते थे उनको केन्द्रों में लाया जाता था कि वे गांव वालों में घुलमिल जावें और धर्म-परिवर्तन से जो लाभ हुए हैं उनसे उन्हें परिचित करावें। स्थानीय समझदार गांव वाले (प्रायः मुसलमान) चुन लिये जाते थे और उनको लगभग ५०) मासिक वेतन पर प्रचारक के रूप में नियुक्त कर लिया जाता था। ये वैतनिक प्रचारक गांव में घूमते फिरते थे और प्रचार करते थे, जिससे पादरियों के लिये आस पास के गाँवों में जिम्मेदार व्यक्तियों को फंसाने के लिये रास्ता साफ हो जाता था। इसके साथ ही जो ईसाई हाल ही में केन्द्रों में बने होते थे, उन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उनको नये कपड़े दिये जाते थे, उनको कृषि इत्यादि में अपनी व्यक्तिगत सम्मति दी जाती थी और उनको मुफ्त में रासायनिक खाद बांटी जाती थी। उनके घरों को ऐसा नया रूप दिया जाता था कि वे गांव में पृथक दिखलायी दें। वे स्कूल खोलते थे जिन में भविष्य में ईसाई मत में दीक्षित होने वाले ही प्रवेश पा सकते थे। जब बाजार लगते थे तो उनमें मुफ्त दवाइयां बांटी जाती थी और भविष्य में ईसाई बनने वालों को दवादारू मुफ्त दी जाती थी, जबकि दूसरों से दाम लिये जाते थे। वे विशेष चुने हुए परिवारों में बीजों के बिना मूल्य वितरण का प्रबन्ध करते थे और कुछ मामलों में ऐसी रिपोर्ट मिली थी कि नकदी सहायता भी दी जाती थी। कर्ज दिये जाते थे और कर्जदार को सीधे अथवा गोलमोल तरीके से कहा जाता था कि यदि वह ईसाई धर्म ग्रहण करले तो उसको कर्ज पाटने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार विशेष पक्षपात के वातावरण तथा भौतिक लाभ के लालच से धर्मपरिवर्तन के हित में एक अच्छा खासा क्षेत्र तैयार हो जाता था। कुछ एक मामलों में ऐसी रिपोर्ट भी मिली है जिनसे पता चलता है कि जोर जबर और दबाव के तरीके भी अपनाये गये थे। ज्यों ही सरगुजा जिला में पादरियों की गतिविधियां फैलीं, वहाँ स्थानीय गैर-ईसाई घबरा उठे। १९५२ में जिला के प्रमुख नागरिकों ने जिनमें महाराजा सरगुजा भी सम्मिलित थे, पैम्फलेट बाटें और सभायें की तथा आदिवासियों को प्रेरित किया कि वे आर्थिक लाभ अथवा अन्य तुच्छ प्रलोभनों से अपने धर्म का परित्याग न करें।

यह तनाव विशेष कर मिश्नरियों के उन आपत्तिजनक तरीकों के कारण था, जिनमें से कुछ एक का यहां वर्णन किया जाता है:—

५ मई, १९५१ को लगभग रात के ८ बजे रेवेरेन्ड के० सी० वर्डेट ने, जो एक विदेशी पादरी हैं, चन्दो गांव

में एक जलूस निकाला। उनके साथ उनके लगभग २५ अनुयायी थे और वे एक ट्रक में गांव के भीतर घूमे और उत्तेजना पूर्ण गाने हिन्दू धर्म की भर्त्सना करते हुए गाते रहे। इस घटना की पुलिस में रिपोर्ट दे दी गयी और अपराध दर्ज कर लिया गया। श्री वर्डेट ने बिना शर्त की लिखित माफी मांग ली, इस लिये उस पर मुकदमा नहीं चालू किया गया। सलवा गांव में जो बैकुण्ठ पुलिस थाने में है, ७ नवम्बर १९५२ को १६ ईसाई प्रचारक एक चरण उरांव के घर में घुस गये। उसकी रसोई के बर्तनों को फेंक दिया और मारपीट के लिये धमकाया। यह केवल इस लिये कि उसका अपराध यह था कि उसने धर्म-परिवर्तन का विरोध किया था। इन लोगों का चालान हो गया और हरेक को सजा हुई। एक दूसरे अवसर पर इसी गांव में जो ईसाई प्रचारक हाल में ही नियुक्त हुए थे उन्होंने स्थानीय उरांवों के विरुद्ध मारपीट और डराने धमकाने का प्रयोग किया, जिसके लिये उनका धारा ५०६ इन्डियन पेनल कोड के अन्तर्गत चालान हो गया। इसी प्रकार इसी क्षेत्र में एक दूसरे गांव में कुछ प्रचारक नये नये नियुक्त हुये थे जिन्होंने हिंसा का प्रयोग किया था, उनके विरुद्ध रिपोर्ट मिली और उन के विरुद्ध अभियोग चलाये गये। रेवेरेन्ड जे० जे० क्रिस्टी, जो एक मिशन के मुखिया हैं और जिनका सदर मुकाम पलामू जिले में है तथा जो पलामू जिले से सरगुजा जिले में केन्द्र स्थापना की व्यवस्था करते थे, उनको सरकारी आदेश को तोड़ने तथा बिहार में चोरी छिपे चावल भेजने के अपराध में पकड़ लिया गया था। उन्होंने सरकारी व्यक्तियों से जिन्होंने तस्कर व्यापार कार्यों को रोका था, मारपीट की थी। उनके विरुद्ध मुकद्दमे दायर किये गये और उनका चालान हुआ। इन दोनों मुकद्दमों में उन्हें हाल में ही सजा मिली थी। इसी प्रकार एक गांव के मुखिया से जो घटना घटित हुई उसकी रिपोर्ट मिली। इस मुखिया ने शिकायत की कि जब वह आमाडोली गांव में जो मदगुरी के पास है, कुछ पूछताछ के लिये गया हुआ था, तो वहां लुटिया और गांव के दूसरे ईसाइयों ने उस मुखिया को पकड़ लिया और उसके कपड़ों को नोचा और उसको पीटा। पुलिस को इस घटना की रिपोर्ट दे दा गयी और पूछताछ आरम्भ हुई। ४ ईसाइयों को इस सम्बन्ध में अदालत से सजा हुई। इस सम्बन्ध में जिस हेड कान्स्टेबल ने छानबीन की उसके विरुद्ध रेवेरेन्ड एफ० एक्का ने जो कैथोलिक आश्रम के हैं, एक झूठी शिकायत कर दी। एक्का द्वारा की गयी और उक्त शिकायत की जांच रामानुजगंज पुलिस के एस० डी० ओ० द्वारा की गयी शिकायत को बिल्कुल झूठी करार दिया गया। संभव है कि यह शिकायत इस लिये की गयी हो कि इससे उन उरांवों की, जो ईसाई हो गये हैं, रेवेरेन्ड एक्का को सहानुभूति प्राप्त हो जाय और दूसरी ओर पुलिस के अधिकारी, जो अपना कर्तव्य पालन करते हैं, हतोत्साहित हो जायं। उक्त फौजदारी के अपराध जो दर्ज हुए और जिनकी जांच पड़ताल हुई उनके अतिरिक्त जिला अम्बिकापुर के जिलाधिकारियों के पास बहुत सी साधारण शिकायतें ग्रामीणों द्वारा ईसाई पादरियों की आपत्तिजनक गतिविधियों के विरुद्ध पहुंची थीं। जिस में से कुछ का उल्लेख यहां किया जाता है।

धज्जी और सूखरी ग्राम पुसिल थाना समरी के अन्तर्गत है, वहां के १३ ग्रामीणों ने रोमन कैथोलिक मिशन से सम्बन्धित पटरास करकट्टा तथा उनके साथी प्रचारकों के विरुद्ध शिकायत की कि उन्हों ने गांव में एक जलसा किया जिसमें कहा कि कांग्रेस राज्य बुरा है। कांग्रेस राज्य ईसाई लोगों के लिये कष्टदायक है और अब ईसाई अपना राज्य स्थापित कर रहे हैं जिससे लोगों को सब प्रकार का आराम मिलेगा। उन्होंने गांव वालों को हिदायत की कि वे सरकार को मालगुजारी न दें, सरकारी जंगल काट लें और अफसरों पर, जो उनको रोकें, धावा बोल दें और जो लोग उनके साथ सम्मिलित न हों उनसे मारपीट करें। श्री पटरास करकट्टा ने उनसे यह भी कहा कि वे सरकार के विरुद्ध इकट्ठे हो जाए। उसने उनको धमकाया कि जो उनको सहयोग न देंगे उनको ईसाईयों का झारखंड मिल जाने पर गांवों से निकाल देंगे। कई अवसरों पर मंडवा, नवादी कलां, करचा, खजुरीडीह, शाहपुर और कांदरी इत्यादि गांवों के ग्रामीणों द्वारा रेवेरेन्ड करकट्टा के विरुद्ध अधिकारियों के पास शिकायतें पहुंची। स्थानीय अधिकारियों के पास यह खबर पहुंची कि पटरास करकट्टा ने उन दो छोटे उरांव शिशुओं को जो अपनी दादी की आँखों में औषधि डलवाने के लिये करकट्टा के पास आये थे, इसाई बना लिया है। रामानुजगंज के एस० डी० ओ० ने शान्ति

के भंग होने के डर से तुरन्त स्थल पर ही इन्क्वायरी प्रारम्भ कर दी। उस गांव के लोगों की इच्छा के अनुसार उन दो शिशुओं को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया गया और पटरास करकट्टा ने ए० डी० एम० के सामने एक माफीनामा पेश कर दिया।

अधिकारियों के ध्यान में ऐसे उदाहरण भी आते रहे जिनसे यह प्रगट होता था कि ये पादरी लोग जानबूझ कर झूठी और निराधार शिकायतें सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध भेजते हैं, जिसमें कि पादरियों की गतिविधि बिना उच्च अधिकारियों की दृष्टि में आये हुए जारी रहें। उच्च अधिकारियों ने पादरियों द्वारा की गई उन तमाम शिकायतों पर पूछताछ की और प्रायः उन सब को झूठी और निराधार पाया। सरकार द्वारा पूछताछ करने पर कि कितने लोग ईसाई बन चुके हैं, यह ज्ञात हुआ कि जब केवल ४ उरांव १९४८ में ईसाई हुए थे, १९४९ में कोई नहीं हुआ। १९५० में सिर्फ ५ हुए और १९५१ में ४०। परन्तु १९५२ में ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की संख्या ४००३ तक पहुंच गयी और १९५३ में जो लोग ईसाई हुए थे उनका जोड़ ८७७ था और १९५४ में २२३। यह देखा गया था कि धर्म-परिवर्तन केवल उरांव तक ही सीमित रहा और बहुत से मामलों में तमाम परिवार के परिवार ही ईसाई बना लिये गये थे। जहां १९५१ से पहले मिशन की गतिविधियां केवल तीन गांवों तक ही सीमित थी, वहां वह बढ़ती-बढ़ती अब सरगुजा जिले के २३ गांवों में फैल चुकी हैं। यहां पर बहुत से लोगों को ईसाई बनाया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहां एक ओर तो उदयपुर और सरगुजा राज्य में जो विदेशी मिश्नरी धर्म-परिवर्तन का कार्य कर रहे हैं, उन्होंने तमाम भारत वर्ष में यह गलत धारणा फैला रखी थी कि मध्य प्रदेश गवर्नमेंट ईसाईयों और मिश्नरियों के विरुद्ध पक्षपात तथा तंग करने वाली नीति पर चल रही है, तो दूसरी ओर बहुत सी शिकायतें विदेशी मिश्नरी के विरुद्ध और विशेषकर आदिवासियों के बीच उनके आपत्तिजनक कार्यो के विरुद्ध पहुंच रही थी और जनता का रोष दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। नाना प्रकार के लगभग ३० मिशन मध्यप्रदेश में कार्य कर रहे हैं और उनके अन्तर्गत हरेक जिले में बहुत से केन्द्र हैं। प्रायः समस्त मध्य प्रदेश पादरियों के कार्यो से आक्रान्त है और एक भी ऐसा जिला नहीं होगा जहां पर एक मिशन किसी न किसी रूप में कार्य न कर रहा हो। मध्यप्रदेश की आधी से अधिक आबादी (५७·४ प्रतिशत) शिड्यूल्ड कास्ट्स, शिड्यूल्ड ट्राइब्स और दूसरी पिछड़ी हुई जातियों की हैं। इन्हीं में पादरियों का कार्यक्रम विस्तृत रूप से सीमित है। पुराने मध्यप्रदेश और विलीन राज्यों में पादरियों की गतिविधियों की पृष्ठ भूमि को सरकार को ध्यान में बार बार लाया जा चुका था ताकि सरकार इससे सबक लें और इसी प्रकार के जो तरीके रोमन कैथोलिक और दूसरे मिशन सरगुजा, उदयपुर राज्यों के नये क्षेत्रों में अपनाते हैं, उनको दृष्टि में रखें क्योंकि वे बहुत महत्व के हैं। पादरियों ने बहुत जोरदार तरीके से धर्म परिवर्तन के कार्य और राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के आरोप का विरोध किया और उन स्थानीय राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध आरोप का विरोध किया और उन स्थानीय राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध आरोप लगाया, जा उनके बारे में जांच पड़ताल किया करते थे। मध्यप्रदेश के बाहर भी इन पादरियों ने मध्यप्रदेश सरकार के रवैये के विरुद्ध शिकायत की थी और विदेशी समाचार पत्रों में सरकार के विरुद्ध झूठा, गर्हित प्रचार करते थे। ऐसी परिस्थिति में सरकार ने निर्णय किया कि इस बात को एक खुले निष्पक्ष जाँच आयोग द्वारा छानबीन की जाय और इसी के फल स्वरूप हमारी इस समिति की नियुक्ति हुई।

अध्याय ३

मध्यप्रदेश के आदिवासी तथा अन्य जातियां

पादरियों का कार्यक्रम मध्यप्रदेश के प्रायः कुछ विशेष जंगली जातियों और सीमा-क्षेत्रों में ही सीमित है, इसलिये यह उचित है कि उन मुख्य जंगली जातियों के व्यवसाय, विशेषतायें, रहनसहन के ढंग और रीति-रिवाज के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त की जाय।

हम सबसे पहले उरांव बैगा मरिया और गोंड इन जंगली जातियों का उल्लेख करेंगे। ये आदिवासी कैसे भोले भाले और दूसरों के धोखे में आ जाने वाले हैं यह इन जातियों का विशेषताओं और उनकी रीतिरिवाजों का का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है। १९४१ की

जन-गणना के अनुसार उरांव १६४७३१ थे। यह एक द्रविड़ जाति है जो पहले विलासपुर जिले की कोरवा जमींदारी में तथा रामगढ़ जिले के उदयपुर और जशपुर में तथा सरगुजा में निवास करती है।

उरांवों के वीच कोई उपजातियां नहीं होतीं। उनके वहुत से गोत्र होते हैं जो पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के नामों पर होते हैं। उनका एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है। विवाह-शादियों तथा दूसरे सामाजिक व्यवहारों और आचार-विचार में वे हिन्दुओं के परम्परागत आचरणों का अनुकरण करते हैं।

वैगा मांडला जिले की डिंडोरी तहसील, बालाघाट जिले की वेहर तहसील और विलासपुर जिले के कुछ हिस्से में पाये जाते हैं। वह भारत की आमिद जातियों में से एक है। वैगा बहुत अच्छे शिकारी होते हैं। उन्हें अपने तीर कमान पर गर्व है। शिकार के अतिरिक्त उनका दूसरा व्यवसाय जंगली फल एकत्रित करना है। कभी वे टोकरियां और बाँस की चटाईयां भी वनाने हैं।

मरिया एक दूसरी आदिम जाति है। वे चांदा और वस्तर जिले में रहते हैं। उनका विशेष व्यवसाय शिकार है और उस पर वे कभी कभी महीनों खर्च कर देते हैं।

गोंड जो जंगली जातियों में सव से अधिक हैं, दुर्ग जिले के संजरीवलोद और वेमेतारा तहसीलों में, बालाघाट जिले की वैहर तहसील में और समूचे मांडला, रायपुर छिन्दवाड़ा, वैतूल, चान्दा और विलासपुर जिलों में रहते हैं। वे अधिकतर कृषक होते हैं। यद्यपि इसमें कुछ विना भूमि के श्रमिक भी हैं। एक समय था जब कि वे गोंडवाना के अधिपति थे और इसीलिये गोंडों में एक अभिजात वर्ग भी उत्पन्न हो गया है। विवाह-शादी में तथा होली, दशहरा, दिवाली और शिवरात्रि जैसे त्यौहारों पर वे हिन्दुओं की तरह रीतिरिवाज वर्तते हैं और हिन्दुओं की तरह ही पोशाक पहनते हैं।

आदिम जातियां हिन्दू हैं या नहीं, यह प्रश्न बहुत विवादास्पद रहा है पादरियों ने सदा उनका गैर-हिन्दू कहा है। उनकी संस्थाओं की ओर से लगातार यही चेष्टा रही है कि वे इन जातियों में ऐंसी भावना उत्पन्न करें कि वे अपने को हिन्दुओं से अलग मानें। महाभारत काल में व्यास और विदुर जैसे महापुरुष आर्य और आदिवासी जातियों के संयोग से उत्पन्न हुई सन्तान थे। सत्यवती कोली जाति की राजकन्या थी। वह राजा शान्तनु की महारानी बनी। धृतराष्ट्र पांडु और विदुर व्यास की संतति थे। उस काल में आर्य और आदिम जातियों में अन्तर्जातीय विवाह को दूषित नहीं समझा जाता था। भीम का विवाह हिडिम्वा से हुआ और अर्जुन ने एक नागकन्या उलूपी से विवाह किया था। निषाद एक आदिम जाति थी। वह आर्यों के पंच-जनों में भी सम्मिलित की जाती थी।

जब एक जंगली जाति एक विशेष जाति के रूप में परिवर्तित हो जाती थी तब भी वह अपना पूर्व नाम और रीतिरिवाज सुरक्षित रखती थी। परन्तु वे अपनी प्रकृति-पूजा के तरीकों को हिन्दू धर्म के अनुसार बदल लेते थे। समग्र भारतवर्ष में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं। हम यहां पर एक प्रसिद्ध श्लोक का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिससे पता चलेगा कि हिन्दू समाज के कई सम्मानित धार्मिक महापुरुषों की उत्पत्ति किस प्रकार जातियों के मिश्रण से हुई थी:—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः
स्वपाक्याश्च पराशरः
शुक्या शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः
सुतोऽभवत…………

(भविष्य महापुराण अ० ४२) रामायण के प्रणेता महर्षि बाल्मीकि और हनुमान् आदिम जाति के हा थे।

जिस विधि से यह परिवर्तन होता है, वह इस प्रकार होता है:—आदिम जाति के नेतागण जो येन केन प्रकारेण इस संसार में उन्नति करते रहे और भूमिपति हो गये, वे अपने आपको विशेष सम्मानित जातियों में गिनने लगे। वे प्रायः राजपूत वने। उनका पहला कदम यह होता था कि वे किसी ब्राह्मण से परामर्श करें कि वह उनके लिए विशेष पौराणिक पूर्वजों की कल्पना करे और उनका आपस में विवाह आदि होने लगे। अन्तर्जातीय विवाह आदि के द्वारा वे पूर्णतया उस समाज में खप गये और स्थानीय लोग उनको उच्च हिन्दूवर्गों में गिनने लगे। (इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, खण्ड १, पृष्ठ ३१२)।

आदिवासियों को हिन्दुओं से पृथक् समझने का कोई पुष्ट कारण ढूंढ़ निकालना सरल नहीं है, विशेष करके उस अवस्था में जब कि यह माना जाता है कि प्रकृति-

पूजकों अथवा जंगली जातियों के धर्म और हिन्दू धर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आदिवासियों को हिन्दुओं के पृथक् करने का रहस्य तब खुलता है जब हम इन जंगली क्षेत्रों में पादरियों की गतिविधियों का निरीक्षण करते हैं।

सन् ११४१ की जन-गणना सन् १९३१ की जन-गणना से बिल्कुल भिन्न थी। १९४१ में जनगणना जाति के आधार पर हुई और धर्म को आधार नहीं माना गया। उदाहरण के तौर पर एक आदिवासी जो शिड्यूल्ड ट्राइब से सम्बन्धित था उसकी गणना उसकी मूल जाति के आधार पर की गयी, चाहे वह धर्म से ईसाई हो अथवा नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि ऊपर से समस्त भारत में भारतीय ईसाइयों की संख्या उस वर्ष ६०४०६५५ दिखाई गई जो कि १९३१ की जन-गणना में दी हुई ईसाइयों की संख्या से २५६०९८ न्यून हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि दश वर्षों में अर्थात् १९३१ और १९४१ के बाच ईसाइयों की वृद्धि नहीं हुई। इस गोरखधन्धे का स्पष्टी करण तब होता है जब हम भारत में उस समय के सेन्सस कमिश्नर मि० यीट्स की लिखी हुई संक्षिप्त टिप्पणी का जो उन्होंने स्पष्ट किया है कि आदिवासियों की कुल आबादी का लगभग १।२० हिस्सा ईसाइयों का है। यदि इस आधार पर जोड़ किया जाय तो पता चलेगा कि ईसाइयों की उक्त दश वर्षों में कम से कम ३४७४१२८ की वृद्धि हुई।

भाग २

अध्याय १

मध्य प्रदेश और भारत में मिशन

इस देश में पादरियों की संस्थाएं इतनी दूर दूर फैली हुई हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि मानो राज्य के भीतर एक दूसरा राज्य स्थापित हो। रोमन कैथोलिक चर्च एक बहुत केन्द्रित संस्था है, जो समस्त विश्व में फैली हुई है और जिसकी सत्ता पोप में केन्द्रीभूत है और जिसका वर्णन पोप लिओ १३ वें के शब्दों में इस प्रकार है:— "पोप इस सृष्टि में सर्व शक्तिमान् परमात्मा का स्वरूप है, इसीलिये उसके शिर पर त्रिमुकुट विराजमान है जिससे यह सूचित होता है कि वह देव लोक भूलोक तथा पाताल लोक का राजा है।"

विदेशी मिशनरियों की संख्या भारत में इस समय ४८७७ है और इसमें सन् १९५१ की गणना से ५०० की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि छोटे मिशनों में हुई है, जिनमें से बहुत से अभीतक किसी संगठित चर्चों से सम्बन्धित नहीं हैं।

मध्य प्रदेश में भारतीय पादरी २५१ और विदेशी ४०२ हैं।

अध्याय २

पुराने मध्य प्रदेश तथा विलीन हुये राज्यों में ईसाई मिशन का इतिहास

भिन्न भिन्न ईसाई मिशनों का इतिहास वर्णन करते हुए रिपोर्ट में लिखा है:—

१४९८ में पुर्तगाल के लोग भारत में आये। तभी से भारत में पश्चिमी ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। दूसरे शब्दों में कैथोलिक चर्च की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों के युग का सूत्रपात तभी से होता है। १४९८ में वास्कोडीगामा ने कालीकट के पास लंगर डाला। परन्तु उस समय उसने ईसाइयों से कोई सम्पर्क स्थापित नहीं किया। जब १५०२ में वह दूसरी बार भारत में आया, तब वह भारत के पश्चिमी तट पर एक ईसाई जाति को बसी हुई देखकर विस्मित हो गया। इन ईसाइयों ने उनका स्वागत किया और अपने पड़ौसी मुसलमानों के विरुद्ध सहायता के लिए याचना की। पुर्तगाली बेड़े के साथ भारत के लिये बड़ी संख्या में पादरी भेजे गये और गोआ शीघ्र ही एक प्रबल कार्य क्षेत्र बन गया। तब तक पुर्त्तगालियों की कूटनीति मालाबार तक बसे हुए ईसाइयों को पुर्तगाल के शासक की प्रजा बनाने में सफल हो चुकी थी। यद्यपि पश्चिमीतट पर पुर्तगाली लोग व्यापार के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति कर चुके थे, परन्तु उनकी धर्म—परिवर्तन कार्य में कोई विशेष सफलता नहीं मिल पायी थी। पुर्तगाल के शासक ने इस थोड़ी प्रगति से असन्तुष्ट होकर इग्नैशियस लोपोला से आग्रह किया कि वह भारत के लिये सब जैसुइट पादरियों को रवाना कर दे। भारत पुर्तगाली अध्यवसाय का नारा था—"भगवान की सेवा

और अपना लाभ।" पुर्तगाल का राजा मैनुयल इस उद्देश्य की पूर्ति में समस्त साधन प्रयोग में लाने को उद्यत था। लोपोला ने इस प्रार्थना को स्वीकृत नहीं किया, परन्तु १५४१ में फैन्सिस क्जेवियर को, जो उच्च कोटि के जैसुइट थे, पूर्व में भेजा गया। जिस दिन भारत में उसने अपना कदम रखा उस दिन को भारत में रोमन कैथोलिक मिशन का जन्म-दिवस कहा जा सकता है। उसने इस देश में केवल साढ़े चार वर्ष व्यतीत किये। परन्तु इस अल्प काल में उसने लगभग ६०००० व्यक्तियों को ईसाई बनाया। इनमें से प्रायः सभी मछुये थे जो भारत के दक्षिणी-पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी तट पर रहते थे। वे सामूहिक रूप से ईसाई बना लिये गयें।

जैसुइट्स का जो सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन आन्दोलन चल रहा था, उसका मुख्य आकर्षण सांसारिक प्रलोभन था। दक्षिणी-पूर्वी तट पर जो मछुए रहते थे उन्हें लुटेरे बहुत तंग किया करते थे। उनका एक साथी जो गोआ में रहता था और ईसाई हो चुका था, उसने उनको सलाह दी कि उन्हें पुर्तगाली वायसराय के पास सहायता के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार गोआ के लिये एक शिष्ट मंडल भेजा गया। वायसराय ने इस शर्त पर उनको सहायता देने की अनुमति दे दी कि उनकी समस्त जाति ईसाई बन जाय और पुर्तगाल नरेश की प्रजा बन जाय। इस सौदेबाजी को पक्का करने के लिये इस शिष्ट मंडल के सब सदस्यों ने तत्काल ईसाई धर्म ग्रहण किया। तब एक फौजी बेड़ा भेजा गया, लुटेरों को मार भगाया गया और समस्त जाति को कुछ ही सप्ताह में ईसाई बना लिया गया।

क्जेवियर अपने परिश्रम के परिमाण से सन्तुष्ट नहीं हुआ। अतएव उसने पुर्तगाल नरेश को लिखा कि ईसाइयों की संख्या बढ़ाने के लिये केवल यही एक उपाय है कि राज्य की पूरी सत्ता को प्रयोग में लाया जाय। इसके फल-स्वरूप राजा ने आदेश जारी कर दिया कि गोआ और पुर्तगाल की दूसरी बस्तियों में "समस्त मूर्तियों को तलाश किया जाय और उनको नष्ट कर दिया जाय; जो कोई किसी मूर्ति के बनाने का साहस करे उसे कठोर दण्ड दिया जाय और जो कोई किसी ब्राह्मण को छिपाये अथवा उसकी रक्षा करे उसको अपराधी ठहराया जाय।" (पृष्ठ ५४ हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर) उसने यह भी आदेश दिया कि ईसाइयों को विशेष सुविधायें प्रदान की जाय ताकि स्थानाय लोगों को ईसाई धर्म में प्रवृत होने की भावना बढ़े। इस प्रकार पुर्तगालियों ने "अपने पिता ईशु के नाम पर भारतीयों के लिए एक हाथ में शक्तिशाली तलवार और दूसरे हाथ में सलीब लेकर" अपने कार्यक्रम को जारी रखा।

एक अन्य बड़े जैसुइट पादरी ने १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नया ढंग निकाला। वह इटली का रहने वाला था और ऊंचे घराने से सम्बन्धित था। वह कुशाग्रबुद्धि और लगन का आदमी था। वह मदुरा में आया। मदुरा उस समय एक हिन्दू राज्य की राजधानी थी और पुर्तगाल के वायसराय की सीमा से बाहर थी। इस पादरी का नाम रावर्ट डि नोबिली था। उसने देखा कि क्जेवियर तथा दूसरे कैथोलिक पादरियों की नीति जिसके द्वारा राज्य की सत्ता के बलबूते छोटी जातियों में से सामूहिक रूप से लोगों को ईसाई बनाया जाता था, एक खतरनाक नीति थी। उसने स्पष्ट देखा कि जब तक ऊंची जातियों में से ईसाई न बनाये जायेंगे तब तक ईसाइयत की जड़ भारत की भूमि में नहीं जम सकेगी। तब उसने तुरन्त क्जेवियर की नीति का परित्याग किया और एक निजी नीति निर्धारित कर ली।

नोबिली मदुरा में गेरुए वस्त्र धारण किये हुए एक साधु के वेश में, मस्तक पर चन्दन लगाए हुए और शरीर पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए प्रकट हुआ। उसके एक ओर क्रास लटका रहता था। ऐसी वेश-भूषा में उसने ब्राह्मणों की बस्ती में रहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसकी ओर बहुत से लोग आकृष्ट हो गये। वह अपने आप को रोम से आया हुआ ब्राह्मण बताने लगा। उसने लिखित प्रमाण भी पेश किये कि उसके पूर्वज पुरातन आर्यावर्त से वहां गये। इस प्रकार ऊंची जाति के लोगों को उसने आश्वासन दिया कि कोई व्यक्ति ईसाई बनने से अपनी जाति, रीति-रिवाज अथवा प्रतिष्ठा का परित्याग नहीं करता।" (क्रिश्चियन एण्ड क्रिश्चियनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० ६५–७०) उसने तामिल, तेलगू और संस्कृत सीख ली और ब्राह्मणों की वेशभूषा में रहने लगा। उसने संस्कृत में "क्रिश्चियन सन्ध्यावन्दनम्" नामक पुस्तक

ब्राह्मणों से ईसाई बने हुए लोगों के लिए लिखी। उसने घोषित किया कि वह पुराने भारतीय ऋषियों के संदेश को ही लाया है और उसी की शिक्षा दे रहा है। उसने कहा कि मैं केवल हिन्दुओं के लिये लुप्त हुई धार्मिक पुस्तक पंचम वेद अर्थात यीशुर्वेद का पुनरुद्धार कर रहा हूं। १८४० तक इस प्रकार धोखाधड़ी का कार्य चलता रहा, जब कि प्रोटैस्टेन्ट पादरियों ने इसका भंडाफोड़ किया (हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर, पृ० ६७) १६०७ से लेकर १६११ तक इन पांच वर्षों में उसने २७ ब्राह्मणों को ईसाई बनाया। रोमन गोत्र का यह ब्राह्मण संन्यासी, फादर डि नोबिली, चालीस वर्ष तक इस छद्म वेश में कार्य करता रहा और १६५६ में ८६ वर्ष की आयु में उग्र काल ने उसको भी ग्रस लिया। यह कहा जाता है कि उसने लगभग १००००० एक लाख व्यक्तियों को ईसाई बनाया, परन्तु वे सब उसकी मृत्यु के बाद फिसल गये। सन् १७०० तक भारत में ६००००० छे लाख कैथोलिक ईसाई बन चुके थे।

प्रोटेस्टैन्ट काल

प्रोटेस्टैन्ट पादरियों का कार्य-क्रम भारत में १७०६ में प्रारम्भ हुआ। डच लोगों के तुरन्त बाद डेन्स लोग भारत में आये और उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी तटों पर कई एक कल कारखाने स्थापित कर लिये। १७०६ में जर्मन लूथरन मिशनरी जिनको डेनमार्क के नरेश फ्रेडरिक चतुर्थ ने भेजा था, ट्रंकोबार में डेनिस बस्तियों के लिये पादरियों के रूप में पहुंचे। आरम्भ में उसका कार्य-क्षेत्र डेनिस और अंग्रेजी बस्तियों तक ही सीमित रहा। बाद में उन्होंने प्रचार, शिक्षा और बाइबिल के अनुवाद के क्षेत्रों में बहुत कार्य किया।

अंग्रेजों का मिशन

डेन्स ने राजनैतिक सत्ता को अभी बढ़ाना प्रारम्भ ही किया था कि अंग्रेजों ने उनको पछाड़ दिया। बंगाल में बेप्टिस्टों का पहला अंग्रेजी मिशन था जो भारत में स्थापित हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के १६७० के चार्टर के आधार पर "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की सेवा में समस्त पादरियों को आदेश था कि वे देश की भाषा सीखें ताकि वे गैर-ईसाई नौकर चाकर वर्ग में प्राटेस्टैन्ट धर्म का भली प्रकार प्रचार कर सकें। सन् १७८६ में एस० पी० सी० के० द्वारा कलकत्ता में रेवेरेन्ड क्लार्क केयरेन्डर के मिशन की नियुक्ति हुई। परन्तु उसने इस पद को १७६१ में छोड़ दिया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में चैप्लिन (पादरी) के रूप में हो गया। नवम्बर १७६३ में विलियम केरी कलकत्ता उतरा और कलकत्ता से पाँच मील उत्तर की ओर श्रीरामपुर में, जो एक डेनिश बस्ती थी, अपना सदर मुकाम बना लिया। १८२१ में लार्ड वेल्सली ने उसको बंगाली, मराठी और संस्कृत पढ़ाने के लिये कलकत्ता के एक कालेज में प्रोफेसर नियुक्त कर दिया, जहां सरकारी नौकरियों के उम्मीदवारों को ट्रेनिंग दी जाती थी। इस तरह से केरी की गतिविधियों का क्षेत्र कलकत्ता तक फैल गया। श्री रामपुर की त्रिमूर्त्ति केरी, मार्समैन और वार्ड एक जबर्दस्त धर्मयुद्ध चला रही थी। वे हिन्दू धर्म और इस्लाम पर भद्दे और गन्दे आक्षेप कर रहे थे। १८३० में जान अलैक्जैण्डर डफ नामक स्काटिश पादरी आया, तब से प्रोटेस्टैन्ट मिशन के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

बंगाल में डफ को उसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा जो दो शताब्दी पहले मदुरा में डि नोबिली को करनी पड़ रही थी। केप्टन कनिंघम ने "सिखों के इतिहास" में उस परिस्थिति का, जो पादरियों को गत शताब्दी के मध्य काल में पेश आयी, इन शब्दों में वर्णन किया है:—"वे कोई ऐसी नयी बात नहीं रखते जो उनके श्रोतागण पहले से न जानते हों··पण्डित और मौलवी अब उनकी प्रत्येक बात को अपनी बात से, नैतिक को नैतिकता से और आत्मदर्शन को अपने आत्मदर्शन के ज्ञान से काट सकते थे। हमारे जोशीले प्रचार चाहे अपने आप में कितने वर्ग बनालें, चाहे वे ईसा पर न विश्वास रखने वाले परिवारों के अनाथों को शिक्षा दीक्षा इत्यादि देने के कार्य की कितनी ही प्रशंसा क्यों न कर लें·······परन्तु आशा नहीं दिखाई देती कि वे कभी भारतीय और इस्लामी जगत् को ईसाई बना सकेंगे।" भारतीय ईसाई जो केवल छोटी जातियों में से ही ईसाई बनाये गये थे, घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे। तब डा० डफ ने यह योजना तैयार की कि ब्राह्मणों को अंग्रेजी शिक्षा द्वारा जिसमें ईसाइयत की गन्ध हो सरकारी नौकरियां देने के प्रलोभन में, ईसाई बनाया जावे। दूसरे पादरियों ने डा० डफ का अनुकरण किया और फलस्वरूप अगले ५० वर्षों में सरकारी सहायता से

तमाम भारतवर्ष में हाई स्कूल और कालेज खड़े कर दिये गये। सरकार ने अपनी १८५४ की घोषणा में कहा कि सरकारी शिक्षणालयों में केवल धर्म-निरपेक्ष शिक्षा प्रदान की जायेगी। केनन मोजले ने गत शताब्दी के पिछले ५० सालों में ईसाई धर्म प्रसार के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए सरकार की उक्त धर्म-निरपेक्ष नीति की बड़ी सराहना की है और यह दलील दी है कि इस प्रकार की नास्तिक शिक्षा से भारतीयों के मन में एक रिक्तता पैदा होगी जिसकी पूर्ति के लिये वे लालायित होंगे। १८५३ में पार्लिमेन्टरी कमेटी के आगे जो गवाहियां हुईं उनमें से बहुत से व्यक्तियों ने इस बात को स्वीकार किया कि सरकारी विद्यालय ईसाइयत के प्रचार के लिए एक अग्रदूत का कार्य कर रहे हैं। इस शिक्षा सम्बन्धी नीति की तह में यह स्पष्ट दिखायी देता था कि ईसाई शिक्षणालय खुले तौर से ईसाई धर्म के ज्ञान का प्रचार करते थे और सरकारी शिक्षणालय वही कार्य परोक्ष ढंग से करते थे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए मिशन के शिक्षणालयों को व्यक्तिगत सस्थाओं की अपेक्षा पांच गुना अधिक सरकारी सहायता मिलती रही है। शिक्षा-प्रचार पर सरकारी नीति निर्धारित करते समय यही भावना रही है कि सरकारी और ईसाई मिशन के स्वार्थ को एक समझा जावे।…… मिशन वालों ने भारत में ईसाइयत के प्रचार के लिये शिक्षा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के तरीकों और साधनों को अपनाया।

गदर के दो साल बाद लार्ड पामर्स्टन ने, जो इंगलैंड के प्रधान मन्त्री थे, जनता के समक्ष यह कहने का साहस किया: "यह केवल हमारा कर्तव्य ही नहीं है वरन यह हमारे हित की बात है कि हम जहाँ तक भी संभव हो, समूचे भारत में ईसाइयत के प्रसार को प्रोत्साहन दें।" लार्ड हेलीफेक्स जो उस समय सेक्रेटरी आफ स्टेट के पद पर थे, उन्होंने उक्त वक्तव्य के साथ यह नोट और जोड़ दिया:—"प्रत्येक नया ईसाई इस देश की एकता की कड़ी में एक नया जोड़ है और साम्राज्य के लिये एक नयी शक्ति का स्रोत है।" १८७६ में लार्ड रे (बम्बई) ने जब प्रिन्स आफ वेल्स के समक्ष भारतीय ईसाइयों का एक शिष्टमंडल पेश किया, तब पादरियों के सम्बन्ध में बोलते हुए उन्होंने कहा कि………"वे भारत के लिये उन नागरिकों, सैनिकों, न्यायधीशों और गवर्नरों की अपेक्षा, जिनसे आपकी भेंट हुई है, कहीं अधिक कार्य कर रहे हैं।" इस पर लार्ड रे की सरकार की ओर से बहुत प्रशंसा की गयी।

सर चार्ल्स ईलियट (बंगाल) ने पादरियों की प्रशंसा करते हुए कहा है:—"उस वृहत् आन्दोलन के, जिसके आधार पर अंग्रेजी शासन भारत में विद्यमान है, ये पादरी लोग गैर-सरकारी और छिपे हुए अंग हैं।" सर मैकवर्थ यंग (पंजाब) ने पादरियों को एक महत्वपूर्ण शक्ति बताया है। उन्नसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भारत में सम्मानित तथा बौद्धिक रूप से सम्पन्न परिवारों में बहुत थोड़े लोग ईसाई हुए। किन्तु उस शताब्दी के उत्तरार्ध में शक्तिशाली आन्दोलन जैसे आर्य समाज, ब्रह्मसमाज और थियोसोफी का प्रारम्भ हुआ। बड़े-बड़े धार्मिक नेता जैसे दयानन्द, रामकृष्ण और विवेकानन्द, मैडम ब्लेवेड्स्की और कर्नल आलकाट भारत में प्रगट हुए। इस धार्मिक उथल-पुथल ने पादरियों की उन तमाम कोशिशों को जो उन्होंने बौद्धिक वर्ग में चला रखी थीं, बेकार कर दिया।

प्रोटेस्टैन्ट चर्च की जो वृद्धि अंग्रेजी शासन-काल में भारत में हुई उसका सब से बड़ा कारण यह था कि चर्च को भारतीय सरकार की सहायता और संरक्षण प्राप्त था। इस बात के कई एक उदाहरण हैं कि सरकार की ओर से भूमिदान और आर्थिक सहायता गिरिजाघर बनाने के लिए तथा मिशनरी केन्द्र, अस्पताल और विद्यालयों के खोलने के लिए दी गयी। एक्लेजियेस्टिकल विभाग की ओर से जितने भी गिरजाघर विशप को सौंपे गये वे सब सरकारी खजाने से बनायें गये थे। केवल गांवों और नगरों में और ब्रिटिश इण्डिया के सैनिक स्थलों में ही नहीं, वरन भारत के प्रत्येक देशी राज्य में भी बड़े बड़े गिरजाघर और पादरियों के मकान बने हुए मिलते हैं, जो प्रायः सरकारी सहायता से ही बनाये गये थे। ईसाई हुए व्यक्तियों की रक्षा और ब्रिटिश इंडिया में उनकी विरासत के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये १८५० का २१ वां एक्ट पास किया गया। उस समय जो रीति-रिवाज पर निर्धारित कानून स्थित और चालू थे, उनसे हिन्दुओं के अन्य धर्मों में प्रवेश के लिए एक रोक

थी। लगभग ३५० बड़े केन्द्रों में मिशन वालों को जो जो सुविधायें दी जाती रही हैं उनका विस्तार पूर्वक इस रिपोर्ट में वर्णन आवश्यक नहीं।

प्रत्येक देशी रियासतों के रेजिडेन्सी क्षेत्र में जो बड़े-बड़े गिरजाघर और दूसरी मिशन की इमारतें आज भी खड़ी दिखायी देती हैं, उनके निर्माण में भूमि और प्रायः समस्त धन वहां के शासकों अथवा नरेशों द्वारा उस समय के अंग्रेजी रेजिडेन्ट अथवा पोलेटिकल एजेन्ट के निर्देश से, प्रदान किया गया था। राष्ट्रों के इतिहास में यह एक अद्वितीय उदाहरण है कि इस प्रकार का संरक्षण ईसाइयत के प्रचार के लिए एक गैर-ईसाई देश ने दिया हो।

१९४७ में देशी राज्यों के विलीन होने के पश्चात् सरगुजा जिले में पादरियों की घोर भयानक गतिविधियों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि रांची में किस प्रकार पादरियों के प्रचार का प्रारम्भ हुआ उस पर दृष्टि डाली जाय। इसका अनुमान 'हिस्ट्री आफ छोटा नागपुर" के अध्ययन से लगाया जा सकता है। १८४५ की बात है कि जब मिस्टर हैनिंग्टन ने, जो वहां डिपुटी कमिश्नर थे, कलकत्ता से चार जर्मन मिश्नरियों को वहां बुलाया और उनका कार्य कुछ अनाथ बच्चों को, जो अकाल के पीड़ित थे, उनके चार्ज में देने पर शुरू हुआ। ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की संख्या बढ़ने लगी, तब 'गौस्नर एवेन्जेलिकल लूथरन मिशन" ने रांची के इर्द गिर्द अपना कार्य क्षेत्र बढ़ाना शुरु कर दिया। "गौस्नर मिशन" जिस क्षेत्र में ईसाइयत का प्रचार करता है वह पहले जशपुर, सरगुजा, उदयपुर, और रायगढ़ देशी राज्यों से संयुक्त था। अब तक भी उक्त मिशन का सदर मुकाम रांची में है। १८८५ में बाद को रोमन कैथोलिक मिशन ने भी उनके साथ प्रचार शुरु कर दिया।

१९४८ से पूर्व राँची के डायोसिस (पादरी मठ) में जो क्षेत्र सम्मिलित थे वे आठ राज्यों से मिलकर बने थे। उनमें से ७ रांची के डायोसिस में थे और एक नागपुर के डायोसिस में। इन समस्त राज्यों में ईसाई धर्म का प्रचार बिलकुल निषिद्ध था। १९०७ में जशपुर राज्य में धर्म-परिवर्तन आंदोलन हुआ। किन्तु फिर भी ९ वर्ष तक मिशनरी लोग वहां रहने के लिए एक रक्षा-स्थान भी न बना सके। फिर शनैः शनैः मिशन के पांच स्थान स्थापित किये गये। उदयपुर राज्य में १९३५ में एक दूसरा धर्म-परिवर्तन का एक बहुत बड़ा आंदोलन हुआ। १९४१ तक कोई भी पादरी राज्य के भीतर नहीं प्रवेश कर सकता था। १९४१ से १९४९ तक बाहर से आने वाले पादरी को केवल गम्भीर रोग से पीड़ित रोगी को देखने और वर्ष में केवल चार अवसर पर सामूहिक प्रार्थना के लिए आने की आज्ञा थी। परन्तु वह राज्य में ४८ घंटे से अधिक नहीं ठहर सकता था। १९४९ में जब देशी राज्यों का विलय हुआ और १९५० में विधान घोषित हुआ, तब पादरियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी और उनकी गति-विधियों पर कोई रोक नहीं रही। १३ दिसम्बर १९५१ को रायगढ़ के "डायोसिस" और अम्बिकापुर के "डायोसिस" की स्थापना हुई और अब जो रांची में "आर्च डायोसिस" है उससे उनको अलग रखा गया। रांची डायोसिस अब तक रांची मिशन का भाग चला आ रहा है। (१९५४ कैथोलिक डायरेक्टरी पृष्ठ २६४)

मिशन वालों ने भारत में आदिम जातियों को ईसाईयत के प्रचार के लिये अच्छा खासा क्षेत्र पाया। इसी क्षेत्र में बेल्जियन जेसुइट मिशन १८८५ में आ घुसा, तब से उसको अपने कार्य में काफी सफलता प्राप्त हो रही है। कैथोलिक जेसुइट मिश्नरियों ने आदिवासियों की भूमि सम्बन्धी कष्टों से अनुचित लाभ उठाया। इस बात का, कमिश्नरी की सरकारी रिपोर्ट से जो उन्होंने १८९० में सरकार को भेजी थी, स्पष्ट पता चलता है। उस रिपोर्ट में लिखा था:—"रांची के डिपुटी कमिश्नर ने जैसुइट पादरियों की बड़े-कड़े शब्दों में निन्दा की है और उनपर आक्षेप लगाया है कि आदिवासियों में असन्तोष की भावना को प्रोत्साहन देने में इन्हीं पादरियों का हाथ है। यदि कोई झगड़ा हुआ तो उसकी सब जिम्मेदारी इन्हीं पर होगी।" (पृष्ठ १८, लिजेन्ड आफ दी कोल) यह बात उल्लेखनीय है कि १८९५ में आदिवासियों द्वारा जो विद्रोह हुआ था। उसका नेतृत्व बिरसा नामक ईसाई ने जो अपने आप को ईशु का भाई कहता था और जिसको जर्मन मिशन ने ईसाई बनाया था,

किया था। इस आन्दोलन को सैनिक सहायता से ही दबाया जा सका था।

इसी प्रकार का एक और विद्रोह बस्तर राज्य में १९१० में उठ खड़ा हुआ था जिसके पीछे मिस्टर वाड नामक एक मिशनरी का हाथ था। बस्तर राज्य में उक्त उपद्रव को दबाने के लिए जो फौज भेजी गई थी उसने मिस्टर वाड को उस राज्य में एक खतरनाक व्यक्ति कहा था। मिस्टर वाड को वस्तर राज्य के बाहर किसी अन्यत्र स्थान मे भेज दिया गया था। परन्तु वहां से भी वह बस्तर राज्य में रहने वाले ईसाईयों को चोरी छिपा पत्र भेजता रहा और उन को अपना पुनः बस्तर में तबादला करानें के लिए आन्दोलन जारी रखने के लिये उकसाता रहा। जिन ईसाईयों के घरों की तलाशी ली गयी उनके घरों में से 'राष्ट्रविरोधी और घृणा फैलाने वाले' पत्र-व्यवहार पाये गये। राज्य के दीवान मिस्टर जे० मे० ने मिशन अधिकारियों को लिखा कि जो पूछताछ उसनें की है उससे वह सन्तुष्ट है और यह पता चलता है कि मिस्टर वाड तथा ईसाई ही राज्य में अशान्ति और गद्दारी फैलाने के जिम्मेदार हैं। फल स्वरूप मिस्टर वाड को अमेरिका वापस भेज दिया गया।

१९३६-३७ में जैसुइट मिशनरियों ने उदयपुर राज्य में ईसाईयत के प्रचार के लिये घुसने की असफल तथा अनाधिकार चेष्टा की। गवर्नर जेनरल के एजेन्ट महोदय ने इस विषय में जांच करवाई तो विदित हुआ कि पादरियों ने तपकारा को जो उदयपुर राज्य के बाहर और जहां उदयपुर राज्य में रहने वाले लोगों का धर्म-परिवर्तन वर्जित है, अपना केन्द्र बना लिया है और वहां से लोगों को कर्ज देना शुरू कर दिया है ताकि धर्मपरिवर्तन के लिए लोग आकृष्ट हों। विना आज्ञा लिये उन्होंने उदयपुर राज्य में मिशन के स्कूल भी खोले और उन्होंने उदयपुर राज्य के १२० लड़के लड़कियों को शिक्षा देनें लिये तपकारा मिशन केन्द्र में भर्ती कर लिया। इस पर गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ने जैसुइट मिशनवालों को कड़ी चेतावनी दी कि यदि उन्होंने उदयपुर राज्य में अपने मिश्नरी कार्य को और फैलाया तो वे इसे सहन न करेगी। मिशन को यह भी आदेश दिया गया कि वह एक रजिस्टर रखे जिसमें प्रत्येक नये इसाई हुए व्यक्ति का नाम, उस के पिता का नाम और ऐसा अन्य विवरण लिखा रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके धर्म-परिवर्तन पर यदि किसी प्रकार प्रलोभन अथवा आर्थिक सहायता दी गयी हो तो उसका उल्लेख किया जाये। (कर्नल मिक्स रिपोर्ट)।

रेवेरेन्ड लकरा जो रांची के लूथरन मिशन के अध्यक्ष थे, १९४८ में अम्स्टर्डम में वर्ल्ड कौन्सिल आफ चर्चेज की कान्फ्रेन्स में सम्मिलित हुए उस अवसर पर अमेरीका के मिस्टर डलेस भी उपस्थित थे। अमेरीका के यूनाइटेड लूथरन चर्च के ८००० डालर की और १९५३ में ६०००० रु० की जो सहायताएँ प्राप्त हुई उनके द्वारा सरगुजा जिला में सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन किये गये (घर बन्धु, नवम्बर १९५२, पृष्ठ १३ तथा घरबन्धु, नवम्बर १९५३, पृष्ठ १५ और १६)। मिशन को अमेरीका से ६७५०० रु० भी मिला। इससे उनके खर्च में जो कमी पड़ गई थी, उसको पूरा किया गया (घरवन्धु, दिसम्बर १९५२, पृष्ठ ४ से ७)। यह स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न मिशनों में जो आपस में तीव्र प्रतिद्वन्दिता चली उसके फल-स्वरूप यह नितान्त आवश्यक हो गया कि कुछ लोगों को धर्म-परिवर्तन के लिये ३०) रु० प्रलोभन के रूप में अग्रिम दे दिये जांय (घरबन्धु, दिसम्बर १९५२, पृष्ठ २ से ५)। १९५४ में लूथरन नेशनल मिशनरी सुसाईटी ने एक बहुत बड़ी ग्रान्ट के लिये याचना की, ताकि सामूहिक धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये जो उरांव में से कार्य कर्ताओं की आवश्यकता है, उनकी सेवायें ली जा सकें। डाक्टर एफ० ए० स्योज, चेयरमैन लूथरन वर्ल्ड फिडरेशन कमीशन आफ वर्ल्ड मिशन्स और डा० सी० डब्ल्यू० ओवरडोर्फर, फिडरेशन प्रेसिडेन्ट आफ इण्डिया इन दो उच्च व्यक्तियों की प्रेरणा से, पार्टनरशिप इन ओविडियेन्स, के आधार पर १५०० डालर की ग्रान्ट दी गई। (दी नेशनल मिश्नरी इन्टेलिजेन्सर, अप्रैल १९५४, पृष्ठ ५) इस प्रकार सरगुजा राज्य में मिश्नरियों के अध्यवसाय ने जिसको पर्याप्त जन-धन की सहायता प्राप्त थी, एक प्रकार का धावा बोल दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां ५००० से अधिक लोगों का धर्म-परिवर्तन किया

गया। इस अवसर पर हमें यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि ये पादरी किस प्रकार मध्य प्रदेश के पूर्वी राज्यों में प्रविष्ट हुए। १८९३ में सर एन्ड्रू फ्रेजर ने जो उस समय छतीसगढ़ के कमिश्नर थे, बिना स्थानीय सरकार को सूचना दिये यह निर्देश जारी कर दिया था कि जो भूमि सरकार के प्रबन्ध में है उसको बस्तर राज्य में मिशन के कार्य के लिये लिया जा सकता है। इस विज्ञप्ति से जो गुल खिला यह प्रत्यक्ष ही है जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

१८५४ में मिश्नरियों ने कवरधा राज्य में भूमि लेने के लिये प्रार्थना की थी जिसको स्थानीय सरकार ने अस्वीकृत कर दिया था। क्योंकि जब एक देशी राज्य सरकार के शासन के अंतर्गत हो, तब मिश्नरियों के लिये प्रचार कार्य के लिये भूमि का हस्तान्तर करना सरकार की स्वामीत्व-शक्ति के अंतर्गत है और इस नियमानुसार भूमि का देना वह अस्वीकार कर सकता है २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मन लूथरन मिशन ने बिना गंगापुर राज्य के शासक से आज्ञा प्राप्त किये तथा बिना स्थानीय सरकार को सूचना दिये, वहाँ दो केन्द्र खोल दिये। राज्य के शासक ने इस पर विरोध प्रकट किया, तिस पर भी राजनैतिक अधिकारी ने कोई ध्यान न दिया। एक पादरी तो खुले आम बेगार के सम्बन्ध में शासक की आज्ञा की अवहेलना या प्रचार करता रहा, यद्यपि यह बेगार अथवा सेवा कार्य केवल रेन्ट फ्री (बिना कर की) भूमि वालों से ही लिया जाता था। मिश्नरी लोग प्रायः रैयत को यही वचन तथा आश्वासन देते रहते थे कि वे दरबार को कई प्रकार के दिये जाने वाले करों से उन्हें मुक्त करा देगें। ऐसे प्रचार से वहां प्रजा में अवज्ञा की भावना फैलती गयी। इसी हेतु छोटा नागपुर के कमिश्नर ने, जो उस समय पोलेटिकल अफसर के कार्य की देख रेख कर रहे थे, एक पादरी को राज्य से बाहर निकाल दिया। बाद में एक यूरोपियन दीवान आये और उन्होंने देखा कि ईसाई लोग हाथ से बिल्कुल बाहर निकलते जा रहे हैं तब उन्होंने ऐसी स्थिति पर सख्ती से काबू पा लिया। उक्त दीवान की यह धारणा बंध गयी थी कि अधिकतर लोग मिशन में इसलिये सम्मिलित होतें हैं कि उनको भौतिक लाभ प्राप्त होने की आशा होती हें। आध्यात्मिक लाभ के लिये वे कोई चिन्ता नहीं करते।

जिन परिस्थितियों में जशपुर के राजा को गद्दी से उतारा गया। वह बहुत महत्व की हें और उनके अध्ययन से पता चलता है कि उस समय की सरकार पर मिश्नरियों का कितना दबाव था। १९०६ में देशी ईसाई प्रचारकों के राज्य में प्रवेश के लिये जर्मन लूथरन मिशन ने एक लाइसेन्स के लिये याचना की। राजा प्रचारकों के प्रवेश के लिये आज्ञा प्रदान करने में सहमत नहीं थे। परन्तु मिस्टर लारी जो उस समय पोलीटिकल एजेन्ट थे, उन्होंने राजा पर दबाव डाला कि वे अपने विरोध को वापस ले लें। मि० एम० ब्रेट जो नये पोलेटिकल एजेन्ट थे उनको पता चला कि रोमन कैथोलिक वाले कहते थे कि उनसे ३०००० लोगों ने पूछ ताछ की है और लूथरन मिशन वाले कहते थे कि १५००० लोंगों ने उनसे भी पूछताछ की है और यह सब के सब पूछताछ करने वाले उरांव जाति में से थे। उसने सरकार को रिपोर्ट भेजी कि राजा ने पोलेटिकल एजेन्ट के दबाव के कारण पादरियों की बात मानी थी। परन्तु मध्य प्रदेश की सरकार ने यह ठहराया कि राजा को राज्य में समस्त मिश्नरियों के प्रवेश को रोकने की आम स्वीकृति नहीं दी जा सकती। इसके साथ ही उक्त सरकार ने मिश्नरी संस्थाओं को चेतावनी दी कि यदि उनके प्रचारक राजा के रैयत को वहां के विधान के अनुसार अधिकारों के विरुद्ध उकसाते रहे तब वे सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं रख सकेंगे। राजा और मिश्नरियों के बीच लगातार झगड़ा होता रहा। तब मिस्टर ब्लेक्सले जो उस समय पोलिटीकल एजेन्ट थे, उन्होंने अच्छी तरह जांच की और १९१३ में स्थानीय सरकार के पास अपनी जांच की पूर्ण रिपोर्ट भेज दी। उन्होंने उसमें उल्लेख किया कि जशपुर राज्य में ईसाइयत के आन्दोलन को किसी रूप में भी धार्मिक नहीं कहा जा सकता है। मिश्नरी लोग कर्जा दे दे कर लोगों में अपना काफी प्रभाव जमा चुके हैं। उसने वह भी लिखा कि धर्म-प्रचार के बहाने उन्होंने सारे राज्य में राजनैतिक प्रचार का जाल फैला दिया है। उसने

सरकार से अनुरोध किया कि राजा को जैसुइट पादरी तथा उनके एजेन्टों को बाहर निकालने का अधिकार दिया जावे। परन्तु सरकार ने उस के सुझाव को मानने से इन्कार कर दिया। मिस्टर ब्लेक्सले ने धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में जो पहले उल्लेख किया है उसकी पुष्टि कलकत्ता के आर्चबिशप के आत्मोल्लेख से हो जाती है, जो उन्होंने मिस्टर नैपियर, कमिश्नर आफ छत्तीसगढ़, के समक्ष किया था। उसमें उन्होंने कहा था कि सब बातों को छोड़कर वे कह सकते हैं कि आदिम जातियों में से जो बहुत से ईसाई राज्य में हुए हैं उनकी धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। यदि उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण किया था तो केवल इस लिये कि एसा करने पर उनको विशेष भौतिक लाभ होगा। झगड़ा तब हुआ जब १९२२ में जशपुर राज्य में एक "दी यूनिटी समाज" संस्था की स्थापना हुई। इसे रांची के लूथरनों ने स्थापित किया था और राज्य में जो मिशन के प्रचारक कार्य करते थे उनके बारे में रिपोर्ट मिली थी कि वह खतरनाक प्रवृत्तियों में लगे हुए है। कलकत्ता के रोमन कैथोलिक आर्चबिशप ने पोलिटकल एजेन्ट के पास एक विवरण भेजा जो उसके एक पादरी ने तैयार किया था कि लूथरन प्रचारक जिस प्रकार झगड़े के बीज बो रहे हैं उनसे एक गदर का सूत्रपात होगा। ऐसी घटना अवश्य घटी और इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि जशपुर के राजा को गद्दी से उतार दिया गया। ऐसी घटनाएं भविष्य में न हों पाएं, इन्हीं की रोक के लिये रायगढ़ दरबार ने १९३६ में कनवर्सन ऐक्ट पास किया था।

१९२८ के स्टैचुटरी कमीशन ने पिछडी जातियों को दो हिस्सों में विभक्त कर दिया—एक पूर्ण बहिष्कृत क्षेत्र तथा दूसरा अंशतः बहिष्कृत क्षेत्र। यह सर्वविदित है कि आदिम जातियों ने, जैसे गोंड इत्यादि, १९२०–२१ के असहयोग आन्दोलन में और अन्य राजनैतिक आन्दोलनों में जैसे १९२३ में जो नागपुर झंडा-सत्याग्रह हुआ था उसमें और १९३० में जो जंगल-सत्याग्रह हुआ था, उसमें सहयोग दिया था (पृष्ट ४९ अबोरिजिनल प्रोब्लेम इन दी बालाघाट डिस्ट्रिक्ट)। बृटिश पार्लियामेन्ट को भेजे जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट में नव-सत्याग्रह को इस रूप में बताया गया था कि इससे आन्दोलनकारियों का साहस बढ़ा है और वे जंगली जातियों के बीच अशान्ति उत्पन्न करने में सफल हो गये हैं। जब स्टेचुअरी कमीशन की राय पार्लियामेंट के समक्ष रखी गयी तो कर्नल वेजउड ने कहा कि उन्हें भारत से ऐसे बहुत से पत्र मिले हैं जिनमें आग्रह किया गया है कि जंगली जातियों को भारतीयों के ही संरक्षण में रखा जाय। किन्तु उनकी अपनी सम्मति में ऐसा आग्रह इसलिए था कि शिक्षित भारतीय जंगली जातियों का श्रम का शोषण करना चाहते हैं। अफ्रीका का उदाहरण देते हुए उन्होंने यह सम्मति दी कि पिछड़ी जातियों के लिए एक मात्र आशा का केन्द्र ईसाई मिश्नरियां ही हैं।

उक्त प्रकार से जंगली जातियों को पृथक् रखने का यह परिणाम हुआ कि वे मिश्नरियों के प्रचार का शिकार बन गयीं।

डा० एल्विन ने १९४४ में जंगली जातियों को पृथक रखने के कुपरिणाम को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ऐसा करने से मिश्नरियों को धर्म-परिवर्तन का बड़ा अच्छा अवसर हाथ लगा है, क्योंकि वे सुदूर भागों में क्या कर रहे हैं, यह जनसाधारण की आंखों से परे हो जाता है। मांडला जिले के सम्बन्ध में डा० वेरियर एल्विन ने लिखा है:—

"मांडला में स्थिति गम्भीर हो चुकी है, क्योंकि वहां जबलपुर के फादर (पादरी) लोगों ने अबाध गति से और ऐसे तरीकों से धर्म-परिवर्तन कार्य आरम्भ कर दिया है, जो अत्यन्त लज्जाजनक हैं।"

इस सम्पूर्ण समस्या का इतिहास की दृष्टि से अध्ययन करने पर यही लगता है कि मिश्नरियों ने एक राज्य के अन्तर्गत एक दूसरा राज्य स्थापित कर रखा है।

झारखण्ड

लूथरन और रोमन कैथोलिक मिशन के प्रभाव द्वारा आदिवासियों में जो पृथक् रहने की भावना का जन्म हुआ, वह बृटिश सरकार तथा मिश्नरियों की संयुक्त नीति का ही परिणाम था। साइमन कमीशन की सिफारिश पर १९३१ की जनगणना में मूल हिन्दू जाति से आदि-

वासियों का विच्छेद कर दिया गया और १९३५ म इसे इंडिया ऐक्ट में परिणत हो जाने पर तो पाकिस्तान के ढंग पर एक अलग झारखण्ड की मांग के लिए एक क्षेत्र ही तैयार हो गया। किस प्रकार 'झारखण्ड की मांग' वर्तमान रूप में उत्पन्न हुई, यह निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जायेगा।

सन् १९४१ में श्री एम० डी० टिगा ने 'छोटा नागपुर केर पुत्री' नाम की एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक रांची मे छपी थी। इसके १९ वें पृष्ठ पर लिखा है :

"अदिवासी मन के राजनैतिक और आर्थिक पतन के देख के १८९८ के साल में एक सभा खड़ा भेलक उकर शुरू नाम 'छोटा नागपुर ख्रिश्चन अशोसियेशन' रहे। बढ़ते बढ़ते १९१५ साल में ऊ सभा कुछ मजबूत भई गेलख और ऊकर नाम 'छोटा नागपुर उन्नति समाज' रखल गेला। अन्तमा अभी ओहे सभा १९३८ साल में 'आदिवासी महासभा' के केरा नाम से चालू रहे।"

रांची की एक सरकारी रिपोर्ट में टाना भगत द्वारा संचालित राजनैतिक आँदोलन तथा उक्त 'उन्नति समाज' का उल्लेख आया है। टाना भगत का आन्दोलन मूलतः धार्मिक आन्दोलन था और वह उरांवो तक ही सीमित था। इसका उद्देश्य यही था कि उरांव लोग भी अपनी जड़ोपासना के स्थान पर हिन्दुओं जैसे ही धार्मिक आदर्शों का अनुसरण करें। 'उन्नति समाज' का आन्दोलन मुण्डों में ईसाइयों द्वारा उनके नैतिक और सामाजिक उत्थान के लिए चलाया गया था। ये दोनों आन्दोलन आरम्भ में पृथक् पृथक् और गैर-राजनैतिक थे, किन्तु १९२१-२२ में असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में आकार इनका रूप जमींदारी और सरकार के प्रति विद्रोहात्मक हो उठा। ज्योंही इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा, १९२२ में पुलिस को टाना भगत और उसकी पंचायत के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करनी पड़ी। इसके पश्चात् २२ जनवरी, १९३९ को रांची में प्रथमवार 'आदिवासी सभा' की कान्फरेन्स बुलायी गयी, जिसके सभापति श्री जयपाल सिंह, एम० पी० हुए। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री जयपाल सिंह ने कहा :—

"आज हम सब आदिवासी अपनी स्वतन्त्रता के संघर्ष तथा बहुसंख्यकों के अत्याचार से छुटकारा पाने के लि एक हैं। यह हम लोगों का एक संयुक्त मोर्चा है, जो आदिवासियों के इतिहास में अभूतपूर्व है। सभी मिश्नरी संस्थायें जो यहां कार्य कर रही हैं, हमारे साथ हैं। यहां तक कि बंगाली लोग भी विभाजन की मांग कर रहे हैं। यूरोपियन, एंग्लोइंडियन सभी हमारे साथ खुली सहानुभूति दिखा रहे हैं।"

सन् १९५० में जमशेदपुर में आदिवासी महासभा' के वार्षिक अधिवेशन में श्री जयपाल सिंह ने घोषणा की कि आदिवासी महासमा 'झारखण्ड पार्टी' में विलीन हो गयी और इसके सदस्य अब गैर-आदिवासी भी हो सकते हैं।

समाचार-पत्रों में श्री जयपाल सिंह और उनके मंत्री प्रोफेसर हेवर्ड के बीच इस सम्बन्ध का विवाद प्रकाशित हुआ कि मुस्लिम लीग द्वारा ५००००) रु० किस व्यक्ति ने प्राप्त किया है।

ईसाई लोगों की प्रेरणा पर आदिवासियों ने जो इस प्रकार के प्रयत्न किये हैं, वे उनसे मिलते जुलते हैं जो बर्मा, आसाम और इण्डोचीन में करेन, नागा तथा अम्वायनिज लोगों के द्वारा हुए हैं। जो आदिवासी ईसाई बन गये थे उनमें यह भावना उत्पन्न की गयी कि वे धार्मिक रूप से एक अलग राष्ट्र हैं। धर्म परिवर्तन के साथ राष्ट्रीयता भी बदल जाती है, यह भावना मिश्नरियों की प्रेरणा का ही परिणाम है। यह बात निम्नलिखित सन्दर्भ से, जो बर्मा के करेन लोगों के विषय में है, और भी स्पष्ट हो जाती है :—

"मिश्नरियों के आगमन के पूर्व करेन एक छोटी जंगली जाति के रूप में थे और प्रकृति-पूजक थे। मिश्नरियों ने उन्हें शिक्षित किया तथा बाइबिल के अनुवाद द्वारा उन्हें एक लिपिबद्ध भाषा प्रदान की। किन्तु इस प्रकार एक छोटी जाति की एक राष्ट्र के रूप में ला खड़ा करने की उल्लेखनीय सफलता एक दुःखद प्रसंग बन गयी। इसका उत्तरदायित्व मिश्नरियों पर है कि आज करेन अपने को बर्मी कहने से भी कतराते हैं!………करेनों की आज एक संगठित राष्ट्रसभा है, जिसने एक अलग करेन राष्ट्र के समर्थन के लिये अपना एक शिष्ट-मंडल लंडन में भेजा था।"

इस प्रकार जब जनगणना के अधिकारी मूल जाति से कुछ लोगों के एक वर्ग को पृथक रखते हैं, तो दूसरी ओर मिशनरी उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर एक दूसरी राष्ट्रीयता भी प्रदान करते हैं, जिससे कि वे अपने लिये एक पृथक राज्य की मांग कर सकें।

कैथोलिक लोगों की प्रवृत्ति कदाचित झारखण्ड आन्दोलन और विभाजन आन्दोलन के विरुद्ध थी। श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा ने अपनी गवाही में कहा कि वे छिपे रूप से आन्दोलन का समर्थन कर रहे थे। उनके वक्तव्य की पुष्टि 'निष्कलंक' (कैथोलिक लोगों के सरकारी पत्र) के अक्टूबर १९४७ वाले अंक से हो जाती है। इसके मुख्य पृष्ठ पर, मैडोना, (मरियम) एक चित्र प्रकाशित हुआ है जो अपने बच्चे को लिये हुए है और जिसके सम्मुख छोटे नागपुर का मान-चित्र है। पृष्ठ १४८ पर इस चित्र की व्याख्या इस प्रकार की गयी है :

"राँची धर्म प्रान्त कब छोटा नागपुर की रानी माता मरीया के हाथ में अर्पण किया जायगा ?

हे छोटा नागपुर की रानी,

तेरी प्रार्थना द्वारा तेरे पुत्र, ख्रीस्त राजा ने समारोह से हमारे देश में प्रवेश किया है और उसे निवास स्थान बनाया है।

हे महा पुनरागमन की कुंवारी,

इसी घड़ी जब इतने झूठे नबी छोटा नागपुर को हर लेने की चेष्टा कर रहे हैं, अपने राज्य में समारोह से प्रवेश कर और अपने पास और अपने पुत्र पास संवसारों, लूथरनों, अंग्लिकनों और सब दूसरों को बुला।"

अध्याय ३

युद्धोपरान्त ईसाइयों की विश्व-नीति

भारत में ईसाई मिशनों की उग्रतर गतिविधियां ईसाइयों की युद्धोत्तर विश्व-नीति का एक अविभाज्य अंग है। अतः इसके पूर्ण महत्व को समझने के लिये विश्व-परिस्थिति के साथ साथ इसका अध्ययन करना आवश्यक होगा।

सन् १९४१ में द्वितीय विश्व-युद्धकाल में ब्रिटेन ने अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये चर्चों का एक कमीशन नियुक्त किया। सन् १९४२ में कमीशन ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें ईसाई दृष्टिकोण से ईसाई चर्च तथा विश्व-शान्ति पर विचार किया गया था और जिसमें सामान्य नैतिक उद्देश्य, अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सम्बन्ध, आर्थिक न्याय, निःशस्त्रीकरण तथा अल्पसंख्यकों एवं उपनिवेशवासियों के अधिकार का उल्लेख था। इसी प्रकार संयुक्त अमरीकी राज्य में १९०८ में स्थापित 'फिडरल कौन्सिल-आफ चर्चेज' ने भी न्याययुक्त स्थायी शान्ति के लिये मि० जान फास्टर डलेस की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया। जुलाई १९४३ में उक्त कमीशन द्वारा एक गोलमेज कान्फ्रेन्स बुलायी गयी और विश्व-शान्ति पर ईसाइयों की ओर से एक सन्देश प्रकाशित किया गया। इस सन्देश में उक्त कमीशन द्वारा उपस्थित किये गये राजनीतिक प्रस्तावों को शान्ति के ६ स्तम्भों के रूप में सहर्ष स्वीकार किया गया था और उस कान्फ्रेन्स में इस बात पर बल दिया गया था कि यह एक ऐसा अवसर है जब कि ईसाई धर्म का विश्व-व्यापी प्रचार होना चाहिये।

जनवरी १९४५ में क्लीवलैण्ड और ओहियो में स्थायी शान्ति के निमित्त एक संयुक्त राष्ट्र कमीशन बैठा। उसने ९ सिफारिशें उपस्थित कीं। इनका अमेरिकन चर्चों ने बहुत स्वागत किया और सरकारी क्षेत्रों में भी उन्हें महत्व दिया गया। इसी प्रकार १९४५ में 'बृटिश कौन्सिल आफ चर्चेज' ने भी अपनी सरकार के सामने कंपनी सिफारिशें रखीं। इन्हीं सब का परिणाम हुआ कि अप्रेल-जून, १९४५ में संयुक्त राज्यों की एक कांफ्रेंस-सेन्फ्रान्सिसकों में बुलाई गई। इसी कांफ्रेंस में मानवीय अधिकारों के लिये एक कमीशन की नियुक्ति पर बल दिया गया।

न्याययुक्त स्थायी शान्ति कमीशन की एक दूसरी बैठक १९४५ के नवम्बर में हुई। इसमें विभिन्न चर्चों के बीच एक सार्वभौम ईसाई संगठन पर बल दिया गया, जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर चर्च की ओर से महत्वपूर्ण प्रभाव डाला जा सके उक्त कमीशन ने घोषित किया :—

"अब जबकि युद्ध समाप्त हो गया है, ईसाई चर्चों का एक विश्वव्यापी संगठन बन सकता है, जिसके द्वारा

अनेक देशों में ईसाइयत का प्रचार संगठित रूप से किया जाये ।.......ईसाई शक्तियां विश्व में अल्प संख्या में हैं, फिर भी वह उक्त प्रकार से थोड़े ही समय में एक सुसंगठित और प्रबल अल्पसंख्यक समूह का रूप ले सकती है ।"

यद्यपि स्वयं यूरोप में ईसाइयत के प्रचार की अवश्यकता थी, क्योंकि वहां मार्क्स के कम्यूनिज्म का प्रचार बढ़ रहा था, फिर भी ईसाइयों ने अपना ध्यान भारत और दूसरे औपनिवेशिक राज्यों की ओर मोड़ लिया । उन्हें हमारे विधान से प्रोत्साहन मिला, क्योंकि उस विधान से भारत में किसी भी धर्म को अपना प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गयी है ।

भारतीय विधान में धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा के के बाद भारत में ईसाइयत का प्रचार प्रबल हो गया और मिशनरियों के लिये तो मानो द्वार ही खुल गया । प्रेस, फिल्म, रेडियो आदि अनेक साधनों के साथ मिशनरियों के दल के दल भेजे जाने लगे ।

वह नवीन ईसाई प्रचार स्टालिनवाद और वैज्ञानिक मानववाद जैसे नये मनः कल्पित धर्म-निरपेक्ष राज्यों को परास्त करने तथा अन्य गैर ईसाई धर्मो की प्रकल्पित संभावनाओं का सामना करने के उद्देश्य से उभड़ा है ।

सन् १९५१ से अमेरिकन चारकों तथा अन्य विदेशी मिशनों की संख्या में ५०० की वृद्धि हुई । विशेष कर मिशनरी जत्थों का आक्रमण सरगुजा जिला में हुआ जहां १९४७ से पूर्व जबकि सरगुजा मध्यप्रदेश में विलीन हुआ, मिशनरियों का प्रवेश निषिद्ध था ।

भारत में ईसाई धर्म-परिवर्तन का जो प्रबल आन्दोलन चला उसने ईसाईयों को यह सोचने को बाध्य किया कि उच्च वर्ग के हिन्दुओं और मध्य श्रेणी के लोगों तथा जंगली जातियों को किस प्रकार ईसाई बनाया जाय । जहां तक उच्च और मध्यम श्रेणियों का सम्बन्ध है, उन पर ईसाई धर्म का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता है । साथ ही हिन्दु संस्कृति की सर्वग्राही शक्ति को दृष्टि में रखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि जहां और जब भी अवसर मिले, ईसाई धर्म को तत्काल प्रसारित किया जाय । देश के भीतर बढ़ते हुए कम्यूनिज्म की प्रगति तभी रोकी जा सकेगी ।

दूसरी ओर गैर-ईसाई धर्म जैसे हिन्दु धर्म, बौद्ध, धर्म, और कन्फूसियस धर्म पुनर्जीवन प्राप्त करते हुए ईसाई धर्म को चुनौती दे रहे हैं और ईसाई मत की इस मान्यता को ललकार रहे हैं कि केवल ईसाई धर्म ही सत्य ज्ञान का एकमात्र मार्ग है । उक्त सब धर्मो का यह विश्वास है कि सब धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले हैं । अतः ईसाईयों ने निश्चय किया कि यूनिवर्सल चर्च (सार्वभौम चर्च) का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करें, जिसमें सब अन्य धर्मों को जड़ से नेस्त नाबूद करने को कहा गया है ।

सन् १९४८ के जून मास मे जो 'फेलोशिप आफ इन्टरनेशनल मिशनरी सुसाइटी कान्फ्रेन्स' हुई थी, उसमें एलेक्जेन्डर मकलेश ने बोलते हुए कहा था कि अभी हाल में हमारे भारतीय ईसाई नेताओं ने एक योजना बनायी है जिसके अन्तर्गत ६००००० छे लाख भारतीय ग्रामों को अगले दस वर्षों में ईसाई बनाने का संकल्प किया गया है । हमारे पास भौतिक साधनों की कमी नहीं है । इसके अतिरिक्त हमारे आध्यात्मिक साधनों का भी अभाव नहीं है । इनके द्वारा हम धर्म-परिवर्तन कार्य को भली प्रकार सम्पन्न करने में समर्थ होंगे ।

अमेरिका में जो टेलीविज़न के द्वारा ब्राडकास्ट होता है उसमें अमेरिकन लोगों से कहा जाता है कि वे दल के दल मिशनरियों को विश्व के समस्त देशों को भेजें, जिससे कि वहां लाखों पीड़ित व्यक्तियों को ईसा के राज्य में प्रविष्ट किया जा सके । यह धर्म-युद्ध चर्च के इतिहास में सब से बड़ा कार्य होगा । अमेरिका में इस बात पर भी जोर किया जाता रहा है कि ईसा का चर्च विश्वव्यापी चर्च है । यह राष्ट्रीयता और जातीयता के भेदभाव से ऊपर है । इस प्रकार ईसाई मत लोगों को दूहरी राजभक्ति सिखाता है अर्थात् एक ओर तो ईसा के प्रति और दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति । ऐसी परिस्थिति में यदि ईसा और राष्ट्र के बीच टक्कर हो तो सच्चे ईसाई के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह ईसा की ही आज्ञा का पालन करे । राष्ट्र के प्रति भक्ति एक राजनैतिक और राष्ट्रीय कर्तव्य है, जवकि चर्च के प्रति निष्ठा एक प्रकार का धार्मिक और आध्यात्मिक कर्तव्य हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं कि दोनों के क्षेत्र अलग अलग हैं और साधारण तौर पर दोनों में कोई झगड़ा दिखाई नहीं

देता। यदि संसार में राजनैतिक विभाजनों पर धर्मों का कोई प्रभाव न पड़े, तब उक्त दो प्रकार की निष्ठाओं में किसी प्रकार के झगड़े का कोई अवसर नहीं है। परन्तु आजकल के संसार में कई ऐसे राष्ट्र हैं जो धर्म या मजहब की नींव पर खड़े हैं। हमारे देश का जो विभाजन हुआ उसमें भी मजहब का ही हाथ रहा है। ऐसी दशा में राज्य के प्रति निष्ठा और चर्च के प्रति निष्ठा इन दोनों के बीच संघर्ष की संभावना बनी रहती है। इस दृष्टि से हम देखें तो भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जो प्रेस, फिल्म तथा रेडियो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार की भयंकर चेष्टा हो रही है। वह देश के लिये खतरे से खाली नहीं है।

इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि मिशनरियों द्वारा धर्म-परिवर्तन का जो प्रबल कार्यक्रम चल रहा है, उसका उद्देश्य निम्न प्रकार है:—

१—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् औपनिवेशिक राज्यों में राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ने से रोकना।

२ – सह-अस्तित्व के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भारत और अमेरिका के बीच भेदभाव पर बल देना। भारत शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्व का इच्छुक है जबकि 'वर्ल्ड कौन्सिल आफ चर्चेज' जैसा कि उसकी एक रिपोर्ट से पता चलता है, सह-अस्तित्व की नीति को केवल तुष्टीकरण की नीति मानता है और वर्तमान एकतंत्र राष्ट्रों और स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच आर्थिक और राजनैतिक विभिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए, इसका समर्थन नहीं करता।

३—भारतीय संविधान में दी गयी धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता से लाभ उठाना तथा मुस्लिम लीग की भाँति भारतीय गण-तन्त्र में एक क्रिश्चयन पार्टी का संगठन करना, जो अन्त में अपने लिये एक अलग राज्य की माँग कर सके अथवा कम से कम एक प्रबल अल्पसंख्यक समुदाय को खड़ा कर सके।

संक्षेप में परिस्थिति यह है कि कैथोलिक चर्च की पोपशाही और अमरीकी प्रजातन्त्र दोनों कम्यूनिज्म (साम्यवाद) से लोहा लेने के लिये अधिक से अधिक लोगों को ईसाई बनाने पर तुले हुए हैं। कैथोलिक चर्च जहाँ अपने धार्मिक साम्राज्य के लिये लालायित है वहाँ अमेरिका विश्व-नेतृत्व प्राप्त करने के लिये अधीर है।

भाग ३

अध्याय १

अन्य देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता

कुछ ईसाई लोगों के द्वारा की गयी धार्मिक-स्वतंत्रता की व्याख्या का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि भारत में अनादि काल से धार्मिक स्वतंत्रता रही है। भारत अनेक धर्मों का देश है। हिन्दू धर्म, जो यहाँ के अधिकांश लोगों का धर्म है, स्वयं अनेक मत-मतान्तरों का समवाय है। हिन्दू धर्म अपनी उदारता और दूसरे धर्मों के प्रति अपनी सहृदयता के कारण ही युग-युगन्तरों से अक्षुण्ण चला आ रहा है। हिन्दू समाज में धार्मिक उत्पीड़न या अत्याचार का नाम भी नहीं रहा है।

आदिकाल से हिन्दुओं की धार्मिक सहिष्णुता ने विभिन्न मत-मतान्तरों को एक साथ फलने फूलने का अवसर दिया। जैनमत और बौद्धमत दोनों ही आदिकालीन आर्य-धर्म की कुछ बातों से भिन्नता रखते हुए भी उसी के अन्तर्गत हैं। उनका उदय और विकास, जैन-धर्म का श्रमण-धर्म के रूप में एक अल्पसंख्यक वर्ग तक सीमित रह जाना, बौद्ध धर्म का विकास, इसका बाहर के देशों में प्रचार तथा हिन्दू समाज में इसका ह्रास यह सब शान्ति से घटित हुआ। परिवर्तन आये किन्तु धीरे-धीरे, सामाजिक दबाव और आन्दोलनों तथा पारस्परिक प्रेरणा द्वारा, किन्तु किसी वर्ग-विशेष का दूसरे वर्ग-विशेष के साथ अथवा व्यक्तियों का आपस में कभी कोई संघर्ष धर्म के नाम पर नहीं हुआ।

हिन्दू भारत नें सम्राट अशोक के रूप में, जो पीछे बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये थे, पारस्परिक मैत्री और धार्मिक सहिष्णुता का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है। अशोक के एक प्रसिद्ध शिलालेख पर यह खुदा है :—

"देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी (अशोक) सभी मतों का सम्मान करते हैं। वे गृहस्थों और संयासियों का दान तथा पूजा से सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय राजा, इस प्रकार के

दान तथा सम्मान को उतना महत्व नहीं देते जितना कि वे सदाचार और सद्गुण-सम्पन्न शासन को देते हैं। इन सभी सद्गुणों का मूल स्रोत विनयपूर्ण भाषण है अर्थात् किसी का दूसरे व्यक्तियों के धार्मिक विश्वासों की निन्दा करते हुए अपने धर्म की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। न विना किसी न्यायसंगत कारण के दूसरे धर्मों का अनादर करना चाहिये। इसके विपरीत यह उचित है कि दूसरे धर्मों को यथायोग्य सम्मान की दृष्टि से देखा जाय।"

कुछ ईसाई लेखकों का कहना है कि धार्मिक असहिष्णुता तो ईसाई धर्म के जन्म के साथ उत्पन्न हुई। प्रोफेसर गीडो डि रूडिरो नामक लेखक ने अपने एक लेख में लिखा है:—

"मानव जाति की धार्मिक स्वतन्त्रता के महासंघर्ष में ईसाई धर्म ही विरोधी रहा है। इसी मे असहिष्णुता के बीज बोये जो इसे यहूदियों की परम्परा से मिले थे। इसने ही सार्वभौम मिशन तथा ईश्वर और मानव के बीच एक मात्र माध्यम के रूप में चर्च की कल्पना उपस्थित की है।"

ईसाई मत अपने प्रथम तीन सौ वर्षों तक स्वयं इस वात के लिये संघर्ष करता रहा कि वह रोमन साम्राज्य के अन्दर गैर-ईसाई के बीच किस प्रकार आगे बढ़े। उस समय इसके असहिष्ण होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

किन्तु पीछे दूसरे धर्मों को ईसाई मत के मुकाबले में अपनी रक्षा करने लिये उद्यत होना पड़ा। वाद को रोम में ऐसे कानून बनाये गये जिन के द्वारा गैर-ईसाइयों को मन्दिर बनाने, धार्मिक कृत्यों के लिये एकत्रित होने और व्यक्तिगत रूप से भी अपने धर्म के प्रचार के लिये वर्जित किया जाने लगा। गैर-ईसाई अनेक नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिये गये। ईसाई धर्म छोड़ने पर मृत्यु दण्ड निर्धारित किया जाने लगा।

जो ईसाई नहीं थे उनके लिये यह भी नितान्त अनिवार्य कर दिया गया कि वे चर्च में जाकर शिक्षा ग्रहण करें और यदि वे बपतिस्मा ग्रहण करने से इन्कार करें तो उन्हें देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाय अथवा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाय। उनके छोटे बच्चों को भी बप्तिस्मा लेना पड़ता था।

ईसा की ५ वीं शताब्दी में ऐसा कानून बनाया गया कि जो भी व्यक्ति ईसाई परम्परा से विमुख होगा उसे राज्य के विरुद्ध अपराधी घोषित किया जायगा और उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा। नास्तिकता को आम अपराध घोषित कर दिया गया था।

जब ईसाई धर्म स्वयं सत्तारूढ़ हुआ तो यहूदियों के प्रति उसका जो व्यवहार हुआ, वह एक ऐतिहासिक सत्य घटना है।

आरम्भ में यहूदी धर्म रोम में एक स्वीकृत धर्म के रूप में था, यद्यपि उसके साथ कुछ वन्धन भी लगा दिये गये थे। पर बाद को उसे एक घृणित पाखण्ड के रूप में लिया जाने लगा। यहूदी लोग सरकारी नौकरियों के लिये अयोग्य समझे जाने लगे थे। यदि कोई ईसाई यहूदी धर्म अपना लेता था तो उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया जाता था। यदि कोई यहूदी किसी ईसाई स्त्री से विवाह कर लेता था तो उनके लिये देश निकाला या मृत्यु की सजा होती थी। जो यहूदी ईसाइयों को अपने धर्म में दीक्षित करता था, उसके लिये घोर दण्ड निर्धारित था। ७ वीं शताब्दी में स्पेन, इटली इत्यादि देशों में यहूदियों को निर्देश था कि वे या तो बप्तिस्मा ग्रहण करें या देश से निष्कासित हों।

ईसाई धर्म के आगे के हजार वर्ष में यही क्रम चलता रहा। आक्रान्ता और विजेता लोग चर्च का उपयोग केवल अपनी राजनैतिक विजयों को दृढ़ करने में करते रहे। चर्च और राज्य दानों के अपवित्र गठजोड़ ने धार्मिक स्वतन्त्रता को कुचल कर रख दिया और जो लोग ईसाइत को अस्वीकार करते थे उनके लिए केवल उत्पीड़न ही शेष रह गया था।

अन्त में प्रतिक्रिया हुई। चर्च और राज्य को पृथक पृथक रखने की आवाज उठी। १५०० ईस्वी से लेकर १७०० ईस्वी तक के युग को "सुधार-युग" के नाम से कहा गया है। ईसाई धर्म के इस सुधार आन्दोलन का नेता जर्मनी का लूथर था। एक बार उसने अपने भाषण में कहा था:—

"जो ईसाई नहीं ह, उन से झगड़ना बेकार है, उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये, वे स्वयं नष्ट हो जायेंगे। ईसाई मत के विश्वासियों को पाप के स्रोत का पता लगाना

चाहिये और पाप के स्रोत कैथोलिक मत के पादरी और पोप हैं। वे अपने रूप में छिपे हुए शैतान हैं। उनके रक्त से अपने हाथ रंगने चाहिये।"

कैथोलिक अथवा प्रोटेस्टैन्ट लोगों के द्वारा प्रदर्शित असहिष्णुता गैर-ईसाइयों अथवा यहूदियों तक ही सीमित नहीं रही, वरन् वे आपस में भी एक दूसरे के प्रति असहिष्णु थे।

यह है धार्मिक स्वतन्त्रता का इतिहास जो पश्चिमी देशों में ईसाइयत प्रस्तुत करता है।

अब आइये, हम अपने देश की ओर मुड़ें और पश्चिम के ईसाई देशों के प्रभुत्व-काल में यहां की धार्मिक स्वतन्त्रता की दशा का अध्ययन करें।

भारत में ज्यों ज्यों पुर्तगाली शासन की जड़ जमती गयी त्यों त्यों वह निरंकुश बनता गया। समय समय पर ऐसी राजकीय घोषणायें विज्ञापित की गयीं जिनके द्वारा ईसाई और गैर-ईसाई लोगों के बीच गहरा भेद-भाव उपस्थित किया गया और गैर ईसाईयों को कितने ही अधिकारों से वंचित कर दिया गया। १५५९ में एक धारा पास करके सभी हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों के लिये अयोग्य घोषित कर दिया गया। उसी वर्ष एक दूसरा कानून बनाया गया जिस के द्वारा उन अनाथों की सम्पत्ति, जो ईसाई धर्म स्वीकार करने को तैयार न थे, जब्त कर ली गयी। इतना ही नहीं, ऐसे कानून भी बनाये गये जिनके द्वारा हिन्दू मन्दिरों देव-मूर्तियों को विध्वंश और कर देने की आज्ञा दी गयी तथा उनके सभी धार्मिक उत्सवों को बन्द कर दिया गया। १५६० में सभी ब्राह्मणों और स्वर्णकारों को कहा गया कि या तो वे ईसाई धर्म स्वीकार कर लें अन्यथा वे गोआ छोड़कर बाहर चले जायें। १५६७ के एक कानून द्वारा ब्राह्मण लोग अपने प्रमुख धार्मिक कृत्य जैसे उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार, यहां तक कि अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करने से भी वर्जित कर दिये गये। हिन्दू धर्म-शास्त्रों को अवैध घोषित कर दिया गया। १५ वर्ष से अधिक आयु के सभी हिन्दू ईसाई शिक्षा ग्रहण करने पर बाध्य किये गये। हिन्दू मन्दिर नष्ट कर दिये गये और उनकी जगह गिरजे खड़े किये गये। १५७५ में एक दूसरा कानून बनाया गया, जिससे हिन्दू नागरिक राज्य की भूमि को कर देकर भी नहीं प्राप्त कर सकते थे। गोआ की जनता को अपनी मातृभाषा के व्यवहार से रोक दिया गया और १६८४ की धारा द्वारा उन्हें आदेश दिया गया कि वे ३ वर्ष के भीतर भीतर पुर्तगाली भाषा सीख लें, नहीं तो उन पर कानूनी कार्यवाही की जायेगी। इन सभी सरकारी कानूनों का उद्देश्य यही था कि या तो लोग ईसाई हो जाये और नहीं तो वे राज्य छोड़ कर निकल जाये। इस प्रकार भारत में १७ वीं शताब्दी के मध्य तक ईसाई मिश्नरियों की गतिविधियों का प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

ईसाई मिश्नरियों की गतिविधियों का एक नवीन अध्याय फिर १८१३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी की ठेकेदारी की समाप्ति से आरम्भ होता है। तब तक कोई भी यूरोपियन, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी का नौकर न था, बिना कम्पनी की आज्ञा के भारत की धरती पर नहीं उतर सकता था। परन्तु जब यह पावन्दी १८१३ में उठ गयी तो कोई भी यूरोपियन स्वतन्त्रतापूर्वक भारत में आ सकता था और उसे रोकने का कोई कानूनी अधिकार कम्पनी को नहीं रह गया था।

आधुनिक मिशनों का विकास देश में अंग्रेजी शासन के जमने से आरम्भ हुआ। कैथोलिक लोगों का अधिकतर कार्य केवल दक्षिणी क्षेत्रों में ही सीमित था। बात यह थी कि पुर्तगाली प्रभुत्व भारत के एक बहुत ही छोटे भाग में सीमित रहने के कारण ईसाई धर्म भारत के दूसरे भागों में प्रसार पाने में असमर्थ रहा। ईसाई धर्म में दीक्षित लोगों की संख्या और उनका क्षेत्र बहुत ही परिमित रहा। किन्तु भारत में अंग्रेजी शासन के आने पर ईसाई धर्म के प्रसार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया।

परन्तु उनके सिद्धान्त और कार्य में अंतर था। यद्यपि भारत में ब्रिटिश शासन ने धार्मिक निरपेक्षता की घोषणा की थी, फिर भी शासन के ईसाई अधिकारियों द्वारा ईसाई मिश्नरियों को बहुत प्रोत्साहन और सुविधायें प्राप्त हुईं।

ईसाई आधिपत्य के पूर्व, भारत मुगलों के अधीन था। बाबर और अकबर धर्म के राजनैतिक पहलू के सिवा उसके प्रति प्रायः उदासीन थे। किन्तु अकबर के पोते शाहजहां ने १६३३ एक आज्ञा प्रसारित की कि सभी हिन्दू मन्दिर तोड़ दिये जांय, जिन्हें धर्म-परायण हिन्दू

लोग उसके बाप दादे के समय से निर्वाध रूप से बनाते आ रहे थे । सर्ले बेट्स नामक लेखक के कथनानुसार इस्लाम के कट्र हिमायती औरंगजेब ने अत्याचार पर अत्याचार किये । १६६९ में उसने सभी सूबों के सूबेदारों के नाम आदेश जारी किये कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों और विद्यालयों को भूमिसात कर दिया जाय और उनकी शिक्षा तथा धार्मिक कृत्यों को बिल्कुल बन्द कर दिया जाय । परिणाम स्वरूप वहुसंख्यक हिन्दू मन्दिर और वहुत से तीर्थस्थल विध्वंश कर दिये गये । अपनी पुस्तक 'रिलीजस लिबर्टी' नामक पुस्तक में सर्ले बेट्स ने लिखा है कि "पूजास्थलों पर गायों की हत्या की गई, चोराहों पर देव-मूर्तियों को पैरों तले रौंदा गया तथा इसी प्रकार के अनेक अमानुषिक दुष्कृत्य किये गये । १६७९ में उसने गैर-मुस्लिमों पर फिर से जजिया कर लगाया जिस में कि लोग इस्लाम ग्रहण कर लें ।" हिन्दू धार्मिक मेलों को बन्द कर दिया गया । इस्लाम धर्म में दीक्षित होने वालों को सहायता, सरकारी नौकरी और यदि वह कैदी हो तो कैद से छूट का प्रलोभन देकर लोगों को इस्लाम स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया गया । इन प्रलोभनों का फल यह हुआ कि भारतीय समाज का वहुत सा निर्वल अंग उससे कट कर वाहर से अल्प संख्या में आने वाले मुस्लिमों में जुड़ गया ।

इस्लामी विजयों ने भारत में बौद्ध धर्म के टिमटिमाते दीपक को बुझा दिया और जैन धर्म पर भी उसका बड़ा भीषण आघात हुआ । हिन्दुओं में सिख धर्म, जिसका कुछ पीछे से उदय हुआ, अपने सबल संगठन और अदम्य सैन्य शक्ति के सहारे ही रक्षित रह सका ।

ऊपर अब हम नें धार्मिक स्वतन्त्रता के इतिहास पर ही दृष्टिपात किया है । अब आइये, हम वर्तमान समय में भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में विद्यमान धार्मिक स्वतन्त्रता पर एक दृष्टि डालें ।

सर्व-प्रथम इटली को लें जो कैथोलिक चर्च का संचालन-केन्द्र तथा कैथोलिक धर्म के प्रधान पोप का निवास स्थान है । फासिस्ट होने से पूर्व इटली का राष्ट्र कैथोलिक चर्च के आधीन था । पोप राजनैतिक मामलों में सर्वेसर्वा था । जब मुसोलिनी सत्तारूढ़ हुआ तब राज्य और चर्च के बीच क्या संबन्ध हो, इस पर एक समझौता हुआ ।

इस समझौते के अनुसार इटली में कैथोलिक धर्म को राज्य का एक मात्र धर्म स्वींकार किया गया । इटली में कैथोलिक धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसको सरकारी सुरक्षा प्राप्त है तथा इटली में जनता के लिए जो शिक्षा-प्रणाली अपनायी गयी है उसका आधार भी कैथोलिक परम्परा के अनुसार ईसाई सिद्धान्तों पर स्थित है । इटली में ऐसी शिक्षा केवल उन्हीं अध्यापकों और पादरियों द्वारा प्रदान की जायगी जो चर्च के अधिकारियों द्वारा प्रमाणित होंगे ।

कैथोलिक प्रदेशों में इटली के बाद स्पेन का महत्व है । समय पाकर कैथोलिक चर्च स्पेन में बहुत प्रभावशाली हो गया और राजनैतिक शक्ति उसी के अधीन हो गयी । कैथोलिक चर्च वहां के सामाजिक और आर्थिक जीवन में सर्वे सर्वा हो गया, परन्तु कुछ समय के पश्चात् वहां के लोगों में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और इसके फलस्वरूप १९३१-३९ की स्पेनिस राज्य-क्रांति हुई । राजनैतिक स्वतन्त्रता के पुजारियों का गुस्सा स्पेन में चर्च के शासन के विरुद्ध उभड़ पड़ा । स्पेन में चर्च की बहुत दुर्गति हुई । यह कहा जाता है कि २०००० गिरजाघर तोड़े गये । नष्ट किये गये या लूट लिये गये और १६००० पादरियों, ईसाई भिक्षु और भिक्षुणियों को मौत के घाट उतार दिया गया । इस तरह ३००००० प्राणी हताहत हुए । अंत में राज्य और चर्च के बीच इस नर-संहार के बाद शान्ति स्थापित हो गयी । उस समय जो समझौता हुआ उसमें निम्न चार धाराओं को मान्यता दी गयी ।

१—कैथोलिक धर्म स्पेन के राष्ट्र का एक मात्र धर्म होगा ।

२—स्कूलों में जो शिक्षण होगा वह कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार होगा ।

३—समस्त अधिकारियों के लिये यह उचित होगा कि वे विशप महोदयों और पादरियों को बाइबिल के सिद्धान्तों के अनुसार मान्यता दें और जहां कहीं इन विशप महोदयों को किसी सुरक्षा विशेष की आवश्यकता होगी, सरकार उनके लिये सुरक्षा प्रदान करेगी । ईसाइयों के विरुद्ध किन्हीं ऐसी पुस्तकों का जो इनके हित के लिये हानिकारक हों, प्रकाशन रोकने में सरकार उनकी सहायता करेगी ।

४—ईसाई धर्म के प्रचार तथा उसकी सुरक्षा और संचालन में बिशप महोदयों और पादरियों को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

कैथालिक मिशनरी प्रायः पुर्तगाल को सब से उत्तम कैथोलिक राज्य कहते हैं। पुर्तगाल में शिक्षा के क्षेत्र में चर्च को जो अधिकार प्राप्त हैं वह निम्न प्रकार हैं:—

'राज्य के स्कूलों में होने वाली शिक्षा देश की परम्परा तथा कैथोलिक धर्म के अनुसार दी जायेगी।"

"जो पाठ्य पुस्तकें कैथोलिक धर्म की शिक्षा के लिये स्वीकृत होंगी वे चर्च के अधिकारियों द्वारा ही चुनी जायेंगी। कोई भी व्यक्ति बिना अधिकारियों की स्वीकृति के धार्मिक शिक्षा किसी और रूप में देने का अधिकारी नहीं होगा।"

पुर्तगाली सरकार अपने उपनिवेशों के सम्बन्ध में जो नीति का अनुसरण करती है उसके अनुसार वहां धार्मिक स्वतन्त्रता नाम तक को भी नहीं है।

पुर्तगाली कैथोलिक चर्च ने अफ्रीका और एशिया के लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देने का ठेका ले रखा है। वहां गैर-कैथोलिक मिशनों पर कई रोकें लगा रखी गयी हैं। जो धार्मिक स्वतन्त्रता के संग्राम में अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों की अवहेलना करती हैं।

स्वीडन में जो विधान चालू है, उसकी धारा २ में लिखा है कि शासक को सदा शुद्ध पवित्र ईसाई धर्म का अनुयायी ही रहना पड़ेगा। इसी प्रकार शासक के मन्त्री भी इसी धर्मके अनुयायी होंगे। राज्य के मन्त्रियों को छोड़ अन्य पदों पर अन्य मतावलम्बी नियुक्त किये जा सकते हैं, परन्तु कोई भी आदमी जो शुद्ध पवित्र ईसाई धर्म का नहीं मानने वाला होगा, वह न्यायाधीश अथवा ऐसे दूसरे पद पर नहीं नियुक्त किया जायगा।

उन विद्यार्थियों के लिये जिनके माता पिता राज्य के अनुयायी हैं, राज्य प्रारंभिक स्कूलों और दूसरे विद्यालयों अथवा अध्यापकों के ट्रेनिंग स्कूलों में धार्मिक शिक्षण आवश्यकीय है। केवल जो लोग राज्य के चर्च के अनुयायी नहीं हैं उनको अपने बच्चों की शिक्षा के लिये स्कूल खोलने का अधिकार नहीं है। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक स्वीडेन पूर्णतया एक लूथरन राज्य था और वहां पर अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता का अस्तित्व नहीं था।

शासन-सम्बन्धी और न्याय सम्बन्धी जितने भी पद थे, उनके लिए लूथरन धर्म के अनुयायी होने की अवश्यकता थी। समस्त डाक्टरी पेशे के शिक्षक के लिये लूथरन होना आवश्यक था। यदि लूथरन को अपना धर्म बदलने पर बाध्य किया जाता था तो इसको अपराध ठहराया जाता था और यदि कोई सरकारी धर्म को परित्याग कर देता था तो उसको जीवन पर्यन्त देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाता था।

यदि नार्वे के विधान का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि इस विधान के अनुसार ईसाई लूथरन धर्म राज्य में जनता का धर्म है और लोगों को अपने बाल-बच्चों को इसी धर्म में शिक्षित करना होगा। परन्तु जैसुइट लोगों को मान्यता नहीं दी जायगी। सरकार राज्य के धर्म के प्रचार के लिये सक्रिय चेष्टा करेगी। शासक सदा ईसाई लूथरन धर्म का अनुयायी रहेगा और इसकी रक्षा करेगा। शासक के आधे से अधिक जो मन्त्री होंगे वे राज्य के चर्च को मानने वाले होंगे। शासक और मन्त्री चर्च की पूजा अथवा रीतिरिवाज इत्यादि के बारे में निर्देश देते रहेंगे और उन्हीं को पादरियों की नियुक्ति तथा अनुशासन की देख रेख का अधिकार होगा।

नार्वे राज्य की शिक्षा-सम्बन्धी नीति के अनुसार बच्चों को ईसाई धर्म की शिक्षा अवश्य लेनी पड़ेगी। इस लिये राज्य के प्रारंभिक स्कूलों अथवा माध्यमिक तथा नार्मल स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिये धार्मिक शिक्षा आवश्यक है।

केवल जिन लोगों ने राज्य के चर्च को छोड़ दिया है, उन्हीं के बच्चों को छूट मिल सकती है शिक्षकों को धार्मिक शिक्षा दी जाती है और उनकी नियुक्ति बिशप की स्वीकृति से होती है। गैर-ईसाई विद्यालयों को किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं दी जाती।

डेनमार्क में धार्मिक स्वतन्त्रता किस प्रकार विद्यमान है, यदि हम इसका अध्ययन करें तो पता चलेगा कि लूथरन चर्च ही राज्य का चर्च है और शासक को इस चर्च का अनुयायी होना आवश्यक है। राज्य ही चर्च का संचालन करता है और उसको सहायता इत्यादि देता है। ईसाई लूथरन चर्च डेनमार्क देश का राष्ट्रीय और सरकारी चर्च है और इसी हेतु उसे राज्य द्वारा सहायता प्राप्त

है। जो विद्यालय सरकार द्वारा संचालित हैं, वहां समस्त वच्चों को बाइबिल का पाठ पढ़ाया जाता है। छोटी श्रेणियों में प्रार्थना इत्यादि कण्ठस्थ करायी जाती है और ऊपर की श्रेणियों में चर्च का इतिहास पढ़ाया जाता है।

रूस में १९१७ से ले कर १९३९ तक जो समय है, उसमें चर्च के नेताओं और चर्च पर अनेक प्रकार के कष्ट ढाये गये। अकेले १९३८ में ही वहुत से विशपों को गोली से उड़ा दिया गया और कोई ५० से ऊपर विशपों को कारागार में डाल दिया गया अथवा उन्हें कैम्प जेलों में भेज दिया गया। चर्च के मकानों पर बहुत ऊंचे दर के कर लगा दिये गये जिसके फलस्वरूप १९३७ में ११०० चर्च और सैकड़ों पूजा पाठ के स्थान बन्द कर देने पड़े। रूस के १९४० के आंकड़ों से प्रगट है कि उस समय ४२२५ चर्च सूची पर थे और उनमें ५६६५ पादरी थे, जब कि १९१७ की क्रान्ति के पहले वहां ४६४५७ गिरजे और उनमें ५०९६० पादरी विद्यमान थे १९४० में २८ विशप और ३७ चर्च थे जब कि क्रान्ति के पहखे १३० विशप और १०२६ चर्च थे। परन्तु १९४४ से परिस्थिति बदल गयी। रूसी चर्चों का सरकार की ओर से पुनरुत्थान किया गया।

जिन देशों में रूढ़िवादी अथवा कट्टर चर्च हैं उनमें ग्रीस का स्थान दूसरे नम्बर पर है। ग्रीस के विधान की धारा १ में निम्न प्रकार लिखा है:—

"ग्रीस में जो सर्वोपरि धर्म है यह ईसा का पूर्वीय परम्परावादी चर्च है। यहां दूसरे मत-मतान्तरों को नियम के अनुसार संरक्षण प्राप्त है, यदि वे उच्च नैतिक आचार और जनता के अनुशासन के सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। किसी प्रकार का धर्म-परिवर्तन नितान्त वर्जित है।"

धर्म परिवर्तन शब्द की जो सरकारी व्याख्या की गयी है, वह निम्न प्रकार है। उससे न केवल इसके दुरुपयोग की कोई संभावना है वरन इससे प्रलोभन इत्यादि के द्वारा किये गये धर्म-परिवर्तन की भी पूर्ण रोक थाम हो जाती है:—

"यदि कोई दबाव डाल कर या डर दिखाकर अथवा कोई कानूनी तरीके से अथवा किसी आर्थिक सहायता का आश्वासन देकर अथवा अन्य किसी प्रकार की सहायता से अथवा धोखे से या किसी प्रकार का नैतिक और भौतिक सहायता का वचन देकर अथवा दूसरे व्यक्ति की अनुभवहीनता से अनुचित लाभ उठा कर अथवा उसके विश्वास या आवश्यकता का अनुचित लाभ उठा कर अथवा किसी की आध्यात्मिक और मानसिक दुर्बलता और विवेक-हीनता का लाभ उठा कर तथा आम तौर पर कोई भी चेष्टा अथवा प्रयत्न, चाहे वह सफल हुआ हो या असफल, प्रत्यक्ष हो वा परोक्ष, उसके द्वारा किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा के धार्मिक विश्वास में, चाहे वह व्यक्ति प्रौढ़ हो अथवा कम आयु का, प्रवेश करने का प्रयास करेगा तथा उसे जानबूझ कर दूसरे धर्म मे प्रवृत्त करेगा तथा उसके आन्तरिक धार्मिक विश्वास को बदलने की चेष्टा करेगा, तो इस प्रकार की चेष्टा को धर्म-परिवर्तन में गिना जायगा।"

ग्रेट ब्रिटेन में 'चर्च आफ इंगलैंड' को राष्ट्रीय धर्म की पदवी मिली हुई है और उसके इस ऐतिहासिक महत्व पर ही ग्रेट ब्रिटेन में धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रश्न केन्द्रित है। सम्राट और उसका लार्ड चान्सलर इन दोनों को 'चर्च आफ इंगलैंड' का सदस्य होना अनिवार्य है। हाउस आफ लार्डस में २४ पादरी और दो आर्च विशप (बड़े पादरी) सदस्य के रूप में हैं। चर्च अपनी सम्पत्ति तथा देवस्व का स्वामी है।

चर्च आफ इंगलैंड के प्रबन्ध तथा नियन्त्रण में ही प्रारंभिक विद्यालयों अथवा माध्यमिक विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जाती है।

जर्मनी में धार्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का एक प्रकार से उन्मूलन ही हो चुका था। वहां सरकार धार्मिक बातों में केवल हस्तक्षेप ही नहीं करती थी, वरन् धार्मिक स्वतन्त्रता की अवहेलना भी करती थी।

वहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता का भंग हो रहा था और उसके अनुसार पादरियों के कार्यों में अन्धाधुन्ध हस्ताक्षेप होता था। अक्टूबर १९३४ तक १००० से अधिक पादरी पकड़े जा चुके थे अथवा पुलिस के हाथों तंग किये जा चुके थे। केवल एक दिन अर्थात् मार्च ११, १९३५ को ७०० पादरियों को बन्दी बना लिया गया और ५००० लोगों को पुलिस द्वारा पूछताछ के कष्ट सहने पड़े। जर्मनी में यहूदियों पर जो नाना प्रकार के अत्याचार हुए, वह सर्व प्रसिद्ध है। मार्च १९३८ में जितने भी यहूदियों के

धार्मिक संप्रदाय थे, उन सबको नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। और यहूदी अफसरों को सिविल सर्विस के पदों पर रखने के अयोग्य घोषित कर दिया गया। उसी वर्ष में ७ नवम्बर को एक युवक यहूदी ने पेरिस में जर्मन दूतावास के मन्त्री पर गोली दाग दी। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप १२ घटे के भीतर यहूदियों के ४०० से ऊपर प्रार्थना-भवन तथा संघ-स्थानों को गोला बारूद से उड़ा दिया गया। यहूदी दूकानों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया तथा लूट लिया गया और ६०००० से अधिक यहूदियों को कैम्प जेलों में ठूंस दिया गया। यहूदी समाज पर भयानक कर लगा दिये गये। जर्मनी स्कूलों में जो यहूदी बच्चे पढ़ते थे, उनको स्कूलों से अलग कर दिया गया।

क्या अमरीकी संयुक्त राज्य क़ानून की दृष्टि में एक ईसाई राज्य है? इसके बारे में बहुत से न्यायालयों ने इस प्रश्न का हां में उत्तर दिया है। इस तथ्य का उक्त देश के न्याय-विधान पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। डाक्टर जोलमैन ने अपनी पुस्तक 'अमेरिकन चर्च ला' में निम्न प्रकार की टिप्पणी की है:—

'यह एक तथ्य है कि अमरिका के संयुक्त राज्य में प्रचलित धर्म ईसाई धर्म है और उसका वहां प्रभाव है, क्योंकि बहुत अधिक संख्या में अमरीकन लोग ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। इस लिये हमारे कानून और संस्थाओं का आधार मानव-समाज के उद्धारक ईसा की शिक्षाओं पर अवलम्बित होना चाहिये। ईसाई धर्म हमारे नैतिक सिद्धान्तों का आधार है और यही वह शक्ति है जो हमारी न्याय-प्रणाली को चलाती है। हमारी समस्त राजकीय शासन-प्रणाली तथा राष्ट्रीयता की तह में ईसाई धर्म स्थित है। वह इसके विधान अथवा कानूनों में निहित है और वह सब पर लागू हो सकता है। क्योंकि इसमें धर्म के वे आवश्यक सिद्धान्त निहित हैं जिसके अन्तर्गत सब ईमान रखने वाले प्रवेश पा सकते हैं। ···इस से यह परिणाम निकलता है कि कुछ ऐसे कृत्य जो दूसरे देशों में प्रशंसा के योग्य हो सकते हैं अमरीकनों की परम्पराओं के विरुद्ध होने से अमरीका में बुरे समझे जायेंगे अथवा अपराध के रूप में लिये जायेंगे। इस लिये नहीं कि इससे ईसाई धर्म को किसी प्रकार की सहायता मिलती है, किन्तु इस लिये कि इस प्रकार की त्रुटियों का होना राज्य के विरुद्ध कानूनी अपराधों में समझा जायेगा।

ईसाई धर्म के दश निर्देशों (ten Commandments) में से कम से कम आधे किसी न किसी रूप में अमरीका के विधान में स्थान पाये हुए हैं। इन तथ्यों के होते हुए यह धारणा आम प्रचलित है कि ईसाई धर्म देश के कानून का एक अंग है।"

जापान में सिन्टो धर्म राज्य का धर्म है। एक जापानी लेखक के शब्दों में:—

"यह धर्म जानबूझ कर राज्य ने नहीं अपनाया जैसा कि पश्चिम के देशों के सरकारी धर्म अपनाये जाते हैं। परन्तु उक्त धर्म प्रत्येक जापानी स्त्री, पुरुष, युवा वृद्ध, बड़ा, छोटा, शिक्षित और अशिक्षित इन सब के जीवन और हृदय का धर्म है। इसी कारण एक जापानी सदा सिन्टों धर्म को मानने वाला बना रहता है। यह धर्म उसका सामूहिक धर्म है और इसको वह अपना राष्ट्रीय धर्म समझता है। उसका यह धर्म उसके अपने व्यक्तिगत अथवा निजी धर्म से बिलकुल अलग होगा, चाहे वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को अपनावे और चाहे कन्फ्यूसियस धर्म को। प्रायः ईसाई धर्म भी जापान में इसी प्रकार प्रचलित है और वह भी एक व्यक्तिगत अथवा निजी धर्म के रूप में है वास्तव में इस का यह अर्थ है कि यदि कोई जापानी सिन्टो धर्म का परित्याग करदे तब उसका यह अर्थ निकलेगा कि उस ने जापानी साम्राज्य तथा जापान के सम्राट् से विद्रोह किया।··· ··· जापान में सम्राट् को साक्षात भगवान् के रूप में माना जाता है और जापानी धर्म में उसको वही स्थान प्राप्त है जो जेहोवा का यहूदी धर्म में।"

अब हम चीन की ओर आते हैं। चीन को कुछ एक व्यक्ति एक धर्म-निरपेक्ष राज्य कहते है और दूसरे लोग इस देश को नाना प्रकार के धर्मों को मानने वाला देश कहते हैं। इसके विधान की धारा १५ में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक धर्म के मामले में स्वतन्त्र है और ऐसी स्वतन्त्रता पर कानून के अनुसार कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकता।

अभी तक ऊपर हमने ऐसी धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लेख किया है जो ईसाई और बौद्ध देशों में उनके

विधान के अनुसार प्रचलित हैं। अब हम थोड़ी सी दृष्टि उस धार्मिक स्वतन्त्रता की ओर ले जाते हैं जो ईस्लामी देशों म पायी जाती है।

"मुसलमानों के समस्त जीवन पर ईस्लाम का अंकुश है। ईस्लामी धारणा के अनुसार मजहब, राज्य और जनता सब एक रूप है।"

सर्ल बेट्स नामक लेखक ने लिखा है कि कट्टर ईस्लाम धार्मिक स्वतन्त्रता के उलटा है और पश्चिमी देशों में जो विचार-धारा इस सम्बन्ध में प्रचलित है उसके लिये ईस्लाम धर्म में कोई स्थान नहीं है। सिद्धान्त रूप से ईस्लाम में धर्म-परिवर्तन एक काफिर का कार्य है और ऐसा करने पर उसमें घोर दण्ड का विधान है। यदि वहां धर्म-परिवर्तन की आज्ञा दी गयी है तो इसलिये कि दूसरे मतावलम्बी ईस्लाम में दीक्षित हो सकें। एक दूसरे अंग्रेज लेखक, एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक "रिलीजस लिबर्टी इन दी नीयर इष्ट" में इस प्रकार लिखा है:—

'मुस्लिम देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता का आम तौर पर यह अर्थ लिया जाता है कि पूजा-पाठ करने में स्वतन्त्रता हो अर्थात् हर एक संप्रदाय को अधिकार हो कि वह अपने ढंग से धार्मिक पूजा-पाठ कर सके और उस में सरकार की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। परन्तु वहां धार्मिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है कि दूसरों को अपने धर्म में दीक्षित करने का अधिकार हो। ऐसे अर्थ में धार्मिक स्वतन्ता वहां कभी नहीं ली गयीं।"

आगे चल कर वह लिखता है:—

"मुसलमान अधिकारियों और जनता को इस से अधिक रोष और किसी अन्य बात पर नहीं आता जितना कि ईसाइयों के द्वारा मुसलमानों के धर्म-परिवर्तन पर। दूसरी ओर मुस्लिम और ईस्लाम से सहानुभूति रखने वाले प्रचारकों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती है। इस प्रकार यहूदी धर्म और ईसाई धर्म से ईस्लाम धर्म में दीक्षित करने का कार्य सरल हो जाता है। ईस्लाम मत ग्रहण करने के इच्छुक व्यक्तियों को और भी कई प्रकार के आर्थिक अथवा अन्य प्रलोभन दिये जाते हैं। अल्पसंख्यक जातियों से होने वाले नव मुस्लिम लोगों को सरकारी नोकरी और प्राइवेट फर्मो में विशेष रियायतें दी जाती हैं।"

उक्त समस्या का स्पष्टीकरण करते हुए लेखक ने लिखा है कि ईरान देश में धर्म-प्रचार प्राय: वर्जित है और विशेष कर नाबालिग बच्चों के धर्म-परिवर्तन पर तो कड़ी रोक है। देश के कानून ने वैसे तो धार्मिक पूजा-पाठ के लिये स्वतन्त्रता दे रखी है, परन्तु ईसाई लोग केवल गिरजा-घरों में ही सभा, उत्सव आदि मना सकते हैं। वे अपने अपने घरों में व्यक्तिगत रूप से भी कोई धार्मिक सभा, सत्संग नहीं कर सकते।

मिश्र 'ईजिप्ट' देश के विधान में ईस्लाम धर्म को सरकारी धर्म घोषित किया गया है। यदि कोई गिरजाघर बनाना चाहे तो उसके लिये सरकारी आज्ञा लेनी पड़ती है।

टर्की देश के विधान में धार्मिक पूजा-पाठ इत्यादि की स्वतन्त्रता है और किसी व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत धार्मिक आचार-विचार-अथवा रीति-रिवाज के कारण तंग नहीं किया जाता अथवा सताया नहीं जा सकता। टर्की के नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में यह घोषणा की गयी है कि अठारह वर्ष अथवा इससे अधिक आयु वाले लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह जिस धर्म को चाहें, उसे ग्रहण कर लें। ऐसा होते हुए भी वहां आम तौर पर धर्म-परिवर्तन को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। यही कारण है कि वहां छोटे बच्चों का धर्म परिवर्तन करना प्राय: असम्भव बन गया है।

यदि हम अपने समीपवर्ती देशों की ओर आते हैं तो पता चलता है कि अफगानिस्तान और मध्य अरब में जो व्यक्ति ईस्लाम धर्म से पतित हो जाता है, उसको मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

शिक्षा-क्षेत्र में धार्मिक स्वतन्त्रता के बारे में एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ९ पर लिखा है 'कि ईसाई मिशनरियों के शिक्षा के क्षेत्र में हस्तक्षेप और प्रचार कार्य से मुसलमान लोग बहुत नाराज होते हैं क्योंकि इस्लामी राज्य अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि वे मुसलमान बच्चों को अन्य धर्म के शिक्षण के प्रभाव से रक्षा करें। इस प्रकार उनके माता पिता को उनके अधिकार से वंचित रक्खा जाता है। और वे अपने

बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षण के बारे में निर्णय देने में अशक्त बना दिये गये हैं। समीपवर्ती कई राज्यों ने उक्त सीमा को लांघ कर यह इच्छा प्रगट की है कि समस्त विद्यालयों में मुसलमान विद्यार्थियों के लिये ईस्लामी शिक्षा-प्रबन्ध होना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप मिश्र देश में यदि किसी नाबालिग को, जिसकी तर्क-बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई है, उसके माता पिता के धर्म के विरुद्ध किसी अन्य धर्म की शिक्षा दी जाये तो इस कार्य को न केवल नैतिक और नागरिक अनुशासन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल वरन् एक अपराध समझा जायेगा। कोई भी राज्य जो अपनी प्रजा के धार्मिक विश्वास अथवा विचारों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है, उक्त धर्म-परिवर्तन के प्रचार कार्य को उचित न समझेगा। जहां धार्मिक स्वतन्त्रता की छूट है वहां भी उपरोक्त कार्यवाहियों को अच्छा नहीं समझा जाता। जहां शिक्षणालयों में छोटे छोटे बच्चों को उनके निजी धर्म के विरुद्ध अन्य धर्मों की शिक्षा देकर उनके कोमल हृदयों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की चेष्टा की जाती है, वहां स्वतन्त्रता का ह्रास ही समझना चाहिये।

एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है कि ईसाई मिशन वालों के ऐसे सामाजिक तथा चिकित्सा और शिक्षण सम्बन्धी समस्त कार्यों की प्रायः प्रशंसा की जाती हैं जिसमें किसी प्रकार के धर्म अथवा राजनीति की कोई गन्ध न हो। यदि इस बात का तनिक भी सन्देह हो जाता है कि विदेशी मिशन किसी विदेशी राजनैतिक के शक्ति एजेन्ट हैं अथवा विदेशी सभ्यता के प्रसार में लगे हुए हैं अथवा सक्रिय रूप से ईसाई हैं, तब उनकी स्वतन्त्रता पर रोक लगाने के लिए कदम उठाये जाते हैं। विदेश से आने वाली आर्थिक सहायता तथा विदेशों से आने वाले प्रचारकों पर वीसा (प्रवास-पत्र) के द्वारा नियन्त्रण लगा दिया जाता है।

उसी पुस्तक के ९ वें पृष्ठ पर एस० ए० मोरीसन ने लिखा है कि "एक मुसलमान की दृष्टि में यदि कोई ईस्लाम को छोड़ देता है तो वह अपने धर्म तथा समाज के लिए विश्वास-घाती समझा जाता है। मध्य पूर्व के प्रदेशों में आज जो नवीन राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो पायी है उसका कारण है कि प्रगतिशील पश्चिम के देशों में धर्म-निरपेक्षता की जो भावनायें हैं वह वहां फैल गयी हैं। राष्ट्रीयता की भावना भी इसी बात पर जोर देती है कि राष्ट्र की एकता एक सांझी संस्कृति पर ही निर्भर रह सकती है। ऐसी एकता का आधार एक जाति के रूप में हो सकता है जैसा कि टर्की में है अथवा एक धर्म के रूप में हो सकता है जैसे कि बहुत से दूसरे इस्लामी प्रदेशों में है। यही कारण है कि मुसलमानी देशों की राष्ट्रीयता के ढांचे में ईसाई और यहूदी लोगों की अलग संस्कृति दुर्बलता का अंग गिनी गयी है।"

"आजकल समीपवर्ती पूर्वी देशों में लोगों के हृदय में विदेशी साम्राज्य के बारे में भयंकर सन्देह विद्यमान है और उनका प्रायः यह विश्वास है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से मिशनवाले विदेशी सरकारों के एजेन्ट होते हैं। समीपवर्ती पूर्वी देशों की सरकारें विदेशी शिक्षणालयों के सम्बन्ध में विशेष करके बहुत सशंकित हैं और उनको सन्देह है कि उक्त संस्थाओं के द्वारा ईसाइयत अथवा राजनीति का प्रचार किया जाता है।"

भिन्न भिन्न देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता, उनके अपने विधान के अनुसार किस प्रकार मानी जाती है, उसका ऊपर संक्षेप में उल्लेख किया गया है। आगामी अध्याय में इस बात पर विचार किया जायगा कि स्वतन्त्र भारत के विधान के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता की क्या स्थिति है। और उसे क्या स्थान प्राप्त हैं।

अध्याय—२

भारतीय विधान के अन्तर्गत धार्मिक स्वतन्त्रता

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो धारायें विधान में रखी गयी है, उन की चर्चा करने के पश्चात् रिपोर्ट में लिखा है कि यदि हम मूल अधिकारों के बारे में सोचें, जो हमें द्वारा प्राप्त हैं तो हमें विधान में दिये हुए प्राक्कथन को विस्मरण नहीं कर देना चाहिए। साधारण कानूनों में जो प्राक्कथन होते हैं उन से भिन्न हमारे विधान का प्राक्कथन है। इस प्राक्कथन में हमारे विधान का पूर्ण उद्देश्य घोषित किया गया है। वास्तव में यह प्राक्कथन एक बीज के रूप में है जो उग कर एक शक्तिशाली वृक्ष के रूप में फैल गया है और इस में से जो फल फूल निकले

हैं, वे विधान में दी गयी धाराओं अथवा अध्यायों के रूप में प्रगट होते हैं। उक्त प्राक्कथन में लिखा है कि :—

"हम भारत के वासी अपने आपके लिए यह विधान तैयार करते हैं और इसके द्वारा समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की सुरक्षा होगी।"

इस में सन्देह नहीं कि यद्यपि यह विधान प्रायः इसके नागरिकों के लिए बनाया गया है, तथापि इस में इस देश में रहने वाले विदेशियों के लिए भी सुविधा है। परन्तु इस देश के नागरिकों को जो अधिकार प्राप्त हैं वे विदेशियों के लिए जो अधिकार दिये गये हैं, उनसे अलग रखने होंगे। क्यों कि एक विदेशी के और एक भारतीय नागरिक के जो कर्तव्य राष्ट्र के प्रति हैं, वे एक समान नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि बहुत सी धारायें भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों के लिए एक जैसी हैं। उदाहरणार्थ विधान की १४ वीं धारा में घोषित है कि राज्य के कानून के सामने समस्त व्यक्तियों के साथ समानता का व्यवहार रहेगा और इस देश की सीमा में रहने वाले सब लोगों को कानून के अनुसार समान सुरक्षा प्राप्त होगी। इसी प्रकार विधान की २०, २१, २२ और ३१ धाराओं में समस्त नागरिकों के तथा जो नागरिक नहीं हैं उन के धन-सम्पत्ति और जान की रक्षा का विश्वास दिलाया गया है। इसी प्रकार २५ वीं धारा में समस्त देशवासियों की अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता घोषित की गई है। परन्तु इसके साथ-साथ विधान में कुछ एक ऐसी धारायें भी हैं, इसलिए धारा १९ (१) में जो व्यक्ति स्वतन्त्रता के कुछ अधिकार दिये गये हैं वे केवल भारतीय नागरिकों के लिए ही हैं यह धारा नीचे उद्धृत की जाती है :—

१—समस्त नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :—
  क–भाषण और विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता
  ख–बिना शस्त्र के शान्तिपूर्वक एकत्रित होने की स्वतन्त्रता
  ग–सभा समितियां बनाने की स्वतन्त्रता
  घ–बिना किसी रोक-टोक के भारत की समस्त सीमा के भीतर आने जाने की स्वतन्त्रता
  च–भारत के किसी भी भाग में बसने की स्वतन्त्रता
  छ–सम्पत्ति के क्रय विक्रय अथवा उपभोग की स्वतन्त्रता
  ज–किसी वाणिज्य व्यवसाय अथवा काम-धन्धा करने की स्वतन्त्रता

ऊपर लिखी हुई जो सात प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है उस पर पांच प्रकार की रोके भी लगा दी गयी हैं। ये रोकें प्रदेशीय विधान सभा द्वारा राज्य की सुरक्षा के हित में, नागरिक अनुशासन और नैतिकता के हित में तथा परिगणित जातियों की रक्षा के लिये लगायी जा सकती हैं।

विधान में नागरिकों और अनागरिकों के बीच में जो भेद रखा गया है और जिसकी व्याख्या की गयी है उसका विदेशियों के अधिकार और कर्तव्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है और हमारी जांच के लिये यह बात विशेष महत्व की है।

इस अध्याय में हमने भारत में धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में वैधानिक धाराओं का उल्लेख लिखा है। परन्तु इसके पूर्व अध्याय में हम उल्लेख कर चुके हैं कि अन्य देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता का क्या स्वरूप है। इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में विश्व के देश दो बड़ी श्रेणियों में बटे हुए हैं : १—धर्म-सापेक्ष राष्ट्र अर्थात् ऐसे राष्ट्र जहां राज्य द्वारा अनुमोदित धर्म प्रचलित है। २—धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र अर्थात् ऐसे राष्ट्र जिन में सरकार का अपना कोई धर्म नहीं है।

यह स्वाभाविक है कि जिन राष्ट्रों में सरकारी धर्म चालू है वहां प्रगट अथवा अप्रगट रूप से सरकार द्वारा अनुमोदित धर्म को विशेषता दी जाती है। ऐसे राष्ट्र ऊपर लिखी हुई पहली श्रेणी में आते हैं। सरकार द्वारा अनुमोदिक धर्म के अनुयायियों को जो अधिकार और सुविधाएं मिलती हैं उनसे दूसरे मतावलम्बी वंचित रहते हैं। इसलिये ऐसे राज्यों में समस्त धर्मों की समानता का नियम पूरी तरह से लागू नहीं होता। बहुत से इस्लामी और ईसाई राज्य उक्त श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

धर्म-निरपेक्ष राज्य दो उपश्रेणियों में बांटे जा सकते हैं:—

क—वे राष्ट्र जहां धर्म के नाम से ही चिढ़ है और धर्म को जहां भयानक बात समझ कर परित्याग कर दिया गया है।

ख—वे राष्ट्र जहा धर्म का आदर किया जाता है।

पहले प्रकार के राष्ट्रों में धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये कोई स्थान नहीं है। यह बात इसलिये नहीं कि राष्ट्र अपना कोई विशेष धर्म नहीं है वरन् इसलिये कि वहां धर्म मात्र को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिये वहां किसी भी धर्म के लिये किसी भी प्रकार की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। कम्यूनिस्ट देश इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

दूसरी उपश्रेणी के राष्ट्रों में सब धर्मों को एक जैसा सम्मान प्राप्त है और किसी एक धर्म को दूसरे पर विशेषता नहीं दी जाती। सब धर्मों के अनुयायियों को स्वतन्त्रता है कि वे अपनी मर्जी के धर्म को मान सकते हैं परन्तु इस शर्त पर कि वह धर्म नागरिक अनुशासन के प्रतिकूल न हो। यह शर्त बिना किसी भेदभाव के सब धर्मों के अनुयायियों पर समान रूप से लागू होती है।

भारत उपरोक्त दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत में कई प्रकार के धर्म प्रचलित हैं, परन्तु भारत सदा विभिन्नता में एकता की खोज में रहा है। जब भारतीय विधान तैयार हो रहा था तब उस समय श्री के० सन्थानम्, जो वर्तमान विन्ध्य प्रदेश के उपराज्यपाल रह चुके हैं, विधान का मसौदा बनाने वाली समिति के सदस्य थे। विधान की धारा २५ वीं की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था: "महोदय, विधान में जो प्रचार शब्द का प्रयोग हुआ है उस पर कुछ वाद-विवाद हो चुका है। अन्ततः प्रचार को एक प्रकार की विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता ही कहनी पड़ेगी। मैं यह उल्लेख कर देना चाहता हू कि कन्वर्ट (धर्म-परिवर्तन) नाम का शब्द कहां नहीं है। इस देश में सामूहिक धर्म-परिवर्तन का कार्य ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का एक अंग रहा है और जनता ने इसका कड़ा विरोध किया है। जिन्होंने इस विधान का मसौदा तैयार किया था, उन्होंने इस बात की सावधानी रखी थी कि धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई असीम अधिकार नहीं दिया जाये। लोगों को अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता है। यदि कोई व्यक्ति अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता के कारण अपनी मर्जी से धर्म-परिवर्तन कर ले तो ठीक है। ऐसे धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध कोई रोक अथवा शर्त नहीं लगायी जा सकती। परन्तु यदि धार्मिक सम्प्रदाय या संस्था दूसरों के सामूहिक धर्म-परिवर्तन की चेष्टा करे और विशेष कर जब यह धर्म-परिवर्तन रुपये पैसे के लोभ से अथवा दबाव दूसरे तरीकों से किया जावे, तब राज्य का अधिकार हो जाता है कि वह ऐसी गतिविधि पर नियन्त्रण रखे।" विधान की इसी धारा की व्याख्या एक अन्य मामले में बम्बई हाई कोर्ट के समक्ष हो चुकी है और यहां उक्त निर्णय का उल्लेख अप्रसांगिक नहीं होगा। उक्त मामले में चीफ जस्टिस चागला ने कहा था:—

"आप यह कह सकते हैं कि विधान की २५ वीं और २६ वीं धारायें धार्मिक स्वतन्त्रता की चर्चा करती हैं, परन्तु मैं अभी आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करूगा कि हमारे विधान में जो धार्मिक स्वतन्त्रता निर्धारित की गयी है वह बिना रोक की स्वतन्त्रता नहीं है। विधान ने जो धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की है वह उस धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये होगी जिसको एक धर्म-निरपेक्ष राज्य के प्रसंग में उचित समझा जायगा। धर्म के हर पहलू की सुरक्षा की गयी हो ऐसी विधान में कोई बात नहीं है और ना ही विधान में इस बात की स्वीकृति है कि हर एक प्रकार की धार्मिक गतिविधि में हस्ताक्षेप नहीं किया जा सकता।"

अध्याय ३

मध्य प्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ईसाई मिशनरियों की हरकतें

यद्यपि भारत में विदेशी ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के बारे में हमारे अनुभव और संस्मरण कटु हैं; यद्यपि स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी गयी उसमें एक्का दूक्का छोड़ कर ईसाइयों ने नहीं के बराबर भाग लिया था; यद्यपि धर्म के आधार पर

हमारे देश का बंटवारा हुआ जिसका कटु स्मरण हम कभी भुला नहीं सक्ते; तथापि हमारे प्रधान मन्त्री के मुख से जो शब्द निकलते थे वह हमारे देश की गौरवपूर्ण प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक थे। हमारे प्रधान मन्त्री ने उस समय कहा था:—

"जब तक भारत के शासन की बागडोर मेरे हाथ में है, भारत एक हिन्दू राज्य नहीं बन सकता।" अतएव इसके फल स्वरूप एक वास्तविक धर्म-निरपेक्ष गण-तन्त्र राज्य की स्थापना हुई। ३५ करोड़ की आबादी वाले देश में जहां बहुसंख्यकों का धर्म हिन्दू धर्म है, वहां लगभग एक करोड़ की अल्प-संख्यक जाति वालों को प्रतिष्ठा और सम्मान के स्थान का आश्वासन दिया गया।

अतएव भारत के बहुसंख्यक जाति के लोग यदि यह आशा करें कि अल्प संख्यक लोग भारतीय विधान बनाने वालों की इस उदारता सम्मान तथा अभिनन्दन करेंगे, जिसमें कि भारत एक प्रगतिशीत और शक्तिशाली राष्ट्र बन सके तो यह कोई अनुचित बात नहीं है। परन्तु अल्पसंख्यकों का विगत काल में व्यवहार कोई सहयोग पूर्ण नहीं रहा है। वे पीछे के दरवाजे से हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों को नष्ट भ्रष्ट करने की चेष्टा करते रहे हैं। परन्तु देश आशा रखता था कि स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् उनका बहुसंख्यकों के साथ सहयोग होगा और वे उन पर विश्वास रखेंगे। परन्तु खेद की बात है हमारे विधान को घोषित हुए अभी कुछ थोड़ा ही समय बीता था कि भारत के भिन्न भिन्न भागों से विदेश मिशनरियों की अनुचित कार्यवाहियो के बारे में तरह तरह की सूचनायें आने लगीं।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि हमारे विधान के पास होने के बाद मिशनरियों की गतिविधियां तुरन्त बढ़ गयी थीं। हम यहां उन प्रमाणों तथा साक्षियों की चर्चा करेंगे जो हमारे समक्ष रखी गयी हैं और जिनसे पता चलता है कि इन मिशन वालों को विदेशी सहायता कितनी और कहां तक प्राप्त होती रही है।

विदेशों से प्राप्त धन

जनवरी १९५० से लेकर जून १९५४ तक २९·२७ करोड़ रुपये की विशाल राशि भारत में आ चुकी थी। इसका विवरण निम्न प्रकार है:—

संयुक्त राज्य अमेरिका ...	२०६८६३०००)	
कनाडा ...	१६७५६०००)	
बेलजियम	६४७०००)	
डेनमार्क	३३९१०००)	
फ्रान्स	७६१०००)	
जर्मनी	१११६०००)	
नार्वे	२७९७०००)	
स्वेडेन	६४४१०००)	
स्विटजरलेण्ड	१५७७०००)	
गैर स्टर्लिग क्षेत्र से प्राप्त धन-राशि	१४७२०००)	
योग		२४,१८,२१,०००)
युनाइटेड किंगडम के स्टर्लिग क्षेत्र से.... ...	४८३८९०००)	५०९१८०००)
अन्य स्टर्लिग क्षेत्र से....	२५२९०००)	
कुल योग		२९,२७,३९,०००)

उक्त आंकड़े भारत सरकार से प्राप्त हुए थे।

जब हम जांच के सिलसिले भ्रमण कर रहे थे तब पादरी लकरा ने १० जून, १९५४ को कुसमी में हमारे सामने यह स्वीकार किया था कि १९५३ में उन्हें जेनेवा की 'लूथरन वर्ल्ड फेडेरेशन' से ६००००) साठ हजार रुपये की राशि भारत के पांच प्रान्तों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये प्राप्त हुई थी और इसी प्रकार उसके लूथरन मिशन के अमरीकी बोर्ड के द्वारा ९००००) नब्बे हजार रुपया की भारी रकम केवल एक वर्ष के लिये सरगुजा क्षेत्र में ईमाई धर्म के लिये अमेरिका से प्राप्त हुई थी।

जनवरी १९५० में हमारा विधान घोषित हुआ। इसके फल स्वरूप सरगुजा इत्यादि स्थानों में मिशनरियों के ईसाई धर्म के प्रचार के लिये द्वार खुल गया और वहां धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये मिशनरियों को बड़ी बड़ी रकमें मिलने लगीं। गौसनर लूथरन मिशन ने सरगुजा में एक नया मिशन-कार्य-क्षेत्र स्थापित किया और उस में बहुत से प्रचारक भर्ती किये। ये प्रचारक गांव गांव में धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये फैल गये।

मद्रास राज्य में पार्वतीपुरम् स्थान पर ६-७ मार्च १९५३ को एक सभा हुई। उसमें घोषणा की गयी कि सरगुजा क्षेत्र में १२०० बारह सौ व्यक्तियों को ईसाई बनाया गया है और वहां के लिये एक सौ प्रचारक और सात पादरी नियुक्त किये गये। मिशन वालों ने अम्बिकापुर में २३ एकड़ भूमि भी खरीद ली। उक्त सभा में यह भी घोषित किया गया था कि अमरीका से १९५३ में प्रचार कार्य के लिये नब्बे हजार रु० की आर्थिक सहायता स्वीकृत हुई है।

उपरोक्त तथ्य से पता चलता है कि ज्यों ही भारत के विधान की घोषणा हुई, ईसाई मिश्नरियों के लिये सरगुजा का क्षेत्र प्रचार कार्य के लिये खुल गया। तब से उक्त क्षेत्र पर कई एक मिशनों ने जैसे रोमन कैथोलिक, चर्च आफ क्राइस्ट मिशन और लूथरन मिशन इत्यादि ने इकट्ठे होकर धावा बोल दिया है और उनको इस धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये लूथरन बोर्ड फेरेडेशन से आर्थिक सहायता प्राप्त होती रही।

यह जानना रुचिकर होगा कि लूथरन ईसाई यहां पर क्यों आगे आये। प्रोटेस्टैन्ट ईसाईयों में से लूथर के अनुयायी बहु संख्या में हैं। जर्मनी में उनका बहुत प्रभाव है। स्केन्डनेवियन देशों में वे दूसरों पर हावी हैं और उत्तरी अमरीका में भी उनकी संख्या अधिक है। अन्य किसी ईसाई संप्रदाय की अपेक्षा लूथरन लोगों ने राज्य को चर्च पर कड़ा नियन्त्रण रखने की अधिक सुविधा दे रखी है। कई अवसरों पर तो ऐसा देखा गया है, कि चर्च ने अपने आप को राजनैतिक दलों और नीतियों के साथ गठजोड़ कर लिया है, जो कि आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से उचित नहीं है।

दुनियां जानती है कि मिश्नरियों का कार्य केवल ईसाई बनाना ही है। इसलिये जो रुपया उनके पास बाहर से आता है, उसको वे बहुत से पादरी और शिक्षक-प्रचारक नियुक्त करने में लगा देते हैं। जब हम अपने पहले दौरे में सरगुजा जिले में गये थे तो लूथरन मिशन के पास ६०-७० प्रचारक थे और प्रत्येक को ४०) रु० मासिक वेतन मिलता था। बसना एक छोटा सा स्थान है। वहां ३६ प्रचारक केवल ३ गांवों में कार्य करने के लिये नियुक्त थे। प्रत्येक प्रचारक को ३५) रु० से लेकर ४०) रु० तक मासिक वेतन मिलता था। विलासपुर जिले में तुलाराम नाम का एक प्रचारक था जिसको ८२) रु० मासिक वेतन मिलता था। उसके कहने के अनुसार वहां ६ मील के घेरे के अन्दर ४ प्रचारक नियुक्त थे। बासीम में हमें बताया गया कि नजरीन चर्च के क्षेत्र में ४८ प्रचारक धर्म-परिवर्तन का कार्य करते थे। हमें यह भी बताया गया कि विदेशी पादरियों की संख्या २४ थी और उसमें स्त्रियां भी सम्मिलित थीं। प्रचार के लिये भ्रमण पर जितना भी खर्च होता था वह सारा मिशन फंड से चुकता किया जाता था। अमरावती जिले में २६ मिश्नरी कार्य करते थे और उनके साथ १२ देशी प्रचारक होते थे, जिनका वेतन ५०) से ६०) तक होता है। यवतमाल में मोजेज़ डेविड नामक एक प्रचारक था, जिसको १५७) मासिक वेतन दिया जाता था। जान गडियों जालकोट गांव का ईसाई पटेल है, उसको प्रचार कार्य के लिये ६०) रु० मासिक वेतन मिलता था। सोलोमन धन्तरी में एक अध्यापक है, उसने हमको बतलाया था कि मैनोनाइट चर्च के अन्तर्गत कुल ६-७ प्रचारक है जो फिल्म, तसवीर अथवा नाटक इत्यादि को सहायता से प्रचार करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विदेशों से जो रुपया यहां आता है, उससे केवल धार्मिक अथवा चिकित्सा सम्बन्धी संस्थाएं ही नहीं चलायी जातीं, बल्कि उसमें से अधिकांश रुपया पेशेवर धर्म-परिवर्तन कार्य करने वाले मिश्नरियों के पास, चाहे वे विदेशी हों वा देशी, चला जाता है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में विदेशी मिश्नरी कितने थे और उसके बाद कितने हैं, यह नीचे दिये गये तुलनात्मक आंकड़ों से पता चलेगा।

१९४७ में	५०४० मिश्नरी समस्त भारत में थे जिसमें पाकिस्तान भी सम्मिलित था।
१५९१ में	४३७७ मिश्नरी केवल भारत में थे।
१९५५ में	४८७७ मिश्नरी केवल भारत में थे।

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि १९५१ से १९५५ तक पांच वर्षों में मिश्नरियों की संख्या में ५०० की वृद्धि हुई है।

हमारे पास जो सरकारी सूचना प्राप्त हुई है उसके अनुसार केवल मध्य प्रदेश में ४८० विदेशी मिशनरी भिन्न-भिन्न मिशनों के अन्तर्गत प्रचार-कार्य कर रहे हैं। इसका विवरण निम्न प्रकार है :—

१—अमेरिकन	२३६	११—आयरिश	३
२—फ्रेन्च	५६	१२—स्काटिश	२
३—ब्रिटिश	५४	१३—ब्रजीलियन	२
४—स्वेडन	३२	१४—आस्ट्रेलियन	१
५—डच	२६	१५—अर्जेन्टाइनी	१
६—जर्मन	१७	१६—फिन	१
७—स्विस	१६	१७—पुर्तगाली	१
८—बेल्जियन	१३	१८—इटेलियन	१
६—स्पेनिश	४	१९—हंगेरियन	१
१०—कनेडियन	६	२०—डैनिश	१
		योग	४८०

धर्म परिवर्तन के साधन

स्कूल, अस्पताल और अनाथालय

जिन साधनों के द्वारा ईसाईयत का प्रचार विशेष होता है वे प्रायः स्कूल, अस्पताल और अनाथालय ही हैं। रिच्टर ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ क्रिश्चियन मिशन्स' में लिखा है कि भारत के लिए एक नये युग का समारम्भ हुआ है। लोग शिक्षा के लिए लालायित हैं। ......क्या मिशन वाले अपने कार्य को अपने आप तक ही सीमित रखेंगे और इस जागृति से कोई लाभ न उठायेंगे ? अथवा वे इस में अपना स्थान ग्रहण करेंगे और अन्त में इस आंदोलन के नेता बन जायेंगे तथा इसको एक ऐसा साधन बना लेंगे कि जिससे समूचे भारत को ईसाई बनाया जा सके।" इसी पुस्तक में आगे जाकर लिखा है कि मिशन वालों के लिए यह कोई आदेशात्मक अथवा आवश्यक नहीं है कि वे अंग्रेजी साहित्य, इतिहास, गणित अथवा प्राकृतिक विज्ञान इत्यादि की शिक्षा का प्रचार करें। मिशन वालों का मूल कर्तव्य यह है कि वे गैर-ईसाई लोगों में बाइबिल का प्रचार करें। यदि वे ऐसा नहीं कर सकेंगे तो उनके सारे श्रम व्यर्थ हो जायेंगे। एक ही सांस में उक्त लेखक अनाथालयों, वाइ० एम० सी० ए०, चिकित्सा सेवा और कुष्ठाश्रम, इन सबों का उल्लेख करता है अर्थात् यह सब संस्थायें ईसाईयत के प्रचार के साधन बतलायी गयी हैं।

सन् १९३१ में तम्बरम् में अन्तर्राष्ट्रीय मिशनरी कौन्सिल की एक सार्वभौम कांफ्रेन्स बुलायी गयी थी। उसमें एक रिपोर्ट प्रकाशित की गयी थी जिसका नाम "दी वर्ल्ड मिशन आफ दी चर्च" है। उस रिपोर्ट में स्कूलों को धर्म-परिवर्तन-कार्य के लिए एक विशेष महत्व का साधन बताया गया है और इस सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि जो भी चिकित्सा अथवा शिक्षा-सम्बन्धी संस्थायें हैं उनमें प्रधान स्थान ईसाईयत के प्रचार को देना चाहिये।

'घर-बन्धु' नामक ईसाई पत्र के जनवरी, १९५२ के अंक में एक लेख 'स्कूल से लाभ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उसके पढ़ने से पता चलता है कि स्कूलों के सम्बन्ध में उक्त नीति अक्षरशः बरती जाती है। उक्त लेख में लिखा है :—

"क्लीसा (चर्च) को स्कूल से क्या फायदा है ?"

"स्कूल क्लीसा (चर्च) के लिए राज्य-वृद्धि का कार्य करता है।......"

इसी विषय में "कैथोलिक धर्म प्रचारक" नामक पत्र में निम्न प्रचार लिखा है :—

"स्कूल में जाने का पहला फल।

स्कूल में लोग भक्त क्रिस्तान बन जाते हैं।......"

लेफ्टिनेन्ट कर्नल एच० डब्ल्यू० सी० राब्सन, ओ० बी० ए० ने, जो पूर्वी स्टेटों में रेजिडेन्ट थे, वायसराय के सचिव को एक पत्र ता० १५ अप्रैल, १९३७ को लिखा था। उससे पता चलता है कि रुकावटों के होते हुए भी सरकार के पास ऐसी रिपोर्ट पहुंच रही थी कि कैथोलिक चर्च के पादरी युवकों तथा बालक-बालिकाओं को ईसाई बनाने के लिए विशेष परिश्रम कर रहे हैं और शिक्षा देने के बहाने लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तन करने के लिए चेष्टा कर रहे हैं। "चर्च आफ दी नजरीन" की एक रिपोर्ट में इसी बात को बड़े जोरदार तरीके से निम्न प्रकार लिखा है :—

"ईसाइयत का प्रचार हमारा ध्येय है। इस बात के लिए न हम कोई क्षमा की याचना करते हैं और न हम ध्येय को छुपाते हैं। ईसा ने हमको आदेश दिया है कि

हम प्रत्येक व्यक्ति को बाइबिल का पाठ पढ़ावें और हम यह करके रहेंगे। हमारा कार्य चाहें किसी प्रकार का हो, चाहे वह शिक्षा-सम्बन्धी हो वा चिकित्सा-सम्बन्धी हो या केवल ईसाइयत के प्रचार का ही हो, हम हर जगह बाइबिल का प्रचार करेंगे।"

"जाओ प्रचार करो और विजय प्राप्त करो" यह है निर्देश, जिसके अन्तर्गत हम कार्य करते हैं। हम इस ध्येय को कभी ढीला नहीं कर सकते।''

स्कूल

सबसे पहले हम उन प्रमाणों को लेंगे जिनका सम्बन्ध स्कूलों से हैं।

हमारे समक्ष जो बयान आये हैं उनसे यह रहस्योद्घाटन होता है कि स्कूलों में छोटे छोटे बच्चों को प्रभावित करने के लिये कई प्रकार के ऐसे तरीके अपनाये जाते हैं।

रामचन्द्र तिवारी (खंडवा) ने कहा कि जो बलाही बच्चे रोमन कैथोलिक गिरजाघर की ओर आकृष्ट होते हैं वे निःशुल्क भोजन और निवास की सुविधा के कारण ही होते हैं। उनके बड़े बूढ़ों पर अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डाला जाता है कि वे गिरजा घर में होने वाली प्रार्थना में उपस्थित हों। श्री सी० डी० मेघश्याम (खंडवा) ने, जो एक वकील हैं और नीमार हरिजन सेवक संघ के प्रधान हैं, बताया कि जब उन्होंने बलाही जाति के हरिजनों के लिये स्कूल खोले तो ईसाई मिशन वालों ने उनके स्कूल के पड़ोस में ही उसके मुकाबले में स्कूल खोल दिये और उसके साथ ही उन्होंने बिना मूल्य की पुस्तकें और अन्य सुविधाओं का भी प्रलोभन दिया।

बाबूलाल (खंडवा) महू में रोमन कैथोलिक स्कूल में रह चुका था। उसने अपने व्यक्तिगत अनुभव से बताया कि बलाही विद्यार्थियों को भोजन, रहने का स्थान और पुस्तकें इत्यादि मुफ़्त दिये जाते थे और उनको ईसाईयों की प्रार्थना में उपस्थित होने के लिये कहा जाता था। यह निर्देश सबके लिये आवश्यक था, चाहे वह ईसाई हो वा गैर-ईसाई हो।

उक्त तीनों साक्षियों ने यह भी कहा कि रोमन कैथोलिक स्कूलों में प्रवेश होने के पश्चात् लड़कों के नाम बदल दिये जाते थे। लूथरन मिशन वाले भी इसी प्रकार के ढंग अपनाते रहे हैं जैसा कि 'घर-बन्धु' नामक पत्र के मार्च-अप्रैल, १९५२ वाले अंक से प्रगट होता है। वहां इस प्रकार लिखा है:—

"......स्वराज्य हो जाने से सरगुजा में धर्म-प्रचार का द्वार खुल गया है।...दो लड़के सरगुजा से ईचकेला स्कूल में लाये।.......उनका नाम पतरस (पीटर) और पावल (पाल) रखा गया।......"

बाबूलाल के निज के उदाहरण से सिद्ध हुआ कि उसके मूल नाम के आगे वाल्टर लगा दिया गया था। देवी पुष्पावती (खंडवा) रोमन कैथोलिक स्कूल में ६ वर्ष तक अध्यापिका थी। उसने भी विद्यार्थियों के नामों को बदलने के सम्बन्ध में बताया। बहुत से बलाही विद्यार्थियों के सम्बन्ध में यह कहा गया कि वहां का कैथोलिक फादर, जो स्कूल का मैनेजर था, उनका अभिभावक बन गया और अपने अभिभावकत्व का लाभ उठा कर उसने उन लड़कों के नाम तथा धर्म बदल दिये। उसने एक विद्यार्थी का उदाहरण दिया कि एक छात्र का पूर्व नाम मुकुन्द था, उसके पीछे निकोलस नाम जोड़ दिया गया, जब वह ५ वीं कक्षा में प्रविष्ट हुआ। वर्धमान बलाही (खंडवा) को उसके मैट्रिकुलेशन के आवेदन-पत्र पर जोजेफ के नाम से दर्ज किया गया। जब उसने इसका विरोध किया तब उसका यह नाम हटा दिया गया। अम्बिकापुर में हीरालाल उरांव ने अपना प्राइमरी का सार्टिफिकेट दिखाया जिस पर उसका नाम जोहन मिन्ज लिखा हुआ था, यद्यपि वह एक हिन्दू था। व्यवहार राजेंन्द्र सिंह (जबलपुर) के कथनानुसार ऐसे कितने ही परोक्ष ढंग सिझौरा के नार्मल स्कूल में बरते गये हैं, जिन्हें डा० एल्विन और ठक्कर बापा ने भी उद्घाटित किया है। मध्यप्रदेश विधान सभा में उक्त नार्मल स्कूल के सम्बन्ध में कुछ ऐसे प्रश्न रखे गये जिससे उक्त स्कूल को मध्यप्रदेश सरकार द्वारा अपने नियन्त्रण में लेना पड़ा।

एजूकेशन मैनुयल (शिक्षण-विधि) में तथा भारतीय विधान में अपनी अन्तरात्मा के विश्वास की स्वतन्त्रता होते हुए भी, ईसाई मिशनरियों द्वारा उचित अनुचित उपायों से लोगों को उनके धार्मिक विश्वास से विचलित करने का प्रयत्न किया जाता है। १४ वर्षीय जनार्दनशंकर लाल (जबलपुर) जब १९५३-५४ में क्रिश्चियन मिशन

स्कूल में ७ वीं-८ वीं कक्षा में पढ़ता था, तब वहां ईसाई और गैर-ईसाई सभी छात्रों को बाइबिल पढ़ायी जाती थी और दूसरे दिन उसकी परीक्षा हुआ करती थी। बाइबिल के घंटे में ही सब की उपस्थिति ली जाती थी और उस समय जो छात्र अनुपस्थित रहता था, उसकी सारे दिन की अनुपस्थिति गिनी जाती थी। विद्यावती (गायकवाड़) जोन गर्ल्स स्कूल में प्राइमरी कक्षा से लेकर मैट्रिक कक्षा तक की छात्रा थी। इस अवधि में प्रातःकाल की प्रार्थना सबके लिये अनिवार्य थी और यह ईसाई मत की प्रार्थना थी। मत की छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों को रविवार के दिन अनिवार्य रूप से चर्च में जाना पड़ता था। १९५४ के १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में एक नाटक अभिनीत किया था। विश्व के चार भागों के चार प्रतिनिधियों की भूमिका में चार अभिनेता पाकिस्तान, इंग्लैंड, अमेरिका और भारत के राष्ट्रीय झन्डों के साथ मच पर आये। एक स्वल्प वार्तालाप के पश्चात् भारत का ध्वज लहराया गया। इसके बाद पवित्र पुरुष की भूमिका में एक बालक मंच पर अवरित हुआ, जिसने विश्व भर की शान्ति की घोषणा की, और इसके उपरान्त क्रास चिन्ह से अंकित ध्वज लिये हुए बालिकाओं का एक समूह मंच पर आया। यह ध्वज सबसे ऊपर लहराया गया। स्कूल के प्रिन्सिपल ने अपने भाषण में बताया कि इस नाटक का उद्देश्य पाकिस्तान, इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में मैत्री स्थापित करना है। जबलपुर के नवभारत (१७ अगस्त,१९५४) के अंक में इस नाटक की कुछ लोगों ने आलोचना की। कुमारी जिलसा सोले (जबलपुर) ट्रेनिंग कालेज की प्रिन्सिपल हैं। उन्होंने बताया कि बाइबिल क्लास ईसाई छात्रों के लिये भी अनिवार्य नहीं है। फिर भी गैर-ईसाई छात्रायें भी इसमें इसलिये उपस्थित होती हैं कि यह एक सामूहिक उपस्थिति का अवसर होता है और उसी समय दिन भर के कार्यक्रमों की घोषणा की जाती है। छात्रायें उन घोषणाओं को सुनने के ही लिये उस समय उपस्थित रहती हैं। इसी बात को कुछ घटा बढ़ा कर श्री राबिन्सन, हेडमास्टर, क्राइस्ट चर्च हाई स्कूल, जबलपुर ने भी बताया। एफ० एम० पी० सिंह, हेडमास्टर क्रिश्चियन हाई स्कूल, जबलपुर ने यह स्वीकार किया कि सितम्बर, १९५४ से पूर्व बाइबिल की शिक्षा और ईसाई प्रार्थना सबों के लिये अनिवार्य थी।

महादेव तुकाराम (यवतमाल) मिशन हाई स्कूल, दरव्हा का एक विद्यार्थी है। उसने बताया कि सभी छात्र प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं और रविवार को बाइबिल के पवित्र पाठ का श्रवण करते हैं। सुमित्रा गायकवाड़ (यवतमाल) "इन्डियन फ्री मेथोडिस्ट कान्फ्रेन्स स्कूल" उमरी की अध्यापिका हैं। उनके कथनानुसार हिन्दू लड़के प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं, क्योंकि वह प्रार्थना ईश्वर के प्रति तथा छात्रों की विद्योन्नति और देश की सुख-शान्ति के लिये होती है। नन्दलाल दूबे, अध्यापक मिशन हाई स्कूल, छोटा पारा (विलासपुर) ने कहा कि उपस्थिति ले चुकने के बाद प्रार्थना करायी जाती है और जो छात्र अनुपस्थित पाया जाता था, उस पर एक आना दण्ड कर कर दिया जाता था।

रेवेरेन्ड टी० एच० मेजर, सुपरिन्टेंडेन्ट, 'कोठारा कुष्ठचिकित्सालय' अचलपुर ने अपने लिखित वक्तव्य में बताया कि उनके अस्पताल में २९९ रोगियों में से २९० सरकार की ओर से प्रविष्ट हुए थे और ९ मिशन की ओर से। इनमें से प्रायः १०० रोगी ईसाई बन कर निकले, यद्यपि प्रवेश के समय उनमें से बहुत ही थोड़े ईसाई थे। ८ वर्षों के भीतर १५४ रोगी ईसाई बनाये गये। निश्चय ही ये सरकारी खर्च पर भर्ती होने वाले रोगियों में स बनाये गये थे, जिन पर सरकार २६०००) रु० प्रतिवर्ष व्यय कर रही थी।

महन्त नयनदास एम० एल० ए०, मन्त्री, अखिल भारतीय सतनामी सभा (रायपुर) ने अपने व्यक्तिगत अनुभव से बताया कि किस प्रकार अस्पतालों में रोगियों को ईसाई बनाने के लिये दबाया जाता है। उन्होंने एक उदाहरण दिया कि मोडपा का एक केझा नामक व्यक्ति मुँगेली के अस्पताल में भर्ती था, उससे कहा गया कि यदि वह अच्छा होना चाहता है तो वह ईसाई बन जाय। इसी प्रकार ढवरा बाटा का बोधन सतनामी भी विलासपुर के अस्पताल में भर्ती था, जिसे ईसाई बनने को बाध्य किया गया और उसे ईसाई बना लिया गया। एक वर्ष बाद जब वह अस्पताल के बाहर आया तो महन्त नयनदास के पास

आया और सतनामी समाज में फिर वापस आने के लिये प्रार्थना की, जिस पर उसे सतनामी समाज में वापस ले लिया गया। महन्त नयनदास स्वयं टिल्डा के अस्पताल में रोगी थे और उन्होंने स्वयं अस्पताल में इस प्रकार से ईसाई धर्म का प्रचार होते देखा। डा० पिल्ले (सागर) ने कहा कि एक अच्छे डाक्टर का कर्तव्य है कि वह अस्पताल के रोगी के समक्ष ईसा को रखे। रेवेरेन्ड रमन (सागर) ने भी कहा कि बीमारी की अवस्था में रोगी सर्वाधिक ग्रहण करने की मानसिक दशा में होता है। मिस बिजनौर (सागर) ने कहा कि एक ईसाई डाक्टर का कर्तव्य है कि वह न केवल रोगी को शारीरिक रोग से निरोग करे प्रत्युत वह उसके सम्मुख ईसा को भी रखे।

अब ईसाई अनाथालयों को लीजिये। वे तो निसंदेह ईसाईयों की जनसंख्या बढ़ाने के लिये ही खोले गये हैं। अकाल, बाढ़, भूकम्प तथा इसी प्रकार के अन्य प्रकृतिजन्य आपत्तियों के अवसर पर अनाथों को जमा कर ईसाई समाज में मिला लिया गया। कोई आश्चर्य नहीं यदि ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की सबसे बड़ी संख्या ऐसी पिछड़ी जातियों में से है, जिनका निवास प्रायः मिशन के स्कूलों अथवा अस्पतालों के निकट होता है। बहुत से धर्म-परिवर्तन आर्थिक सेवाओं तथा अन्य भौतिक लाभों की आशा से हुए हैं।

धर्म परिवर्तन के लिये काम में लाये जाने वाले प्रत्येक निन्दनीय उपायों में से कर्जा देना भी एक है जो कैथोलिक मिशन काम में लाते हैं। हमारे जांच संबंधी दौरे में यह शिकायत रामगढ़ सरगुजा जिले में पायी गयी कि ऋण लेने वाला व्यक्ति अपनी चोटी कटा ले इस शर्त पर रोमन कैथोलिक मिशन कर्जा देता है। यदि यह शर्त उसे स्वीकार नहीं है तो उसे सूद समेत ऋण चुकता करना होगा। व्यवहार राजेन्द्र सिंह (जबलपुर) मालगुजारी गांव, जि० मांडला के एक जागीरदार थे, जहां बहुत से गोंड रहते थे। वे महाकौशल के "हरिजन सेवक सघ" के सभापति और वनवासी सेवा मंडल, मांडला के उपसभापति भी रहे हैं। उनका दावा है कि इस प्रकार का ऋण देना धर्म-परिवर्तन के साधनों में से एक है। धर्म-देव त्रिपाठी (रायगढ़) हिसामुद्दीन सिद्दी की, (रायगढ़), विद्याधर लूदेग (रायगढ़) घूनू उरांव (रायगढ़), छुटिया उरांव (रायगढ़) और अन्य लोगों ने भी ऋण देने के सम्बन्ध में बताया कि यह धर्म-परिवर्तन का ही एक उपाय है।

कैथोलिक मिशन द्वारा इस प्रकार ऋण का प्रलोभन देने की पुष्टि प्रोफेसर आइ० वी० जौहरी, एम० ए०, बी० डी०, इन्दौर की लिखी पुस्तिका "क्रिस्टी मण्डली का इतिहास" के द्वारा भी हो जाती है:—

"रोमन कैथोलिक मिश्नरी गांव के कृषकों को कुछ रुपये उधार देने लगे और यह नियम ठहराया कि वे कृषक यदि रोमन कैथोलिक रहें तो उनसे उधार जो दिया गया है सो वापिस लिया न जायगा। परिणाम यह हुआ कि अन्य मिशन के बहुत से लोग रोमन कैथोलिक हो गये।"

छोटा नागपुर का उल्लेख करते हुए रेवेरेन्ड पिकेट लिखते हैं:—

"रोमन कैथोलिक मिशन सहकारी समितियों द्वारा द्वारा आर्थिक सहायता के प्रलोभन, ऋण, नौकरी, स्कूल में निःशुल्क शिक्षा और मुकद्दमे में धन की सहायता आदि के द्वारा प्रोटेस्टैन्ट वर्ग के लोगों में से अपने वर्ग में मिलाने की प्रबल चेष्टा कर रहे हैं।"

इन बातों का रहस्य तब खुला जब लेफ्टीनेन्ट कर्नल ए० एस० मीक ने, जो राँची में पूर्वी राज्यों में गवर्नर जेनरल के एजेन्ट थे, जांच प्रारम्भ की। उनकी रिपोर्ट का उल्लेख एक पत्र में मिलता है, जो उन्होंने भारत सरकार के विदेशी राजनीतिक विभाग के मन्त्री के पास पूर्वी राज्यों में ईसाई मिशन के कार्य के विषय में भेजा था।

उदयपुर राज्य में मिश्नरियों के प्रवेश पर रोक लगी हुई थी। उस समय वहां के राजा नाबालिग थे और राज्य का प्रबन्ध राजनीतिक विभाग द्वारा ही होता था। जून १९३५ में कर्नल मीक के पास जब यह रिपोर्ट पहुंची कि प्रायः ६००० छे हजार व्यक्तियों ने बप्तिस्मा के लिये याचना की है, तब उन्होंनें राँची के बिशप से भेंट की और उनसे जानना चाहा कि क्या उन लोगों को ऋण आदि का प्रलोभन तो नहीं दिया गया है। इस पर बिशप ने उत्तर दिया कि जिन लोगों को रुपयों की आवश्यकता होती है, उन लोगों को मिशन

ऋण देता है। ऐसा सुन कर दूसरे लोगों को ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन मिल जाता है। इस पर कर्नल मर्फी द्वारा एक वाकायदा जांच करायी गयी। कर्नल मर्फी ने इस सम्बन्ध में उदयपुर राज्य के १५ गांवों का दौरा किया और उन्हें पता चला कि उदयपुर राज्य में एक दम से ईसाई बनने की बात निरी झूठी है। यदि लोग ईसाई बनने को उद्यत होते हैं तो केवल इसलिये कि ईसाई बनने पर उन्हें मिशन से रुपया उधार मिल जायेगा। उन्हें उक्त दौरे में यह भी पता चला कि समस्त राज्य में यह समाचार फैलाया जा चुका है कि तपकारा मिशन केन्द्र से, बिना किसी जमानत के केवल हैन्ड नोट लिख देने मात्र से, ऋण मिल जाता है। इसमें केवल एक शर्त होती है कि ऋण लेने वाले को अपनी चोटी कटा लेनी होती है। कुछ लोग जिन्हें ऋण मिला हुआ था नाबालिग थे। इस बात का भी पता चला कि जिस परिवार में से एक भी व्यक्ति कर्ज ले लेता था, उसके परिवार के सारे व्यक्तियों के नाम रजिस्टर में दर्ज कर लिये जाते थे कि ये ईसाई धर्म में दीक्षित हो चुके हैं। जो रकम ऋण में दी जाती थी, उस पर १० प्रतिशत के हिसाब से व्याज लिया जाता था। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि ऋण की रकम में से एक वर्ष का व्याज पेशगी काट लिया जाता था। जब लोगों से पूछा गया तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि मिशन वालों के पास वे इसी लिये जाते हैं कि उन्हें रुपया पैसा मिले, और सब ने एक स्वर से कहा कि बिना रुपया पैसा के प्रलोभन के वे कभी भी ईसाई बनने के लिये तैयार नहीं थे।

उक्त जांच के फल स्वरूप कर्नल मीक ने ईसाई मिशनरियों की गति-विधियों पर कड़ी पाबन्दी लगा दी और उनके इस कार्य का भारत सरकार ने समर्थन भी किया।

इन पाबन्दियों के होते हुए भा सरकार के पास ऐसी सूचना पहुंचती रही कि नवयुवकों को स्कूलों में शिक्षा देने के बहानें मिशन वाले ईसाई बनाने की चेष्टा करते रहे हैं। इसी प्रकार की परिस्थिति रायगढ़ राज्य में उपस्थित हुई, जब डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, डी० लिट० इस राज्य के दीवान थे। १९३६ में रांची के बिशप ने उनसे प्रार्थना की कि हमें एक गिरजाघर निर्माण करने के लिये उस राज्य में कोई स्थान दीजिये, क्योंकि वहां ४००० ईसाई रहते हैं और उनके आध्यात्मिक कल्याण के लिये हम उत्तरदायी हैं। डा० मिश्र ने जब वहां की परिस्थिति की जांच करवायी तो उन्हें पता चला कि रायगढ़ राज्य में रोमन कैथोलिक मिशन वालों ने कर्ज देने का प्रबन्ध कर रखा था। कर्ज लेने वालों के आगे शर्त यह रखी गयी थी कि उन्हें अपनी चोटी कटवानी पड़ेगी। मिशन वालों के रजिस्टर के निरीक्षण करने पर पता चला कि रजिस्टर पर ना केवल परिवार के मुखिया का ही, जिसने ऋण लिया है, नाम लिखा जाता था वरन् उसके परिवार के सभी सदस्यों के नाम ऋण लेने वालों में लिखे जाते थे। जब डा० मिश्र ने राँची के बिशप को इस बात की रिपोर्ट की कि रायगढ़ राज्य में एक भी ईसाई नहीं हैं तो उनको उत्तर मिला है उनके रजिस्टर में कर्ज लेने वालों के नाम ईसाई के रूप में लिखे हुए हैं। यही कारण था कि रायगढ़ राज्य में 'एन्टी कन्वर्शन एक्ट' (धर्म परिवर्तन-निरोध कानून) पास किया गया।

हमारे सामने ऐसे अनेक उरांव गवाह पेश हुए हैं जिन्होंने यह सिद्ध किया कि धर्म-परिवर्तन के लिए ही रुपया कर्ज दिया जाता है। उन्होंने वे रसीदें भी प्रस्तुत कीं जो उनको कर्जे की अदायगी पर तपकारा केन्द्र के मिशन अधिकारियों से प्राप्त हुई थीं।

अन्य प्रलोभन

हमारे सामने बहुत सी गवाहियां गुजरीं जिनसे यह प्रकट होता है कि धर्म-परिवर्तन के समय लोगों को नमक हल-बैल और जमा हुआ दूध इत्यादि के उपहारों का प्रलोभन भी दिया जाता है।

प्रचारकों की नियुक्ति

जब जांच के लिये दौरा किया उस अवसर पर हमारे ध्यान में यह बात लायी गयी कि प्रचारकों के रूप में नियुक्ति के लिये ईसाई धर्म में नव-दीक्षित ईसाइयों को लिया जाता है। अनेक प्रलोभनों में से यह भी एक प्रलोभन है। ऐसे प्रचारक को ४० रु० मासिक वेतन

दिया जाता है। सरगुजा जिले में ६०) रु० से ७०) रु० मासिक वेतन पर प्रचारक नियुक्त हैं। श्री गुणवन्त तामड़े (अमरावती) ने जो महार जाति में से हैं, अपने बयान में कहा कि जो लोग २०) रु० भी नहीं कमा सकते, उनको प्रचारक बनाने पर १००) रु० तक मासिक वेतन मिल जाता है। रेवेरेन्ड ग्रव (अमरावती) ने स्वीकार किया कि उनके अधीन १२ प्रचारक कार्य करते हैं और उनको ६०) रु० से ९०) रु० तक मासिक वेतन मिलता है। सोनाबाजी (यवतमाल) महार जाति से ईसाई धर्म में दीक्षित हुआ और उसे एक ईसाई प्रचारक नियुक्त कर लिया गया और इस रूप में उसे ४५) रु० मासिक मिलने लगा है। साइलस जिगरे (यवतमाल) एक अन्य ईसाई प्रचारक है. उसको ६०) रु० मासिक वेतन मिलता है और वह १०० व्यक्तियों को ईसाई बना चुका है। पैस्टर जे० सी० नाथर यवतमाल) को जो ऊमरी के गिरजाघर से सम्बन्धित था, ९८) रु० मासिक वेतन मिलता था। वह उमरी के एक अस्पताल में एक प्रचारक है और वहां उसने १५ व्यक्तियों को ईसाई वनाया है। श्री मोजेज़ डेविड (यवतलाम) १५७) रु० मासिक वेतन प्राप्त करते हैं। १९४७ से लेकर वे २०० व्यक्तियों को ईसाई वना चुके हैं। श्री लक्ष्मण भटकर (बुलडाना) एक एम० पी० हैं और महार जाति के हैं। वह ३५ वर्ष से समाज सेवा का कार्य करते आ रहे हैं। और आजकल चोखमेला में एक छात्रावास चला रहे हैं। १९३८ से लेकर १९४२ तक प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य भी रह चुके हैं। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर कहा है कि बरार में जो ईसाई हुये हैं, वे शत-प्रतिशत हरिजन जाति-में से हुये हैं। जो हरिजन गरीब और अशिक्षित हैं उनको यदि एक प्रचारक अथवा एक अध्यापक के पद का लालच दे दिया जाता है तो वे ईसाई हो जाते हैं। हीरालाल पगारे (बुलडाना) एक पैस्टर (पादरी) हैं, उन्हें ८५) रु० वेतन मिलता है। इसी प्रकार रेवेरेन्ड गोफने (बुलडाना) को ६०) रु० और लूथर मनमोथे को ८१) रु० मासिक बेतन मिलता है। इसी तरह तुलाराम (बिलासपुर) को ८२) रु० प्रतिमास के हिसाब से वेतन मिलता है। उसने यह भी बयान दिया कि ६ मील के घेरे मे ४ प्रचारक कार्य करते हैं।

गांव के अधिकारियों के प्रभाव का उपयोग

ईश्वरी प्रसाद कोतवाल (मांडला) एक सरकारी ग्रामीण अधिकारी हैं। उन से रोमन कैथोलिक चर्च के फादर ने कहा कि वे गांव वालों में पैम्फलेट वितरण किया करें और गांव वालों को प्रति रविवार को गिरजाघर लाया करें। परन्तु गांव वाले उनके कहने पर गिरजाघर में उपस्थित होने को राजी न हुए। इस पर कैथोलिक फादर उक्त देहाती अफसर पर रुष्ट हो गया। भगवान सिंह (मांडला) डिंडोरी जनपद सभा के एक सदस्य हैं। उन्होंने कहा कि रोमन कैथोलिक मिशन वालों के गांव के मुखिया को गांठ लिया और उसके प्रभाव से और लोगों को ईसाई वना लिया। गंजू राम उरांव (रायगढ़) मुदीकेला के पटेल हैं। उनके पास बहुत से ईसाई पहुँचे और उनसे कहा कि उनको पादरी साहेब ने उनके पास भेजा है और आदेश दिया है कि वे गाँव वालों की एक सभा वुलायें और उनको ईसाई वनने के लिए प्रेरित करें। इसी प्रकार का दूसरा बयान श्री काशी राम मिश्र (रायगढ़) ने भी दिया है। वह प्रान्तीय विधान सभा के एक भूतपूर्व सदस्य हैं और उदयपुर जन-पद सभा के अध्यक्ष हैं। उपरोक्त गवाहियों से ऐसा प्रगट होता है कि मिशन वाले प्रायः इस प्रकार के आदेश जारी करते रहे हैं और लोगों को ईसाई बनाने के लिए इस प्रकार के ढंग अपनाते रहे हैं। 'मिशन्स इन मिड इण्डिया' से हिन्दी संस्करण में पृष्ठ १५१–५३ पर निम्न प्रकार के आदेश का उल्ले है :—

"यहां पर जो ईसाई पुलिस का काम करते हैं या जंगल अफसर हैं या स्कूलों में पाठक का काम करते हैं, अगर तीन दिन के लिये इन लोगों के लिए एक सभा लगाई जाये और अन्य धर्मियो के धर्मान्तर का बोझा उनके कन्धे पर रखा जाय तो बड़ी अच्छी वात होगी।"

ईसाइयों ने अब अपने प्रचार में भजन-कीर्तन की प्रथा भी चालू कर दी है और इन भजनों को 'ईसा भजन' कहते हैं तथा बाइबिल को 'ईसा भागवत' कहते हैं। ईशावास्योपनिषद्' में 'ईशा वास्यमिदं सर्वं' यह वाक्य आता है। इसकी व्याख्या करते हुए एक ईसाई प्रचारक ने

कहा कि इस वाक्य का अर्थ यह है कि समस्त जगत् ईसाई हो रहा है। इसी प्रकार एक ईसाई प्रचारक बाजार में प्रचार कर रहा था और कह रहा था कि मैं आप लोगों को ईसा भागवत सुना रहा हूं। इस अवसर पर इसने राम और कृष्ण के जीवन पर भी बहुत भद्दे आक्षेप किये मुकन्द चतले एडवोकेट (विलासपुर) तथा जटाशंकर शर्मा (रायपुर) ने अपने बयान में कहा कि महासमन्द में डा० सैमुएल ने अपने प्रचार में कहा था कि मुक्ति केवल ईसा के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। राम जिसकी पत्नी अपहृत कर ली गयी थी वह क्या मुक्ति प्रदान कर सकता है।

तुलसीदास की रामायण में गिरिजापूजन का प्रसंग आया है। ईसाइयों ने लोगों के समक्ष इसकी व्याख्या गिरजाघर अर्थात् चर्च के रूप में की। हरिराम जी ने, जिन्होंने रायपुर में गवाही दी थी, अपने बयान में कहा कि तिलड़ा के अस्पताल में एक प्रचारक रोगियों से कह रहा था कि राम, कृष्ण, शंकर और विश्वामित्र इत्यादि हिन्दुओं के देवता ईसा के जन्म पर उनके दर्शनों के लिये गये थे। 'गुरु परीक्षा' 'राम परीक्षा' 'चन्द्र लीला' और 'सच्चा मजहब कौन सा है' ये ईसाइयों के प्रचार के पर्चे हैं। उनमें न केवल राम पर वरन् ईस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद पर भी घातक आक्षेप किये गये हैं। 'गुरु परीक्षा' में यह लिखा है:—

"राम...कृष्ण मुक्तिदाता नहीं हो सकते, क्यों कि सब के सब.. बुराइयों के वश में लिप्त थे।" (पृष्ठ ४)

वह (कृष्ण) चोर था। उसने कंस के निरपराध धोबी का घात किया। ऐसे देवताओं पर आसरा रखना बड़ी मूर्खता है।" (पृष्ठ ५)

"राम...पापी था...आप मर गया और फिर नहीं जी उठा...(पृष्ठ ३४)

इसी प्रकार ईसाइयों के प्रचार की सच्चा मजहब कौनसा है' नामक पुस्तक में हजरत मुहम्मद के बारे में निम्न शब्दों में उल्लेख है:—

"मुहम्मद...दूसरे आदमियों की तरह गुनहगार पैदा हुआ।" (पृष्ठ ९)

"मुहम्मद की छः (६ औरतें थीं......." (पृष्ठ १०)

'वह आदमी जो मस्ती, गुस्सा और कठोरता से भरा हुआ था।" (पृष्ठ ११)

"वह मर गया, गाड़ा गया और उसका बदन कब्र में सड़ गया।".......(पृष्ठ १२)

क्या कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति यह कह सकता है कि भारत में बहुसंख्यक जाति के धर्म पर जो भद्दे आक्षेप किये जाते हैं, वे ईसाई धर्म का अंग है अथवा उनसे सार्वजनिक अनुशासन अथवा नैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है?

हम जानते हैं कि मिशन के अधिकारियों ने ऐसे आक्षेपों को अस्वीकार किया है और सरकार को विश्वास दिलाया है कि ऐसी बातें केवल कुछ एक बिगड़े दिमाग के धर्मान्ध प्रचारकों के द्वारा की गयी हैं। यदि ऐसे उदाहरण एक्का-दुक्का अथवा थोड़े होते तो हम उनकी यह बात मान लेते, परन्तु हमारे सामने तो इतनी सारी मौखिक और लिखित गवाहियां हैं, जिनसे स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म और उसके देवी-देवताओं पर जो आक्षेप किये जाते हैं, वे ईसाइयत के प्रचार के एक अभिन्न अंग बन गये हैं। ऐसा प्रचार जानबूझ कर राज्य के सभी भागों में ईसाई प्रचारकों द्वारा किया जाता है। इस पर कुछ हिन्दू संस्थाओं में इसके प्रति रोष उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस बात को प्रगट करने में हमारा उद्देश्य यही है कि एक हिन्दू धर्म-प्रधान देश में इस प्रकार के भद्दे प्रचार से ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे राज्य की शान्ति और अनुशासन के भंग होने का भय रहता है। हमें आश्चर्य है कि राज्य के बहुत से हिस्सों में बिगड़े हुए दिमाग वाले, असभ्य और अशिक्षित प्रचारकों के इतना व्यापक प्रचार होते हुए भी हिन्दुओं द्वारा शांति भंग करने के बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। संभव है इसका कारण हमारे ग्रामीण भाइयों की स्वाभाविक सहनशीलता का भाव और अधिकारियों की सतर्कता हो। परन्तु उसमें कोई संशय नहीं कि इस प्रकार के प्रचार से शांति भंग होने का भय बना रहता है और यदि कहीं शांति भंग हो तो उसका उत्तरदायित्व उन पर है जो दूसरे लोगों के धर्म पर आक्षेप करते हैं।

सामूहिक धर्म-परिवर्तन

हमारे सामने जितनी गवाहियाँ गुजरीं, उनसे स्पष्ट होता है कि बहुत से लोग जो अपने धर्म का परित्याग करते हैं और ईसाई बनते हैं, वास्तविक रूप में ईसाई नहीं बनते। यदि धर्म-परिवर्तन एक व्यक्तिगत वस्तु है, तो धर्म-परिवर्तन से पहले उसका गूढ़ और विचारपूर्ण अध्ययन आवश्यक हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत हमें विदित हुआ है कि अशिक्षित आदिवासियों के दल के दल, उनके परिवार तथा बच्चे, केवल उनकी चोटी काट कर, ईसाई बना लिये जाते हैं। उनमें से बहुत तो अपने इस नये धर्म का क, ख, ग, भी नहीं जानते। उदाहरण-स्वरूप बेनीमाधव (बिलासपुर), जो एक मालगुजार का लड़का था, यह भी न बता सका कि बाइबिल किन वाक्यों से प्रारम्भ होती है और किस प्रकार समाप्त होती है। वह ईसाई मत सम्बन्धी ईश्वर की प्रार्थना से भी अनभिज्ञ पाया गया। सरकार ने हमें विधान बनने के बाद सरगुजा जिले में ईसाई बने लोगों की सूची दी है। उससे पता चलता है कि किस प्रकार ४००० उरांव दो वर्ष के भीतर ईसाई बनाये गये हैं। इस सूची में ६० वर्ष से लेकर १ वर्ष की आयु तक के लोग सम्मिलित हैं, जो ईसाई धर्म में दीक्षित हुए दिखाये गये हैं। 'बहुत से ईसाई लोग तो केवल नाम मात्र के ईसाई हैं, उनके रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास सब हिन्दुओं जैसे हैं। इस का मुख्य कारण यह है कि उनके धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य धार्मिक न होकर सामाजिक और आर्थिक हैं।...'' ''अब तक केवल वे बलाही ही ईसाई आचार का पालन करते आ रहे हैं जो ईसाई स्कूलों में बहुत समय तक शिक्षित किये गये हैं अथवा जो ईसाई मिशनरी संस्थाओं की आर्थिक दासता में फंसे हुए हैं। यह विश्वास योग्य बात नहीं है कि उस लोगों ने, ईसाई होने से पहले, ईसाई धर्म की शिक्षा पायी हो या बप्तिस्मा के पूर्व उन्हें परीक्षा के तौर पर कुछ समय दिया हो। उस क्षेत्र के प्रचारकों में से अधिकांश, जिनसे हमने भेंट की, स्वयं अपने धर्म के ज्ञान से वंचित है। वे लोग वेतनभोगी प्रचारक मात्र हैं। हमें विश्वसनीय सूचना मिली है कि मिशनरी संस्थायें बप्तिस्मा का दैनिक विवरण रखती हैं। अतएव इस में क्या कठिनाई थी कि इस प्रकार का विवरण हमें दिखा दिया जाता और उससे पता चलता कि अमुक अमुक व्यक्ति को कुछ समय ईसाई धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ही बप्तिस्मा दिया जाता है। अतएव सिद्ध है कि केवल असली सत्य के प्रगट हो जाने के भय से ही रोमन कैथोलिक मिशन की संस्थाओं ने इस प्रकार के प्रमाण नहीं प्रस्तुत किये। दूसरी ओर हमारे सामने सरगुजा जिले के उन ४००० से अधिक लोगों की सूची रखी गयी जो ईसाई बनाये गये और जिन में सभी आयु के लोग तथा परिवार के परिवार सम्मिलित हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आम तौर पर समुदाय के समुदाय ही ईसाई बनाये गये हैं। केवल अपवाद स्वरूप बहुत थोड़े ऐसे उदाहरण हैं जहां व्यक्तिगत रूप से धर्म-परिवर्तन किया गया है। हम लोगों के सामने व्यक्तिगत धर्म-परिवर्तन के जो मामले आये वे ग्राम के उन अगुओं के थे, जिसके धर्म-परिवर्तन के पश्चात् ही साधारणतया गांव के गांव सामूहिक रूप से ईसाई बन गये थे।

रेवेरेन्ड मकबूल मसीह (बिलासपुर) ने स्वीकार किया कि १०० धर्म-परिवर्तन में से, जो उनके द्वारा सम्पन्न हुए हैं, आधे पुनः सतनामी समाज में वापस लौट गये हैं। बरार (विदर्भ) के गवाहों ने भी इसी प्रकार की बातें स्वीकार कीं। मंगल भाई एवेन्जिलिस्ट (अमरावती) ने २०० व्यक्तियों का धर्मान्तर किया था, किन्तु उनमें केवल ५० ही ईसाई बने रहे। नज़रीन चर्च की रिपोर्ट में यह लिखा हुआ है कि अंजनी में एक चर्च है, परन्तु कोई गिरजा घर में जाने वाला नहीं है, क्योंकि सब फिर से हिन्दू धर्म में चले गये हैं। उसमें यह भी लिखा गया है कि पिछले साल इंडियन डिस्ट्रिक्ट असेम्बली में जो आंकड़े दिये गये हैं उनमें सदस्यों की संख्या में कमी दिखायी गयी है। इस प्रकार यह निस्सन्देह बात है कि पिछड़े हुए भागों में तथा परिगणित क्षेत्रों में अशिक्षित आदिवासी तथा हरिजन लोग सामूहिक रूप से ईसाई बनाये जा रहे हैं। वे ईसाईयत के प्रति प्रेम के लिये नहीं वरन् भौतिक प्रलोभनों तथा मिशनरियों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से दिये नाना प्रकार के लोभ लालच के

वशीभूत होकर ईसाई धर्म ग्रहण कर रहे हैं । इस सामूहिक धर्म-परिवर्तन का नंगा रूप रायगढ़, धर्मजयगढ़ और सरगुजा के क्षेत्रों में देखा जा सकता है । चूंकि अधिकतर धर्म-परिवर्तन आदिवासियों, सतनामियों और हरिजनों में से होता है अतः यह भी दिखाने का प्रयत्न किया जाता है कि ब्राह्मण भी ईसाई बने हैं । धरनी में एक व्यक्ति ने अपने को ब्राह्मण से ईसाई बना बताया और कहा कि मैं रामनारायण दूबे (वा मिश्र) का पुत्र हूँ । किन्तु जिरह करने पर उसे प्रगट करना पड़ा कि वह एक वैरागी है और अब एक वेतनभोगी ईसाई प्रचारक है ।

राष्ट्र-विरोधी भावनाओं का प्रचार

मिशनरियों के सम्बन्ध में एक अत्यन्त गंभीर आरोप यह है कि उनके द्वारा राष्ट्र-विरोधी भावनाओं का प्रचार होता है, यद्यपि ईसाई मिशनरी इसका घोर विरोध करते हैं । हमारे सामने इस सम्बन्ध में जो कुछ गवाहियां गुजरी वह विचारणीय हैं । गांधी जी ने मिशनरियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि भारत में अराष्ट्रीयता और पश्चिमी सभ्यता के फैलाव में ईसाइयत का काफी हाथ है । अराष्ट्रीय भावना के प्रचार के सम्बन्ध में सबसे बड़ा उदाहरण हमें "हेरिटेज आफ ऐन इन्डियन क्रिश्चियन" नामक पुस्तक से, जो एक भारतीय की लिखी हुई है, मिलता है । उसमें लेखक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि उसती सभ्यता का का स्रोत यूरोप है । किस प्रकार से लोगों के हृदय में राष्ट्र-विरोधी भावनायें उत्पन्न की जाती है, यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा ।

जब हम जांच के दौरे में जशपुर क्षेत्र में थे तो वहां हमारे सामने यह आम शिकायत सुनी गयी कि ईसाई प्रचारक ग्रामवासियों को यह कहते फिरते हैं कि "जब से जवाहर राज्य स्थापित हुआ है, सुख का नाम निशान नहीं है, लेकिन हम विश्वास दिलाते हैं कि जवाहर राज्य अब समाप्त होने वाला है और ईसाई राज्य आने को है ।" इस बात को वहां उस समय उपस्थित ईसाईयों ने मानने से इन्कार कर दिया, फिर भी इसकी पुष्टि होशंगाबाद जिले के खिरकिया से प्राप्त एक लिखित वक्तव्य द्वारा हो जाती है जिसमें कहा गया है कि 'जय हिन्द' से मिशनरियों को कष्ट पहुंचता था और वे इसके स्थान पर 'जय ईशु' रखना पसन्द करते थे । 'किंग आफ किंग्स' नामक फिल्म दिखला कर लोगों में ईसा के अद्वितीय राज्य की घोषणा की जाती है । इस फिल्म को देखने का अवसर हमें बुलडाना में मिला । जबलपुर के एक स्कूल में अभिनीत किये जाने वाले एक नाटक में राष्ट्रीय ध्वज के ऊपर ईसाई ध्वज की गुरुता दिखायी गयी ।

'घर बन्धु' नामक पत्र के जून, १९५२ के अंक में पृष्ठ १२ पर प्रकाशित एक लेख "निराला राज्य और उसके कर्मचारी" में निम्नलिखित प्रकाशित हुआ था :—

"आज हमारे सामने सरगुजा का विस्तृत राज्य है जिसे मसीह के साम्राज्य में मिलना है ।" 'घरबन्धु' नामक पत्र के ८ सितम्बर १९५३ के अंक में निम्नलिखित प्रकाशित हुआ था:—

'गत ७ महीने के अन्दर बपतिस्मा पाये हुओं की संख्या १९५३ जुलाई तक १५७० संख्या से ज्यादा ही है । प्रान्तीय मुख्य मन्त्री मान्यवर आर० एस० शुकला के कुछ विरोधी आरोपन होते हुए भी प्रति माह धर्म की भूखी प्यासी जनता पवित्र बपतिस्मा के जरिये नया जन्म पाके प्रभु की मंडली में ....."

जब एक ग्रामीण को ईसाई बना लिया जाता है तब उनके मस्तिष्क को उसके समाज, देश और राज्य के विमुख बना देना सरल हो जाता है । गुणवन्त तयाडे (अमरावती) ने कहा कि ईसाई धर्म मे दीक्षित व्यक्ति अपनी वेश-भूषा बदल लेते हैं और अपने को यूरोपियन समझने लग जाते हैं। डा० पिकेट ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है कि "यूरोपियन नाम, यूरोपियन ढंग के रहन-सहन तथा वेश-भूषा आदि से ईसाई बने लोग अपने उन देशवासियों से घृणा करने लग जाते हैं जो भारतीय परम्परा से अनुराग रखते हैं" (क्रिश्चियन मास मूवमेन्ट इन इन्डिया, पृष्ठ ३३२) ।

——

भाग ४

अध्याय १

जांच से प्राप्त निर्णय

हमारे सम्मुख जो भी सामग्री आयी उसके आधार पर हम इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि:—

जब से भारतीय संविधान लागू हुआ है, भारत में काम करने वाली मिश्नरी संस्थाओं में अमेरिकन लोगों की संख्या पर्याप्त बढ़ी है। यह संख्या-वृद्धि निश्चय ही 'इन्टरनेशनल मिश्नरी कौन्सिल" की उस नीति का परिणाम है जिसके अनुसार हाल में स्वतन्त्र हुए देशों में, जहां वैधानिक रूप से धार्मिक स्वतन्त्रता की सुविधा हो, ईसाई धर्म के प्रचार के लिये प्रेस, फिल्म, रेडियो और टेलिविजन आदि से सुसज्जित ईसाई प्रचारकों के दल के दल भेजने की योजना बनायी गयी थी (मिश्नरी आब्लिगेशन आफ दी चर्च, पृष्ठ २७ और ३१)।

विदेशों से अपरिमित धनराशि भारत में आ रही है और उसका व्यय मिश्नरियों द्वारा शिक्षा-प्रचार, चिकित्सा तथा ईसाइयत के प्रचार के लिये हो रहा है। इसी धन के बल पर लूथरन और अन्य धर्मान्तर करने वाली ईसाई संस्थाओं ने सरगुजा में ४००० व्यक्तियों को ईसाई बना लिया।

अधिकतर धर्म-परिवर्तन अनुचित प्रभाव द्वारा तथा मिथ्या प्रचार द्वारा किये गये हैं। दूसरे शब्दों में लोगों के अन्तःकरण की प्रेरणा से नहीं वरन् अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा ही ईसाई बनाया गया है। छोटे बच्चों को प्राथमिक अथवा माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा देने के बहाने तथा उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी अन्य सुविधायें जैसे बिना मूल्य पुस्तकें और बिना शुल्क पढ़ाई आदि की व्यवस्था करके उन्हें धर्म-परिवर्तन की प्रेरणा की गयी। रुपया उधार देना धर्म-परिवर्तन के लिए काम में लाये जाने वाले अनेकानेक उपायों में से एक साधारण उपाय है। इस प्रकार के ऋण देने की व्यवस्था रोमन कैथोलिक मिशन में विशेष रूप से पायी गयी जो सरगुजा, रायगढ़ और मांडला आदि जंगली क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। उन स्थानों पर विशेष दबाव डालने की बात सुनी गयी जहां ईसाई बने व्यक्ति अपने परिवार के अन्य सदस्यों को भी ईसाई धर्म में दीक्षित करना चाहते थे अथवा जहां वे विवाह के लिये स्त्रियां प्राप्त करना चाहते थे।

कुछ स्थानों में मिशन धर्म के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी लगे हुए पाये गये। यद्यपि विदेशी और देशी मिश्नरियों की ओर से अधिकारियों को यह विश्वास दिलाया गया था कि वे राजनीति में भाग नहीं लेंगी, तथापि परोक्ष रूप से उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हुए पाया गया। इसके उदाहरण हमारी कमेटी के सामने लाये गये।

चूंकि धर्म-परिवर्तन होने से धर्मान्तरिक होने वाले व्यक्ति को उसके समाज से विच्छेद हो जाता है, इसलिये देश और राज्य के प्रति उसकी निष्ठा सन्दिग्ध हो जाती है।

भारत के बहुसंख्यकों के धर्म के विरुद्ध एक निन्दनीय संगठित और निश्चित प्रयोजन के साथ प्रचार किया जा रहा है, जिससे जनसाधारण की शान्ति भंग हो जाने की आशंका है।

भारत में ईसाई प्रचार ईसाइयों की उस विश्व-नीति का एक अंग है, जिस का उद्देश्य संसार में फिर से पश्चिम के प्रभुत्व की स्थापना करना है। यह प्रचार आध्यात्मिक उद्देश्य से प्रेरित नहीं प्रतीत होता। इसका स्पष्ट उद्देश्य स्थान-स्थान पर ईसाई अल्प-संख्यकों का संगठन करना और उसके द्वारा गैर-ईसाई समाजों की एकता को नष्ट करना तथा आदिवासियों के एक विशाल जन-समूह को ईसाई मत धर्मान्तरित कर राष्ट्र के लिये खतरा उपस्थित करना है।

स्कूल, अस्पताल, और अनाथालय धर्म-परिवर्तन के विशेष लक्ष्य हैं। इसका कारण यह है कि उनके क्षेत्र में अस्पताल, स्कूल, अनाथालय तथा अन्य सामाजिक सेवा-संस्थाओं की कोई समुचित सुविधा तथा व्यवस्था नहीं है।

मध्य प्रदेश सरकार ने सदा निष्पक्षता की नीति का पालन किया है और धार्मिक मामलों में उसने कभी हस्ताक्षेप नहीं किया। सरकारी कर्मचारियों द्वारा ईसाइयों के प्रति कोई अनुचित व्यवहार हुआ या उन पर कोई अत्याचार हुआ यह आरोप सिद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार

के आरोप लगाना उस पुरानी नीति का अंग है जिसके अनुसार वे स्थानीय अधिकारियों पर रोब गांठते हैं और फिर विदेशों में यह प्रचार करते हैं कि उन पर अत्याचार हो रहा है।

—— ——

अध्याय २

समिति की प्रमाण सहित सिफारिशें

चर्च अब ईसा की संस्था नहीं, वरन एक राष्ट्रीय संस्था बन गया है अर्थात् अब वह उन राजनीतिज्ञों का साधन मात्र ही रह गया है जो किसी देश की राजनीति का संचालन करते हैं। यही भावना रेवेरेन्ड इमानुएल द्वारा इन शब्दों में प्रगट की गयी है :—"चर्च, आर्चबिशप लोग ईसा के धर्म के संरक्षक नहीं वरन् राजनीतिज्ञों के पीछे चलने वाले बन गये हैं।"

गांधी जी ने स्वयं लोगों को ईसाई बनाये जाने पर घोर विरोध प्रगट किया था। उन्होंने कहा था कि यदि ईसा एक बार फिर इस धरती पर आते तो उन्हें ईसाइयत के नाम पर किये जाने वाले अनेक कामों से लज्जित होना पड़ता।

सर एन्ड्रू फ्रेज़र बंगाल के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर थे। उन्होंने सन् १९१२ में एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम "एमंग राजाज एण्ड रैयत्स" है। उसमें उन्होंने लिखा था कि भारत के लिये यदि कोई आशा है तो इस बात में है कि यहां ईसाई सभ्यता को प्रश्रय दिया जाय। उनकी दृष्टि में भारत को ऐसी सभ्यता प्रदान करना जो ईसाइयत से रहित हो उसे उस चीज से वंचित रखना है जो हमारी सभ्यता की श्रेष्ठतम वस्तु है और जिसके द्वारा ही सभ्यता स्वस्थ और पवित्र रह सकती है।

गांधी जी द्वारा स्वतन्त्रता आंदोलन आरम्भ करने के पश्चात् मुसलमानों ने अपने लिये एक अलग स्वतन्त्र राज्य की मांग रखकर इस आंदोलन को एक धार्मिक रूप दे दिया। मिश्नरियां भी हिन्दू जाति की एकता को छिन्न-भिन्न करने की जी तोड़ कोशिश कर रही थी, जिसका परिणाम हम आगे चल कर देख सकेंगे।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट १९२९ में छपी। उसने आदिवासियों के क्षेत्रों को राज्यशासन से बहिष्कृत क्षेत्र के रूप में रखने की सिफारिश की। इस में उनका उद्देश्य यह था कि ऐसा करने से उनके हितों की विशेष रक्षा होगी और वे दूसरे लोगों की भांति शीघ्र से शीघ्र उनके स्तर तक आ जायेंगे। मिश्नरियों ने इस से अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा की और ग्रामीण तथा आदिवासियों को ईसई बनाने की योजना तैयार की। डा० बटरफील्ड एक ईसाई मिश्नरी थे। उन्होंने मिशन तथा मिशन से संबन्धित संस्थाओं के बीच अच्छे सम्पर्क स्थापित करने तथा संगठित और सरकारी ढंग से कार्य करने पर बल दिया। उन्होंने ईसाइयों को सम्बोन्धित करते हुये कहा कि भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये बहुत विस्तृत क्षेत्र है। ६००००००० छे करोड़ हरिजनों तथा प्रायः इतनी ही संख्या की पिछड़ी हुई जातियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया जा सकता है। उन्होंने सुझाव रखा कि भारतीय गांवों की समस्या को अमेरिका की जनता के समक्ष रखा जाय और उन से इसके लिये सहायता और सहानुभूति प्राप्त की जाय। उन्होंने उन शक्तियों की ओर भी संकेत किया जिनका उन्हें इस कार्य में सामना करना होगा। इस सम्बन्ध में उन्होंने इस प्रकार के अर्थ भरे शब्द कहे:—

"भारत में नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों में ईसाइयों को अन्य देशों की भांति यहां भी धर्म-निरपेक्षता, उत्कट राष्ट्रीयता और संभवतः साम्यवाद तथा भौतिक औद्योगिकवाद का सामना करना होगा।" उन्होंने उक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिये यह सुझाव दिया कि ईसाई मत को इसके लिये ईसा को एक प्रभावशाली और आक्रान्ता के रूप में उपस्थित करना होगा।....और प्रत्येक ईसाई का कर्तव्य होगा कि वह अपने व्यक्तित्व को ईसा के उत्साह से समन्वित करे।"

सन १९३०-३१ और ३२ में गोलमेज कान्फ्रेन्स की बैठकें हुई। उस अशान्ति और उत्तेजना के समय अमेरिका में एक जांच कमेटी बैठायी गयी जिस का नाम 'लेमैन्स फारेन मिशन्स इन्क्वारी" रखा गया। इसमें अमेरिका के १५ संभ्रान्त नागरिक सम्मिलित थे। डा० हार्किंग इसके

अध्यक्ष थे। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने विश्व-व्यापी चर्च और विश्व-सभ्यता में एकता का स्वप्न देखा, क्योंकि उन के मत में ईसाई धर्म कोई पश्चिम की वस्तु नहीं वरन विश्व मात्र की वस्तु है। उक्त कमेटी में यह निश्चय किया गया कि मिशन का मूल उद्देश्य ईसाई धर्म के द्वारा विश्व को विजय करना है।

सामूहिक धर्म-परिवर्तन

उक्त योजना के अनुसार संगठित रूप से ईसाई धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सामूहिक रूप से अनेक धर्म-परिवर्तन किये गये। डा० पिकेट ने २५००० डालर तो "राकफेलर फाउन्डेशन" से और १०००० डालर डा० माट से प्राप्त किये। इसी के वल पर उन्होंने विस्तृत जांच करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका नाम "क्रिश्चियन मास मूवमेन्ट इन इंडिया" है। डा० माट ने इस रिपोर्ट की भूमिका लिखी है। उसमें गांधी जी के साथ सामूहिक धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में उनकी जो बात चीत हुई थी, उसका भी उल्लेख है। गांधी जी ने कहा था:—

"इस प्रकार का प्रचार यदि मुसलमानों द्वारा किया जाय तो उसे में समझ सकता हूं, किन्तु ईसाई मिशन तो केवल आध्यात्मिक प्रचार करने का दावा करते हैं। यह जानकर मुझे दुःख होता है कि ईसाई संस्थायें मुसलमानों और सिखों की देखा देखी केवल अपने समाज की संख्या-वृद्धि करने में लगी हुई हैं। यह एक गर्हित कार्य है और धर्म का उपहास मात्र है।" जब भारत में ईसाई प्रचार के लिये बाहर से अन्धाधुन्ध रुपया आने लगा तो गांधी जी ने कहा :—केवल कुबेर देवता को सेवा के लिये भारत में भेज दिया गया है, परन्तु भगवान स्वयं पीछे रह गये हैं।" इस पर डा० माट ने व्यंग से कहा:—"रुपया एक संचित व्यक्तित्व है।"

हैदरावाद में १९२१ से १९३१ तक १० वर्ष में ईसाइयों की जन-संख्या में जो वृद्धि हुई वह लगभग १४२ प्रतिशत थी और १९३१ से १९४१ तक ४५ प्रतिशत थी। इसी सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि बर्मा में वहां के ईसाई करेन लोगों ने मुसलमानों की ही तरह एक अलग राज्य की स्थापना की मांग की और अपनी इस मांग को राउन्ड टेबल काफ्रेन्स में बड़े जोरदार शब्दों में रखा। उन का यह आन्दोलन स्पष्टतया मिशनरियों की प्रेरणा का फल था, जैसा कि "रिथींकिंग मिशन्स" नामक पुस्तक की निम्नलिखित टिप्पणी से ज्ञात होता है :—

'मिशनरियों ने करेन लोगों को शिक्षित किया और और बाइबिल के अनुवाद द्वारा उन्हें एक लिपिवद्ध भाषा दी। इस प्रकार करेनों में एक राष्ट्रीयता की भावना जागृत की गयी, जो आगे चल कर बर्मा के लिये घातक सिद्ध हुई। करेनों को अपने राष्ट्र से इस प्रकार विच्छिन्न करने का उत्तर-दायित्व इन मिशनरियों पर ही है। आज करेन एक संगठित दल के रूप में हैं, जिन्होंने अपने अलग करेन राष्ट्र के समर्थन के लिये अपना एक शिष्टमंडल गोलमेज कान्फ्रेन्स में भेजा था।

१९३० से १९४० के अगले दस वर्षों में ईसाइयों की जो गतिविधियां रहीं हैं उसे देखकर हम यह सोचने को विवश हुए हैं कि उनकी कार्यवाहियां सदा से भारतीय ईसाइयों को पृथक रखने की दिशा में हुई हैं। वे उन्हें अपने लिये विशेष सुविधाओं की मांग करने के लिये भी प्रोत्साहन देते रहे हैं। इस प्रकार उनकी गतिविधियां स्पष्ट रूप से राजनैतिक रही हैं।

कोई यह न सोचे कि यह बीते हुए युग का इतिहास मात्र है, जो १९४७ में भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोप हो गया। नहीं, ऐसा सोचना सच्ची परिस्थिति की ओर से अपनी आंखें बन्द कर लेना है।

सन् १९४५ में न्याययुक्त स्थायी शान्ति कमीशन ईसाई प्रचार के चतुर्मुखी कार्यक्रम पर जोर दिया जिससे कि एक विश्व व्यापी ईसाई संगठन बनाया जा सके और जिससे ईसाई शक्तियां एक प्रबल, अनुशासित और लड़ाकू अल्पसंख्यक जाति .का रूप ले लें।

इस प्रकार जो ईसाई आन्दोलन १९३० में प्रारम्भ हुआ था वह बड़े वेग से पनप रहा है। इसे जन-धन का पूरा समर्थन प्राप्त है। 'क्रिश्चियन मिशन्स इन रूरल इंडिया' नामक पुस्तक में यह सुझाव रखा गया है कि धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीयता, कम्यूनिज्म और आर्थिक औद्योगीकरण की शक्तियों को पराभूत करने के लिये भारत के ६०००० छे लाख गाँवों को ईसाई धर्म में धर्मान्तरित

करना होगा। रेवेरेन्ड मैक्लीश 'वर्ल्ड डोमिनियन प्रेस' के एक ट्रस्टी हैं, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय मिश्नरी कौन्सिल से गहरा सम्पर्क है। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि भारत के ६००००० छे लाख गांवों को १० वर्ष के भींतर ईसाई बना लिया जाय।

हठीले हिन्दू समाज से लोहा लेने के लिये मिश्नरियों के द्वारा 'हिन्दू-राष्ट्रवाद' गैर-ईसाई धर्मों के हवाई किले' आदि अनेक मुहावरे गढ़े गये। हिन्दू लोगों के इस विश्वास की खिल्ली उड़ाई गयी कि सभी धर्म यदि सच्चाई के साथ आचरित किये जायं तो परमात्मा तक पहुंचने में समर्थ है। इस विश्वास को एक अन्ध मान्यता कहा गया। हिन्दू-धर्म राष्ट्रवाद की भौतिक भावना से सर्वथा मुक्त हैं, किन्तु जब इसे ईसाई धर्म के भीषण आक्रमण का सामना करना पड़ा तो उस में भी कुछ राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। केन्टरवरी के आर्चविशप की यह घोषणा थी कि ईसाई धर्म साम्राज्यवादी धर्म है। हिन्दुओं की उदार भावना को अन्ध मान्यता वताना सहिष्णुता को सहन न करने के समान है। हिन्दुओं को इसलिये तुच्छ समझा जाता है कि वे ईसाइयों की भाँति यह नहीं मानते कि उनके अपने धर्म के अतिरिक्त किसी दूसरे धर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती। परन्तु जैसा कि रूसो ने लिखा है, इस प्रकार की धर्मान्धिता किसी धर्मान्ध राज्य में ही आदर पा सकती है। रूसो की सम्मति में ऐसे व्यक्ति को, जो यह कहता हो कि ईसाई मत के बाहर मुक्ति का कहीं अस्तित्व नहीं है, राज्य से वाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार की मिथ्या धारणा एक धर्मान्ध राज्य में ही स्थान पा सकती है, किन्तु दूसरे राज्यों के लिये यह एक भयानक बात है।

एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है मिश्नरी लोग अत्यन्त दीनता और असहायावस्था में पड़े हुए लोगों में ही धर्म का प्रचार करते है। वे लोगों की आर्थिक विपत्ति का अनुचित लाभ उठा कर उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं। एवेरेट कैटेल नामक लेखक ने लिखा है—"यदि हम किसी व्यक्ति को ईसाई धर्म की शिक्षा देना चाहें तो सर्व प्रथम हमें यह देखना चाहिये कि उसकी आवश्यकतायें क्या हो सकती हैं और तब उसे ईसा के सम्बन्ध में बतावें।"

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि सरगुजा जिले में सामूहिक धर्म-परिवर्तन करने के लिए मिश्नरियों द्वारा किस प्रकार अटूट धन पानी की तरह व्यय किया गया। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसा तब हुआ जब भारतीय संविधान में दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता के अनुसार सरगुजा क्षेत्र मिश्नरियों के प्रचार के लिए बिलकुल खुल गया। अन्तर्राष्ट्रीय मिशन कौंसिल ने १९५२ में चर्च के लिए 'मिश्नरी आब्लीगेशन' नामक की पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें मिश्नरियों के लिये कुछ आदेश दिये गये हैं। उन्हीं आदेशों के अनुसार सामूहिक रूप से लोग ईसाई बनाये गये। इस पुस्तक के २७ वें पृष्ठ पर लिखा है :—"विश्व के अधिकांश भागों में जो समस्या है वह भूख की समस्या है। इस परिस्थिति में चर्च के लिए प्रचार के अच्छे अवसर हैं.......जिन देशों ने अभी हाल में स्वतन्त्रता पायी है, उनमें से कुछ एक देशों में धर्म-प्रचार के लिए वैधानिक छूट दी गयी है.... उन देशों में प्रेस, फिल्म, रेडियो और टेलीविजन के द्वारा सामूहिक धर्म-परिवर्तन और प्रचार के नवीन क्षेत्र खुल गये हैं।"

हमारे सामने इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि ईसाई मिश्नरी पहले विज्ञापन के द्वारा, जिसमें कर्ज आदि देनें का प्रलोभन रहता है, लोगों को बुलाते हैं। जब इस प्रकार लोग उन के पास पहुँचते हैं तब दिखावे के तौर पर उनके नाम एक सूची में लिख लिये जाते हैं। पाठक निम्नलिखित आँकड़ों से कल्पना कर सकते हैं कि वह कौन सी धर्म-पिपासा हो सकती है जिसके कारण जनता सामूहिक रूप से अपना धर्म छोड़ कर ईसाई मत ग्रहण करनें को एक दम से दौड़ पड़ी।

१ फरवरी १९५२ को ६६ सदस्यों के १० परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

३ फरवरी १९५२ को १४४ सदस्यों के २८ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

५ फरवरी १९५२ को ८५ सदस्यों के १८ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

१० फरवरी १९५२ को ६५ सदस्यों के १६ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

('घरबन्धु' मई, १९५२, पृष्ठ ५) उक्त उदाहरण तो नमूने के तौर पर है। कोई भी समझदार व्यक्ति इस वात पर विस्मित हुए न रहेगा कि क्या यही आध्यात्मिक ज्ञान या धर्म के प्रचार का उचित तरीका है ?

राष्ट्रीय कार्यों से ईसाइयों की तटस्थता

राष्ट्र हित के कार्यों में हमने ईसाइयों को भाग लेते हुए नहीं पाया। 'नेशनल क्रिश्चियन कौन्सिल रिव्यू' नामक पत्रिका के अप्रेल १९५५ के अंक में, १५८ पृष्ठ पर, एक ईसाई लेखक ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है कि भारतीय ईसाई सामूहिक रूप से राष्ट्र-निर्माण-कार्यों में भाग लेने से तटस्थ रहे हैं।

संकट के समय विदेशी प्रभुत्व की आशंका

भारत के विशाल जन-समूह से पृथक कर ईसाइयों को मिश्नरियों के शासन में रखने की मनोवृत्ति से यह शंका उत्पन्न होती है कि उन का उपयोग किसी खतरे के समय विदेशी स्वार्थों के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयत्न मिश्नरियों द्वारा पहले किये जा चुके हैं, जब कि १८५७ में स्वतन्त्रता आन्दोलन के दमन के लिये उन्होंनें १०००० सशस्त्र कोलों की सेना देने को कहा। इसी प्रकार उस समय वर्मा से डा० मैसन ने भी ईसाई हुए करेनों की सेना देने की वात कही थी। अभी हाल में करेन, नागा, और अम्बायनीज लोगों की, जो ईसाई हो गये हैं, विद्रोही भावनायें भी इसी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जंगली जातियों के क्षेत्रों में मिश्नरियों की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाये। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ईसाई मिशनों की स्थापना का एक मात्र उद्देश्य इसी सामूहिक धर्म-परिवर्तन के लिये सुविधा प्रस्तुत करना है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पास कोई वाहरी क्षेत्र नहीं है, अतः इस कमी को वह अन्य देशों में अपने सैनिक अड्डे बनाकर तथा दूसरे देशों से सैनिक संधि करके पूरा करना चाहता है (पृष्ठ २२, क्रिश्चियन रिवोल्यूशन)। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन आन्दोलन के द्वारा यह यहां मनोवैज्ञानिक अड्डा या आधार तैयार करना चाहता है।

जो व्यक्ति हमारे सम्मुख आये उन्होंने अमेरिका के उद्देश्यों के प्रति गहरी आशंका प्रकट की और इस सम्बन्ध में उक्त पुस्तक के २३ वें पृष्ठ पर लिखा भी है:—'पश्चिम के देश कम्यूनिज्म का खतरा बता कर एक बहाना चाहते हैं, जिससे कि नये स्वतन्त्र हुए देशों में वे फिर से अपना प्रभुत्व जमा सकें।" अमेरिकन मिश्नरियों की गतिविधियां बहुत कुछ कम्यूनिस्ट-विरोधी विश्व-नीति से सम्बन्ध रखती हैं और लोगों की दृष्टि से ओझल हैं। मौरीशन भी अपनी रिपोर्ट 'रिलीजस लिबर्टी इन नीयर ईस्ट' (अर्थात् निकट पूर्व में धार्मिक स्वतन्त्रता) में लिखते हैं कि अनेक देशों में विदेशी मिशनों के सम्बन्ध में यह आशंका की जा रही है कि वे विदेशी राजनीतिक शक्तियों के एजेन्ट हैं। उन्होंने इन शब्दों में अपने मन्तव्य प्रगट किये हैं:—"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि पिछले वर्षो में मिशनों का उपयोग राजनीतिक स्वार्थों के लिये किया जाता रहा है।"

दुर्भाग्यवश एशिया में ईसाई मिश्नरियों का जो इतिहास है उससे पता चलता है कि उनका उद्योग राजनीतिक ढंग का ही रहा है।

भारत के चर्च स्वतन्त्र नहीं हैं

यह कहा जाता है कि भारत के चर्च स्वतन्त्र हैं। फिर भी हमने देखा है कि मिश्नरियों का अब तक भी चर्च के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है और वे उन्हें रुपये पैसे के बल पर अपने प्रभाव में रखते हैं। वे भारतीय चर्चों पर अपना अनुशासन इस आधार पर भी रखते हैं कि वे तथा भारतीय चर्च दोनों ही ईसाई होने के नाते साझीदार हैं। यद्यपि बाहर से आने वाले रुपये को दान का नाम दिया जाता है, परन्तु वास्तव में यह दान उपरोक्त साझेदारी की शर्त पर ही निर्भर है। यह स्वाभाविक है कि जो रुपया पाने वाला है वह उसके प्रति जिम्मेवार हो जिससे उसे रुपया मिलता है। अतएव भारतीय चर्च भी उन विदेशों के प्रति ऋणी और कृतज्ञ रहते हैं जिनसे उन्हें सहायता प्राप्त होती है। रेवेरेन्ड आर० सी० दास ने इस बात को जोरदार शब्दों में कहा है। यह कहना कि 'क', एक विशेष उद्देश्य के 'ख' से रुपया प्राप्त करता

है और फिर वह 'ख' का वरावर साझीदार भी है तो यह परस्पर विरोधी बात है और समझ में नहीं आ सकती ।

अमेरिकन मिशनरियों की संख्या में असाधारण वृद्धि

यदि भारत में चर्च सचमुच ही स्वतन्त्र हैं तो उनके सम्वन्ध में यह विश्वास स्थापित होना चाहिये कि वे अपना कार्य स्वयं बिना बाहरी लोगों की सहायता से चला सकते हैं । किन्तु यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाहरी मिशनरियों की संख्या में एक आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है । यह मान भी लिया जाय कि वे भारत में यहां के गरीब और दुःख से पीडित लोगों के प्रति करुणा की भावना से आये हैं, तो फिर यह समझ में नहीं आता कि वे अपनी सारी चेष्टा केवल कुछ विशेष लोगों के प्रति और वह भी केवल धर्म-परिवर्तन की ही दृष्टि से क्यों केन्द्रित कर रहे हैं । इन बातों से पता चलता है कि विदेशी मिशनरियों की यह बड़ी संख्या यहां केवल आध्यात्मिकता के उद्देश्य से ही नहीं आयी है । डा० आसीर्बाथम ने इस बात को इन शब्दों में प्रकट किया है :—यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में इतना ही हिन्दू मिशनरियों का प्रवाह चला जाय जितना कि ईसाई मिशनरियों का प्रवाह अमरीका से भारत में आया है, तब इससे पता चल सकता है कि अमेरिका में कितनी सहनशीलता या सहिष्णुता है ।

धर्म और समाज

किसी एक व्यक्ति के लिये एक धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में जाने का अर्थ यह है कि वह अपनी परम्परागत जीवन-धारा को छोड़ कर तथा जिस वातावरण में वह जन्मा और पला है उसको त्याग कर दूसरी जीवन-धारा और वातावरण में प्रवेश करे । ऐसी दशा में अपने धर्म को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे धर्म या मत में प्रवेश करता है, वह स्वयं को अपने समाज से वहिष्कृत करता है । यही कारण है कि आज तक ईसाइयत को भारत में एक विदेशी धर्म समझा जाता है, क्योंकि जो लोग ईसाई बना लिये जाते हैं उन पर विदेशी सभ्यता और संस्कृति अपना प्रभाव जमा लेती है ।

यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जिन तरीकों से लोग ईसाई बनाये जाते हैं, वे भारतीय विधान में दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता और छूट का दुरुपयोग है ।

सरगुजा जिले में सामूहिक रूप से जिस प्रकार लोगों का धर्म-परिवर्तन कराया गया है उसके सम्वन्ध में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वह धार्मिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत किया गया है । ऐसे सामूहिक धर्म-परिवर्तन की गांधी जी ने वहुत निन्दा की थी । इसे डा० स्टेंनले जोन्स ने भी बुरा माना था, क्योंकि इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन से ईसाई बने हुए लोगों में किसी प्रकार का नैतिक अथवा आध्यात्मिक परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता था । डा० निकोल ने भी ऐसे सामूहिक धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन को भारतीय चर्च के उत्थान में एक रोड़ा माना है । कई स्थानों पर जिस प्रकार मिशनरियों का आन्दोलन चल रहा है, उसे देखते हुए यह स्पष्ट विदित होता है । कि यह धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन एक राजनीतिक प्रयोजन से किया जा रहा है । यदि कोई कार्यवाही वास्तव में राजनीतिक हो किन्तु उसे धर्म के परदे के भीतर चलाया जावे, तो ऐसी गतिविधि किसी राष्ट्र की रक्षा के लिये खतरे से खाली नहीं कही जा सकती ।

हमारी सिफारिश है कि जिन मिशनरियों का प्राथमिक उद्देश्य धर्म-परिवर्तन है, उनको वापस भेज दिया जाय । विदेशी मिशनरियों का देश के अन्दर बड़ी संख्या में आना उचित नहीं है । इसको रोकना चाहिये । कई एक देशों में, जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, कुछ समय से इस सम्बन्ध में मिशनरी लोग स्वयं यह सोचने लग गए हैं कि एक न एक दिन उन्हें यहां से वापस जाना ही पड़ेगा ।

भारत में जो विदेशों से धन आता है उसके बारे भी विचार करना पड़ेगा । यदि विदेशी मिशनरियों को वापस भी भेज दिया जाय और यदि चर्च की जो सम्पत्ति है वह भारतीय चर्च के नाम हस्तान्तरित भी कर दी जाय, तब भी समस्या हल नहीं होगी, जब तक कि बाहर से आने वाले धन पर कोई नियन्त्रण अथवा शर्त न लगायी जाये ।

क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो भारतीय चर्च सदा विदेशों के इशारे ही पर चलता रहेगा।

अस्पतालों और चिकित्सालयों का दुरुपयोग

जनता के धर्म-परिवर्तन के लिये अस्पताल और चिकित्सालय एक विशेष साधन रहे हैं ! इन साधनों को धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग करने के सम्बन्ध में ईसाई लोग यह कहते हैं कि ईसा ने अपने शिष्यों को लोगों को शिक्षा देने तथा उनकी सेवा करने के लिये आदेश दिया था। परन्तु बाइबिल के वाक्यों कि इस प्रकार की व्याख्या न्याय-संगत नहीं है

बात यह है कि अस्पताल और चिकित्सालय रोगियों को ईसाइ बनाने के लिये एक प्रलोभन का काम देते हैं। डा० थिरुमल्लई (सागर) ने, जो एक ईसाई हैं, कहा कि यदि कोई ईसाई डाक्टर अस्पताल में किसी रोगी के सामने ईसा को रखता है, तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

परन्तु कानून की दृष्टि में डाक्टर और रोगी के बीच या वकील और उसके मुवक्किल के बीच या एक अध्यापक और उसके शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है वह एक ट्रस्ट और ट्रस्टी का सम्वन्व है और यदि कोई डाक्टर, वकील या अध्यापक रोगी, मुवक्किल और शिष्य पर प्रभाव या दवाव डालता है तो यह अनुचित करता है। इसलिये अस्पताल और चिकित्सालय के द्वारा ईसाई मत मत का प्रचार सर्वथा निन्दनीय है।

स्वयं गांधी जी ने भी अस्पतालों को धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग में लाने की निन्दा की थी। समाज के निर्वल और असहाय समुदाय की रक्षा करना सरकार का एक कर्तव्य है। इसलिये हम सिफारिश करते हैं कि अस्पताल, औषधालय तथा अन्य सेवा-सम्बन्धी संस्थाओं का धर्म-परिवर्तन के साधन के रूप में उपयोग कानून द्वारा बन्द कर दिया जाय।

स्कूल तथा शिक्षालय

स्कूलों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि रोमन कैथोलिक मिश्नरी गांवों में प्राथमिक विद्यालयों के द्वारा धर्म-परिवर्तन का कार्य करते हैं। उनकी योजना अगली पीढ़ी को अपने हाथ में लेने का है। हमारे सामने ऐसी बहुत सी शिकायत रखी गयी कि वे किन भिन्न भिन्न उपायों से प्राइमरी स्कूलों में छोटे छोटे बच्चों का अपने प्रभाव में लाते हैं। लूथरन मिशन स्कूलों का उपयोग केवल छोटे बच्चों को धर्मान्तिरित करने में ही करते हैं। 'घरबन्धु' नामक ईसाई पत्र के मार्च १९५३ के अंक में पृष्ठ ८ पर लिखा है:—

"इस मिशन क्षेत्र का उद्देश्य यह है कि स्कूल द्वारा मसीह का प्रचार किया जावे।......"

हमारे विधान में एक स्पष्ट धारा इस आशय की है कि किसी भी विद्यार्थी को बिना उसके माता पिता और संरक्षक की विशेष अनुमति के किसी धर्म की कक्षा में उपस्थित होने के लिये वाध्य नहीं किया जा सकता। हम ने अपनी जांच के बीच यह मालूम किया है कि हमारे उक्त वैधानिक आदेश को सही तरीके से नहीं पालन किया जाता।

हमने यह भी पाया कि रोमन कैथोलिक चर्च श्रमिकों की भर्ती करता है और इसे उसने धर्म-परिवर्तन का साधन बना रक्खा है। हम सिफारिश करते हैं कि धार्मिक संस्थाओं को इस प्रकार के कार्यों से रोका जाय।

अनाथालय अल्प-वयस्कों के धर्मान्तर के लिये एक वहुत उत्तम क्षेत्र है। हम पहले ही लिख चुके हैं धर्म-परिवर्तन से किस प्रकार राजनीतिक उलझन खड़ी हो जाती है। अतः यह सरकार का प्राथमिक कर्तव्य है कि वह स्वयं अनाथालयों का संचालन करे। क्योंकि राज्य ही ऐसे नाबालिग बच्चों का वैधानिक रूप से अभिभावक है जिनके माता पिता, या अभिभावक नहीं हैं।

चूंकि हमारा कर्तव्य सरकार के सम्मुख अपनी सिफारिशें रख देने का है, हम केवल वही सुझाव रखेंगे जिन पर हमारी सरकार हमारे विधान के अन्तर्गत चल सकती है। परन्तु मिश्नरी समस्या से भारत में जो एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है उसे दृष्टि में रखते हुए हम यह उचित समझते हैं कि मध्य प्रदेश में जो खास-खास मिशन संस्थायें कार्य कर रही हैं, उनके समक्ष भी कुछ सुझाव रखें।

भारतीय ईसाई बड़े उच्चस्वर से स्वतन्त्र भारत के

प्रति अपनी निष्ठा (वफादारी) की घोषणा कर रहे हैं। रोमन कैथोलिक ईसाई इस सम्बन्ध में सबसे आगे हैं। फ़िर भी उनके प्रति सन्देह बना हुआ है। इसका कारण यह है कि भारतीय ईसाई विदेशी प्रभाव में हैं और पश्चिमी देश भारत को साम्यवाद से बचाने की चेष्टा में हैं। यदि रोमन कैथोलिक मिशन कांग्रेस सरकार का समर्थन करते हैं तो केवल इसलिये कि यह सरकार कम्यूनिस्ट-विरोधी है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत को कम्यूनिज्म से बचाये रखने के लिये रोमन कैथोलिक मिशन और अमरीकी धन के बीच एक अपवित्र सन्धि सी हो गयी है। हमारे राष्ट्रीय प्रयत्नों का जैसे हरिजन सेवक संघ द्वारा किये गये हरिजनों के प्रति सामाजिक और आर्थिक अन्याय को दूर करने के आन्दोलन का, कस्तूरबा ट्रस्ट के द्वारा स्त्री जाति की सेवा का, तथा राष्ट्रीय सरकार द्वारा समाज-कल्याण जैसे कार्यों की, मिश्नरियों तथा भारतीय ईसाईयों द्वारा, उपेक्षा तथा विरोध यह संकेत करता है कि वे लोक कल्याण में रुचि नहीं रखते। उनका मुख्य प्रयोजन लोगों को ईसाई बनाना है। वर्तमान धर्म-निरपेक्ष भारत में अल्पसंख्यकों के लिये सबसे बड़ी सुरक्षा इसमें है कि वे बहुसंख्यकों की उदारता तथा शुभेच्छा में विश्वास तथा भरोसा करें। ऐसा करने में ईसाइयों की कोई भी क्षति की संभावना नहीं है। मध्यप्रदेश में ईसाइयों के प्रति कोई भेद भाव नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि वहां उन्हें अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक स्थान और नौकरियां आदि मिली हुई हैं। ईसाईस्थान या मसीहीस्थान की पुकार सर्वथा अविवेकपूर्ण और भयानक है। धर्म के नाम पर भारत का जो विभाजन हुआ और विभाजन के समय जो भयानक मारकाट हुई वह हमें अभी स्मरण है। अतएव देश की सुरक्षा और संगठन को जिस बात से धक्का पहुंचे, वह स्वतन्त्र भारत को सह्य न होगी। आज एक भारतीय चाहे वह उच्च वर्ण का हो अथवा आदिवासी, हिन्दू हो वा ईसाई, जिस का हृदय उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए अपने देश के प्रति प्रेम और श्रद्धा से रहित है, वह अपने आप के प्रति ईमानदार नहीं है और देश-द्रोही है। हम ईसाइयत को भारत में सच्चे भारतीय रूप में और सच्चे ईसाई रूपमें देखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि भारत के सभी धर्म एक दूसरे के साथ सहयोग करते हुए राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर आगे ले चलें।

हम अपनी सरकार से सिफारिश करते हैं कि वह ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित संस्थाओं के अधिकारियों और प्रतिनिधियों के नाम तथा सर्व साधारण ईसाइयों के नाम एक अपील प्रकाशित कर उनसे कहे कि वे सब एकत्र होकर अपनी एक उत्तरदायी संस्था बनायें, जो सरकार को ईसाई धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली नीति तथा धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग में लाने वाले साधनों और उन प्रयत्नों को स्पष्ट करें, जो नागरिक अनुशासन, नैतिकता और स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुचित न हों।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि कुछ लोगों में यह धारणा फैली हुई है कि भारतीय विधान की २५ वीं धारा के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति, चाहे वह विदेशी क्यों न हो और अस्थायी रूप से हीं भारत में क्यों न रह रहा हो, उसको अपने धर्म के प्रचार का पूर्ण अधिकार है और इस अधिकार के अन्तर्गत उसको दूसरे लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करने का अधिकार भी सम्मिलित है। यह बहुत विवादास्पद बात है कि धर्म प्रचार की जो सुविधा अथवा अधिकार दिया गया है उसमें दूसरे को धर्मान्तरिक करने का भी अधिकार सम्मिलित है या नहीं। हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस बात को इस प्रकार अस्पष्ट या सन्दिग्ध नहीं छोड़ देना चाहिये। हमारी राय में विधान में संशोधन करके यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि धर्म-प्रचार का अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को दिया गया है। दूसरा संशोधन यह होना चाहिये कि दबाव, छलकपट या किसी अनुचित उपाय द्वारा किये गये धर्मान्तर को मान्यता नहीं दी जावेगी।

यह बात सदा से विवाद का विषय बनी हुयी है कि ईसाई मत में धर्मान्तरित करने के लिये जो तरीके अपनाये जाते हैं, वे अनुचित हैं। हमें अपनी जांच मे पता चला है कि ऐसे अनुचित तरीके व्यापक रूप से अपनाये गये हैं और ऐसे धर्म-परिवर्तन के उदाहरण तो बहुत ही कम हैं जो विश्वास और आत्म-प्रेरणा से हुए हैं। पहले

जो कुछ भी हुआ हो परन्तु हम नहीं चाहते कि इस सम्बन्ध का यह विवाद भविष्य में भी ऐसा ही बना रहे। इसलिये हमारी सिफारिश है कि जो धर्म-परिवर्तन अनुचित ढंग से होते हैं, उन पर उचित नियन्त्रण रखा जाय और यदि इसके लिये कानून का आवश्यकता हो तो कानून भी बनाये जांय। हमारी सम्मति में इस प्रकार के जो कानून बनें, उनके द्वारा उन समस्त धार्मिक संस्थाओं का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य हो जाना चाहिये, जो धर्म परिवर्तन का कार्य करती हैं अथवा दूसरे धर्म के लागों की सामाजिक सेवा के कार्य में लगी हुई हैं। ऐसी संस्थाओं की समस्त सम्पत्ति को एक पब्लिक ट्रस्ट के अधीन रखना उचित होगा और ऐसे ट्रस्टों को आदेश होगा कि वे अपना हिसाब-किताब एक नियमित ढंग से से रखें और उसकी बाक़ायदा जांच सरकार द्वारा नियुक्त चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट से करायें। उन्हें अपने आय-व्यय का हिसाब जनसाधारण की जानकारी के लिये भी प्रकाशित कर देना चाहिये। इसी प्रकार कानून द्वारा ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिये कि ऐसे गैर ईसाइयों की जो ईसाई धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा रखते हैं अथवा जो ईसाई धर्म में दीक्षित हुए हैं, उनकी एक सूची उनके नाम पता सहित प्रति मास या तीन तीन मास पर सरकार के पास पहुँचनी चाहिये।

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि किसी व्यक्ति को भी बपतिस्मा लेने अथवा देने की आज्ञा तब तक नहीं होनी चाहिये जब तक कि इसके बारे में स्थानीय तथा जिला बोर्ड ने सिफारिश न की हो और उस सिफारिश को प्रान्तीय बोर्ड का अनुमोदन न प्राप्त हो गया हो। इसी प्रकार बिना सरकारी बोर्ड की आज्ञा के कोई स्कूल और कोई अस्पताल इत्यादि भी नहीं खोला जाना चाहिये।

जितना शीघ्र हमारी सरकार अपना यह उत्तरदायित्व समझ लेगी कि परिगणित क्षेत्रों में बसने वाले लोगों में शिक्षा, स्वास्थ्य और औषधि आदि की व्यवस्था करना उसका ही कर्तव्य है, उतना ही शीघ्र अशिक्षित आदिवासी धर्मान्तर से बचाये जा सकेंगे। हम सिफारिश करते हैं कि सरकार एक ऐसी नीति निर्धारित करे कि जिससे इन क्षेत्रों में सामाजिक सेवाओं का उत्तरदायित्व स्वयं सरकार पर ही हो और ऐसी सेवायें शीघ्र से शीघ्र चालू की जांय। गैर-सरकारी संस्थाओं को केवल अपने धर्म के लोगों के लिये ही सामाजिक सेवा-संस्थाओं को चलाने की अनुमति दी जाय।

हम निम्नलिखित कुछ और भी सिफारिश करते हैं:—

१—किसी भी गैर-सरकारी एजेन्सी को यह आज्ञा नहीं होनी चाहिये कि वह बिना सरकारी अनुमति के बाहर विदेश से सहायता प्राप्त करे। विशेषज्ञ और प्रबन्धक के रूप में भी किसी विदेशी की नियुक्ति को विदेश से आने वाली सहायता का ही अंग समझा जाना चाहिये।

२—किसी भी विदेशी को स्वतन्त्र रूप से अथवा परिगणित क्षेत्र में कार्य करने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए जब तक कि वह इस बात का लिखित रूप में आश्वासन न दे दे कि वह राजनीति में भाग नहीं लेगा।

——

अध्याय—३

संक्षेप में कमेटी की सिफारिशें

पिछले अध्याय में हमने जो सिफारशें की हैं, संक्षेप से निम्न प्रकार हैं:—

१—जिन मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य केवल धर्म-परिवर्तन ही है उन्हें वापस जाने के लिए कहा जाय। देश के भीतर विदेशी मिशनरियों का बहुत संख्या में आना अवांछनीय है और इसकी रोक थाम होनी चाहिए।

२—भारतीय चर्च के लिये सबसे प्रथम मार्ग यह है कि वे भारत में एक संयुक्त स्वतन्त्र ईसाई चर्च की स्थापना करे, जो विदेश से आने वाली सहायता पर निर्भर न रहे।

३—ऐसी चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं अथवा अन्य सेवाओं को, जो धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये काम में लायी जाती हों, कानून द्वारा वर्जित कर देना चाहिये।

४—भारतीय विधान में बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी भी कुछ धारायें हैं, जिनके अनुसार बिना

माता, पिता अथवा संरक्षक की मर्जी के उनके बच्चों को धार्मिक शिक्षा देना वर्जित है। उन धाराओं को कार्यान्वित करने के लिये शिक्षा विभाग को चाहिये कि वह तत्सम्बन्धी फार्म, इत्यादि तैयार करे और उनको सब स्कूलों में वितरण करें।

५—कोई भी ऐसी चेष्टा या प्रयत्न जिसके द्वारा दबाव से, छल-कपट से या अनुचित भय दिखा कर अथवा आर्थिक या दूसरी प्रकार की सहायता का आश्वासन देकर अथवा धोखा से या किसी प्रकार की साधारण या भौतिक सहायता का वचन देकर अथवा दूसरे व्यक्ति की अनुभवहीनता या उसके विश्वास का अनुचित लाभ उठाकर अथवा किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी मानसिक दुर्बलता और मूर्खता का लाभ उठाकर और आम तौर से कोई भी ऐंसी चेष्टा और प्रयत्न चाहे वह सफल हुए हों वा असफल, प्रत्यक्ष रूप में हों अथवा अप्रत्यक्ष रूप में, जिनके द्वारा अन्य धर्म के किसी व्यक्ति के धार्मिक अन्धः विश्वास को (चाहे वह व्यक्ति प्रौढ़ हो वा कम आयुका) प्रभावित करने के लिये जानबूझ कर प्रयास किया जाय जिस से कि दूसरे धार्मिक विश्वास बदल जाय और जिससे कि उसकी धार्मिक मान्यतायें बदल कर धर्मान्तर करने वाले की ही भांति बन जायें, तो ऐसी चेष्टाओं को सर्वथा रोक देना चाहिए।

६—धार्मिक संस्थाओं को यह छूट नहीं होनी चाहिये कि वह चाय के बगीचों के लिये तथा अन्य कार्यों के लिये श्रमिकों की भर्ती कर सकें।

७—सरकार का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अनाथालयों का स्वयं संचालन करे, क्योंकि जिन नाबालिगों के माता, पिता या संरक्षक नहीं हैं. उनकी वैधानिक संरक्षक सरकार ही है।

८—सरकार को चाहिये कि वह बड़ी-बड़ी और प्रतिनिधि मिशनरी संस्थाओं तथा समस्त ईसाइयों के लिए एक अपील निकाले कि वे सब एकत्र होकर अपनी एक उत्तरदायी संस्था स्थापित कर लें, जिनका कर्तव्य यह हो कि वह सरकार की सूचना के लिये अपनी नीति स्पष्ट शब्दों में निर्धारित करे कि मिशन और ईसाई लोगों को अपने धर्म के प्रचार में किस प्रकार कार्य करना उचित होगा, धर्म-परिवर्तन के लिये वे क्या क्या साधन काम में लायेंगे और अपनी धर्म-प्रचार सम्बन्धी गतिविधियां, नागरिक अनुशासन, नैतिकता और स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि पहुंचाये बिना किस सीमा तक विस्तृत करना चाहेंगे।

९—भारतीय विधान में संशोधन की चेष्टा होनी चाहियें ताकि यह बात स्पष्ट हो जाय कि विधान में जो धर्म-प्रचार का अधिकार दिया गया है, वह केवल भारतीय नागरिकों के लिये ही है। परन्तु इसके अन्तर्गत धर्म-परिवर्तन के ऐसे मामले नहीं आते जहां धर्म-परिवर्तन दबाव, धोखा, छल-कपट अथवा दूसरे अनुचित उपायों से किया जाता है।

१०—जो धर्म-परिवर्तन अनुचित ढंग से किये जाते हैं, उन पर उचित नियन्त्रण रखा जाय और इसके लिये यदि कानून बनाने की आवश्यकता हो तो कानून बनाया जाय।

११—ऐसे गैर-सरकारी सलाहकारी बोर्ड प्रान्तीय स्तर पर, स्थानीय स्तर पर तथा जिला के स्तर पर स्थापित किये जांय, जिनमें अल्पसंख्यकों का जैसे आदिवासियों तथा हरिजनों का, प्रतिनिधित्व बहुसंख्या में हो।

१२—डाक्टर, नर्स तथा दूसरे व्यक्ति जो अस्पतालों में कार्य करते हैं उनके रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में जो नियम कानून इत्यादि हैं उनका संशोधन हो जाना चाहिये और उनमें यह शर्त रख देनी चाहिये कि वे जब तक उक्त सेवा-कार्य के लिये वहां नियुक्त हैं, तक तक धर्म-प्रचार सम्बन्धी कार्यों में भाग नहीं ले सकते।

१३ – धर्म-प्रचार के लिये जो भी साहित्य हो, वह बिना सरकार की अनुमति के वितरण नहीं किया जाना चाहिये।

१४—जिन संस्थाओं को सरकार की ओर से सहायता मिलती है अथवा जिन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त है, उनका मासिक निरीक्षण सरकारी अफसरों द्वारा अवश्य होना चाहिये।

१५—सरकार एक ऐसी नीति निर्धारित करे कि

आदिवासियों तथा परिगणित जाति के लोगों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिये समाज-सेवा सम्बन्धी कार्य जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा इत्यादि को सरकार स्वयं अपना उत्तर-दायित्व मानकर उक्त प्रकार की सेवायें वहां शीघ्र से शीघ्र चालू करे। उन क्षेत्रों में ऐसी जो गैर-सरकारी संस्थायें हों उन्हें केवल अपने धर्म के लोगों के बीच ही सेवाकार्य करने की अनुमति दी जाय।

१६—राजकीय स्तर पर सांस्कृतिक तथा धर्म-सम्बन्धी कामों के लिये सरकार की ओर से एक पृथक् विभाग स्थापित होना चाहिये, जिसका सम्बन्ध उपरोक्त बातों से हो। ऐसा विभाग एक मन्त्री के आधीन होना चाहिये और वह मन्त्री परगणित जाति अथवा दूसरी पिछड़ी जातियों में से हो तथा उसके आधीन कार्य करने वाले विशेष रूप से इस कार्य के लिये शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति होने चाहियें।

१७—किसी गैर-सरकारी सस्था को यह आज्ञा नहीं होनी चाहिये कि वह बिना सरकारी स्वीकृति के विदेश से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करे।

१८—किसी भी विदेशी को स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी धार्मिक संस्था के सदस्य होने के नाते, परिगणित अथवा वहिष्कृत क्षेत्र में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाय जबतक कि वह लिखित रूप से यह आश्वासन न दे दे कि वह राजनीति में भाग नहीं लेगा।

१९—गैर सरकारी अथवा धार्मिक सस्थाओं के पास यदि कोई सामाजिक और आर्थिक उत्थान का कार्य-क्रम हो तो उसको सब से पहले सरकारी अनुमोदन मिलना चाहिये।

पढ़ने एवं प्रचार योग्य ट्रैक्ट

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्तव्य
३० भजन सत्संग
३१ वेदभाष्य का महत्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ.स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षड़यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आस.
५३ ईश्वरावतार
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयनन्द के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्याओं का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७२ चरित्र निर्माण
७३ नास्तिकों को सन्देश

गोविन्दराम हासानन्द
वेदप्रकाश कार्यालय

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्री डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर—इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया हो।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जांय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय—दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देने के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी को 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य-समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

३—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है-'हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—'नव-भारत टाइम्स' लिखता है—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

आर्य मित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, आज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलवीर ऐवेन्यु, देहरादून

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१ आलू की खेती ॥)
२ टमाटर की खेती ॥)
४ गोभी की खेती ॥)

४ जीरा, धनिया, अजवाइन ॥)
५ तरकारियों की खेती १॥)
६ अच्छे बीज ॥)
७ अच्छी खाद २॥)
८ कपास की खेती १)
९ गन्ने की खेती ॥)
१० फूल फुलवारी २॥)
११ धान की खेती १॥)
१२ संतरे की बागवानी २॥)
१३ आम की बागवानी ३)

१४ आधुनिक कृषि विज्ञान ७९२ पृष्ठ ६)
१५ तिलहन की खेती ॥=)
१६ सोयाबीन की खेती ।)
१७ तम्बाकू की खेती ॥)
१८ खेत की तैयारी २।)
१९ फसल रक्षक औषधियां २।)
२० व्याधियों की रोकथाम १॥)
२१ खेती बाड़ी (किसान गाइड) १॥)
२२ फलों की खेती ३॥)

२३ पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज ६)
२४ तरकारी सागभाजी-खेती ३॥)
२५ ट्यूब बैल गाइड ३॥)
२६ ट्रैक्टर प्राइमर १)
२७ पोल्ट्री फार्मिंग ४)
२८ उन्नत सिंचाई १)
२९ खेती और ट्रैक्टर ६)
३० फल संरक्षण २॥)

नोट:— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६१॥।=) होती है एक साथ लेने पर ।) की रुपया कमीशन काटकर ॥—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें।

केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने जय्यद प्रेस, बल्लीमारान तथा कवर महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्
ऋग्
यजु
साम
अथर्व

वेद प्रकाश

वर्ष ५
अंक ९

चैत्र शक सं० १८७९, अप्रैल १९५७, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

मू० नये पैसे १९ वार्षिक २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

वीर संन्यासी स्वा० श्रद्धानन्द की जन्मशताब्दी

समस्त आर्यसमाजों में तथा गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक महोत्सव के अवसर पर केन्द्रीय रूपमें ता० १२ से १५ तक मनाया जायगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की संक्षिप्त जीवनी

[ले० रामगोपाल विद्यालंकार]

मूल्य केवल -) सैकड़ा ४) डाक खर्च १।=) अलग। अधिक से अधिक मंगाकर प्रचार करें।

हिन्दू संगठन क्यों और कैसे ?

लेखक:—श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

भूमिका लेखक—इन्द्र विद्यावाचस्पति

इसमें हिन्दू जाति के संगठन विषयक सुझाव दिये गये हैं जिसके अभाव में हिन्दू जाति का ह्रास हो रहा है, मनन करने योग्य पुस्तक है।

मूल्य १) मात्र है ५ प्रतियें एक साथ मंगाने पर डाक खर्च माफ।

मिलने का पता—

गोविन्दराम हासानन्द,
नई सड़क, देहली।

मध्य प्रदेश ईसाई मिश्नरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिश्नरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए। इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिश्नरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है। भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों की इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी! अत: इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करें एक प्रति का मूल्य ॥) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मंगाने पर ।≈ अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खर्च माफ।

वेदप्रकाश का आगामी वर्ष का विशेषांक

पं० लेखराम आर्य पथिक लिखित

सृष्टि का इतिहास

श्रावणी महापर्व पर प्रकाशित होगा। जिसका मूल्य २) होगा। वेदप्रकाश के ग्राहकों को १) में डाक खर्च सहित मिलेगा। इसलिए आगामी वर्ष के चन्दे २) में १) सृष्टि का इतिहास के लिए मिलाकर ३) भेजने चाहिए।

वेदप्रकाश के पिछले दो विशेषाँक

बाल्मीकि रामायण

सम्पादक :—श्री प्रेमचन्द विद्यासागर भास्कर
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय
मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को ८) में।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

इस संग्रह में स्वामी की २० पुस्तकों का संग्रह है। मूल्य ४॥) रियायती ३॥)

गोविन्दराम हासानन्द वेदप्रकाश कार्यालय,
नई सड़क, देहली।

आर्य नेताओं द्वारा प्रबल प्रमाणित

विश्व विख्यात आर्य हवन सामग्री का ही नित्य प्रयोग करें

आर्य हवन सामग्री पर निम्न आर्य महात्माओं और नेताओं ने अपनी बहूमूल्य शुभ सम्मतियां प्रदानकी हैं।

१—श्री पूज्य वीतराग महात्मा आनन्दभिक्षु जी महाराज
२—श्री पूज्य वीतराग चन्द्रानन्द जी वानप्रस्थी जी परिव्राजक अजमेर
३—श्री पूज्य प्रोफेसर इंद्र जी विद्यावाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली।
४—श्री पूज्य पं० रामचन्द्र देहलवी शास्त्रार्थ महारथी
५—श्री पूज्य पं० धर्मवीर जी वेदालंकार पदाधिकारी सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली
६—श्री कर्मवीर लाला रामगोपाल जी मन्त्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली
७—श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

उपरोक्त आर्य जगत के उद्भट विद्वानों ने हमारी सामग्री की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

आज ही आर्डर दीजिए

सामग्री का भाव १।) सेर है।

एजेन्सी के लिए पत्र व्यवहार इस पते पर करें।

वैदिकधर्मदिवाकर वेदपथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी

व्याख्यानभूषण, धर्मवीर ग्रन्थमाला
व
आर्य हवन सामग्री के निर्माता
नया रोहतक रोड,
सराय रुहेला, देहली ५

भगवान् ने श्रेष्ठ रचना की है

लेखकः—स्वर्गीय पूज्यपाद वेद शास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज।

ओ३म् उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभिद्धो धर्मस्तदुषु प्रवोचम्॥ ऋ० १।१६४।२६

मैं (एताम्) इस (सुदुघाम्) उत्तम दूध वाली या आसानी से दोही जाने वाली (धेनुम्) दूधार गौ को (उपाह्वये) अपने समीप में चाहता हूँ, (उत) और (सुहस्तः) उत्तम हाथ वाला=कुशल (गोधुग्) गौ दोहने वाला (एनाम्) इस को (दोहात्) दोह सकता है। (अभीद्धः) सब ओर प्रदीप्त, सब ओर प्रकाशमान, (धर्म्मः) तेजोमय (सविता) जगदुत्पादक भगवान् (नः) हमारे लिये (श्रेष्ठम्) उत्तम (सवम्) जगत् उपदेश (सोविषत्) उत्पन्न करता है।

सचमुच भगवान् ने यह महान् जगत् अति उत्तम बनाया है, सूर्य्य की ओर देखो, भूमि को देखो। जल और पवन को देखो। दूर की बात जाने दो। अपने शरीर को देखो, कैसा सुन्दर है? कैसा युक्तियुक्त। आंख किस स्थान पर रखी हैं। ठीक नाक के ऊपर। यदि नाक के नीचे रहती, तो बड़ा कष्ट होता नाक से मलस्राव होता रहता है उस पर कभी कभी मक्खी आदि प्राणी आ जाते हैं आंख नीचे है वह देख न पाती, फिर मुख और नाक के बीच में पर्य्याप्त व्यवधान हो जाता। मुख में जाते पदार्थ के गन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान न हो पाता। दुर्गन्ध पदार्थ खाने से शरीर में विकार हो जाता। सारांश यह कि विचार से प्रतीत होता है कि प्रत्येक पदार्थ ठीक उत्पन्न किया गया है, और यथास्थान स्थापित किया गया है।

भगवान् ने प्रकृति से यह जगत् बनाया है। प्रकृति को इस मन्त्र में 'धेनु' कहा गया है। भोग रूप दूध देने के कारण प्रकृति सचमुच धेनु है। और है भी यह सुदुघा=आसानी से दोही जाने वाली।

जीव कहता है—उपह्वये सुदुघां धेनुमेताम्=मैं इस सुदुघा धेनु को पास चाहता हूं। पास तो आ जाएगी, किन्तु कार्य्य कर लोगे इस से? इस तो—

सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्=कोई चतुर दोहने वाला ही इसे दोह पाता है।

गौ के स्तनों में दूध है। किन्तु उसे प्रत्येक नहीं दोह पाता। प्रकृति में भोग है किन्तु प्रत्येक इस से भोग नहीं प्राप्त कर सकता। कोई सुहस्त=उत्तम हाथों वाला, जिसे अपने हाथों का प्रयोग करना आता है, वही दोह सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है-सकल पदारथ हैं जगमाहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं।

इसको यों पढ़लो—

सकल पदारथ हैं इहि मांहि हस्तहीन नर पावत नाहीं। वेद ठीक कहता है—

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः (ऋ० १०।११७।९)=

दोनों हाथ बराबर हैं किन्तु समान रूप में कार्य्य नहीं कर सकते।

एक शरीर के दो हाथ जो समान भी हैं, एक तरह कार्य्य नहीं कर सकते। तो भिन्न भिन्न शरीरों के हाथ जिनकी शक्ति, योग्यता समान नहीं है, कैसे इस धेनु से दूध एक समान दोह सकते हैं। इसे तो कोई सुहस्त ही दोहेगा।

भगवान् ने इस प्रकृति-धेनु से यह श्रेष्ठ जगत् दूध दोहा है।

(स्वाध्याय सन्दोह से)

ईश स्तवन

हे नाथ ! तुम्हारी महती दया,
मानव तन हमें प्रदान किया ।
तुम धन्य अहो ! जग के स्वामी,
हम पर उपकार महान किया ॥
जग के तुम कर्ता भर्ता हो,
सुख के दाता दुःख हर्ता हो ।
तेरा गुण कीर्तन करने को,
वेदों ने विविध विधान किया ॥

हे ईश ! तुम्हें हम ध्याते हैं,
तुमको ही शीश नवाते हैं ।
ऋषि मुनियों और योगियों ने,
संतत तेरा गुण गान किया ॥
कर्तव्य के हम में भाव भरो,
हमको भव से 'शिव' पार करो ।
कृत कृत्य हुआ वह जन जिसने,
तव प्रेम सुधा रस पान किया ॥

शिव प्रसाद सिद्धान्त शास्त्री

बाल शिक्षा

(ले० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

कालोश्वो वहति (अथर्व १९।५३।१)

(कालः अश्वः) समय रूपी घोड़ा (वहति) दौड़ रहा है ।

आय कुमारो !

दिन रात, मास और वर्ष व्यतीत होते जा रहे है । समय भागता चला जा रहा है । आप इस के पीछे कितना ही दौड़ो जो समय निकल गया, सो निकल गया, अब वह वापस नहीं आ सकता । इसीलिये कहा है:—

गया वक्त फिर हाथ आता नहीं ।

खोया हुआ स्वास्थ्य फिर हाथ आ सकता है । नष्ट हुआ धन धान्य और वैभव पुनः प्राप्त हो सकता है बिछड़े हुए भाई बन्धु फिर मिल सकते हैं, परन्तु गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता ।

जब समय की ऐसी दशा है तो समय आप के हाथ में है, उसे व्यर्थ न जाने दो । वे लोग महान् अभागे हैं जो समय का मूल्य नहीं समझते । समय का एक एक क्षण अमूल्य है । करोड़ों रुपये खर्च कर के भी आप एक क्षण नहीं खरीद सकते ।

अतः देश के नव निर्माताओ ! आप के जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ के गपशप अथवा आलस्य वा प्रमाद में व्यतीत नहीं होनी चाहिये । अपनी आयु का एक एक क्षण ज्ञानोपार्जन, विद्याभ्यास, वेदों के पठन पाठन, योगाभ्यास प्रभु चिन्तन तथा शुभ कर्मों में लगा दो । समय का ठीक प्रयोग करके आप भी एक महान् व्यक्ति बन सकते हैं ।

समय को हाथ से जाने मत दीजिये । समय की चूक ने राजाओं के राजमुकट छीन लिये । नेपोलियन की हार का कारण केवल पाँच मिनट देरी ही तो थी । समय की चूक ने नेताओं का नेतृत्व धूल में मिला दिया । चूकने का परिणाम बड़ा भयंकर होता होता है । अतः चूकिये मत । समय का सदुपयोग कीजिये, जो समय आपके हाथ में है उसे मत जाने दीजिये । प्रत्येक कार्य नियम पूर्वक तथा समय पर कीजिये । नियम पूर्वक कार्य करने से हृदय को सन्तोष रहता है, किसी प्रकार की व्यग्रता नहीं होती ।

प्रभु सामर्थ्य दे, बल और शक्ति प्रदान करें जिस से आप समय का सदुपयोग कर सकें ।

⁂

ऋषि का आध्यात्मिक स्वरूप

आचार्य श्री भद्रसेन जी अजमेर

संसार में जितने भी धर्म प्रवर्तक हुए हैं, उनके अनुयायियों ने उन्हें उच्च कोटि का सन्त, महात्मा या भक्त मान कर उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु या जन्मदाता माना है। किन्तु हम आर्य ही ऋषि के एक ऐसे अनुयायी हैं जो अपने आचार्य या धर्म को अपना आध्यात्मिक जन्मदाता न मान कर अधिकांश में उन्हें सामाजिक या राजनैतिक सुधारों का जन्म दाता ही मानते हैं।

यह स्वाभाविक ही है कि किसी भी धर्म प्रवर्तक के अनुयायी अपने अपने प्रवतक आचार्य या गुरु के पद चिन्हों पर ही चला करते हैं और जिस रूप में अपने गुरु को देखते हैं, स्वयं भी वैसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं। जहां दूसरे धर्मावलम्बियों ने अपने अपने आचार्य के किसी न किसी भक्ति आदि आध्यात्मिक पक्ष को प्रधानता दी वहां आर्य समाज ने अपने प्रवर्तक के केवल एक पक्ष को ही मुख्यता और प्रधानता दी। और ऋषि के सुधार पक्ष को ही अपने व्याख्यानों और लेखों आदि के द्वारा जनता के सम्मुख रखा। किसी ने ऋषि को समाज सुधारक कहा किसी ने वेदोद्धारक सिद्ध किया और किसी ने कुरितिनिवारक प्रकट किया। किन्तु किसी ने भीऋषि कैसे आध्यात्मिक प्रचारक तथा भक्ति प्रसारक थे यह जनता के सम्मुख रखने का प्रयत्न न किया। परिणाम यह हुआ कि जनता ने भी ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज को केवल सुधारक के रूप में ही देखा आध्यात्मिक रूप में नहीं।

आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व मैं पूज्य स्वामी कुवलयानन्द जी महाराज के आश्रम में जो कि पूना के पास बम्बई प्रान्त में है, योगाभ्यास सीखने के उद्देश्य से रहता था। एक बार मैं ने सुना कि पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज बम्बई पधारे हुए हैं। चूंकि मैंने उनके ही सहयोग से काशी आदि स्थानों में विद्याध्ययन किया था तथा उनके सदुपदेशों से लाभ उठाया था अतः मेरी इच्छा हुई कि मैं उनके दर्शन कर आऊं। उसी योगाश्रम में एकबार बहुत उच्च विचारों के आध्यात्मिक प्रेमी डाक्टर भी आए हुए थे। वार्तालाप के मध्य में उन्हें कहा, बम्बई में आर्यसमाज के एक बहुत उच्च कोटि के अध्यात्म प्रेमी वीतराग महात्मा पधारे हुए हैं। कल मैं उनके दर्शनार्थ बम्बई जा रहा हूँ। उन्होंने यह सुन कर बहुत आश्चर्य प्रकट किया, और कहा —'क्या आर्य समाज में भी आध्यात्मिक प्रेमी महात्मा है।' मैं आर्य समाज को केवल एक सुधारक समाज ही समझता था। पाठक इस एक उदाहरण से ही अनुमान लगा सकते हैं कि जनता विशेषकर अध्यात्म प्रेमी सज्जन आर्य समाज को क्या समझते हैं। महाराष्ट्र में प्रायः लोग यह समझते हैं कि आर्य समाज ईश्वर को नहीं मानता। अच्छे अच्छे सुशिक्षित तथा सभ्य पुरुषों के मुख से मैंने सुना है 'आर्य समाज तर देवला सुधांमानीत नहीं।' अर्थात आर्य समाज तो ईश्वर तक को भी नहीं मानता। उपर्युक्त आश्रम में केवल मैं ही एक आर्य समाज के विचारों का था। शेष सभी व्यक्ति पौराणिक विचारों के थे। जो कि प्रायः सभी महाराष्ट्रीय थे। मेरा जब भी कभी उनके साथ आर्य समाज के सम्बन्ध में वार्तालाप होता तो वे प्रायः यही कहते ऐसा आर्य समाज किस काम का जो कि ईश्वर तक को नहीं मानता। मैं उन्हें बहुत समझाता कि आर्य समाज तो ईश्वर की सत्ता को मानने वाला एक परम आस्तिक समाज है किन्तु कई बार समझाने पर भी यह बात उनके गले न उतरती, क्योंकि हमारे कारण से उनके सम्मुख ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज का आध्यात्मिक स्वरूप कभी आया ही नहीं था। यही कारण है कि आर्य समाज में अधिकतर ऐसे लोग प्रविष्ट हुए जो केवल सुधार प्रेमी थे। अर्थात जो केवल सामाजिक सुधार आदि कार्यों में ही रुचि रखते थे। इसीलिए उन्होंने आर्य समाज में आकर स्कूल, कालिज. अनाथालय, विधवाश्रम आदि सुधारक संस्थाओं को तो जन्म दिया किन्तु आत्मिक सुधार की दृष्टि से कोई महत्व पूर्ण कार्य न किया और ना हीं अपने जीवनों को आत्मिक सांचे में ढाला।

यह बात बिल्कुल सत्य है कि लोकोपकार के कार्यों में भी यदि आध्यात्मिकता की पुट नहीं होती और उनके करने वालों में आत्मिक जीवन नहीं होता तो तो वे लोकोपकार के कार्य भी अधूरे ही रह जाते है। इतना ही नहीं प्रत्युत आगे चलकर वही कार्य उस संस्था और उनके करने वालों के पतन का कारण बनते हैं। यही कारण है कि हम अपने सुधार कार्यों में से एक को भी पूरा नहीं कर पाए। हमने अजमेर में एक दृढ़ आर्य परिवार में इधर उधर से दौड़ी भागी हुई विधवाओं को विधवाश्रम में लाकर उनकी शादी तो कर दी किन्तु कुछ अपवादों को छोड़ कर दूसरे उच्च घरानों की विधवाओं का उद्धार तो दूर रहा, हमारे अपने ही घरोंमें विधवाएँ अपने वैधव्य जीवन को वैसे ही काट रही हैं जैसे कि अन्य हिन्दू घरानों में। उनके पुनर्विवाह करने में जैसे अन्य सवर्ण हिन्दू अपनी बिरादरी से डरते हैं। उसी प्रकार हम भी वैसे ही अपनी बिरादरी से भय खाते हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत हमारे घरों में भी उन विचारों को भी वैसा ही हेय और अपशकुनकारी समझा जाता है, जैसा कि दूसरे घरों में। एक बार मैं नामकरण संस्कार कराने गया, संस्कार के अन्त में जब मैं सबसे बालक को अशीर्वाद दिलाने लगा, तो एक युवती चुप बैठी रही, अर्थात उसने आशीर्वाद नहीं दिया। मैंने कहा देवी तुम तो बालक की भुजा हो तुम क्यों नहीं आशीर्वाद देती। तब उस बेचारी के दुःखी हृदय ने तो कुछ उत्तर न दिया किन्तु बालक के पिता ने जो उस देवी के सगे भाइ थे कहा—यह आशीर्वाद नही देंगी, क्योंकि यह विधवा है। क्या यही हमने विधवाओं का उद्धार किया है। हमारे अनाथालयों के अनाथ अनाथालयों से निकल भी अनाथ ही रह जाते हैं। हम न तो उनके जीवन निर्वाह की समस्या को हल करते हैं, और न ही उनके साथ विवाह आदि सम्बन्ध। आज जैसे दूसरे हिन्दू अपने जन्म जाति के बन्धन में फंसे हुए हैं। हम भी उसी जन्म जाति के दलदल में बुरी तरह से फंस रहे हैं। हमारे अन्दर इतना साहस और बल नहीं कि हम किसी भी परवाह न कर इस जन्म जाति के बन्धन को तोड़ सकें। चाहते हुए भी हमारी निर्बल आत्माएं इसके तोड़ने में बिरादरी से भय खाती हैं। अब जरा शुद्धि के प्रश्न को लीजिए? जैसे एक कट्टर हिन्दू किसी भी अछूत या विधर्मी को अपनाने के लिए उद्यत नहीं। उसी प्रकार हम भी, चाहे हमारे अन्दर कोई कितना भी उन्नति क्यों न कर जाए, चाहे वह आर्यसमाज का पुरोहित या विद्वान भी क्यों न बन जाए, किन्तु चूंकि वह जन्म से मुसलमान या ईसाई है, उसके साथ तो क्या उसकी सुशिक्षित सभ्य तथा आर्य सन्तान के साथ भी अपने विवाह आदि सम्बन्ध करने को तैयार नहीं। जब मैं 'जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ' का मन्त्री था तो ऐसे कई व्यथित तथा दुःखी सज्जनों ने पत्र लिखकर अपनी व्यथा सुनाई थी। तात्पर्य यह है कि हमारी आत्मिक बल से रहित निर्बल तथा साहसहीन आत्माएं अपनी जन्म बिरादरी से उतना ही भय खाती हैं जितना कि अन्य लोगों की। हम अपने स्कूलों, कालिजों आदि संस्थाओं से दूसरे के बालकों को तो क्या अपनी सन्तानों को भी आर्य और सच्चरित्र नहीं बना पाए। यह संस्थायें जिन्हें कि हमने लोक कल्याण की दृष्टि से खोला था, आज हमारे ही अधःपतन का कारण बन रही हैं। इन सबका एकमात्र कारण हमारे अन्दर तप, त्याग, संयम और आत्मिक बल की कमी ही है। अर्थात हमारे अंदर इतना आत्मिक बल नहीं था कि कि हम इन लोकोपयोगी संस्थाओं से उत्पन्न ऐषणाओं और प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर सकते। हम उनमें फंस गये, और इतनी बुरी तरह फंसे कि अपने वास्तविक उद्देश्य को ही भूल बैठे। हमारी श्रद्धा और भक्तिहीन शुष्क आत्माएं दूसरों के दोष दर्शन और परछिद्रान्वेषण में तो लग गई, किन्तु अपनी निर्बलताओं और दोषोंको दूर कर अपने जीवनों को उच्च और महान न बनाया। मेरे विचार से हमें इसका मूल कारण ऋषि के आध्यात्मिक स्वरूप को अपने सम्मुख न रखना, और उसे अपने जीवन का लक्ष्म न बनाना हीं है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)

वर्ण व्यवस्था कब और क्यों तथा आधुनिक रूप

लेखक—विद्याराम वर्मा, गोरमी [भिण्ड]

हमारे देश भारतवर्ष में वर्ण व्यवस्था का रूप जिस प्रकार से था या जिस कारण से इसका आरंभ हुआ था उस रूप में इतना अन्तर हो गया है कि जिसका समझना साधारण बुद्धि वालों के लिए असम्भव नहीं तो दूभर अवश्य ही है। वैदिक सिद्धान्त के आधार पर भी वर्ण व्यवस्था का रूप यही था जिसका रूप आज भी वर्तमान है किन्तु दूसरे रूप में। यथाः—

मुख ब्राह्मण क्षत्रिय भुजा, उदर वैश्य को जान।
पैरों को शूद्र कहा, यही वेद परमान॥

ऐतिहासिक दृष्टि से भी यही आधार मिलता है कि बढ़ते हुए समाज की व्यवस्था सुचारु रूप से सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिये वर्ण व्यवस्था नामक कार्य चक्र लागू हुआ जिसका रूप इस प्रकार हुआ कि मानव रूपी समाज का मुख रूप ब्राह्मण बना और शपथ ग्रहण की कि—

मुखिया मुख सो चाहिए, खानपान को एक।
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥

तथा भुजा रूप क्षत्रिय ने भी अपना कर्तव्य सम्भालते हुए शपथ ग्रहण की किः—

क्षत्रिय वही जो रक्षा करै,
नहीं रक्षा करै वह क्षत्रिय नां।

और उदर रूप वैश्य ने भी अपनी जिम्मेवारी सम्हाली किः—

वैश्य वही व्यापार सत्य का सत्य नहीं तो बनियाँ ना।

साथ ही साथ पैर रूप शूद्र ने भी कर्त्तव्य समझा किः—

शूद्र वही जो सेवा करे नहीं सेवा करे वह शूद्र ना।

इसी प्रकार से प्रत्येक कार्य का वितरण होकर मानव रूपी समाज ने वर्ण व्यवस्था कायम की यही मूलाधार था और रहा, उसी अतीत के काल को रामराज्य या स्वर्ण युग नाम दिया गया क्यों कि उस समाज रचना का रूप ही वर्ग विहीन शोषण रहित तथा सहिष्णुता पूर्ण था किन्तु 'दही मही बिलगाइ कपट खताई परत ही' वाली बात हुई समाज के मुख रूप ब्राह्मण ने अपना कर्तव्य त्याग कर अधिकार की ही मांग की। इस दशा को देखकर भुजा रूप क्षत्रिय ने भी अपना कर्तव्य छोड़ा और साथ उदर रूप वैश्य ने भी अपना कर्तव्य त्याग किया और समाज में अव्यवस्था फैली अन्याय फूट लूट आदि अनेक बाधायें उपस्थित हो गईं कारण कि पैर रूप शूद्र भी लड़खड़ाने लगे थे क्योंकि—

ऊपर के बिगड़े तब शूद्रों का कहना क्या।
फूटी आंख लगी जब ठोकर दोष पैर को देना क्या॥

मानव रूपी समाज की इस निर्बलता ने अथवा पैरों की कमजोरी ने समाज को गिरा दिया और समाज अवनति के गर्त में अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगा और जिसका फल समाज में गुलामी आदि के रूप में भोगा किन्तु ज्ञान की आंखें खुलीं और मुख रूप ब्राह्मण भुजा रूप क्षत्री तथा उदर रूप वैश्य ने मिलकर तय किया कि अपने अथवा समाज के पैर रूप शूद्र निर्बलावस्था में है यदि समाज को अपने पैरों पर खड़ा करके सबल बनाना है तो शूद्रों को ही प्रथमा अवसर देकर सबल बनाया जावे जिससे पुनः समाज का वही सनातन रूप परिवर्तित हो सके तथा यह समाज आदर्श रूप पा सके। यही सोचकर यह अछूतोद्धार, जन जाति कल्याण विभाग आदि विभागों का संचालन करके शूद्रों अथवा समाज के पैरों की पुष्टि के लिए प्रयत्न होने लगे। तथा समाज की प्रगति के पद चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। जिसका भविष्य कितना उज्ज्वल हो सकता है और होगा यह सब हम स्वयं ही सोच सकते हैं।

साहित्य-समालोचना

१. "योग और स्वास्थ्य" (तृतीय संस्करण)

ले० - आचार्य भद्रसेन मू० २॥) प्रकाशक—'आदर्श साहित्य निकेतन' अजमेर।

यौगिक साधनों द्वारा शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग कैसे बनाया जाय, इस उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक में योग के आसन, प्राणायाम तथा नेती, धोती, बस्ती आदि क्रियाओं के करने की विधि अनेक लाभ, वीर्य विकार आदि कठिन रोगों की यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा, शरीर को सदा स्वस्थ, निरोग तथा बलवान् बनाये रखने के सरल और अचूक उपाय आदि विषयों का सरल तथा सुबोध भाषा में विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक में यौगिक क्रियाओं के ७० के लगभग ब्लाक के चित्र भी दिए गये हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। हमने इस विषय की कई पुस्तकें देखी हैं, वास्तव में यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की सर्वोत्तम तथा पूर्ण पुस्तक कही जा सकती है। और स्त्री पुरुष सबके लिए उपयोगी है। योग पद्धति तथा यौगिक चिकित्सा पर इतना सुन्दर ग्रन्थ लिखकर आचार्य जी ने देश के स्वास्थ्याभिलाषी जनों का बड़ा उपकार किया है। हमारी हार्दिक कामना है कि इस पुस्तक का प्रत्येक नर नारी स्वाध्याय करे। और अपने शरीर को स्वस्थ बलवान् तथा निरोग बनाये।

२. "प्रभु भक्त दयानन्द तथा उनके आध्यात्मिक उपदेश" मूल्य १॥)

ले० आचार्य भद्रसेन, प्रकाशक उपरोक्त—

ये पुस्तक ऋषि दयानन्द के आध्यात्मिक स्वरूप को दर्शाने वाली तथा ऋषि के आध्यात्मिक उपदेशों से संसार को परिचित कराने वाली एक नई तथा अपने विषय की पहिली ही पुस्तक है। ऋषि के लोकोपकारक तथा देशोद्धारक आदि स्वरुपों को तो बहुत लोगों ने दर्शाया है किन्तु ऋषिवर कितने उच्च कोटि के सन्त महात्मा तथा प्रभु के अनन्य भक्त थे इसको आज तक किसी ने नहीं दर्शाया। इस कमी की पूर्ति श्री आचार्य जी ने बड़े विद्वत्ता पूर्ण ढंग से इस पुस्तक में की है। वास्तव में जैसा प्रभु भक्ति आदि विषयों का आध्यात्मिक स्वरूप श्री आचार्य जी ने ऋषि के समस्त ग्रन्थों तथा उनके स्वयं के जीवन से दर्शाया है, वह न केवल आर्यों अपितु अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी अनुकरणीय हैं। पुस्तक में ऋषि के आध्यात्मिक स्वरूप के सुन्दर तथा मार्मिक दिग्दर्शन के अतिरिक्त महाराज के ईश्वर भक्ति, योग, जप, तप, स्वाध्याय आदि अनेकों विषयों की सुन्दर चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य भी मानव जीवन को उच्च पवित्र तथा महान् बनाने वाले और देश जाति का उत्थान करने वाले ऋषि के लगभग ६० आध्यात्मिक उपदेश और ६० के लगभग अन्य अमूल्य उपदेशों का भी पुस्तक में सुन्दर संकलन है। अतः हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि इस पुस्तक को न केवल आर्य पुरुष तथा आर्योपदेशक अपितु आत्मिक शान्ति के अभिलाषी अन्य धर्मावलम्बी भी अवश्य पढ़ें। अनेकों विद्वानों तथा सन्यासी महानुभावों द्वारा भी पुस्तक का हार्दिक स्वागत किया गया है।

३. आदर्श की ओर

ले० आचार्य भद्रसेन, प्रकाशक उपरोक्त, मूल्य १।)

जीवन को आदर्श मय कैसे बनाया जाय, श्री आचार्य जी ने इस का सरल तथा ओजस्विनी भाषा में बड़ा सुन्दर और मार्मिक वर्णन किया है। पुस्तक का प्रत्येक प्रकरण जीवन में आनन्द, उत्साह तथा स्फूर्ति उत्पन्न करता है। और जीवन को आदर्श मय बनाने में परम सहायक है। यूं तो यह पुस्तक आबाल वृद्ध सबके लिये परम उपयोगी है, किन्तु युवक तथा युवतियों के लिये तो अमृत के समान है। हमारा विचार है कि ऐसी पुस्तकों को युवक युवतियों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिये स्कूलों तथा कालेजों के पाठ्य क्रम में रखा जाना चाहिए। अपने जीवन को उच्च पवित्र तथा महान् बनाने के अभिलाषी सज्जनों को इस पुस्तक का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए उपर्युक्त तीनों पुस्तकों की छपाई, लिखाई, कागज आदि सुन्दर तथा बढ़िया है, और मुख्य पृष्ठ भी अत्यन्त आकर्षक है। (डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी० लिट०)

पुस्तकें मिलने का स्थान—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

इतिहास से शिक्षा लो

कांग्रेस का इतिहास

ले०—महात्मा चन्द्रानन्द जी वानप्रस्थी (पूर्व देशभक्त चान्दकरण जी शारदा अजमेर)

दुनिया सराय बीच कितने आये चले गये ।
नेकी बदी का भार उठाये चले गये ॥

भारत तथा काँग्रेस का इतिहास लिखा जा रहा है । पर क्या आप छाती पर हाथ रख कर कह सकते हैं कि वह सच्चा इतिहास होगा ? नहीं ! कदापि नहीं । यह तो दल-बन्दी का इतिहास होगा । कभी सच्चा इतिहास लिखा ही नहीं जाता, क्योंकि इतिहास कार को शासक वर्ग को प्रसन्न करना होता है और शासक वर्ग में भी उस दल को जिसके हाथ में शक्ति है ।

हिटलर जब तक सत्तारुढ़ था जापान वाले जनरल T. O. इत्यादि जब तक सत्तारुढ़ थे । सारी पुस्तकें व समाचार पत्र इनके गुणगान से भरे रहते थे, फिर मार्शल स्टालिन आया तो रूस के कम्युनिस्ट देश लेनिन व स्टालिन के गुणगान करते नहीं थकते थे । पर ज्यों ही हिटलर हारा, जापान हारा तो बड़े बड़े नेताओं पर बड़े बड़े सेनापतियों पर मुकदमें चले, उनको फासियों पर लटकाया गया और दुनिया के सारे अनर्थों का जिम्मेदार उन्हें ठहराया गया । मरने पर भी स्टालिन की तस्वीरें जलाई गई और उसके ही साथी और सहयोगियों ने उसके अत्याचारों की भर पेट निन्दा की, उसकी मूर्तियें तोड़ी और सड़कों और भवनों के नाम जो उसकी कीर्तियां गा रहे थे व सब बदल दिये ।

परन्तु प्राचीन युग में ऐसा नहीं होता था, क्यों कि इतिहासकार स्थित प्रज्ञ, निःस्वार्थ, निर्भय ऋषि-मुनि होते थे, इसका प्रमाण रामायण, महाभारत है, जिनको सांसारिक प्रलोभन नहीं सताते, जो संसार रूपी जल में पदम् पत्र की तरह रहते हैं । वे महर्षि वाल्मीकि के समान रामायण का इतिहास त्रेतायुग में और महर्षि व्यास मुनि के समान महाभारत का इतिहास द्वापर युग में निष्काम भाव से लोक हितार्थ लिख सकते हैं ।

यह सत्य है कि पीछे से कलियुग में स्वार्थी इतिहासकारों ने इसी रामायण और महाभारत जैसे पवित्र इतिहास को प्रक्षिप्त श्लोकों से भर दिया । शत्रुओं को राक्षसों का रूप दिया, १०-१० मुंह और २०-२० हाथों वाला घृणित, विकृत व्यक्ति बतलाकर द्वेषभाव फैलाया, उन्हें मनुष्य ही नहीं माना, शत्रुओं का राक्षस कह कर ऐसा चित्रित किया मानो जो मनुष्य योनी में से ही उत्पन्न नहीं हुए थे । परन्तु रामायण में रावण को वाल्मीकि जी ने वेदों का ज्ञाता, विद्वान् बतलाया है । इसी प्रकार भीष्मपितामह, द्रोण, कर्ण के गुणों से यद्यपि ये शत्रु दल के थे महाभारत प्रशंसा से भरी पड़ी है और मजा यह है कि अन्त में युद्ध में मरने के बाद सबको स्वर्ग मिला है । शत्रुदल सदा के लिये अपूज्य घृणित नहीं रहा । पर पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुसार और पृथिवी का भार उतारने के लिये तथा अत्याचार मिटाने और श्रेष्ट धर्मात्मा पुरुषों की रक्षा के लिये धर्म के स्थापन और अधर्म के नाश के लिए यह सब युद्ध हुए, और अन्त में धर्म, सत्य की जय हुई ।

आजकल जैसे इतिहासकार नहीं थे, जो चन्द चांदी के टुकड़ों की खातिर असत्य को सत्य और अधर्म को धर्म बताकर लोगों की आंखों में धूल झोंककर सत्ता धारियों की चापलूसी करें, पर सच्चाई छिप नहीं सकती ।

जब जब अध्यात्मवाद से हटकर मानव भौतिकवाद में फंसा तब तब ही ठोकरें खाई, और उसका पतन हुआ । हम रात-दिन बड़े बड़े बगलों की रंगीन महफिलों बड़े बड़े महलों में सम्राटों, राजा महाराजाओं के नाच रंग, शराबों अप्रत्याशियों के तथा उनके रातों खेले जाने वाले ताशों और चौपड़ के वृत्तान्त पढ़ते हैं । रोमन साम्राज्य का उत्थान और पतन पढ़ते हैं, रावण, कंस दुर्योधन, जरा संध और

शराबी यादवों तथा जुवा से दुःखी युधिष्ठिर और नकली कथायें पढ़ते हैं। क्या दुनिया ने इन व्यसनों को छोड़ा ? महलों ने राजसत्ता दी और छीन ली, सम्राट बने यह सब इतिहास जानते हुए भी अनजान बनकर हम व्यसनों में फंसते हैं और बुढ़ापे में पछताते हैं, रोमन सम्राटों चीनी सम्राटों, तुर्की अफसरों और भारत के मौर्ययुग वंशों के इतिहास, मुगल, पठान और पृथिवीराज तथा उनके पश्चात् आने वाले राजपूतों के इतिहास की यही कथा हैं कि राजा जब २ प्रमाद और प्रमादों के वशीभूत हुए तब २ उन्होने महलों, रनिवासो दोनों की ओर देखा, षड्यन्त्रों में फंसे और नाश को प्राप्त हुए, जिस ने सुरा और सुन्दरी की ओर ओर माथा टेका वही अपना राजपाट गंवा बैठा, वह बहादुरशाह अन्तिम मुगल सम्राट और उसके एक दो पहली पीढ़ी वाले मुगल और अवध के नवाबों के समान कठपुतली सम्राट, राजा नवाब बने, चन्द्र गुप्त मौर्य जब तक चाणक्य की छत्रछाया में रहा उसका राज्य बढ़ा, और अशोक ने परम्परा त्याग, तप, धर्म को जारी रक्खा, पर उसी के उत्तरा धकारी वृहद्करण ने अपने अन्तपुर में श्रृंगार यज्ञ और विलास यज्ञ किया तब सब राज्य गंवा बैठा, हर्ष, भोज, विक्रम के उत्तराधिकारियों का भी यही हाल हुआ। हमें इतिहास के पृष्ठ पढ़कर निम्न कविता याद आती है।

"कह रहा है आसमा यह,
सर्व समा और कुछ भी नहीं।"

जिनकी महफिलों में हजारों रंग के धान्स थे,
जड़ उनकी कद्र पर है, यह सब समा कुछ भी नहीं"

पुष्पमित्र और उनके पोते वसुमित्र ने ग्रीक आक्रमणो को सिन्धु के पार भगाया परन्तु उनके वंशधर "देवभूती" ने शक्ति से पाई सम्पत्ति तथा राज्य को संघर्ष से घबराकर असंयत कामवासनाओं की लोलुपता में फंसकर सुरा और रमणी के चक्कर में आकर सवनाश कर लिया, शुगों का सूर्य मगध में तप कर अस्ताचल की ओर इन्हीं कारणों से जाने लगा, पंजाब उद्यान में पवन पहल्लव प्रबलथे, इरान के पहल्लवो ने राजसत्ता छीन ली और हिन्दुकुश के पवतों से भारतीय छाया हट गई, हिन्दू राज्य उत्तर से हट के केवल मगध और मध्य भारत में रह गया, देवभूति मगध का सम्राट, वसुदेव उनका मंत्री, जाहनवी उसकी रानी मरनिका उसकी दासी थी। (क्रमशः)

"आर्य सन्देश" से साभार

⁂

धर्मानुकूल भोजन

धर्म परम्पराओं और मर्यादाओं के बन्धनों में ही आबद्ध नहीं है किन्तु धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है, असल में तो धर्म का आत्यांतिक भाव अपेक्षित है। अतः हमारा भोजन और भजन धर्म से उत्पेरित होना चाहिए। भोजन हमें बल देता है और धर्म उस बल को विश्वहित के लिए अर्पण करने की श्रद्धा दान करता है। आहार धर्म के लिये तो और धर्म सेवा के लिए और सेवा का उद्देश्य परमार्थ हो। जहां आसक्ति और स्वार्थ का दोष न रह जाए।

मांस मौत की खुराक है, वह मौत देकर ही तैयार होती है। अतः भोजन में आप मांस स्वीकार करते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप जिसका मांस खा रहे हैं उसकी अनन्त तृष्णाओं के विरुद्ध उसके जीवन को अपने लोभ के लिए मिटा रहे है। आत्मा का अस्तित्व तो मिटेगा नहीं वैर शेष रह जाएगा जो तुम्हें और तुम्हारी समाज में विनाश और विध्वंस का खेल रचायेगा। देश के सम्बन्ध में शाकाहारियों की शिकायत है कि पशुवध माँसाहार तथा अंडों का भक्षण बहुत तेजी से बढ़ रहा। निरामिष भोजन का मिलना दुर्लभ हो गया है। यह पतन की पराकाष्ठा है।

यज्ञोपवीत का महत्व

[ले०—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक]

वैदिक धर्म में संस्कारों का बहुत महत्व है। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिये १६ संस्कारों का करना अत्यन्त आवश्यक है। सभी संस्कार महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इन सब में उपनयन संस्कार एक विशिष्ट स्थान रखता है। यही वह संस्कार है जिससे बालक की शिक्षा और दीक्षा का प्रारम्भ होता है, एवं उसे द्विजत्व की प्राप्ति होती है। इसी समय से उसे वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता है, जैसा कि वेद में भी आदेश है:—

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्ततन्तुर्देवेष्वातत:।
तमाहुत नशीमहि ॥ (ऋ० १०।५७।२)

अर्थात् सामान्य जनों की यह कामना है कि जो यज्ञ का उत्तम साधन रूप तन्तु=उपवीत का धागा, विद्वानों में प्रचलित है, उस विधि विहित सूत्र को हम प्राप्त करें।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत धारण न करना अपने आप को विद्या तथा यज्ञ के अधिकार से वञ्चित रखना है, और न ही इस के बिना बालक द्विज बन सकता है, अतः उन्नतिशील नर नारियों को यज्ञोपवीत संस्कार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञोपवीत एक अत्यन्त वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण संस्कार है। आचार्य अथवा गुरु यज्ञोपवीत देते समय, अथवा यज्ञोपवीत बदलते समय जिस मन्त्र का उच्चारण करता है उसी से यज्ञोपवीत की महिमा स्पष्ट है:—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं पति मुञ्च शुभ्रं,
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा,
यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

परम पवित्र, आयुवर्धक, अग्रणीयता का द्योतक, श्वेत वर्ण का यह यज्ञोपवीत, जो प्रजापति के साथ प्रकट हुआ है, उसको तू धारण कर, पहन। यह यज्ञोपवीत तुझे बल और तेज दायक हो। तू यज्ञोपवीत है, मैं तुझे यज्ञ की यज्ञोपवीतता के साथ पहनता हूँ।

इस मन्त्र में यज्ञोपवीत बल और तेज प्रदान करने वाला कहा गया है। यज्ञोपवीत के तीन तारों में बल और तेज दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु जो इन तीन तारों के रहस्य को हृदयंगम कर लेता है, उस में बल और तेज का सचार हो जाता है। इसके रहस्य को समझ कर ही लाखों सिक्खों, राजपूतों मरहठों ने अपने सिरों की आहुति दी, परन्तु यज्ञोपवीत का त्याग नहीं किया।

जिस प्रकार भारतीय शासन के तिरंगे झंडे का कोई विज्ञान है, इस में तीन रंग क्यों हैं? इसके मध्य में स्थित चक्र का क्या अभिप्राय है? इसी प्रकार यज्ञोपवीत का भी रहस्य है। यज्ञोपवीत में ६ तन्तु, तीन दण्ड और पाँच गांठे होती हैं। इस के नौ तन्तुओं में नौ देवताओं की कल्पना की गई है यथाः—

ओंकार: प्रथमे तन्तौद्वितीयेऽग्निस्तथैव च।
तृतीय नागदैवत्य चतुर्थे साम देवता॥
पंचमे पितृ दैवत्यं षष्टे चैव प्रजापति।
सप्तमे मरूतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च॥
सर्वे देवतास्तु नवमे इत्ये तास्तन्तु देवताः।

पहले तन्तु में ओंकार, दूसरे में अग्नि, तीसरे में अनन्त, चौथे में चन्द्रमा, पांचवें में पितृगण, छटे में प्रजापति, सातवें में वायुदेव, आठवें में सूर्य और नववें में सर्व देवता प्रतिष्ठित हैं। यज्ञोपवीत धारण करने वाला बालक यज्ञोपवीत के तन्तुओं में स्थित नौ देवताओं के निम्न गुणों को अपने अन्दर धारण करता है:—

(१) ओंकार—एकत्व का प्रकाश, ब्रह्म ज्ञान।
(२) अग्नि—तेज, प्रकाश, पाप दाह।
(३) अनन्त—अपार धैर्य और स्थिरता।

(४) चन्द्रमा—मधुरता, शीतलता, सर्वप्रियता ।

(५) पितृगण—आशीर्वाद दान और स्नेह शीलता ।

(६) प्रजापति—प्रजा पालन, स्नेह, सौहार्द ।

(७) वायु--पवित्रता, बलशालीता, धारणशक्ति ।

(८) सूर्य—प्रकाश अन्धकार, नाश, मलशोषण ।

(९) सर्व देवता—दिव्य और सात्विक जीवन ।

जो यज्ञोपवीत के इन गुणों को स्मरण कर, इन से प्रेरणा प्राप्त करेगा, उस का जीवन उच्च, महान, यशस्वी और तेज युक्त क्यों न होगा ।

नौ तन्तुओं का एक और भी रहस्य है । यह अथर्व वेद के अनुसार अष्ट चक्रा नवद्वारा (१०।२।३१) आठ चक्र और नौ द्वारों का नगर है । अतः नौ तन्तु हमें एक सन्देश देते हैं कि प्रत्येक द्वार पर एक एक प्रहरी नियत करना है, जिस से हम कोई बुरा कर्म न कर सकें, इन नौ द्वारों से कोई बुराई हमारे अन्दर प्रविष्ट न हो सके । नौ द्वार हैं—दो आंख, दो कान, दो नासिका के चिद्र, एक मुख और दो मल मूत्र त्यागने के छिद्र । हमें प्रत्येक के ऊपर एक एक चौकीदार बैठाना चाहिए ।

हम आंखों से अच्छे दृश्य देखें, प्रभु की रचना के सौन्दर्य को निहारें गन्दे दृश्य और स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले सिनेमादि न देखें । हमारी दृष्टि ऐसी हो:—

मातृवत् परदारेषु, पर द्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्व भूतेषु, य पश्यति स पश्यति ॥

दूसरों की स्त्रियों को माता के समान, दूसरों के धन को मिट्टी के समान, और सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखें, क्योंकि ऐसा देखने वाला ही वास्तव में देखता है ।

कानों से हम प्रभु का गुणगान सुने, प्रभु का कीर्तन सुने, गाली, गलोच गन्दे गाने न सुने । यज्ञोपवीत धारी का जीवन वेदमय होना चाहिए और वेद के अनुसार:—

भद्रं कर्णेभि शृणुयाम् य० २५।२१)
कानों से हम उत्तम बातें सुने ।

इसी प्रकार नाक से उत्तम दिव्य गन्ध को सूंघे, विषय वासनाओं की गन्ध ही न लेते रहें । जिह्वा से स्वास्थ्य वर्धक उत्तम और सात्विक पदार्थों का सेवन करें, स्वास्थ्य विनाशक और ब्रह्मचर्य के लिये हानि कारक चाट पकोड़ी, मिर्च आदि दूषित वस्तुओं का सेवन न करें । उपस्थ और गुदा का भी संयम रक्खें । सच्चे ब्रह्मचारी बने । यह है यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं का विज्ञान ।

यज्ञोपवीत में तीन दण्ड अथवा तागे होते हैं । ये तीन दण्ड मन वचन और कर्म की एकता सिखाते हैं । जो मन में है वही वचन में होना चाहिए और उसी प्रकार कर्म करना चाहिए । जब मन वचन और कर्म में एकता होती है, तो मनुष्य महात्मा बन जाता है, अन्यथा वह दुरात्मा हो जाता है ।

तीन दन्डों का एक और भी अभिप्राय है यह यह की कायदंड, वागदंड और मनोदंड अर्थात् शरीर वाणी और मन को संयम में रखना । काय संयम के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु का आदर और सत्कार, अहिंसा और तपादि । वाणी संयम के द्वारा सत्य बोलना, हितकर बोलना, मित बोलना और मधुर बोलना तथा स्वाध्याय करना और मन संयम के द्वारा मन के विकारों को दूर करके उसे शुद्ध पवित्र और शिव संकल्पों वाला बनाना तथा ईश्वर चिन्तन करना । यज्ञोपवीत धारी के लिये शरीर वाणी और मन का यह संयम अत्यावश्यक है ।

तीन तारों में एक तीसरा रहस्य भी छुपा हुआ है । यह संसार त्रिगुणात्मक है, सत्य रज और तम की तीन लड़ियों में समस्त प्राणी बंधे हुए हैं । यज्ञोपवीत के तीन धागे ये स्मरण कराते हैं कि इस संसार से निकलना है । सयासी संसार के मोह, माया और ममता से निकल जाता है इसीलिये सन्याश्रम में यज्ञोपवीत उतर जाता है ।

यज्ञोपवीत के तीन तारों में विश्व विज्ञान भरा हुआ है । ये तीन तार एक और संकेत भी दे रहे है, वह यह कि संसार में तीन प्रकार के ऐश्वर्य हैं—सत्य, यश और श्री । यज्ञोपवीत धारी को इन तीनों में से कोई एक चुनना होता है । ब्राह्मण के लिए सत्य मुख्य है और दो बातें गौण हैं । ब्राह्मण बनना है

तो चोटी का सत्यवादी ब्राह्मण बनना ऐसा वैसा नहीं। क्षत्रिय बनना है तो यशस्वी और यशस्वी भी चोटी का, युद्ध में पीठ न दिखाने वाला, परन्तु साथ ही जीवन में सत्य भी हो। वैश्य बनना है तो साधारण पैसे वाला नहीं अपितु चोटी का बनना। कुबेर और भामाशाह भारत के ही थे। धन कमाना परन्तु सचाई के साथ और यशवालों की रक्षा भी करना।

तीन तार एक और रहस्य के भी सूचक हैं। प्रत्येक मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण होते हैं—पितृ ऋण. ऋषि ऋण तथा देवऋण, प्रत्येक यज्ञोपवीत धारी को इन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए।

माता पिता जन्म देकर तथा लालन पालन करके हमें बड़ा करते हैं। उनकी सेवा सुश्रूषा करके यह ऋण कुछ सीमा तक चुकाया जा सकता है, इसीलिये उपनिषद् के ऋषि ने 'मातृ देवो भव' और 'पितृदेवो भव' का उपदेश दिया है।

ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द पर्यन्त सच्चे त्यागी, तपस्वी और वीतराग विद्वान् जिन्होंने वैदिक संस्कृति और सभ्यता को हम तक पहुंचाया है तथा समय समय पर हमारा मार्ग प्रनर्शन करते रहे हैं. हमारा कर्तव्य है कि हम उनके द्वारा दी हुई विद्या को पढ़कर, उपदेशों द्वारा दूसरों तक पहुंचायें। यह ऋषि ऋण से उऋण होने की विधि है।

वायु, अन्न, जल आदि देव हैं, यज्ञ द्वारा इनको शुद्ध करना देवऋण से उऋण होना है। इस का एक और अभिप्राय भी है, इन्द्रियों को भी देव कहते हैं, अतः समस्त इन्द्रियों का सदुपयोग जानकर उन्हें दृढ़ बनाना और उनका ठीक प्रयोग करना भी देवऋण चुकाना हैं।

यज्ञोपवीत में पाँच गांठें होती हैं। पाँच गांठें पंच महायज्ञो को करने की ओर संकेत कर रही है। पितृऋण, ऋषि ऋण और देवऋण चुकाने के लिये इन यज्ञों का करना अनिवार्य है।

पाँच ग्रन्थियों का एक और भी अभिप्राय है। प्रत्येक मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, और अहंकार रूपी गांठें हैं। यज्ञोपवीत की ये ग्रन्थियां यज्ञोपवीत धारी को ये स्मरण कराती हैं कि इन गाँठों को खोलना है।

यज्ञोपवीत वाम स्कन्ध से धारित किया जाकर हृदय और वक्षस्थल पर होता हुआ कटि प्रदेश तक पहुँचता है। इसमें भी एक बहुत बड़ी वैज्ञानिक रहस्य छुपा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य के ऊपर तीन प्रकार के बोझ हैं। बोझ का भार कन्धे पर पड़ता है। इसलिये यज्ञोपवीत कन्धे पर होता है। संसार में बोझ को वही वहन कर सकेगा जो कटिबद्ध है जिस की कमर कसी हुई है इसीलिए यज्ञोपवीत कटि प्रदेश तक होता है। संसार में सफलता वही प्राप्त करेगा, जो लक्ष्य को अपने सम्मुख रखेगा और लक्ष्य उसी व्यक्ति के समक्ष रह सकता है, जो किसी कार्य को हृदय से करे इसीलिये यज्ञोपवीत हृदय पर होता है।

यज्ञोपवीत को कन्धा, हृदय और कटि प्रदेश पर ही ठहराने का एक और भी रहस्य है और वह यह कि कन्धे से ऊपर ज्ञानेन्द्रियाँ आरम्भ हो जाती हैं जिह्वा इसका अपवाद है। मनुष्य देव बन जाता है, वह सन्यास ले लेता है, और यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है।

तीन ऋण एवं पांच यज्ञों को हृदय से स्वीकार किया जाता है। हृदय वाम भाग में होता है इसीलिये यज्ञोपवीत वाम स्कन्ध से हृदय पर होता हुआ दाहिनी ओर धारण किया जाता है।

प्रत्येक यज्ञोपवीत धारी अपने राष्ट्र की उन्नति के लिये सभ्यता और संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिये तथा मातृभाषा की रक्षा के लिये कटिबद्ध रहे, इसीलिए यह यज्ञोपवीत कटि प्रदेश तक लटकता है।

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में दो बातें और स्मरणीय हैं। एक यह कि प्रत्येक व्यक्ति को एक समय में एक ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए दो नहीं। दूसरी यह कि यज्ञोपवीत श्वेत होना चाहिए क्योंकि मन्त्र में उसे 'शुभ्र'' कहा गया है।

मेखला

उपनयन संस्कार में मौञ्जी भी धारण करनी पड़ती है। वेद में मेखला के गुण इस प्रकार वर्णन किये हैं।

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधिजाता स्वसा ऋषिणां भूतकृतां बभूव।

स नो मेखले मतिमाधेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ (अथर्व ६।१३३।४)

यह मेखला श्रद्धा की पुत्री, तप से उत्पन्न होने वाली, यथार्थ कारी ऋषियों की बहिन है। वह मेखला हमें बुद्धि, मेधा, कष्टों को सहन करने का सामर्थ्य और इन्द्रियों की विशुद्धता प्रदान कराती है।

मेखला धारण जहाँ वीर्य रक्षणमें सहायक हैं, तथा अन्डकोष वृद्धि आदि रोगों को रोकती है, वहां शतपथ ब्राह्मण के शब्दों में यह आत्म तेज भी प्रदान करती है, इसीलिए उपनयन के समय इस के धारण करने का विधान है।

अन्य मतों में यज्ञोपवीत

सिक्खों के प्रथम गुरु श्री नानक देव जी की एक वाणी इस विषय में बहुत ही महत्व पूर्ण है:—

दया कपाह संतोष सुत, जत गंठी सत वट्ट।
एह जनेऊ जीऊ का हयिता पांडे धत्त ॥
ना यह तुट्टे ना मल लागे न यह जले न जाय।
धन्नसो मानस नानका जो गल चल्लै पाय ॥

श्री नानकदेव जी यज्ञोपवीत को अति श्रेष्ठ समझते थे। अतः उन्होंने मानसिक यज्ञोपवीव धारण करने पर विशेष बल दिया है। क्योंकि वह न कभी टूट सकता है और न कभी मैला हो सकता है।

जैन धर्म के आदि पुराण में लिखा है कि "इस सवर्णी काल के प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज ने दिग्विजय यात्रा करके अनेक सेना सहित दिग्विजय की प्रथा चलाई। एक दिन राजद्वार में घास आदि बोकर उन्होंने सभी प्रजा को बुलाया। जो लोग घास पर से दरबार में आये उन्हें पूर्ण अहिंसक न समझा गया और घास पर जीव हिंसा के भय से जो लोग नहीं आकर अन्य मार्ग से आये वे श्रेष्ठ ब्राह्मण पद वाच्य हुए और उन्हें उपवीत दिया गया।'

इस प्रकार जैन ग्रंथों में भी यज्ञोपवीत का स्पष्ट उल्लेख है।

महात्मा गौतम बुद्ध ने "उपनयन को धर्म मार्ग पर ले जाने वाला और उपवीत को शांत पद की प्राप्ति कह कर उल्लेख किया है।"

(मंझिम निकाय १।५।६ तथा ३।२।६)

पारसियों के यज्ञोपवीत धारण करने का मंत्र इस प्रकार है:—

फ्राते मज्दाओ बरत् पौखनीम एयाओं धनिमस्ते हर [पाये संघेम, मैन्युतास्तेम् दयेनीम्वघुहिम मज्दबास्नाम् ॥ (जेन्दे अ० प० ३ पृ० २३८)

ऐ डारा! तू तारों के समान तेजस्वी तथा श्रेष्ठ देवी शक्ति वाला है। तथा आयु का देने वाला है। पवित्र पारसी धर्म के चिन्ह यज्ञोपवीत्! तुझे सब से पहले मज्दा ने धारण किया था। मैं तुझे पहनता हूँ।

इस प्रकार इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक धर्म में यज्ञोपवीत अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है।

उपनयन का समय

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिए ८ वर्ष, क्षत्रिय के लिये ११ वर्ष, और वैश्य के लिए १२ वर्ष है। जैसा कि मनु जी महाराज ने लिखा है:—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणायोपनयनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भस्तु द्वादशे विशः ॥
(मनु० २।३६)

व्यासस्मृति तथा महाभारत आदि में भी ऐसा ही विधान है। परन्तु यदि उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण का १६ क्षत्रिय का २२ और वैश्य का २४ वर्ष से पूर्व यज्ञोपवीत हो जाना चाहिए। यदि इस समय तक भी न हो तो पतित हो जाते हैं।

स्त्रियों को यज्ञोपवीत का अधिकार

कुछ धर्म के ठेकेदार इस अत्यन्त पवित्र और महत्वपूर्ण संस्कार से स्त्रियों को वंचित रखना चाहते हैं परन्तु प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता

है कि प्राचीन काल में पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार था जैसा कि पारस्कर गृह्य सूत्र में लिखा है:—

स्त्रियः उपनीता अनुपनीताश्च।

(पा० गृ० सू० पृ० ८४ सिद्धिविनायक प्रैस सं० १९३६)

इसी प्रकार यम संहिता में लिखा है:—

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जि बन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥

अर्थात् प्राचीन समय में कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था उन्हें गायत्री का जप और वेदाध्ययन करने की भी आज्ञा थी।

यज्ञोपवीत और गायत्री

यज्ञोपवीत और गायत्री का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः यहाँ गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में दो चार शब्द लिखना अप्रासंगिक न होगा।

गायत्री मंत्र यह है:—

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजु० ३६।३)

इस मन्त्र का सरलार्थ इस प्रकार है :—

हे सर्व रक्षक! सच्चिदानन्द स्वरूप, सकल जगदुत्पादक सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक! आप के सर्व श्रेष्ठ पाप नाशक तेज को हम धारण करते हैं। परमात्मा हमारी बुद्धि और कर्मों को उत्तम कामों में प्रेरित करे।

मनु महाराज गायत्री के विषय में लिखते हैं :—

सावित्र्यास्तु परं नास्ति। (मनु० २।८३)

गायत्री से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

वास्तव में वेद, शास्त्र पुराण और स्मृतियां गायत्री की महिमा से भरे पड़े हैं। इस की महिमा महान है। जो इस का जाप और अनुष्ठान करता है वही इस के प्रभाव को जानता है।

यज्ञोपवीत्त सम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्नः—क्या मलमूत्र त्यागने से पूर्व यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाना आवश्यक है!

उत्तरः—नहीं यह आवश्यक नहीं है। कुछ लोग यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाने में यह हेतु देते हैं कि कर्णेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय का आपस में सम्बन्ध है और यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाने से किसी नाड़ी विशेष पर दबाव आदि पड़ने से वीर्यदोषादि रोग नहीं होते परन्तु आयुर्वेद और पाश्चात्य शरीर विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि कर्णेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय का आपस में कोई सम्बन्ध है। हां इतनी बात अवश्य है कि मलमूत्र विसर्जन करते समय यज्ञोपवीत नाभि से ऊपर रहना चाहिए जिस से मूत्रादि के छींटे न लगें।

प्रश्नः—यज्ञोपवीत अपवित्र कैसे होता है ?

उत्तरः—यदि यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् तीन दिन तक सन्ध्या न करे द्विज शूद्रवत् हो जाता है। वह प्रायश्चित करने पर शुद्ध होता है और पुनः संस्कार कराना लिखा है। जन्म शौच मरण शौच रजस्वला स्पर्श टूट जाने पर और स्त्री सम्भोग के समय कण्ठ पर न चढ़ाने से यज्ञोपवीत अपवित्र हो जाता है तब उस यज्ञोपवीत को उतार कर नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए।

ओ३म् शम्

[पृष्ठ १४ का शेष]

स्वामी जी ने 'विरजानन्द वैदिक संस्थान' नामक एक समिति स्थापित की थी जिसका एकमात्र उद्देश्य वेद व वैदिक धर्म के सम्बन्ध में अन्वेषण करना था।

अभी श्री स्वामी जी 'सत्यार्थ प्रकाश' का शुद्ध संस्करण टिप्पणियों सहित मुद्रित करवा रहे थे। उस संस्करण के प्रकाशित होते ही आर्य जगत् को बड़ा लाभ होगा और स्वामी जी की कृति अमर हो जायगी।

मैं परम पिता परमात्मा से स्वामी जी की आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करता हूं।

परलोकवासी, पूज्यपाद स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ, एक संस्मरण

ले०—वैदिक गवेषक, शिव पूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए० कानपुर

दैनिक, हिन्दुस्तान, देहली में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि पुज्य स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ की मृत्यु दिनांक २६-११-५६ को दयानन्द वाटिका में हृदयगति बन्द हो जाने के कारण हुई। यह समाचार आर्य जगत् में अत्यन्त खेद के साथ पढ़ा गया। पूज्य स्वामी जी से गत वार्षिकोत्सव, मेस्टन रोड, कानपुर के अवसर पर भेंट हुई थी और बहुत देर तक सैद्धान्तिक चर्चा होती रही। सर्व प्रथम दर्शन स्वामी जी का मैंने लाहौर में किया था जो संभवतः १९४१ ई० था। उस समय मैं विरक्तावस्था में था। स्वामी जी उस समय श्रीमदयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य थे। वहीं एक कमरा उन्होंने मुझे ठहरने के लिए दे दिया था और भोजन का प्रबन्ध विद्यालय के भोजनालय में कर दिया था। मैं लगभग दो मास तक वहाँ रहा और पंजाब वैदिक पुस्तकालय में बैठ कर अनुसन्धान करता रहा। स्वामी जी का व्यवहार अत्यन्त अच्छा था। कभी कभी मैं उनके कक्ष में जाकर शंका-समाधान करता था तो स्वामी जी अत्यन्त विद्वतापूर्ण समझाते थे। एक दिन मैंने स्वामी जी की आज्ञा के विरुद्ध उनकी पुस्तकों का स्पर्श कर दिया तो उन्होंने मुझे प्रेम के साथ डांट कर उपदेश दिया कि भविष्य में कभी भी किसी का सामान बिना उसकी आज्ञा न स्पर्श करो। स्वामी जी की शिक्षा का आज भी मैं अक्षरशः पालन करता हूँ। स्वामी जी के निकट रहने से ज्ञात हुआ कि वे कितने प्रकांड विद्वान् हैं, संस्कृत के वे महान् पंडित थे। एक बार स्वामी जी ने मासिक पत्र "दयानन्द सन्देश" में पं० सातवलेकर जी की 'संस्कृत स्वयं-शिक्षक' से सैकड़ों व्याकरण की अशुद्धियां निकाली थीं। इसके अतिरिक्त वे हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी के विद्वान् थे। आपकी भाषणशैली और कथा अत्यन्त रोचक होती थी। 'नमस्ते' करने पर नम्रता के साथ झुक कर 'नमस्ते' का उत्तर देते थे जिससे प्रकट होता है कि वे कितने नम्र थे। स्वामी जी के पास मैंने एक छात्र उपदेशक विद्यालय में अध्ययन करने के लिये भेजा था जो देश विभाजन के पूर्व तक वहाँ पढ़ता रहा बाद में स्वामी जी के साथ ही ज्वालापुर रहने लगा। आजकल वह छात्र ईसाइयों से मोर्चा लेता रहता है।

स्वामी जी वेदों के प्रकांड पंडित थे उनके ग्रन्थ, 'स्वाध्याय सन्दोह', 'स्वाध्याय संग्रह', 'वैदिक धर्म', 'वेदोपदेश' आदि आर्य जगत् में देदीप्यमान हो रहे हैं। 'स्वाध्याय-सन्दोह' तो उनका एक विशाल ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से पता लगता है कि स्वामी जी वेदों का किस प्रकार मनन किये हुए थे।

एक बार लाहौर में स्वामी जी ने मुझसे कहा था कि किसी आर्य पंडित का नाम बताओ जो, 'आर्य महाविद्यालय, किरठल' में जा सके। मैंने अपने मित्र व्याकरणाचार्य, पं० शिव पूजन जी शास्त्री, साहित्यरत्न, का नाम बतलाया था। स्वामी जी ने उनका नाम अंकित कर लिया था और अब तक वे उस महाविद्यालय में 'आचार्य' पद पर आसीन हैं।

जब अन्तिम दर्शन कानपुर में हुआ था तो मैंने स्वामी जी से चर्चा की थी कि मैं 'सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य' लिख रहा हूँ तो वे बहुत प्रसन्न हुए और हर प्रकार से सहायता देने के लिए वचन दिये थे। तृतीय समुल्लास का भाष्य मैंने स्वामी जी के पास भेज दिया था जिसको बहुत पसन्द किया था।

आशा है आर्य समाज स्वामी जी की विस्तृत जीवनी प्रकाशित करने की व्यवस्था करेगा। स्वामी जी के देहावसान से आर्य जगत का एक महान् वेदों का विद्वान् छिन गया जिसकी शीघ्र पूर्ति असम्भव है।

स्वामी जी ने ज्वालापुर में रहते हुए "वेदपथ" नामक सुन्दर उच्चकोटि का मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था जिसमें वेदों के सम्बन्ध में उत्तम २ लेख प्रकाशित होते थे। आर्थिक परिस्थिति के कारण वह पत्र शैशवावस्था में ही बन्द हो गया।

[शेष पृष्ठ १३ पर]

हमारे अद्वितीय तीन ग्रंथ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्त्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इसीलिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके है, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४॥)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका—आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार' दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिल्कुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े तीन रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१–'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२–'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्णन से टक्कर लेती है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, आज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलबीर एवेन्यू, देहरादून।

(पृष्ठ ४ का शेष)

ऋषि दयानन्द जी महाराज कितने उच्चकोटि के आध्यात्मवादी थे, कितने प्रभु के अनन्य भक्त तथा सन्त महात्मा और योगी थे, इसका यदि मैं यहां वर्णन करूं तो लेख बहुत बढ़ जायेगा । जो पाठक ऋषि के इस दिव्य तथा महान स्वरूप को देखना चाहते हैं वे मेरी लिखी 'प्रभु भक्त दयानन्द तथा उनके आध्यात्मिक उपदेश' नामक पुस्तक जो हाल ही में आदर्श साहित्य निकेतन से प्रकाशित हुई है, मैं भली प्रकार से देख सकते हैं। ऋषि का तो सारा जीवन ही ईश्वर और अध्यात्ममय था। उनके ग्रन्थों में जितना ईश्वर भक्ति आदि आध्यात्मिक विषयों का सुन्दर और मार्मिक वर्णन मिलता है, उतना शायद ही किसी अन्य तुलसी, कबीर, नानक और सूर आदि के ग्रन्थों में मिलता हो। आशा है हम उस महान और दिव्यासन के अनुयायी उसकें अध्यात्म स्वरूप को अपने सम्मुख रखेंगे, और उन्हें अपना गुरु मान कर अपने को भी उन के अनुसार अध्यात्ममय बनायेंगे।

वेद प्रकाश

फार्म० ४ (प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट के अंतर्गत)

१. प्रकाशन का स्थान —दिल्ली
२. प्रकाशित होने का समय--मासिक
३. मुद्रक का नाम — गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता —भारतीय
पता —नई सड़क देहली
४. प्रकाशक का नाम —गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता —भारतीय
पता —नई सड़क देहली
५. संपादक का नाम —गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता —भारतीय
पता —नई सड़क देहली
६. पत्र के मालिक का नाम —गोविन्दराम हासानन्द
व पता —नई सड़क देहली

मैं गोविन्दराम घोषित करता हूं कि उक्त ब्यौरा बिल्कुल ठीक है।

गोविन्दराम

समाचार संग्रह

भारत का नया पंचाग (कलेण्डर)

भारत सरकार के पंचांग सुधार आयोग के परामर्श से २२ मार्च १६५७ चैत्र कृष्ण सप्तमी विक्रम सम्वत् २०१३ से ता० १ चैत्र शक सम्वत् १८७६ लिखा जाने लगा है साथ में इस्वी सन भी चलेगा।

चैत्र मास की ३० तारीखें होंगी (लौंद अर्थात चौथे वर्ष की ३१ तारीखें होंगी) वैशाख, जेठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद महीने ३१ दिन के और आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन यह छः महीने ३० तारीखों के होंगे।

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी—समस्त आर्य जगत् में इस वर्ष अप्रैल ता० १३-१४-१५ को मनाया जायगा, सार्वदेशिक रुप से गुरुकुल कांगड़ी के महोत्सव के साथ मनाने का निश्चय किया गया है।

उज्जैन में—कुम्भ मेला १५ अप्रैल से १५ मई तक होगा जिसमें लाखों यात्रियों के आने की सम्भावना है।

बम्बई प्रदेश आर्य महा सम्मेलन—मार्च ता० ३० से २ अप्रैल तक वैदिक रिसर्च स्कालर श्री पं० अयोध्या प्रसाद जी के सभापतित्व में बम्बई में हो रहा है।

आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा का रजत जयन्ती महोत्सव ता० ४ से ८ अप्रैल में होगा जिसमें भारत राष्ट्र के प्रधान श्रीमान डा० राजेन्द्र प्रसाद जी तथा बम्बई के राज्यपाल (गवर्नर) श्री प्रकाश जी भी पधारेंगे।

भारत राज्य का चुनाव—आगामी पांच वर्षों के लिये लोक सभा तथा विधान सभाओं के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव पहाड़ी प्रदेश तथा जम्मु काश्मीर को छोड़ कर समाप्त हो गया। इसमें जैसे कि सम्भावना थी सर्वत्र कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ है। सिवाय केरल के वहां कम्यूनिस्ट बहुमत तथा कांग्रेस अल्प मत में रही है। हिन्दू महासभा जो पुरानी हिन्दूओं की राजनैतिक संस्था है हिन्दू कार्यकर्त्ता एवं हिन्दुत्व के अभाव एवं विश्वासघात से बुरी तरह हारी है। परमात्मा हिन्दू आर्यों की रक्षा करें।

जीवात्मा द्रव्य है या गुण (गतांक से आगे)

इस पर महात्मा कपिल जी ने सांख्य शास्त्र में भली प्रकार से विस्तार पूर्वक सिद्ध किया है कि अभाव से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती।

"नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः।" सां० १—७८

अर्थ—अवस्तु से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती जैसे शशक (खरहे) के सींग नहीं तो उससे कोई वस्तु उत्पन्त ही नहीं होती। जो वस्तु होती है उससे कोई वस्तु उत्पन्न होती है इसको और भी पुष्ट करते हैं:—

"नासदुत्पादो नृशृंगवत्" १।११४

अर्थ—जैसे मनुष्य के सींग नहीं हैं और उनकी उत्पत्ति नहीं होती ऐसे ही जो वस्तु न हो उसकी उत्पत्ति का होना असम्भव है क्योंकि उत्पत्ति के अर्थ प्रत्यक्ष होना है जो वस्तु हो ही नहीं, वह प्रत्यक्ष क्या होगी ? इसके लिये युक्ति देते हैं :—

"उपादाननियमात्" सां० १।११५

अर्थ—चूंकि उपादान कारण प्रत्येक वस्तु का नियत है इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो वस्तु है उसी का प्रत्यक्ष हो सकता जब तक वस्तु उपस्थित न हो उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। इस कारण जब तक भिन्न २ भूतों में किसी को ज्ञान गुण का केन्द्र सिद्ध न किया जावे तब तक वह भूतों के कार्य शरीर या जीवात्मा का गुण हो ही नहीं सकता, चूंकि मूल भूतों में से प्रत्येक भूत ज्ञान से रहित है इस कारण उनके कार्य जीवात्मा में ज्ञान का होना असम्भव है, चूंकि जीवात्मा में ज्ञान का होना पाया जाता है वरन् जीवात्मा का लक्षण, ज्ञान प्रयत्न वाला होना है इसलिये जीवात्मा भूतों का कार्य नहीं, इसके सम्बन्ध में दर्शनों में बहुत सा वर्णन है जिसको हम इस छोटी सी पुस्तक में वर्णन नहीं कर सकते। केवल सारांश सब विषयों का यह है कि जीवात्मा भूतों के कार्य शरीर से भिन्न द्रव्य है। महात्मा गौतम जी ने भी न्याय दर्शन में उसको सिद्ध किया है:—

"दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थ ग्रहणात्
न्या० ३।१।१

अर्थ—चूंकि देखने और स्पर्श (छूने) में एक वस्तु का ज्ञान होता है अर्थात् जिस वस्तु को देखते हैं उसको ही उठाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि शरीर और इन्द्रियों से भिन्न कोई आत्मा है क्योंकि आँखों का काम देखना और खाल (त्वचा) का काम छूना यदि स्वीकार किया जावे तो इस बात का ज्ञान कि जिसको मैंने देखा था उसको उठाया है किस प्रकार होगा—चूँकि इस बात का ज्ञान हमें होता है जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आत्मा है। न्यायदर्शन में इसके सम्बन्ध में कि जीवात्मा है और वह नित्य अर्थात् उत्पत्ति से रहित है बहुत सी युक्तियाँ विद्यमान हैं, जिनका वर्णन इस पुस्तक में होना कठिन है। उपनिषदों में भी जीव का शरीर से भिन्न और नित्य सिद्ध किया गया है देखो छान्दोग्य उपनिषद् में जहां उद्दालक मुनि ने श्वेतकेतु को इस बात का उपदेश किया है कि शरीर के जिस भाग को जीव त्याग देता है वह भाग सूख जाता है, जब सम्पूर्ण को जीव त्याग देता है तो सब सूख जाता है, जीव अलग हो जाने से यह शरीर मरता है जीव नहीं मरता ! जो मनुष्य शरीर के साथ जीवात्मा की उत्पत्ति मानते हैं यह उनका कर्त्तव्य है सिद्ध करें कि जीवात्मा भौतिक है या अभौतिक ? वह शरीर के तत्व से भिन्न किसी का कार्य है या शरीर का गुण है ! जहाँ तक ज्ञान तथा युक्तियों से पता लगता है वहाँ तक तो स्पष्ट सिद्ध है कि जीवात्मा द्रव्य है और चेतन इत्यादि उसका गुण है और वह करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र है। वह पुराण परमेश्वर की अनादि प्रजा है जिस समय से वह शासक है उसी समय से यह उससे शासित है। यह उत्पन्न भूत है और न नाश-

वान् है। भौतिक शरीर उसके आने का मकान या उसके मुक्ति के लिये गाड़ी है और इन्द्रियाँ इस गाड़ी के घोड़े हैं और मन उन घोड़ों की बागें हैं और बुद्धि जो जीवात्मा का गुण है, कोचवान का काम देती है। और संसार की वस्तुएँ जिससे उसे ज्ञान प्राप्त होता है इसका मार्ग है, जिस पर होकर यह आनन्द को प्राप्त कर सकता है। यदि इस विषय में अधिक अन्वेषण की आवश्यकता हो तो दर्शन और उपनिषदों को पढ़िये। उनके विचारों को युक्तियों से अन्वेषण कीजिये तो ठीक पता जीवात्मा की दशाओं का मिल जायेगा। इस स्थान पर केवल स्थालीपुलाक न्याय से दिखलाया गया है।

प्रकृति का अनादित्व

मादे की कदामत

प्यारे पाठक गण! यदि ध्यान की दृष्टि से देखें तो आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक गुणी अपने गुणों का समुदाय हुआ करता है। जिस गुणी का गुण परिणामी होता है वह गुणी भी परिणामी होता है और जिसका गुण सबके सब उत्पत्तिवान् हों वह गुणी भी जन्य हुआ करता है और यह भी प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जिसके मुल्क न हो वह मालिक (अधिपति) नहीं कहला सकता और जिसका मुल्क पैदा शुदा (जन्य) हो वह अनादि मालिक (स्वामी) कहलाने का अधिकार नहीं रखता। क्योंकि जन्य वस्तु का नाश होना आवश्यकीय है। वह वस्तु के उत्पन्न होने से पूर्व और नाश होने के पश्चात् देश रिक्त होगा। इसी प्रकार व्यापक होने का गुण है, जब तक व्याप्य न होगा व्यापक कहला नहीं सकता। इसी प्रकार ज्ञात होने का गुण भी ज्ञान के साथ सम्बन्ध रखता है। प्यारे पाठक गण! प्रकृति का अस्तित्व इस समय प्राकृतिक वस्तुओं के होने से स्वयं सिद्ध है परन्तु सोचना यह है कि प्रकृति अनादि है या सादि (जन्य)? यदि आप यह कहें कि प्रकृति जन्य है तो प्रश्न उत्पन्न होगा कि प्रकृति किस वस्तु से बनी है? उसका उत्तर यह देते हैं कि ईश्वर से अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ईश्वर प्रकृति का निमित्त कारण है या उपादान कारण? यदि कहा जावे कि उपादान कारण है तो इस दशा में ईश्वर के गुण प्रकृति में अवश्य आने चाहियें। क्योंकि उपादान कारण के गुण कार्य में अवश्य होते हैं। जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है तो घड़े की प्रत्येक दशा में मिट्टी का गुण कठोरतादि अवश्य रहेंगे। जैसे महात्मा कणाद कहते हैं कि:—

कारणगुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः ।

वै० १ । १ । २४

कारणके गुणों के अनुसार कार्यके गुण दिखलाई देते हैं और कार्य के गुणों से कारण का अनुमान होता है (४) यदि ईश्वर को निमित्त कारण मानकर उत्पादन कारण से इनकार करोगे तो अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। इस दशा में कारण कार्य भाव का नियम टूट जायेगा। उसके विषय में महर्षि कपिल मुनि कहते हैं:—

नावस्तुनो वस्तु सिद्धिः सां० । १ । ७८

कि अवस्तु से वस्तु सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे खरहेके सींगसे कोई यन्त्र नहीं बनसकता। यदि कोई मनुष्य इस प्रकार की मिथ्या बात को स्वीकार करे तो मुक्ति का होना और दुःखों से छूटना असम्भव हो जायेगा। क्योंकि वर्तमान अवस्था में तो कारण के नाश से कार्य का नाश माना जाता है परन्तु अवस्तु से वस्तु उत्पन्न होने पर कारणकार्यभाव का नियम नहीं रहेगा और न कारण के नाश से कार्य का नाश होगा। इस दशा में रोग का निदान भी न हो सकेगा। हमारे वेदान्ती भाई जो अद्वैत की सिद्धि के लिये प्रकृति से इनकार करने के लिये जगत् के अस्तित्व से भी इनकार करते हैं यह बहुत भारी भूल है। इस पर महात्मा कपिल जी लिखते हैं कि:—

आबाधाददुष्ट कारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।
सां द० १ । ७९

निषेधक न होने से और दोष युक्त कारण से उत्पन्न न होने से अवस्तु नहीं है ! अर्थात् स्वप्न के पदार्थों का भी श्रुति से निषेध नहीं हो सकता। यह पदार्थ ऐसे भी नहीं कि जिस प्रकार पाण्डु रोग का दोष जब नेत्रों में होता है तो शंख में भी पीलापन प्रतीत होता है। स्वप्न के पदार्थ इन्द्रिय दोष से उत्पन्न नहीं होते क्योंकि स्वप्नकाल में इन्द्रियों के दोष की कल्पना करने में प्रमाण का अभाव है, इस कारण स्वप्न के पदार्थों के तुल्य जगत् के पदार्थों को अवस्तु कहना ठीक नहीं। और श्रुति में प्रपञ्च अर्थात् जगत् का अभाव मानने से श्रुति में आत्म आश्रय दोष आ जायेगा। क्योंकि श्रुति भी तो जगत् के अन्तर्गत ही है। जब जगत् मिथ्या है तो श्रुतियां स्वयं मिथ्या हो जायेंगी और जो मिथ्या वाणी से मिथ्या माना जावे वह सत्य होगा क्योंकि दो अवस्तु से एक वस्तु सिद्ध हो जाती है। जैसे संख्या के शून्य को शून्य के साथ गुणा करने से गुणनफल स्थिर हो जाता है या यों समझिये कि सत् के अभाव में असत हैं। असत् के अभाव में फिर सत् होगा और नाश रहितसे तात्पर्य्य सदैव रहने वाला है। इस कारण झूंठा जिसको झूंठ कहे वह सत्य होता है। यहां महात्मा कपिल जी कहते हैं कि :—

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः। सां० द० १ । ८०

भाव होने से उसके संयोग होने से कार्य की सिद्धि हो सकती है और अभाव से किस प्रकार सिद्धि हो सकेगी उसका यह अर्थ कि कारण के लब्ध होने से उसके संयोग से कार्य की उत्पत्ति हो सकती है और कारण के लोप होने से और कार्य के भी न होने से किस संयोग से कार्य की उत्पत्ति होगी

(९) प्यारे पाठकगण ! अब ईसाई लोग जो ईश्वर को आकाश पर मानते हैं उसके दाहिने ओर तख्त पर मसीह को स्वीकार करते हैं (यह मन्तव्य मुसलमान तथा ईसाई के एक समान हैं) अब यदि उनसे पूछिये कि जब तक ईश्वर ने आकाश नहीं बनाया था ईश्वर कहां रहता था ? इसका उत्तर आकाश को नित्य मानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता और हमारे मुसलमान भाई भी आकाशों के मानने वाले हैं यदि उनसे प्रश्न किया जावे कि भाई संसार के उत्पन्न करने से पूर्व ईश्वर किस का स्वामी था ? तो उत्तर होगा कि शून्य का। ईश्वर कहां था ? उत्तर होगा कहीं नहीं। क्योंकि उनके मतमें ईश्वर के सिवाय प्रत्येक वस्तु जन्य (उत्पन्न हुई) है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि सृष्टि से पूर्व कोई वस्तु न थी जिसका ईश्वर स्वामी कहलाता। मानो ईश्वर इन वस्तुओं के उत्पन्न करने के पश्चात् स्वामी बना है और वस्तुओं के नाश के पश्चात् किसी का स्वामी न रहेगा क्योंकि प्रत्येक सांसारिक वस्तु नाशवान है और नाशवान् के स्वामी के पदार्थ किस प्रकार अमर रह सकते हैं, ईश्वर व्यापक नहीं हो सकता क्योंकि व्यापक होने के लिये व्याप्य का होना आवश्यक है और सिवाय ईश्वर के कोई वस्तु अनादि नहीं है तो व्यापक किस प्रकार हो सकता है और व्याप्य अनादि नहीं तो व्यापक कैसे अनादि कहला सकता है ? मानो अनादि व्यापक होने का गुण भी ईश्वर में उत्पन्न हुआ माना जायेगा। ईश्वर सर्वज्ञ है जबकि सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी उस समय ईश्वर किस का ज्ञाता था ? उत्तर होगा कि केवल अपने का। मानो जब सृष्टि उत्पन्न हुई तब ईश्वर में सर्वान्तर्य्यामी का गुण प्रकट हुआ, ज्ञान और ज्ञेय का सम्बन्ध ज्ञाता अर्थात् ज्ञानी के साथ है। यदि ज्ञेय न होता तो ज्ञाता के सिवाय अपने स्वरूप का किस को ज्ञान होता ? मुसलमान तथा ईसाई लोग सिवाय ईश्वर के सृष्टि की आदि में किसी वस्तु को अनादि नहीं मानते इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ नहीं और न ही अनादि हो सकता है। क्यों कि संसार का नाश हो जावेगा तब भी सर्वज्ञ नहीं रहेगा। मानो ईश्वर न अनादि और न सर्वेश्वर है और न सर्वज्ञ न व्यापक ! जब ईश्वर के गुणों का आरम्भ मानोगे तो गुणी जो गुणों का संग्रह होता है स्वयं उत्पत्तिवान् मानना पड़ेगा और गुण परिवर्त्तन-

शील होने से गुणी भी परिणामी होकर नाशवान् हो जावेगा। (७) प्यारे मित्रो ! हमारे बहुत से भाई यह शङ्का करते हैं कि जब ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं तो अनादित्व के गुण तुल्य होने से तीनों समान होंगे और ईश्वर में क्या अधिक उपाधि रह गई ? परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं अर्थात् इस समय ईश्वर प्रकृति और जीव तीनों विद्यमान हैं मानो अस्तित्व के गुण में तीनों बराबर हैं।

क्या तीनों एक हो गये ? आप कहेंगे नहीं, क्योंकि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है और जीव तथा प्रकृति सृष्टि (जन्य) हैं। जिस प्रकार जीव और प्रकृति के अस्तित्व के गुण का समान होना उत्पादक और उत्पत्ति होने के कारण से उनको ईश्वर के तुल्य नहीं होने देता इसी प्रकार जीव और प्रकृति के अनादित्व गुणों में बराबरी होने से अधिष्ठाता और अधिष्ठातृ होना तुल्य नहीं हो सकते, क्योंकि ईश्वर स्वामी है और जीव तथा प्रकृति उसके अधिष्ठान (सम्पत्ति) हैं। ईश्वर व्यापक है और जीव तथा प्रकृति व्याप्य हैं। ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव तथा प्रकृति उसके ज्ञान में हैं मानो इस दशा में ईश्वर के अस्तित्व पर किसी प्रकार का दोष नहीं आ सकता वह सदैव स्वामी तथा संसार का भरण पोषण करने वाला, व्यापक बना रहता है। प्यारे पाठकगण ! सब बुद्धिमानों की इस विषय में एक सम्मति है कि ईश्वर का कोई गुण दूसरे गुण के विरुद्ध नहीं वरन् विरुद्ध धर्म वस्तुएं एक समय में नहीं मानी जा सकतीं तो आप ईश्वर के कर्तव्य के गुण को इस कक्षा तक क्यों खींच ले जाते हो ? जिससे उसके गुण सम्पत्ति की एक कृत्रिम कक्षा को प्राप्त हो जाते हैं और सर्वज्ञता तथा न्याय पर भी धब्बा आ जाता है और व्यापक तो कहला ही नहीं सकता। मानो आप उसके एक गुण के सामने दूसरे गुणों को निर्बल करके गुणी को निर्बल करते हैं ! हमको ईश्वर के प्रत्येक गुण के साथ प्यार (स्नेह) करना चाहिए जिससे ईश्वर के स्वरूप तथा गुणों पर हमारी अज्ञानता के कारण दोष उत्पन्न न हों और बुद्धिमान नास्तिक उत्पन्न न हो जायें क्योंकि इससे अविश्वास का बल बढ़ जाता है। आर्य गण ! एक मनुष्य यह शङ्का करता है कि जब ईश्वर ने जीवात्मा और प्रकृति को उत्पन्न नहीं किया तो ईश्वर को उनका ज्ञान ही न होगा। क्योंकि जो जिस को उत्पन्न नहीं करता उसको उसका ठीक २ ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि चैतन्यस्वरूप जिस स्थान पर उपस्थित होता है यदि वहां पर कोई परदा (आवरण) न हो तो उस को वहां की ठीक २ अवस्था ज्ञात होती है। क्योंकि ईश्वर संसार में प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है, संसार का कोई परमाणु नहीं जिसमें ईश्वर न हो और ऐसा कोई जीव नहीं जिसमें ईश्वर विद्यमान न हो फिर किस प्रकार कह सकते हैं कि ईश्वर को उनका ज्ञान नहीं। यदि मध्य में कोई परदा मान लें तो ईश्वर व्यापक नहीं रहेगा मानो परदे की दूसरी ओर होगा परन्तु ईश्वर व्यापक है, कोई परमाणु उससे रिक्त (रहित) नहीं, तो आप उसको किस प्रकार परदा (आवरण) में रख सकते हैं। जिसके सम्मुख आवरण नहीं और ज्ञान शक्ति वाला है तो अवश्य उसको प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान है।

प्यारे पाठक गण ! बहुत से महात्मा यह कहते हैं कि परमेश्वर ने जीव और प्रकृति को उत्पन्न नहीं किया तो किस प्रकार वह उनका स्वामी बनेगा ? उन का यह कथन भी ठीक नहीं क्योंकि यदि वह स्वामी बना होता तो बनने के द्वारे (वसीले) पर भी शङ्का की जाती जब कि वह स्वामी बना ही नहीं वरन् अनादि है तो यह कहना कि वह स्वामी क्यों बन गया असत्य है। परन्तु स्मरण रहे कि जड़ और चेतन प्रबल और निर्बल का प्राकृतिक शासन है। यथा यदि कोई कहे कि कुम्हार ने मिट्टी को उत्पन्न नहीं किया—किस प्रकार उस मिट्टी का स्वामी कहलावे। और उससे घड़ा इत्यादि जो वस्तुएँ चाहता है बनाता है, वह किस प्रकार मिट्टी का शासक (ईशन करने वाला) बन गया ? स्पष्ट उत्तर होगा कि जड़ होवे से चूंकि मिट्टी ज्ञान नहीं रखती इसलिए चेतन कुम्हार उस पर ईशन करता है और उसको काम में ला सकता है, जो चाहे सो बना सकता है। दूसरे हमको संसार में यह नियम ज्ञात होता है कि

जब किसी चेतन की शक्ति में जड़ शक्ति के गुण अज्ञान और आलस्य आ जाते हैं तो उसको भी दूसरी चेतन शक्ति अधीन कर लेती है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जड़ चेतन की आधीनता में सदैव एक सा रहता है और यह नियम हमेशा रहता है। इसी प्रकार निर्बल पर प्रबल शासन करता है। क्या मनुष्यों ने भैंसों को उत्पन्न किया है जो उन पर शासन करता है और अपनी सम्पत्ति समझता है, कोई नहीं कह सकता कि मनुष्य ने पशुओं को उत्पन्न किया पर पशुओं पर मनुष्य को किसने शासन दिया ? बुद्धि ने, चूंकि मनुष्य में बुद्धि पशुओं से अधिक है इस कारण मनुष्य पशुओं पर शासन करता है। जहां जहां मनुष्य की बुद्धि मनुष्यत्व से गिर जाती है वहां वहां वह शासन से भी गिर जाता है।

चूंकि उनका ज्ञान गुणादि अनादि है इस कारण उसका यह गुण भी अनादि है। पस सबका अनादि स्वामी है और जीव तथा प्रकृति उसका देश और शासित हैं। प्यारे पाठकगण ! चूंकि संसार में मनुष्य को दुःख सुख से काम पड़ता है तो उसका कर्त्तव्य है कि यह ज्ञात करे कि दुःख और सुख कहां से आते हैं जो मनुष्य के सिवाय ईश्वर की किसी वस्तु को अनादि नहीं मानते, उनको मानना पड़ता है कि दुःख और सुख दोनों अपनी इच्छानुसार देता है। फिर बताइये ईश्वर की उपासना कोई क्यों करेगा ? यदि कहा जावे कि दुःख अन्तःकरण के संयोग से होता है तो जो इन्द्रिय ईश्वर से उत्पन्न होवे उसमें ईश्वर का गुण मानना पड़ेगा । यथा जितने स्वर्ण के अलङ्कार बनते हैं वह सब सोना है इस दशा में सुख और दुःख दोनों ईश्वर के गुण हो गये। चूंकि दुःख और सुख दो विरुद्ध गुण हैं यह दोनों एक ईश्वर में रह नहीं सकते। इसके विरुद्ध जब तीन पदर्थों को अनादि मानते हैं तो विषय स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि जब जीव प्रकृति की इच्छा करता है और उससे सम्बन्ध जोड़ता है तो उस सम्बन्ध से प्रकृति के गुण उसमें आ जाते हैं। चूंकि प्रकृति का गुण ज्ञान नहीं। जब जीव का प्रकृति से सम्बन्ध होता है तो प्रकृति की जड़ता जीव में स्वतन्त्रता और ज्ञान को ढक लेती है। इससे जीव प्रकृति के सदृश परतन्त्र और मूढ़ हो जाता है और जब ज्ञान तथा स्वतन्त्रता खो गई तो ईश्वरीय नियम व आज्ञा से सुख का नाश हो जाता है और वह पराधीन होकर इच्छा तो करता है, परन्तु ज्ञान और स्वतन्त्रता से ढक जाने से उसको पूरा करने के द्वारे प्रथम तो जानता ही नहीं, यदि किंचित् जानता भी हो तो भी स्वतन्त्रता के अभाव से कुछ कर नहीं सकता। बस उसकी कामना का होना और उसके पूरा करने के द्वार का न होना उसको अति कष्ट देते हैं।

महात्मा गौतम मुनि ने न्याय दर्शन में दुःख का लक्षण भी यही किया है।

'बाधना लक्षणं दुःखम्' ।न्याय दर्शन ॥

अर्थात् चेतन के लिये स्वतन्त्रता का न होना दुःख है। यथा-यदि किसी मनुष्य को क्षुधा लगे और भोजन उपस्थित हो तो उसको दुःख नहीं कह सकते हैं। परन्तु तब भूख हो और खाना उपस्थित न हो तो उसे दुःख कहा जावेगा। चूंकि जीवों की अल्प शक्ति है और ज्ञान भी न्यून रखते हैं और प्रकृति की तृष्णा से तृप्त नहीं होते वरन् भोग से तृष्णा बढ़ती ही है। जिस प्रकार अग्नि में घृत डाला जाता है तो वह शान्त नहीं होती, बढ़ती ही है, इसी प्रकार मनुष्य को जितनी अधिक आवश्यकता प्रकृति की होती है वह बंधन में पड़ता जाता है।

ईश्वर के संयोग और उसके नियम के अनुसार चलने से सुख मिलते हैं। ईश्वर के ज्ञान शक्ति स्वरूप होने से उसके योग से मनुष्य में ज्ञान और शक्ति बढ़ जाती है और इन शक्तियों से मनुष्य अपनी निर्बलता को ज्ञात करने और उनके द्वारों पर आधिपत्य होने से सुख प्राप्त करता है। मानो प्रकृति के अनादित्व बिना संसार में नियम नहीं चल सकता। और बिना नियम के "अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा' हो जाता हैं। अतः प्रकृति का अनादित्व मानना आवश्यक है, प्राचीन विद्वानों ने भी इस प्रकार स्वीकार किया है। जैसा उपनिषदों में लिखा है:···

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

श्वेताश्वतरो० ॥ ४। ५

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है जो जन्य (उत्पन्न होने वाली) नहीं, जिसमें तीन शक्तियाँ हैं। 'सतो गुण' प्रकाश करने वाली 'रजोगुण' न प्रकाश करने वाली, न ढांपने वाली। 'तमोगुण' ढांपने वाली जिसके स्वरूप से जगत् उत्पन्न किया जाता है। इसके साथ एक और नियम है वह प्राकृतिक नहीं। परन्तु पहली वस्तुओं के फलों को भोगता है और कर्म भी करता है। तीसरी एक और वस्तु है, जो दोनों में रह कर उसके गुणों को ग्रहण नहीं करती। बस यही पहली प्रकृति और दूसरी जीव तथा तीसरी परमेश्वर है। वेद ने भी इसको एक उदाहरण में स्पष्ट किया है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०।

अर्थात् एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हुए हैं और दोनों सदैव रहने वाले हैं, उनमें मित्र भाव भी है, परन्तु उनमें से एक तो उस वृक्ष के फलों को खाता है और दूसरा उसके फलों से सदैव भिन्न रहता है। प्रकृति वृक्ष है और उसमें जीव तथा ब्रह्म दोनों पक्षी रहते हैं। जीव कर्म करता है फल भोगता है, ब्रह्म न कर्म करता है न भोगता है वह कर्मों के फल का देने वाला है। प्यारे पाठकगण! प्रकृति के अनादित्व पर सम्पूर्ण अर्वाचीन एवं प्राचीन दार्शनिकों की एक सम्मति है और वर्तमान काल में पदार्थ विद्या (साइन्स) के ज्ञाताओं ने भी इसका समर्थन किया है। इसके बिना ईश्वर के गुणों में बड़ा दोष आता है। एक यह भी कारण है कि योरुप और अमरीका में नास्तिकपन उत्पन्न होता जाता है। यह विषय प्रतीक्षण प्रकार से भी सिद्ध होता है क्योंकि प्रत्येक वस्तु टूट कर अपने मूल में मिल जाती है। महात्मा श्री कृष्ण जी का कथन है कि:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

गी० २। १६

जो सत् है वह कभी असत् को प्राप्त नहीं होता और जो असत् है उससे सत् नहीं होता। जगत् में नाश के अर्थ उस रूप का लोप हो जाना है, अत्यन्ताभाव से तात्पर्य नहीं। संसार के आदि से लेकर आज तक किसी ने बन्ध्या का पुत्र, आकाश के फूल और खरहे के सीग नहीं देखे होंगे महात्मा कपिल जी कहते हैं:—

'ना सदात्मलाभः न खदात्महानिः" जो वस्तु असत् है उसकी किसी प्रकार उत्पत्ति नहीं हो सकती केवल कार्य अवस्था रूप परिवर्तन होता रहता है और मूल ज्यों का त्यों तीनों काल में एक सा रहता है। प्यारे पाठकगण! नवीन वेदान्ती जब प्रकृति के न मानने से संसार की उत्पत्ति का क्रम ठीक नहीं कर सकते, तब छः पदार्थों को अनादि ठीक बतलाते हैं। यद्यपि वह व्यवहारिक और परमार्थिक का झगड़ा डाल देते हैं परन्तु अनादि व्यवहारिक नहीं होता, व्यवहारिक पदार्थ सदैव मध्य दशा में रहा करता है। इस कारण उनको अनादि मानना तो ठीक है और व्यवहारिक बतलाना झमेले में डालना है, उनका मन्तव्य है कि—

जीवेशौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयाद्वंयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः।

कारिका (शारीरिक भाष्ये)

जीव, ईश्वर और शुद्ध चेतन ब्रह्म, और ईश्वर दोनों का भेद, अविद्या अर्थात् प्रकृति, माया और इसका चेतन से सम्बन्ध, यह छः हमारे अनादि पदार्थ हैं। इनमें जीव और ईश्वर का भेद और माया का चेतन से सम्बन्ध अवस्था या गुण है द्रव्य नहीं। जीवबद्ध आत्मा और आत्मा का नाम है और दोनों एक वस्तु की दो अवस्थायें हैं इस दशा में भी ३ वस्तुएं रह जाती हैं। शुद्ध चित्त ब्रह्म अर्थात परमात्मा, जीव जो अल्पज्ञ होता है और माया अर्थात् प्रकृति। प्यारे

पाठक गण ! वहां पर वेदान्ती लोग ये कहते हैं कि हम जो अनादि मानते हैं वह व्यवहारिक बात है यथार्थ में हम एक ही पदार्थ को अनादि मानते हैं हमने पाँच पदार्थों को अनादि सान्त बतलाया है और केवल एक को अनादि अनंन्त माना है। यदि महात्मा शंकराचार्य के सिद्धान्तों को न समझने का कारण है क्योंकि आपने पदार्थों को काल से अनादि माना है परन्तु पाँच को देश योग से सान्त बतलाया है। आदि और अन्त दो प्रकार का होता है एक देश योग से दूसरा कालयोग से। चूंकि काल से जो अनादि होगा वह काल से सान्त नहीं होगा और देश से ब्रह्म को छोड़कर शेष पदार्थ एक देश में रहने से सान्त हैं और ब्रह्म देश से भी अनन्त है। इस कारण अनादि और अनन्त और शेष अनादि सान्त हैं। प्यारे पाठक गण ! जहाँ तक आप पता लगावेंगे प्रकृति को अनादि माने बिना व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती। इसलिये तीन पदार्थों को अनादि और नित्य मानना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है।

जीवात्मा दुःख सुख का अनुभव करने वाला है, प्रकृति जीव का अधिकरण (आधार) और परमात्मा सुख का अधिकरण अर्थात् केन्द्र है। इसलिये प्रकृति की उपासना से जीव मिथ्या ज्ञान को पाता है और मिथ्या ज्ञान से बद्ध होकर दुःख भोगता है। और परमात्मा की उपासना से मिथ्या ज्ञान रूप अन्धकार नाश हो जाने से और ज्ञान स्वरूप सूर्य के प्रकाश होने से बद्ध (बन्धन) से छूटकर मुक्ति (परमानन्द) को प्राप्त होता है और जब तक इन पदार्थों को अनादि न माना जावे तो एक को भी अनादि सिद्ध करना असम्भव हो जायगा।

⁂

"ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) की आवश्यकता"

प्रिय पाठक गण ! जब हम संसार में मनुष्य की अवस्था को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य की प्रत्येक इन्द्रिय दूसरे देवता की सहायता की आवश्यकता रखती दिखलाई देती है। जैसे कि मनुष्य की आँख बिना सूर्य की सहायता के कुछ भी नहीं देख सकती। यद्यपि मनुष्य ने दीपक आदि प्रकाश के बहुत से पदार्थ बनाये हैं, परन्तु उनसे मनुष्य इतना काम नहीं ले सकता जितना कि सूर्य से। और दीपक आदि में जो कुछ प्रकाश होता है, वह भी सूर्य की किरणों से उत्पन्न होता है, और सूर्य की किरणों के भाग को छोड़कर शेष जितने तेल बत्ती दीपक इत्यादि हैं वह प्रकाश से नितान्त रहित हैं। जिससे विदित होता है कि आँख बिना सूर्य की सहायता के निकम्मी है, यदि संसार में सूर्य न होता तो आँख का होना न होना बराबर था। परन्तु यदि आंख को न बनाया जाता, तो सूर्य के प्रकाश से लाभ होना भी सम्भव न था। यद्यपि सूर्य की उष्णता से बहुत से कार्य निकलते हैं, परन्तु प्रकाश केवल आँख की सहायता का ही कार्य कर सकता है। अब दूसरे कान की ओर देख लीजिये। वह आकाश बिना नितान्त निकम्मा है। बहुधा देखा होगा कि मैदान में दूर तक का शब्द सुनाई नहीं देता। इसका कारण ये है कि शब्द आकाश में वायु के साथ गमन करता है, जहाँ आकाश न हो वहां वायु के न चलने से शब्द भी नहीं चल सकता। अब यदि संसार में आकाश न होता तो कानों का होना न होना बराबर था। इसी प्रकार त्वचा को देख लीजिये, वह बिना वायु के नितान्त निकम्मी हो जाती है। जब वायु चलता है तब उसके साथ उष्णता अथवा शीतलता के परमाणु भी होते हैं और वायु के साथ त्वचा को स्पर्श करते हैं। यदि वायु न हो तो उसके बिना त्वचा का होना न होना बराबर है, इसी प्रकार रसनेन्द्रिय अर्थात् जिह्वा को जल की आवश्यकता है। यदि जल न होता तो रसनेन्द्रिय को इसका ज्ञान होना असंभव

हो जाता । और नासिका को सुगन्धि और दुर्गन्धि के लिये पृथिवी की आवश्यकता है ।

प्रिय पाठकगण ! उपरोक्त कथन से विदित हो गया कि मनुष्य की प्रत्येक बाह्य इन्द्रिय बिना सहायता के कार्य नहीं कर सकती । अब विचारना चाहिये कि क्या आन्तरिक इन्द्रिय बिना सहायता के कार्य कर सकती है या नहीं ? जहां तक विचार किया जा सकता है वहां तक विचार करने से विदित हुआ है कि बुद्धि को भ. सहायता की आवश्यकता है । क्यों कि जिस प्रकार नेत्रों की दृष्टि स्थान और प्रकाश के अनुसार घटती बढ़ती रहती है । जैसे कि एक मनुष्य दीपक के प्रकाश में देखता है तो उसकी दृष्टि बहुत ही पास के पदार्थों को देखती है वह उनकी सूक्ष्म बातों को भी नहीं समझ सकता । परन्तु चंद्रमा के प्रकाश में वह दीपक के प्रकाश की अपेक्षा विशेष दूर तक देख सकता है । और सूर्य के प्रकाश में बहुत से दूर दूर के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । साथ की साथ स्थान तथा वस्तु की ऊँचाई निचाई के कारण दृष्टि में बहुत कुछ अन्तर हो जाता है । यही दशा बुद्धि की है । जिस प्रकार का प्रकाश अर्थात् विद्या प्राप्त होती है उसी प्रकार के संस्कार जम जाते हैं । कभी तो बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ के अन्वेषण में लग जाती है और कभी स्थूल से स्थूल वस्तु को भी अन्ध परम्परा अथवा अनुकरण की दृष्टि से मान लेती है । तनिक भी विवेचन शक्ति नहीं रहती । जिस प्रकार दीपक का प्रकाश आंख को काम में सहायता देता है और उससे कुछ न कुछ किसी को हानि भी पहुँचती है । और दीपक के प्रकाश में बैठने वाले मनुष्य को सर्वदा वायु का भय लगा रहता है । यद्यपि वह अपने दीपक को भी वेगसहित वायु लगती देख कर तथा दीपक के प्रकाश को कांपता हुआ मालूम करके अपने प्रकाश की निर्बलता को जान जाता है, परन्तु जब वह अपने घर के बाहर की ओर दृष्टि डाल कर देखता है उस अवस्था में या तो उसे अंधेरा दिखाई पड़ता है या किसी और का भी दीपक जलता हुआ प्रतीत होता है । अंधकार की दशा में तो वह अपने आपको सबसे उत्तम मान लेता है और दीपक जलता हुआ देखकर यह विचार कर लेता है कि जैसी मेरी विचलित अवस्था है वही सारे संसार की होगी । इन दोनों अवस्थाओं में उसे सत्य की जिज्ञासा नहीं उत्पन्न होती । जब सत्य की जिज्ञासा ही नहीं, तो सत्य का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ? जब सत्य का ज्ञान न हुआ तो वह असत्य प्राप्त करने का आदी (आश्रित) हो जाता है ।

प्रिय पाठकगण ! दीपक के प्रकाश में यात्री अपनी यात्रा पूरी नहीं कर सकता, क्यों कि थोड़ी सी पवन लग जाने से दीपक का डर रहता है । तेल और बत्ती के बुझ जाने से दीपक बूझ सकता है । वर्षा और आंधी में तो दीपक ठहर ही नहीं सकता, ऐसी अवस्था में जिसकी यात्रा केवल दीपक के प्रकाश पर निर्भर हो, वह किस प्रकार शान्ति की मन्जिल (मार्ग) की ओर निडर और निर्भय होकर चल सकता है ? दूसरे दीपक का प्रकाश भी तो बिना अग्नि के नहीं प्रकट हो सकता, और अग्नि सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न होती है तो यों कहना चाहिये कि दीपक के प्रकाश का होना भी सूर्य्य के बिना असम्भव है । सुतराम् यात्री के लिये जिस प्रकार सूर्य्य का प्रकाश आवश्यक है, इसी प्रकार सत्य के मार्ग चलने के लिये ज्ञान के सूर्य्य का होना आवश्यक है जबकि प्राकृतिक नियम ने प्रत्येक इन्द्रिय का सहायक देवता उत्पन्न किया, तो सर्वोत्तम तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ जानने योग्य औज़ार (यन्त्र) का कोई सहायक न बनाना यह बात मानने योग्य नहीं प्रतीत होती, और न ही मानी जा सकती है । और जिस प्रकार आंख के पश्चात् सूर्य नहीं उत्पन्न होता, इसी प्रकार बुद्धि के पश्चात् ज्ञान का सूर्य भी नहीं उत्पन्न हो सकता । इसी कारण आवश्यक प्रतीत होता है कि ईश्वर द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों के जताने के लिये कोई ज्ञान का सूर्य्य अवश्य बनाया गया होगा, नहीं तो परमेश्वर के पूर्ण ज्ञानी होने पर भूल का दोष लगता है ।

क्रमशः

पठन पाठन और स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

*

उपनिषद्-आर्य-भाष्य

(महामहोपाध्याय स्व० पं० आर्यमुनि कृत भाष्य)

मंत्रों का पद पदार्थ और विस्तृत भूमिका सहित आठ उपनिषदें भाषानुवाद सहित। सजिल्द ७०० पृष्ठों का ग्रन्थ मूल्य ६) मात्र।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह सचित्र

ऋषि के प्रामाणिक ७ असली फोटो सहित २० पुस्तकों का अपूर्व संग्रह। प्रत्येक आर्य और समाजों को संग्रहित करना और पढ़ना आवश्यक है। मूल्य सजिल्द ग्रन्थ का ४॥) रियायती मूल्य ३॥)

वाल्मीकि रामायण सचित्र

(धारावाही हिन्दी मूल संस्कृत सहित)

सम्पादक—श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ज्वालापुर म० वि०
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

मूल श्लोक सहित संशोधित प्रक्षिप्त और अनावश्यक कथा तथा साम्प्रदायिक भावनायें निकालकर शिक्षाप्रद कथा-वार्ता के उपयुक्त संस्करण विवाहादि में उपहार देने योग्य। सुन्दर सजिल्द पुस्तक मूल्य १२) रियायती मूल्य ८) मात्र।

संस्कार विधि विमर्श

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० का०)

चिकित्सा-प्रजनन और प्रजाशास्त्र के आधार पर संस्कार विधि की व्याख्या मूल्य ३) रियायती मूल्य २)

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० कां०)

संतति नियमन आदि विषयों के साथ साथ दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा के रूप में सरल और प्रामाणिक पुस्तक मूल्य ३) मू० रियायती २)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

(विद्वान तथा स्वाध्याय प्रेमियों ने पसन्द की हैं)

आनन्द गायत्री कथा ॥)
प्रभु दर्शन २॥)
सुख का साधन ≡)
प्रभु भक्ति १।), सजि० १॥)
तत्वज्ञान ३)
एक ही रास्ता ॥=)

स्व० स्वामी वेदानन्द सरस्वती कृत

स्वाध्याय संदोह ४)
स्वाध्याय संग्रह २)
वेद परिचय ।=)
सावित्री प्रकाश १)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें

ओंकार निर्णय १॥)
योगासन सचित्र १॥)
वैदिक प्रार्थना १॥)
दयानन्द चित्रावली २।)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें १।)
आर्य समाज क्या है ? ॥)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य
गोहत्या महापाप ॥)
सत्यार्थ प्रकाश शंका-समाधान ।)
वीर बच्चों की कहानी ।॥)
गृहस्थाश्रम ॥=)
आर्य समाज का इतिहास १।=)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक, आर्य, ओ३म्, नमस्ते की व्याख्या ॥)
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म ॥=)
वैदिक संध्या रहस्य ।=,
वैदिक यज्ञ रहस्य ।=)
सामाजिक पद्धतियां ।=)
गुरुधाम (नाटक) ॥)
स्वामी दयानन्द और वेद ।)
आदर्श सुधारक दयानंद ॥=)
बाल शिक्षक ।=)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध ≡)
दर्शनानंद ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध २॥) उत्तरार्द्ध २॥)

विवाह और विवहित जीवन

लेखक गंगाप्रसाद उपाध्याय M. A.

पण्डित जी की Marriage and Married life पुस्तक का यह अविकल अनुवाद श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक जी ने किया है। पुस्तक विवाह आदि शुभ अवसरों पर उपहार देने योग्य है। आकर्षक टाइटल। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पताः— **गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ६**

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरिज की पुस्तकें

१ आलू की खेती	॥।)
२ टमाटर की खेती	॥)
४ गोभी की खेती	॥)
४ जीरा, धनिया, अजवाइन	॥।)
५ तरकारियों की खेती	१॥)
६ अच्छे बीज	॥।)
७ अच्छी खाद	२॥)
८ कपास की खेती	१)
९ गन्ने की खेती	॥।)
१० फूल फुलवारी	२॥)
११ धान की खेती	१॥)
१२ संतरे की बागवानी	२॥)
१३ आम की बागवानी	३)
१४ आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५ तिलहन की खेती	॥।=)
१६ सोयावीन की खेती	।)
१७ तम्बाकू की खेती	॥)
१८ खेत की तैयारी	२।)
१९ फसल रक्षक औषधियां	२।)
२० व्याधियों की रोकथाम	१॥)
२१ खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
२२ फलों की खेती	३॥)
२३ पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४ तरकारी सागभाजी-खेती	३॥)
२५ ट्यूब वैल गाइड	३॥)
२६ ट्रैक्टर प्राइमर	१)
२७ पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८ उन्नत सिंचाई	२)
२९ खेती और ट्रैक्टर	६)
३० फल संरक्षण	२॥)

नोटः— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५॥।=) होती है कसाथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ॥—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ़्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली
में छपाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेद प्रकाश

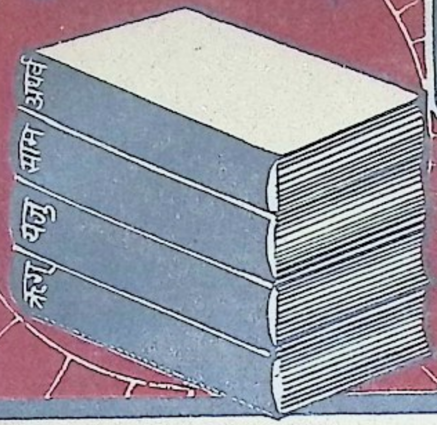

वर्ष ५
अंक १०

वैसाख शक सं० १८७६, मई १९५७, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

मू०नये पैसे१६, वार्षिक २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

प्रभु की विभूतियाँ

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३।

अर्थ—(धाता नः शम्) सब पोषक वस्तु हमें शान्ति दे। (धर्ता नः शम्) धारक प्रभु हमें सुख दे। (उरूची 'स्वधाभिः शम् नः भत्रतु) भूमि अन्नों तथा जलों से हमें शान्ति दायक हो (बृहती रोदसी शं) बड़े सूर्य और अन्तरिक्ष कल्याणकारक हों (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत हमारे लिये सुख दायक हों। (देवानां सुहवा नि नः सन्तु) विद्वानों के सद् उपदेश हमारे लिये हितकर हों।

पोषण और धारण करने वाला ईश्वर हमारे लिये शान्तिकारक हो। वह पृथिवी अन्नादि से हमारे लिये शान्तिकारक हो। प्रकाश सहित अन्तरिक्ष शान्तिकारक हो। मेघ हमें शांतिदायक हों विद्वानों के सुन्दर आगमन हमें शान्तिकारक हों।

मध्य प्रदेश ईसाई मिश्नरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिश्नरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए। इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिश्नरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है। भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों की इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी। अतः इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करें एक प्रति का मूल्य ॥) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मंगाने पर ।=) अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खर्च माफ़।

वेदप्रकाश का आगामी वर्ष का विशेषांक

पं० लेखराम आर्य पथिक लिखित

सृष्टि का इतिहास

श्रावणी महापर्व पर प्रकाशित होगा। जिसका मूल्य ८) होगा। वेदप्रकाश के ग्राहकों को १) में डाक खर्च सहित मिलेगा। इसलिए आगामी वर्ष के चन्दे २) और १) सृष्टि का इतिहास के लिए मिलाकर ३) भेजने चाहिए।

वेदप्रकाश के पिछले दो विशेषाँक

बाल्मीकि रामायण

सम्पादक :—श्री प्रेमचन्द विद्यासागर भास्कर
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय
मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को ८) में।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

इस संग्रह में स्वामी की २० पुस्तकों का संग्रह है। मूल्य ४॥) रियायती ३॥)

गोविन्दराम हासानन्द वेदप्रकाश कार्यालय,
नई सड़क, देहली।

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक-प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं। आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं' वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है। वैदिक सूक्तों के प्राय ४०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है।'

मिलने का पताः—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थी

कृत कुछ प्राप्य पुस्तकों के नये संस्करण

उपनिषद् कथा	१।)
मातृशक्ति का वैदिक स्वरूप	१=)
मनुष्य के कर्तव्य	१=)
गायत्रीमहत्व	१)
THE GRANDEUR OF GAYATRI	१॥)

मिलने का पता—

(१) श्र रामलाल मलिक
५/६० कनाट सरकस, नई देहली

(२) गोविन्दरम हासानन्द,
४४०८ नई सड़क, देहली।

धन तन वचन से यज्ञ करो

लेखक:—स्वर्गीय वेद शास्त्रज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती

ओ३म् । यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ॥
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ऋ. २।२।१

(जातवेदसम्) जातवेदा: (अग्निम) अग्नि को (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (वर्धत) बढ़ाओ। (हविषा) हवि, धन (तना) तन अथवा सन्तान और (गिरा) वाणी से (समिधानम्) एकरस देदीप्यमान (सुप्रयसम्) उत्तम प्रयासी (स्वर्णरम्) मनुष्यों के सुखदाता (द्युक्षम्) प्रकाशवासी तथा (वृजनेषुधूर्षदम्) पापों में डराके बिठाने वाले (होतारम्) महादानी का (यजध्वम्) यज्ञ करो।

वैदिक धर्म्म यज्ञप्रधान धर्म्म है। यज्ञ को निकाल दो, तो वैदिक धर्म्म निष्प्राण हो जायेगा। पूर्वमीमांसा दर्शन वाले तो धर्म्म का अर्थ ही यज्ञ करते हैं। अर्थात् धर्म्म और यज्ञ एक पदार्थ हैं। वेद में भी कुछ ऐसी ही बात कही गई है —

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । (य० ४१।१६) =
अध्यात्मतत्त्ववेत्ताओं ने यज्ञपुरुष की यज्ञ के द्वारा पूजा की, और यही मुख्य धर्म्म हुए।

यज्ञ करना जब धर्म्म हुआ, तो प्रश्न है—यज्ञ है क्या ? इसके सम्बन्ध में किसी दूसरे मन्त्र की व्याख्या में लिख चुके हैं। उसको सामने रखते हुए कहा जा सकता है कि यज्ञ का प्रधान भाव आत्मसमर्पण है। तब

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निम् का अर्थ हुआ 'आत्मसमर्पण' के द्वारा सर्वज्ञ भगवान् को बढ़ाओ अर्थात् उसकी महिमा का विस्तार करो।

यद्यपि भगवान् की महिमा अक्षुण्य है, नित्य है, वृद्धि ह्रास से परे है, किन्तु नास्तिकों को आस्तिक बनाना मानों उसकी महिमा को बढ़ाना है। वेद का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि दस्यु को, नास्तिक को, अमन्तु को यज्ञ से, आत्मसमर्पण से, प्रीति से आस्तिक बनाओ। अत्याचार और क्रूरता से नहीं

यज्ञ में क्या क्या सामग्री चाहिये ? इसमें

यजध्वं हविषा तना गिरा

हवि से, तन से, सन्तान से और वाणी से यज्ञ करो। जो वस्तु दी ली जाये, उसे हवि कहते हैं। धन ही लिया दिया जाता है। इस वास्ते हवि वास्तव में धन है।

परोपकार के कार्यों में धन देना यज्ञ है। धर्म्मप्रचार, विद्याप्रचार में धन का व्यय करना। संसार में साधारण रीति से धन का मोह बहुत होता है, अतः यज्ञ में सब से पहले धन का त्याग करो। मीमांसक कहते हैं—देवतोद्देश्येन द्रव्यत्यागो यागः—देवता को लक्ष्य करके द्रव्य का देना याग है। अर्थात याग में त्याग की भावना प्रधान है सबसे पहले सांयोगिक पदार्थों को ही सरलता से त्यागा जा सकता है, अतः यहां सबसे पहले धनत्याग की बात कही है। सांयोगिक—स्थूल सांयोगिक—घर, घोड़ा, गौ, रुपया, वस्त्र, पात्र संपत्ति का मोह जब टूटता है तब आत्मा और देह के भेद का भान होने लगता है, यह भी एक प्रकार का धन ही है, अतः इसे भी धर्म्ममार्ग में लगा देने की भावना जागती है। वाणी का त्याग बहुत कठिन है। मनुष्य त्याग करता है किन्तु उसकी चर्चा का त्याग नहीं करता है। इस चर्चा का त्याग कर देना, नेकी करना और दरिया में डाल देना है—वाणी का त्याग। जब इस प्रकार इन तीनों से योग किया जायेगा, तो वह योग पूर्ण होगा। (स्वाध्याय सन्दोह से)

कुम्भ मेले पर पाखण्ड खण्डन

(विमलचन्द्र शर्मा "विमलेश")

आया ऋषि आया दयानन्द,
अद्भुत सन्यासी आया ।
कौलाहल सा छा गया कुम्भ में,
विभु विश्वासी आया है ॥१॥
कहता था कोई योगी आया है,
त्यागी है, बाल ब्रह्मचारी।
वेद ज्ञाता है ज्ञानी है,
कोई कहता था तपधारी ॥२॥
कुछ पंथी कहते थे स्वामी भी,
नूतन पंथ चलायेगा ।
कुछ कहते थे यह बाबा जी,
अपना प्रपंच फैलायेगा ॥३॥
है पाखण्डी कह साधकगण,
कुछ जनता को भड़काते थे ।
अपने अपने मुंह से अपनी सी,
बात सभा कह जाते थे ॥४॥
तो भी अनेक भक्तों के दल,
दर्शन हित आते जाते थे ।
अपने स्वामी की वाणी धारा में,
न्हाते तर जाते थे ॥५॥
अवतारवाद चक्रांकण छापे,
कंठी, हाथों की माला—
का खण्डन करता जाता था,
गंगापर स्वामी मतवाला ॥६॥
आते हर्षाते भक्त हृदय,
ऋषि के विचार सुन जाते थे ।
कितनों के मन के बन्द,
ज्ञान के ताले झट खुल जाते थे ॥७॥
कितने अन्तर विद्रोही,
स्वामी के सेवक बन जाते थे ।
गलहार पिन्हाते जो लेकर,
गाली स्वामी जी को आते थे ॥८॥
संसार पथ पर कितने जन,
ना समझी में अरि बन जाते ।
मिल जाता सत्य विचार पुनः,
दो हृदय वेग से मिल जाते । ६॥

(ऋषि गाथा महाकाव्य से उद्धृत)

बाल शिक्षा

(ले० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

त्वमगदश्चर । (अथर्व० ४।१७।८)

(त्वम्) तू (गदः) निरोग 'रह कर' (चर) विचर।

भावी भारत के निर्माताओ !

वेद की यह सूक्ति आपके लिये एक आज्ञा दे रही है. स्वस्थ रहो ।' वैद्यक के ग्रन्थों में स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार दी है:—

समदोषः समग्निश्च समधातु मलक्रियाः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वास्थ्य इत्यभिधीयते ॥
(सु० सू० १५।४४)

स्वास्थ्य वह दशा है जिसमें मनुष्य के वातादि दोष सम हो । अच्छी भूख लगती हो। खाया हुआ अन्न ठीक प्रकार पच जाता हो । रस, रक्त, मांस आदि सप्तधातुएं ठीक प्रकार बनती हों। मल विसर्जन आदि कार्य ठीक समय पर होता रहता हो। कपोलों पर गुलाबी, मुख मण्डल पर आभा और तेज आंखों में ज्योति तथा आत्मा, इन्द्रियां और मन प्रसन्न हों।

अच्छा स्वास्थ्य एक महान् सम्पत्ति है । यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो धन धान्य, ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि आदि किस काम के ? एक व्यक्ति धन धान्य से पूर्ण है, महान विद्वान् है, उसका यश तथा कीर्ति भी दशों दिशाओं में व्याप्त है, परन्तु यदि वह स्वस्थ नहीं तो उसका जीवन भार स्वरूप है । रोगी व्यक्ति जब सांसारिक सुखों को भोगने में ही असमर्थ है तो वह मोक्ष को कैसे प्राप्त कर सकता है। इसीलिये हमारे शास्त्रकारों ने कहा है :—

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

आरोग्य ही धर्म. अर्थ काम और मोक्ष प्राप्ति का प्रधान साधन है ।

स्वस्थ बनने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन, शुद्ध सात्विक आहार, नियमित व्यायाम तथा प्राणायाम, शुद्धाचार, शुद्धविचार तथा सदाचार आदि अत्यन्त आवश्यक है ।

स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट व्यक्ति आकर्षण का केन्द्र बन जाता है । जो व्यक्ति उसके सम्पर्क में जाता है वह भी उससे प्रेरणा लेकर स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनता है । स्वस्थ व्यक्ति सब पर स्वस्थ्य और शक्ति की किरणें फैलाता है, अतः स्वस्थ रह कर विचरण करो, घूमो ।

युवको सावधान

प्रेम कुमार पाण्डेय 'प्रेमी' सिद्धान्त शास्त्री आर्य ट्रेडिंग कं० सदर बाजार आष्टा (भोपाल)

(दीर्घ काल के पश्चात हम प्रेमी जो का यह प्रेरणास्पद और मार्ग दर्शक गम्भीर लेख प्रकाशित कर रहे हैं। श्री प्रेम कुमार एक अल्पवयस्क युवक होते हुए भी गम्भीर विचारक एवं दार्शनिक लेखक हैं जो कि हमारे अन्य युवकों के लिये प्रेरणास्पद बात है। आशा है हमारे युवक पाठक इस लेख की महत्ता व उपयोगिता पर मनन करके पूरा लाभ उठायेंगे।)

इस सुप्रसिद्ध और सुस्पष्ट तथ्य को बार-बार दोहराने से कोई लाभ नहीं कि भारतवर्ष अध्यात्म प्रधान देश है, जहाँ के दर्शन, साहित्य एवं जीवन पर आध्यात्मिक. धार्मिक एव नैतिक तत्वों का स्पष्ट प्रभाव जमा हुआ है। हर देश के पास अपनी एक विशेषता होती है जिसके लिए संसार उसे सदैव याद करते हुए उसकी उस विशेष विशेषता से प्रेरणा लेता है। भारत की यही प्रमुख विशेषता है कि आदि काल से जब से संसार बना है, तभी से अब तक हमारे देश में धर्म, दर्शन और आध्यात्मवाद को प्रमुख स्थान मिलता रहा है।

यही कारण है कि भारत के सभी महापुरुषों के जीवन और कार्यों पर धर्म व आध्यात्मवाद का किसी न किसी रूप में प्रभाव रहा है—चाहे वह महापुरुष किसी भी क्षेत्र में क्यों न महान् रहा हो। स्वामी विवेकानन्द जी तो कहते थे कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है कि जहाँ के साधारण से साधारण मनुष्य भी दाशनिक समस्याओं पर चर्चायें किया करते हैं। एक बार पश्चिमी देशों में भ्रमण करते समय स्वामी जी से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था कि—'स्वामी जी, आप अपने देश में ऐसा उपदेश न कर, हमें उपदेश देने क्यों आये हैं?' तो स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा—'आपके देशों में अध्यात्मवाद की अत्यन्त आवश्यकता है, जब कि भारतीयों को इसका अजीर्ण हो रहा है।

ऐसे महान धार्मिक और आध्यात्मिक ऋषि-मुनियों की पावन भूमि में जब हम आज आध्यात्मिकता का दिवाला पिटवा देते हैं तो आश्चर्य के साथ दुःख भी होता है। जब कि यूरोप भौतिकवाद से घबरा कर आत्म शांति, आध्यात्मिकता और सत्य धर्म की खोज के लिये भाग कर भारत की ओर आ रहा है, हमारे युवक भूखे भिखारियों की भांति अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़ कर भौतिकवाद की ओर भागे जा रहे हैं। उन्हें हर बात में पश्चिमी दृष्टिकोण ही अच्छा लगता है, क्योंकि भारतीय मूल सभ्यता को तो वे जंगली, भीलों और नंगे गडरियों की सभ्यता मानते हैं। इनका दिल और दिमाग, जो कि डाल्डा खा-खा कर और सिगरेट, शराब तथा सिगार पी कर Made in England हो गया है, यह सोच ही नहीं सकता कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता भी कुछ महत्व, आदर और अर्थ रखती हैं।

सिनेमा के कल्पना-पूर्ण, मनगढ़न्त झूठे किस्सों को परदे पर देख कर आज का युवक उसे अपने यथार्थ वास्तविक जीवन में लाना चाहता है। जब कि वह जानता हैं कि यह सब फिल्मी दुनिया में ही सम्भव है। भौतिकवादी और विलासी जीवन की तड़क-भड़क देख कर वह वास्तविकवा को उसी प्रकार भूल जाता है जैसे सिनेमा देखने वाला परदे पर मनोरंजक दृश्य देखते हुए यह भूल जाता है कि वास्तव में सामने एक सफेद झक परदा ही है। बाकी यह खेल तमाशा तो सिर्फ अन्धकार में देखने वाला फिल्मी तमाशा मात्र है। प्रकाश होते ही यह एक मामूली सफेद परदा रह जायेगा। यह सांसारिक

एवं भौतिक माया भी फिल्मी तमाशों की तरह अस्थायी और नाशवान जंगल है, जो अज्ञान रूपी अन्धकार में मजेदार दिखाई देकर सब को भुलावे में डाल रही है। ज्ञान रूपी प्रकाश होते ही हमारी आंखें चकाचौंध हो जाएंगी और फिर हमें एक झटके के साथ वास्तविकता से जा टकरायेंगे। तब हमें संसार रूपी सिनेमा हाल का गेट कीपर बाहर निकाल देगा और तमाशों का नकली माया जाल अन्धकार में रह जाएगा। तभी समझदार पूर्वजों ने इस अन्धकार स घबरा कर-चिल्ला कर प्राथना की थी कि—'तमसा मा ज्योतिर्गमय' हे प्रभो ! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो।

क्षणिक ओर झूठे आनन्द में मस्त रह कर अमर और सच्चे आनन्द को भूल जाने वाले युवकों से हम इस लेख में केवल तीन प्रश्न करेंगे। यदि उन्होंने इन तीनों प्रश्नों को बड़े-बड़े अक्षरों में लिख अपने कमरे में लगा रोज इस पर विचार किया तो भी यथेष्ट पथ-प्रदर्शन और लाभ होने की सम्भावना है। हमारा पहला प्रश्न है :—

मैं कौन हूँ ?

हम चाहे कुछ भी कर रहे हों, कहीं जा रहे हों या कैसे ही हों, हमें यह ध्यान अवश्य रहता है कि 'मैं' हूं। 'मैं' का यह अनुभव अर्थात् 'अहम् के अस्तित्व का अनुभव हमें सदा रहता ही है। अतः अपने अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। और यदि कोई इन्कार करे भी तो माना नहीं जा सकता। जैसे कोई व्यक्ति मकान में मौजूद हो और किसी मित्र के पुकारने पर स्वयं ही चिल्ला कर कहे, 'मैं नहीं हूँ !' तो भला उसके इस कथन को कौन स्वीकार करेगा ?

संक्षेप में हम 'मैं' के अस्तित्व की सिद्ध पर प्रकाश डालेंगे। जब हम यह अनुभव करते है कि 'मैं' हूँ तो एकदम मुख्यतः तीन प्रश्न उठगे कि—कहाँ हूं, कैसा हूँ और क्या हूं ? यह मजेदार बात है कि एक विद्वान बड़े बड़े विषयों का पण्डित होते भी स्वयंके विषय में कुछ विशेप नहीं जानता, सिवाय इसके कि 'हाँ 'मैं' हूं'। बाह्य एवं अन्य विषयों के धुरन्धर विद्वान मिल सकते है पर आन्तरिक स्थिति एवं इस 'मैं' के विषय में जानकारी रखने वाले बहुत कम हैं। यह एक आश्चर्य की बात है। इसका कारण यह है कि हम इस संसार में आ कर सांसारिक दृश्यों पदार्थों और चमक-दमक में खोकर अपने आप को वैसे ही भूल जाते हैं, जैसे कोई ग्रामीण शहर में जाकर नई-नई वस्तुओं के देखने और उनका आनन्द लेने में अपने असली स्वरूप को भूल बैठता है।

लेकिन हम विचारक हैं, मनस्वी हैं और मननशील होने से ही हमारा नाम मनुष्य रखा गया है। पशु और पुरुष मे अन्तर होता है। पशु केवल स्वाभाविक ज्ञान रखता है, उसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं सोच-विचार सकता। मनुस्मृति में मनु मुनिराज लिखते हैं कि—'आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम' अर्थात् आहार, नींद, डरना और विषय-भोग करना मनुष्य और पशु में समान रूप से पाया जाता है यांद कोई फर्क है कि जो दोनों में इन्सान और हैवान का अन्तर करता है, तो वह है बुद्धि एवंज्ञान। यदि मनुष्य के पास विशेष बुद्धि न होती तो फिर इसमें और पशु में कोई अन्तर ही न रहता और जिन मनुष्यों में बुद्धि नहीं या जो बुद्धि से काम न लेकर देखा देखी या अन्धानुकरण करते हैं उनमें और पशु में कोई भेद नहीं रह जाता।

शायद ही कोई मनुष्य हो जो अपने आप को खुशी से पशु यानी हैवान कहलाना चाहे या पसन्द करे। स्पष्ट कोई एसा व्यक्ति न हो लेकिन अत्यधिक आश्चर्य है तो इस बात का कि ऐसा न चाहते हुए भी लोग ऐसा काम ही करते हैं कि उन्हें पशु ही नहीं बल्कि सही मायनेमें नर-पिशाच कहा जाना चाहिए। और ऐसे कार्य करते हुए भी चाहेंगे यह कि उनका आदर हो, उन्हें सुख मिले, उनकी समृद्धि दिन दूनी बढ़ती जाए और वे मानवता के 'होलसेल' एजेन्ट बन जायें। वैदिक आर्य ऋषियों ने वैदिक त्रैतवाद प्रस्तुत किया था-ईश्वर जीव और प्रकृति। हमारा आधुनिक जीव (युवक) ईश्वर की जगह 'हुस्न' को, जीव की जगह 'इश्क' को, जीवन और प्रकृति की

जगह 'मौत' को अर्थात् इश्क, हुस्न और मौत का त्रैतवाद अपनाये हुए है। भगवान बुद्ध ने आत्म चिंतन को उन्नति का साधन बताया, हमारे युवक विलास चिंतन अपनाये हुए हैं। महावीर स्वामी ने सभी जीवों में समान भाव रखकर अहिंसा भाव रखने का उपदेश दिया था। हमारे युवक सभी स्त्रियों में समान प्रेयसी भाव रख कर सब के प्रति हृदय में बड़ा निर्मल प्रेम भरे हुए हैं। स्वामी शंकराचार्य ने सारे संसार को मिथ्या बताते हुए ईश्वर को सत्य और उपासनीय बताया था। हमारे युवक भी संसार की असारता को 'जवानी और चांदनी चार दिन की' कह कर पुष्ट करते हैं पर वे ईश्वर भक्त नहीं हैं। Eat drink & be merry for tomorrow you die. संसार में कुछ नहीं रखा है। इसके झमेले में न फंस कर मनुष्य योनि का फायदा उठाना यही है कि इस चार दिन की मदभरी जवानी और चांदनी का पुरा-पूरा लाभ उठाया जाय। बेचारे थे तो बड़े काम के मनुष्य पर इश्क ने बकौल गालिब साहिब के किसी काम का नहीं रखा। अब भी यदि देश को इनसे उन्नति विकास और परोपपकार की आशा हो तो समझो उस देश की अक्ल का दिवाला निकल गया है और वह अकल से बेदखल है।

यदि हम अपने अस्तित्व व वास्तविक स्वरूप का समुचित ध्यान रखें तो उपरोक्त दुर्गुण हम में आ ही नहीं सकते। इसके लिये हमें यह विचारना होगा कि हम आखिर कैसे हैं, कौन हैं? मनुष्य को इस प्रश्न का हल निकालना ही होगा कि मैं कौन हूं? एक अंग्रेज विद्वान कार्लायल का कहना है कि, यह सोचना तो निरर्थक है कि 'मैं' कौन हूं ? क्योंकि आज तक 'मैं' का सही स्वरूप कोई नहीं जान सका है। फिर उसके पीछे समय नष्ट न कर यह विचारना चाहिए कि मुझे क्या करना और क्या न करना चाहिए। पर हम कार्लायल महोदय की इस बात से इस लिये असहमत हैं कि जिस व्यक्ति को अपने स्वरुप का ही पता नहीं हो वह अपने कर्तव्य और अधिकार को कैसे जान सकता है? जैसे कोई व्यक्ति कोटपाल (कोतवाल) है, यदि वह यही न जाने या भूल जाए कि वह पुलिस विभाग का अधिकारी है तो भला वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों को कैसे याद रख सकेगा? तांगे में जो घोड़ा जुता रहता है वह भी अपने स्वरुप से अनभिज्ञ रहता है अतः उसे यह ज्ञात नहीं होता कि वह कहां जा रहा है और क्यों जा रहा है? इसी भांति जो व्यक्ति 'मैं, के बारे में नहीं जानता वह उसी व्यक्ति के समान है जो जंगल में सरपट भागा जा रहा हो और यह पूछने पर कि तू कौन है? उत्तर दे कि मैं नहीं जनता और कहाँ जा रहा है ? पूछने पर कहे कि नहीं मालुम। ऐसे सरपट व्यक्ति को कोई भी व्यक्ति बुद्धिमान नहीं कह सकता ऐसे लोग बिना पता लिखे लिफाफे की तरह हैं जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता हमारे आधुनिक युवक इसी वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। यहां तो सुबह होती है, शाम होती है, उम्र यूं ही तमाम होती है वाली बात चरितार्थ हो रही है।

आज का कुछ वातावरण ही ऐसा है कि युवक बाल्य काल से ही धर्म, सदाचार और आध्यात्मवाद से अलग हो जाते हैं और कुछ परिवारों में धार्मिक अध्यात्मिक प्रवृत्ति के हो जाते हैं तो केवल भक्तिमार्गी होने के कारण ज्ञान मार्ग भूल जाते हैं और शास्त्रीय ज्ञान में शून्य होने से कुछ दिन बाद पुजा पाठ को आडम्बर, ढोंग और व्यर्थ मान कर उससे भी हाथ धो बठते हैं। ईश्वर का सही रुप न जानने से, धर्म की सही परिभाषा न समझने से और आध्यात्म रस का सच्चा स्वाद न चखने से पहले तो वे हर किसी को ईश्वर मान कर अपने पैतृक धर्म को 'कुल धर्मः सना-तनः, आंख मींच कर मानते रहते हैं और कभी किसी बुद्धिजीवी, तार्किक और दूसरे मत के मानने वाले से भिड़न्त हो जाने पर अनीश्वरवादी, अधार्मिक और मन-मौजी हो जाते हैं। पापपुण्य धर्माधर्म और सत्यासत्य का विवेक रखते ही नहीं, आध्यात्मिक विषय में रुचि कैसे रहे?

(क्रमशः)

नियोग मीमांसा

लेखक—स्वामी दर्शनानन्द

संसार की विचित्र गति है कि ऋषियों की संतान कहलाने वाले लोग ऋषियों के सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर मनगढ़ंत बातों के द्वारा अपने मतको चलाना चाहते हैं। यद्यपि मुसलमान और ईसाई लोग इन सिद्धान्तों को न समझते हुए इनके विरोधी थे; परन्तु आज कल अपने आपको व्यास और वशिष्ट की सन्तान कहलाने वाले ब्राह्मण और पण्डित नामधारी आर्यसमाज से सामना करने के लिए और अच्छी युक्ति के पास न होने से इस सिद्धान्त को अन्यथा वर्णन करके यज्ञ और भोले-भाले वैश्यों क्षत्रियों आदि को वैदिक धर्म से घृणा उत्पन्न कराने का प्रयत्न करते हैं। इस लिए आवश्यकता प्रतीत होती है कि आज हम इस बात पर विचार करें कि वस्तुतः नियोग क्या है ? जिन लोगों ने वैदिक सिद्धान्तों का अन्वेषण किया है वे कर्मों को तीन भागों में विभक्त करते हैं। प्रथम 'धर्म' उन कर्मों का नाम है जिनके करने से पुण्य और न करने में पाप होता है। दूसरे 'अधर्म' जिनके करने से पाप और न करने में पुण्य होता है। तीसरे 'आपद्धर्म' जिनके करने में न पुण्य और न पाप होता है। जैसे संध्या, अग्निहोत्र आदि पञ्च यज्ञों का करना धर्म है और मद्य मांसादि का सेवन तथा चोरी जारी की प्रकृति का होना अधर्म है तथा व्याधि चिकित्सा प्राण रक्षार्थ युद्ध अथवा नियोग इत्यादि आपद्धर्म हैं—बहुत से लोगों को यह धोखा दिया जाता है कि आर्यसमाज १० पति करने की आज्ञा देता है और इसी प्रकार की और भी बातें कहते हैं—परन्तु जो आदमी सत्यार्थ प्रकाश को विचार की दृष्टि से देखता है उसको स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी दयानन्द ने जो लिखा है वह सही लिखा है कि जिसका खण्डन और निष्पक्ष व्यक्ति नहीं कर सकता। (देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ११२ और ११३)

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जावे तब भी उसका कुल नष्ट होजावेगा और स्त्री पुरुष व्यभिचार आदि में प्रवृत्त हो कर गर्भ-पतनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे इसलिए पवित्र विवाह होना अच्छा है। इस पर स्वामी दयानन्दजी जवाब देते हैं—

उत्तर—नहीं नहीं जो स्त्री, पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिए किसी अपनी स्वजाति का लड़का गोद लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें। महाशयो ! इस लेख की विद्यमानता में सनातन धर्म सभा के पण्डितों का स्वामी दयानन्द सरस्वती जी पर दोष लगाना क्या उनकी कलुषित हृदयता को नहीं सिद्ध करता, क्योंकि स्वामी दयानन्द उस दशा में नियोग की आज्ञा देते हैं जो ब्रह्मचर्य से स्त्री पुरुष रह सकते उनके वास्ते नियोग करने की इजाज़त नहीं और ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकते उनके वास्ते आवश्यक रीति पर दो कामों में से एक करना पड़ेगा चाहे वह नियोग करे अथवा व्यभिचार परन्तु व्यभिचार में दो दोष आते हैं प्रथम तो व्यभिचारी किसी वर्ण का ध्यान नहीं रखते जिससे यदि सन्तान उत्पन्न होगी तो वर्णसंकर दूसरे व्यभिचार छिप कर किया जाता है, उससे जब सन्तानोत्पत्ति का समय होगा तो लज्जा से स्त्री वा उसके कुल के लोग गर्भपात करा देंगे, जिससे एक मनुष्य का प्राण जाने के अतिरिक्त राजदण्ड भी भोगना पड़ेगा, इस लिए नियोग व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले वर्णसंकर, गर्भपात तथा राजदण्ड के रोगों की चिकित्सा है। इसलिए जो नियोग का खण्डन करता है वह वस्तुतः देश में व्यभिचार फैला कर वर्णसंकरों की सहायता और गर्भपात का प्रचार करना चाहता है। अतः प्रत्येक

मनुष्य अपने समुदाय को बढ़ाना चाहता है ईसाई, ईसाई मत को फलाना चाहते हैं और मुसलमान इसलाम को फैलाने में अपनी उन्नति करते हैं। सन्यासी अपने समुदाय की उन्नति चाहते हैं निदान संसार के इस नियम के अनुसार मालूम होता है कि नियोग के शत्रु या तो वर्णसंकर हैं अथवा व्यभिचारी और गर्भपात के अभ्यासी हैं और लोगों को इस कार्य से दूर करके अपने समुदाय की उन्नति चाहते हैं। यदि कोई कहे कि हम पुनर्विवाह के भी विरुद्ध हैं इस लिए उसे तो इस उत्तर से कोई लाभ नहीं हो सका। इस पर पण्डित ज्वालाप्रसाद जी ने एक और आक्षेप किया है कि स्वामी दयानन्द जी न दस पति करने की आज्ञा दी है—यद्यपि स्वामी दयानन्द जी ने १० पति करने की आज्ञा नहीं दी प्रत्युत नियोग करने की सीमा बतलाई है। यदि हम ब्रह्मचर्य कायम न रख सकने से नियोग भी करें तो १० से आगे न बढ़ें। जैसे वेदमन्त्र ने १० पुत्र करने का उपदेश किया है। क्या वेद का इससे यह अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए १० सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक है। नहीं नहीं उसका मतलब यह है कि २५ वर्ष जो गृहस्थाश्रम की सीमा है. उसमें से १० से अधिक संतान उत्पन्न न करें, क्योंकि उस दशा में संतान निर्बल हो जावेगी। यदि कोई आदमी समस्त जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो वेद उसे पापी नहीं बतलाता। यदि १० संतान उत्पन्न करना आवश्यक हो तो भीष्म इत्यादि महात्मा. जिन्होंने किया, पापी होते परन्तु वेद का अर्थ यह है कि यदि ब्रह्मचारी जीवन पर्यन्त न रह सके तो करे, परन्तु अधिक संतान उत्पन्न न करे। यदि विवाहित मर जावे वा स्त्री मर जावे तो व्यभिचार न करे प्रत्युत नियोग करे परन्तु नियोग की दशा में भी १० से अधिक न करे। शोक! जो लोग विधि वाक्य आदि को भी न जान सकें वे महोपदेशक कहलायें। महात्माओं ने तो पहिले ही कह दिया था कि जिस देश में जो लोग पूजा करने लायक नहीं हों पूजे जावें और जो पूजा करने योग्य हैं उनकी पूजा न हो वे उस देश में दारिद्र्य और विग्रह आदि उत्पन्न होकर दुःख दिया करते हैं। ऐसे महोपदेशक उपदेश और पूजा का फल है कि वैदिक धर्म को मानने वाली हिन्दू जाति आज मृतकों में परिगणित होती है। ६ करोड़ मुसलमान हो चुके। ३० लाख हिन्दू ईसाई हो चुके। व्यभिचारी छली कपटी और नास्तिकों की तो कोई संख्या ही नही। जगदीश्वर! तू इस देश के वासियों को बुद्धि दे जो अपने पूज्य और अपूज्य में भेद कर सकें। (आक्षेप स्वामी दयानंद ने सत्यार्थप्रकाश के ११६ वें पृष्ठ पर लिखा है—"हे विधवे तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के शेष पुरुषों में से जीते हुए पति को प्राप्त हो" क्या इससे बढ़कर कोई निकृष्ट शिक्षा हो सकती है।

उत्तर—यदि वही नियोग का आधार बतलाने वाला पहिला वाक्य जिसको स्वा० दयानन्द पृष्ठ ११२. ११३ में बतला चुके हैं इससे मिलाकर पढ़ा जावे तो मालूम हो कि ये शिक्षा खराब है या अच्छी- इस वाक्य को इस प्रकार पढ़ो—'हे विधवा स्त्री यदि तू ब्रह्मचर्य से रहकर अपने कुल के किसी लड़के को गोद लेकर काम चला सके तो बेहतर वरना मरे हुए पति की आशा छोड़कर अपने कुल के शेष अधिकारी पुरुषों में से जीते हुए पति को प्राप्त हो।

प्रश्न—क्या इस दशा में यह शिक्षा ऐसे समय में जब कि सामने पति मरा पड़ा हो बुरी नहीं मालूम होगी। क्योंकि पति शोक करने वाली स्त्री को एसे शब्दों का कहना बहुत ही बुरा मालूम होता है।

उत्तर—नित्य प्रति देखने से मालूम होता है कि बहुत-सी स्त्रियाँ तो पति से प्रेम रखती हैं और बहुत से स्थानों में मनोमालिन्य होता है, अब जो स्त्री पति से प्रेम रखती है उसको तो दुःख होगा और वह पहले शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकती है परन्तु जो स्त्री पति से असन्तुष्ट रहती थी सम्भव है वह पति के मरने से व्यभिचारिणी हो जावे। इस लिए इस व्यभिचार को दूर करने के वास्ते उसी समय उपदेश की आवश्यकता है अन्यथा सम्भव है कि जब तक आप शोक आदि से पृथक होने के समय तक निश्चय होकर के उसे उपदेश करें, उससे पहले

वह व्यभिचारिणी हो जावे जिससे नियोग का अर्थ ही नष्ट हो जावे।

प्रश्न—क्या पति के जीवन में नियोग करना उचित हो सकता है, यह बहुत ही लज्जा की बात है।

उत्तर—चाहे पति मर गया हो या जीवित हो—जिस दशा में व्यभिचार का भय हो उसी दशा में नियोग की आज्ञा है; क्योंकि नियोग ही उस व्याधि की औषधि है। जिस दशा में उस रोग के उत्पन्न होने का विश्वास हो जावे, उसी दशा में वह औषधि देनी चाहिए।

प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के पृ० १२० और १२१ में लिखा है कि गर्भवती स्त्री से १ वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जावे तो किसी से नियोग करले क्या गर्भवती स्त्री को नियोग कराओगे ? ये कैसी आज्ञा है ?

उत्तर—शोक ? यदि आप इस वाक्य का अर्थ समझते, तो ऐसा क्षुद्र आक्षेप न करते—यथा एक पुरुष गर्भवती है–उस पुरुष से एक वर्ष तक ब्रह्मचारी न रहा जावे तो अब या तो वह नियोग करे या व्यभिचार। व्यभिचार से फिर वही दोष उत्पन्न होंगे जिनका वर्णन पहले आ चुका है इसलिये वह पुरुष नियोग करले न कि गर्भवती स्त्री और पुरुष दीर्घ रोगी होने में स्त्री से न रहा जावे तो वह व्यभिचार करे प्रत्युत नियोग करले यदि सत्यार्थ प्रकाश के इससे अगले शब्द ही पढ़ दिये जाय जिन के पढ़ने से पब्लिक को भ्रम में डालने के लिये ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने रोक दिया था तो स्वर्गीय दयानन्द की सचाई प्रकट होकर पं० ज्वालाप्रसाद के मिथ्यात्व की कलई खुल जावे। स्वामीजी कहते हैं कि जब स्त्री के गर्भवती होने की दशा में पुरुष से रहा न जाय तो वह वेश्यागमन न करे प्रत्युत नियोग करले ऐसे ही पुरुष के दीर्घरोगी होने की दशा में स्त्री से न रहा जावे तो छिप कर व्यभिचार न करे प्रत्युत नियोग करले इस प्रकार के स्पष्ट शब्दों की विद्यमानता में ज्वालाप्रसादजी का स्वामी दयानन्द सरस्वती पर दोष लगाना उनके स्वार्थ का पता दे रहा है।

प्रश्न—पाराशरस्मृति में लिखा है कि कलियुग में ५ बातों का निषेध है—एक घोड़े को मार कर हवन करना, दूसरे गौ को मार कर हवन करना, तीसरे सन्यास, चौथे मांस के पिण्ड देना और पाँचवें देवर से सन्तान उत्पन्न करना।

उत्तर—इस तुम्हारे प्रमाण से तुमको तो मालूम हो गया कि सतयुग, द्वापर और त्रैतायुग में नियोग विहित था केवल कलियुग में उसका निषेध है अर्थात् नियोग करने वाले सत्युगी धर्म को मानते हैं और नियोग न करने वाले कलियुगी धर्म को परन्तु क्या ये अद्भुत बात नहीं कि जिस का नाम सत्युग रक्खा जावे उस में गौ मार कर हवन किया जावे जिसको कि वेदों ने अघ्न्या अर्थात् न मारने योग्य लिखा है कोई बुद्धिमान् स्वीकार करेगा कि सत्युग, त्रैतायुग और द्वापर में वेद के विरुद्ध करना धर्म समझा जाता हो और कलियुग उसका निषेध हो, इस श्लोक से स्पष्ट रीति पर प्रकट होता है कि ये उस समय में बना है कि जब वाममार्ग के कारण यज्ञों में हिंसा का प्रचार जारी हो चुका था और मृतक पितरों के मानने वाले उत्पन्न हो चुके थे तथा माँस के पिण्ड देने का प्रचार हो चुका था; परन्तु इससे यह भी टपकता है कि इस श्लोक का आज तक विद्वानों ने प्रमाण नहीं माना। यह तो विचार नहीं हो सकता कि इस श्लोक को बनने के पश्चात् पाराशरी पढ़ने पर विद्वानों ने इसे न देखा हो; परन्तु इस श्लोक में संन्यास को भी कलियुग में निषेध किया है; परन्तु कलियुग में संन्यासियों के बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं जहाँ संन्यासियों के ११ आचार्य बतलाये गये हैं उनमें शुकदेव, गौडपादाचार्य, गुरुगोविन्दाचार्य और शङ्कराचार्य तो इस श्लोक के बनने के पश्चात संन्यासी हुए हैं; क्योंकि पाराशरजी, व्यासजी के पिता थे और शुकदेवजी व्यासजी के पुत्र जिससे स्पष्ट विदित होता है कि या तो उन लोगों के पश्चात यह श्लोक बनाया गया है या इन लोगों ने इस श्लोक को प्रमाण ही नहीं

माना। श्लोक को प्रमाण मान कर कोई कलियुग में संन्यासी हो ही नहीं सकता; परन्तु काशी में में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती—स्वामी भास्करानंद सरस्वती स्वामी नारायण आश्रम—और शङ्कराचार्य शारदामठ के इस पीलीभीत में ही चक्कर लगा गये क्या ये सारे संन्यासी आचार्य मुर्ख, है जो कलियुग में संन्यास ले रहे हैं कदापि नहीं। ये विद्वान् लोग श्लोक के आपयश से अभिज्ञ हैं और उसे सबसे अधिक प्रतिष्ठा नहीं देते; क्योंकि वह जानते हैं कि पाराशरजी के नाम से यह श्लोक बनाया गया है; उन्होंने खुद नियोग किया है सत्पुत्र व्यासजी ने चित्रांगद और चित्रवीर्य की स्त्री अम्बा और अम्बालिका से नियोग करके धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किसी और दासी के साथ नियोग करने से विदुरजी पैदा हुए। अर्जुन आदि पाण्डव भी इसी नियोग से उत्पन्न हुए नियोग से उत्पन्न हुई सन्तान संकर कहलात्रें यह ठीक नहीं। उनका ऐसा मानना भूल है। क्योंकि यदि नियोग की उत्पन्न हुई सन्तान संकरों में परिगणित होती तो किस प्रकार महात्मा कृष्ण जो कि सनातन धर्मियों के विचार में ईश्वर के अवतार और यादव क्षत्रिय थे अपनी बहन का विवाह अर्जुन से होना स्वीकार करते? कोई भी पुरुष वशिष्ट और व्यास के कुल का शुद्ध नहीं हो सकता यदि नियोग अनुचित हो। जो लोग कहते हैं कि द्विजों में नियोग की आज्ञा नहीं वे दूसरे शब्दों में यह सिद्ध कर रहे हैं कि व्यास, वशिष्ट आदि द्विज न थे। बलिहारी ऐसी समझ की। पं० ज्वालाप्रसाद जी ने नियोग की हंसी उड़ाने के लिये उस वियोग के सम्बन्ध में जो पति के परदेश जाने की आशा में बतलाया है यह कहा था कि यदि नियुक्त पति से स्त्री गर्भवती हो जावे और असल पति आ जावे तो अवश्य दोनों में झगड़ा होता कि वे लड़का हमारा है गोया लट्ठों तक नौबत आ जायगी। पं० जी ने कदाचित नियोग करने वालों को महामण्डल का उपदेशक समझ लिया होगा कि वह दक्षिणा के खयाल से या एक दूसरे को प्रतिष्ठा के विचार से लट्ठमलट्ठा करते हैं। रजिस्टर्ड महामण्डल का झगड़ा बंगवासी—भारत मित्र, वेंकटेश्वर के पढ़ने वालों से छिपा नहीं है, परन्तु पं० जी साहब इस प्रकार का लट्ठमलट्ठा व्यभिचार बतलाते हैं और नियोग करने वाले जो विवशता की दशा में धर्म छोड़ना नहीं चाहते वह लड़ाई नहीं करते=इसका प्रमाण आप अपनी द्रौपदी के ५ पति होने से ही देख लीजिये क्या कभी लड़ाई हुई—कभी नहीं। महाशय! नियोग आपद्धर्मा है जिसको व्यास, वशिष्ठ और अर्जुन जैसे महात्माओं ने किया है, जो सत्ययुगी, त्रेता और द्वापर में अधिकार के अनुसार होता था। इसके विरुद्ध वे लोग हैं जो वेश्यागमन को पाप नहीं समझते। जो गर्भ-पात को बुरा नहीं समझते जो वर्ण संकरों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं और अधर्म के यहाँ तक व्यसनी हो गये हैं कि आप बुढ्ढे होने पर भी १० से अधिक विवाह करते जावें। विचारी—स्त्रियों को शूद्र बतलाकर उनपर अत्याचार करना उचित समझते हैं। ऋषि दयानन्द धर्म का आचार्य था उसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि एक और ४२ करोड़ ईसाई, एक ओर ५२ करोड़ बौद्ध, एक ओर २० करोड़ मुसलमान और एक ओर २० करोड़ हिन्दू यहूदी इत्यादि, सारांश यह कि डेढ़ अरब आदमी था दूसरी ओर बाल ब्रह्मचारी परोपकारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जिसने तमाम दुनिया को दिखला दिया कि वैदिक धर्म के मानने वाले ब्रह्मचारियों में ये शक्ति हो सकती है कि वे ईश्वर का भरोसा लेकर सब संसार का सामाना कर सकते हैं इतना ही नहीं; किन्तु सब जगत् को परास्त कर सकते हैं—आप ब्रह्मचर्य से शून्य समुदाय में सम्मिलित हैं—आप लोग दक्षिणाके वार आपस में झगड़ सकते हैं। इस दशा में आप ऋषि दयानंद का मुकाबिला तो एक और किसी ऐसे आर्य समाजी उपदेशक का भी सामना नहीं कर सकते जो ऋषि दयानन्द के मोटे मोटे सिद्धान्तों को समझ चुका हो पौराणिक धर्म का सच्चा सिद्ध होना असम्भव है कारण नीचे लिखे लिखे हैं:—

(शेष पृष्ठ १५ पर)

सूर्य और चन्द्र ग्रहण

(लेखक—श्री पं० हरिदेव जी आर्योपदेशक देहली)

श्री धर्मप्रकाश अपने कमरे में बैठे पुस्तक का स्वाध्याय कर रहा था कि अकस्मात चन्द्रप्रकाश ने प्रवेश किया और नमस्ते के पश्चात् छूटते ही बोले कहिये श्रीमान् जी तबीयत कैसी है स्वस्थ चित्त व प्रसन्न तो हैं? और चलने का तैयारी है कि नहीं?

धर्मप्रकाश—क्या बात है? आज तो बड़े प्रसन्न मालूम होते हो कहां चलने की तैयारी कर रहे हो?

चन्द्रप्रकाश—वाह जी वाह ऐसे भोले बन गये जैसे मालूम ही न हो।

धर्म०—मैं कोई सर्वज्ञ तो हूं ही नहीं जो बिना कुछ बताये मन की बात जान लूं आखिर बात क्या है कुछ बतलायें भी तो, पता चले।

चन्द्र०—बात क्या है जी अब कि सूर्य ग्रहण का बड़ा भारी मेला कुरुक्षेत्र में लग रहा है। बहुत लोग वहां जाने की तैयारी कर रहे हैं आप भी चलेंगे कि नहीं?

धर्म०—(कुछ गम्भीर होकर) भाई चंद्रप्रकाश जी यह सूर्य ग्रहण क्या चीज है और इसका क्या महत्व कुछ हमें भी तो बतलाइये।

चन्द्र०—लो और देखो अब लगे दूसरों को बनाने। ऐसी बातें करते हैं जैसे कुछ जानते ही न हों।

धर्म०—नहीं भाई इसमें बनाने की क्या बात है? आखिर मनुष्य अल्पज्ञ है, हर बात को थोड़े ही जानता है। मैं वास्तव में ही जानना चाहता हूँ कि सूर्य ग्रहण की वास्तविकता क्या है जिसके कारण सूर्य ग्रहण इतना महत्व रखता है।

चन्द्र०—भाई साहिब मुझे और तो ज्यादा मालूम नहीं पर हां जो पण्डित जी इस बारे में कथा सुनाते है, जिसका मैंने कई बार सुना है, और वह पुराणों में लिखी बतलाते हैं वह जानता हूं।

धर्म०—हां हां ठीक है जो आप जानते हैं वही कथा जानना चाहता हूँ कृपा करके सुनाइये तो?

चन्द्र०—पुराणों में लिखा है देवताओं ने समुद्र का मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले। उन रत्नों में से एक रत्न "अमृत" था उसे प्राप्त कर विष्णु जी ने देवताओं को बुलाया और कहने लगे कि जो इस अमृत को पियेगा वह कभी नहीं मरेगा। अतः आओ इस अमृत का पान करो। इससे तुम अमर हो जाओगे। इतना कह कर वह मोहनी का रूप धारण कर अमृत को बांटने लगे। जिस समय विष्णु अमृत बांट रहे थे उसी समय "राहु" नाम का एक राक्षस देवताओं का वेष धारण करके उनकी पंक्ति में आ बैठा। जब विष्णु भगवान ने वह अमृत सबको दिया, तो पंक्ति में बैठे राहु को भी दे दिया उसे लेकर वह तत्काल ही पी गया। परन्तु सूर्य और चंद्रमा ने चुगली खायी, और विष्णु भगवान से बोले—आपने यह क्या गजब कर दिया, कि एक राक्षस को अमृत दे दिया, विष्णु को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने तेज चक्र से राहु का सिर काट दिया, परन्तु वह अमृत पी चुका था, इसलिये सिर काटने से भी नहीं मरा, परन्तु उसकी शक्ति बढ़ गई और वह एक से दो हो गया, पहले तो अकेला राहु था, अब दूसरा केतु भी पैदा हो गया, और राहु, बड़े गर्व से कहने लगा अच्छा सूर्य, चंद्र ने मेरी चुगली खाई है इसका बदला लूंगा। इस कारण से जब उसे मौका मिलता है, वह सूर्य और चंद्र को ग्रस लेता है। तब लोग पुण्य तथा दान करते हैं जिससे इन देवताओं का छुटकारा होता है।

धर्म०—वाह भाई, खूब गप्प उड़ाई, स्वयं विचार करो यह बात कभी सच्ची हो सकती है। क्योंकि प्रथम तो वह भगवान विष्णु ही कैसा भगवान् था जिसको इतना भी पता नहीं चला कि यह देवता का रूप बना कर राक्षस बैठा है, जिस

बात को सूर्य और चंद्र जान गये उसको बेचारा भगवान न जान पाया।

(२) दूसरे यह सूर्य चंद्र आदि तो सब जड़ वस्तुएँ हैं उनमें ऐसी ईर्षा, द्वेष की बातें करना कैसे घट सकता है ?

(३) तीसरे यह बात साईंस यानी विज्ञान और बुद्धि के सर्वथा विरुद्ध है आज के युग में कौन बुद्धिमान इस बात पर विश्वास करेगा ?

(४) चौथे आपने दान से उनके छुटकारे की बात भी खूब कही! जरा सब पौराणिकों को कह दीजिये कि उस वक्त कोई दान-पुण्य न करे। देखते हैं कि ग्रहण हटता है कि नहीं यदि न हटे तब तो आपकी बात सच्ची, वरना मानना पड़ेगा कि यह गप्प के सिवाय कुछ नहीं।

चन्द्र०—अच्छा जी यदि आपकी बात मान लें कि उपरोक्त बात झूठ और गप्प है तो आप ही बतलाइये कि सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण कैसे लगता है।

धर्म०—सुनो भाई मैं आपको असली बात बतलाता हूँ कि जिसको हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने बड़े विस्तार के साथ अपने ग्रन्थों में लिखा है और जिसको आज के बड़े बड़े वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं, और जिससे कोई भी बुद्धिमान इन्कार नहीं कर सकता।

चंद्र०—हां भाई कृपा करके अवश्य बतलाइये। मैं भी इस रहस्य को जरूर जानना चाहता हूं, कि वास्तविकता क्या है ?

धर्म०—अच्छा जरा ध्यान से सुनिये, बहुत शीघ्र यह बात आपकी समझ में आ जायगी।

सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है, पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी प्रकार चंद्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता है। सूर्य, चन्द्र और पृथिवी जब घूमते हुए तीनों एक सीध में आ जाते हैं। तब ग्रहण पड़ता है। यदि पृथिवी और चंद्र की कक्षा एक ही धरातल में होती तो हर मास एक सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण होता। क्योंकि प्रत्येक पूर्णमासी को सूर्य चंद्र के बीच में पृथिवी आ जाती, इसलिये चंद्र ग्रहण पड़ता और प्रत्येक अमावस्या को पृथिवी सूर्य के बीच में चंद्रमा आ जाने से सूर्य ग्रहण पड़ता, परन्तु दोनों कक्षाओं के एक धरातल में न होने से ऐसा नहीं होता। इससे स्पष्ट हो गया कि "ग्रहण" सूर्य, चन्द्र और पृथिवी इन तीनों की गति से उत्पन्न होता है कि राहु केतु के पकड़ लेने से। इसमें शास्त्र का प्रमाण भी लीजिये। यथा—

छादयति शशी सूर्यं शशिनं च महती भूच्छाया।
(आर्य भट्टीये)

सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है और चंद्र ग्रहण में पृथिवी की छाया चंद्रमा को ढक लेती है। सूर्य सिद्धांत में भी ऐसा ही लिखा है।

छादको भास्करस्येन्दुरधः स्थो घनवत् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चंद्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

बादल के समान चंद्रमा जब सूर्य को ढक लेता है, तो "सूर्य ग्रहण" और पूर्व की तरफ जाता हुआ चांद जब पृथिवी की छाया के नीचे आ जाता है। तब "चंद्र ग्रहण" कहा जाता है।

चंद्र० अच्छा भाई यह तो मैं समझ गया हूँ कि चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है और जब घूमती हुई पृथिवी सूर्य और चंद्र के बीच में आ जाती है और सूर्य का प्रकाश रुक जाता है तो यही चंद्र ग्रहण कहलाता है। ज्यों ज्यों चद्रमा सूर्य पृथिवी की सीध से निकलता जाता है त्यों त्यों उसमें सूर्य की किरणें पड़ने लगती है इसी को चद्रमा का मोक्ष वा ग्रह से छूटना कहते हैं और जब पृथिवी और सूर्य के बीच में चद्रमा आ जाता है तब सूर्य चंद्रमा की ओट में आ जाता हैं। उतना भाग पृथक् होता सा प्रतीत होने लगता है। इसी को सूर्य ग्रहण कहते हैं। परन्तु प्रिय भ्राता जी एक बात मैं और आपसे पूछना चाहता हूं कि यह जो लोग कहते हैं कि सूर्य दर्शन से पुण्य और इसकी पूजा से बड़े लाभ होते हैं, क्या यह भी गलत है ? पापों का नाश होता है क्या यह बात भी झूठ है।

धर्म०—हां भाई जिस प्रकार पौराणिक भाई

सूर्य पूजा बतलाते हैं वह तो पुण्य नहीं उलटा पाप का कारण है क्योंकि यह जड़ पूजा है और जड़ पूजा का तो वेद, शास्त्र और पुराणों में भी स्थान स्थान पर खंडन भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ एक दो श्लोक सुनिये—भागवत स्कन्ध १० अ० ८४ श्लोक १३ में लिखा है।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यस्तीर्थ बुद्धि सलिलेन कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

अर्थात् जो वात, पित्त, कफ के शरीर में आत्मा बुद्धि रखता है। जो पुत्र कलत्रादि को मोह के कारण अपना समझता है। जो सोने, चांदी, मिट्टी की बनी मूर्तियों की पूजा करता है, जो बहते हुए जलों या नदियों को तीर्थ समझता है वह बैल और गधे के समान है। अगले दो श्लोकों में लिखा कि—

न ह्यम्यानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला मयाः।
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः॥

जल स्थलमय तीर्थ तथा मिट्टी, पत्थर की बनी मूर्तियां चिरकाल में भी मनुष्य को पवित्र नहीं करते परन्तु सत्पुरुष क्षण में ही मनुष्यों को पवित्र करने वाले हैं।

नाग्नि र्न सूर्यो न च चन्द्र तारका। न भूर्जलं
खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः उपासिता भेदकृतो
हरन्त्यघं विपश्चिता घ्नन्ति मुहूर्त सेवया॥
भागवत १०।८४।१२

अग्न, सूर्य, चांद, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु आदि में से कोई भी उपासना किया हुआ पाप को हरने वाला नही अपितु विद्वान् पुरुष ही सेवा द्वारा पाप से बचाने वाले हैं।

चंद्र०—क्या यह भागवत में लिखा है या मनमाने श्लोक सुना रहे हो।

धर्म०—हां यह सब श्लोक भागवत् के ही हैं विश्वास न हो तो पुस्तक मंगवा कर देख लो निश्चय हो जायगा।

चंद्र०—अच्छा यह तो ठीक है परन्तु सूर्य की पूजा तो वेद में भी लिखी है ऐसा सनातनी पण्डित बतलाते हैं।

धर्म०—नहीं भाई वेद में कहीं सूर्य की पूजा नहीं लिखी परन्तु इसके वपरीत पुराणों में भी सूर्य की पूजा करने वालों की बड़ी निन्दा की गई है।

चंद्र०—तो क्या सनातनी पण्डित गलत कहते हैं कि वेदों में सूर्य की पूजा का वर्णन है, कुछ दिन हुए पंडित जी 'यो देवेभ्यो आतपति' आदि वेद-मन्त्र सुनाकर बतला रहे थे, कि इस मन्त्र में ब्रह्म के अवयवरूप सूर्य की प्रशंसा कर उसको प्रमाण करना बतलाया है। इत्यादि क्या यह ठीक नहीं।

धर्म०—यह बात उनकी सर्वथा अशुद्ध और वेद के विपरीत है। इन भाइयों को एक पुराना रोग है कि जहाँ कहीं "नमः" शब्द आता है उसका अर्थ नमस्कार या प्रणाम करके हर वस्तु की पूजा निकालने लगते हैं, हालांकि "नमः" शब्द के अन्न, वस्त्र, परिचरण आदि कई अर्थ हैं। यदि उनकी ही बातें मान लें तो

तस्कराणां पतये नमः ॥ यजुः १६।२१
"श्वनिभ्योनमः" यजुः १६।२४ ॥

इन वेद मन्त्रों से चारों, डाकुओं और भंगियों की पूजा भी सिद्ध होगी जो सर्वथा बुद्धि विरुद्ध है। इसलिये "नमः" का अर्थ सर्वत्र प्रणाम या पूजा ठीक नहीं असली मन्त्र, और उसका ठीक अर्थ यह है :—

"यो देवेभ्यो आतपति यो देवानां पुराहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्रह्मये॥"
यजु० ३१।२०

अर्थात् हे मनुष्यों! जो सूर्य लोक उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ अच्छे प्रकार तपता है। जो पृथिवी आदि लोकों के प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया गया है। जो पृथिवी आदि से पूर्व उत्पन्न किया गया, रुचि कराने वाले परमेश्वर के

सन्तान के तुल्य उस सूर्य से अन्न उत्पन्न होता है। अर्थात ऐ मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने सबके हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति के निमित्त सूर्य को बनाया है उसी जगदीश्वर की उपासना करो।

चंद्र०—ठीक है, बात तो आपकी ही सत्य मालूम पड़ती है परन्तु जो लोग कहते हैं कि सूर्य देव है, देवों की पूजा करना धर्म है, क्या यह भी सत्य नहीं ?

धर्म०—नहीं भाई यह बात भी भ्रांति के कारण है। और अज्ञान के कारण लोग इसको भी ठीक नहीं समझते। क्योंकि हमारे शास्त्रों के लिखा है—**देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा'** कि देवता वह है जो कुछ देता है, चमकता है, और दूसरों को चमकाता है। इससे पता चला कि देवता वह है जो कुछ देवे। वह देवता भी दो प्रकार के हैं एक जड़ देवता और दूसरे चेतन-देवता, जैसे माता पिता, गुरु, अतिथि, पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिए पति, ये चेतन देवता हैं। और सूर्य, चंद्र, जल, वायु आदि सब जड़-देवता हैं, चेतन देवताओं का आदर, मान, सत्कार और प्रत्येक प्रकार सेवा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त करना और जड़ देवताओं के गुणों को जानकर उनसे ठीक ठीक उपयोग लेना ही वास्तव में देव पूजा है। इसके विपरीत अदेव पूजा है। ऐसे ही सूर्य भी देव है किन्तु उसकी पूजा यही है कि हम सूर्य के गुणदोषों को जानकर उनसे ठीक ठीक उपयोग या लाभ लें। जैसे तत्वज्ञों ने बतलाया है कि :—

(१) सूर्य जीवन शक्ति का भण्डार है और प्राण शक्ति का आधार है इसलिये संस्कृत साहित्य में सूर्य को प्राण कहा गया है।

(२) सूर्य आयुवृद्धि का कारण है।

(३) सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब प्रकार के रोगों का नाश करने वाला है।

(४) यह ठंड को दूर करने वाला है, शीतकाल में मनुष्य पशु-पक्षी सभी शीत निवारण के लिये सूर्य के ताप की शरण लेते है।

(५) सर्य की किरणें जल को हरण करने वाली हैं इसलिये उन्हें वेद में "हरि" नाम से पुकारा गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब हम गीले कपड़े धूप में डालते हैं तो वह शीघ्र सूख जाते हैं।

(६) सूर्य वृष्टिकर्त्ता है, यह समुद्र से जल ऊपर ले जाकर मेघ रूप में परिवर्तित करता है और फिर वृष्टि रूप में गिरा कर संसार का कल्याण करता है।

(७) सूर्य से ही हमारी खेतियाँ पकती हैं।

(८) सर्य के कारण ही कई प्रकार की ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है।

(९) यह जठराग्नि और पाचनशक्ति का दाता है।

(१०) सूर्य अपने सप्त प्रकार की रंगदार किरणों से संसार में सुन्दरता तथा नाना प्रकार के रूप निर्माण करता है। जिससे सबको अनेकों लाभ होते हैं, ऐसे और भी अनेकों गुण सूर्य में हैं, उन सब गुणों को जानना और कार्यरूप में उनसे लाभ उठाना ही वास्तव में सूर्य पूजा है। इसीलिये वेद में कहा गया है कि "सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते" कि मैं सूर्य का अनुकरण करने वाला बनूं तथा "अहं भूयासं सवितेव चारु" सूर्य के गुणों का धारण करके मैं सूर्य के समान सुन्दर वा चमकीला बनूं।

इसके विपरीत सूर्य के सामने हाथ जोड़ना वा जल चढ़ाना आदि ठीक नहीं क्योंकि यह जड़पूजा है अतः पाप है, पुराणों में भी सूर्य पूजकों की बड़ी निन्दा की गई।

चंद्र०—पुराणों में सूर्य की पूजा करने वालों की निन्दा की बात भी आपने खूब कही यह तो आज ही सुना है। भला कहाँ निन्दा की गई है ?

धर्म०—अच्छा यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो—

(१) क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यम् ।
पादाम्बुजं न हि भजन्ति विमूढ़ चित्ताः ॥
सूर्याग्नि सेवन पराः परमार्थ तत्त्वम् ।
ज्ञातं न तैः श्रुति शतैरपि वेदसारम् ॥

(२) तीर्थेषु पशु यज्ञेष काष्ठ पाषाण मृण्मये ।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नराः मूढ़ चेतसः ।।
मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्त्तावीश्वर बुद्धयः ।
क्लिश्यन्ति तमसा मूढ़ा परां शांतिं न यांति ते ।।
(३) ज्ञात्वा सुरांस्तव वशान सुरार्दितांश्च ।
ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान् ।।
धृत्वा करे सुविपुलं खलु दीपकं ते ।
कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे ।।
(४) ये वै स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढ़ाः ।
माया गुणैस्तव चतुर्मुख विष्णु रुद्रान् ।।
शुभ्रांशु वह्नि यम वायु गणेश मुख्यान् ।
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये ।।

ये सब श्लोक देवी भागवत पुराण के हैं ।

पहले श्लोक में बताया गया है कि जो सूर्य अग्नि आदि की सेवा में लगे हैं वह मूढ़ अर्थात महामूर्ख हैं और उन्होंने वेद के सार को नहीं जाना ।

दूसरे श्लोक में बतलाया गया है कि जो मूढ़ मनुष्य, तीर्थों में, पशु यज्ञों में, काठ पत्थर और मिट्टी की मूर्ति में मन लगाते, मिट्टी धातु और दारु आदि मूर्तियों में ईश्वरबुद्धि रखते हैं वह सदैव क्लेश पाते हैं और कभी शांति को प्राप्त नहीं होते ।

तीसरे श्लोक में कहा कि जो जड़ वस्तुओं की पूजा करते हैं । देवी को छोड़ कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वह जान बूझ कर घोर अन्ध कूप में गिरते हैं।

चौथे श्लोक में बतलाया गया है कि जो अज्ञानी मनुष्य ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि देवों की स्तुति करते हैं तथा जो सूर्य, अग्नि, यम, वायु, गणेश की पूजा करते हैं वह किसी कार्य में कभी सफल नहीं होते । कहिये महाराज बस, या कुछ और सुनना चाहते हैं ।

चन्द्र०—बस महाराज बस, आपने आज मेरी आंखें खोल दी हैं मैं सूर्य ग्रहण और सूय पूजा के विषय में अच्छी प्रकार समझ गया हूँ । अब कृपया यह बतलाइये सूर्य ग्रहण के बारे में कोई नया समाचार भी पढ़ा है ।

धर्म०—हां जी आज के प्रताप पत्र में एक आवश्यक सूचना दी गई है कि लखनऊ के एक विद्वान् जो कि नेत्र विद्या में बड़े निपुण समझे जाते हैं, ने अपने वक्तव्य में साधारण जनता को चेतावनी दी है कि यदि उन्होंने सूर्यग्रहण के वक्त सूर्य को ध्यान से देखने की कोशिश की तो उनकी आंखें झुलस सकती है और सदैव के लिये दृष्टि के मन्द हो जाने का भी डर है । ये चेतावनी आल इण्डिया रेडियो लखनऊ से दी गई है। आपने सरकार से अपील की है कि गाँव गाँव में सब को यह सन्देश दे दिया जावे कि वह सूर्य ग्रहण के समय उसे खुली आंख से देखने या पानी में ग्रहण का प्रतिबिम्ब देखने का प्रयत्न न करें. अगर देखना ही चाहें तो गहरे रंग का चश्मा यानी एनक प्रयोग में लावें । गर्भवती औरतों को भी सूर्य ग्रहण देखने का निषेध किया गया है । यह बात मैंने आपको इस लिए सुनाई हैं कि कहीं ऐसा न हो कि सूर्य के पुजारी सूर्य ग्रहण के मेले पर सूर्य की पूजा करते करते आंखों से ही हाथ धो बैठें ।

चन्द्र०—कई लोगों का विचार है कि सूर्य ग्रहण अथवा चंद्र ग्रहण के समय घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए । कोई काम न करना चाहिए खाना पीना भी नहीं चाहिए क्योंकि उस समय सारे पदार्थ अशुद्ध हो जाते हैं । और नहा धोकर घर में प्रवेश करना चाहिये इस बारे में आप का क्या विचार है ।

धर्म०—यह सब अज्ञान और भ्रम है, सिवाय कुछ अज्ञानी हिन्दुओं के ईसाई, मुसलमान, सिख, यहूदी, पारसी कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं करता । ।। इति ।।

समाचार संग्रह

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी

आर्य जगत् में स्वामी जी की जन्मशताब्दी ११ से १५ अप्रैल तक धूमधाम से मनाई गई। गुरुकुल-कांगड़ी में वार्षिकोत्सव के साथ २ जन्म शताब्दी भी मनाई गई। माननीय अतिथियों में सी० डी० देशमुख, पं० सम्पूर्णानन्द, पं० अलगूराय शास्त्री मुख्य थे। इसी अवसर पर श्रद्धानन्द निधि की ओर से आचार्य प्रियव्रत जी लिखित "मेरा धर्म" नामक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें वेद विषयक उच्च-कोटि के निबन्ध है। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक "मेरे पिता" प्रकाशित हुई।

नरेन्द्र स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव

नवयुवक हृदय सम्राट श्री पं० नरेन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद प्रदेशका स्वर्ण जयन्ती समारोह ८ अप्रैल ५७ को सात बजे से आर्यसमाज मन्दिर सुल्तान बाजार हैदराबाद में धूमघाम से मनाया गया।

पं० रामचन्द्र देहलवी का अभिनन्दन

६ अप्रैल ५७ को आर्य समाज हापुड़ के तत्वावधान में आर्य समाज के सुप्रसिद्ध महोपदेशक श्री पं० रामचन्द्र देहलवी को आयु के ७५ वर्ष में पदार्पण करने पर सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

प्रान्तीय आर्य सम्मेलन

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का ७० वां वार्षिक अधिवेशन २७ अप्रैल से नारायण स्वामी भवन लखनऊ म स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में मनाया गया।

आर्य समाज पूरनपुर (पीलीभीत)

आर्य समाज पूरनपुर पीलीभीत ने अपना स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ८, ६, १०, ११ नवम्बर १६५७ को मनाना निश्चित किया है।

आर्य समाज सरसपुर (अहमदाबाद)

इस समाज का २६ वां वार्षिकोत्सव २६ से २८ अप्रैल तक धूम-धाम से मनाया गया।

(पृष्ठ ६ का शेष)

(१) जिस धर्म में विष्णु भगवान् पर जालन्धर दैत्य की स्त्री वृन्दा का पातिव्रत धर्म नष्ट करने के वास्ते धोखे से व्यभिचार करने का दोष लगाया गया हो और वृन्दा का वृक्ष हो जाना लिखा हो, उस को कौन सत्य सिद्ध कर सकता है। देखो पद्म पुराण या तुलसी शालिग्राम की कथा।

(२) जिस धर्म में विष्णु का शिर कट जाना लिखा हो, क्या उसे कोई सत्य सिद्ध कर सकता है। है। (देखो देवी भागवत हयग्रीव अवतार की कथा।

(३) जिस धर्म में बकरे को काट कर बलिदान करना लिखा हो उसे कैसे कोई सत्य सिद्ध करेगा ? यह लीला तो ज्वालामुखी, काँगड़ा, विन्ध्याचल, काशी कलकत्ते के काली के मन्दिरों को देखने से स्पष्ट सिद्ध है।

(४) जिस धर्म में चक्राङ्कित अर्थात रामानुजी लोगों के साथ रहने से ही ब्रह्म-हत्या का पाप होता है उसे सच्चा सिद्ध करना असम्भव है।

(५) जिस धर्म में ५ पतिवाली द्रोपदी हो, नियोग से ५ सन्तान उत्पन्न करने वाली कुन्ती हो, तारा जिसने नियोग या पुनर्विवाह किया। मन्दोदरि, अहिल्या इत्यादि कन्याएं कहलावें, वह धर्म किस प्रकार सच हो सकता है ? यद्यपि हम नहीं चाहते कि पुराणों की पोल खोलकर मृत हिन्दू धर्म को और भी गिराने का प्रयत्न करें, परन्तु केवल इस लिये लिखा है कि जिससे समझदार हिन्दुओं को मालूम हो जाय कि जिस का नाम लोगों ने सनातन धर्म रक्खा है, वह वास्तव में पौराणिक धर्म है, जिसके कारण हिन्दू जाति इस मृतक दशा को पहुंची, उससे हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं इस लिये वे अपनी सन्तान को वैदिक धर्म की शिक्षा दिलाने का प्रयत्न करें।

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्र डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तेत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर—इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया हो।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जाय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय—दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देन के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य-समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

३—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है- 'हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—'नव-भारत टाइम्स' लिखता है—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

'आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन सरस्वती, आज' आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून

"ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) की आवश्यकता" (गतांक से आगे)

प्रिय पाठकगण ! जिस प्रकार सूर्य सृष्टि के आदि से लेकर आज तक एक ही है उसको बदलने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, इसी प्रकार ज्ञान के सूर्य का भी अपरिवर्तन होना आवश्यक है। और जिस प्रकार मनुष्यकृत दीपक और लैम्प सर्वदा बदलते रहते हैं, परन्तु सूर्य नहीं बदलता, इसी प्रकार मनुष्यों का ज्ञान बदलता रहता है, ईश्वरीय ज्ञान सर्वदा एकसा रहता है। मानो प्रकृति हमें यह उपदेश करती है कि जिस प्रकार उसके बनाये हुए प्रत्येक इन्द्रिय के सहायक अटल हैं, न कभी आंख के लिये दूसरा सूर्य्य बनाने की आवश्यकता होती है, न किसी अन्य इन्द्रिय के सहायक देवता के बनाने की आवश्यकता प्रतीत होती है, फिर कैसे विचारा जा सकता है कि बुद्धि का सहायक सूर्य्य अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान बदलता रहता है, परिवर्तन सर्वदा न्यूनता को पूर्ण करने अथवा बुरे तत्त्वों (आशय) को निकाल कर अच्छे विषय का प्रवेश करने के लिये होता है। परन्तु ईश्वर के सर्वज्ञ होने से न तो उसके ज्ञान में अपूर्णता ही मानी जा सकती है और न उसमें कोई बुराई ही स्वीकार की जा सकती है, अन्यथा उसके सर्वज्ञ होने पर दोष लगता है। जो अपूर्णता तथा भूल का ईश्वरीय ज्ञान में होना असम्भव है, जैसा कि सूर्य्य में अन्धकार का। अतः ऐसी दशा में ईश्वरीय ज्ञान में परिवर्तन अनावश्यक है। हां, यहां से पता मिल गया कि जहां परिवर्तन होता है वह ईश्वरीय ज्ञान नहीं।

प्रिय पाठक गण! जिस प्रकार दीपक में उस भाग को छोड़ कर जो सूर्य्य से लिया गया है शेष सम्पूर्ण भाग अर्थात् दीपक, तेल, बत्ती सब के सब प्रकाश से रहित होते हैं इसी प्रकार मानुषी ज्ञान में जितना भाग कि ईश्वरीय ज्ञान का होता है वह प्रकाशमान अर्थात् सत्य होता है शेष जितनी बातें होती हैं वह ज्ञान से निरन्तर शून्य होती हैं, जिस प्रकार दीपक आदि का बनाना बिना सूर्य्य के प्रकाश के असम्भव है इसी प्रकार मनुष्यकृत विद्या की उत्पत्ति भी बिना ईश्वरीय ज्ञान के असम्भव है, क्योंकि प्रकाश के बिना तो हम में मिट्टी लेकर दीपक बनाने की सामर्थ्य नहीं है, न सरसों से तेल ही निकाल कर इसमें डालने की शक्ति हो सकती है, और न रूई उपजा कर बत्ती बनाई जा सकती है, न अग्नि में ही प्रकाश डाला जा सकता है। मानो जिस प्रकार दीपक का जलना आंख और सूर्य्य के होने पर सम्भव हो सकता है, इस प्रकार मनुष्यकृत पुस्तकों का मिलना भी ईश्वरीय ज्ञान के पश्चात् सम्भव है, और जिस प्रकार अन्धा सूर्य्य की सहायता पर भी दीपक जलाने में बिना आंख फलीभूत नहीं हो सकता, इसी प्रकार बुद्धि रहित मनुष्य भी ईश्वरीय ज्ञान होने पर भी मनुष्यकृत पुस्तक के बनाने में सफलता को प्राप्त नहीं हो सकता है, और जैसे संसार में प्रत्येक मार्ग चलने में नेत्र और सूर्य्य दो आवश्यक वस्तुएं हैं, ऐसे ही प्रत्येक आत्मिक पथ के यात्री के लिये बुद्धि एवं ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है। जो सूर्य्य की उपस्थिति में नेत्र मूंद कर चलता है वह भी ठोकर खाता है, तथा जो आंख खोल कर अंधेरे में चलता है वह भी ठोकर खाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान को मानकर बुद्धि से काम नहीं लेता वह भी उद्देश्य से गिर जाता है तथा जो मनुष्य बुद्धि के भरोसे ईश्वरीय विद्या की सहायता से काम नहीं लेता वह भी मुक्ति मार्ग से दूर जा गिरता है।

प्रिय पाठकगण ! जिस प्रकार सूर्य्य का प्रकाश और दीपक का प्रकाश जांचने का साधन हमारे पास आंख हैं, और आंख के बिना हम सूर्य्य और दीपक के प्रकाश में भेद नहीं कर सकते, इसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान और मनुष्यकृत विद्या में भेद करने का यन्त्र प्रकृति ने हमको बुद्धि दी है। जिस प्रकार हमें दीपक के प्रकाश के अपूर्ण होने से और उसके भाग दीपक बत्ती और तेल के प्रकाशमान न होने से और उसकी उत्पत्ति को सूर्य्य के अस्त होने के पश्चात् देखने से विदित होता है कि यह मनुष्यकृत प्रकाश है। दूसरे दीपक में सर्वदा वायु लगने का भय रहने से भी हम उसकी निर्बलता जान जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्यकृत

अमृत, व्याघात तथा परोक्ति से हमें विदित हो जाता है कि यह पुस्तकें मनुष्यकृत हैं। दूसरे मनुष्यकृत पुस्तकों के बनने का समय भी बतला दिया है। पुस्तकें अमुक समय और अमुक देशमें बनी हैं। तीसरे जिन पुस्तकों में यह बतलाया जाता हो कि धर्म में बुद्धि का प्रवेश नहीं अथवा युक्ति देने से "काफिर" होने का उत्तर दिया गया हो, वह पुस्तक स्पष्टतया अपने मनुष्यकृत होने की साक्षी स्वयं दे रही है। क्योंकि सूर्य्य और दीपक में जिस प्रकार हम आँख से भेद करते हैं, इसी प्रकार मानुषी विद्या तथा ईश्वरीय विद्या में विवेचन करने का साधन केवल बुद्धि है। अब सोच लीजिए कि जो मनुष्य यह कहे कि हमारा ज्ञान सूर्य्य है परन्तु वह आंख से नहीं देखा जाता, जिस प्रकार यह मनुष्य धोखा देता है, क्योंकि हमारे पास तो और कोई यन्त्र नहीं जिससे सूर्य्य को ठीक प्रकार से जानें, उसी प्रकार वह मनुष्य है कि जो अपनी धार्म्मिक पुस्तक को ईश्वरीय ज्ञान बतलाकर यह कहता है कि धर्म्म में बुद्धि का प्रवेश नहीं। वह स्पष्टतया अपने धर्म्म की निर्बलता मानता है और दूसरों को धोखा देता है।

प्रिय पाठकवृन्द ! जो मनुष्य अपनी पुस्तक को ईश्वरीय बतलाकर उसको युक्ति से पृथक रखना चाहते हैं, वह वास्तव में हमसे यह कहते हैं कि हम सुवर्ण तो मोल लें परन्तु उसको कसौटी पर न रक्खें। जिस प्रकार सोना बिना परीक्षा के क्या पता कि वह वास्तव में खरा सुवर्ण है अथवा तांबा मिश्रित है ? इसी प्रकार बिना युक्ति के यह कैसे पता चल सकता है कि यह पुस्तक सम्पूर्ण ईश्वरीय ज्ञान से भरपूर है अथवा इसमें कुछ मनुष्यकृत है।

प्रिय सुहृद्गण ! धर्म्म में बुद्धि की सहायता के बिना वास्तव में नेत्र मूंदकर चलने की सी बात है। जिस प्रकार आँख बन्द करके यात्रा करने में पग २ पर ठोकरों के लगने का भय है, इसी प्रकार बुद्धि बिना धर्म्म में चलने की दशा है।

प्रिय पाठकगण ! हमारे मित्र बहुधा यह प्रश्न करेंगे कि क्या तुम्हारी बुद्धि पूर्ण है कि जिससे तुम ईश्वरीय ज्ञान को परखना चाहते हो। मैं उनसे पूछता हूँ कि यदि तुम बुद्धि को अपूर्ण समझ कर उससे काम लो तो बतलाओ कि तुम्हारे पास और कौनसी कसौटी है कि जिससे तुम ईश्वर और मनुष्यकृत विद्या में भेद कर सकोगे ? जो मनुष्य यह कहते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान के जाँचने की आवश्यकता नहीं, उन्हीं महात्माओं ने संसार में रुधिर की नदियां बहा दी हैं, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान के लिये जो कसौटी थी उसको छोड़ दिया। अब प्रत्येक मनुष्य अपने अपने मत की पुस्तक को ईश्वरीय ज्ञान से भरपूर कहने लगा, परन्तु यह न समझा कि जिस प्रकार संसार में एक सूर्य्य ईश्वरीय प्रकाश है शेष सारे दीपक इत्यादि मनुष्यकृत हैं, इसी प्रकार संसार में ईश्वरीय ज्ञान की भी एक ही पुस्तक है शेष सब मनुष्यकृत हैं। जिस प्रकार सूर्य्य सृष्टि के आदि में सदैव उत्पन्न होता है, बीच में नहीं, इस प्रकार ईश्वरीय पुस्तक भी सृष्टि के आदि में ही उतरती है, मध्य में नहीं। जिस प्रकार सूर्य्य में कोई भाग अन्धकार का नहीं अपितु वह सम्पूर्ण प्रकाश है, इसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान में कोई भाग गल्प एवम् गाथाओं का नहीं, वरन् सम्पूर्ण विद्या है।

प्रिय पाठकगण ! उपरोक्त लेख से आप समझ गये होंगे कि ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यता संसार को केवल उस समय है जबकि संसार में पदार्थ ज्ञान का क्रम विद्यमान न हो। क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान के बिना शिक्षाक्रम चल नहीं सकता, और यह भी याद रहे कि जिस ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है उसका पूर्ण होना भी आवश्यक है। जो वस्तु पूर्ण होती है उसका उस आवश्यकता के पूरे होने तक न बदलना भी आवश्यक है और ईश्वरीय ज्ञान जिस बुद्धि की सहायता के लिये बनाया गया है, उसके अनुसार होना भी आवश्यक है ! तथा ईश्वरीय ज्ञान की परोक्षादि बातों की विद्या का होना उसके पूर्ण होने का लक्षण है। क्योंकि प्रत्यक्ष वस्तुएँ तो इन्द्रियों से ज्ञात होती हैं, उसके लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं। हां उनके सूक्ष्म विचार के लिये, जो इन्द्रियों द्वारा नहीं होता, थोड़ा सार वर्णन उनका भी आवश्यक है।

प्रिय पाठकगण ! उपरोक्त बातोंसे आपको ईश्वरीय

ज्ञान की आवश्यकता और उसके लक्षण विदित हो गये, अर्थात् बुद्धि की सहायता के निमित्त ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है और ईश्वरीय ज्ञान सर्वदा बुद्धि का सहायक होना उचित है। जो बुद्धि के विरुद्ध है वह ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहला सकता, और ईश्वरीय ज्ञान का प्रकट होना सृष्टि के आरम्भ में आवश्यक है, मध्य में नहीं। अन्यथा शिक्षाक्रम चल नहीं सकता और इसमें बहुत से आक्षेप भी होते हैं। प्रथम यह कि यदि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकट होना सृष्टि के मध्य में ठहरे तो वह उससे प्रथम के मनुष्यों के लिये तो होगा ही नहीं। इसमें अन्याय पाया जाता है, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान के द्वारा मनुष्य परमात्मा की आज्ञा को जान कर तद्नुकूल कार्य करने से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अब जिन मनुष्यों को मृत्यु के पश्चात ईश्वरीय ज्ञान प्रकट हुआ उन दीनों की मुक्ति किस प्रकार हुई होगी। यदि मान लें कि उनकी मुक्ति बिना ईश्वरीय ज्ञान के ही हो गई तब तो ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं। और यदि नहीं हुई तो अन्याय है। दूसरे, परमेश्वर के नियम के नितान्त विरुद्ध है, क्योंकि प्रकृति ने पहिले इन्द्रियों के सहायक उत्पन्न किये तत्पश्चात इन्द्रियां। जब वाह्य इन्द्रियों के लिए प्रकृति का यह नियम दिखलाई देता है तो अवश्यमेव आन्तरिक शक्ति बुद्धि का सहायक भी उससे पूर्व होना चाहिये।

प्रिय पाठकगण! कुछ मित्र कहेंगे कि कदाचित प्रकृति का यह भी नियम हो कि वह आन्तरिक बुद्धि का सहायक पीछे रचे। क्योंकि संसार में यह साधारण कहावत है कि 'अल अहतियाज अम् अल् ईजाद' (आवश्यकता आविष्कार की जननी है) परन्तु उन का यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि इसके लिए कोई प्रमाण नहीं और दूसरे यह कहावत तो मनुष्य की बुद्धि के लिये है, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि परिमित है उसको आवश्यकता से पूर्व आवश्यकता का ज्ञान नहीं होता। इसी कारण आवश्यकता के पीछे (आवश्यकता पड़ने पर) वह आविष्कार करता है। परन्तु सर्वज्ञ का नियम जिसको कि संसार की आवश्यकताओं का पूर्णज्ञान सर्वदा है, आवश्यकता से पूर्व आविष्कार करना है।

प्रिय पाठकगण! ईश्वरीय ज्ञान में गल्प और गाथाओं का होना भी उसको मनुष्यकृत सिद्ध करना है। क्योंकि वह घटनाओं के पश्चात् संसार में लिखी गई हैं। उन घटनाओं से पूर्व उनका होना असम्भव है। सुतराम् जिस ईश्वरीय ज्ञान में गल्प और गाथाएं मिलें, वह ईश्वरीय ज्ञान नहीं, वरन् इतिहास हो सकता है और ईश्वरीय ज्ञान में काँट छाँट कदापि नहीं होती क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है। उसका ज्ञान पूर्ण है। अतः ज्ञान में न्यूनाधिकता कभी नहीं होती। और ईश्वरीय ज्ञान में परमात्मा के सम्पूर्ण गुणों का यथार्थ बतलाना भी आवश्यक है। जो ईश्वरीय ज्ञान परमेश्वर को परिमित और दूसरे की सहायता के अधीन बतावे, वह भी ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकता। जिसमें प्रत्येक कार्य के लिये भिन्न भिन्न फरिश्ते और पैगम्बर (दूत) बनाया गया हो वह केवल संसार के महाराजाओं की अवस्था को देखकर लिखा गया है क्योंकि पैगम्बर का अर्थ पैगाम (सन्देशा) लाने वाले के हैं और सन्देशा दूर से आया करता है। और ईश्वर मनुष्य में दूरी बताना ईश्वर का सीमाबद्ध करना है, दूसरे एजेण्ट (प्रतिनिधि) भी बद्ध के ही होते हैं। सुतराम् ईश्वरीय ज्ञान में परमात्मा के पूर्ण निर्दोष गुणों का होना आवश्यक है। ॥ इति ॥

॥ ओ३म् ॥

वेदों की आवश्यकता

मनुष्य जब संसार के पदार्थों को सूक्ष्म दृष्टि से विचार करके देखता है तब उसको निश्चय हो जाता है कि संसार में जितने रोग हैं उन सब की औषधि हैं और जितनी औषधि हैं वह किसी न किसी रोग के लिए उपयोगी हैं। जब तक मनुष्य इस बात को न जान ले कि इस समय इस रोग के कारण औषधि

की आवश्यकता है तब तक उसकी प्रवृत्ति उस औषधि के सम्पादन करने में नहीं होती, और जब तक मनुष्य यह न जान ले कि अमुक रोग है, तब तक वह उसकी निवृत्ति के उपायों को नहीं विचारता। यद्यपि वह औषधि उसके पास ही पड़ी हो तो भी आवश्यकता के न जानने से वह उसको ग्रहण नहीं करता। इससे विचारशील का काम है कि प्रथम रोग अर्थात वस्तु की आवश्यकता, पश्चात् वस्तु के गुण तदनन्तर उससे रोग की निवृत्ति अच्छे प्रकार से समझ कर वस्तु के देने की चेष्टा करे, नहीं तो उस वस्तु के दान से अभीष्ट फलसिद्धि न होगी, इस कारण हम प्रथम मनुष्यों को आवश्यकता को प्रकट करेंगे।

जब हम संसार में देखते हैं कि अन्न संसार के जीवों का प्राणस्वरूप है और प्राचीन विद्वानों ने भी उसको मनुष्यों का प्राण माना है। "अन्न वै प्राणिनां प्राण" इस स्मृति वाक्य से तो हम निश्चय ही करते हैं कि अन्न मनुष्यों का प्राण है परन्तु जब कोई मनुष्य कच्चा अन्न अधिक खा जाता है तो बहुधा अपच रोग हो जाता है। जब अन्न अधिक खा जाता है तो विशूचिका आदि रोगों से प्राणों का नाशक प्रतीत होने लगता है। उस समय उपरोक्त सिद्धान्त से विमुख वृत्ति हो जाती है। जब हम सुनते हैं "आज्यं वै बल प्राण" अर्थात् घृत ही जीवों को बलदायक है, घृत ही जीवों की आयु है, घृत ही जीवों का प्राण है, तो घृत का सेवन आवश्यक प्रतीत होने लगता है। परन्तु जब कोई ज्वर पीड़ित मनुष्य घृत का सेवन करता है उस समय घृत उसे बलवान् नहीं बनाता, किन्तु विषमज्वर अर्थात् (तपैदिक) करके बल का नाशक, आयु का नाशक और प्राणों का नाशक हो जाता है वा घृत खाकर पानी पी लो तो कास रोग अर्थात खांसी उत्पन्न हो जाती है। इसको देखकर घृत खाने में अश्रद्धा हो जाती है। अब लीजिए विष अर्थात् संखिया, जो मनुष्य को प्राणनाशक प्रतीत होता है, जिसको प्राणनाशक समझ कर राज्य ने भी उसका बेचना बन्द कर दिया है, परन्तु जब वही संखिया वैद्यकशास्त्र की रीति से शुद्ध करके खाया जाता है तो बड़े बड़े प्राणनाशक रोगों का नाश करके जीवों को अमृत के तुल्य गुणकारी प्रतीत होने लगता है। पाठकगण उक्त दृष्टांतों से निश्चय हो जाता है। कि कोई भी पदार्थ इस संसार में जीव के लिए उपकारक नहीं और न हानिकारक है किन्तु पदार्थों का तत्वज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान कर उसके गुण स्वभाव क्रिया को जान कर उसका बर्ताव करना लाभ कारक है और इससे विरुद्ध मिथ्या ज्ञानके आश्रय उसका ग्रहण हानिकारक है।

प्रिय पाठकों ! जब हमें किसी अँधकारमय स्थान में जाने का अवसर मिलता है तो भयदायक वस्तु के न होने पर भी चित्त का भय दूर नहीं होता। जब प्रकाश में सिंह सर्पादि भयानक जीवों को देखते हैं तो उनकी अवस्था को जानकर हमारा भय बहुत ही न्यून हो जाता है। इससे भी निश्चय होता है कि मनुष्य को अज्ञान ही भयानक है, अज्ञान के नाश से मनुष्य का भय भी नाश हो जाता है। बहुधा हम देखते हैं कि एक मनुष्य बलिष्ठ पशुओं की मण्डली को एक सोटा हाथ में लिए अपने आधीन करके जिधर चाहता है उधर ले जाता है, परन्तु वह दो मनुष्यों को उस सोटे से अपने आधीन नहीं कर सकता। यह सब बातें प्रत्यक्ष जतला रहीं हैं कि ज्ञान का न होना बड़ी हानि का कारण है। मनुष्यों को इसी ने प्रतन्त्र कर रखा है, यही मनुष्यों के दुखों का आधार है। पाठकगण ! आप यह भी जानते हैं कि जीव अल्पज्ञ है, प्रकृति विभु है, तो प्रकृति का तत्त्व जीव को पूर्णतया होना असम्भव है इससे जीव कभी सुखी नहीं हो सकेगा और प्राचीन शास्त्रों ने भी इस बात का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य मिथ्याज्ञान से बद्ध होता है। जैसा महात्मा महामुनि कपिल जी ने अपने सांख्य शास्त्र में दिखलाया है—

'बन्धो विपर्ययात्'। सां० द० ३। २४

अर्थ—विपर्य्यय अर्थात् विपरीत ज्ञान ही बन्ध का हेतु अर्थात् कारण है क्योंकि प्रकृति के अविवेक से जब जीव को पराकृत पदार्थों में भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि यह पदार्थ मेरी आत्मा के अनुकूल अर्थात् सुखकारक है और यह पदार्थ प्रतिकूल अर्थात् दुखःकारक है, तो जिन पदार्थों को आत्मा के अनुकूल

समझा है उनके ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न होती है, और उस पदार्थ के उत्पादन करने अर्थात् प्राप्त करने में मनुष्य यत्न करता है, वह यत्न से उत्पन्न हुआ कर्म धर्माधर्म रूप फल को उत्पन्न करता है और उस फल को भोगने के लिए जन्ममरण अर्थात् शरीर के संयोग वियोग को प्राप्त होता रहता है और इस रोग की औषधि तत्वज्ञान के बिना दूसरी नहीं जिस परकार रज्जु में सर्प की भ्रांतिसे जो भय उत्पन्न होता है उसकी निवृत्ति का उपाय बिना प्रकाश में रज्जु को रज्जु जाने दूसरा नहीं। और महर्षि पतञलि ने भी अपने योग शास्त्र में लिखा है:—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाःपञ्चक्लेशाः
यो०द० २।३

अविद्या अर्थात जिससे पदार्थ के तत्वस्वरूप को न जान कर भ्रम से अन्य में अन्य निश्चय करना इत्यादि और भी सब महात्माओं की सम्मति में मिथ्याज्ञान ही मनुष्यों का रोग है, जिसके नाश से मनुष्य सुख शांति को लाभ कर सकता है और इस रोग की औषधि सिवाय आत्मानात्म विवेचन के दूसरी नहीं क्योंकि जब तक जीव अपने स्वरूप और प्रकृति के स्वरूप और स्वभाव को न जान ले और अभीष्ट आनन्द के अधिकरण अर्थात् आश्रय को न समझ ले तब तक जीव के दुःख की निवृत्ति होना असम्भव है

प्रिय पाठको! हमारे महात्मा योगीश्वरों ने भी इसको पुष्ट किया है:।

'ज्ञानान्मुक्तिः'। सां० द० ३२३

अर्थात मुक्ति त्रिविध दुःखनिवृत्ति नाम ज्ञान से ही होती है और महामुनि गौतम जी ने अपने शास्त्र के आरम्भ में ही सिद्धांत कर दिया है:—

'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावतर्कवय
निर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्र
हस्थानानां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः' ॥
न्याय० अ० १ पा० १ सू० १॥

अर्थ-प्रमाण, जिससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान होता है प्रमेय, जिसका ज्ञान प्रमाण से हो। संशय, जहां सामान्य ज्ञान हो परन्तु प्रमाण के अभाव से निश्चित ज्ञान न हो। प्रयोजन, जिस अर्थ की इच्छा को धारण करके कार्य में प्रवृत्ति होती है। दृष्टान्त, जिसमें लौकिक और परीक्षकों की बुद्धि समान हो। सिद्धान्त जो प्रतिपक्षी के साथ वाद करके अन्तिम व्यवस्था ठहरे इत्यादि और सब सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस अर्थत् मुक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि अब प्रमाणादि द्वारा जीव को यह निश्चय हो जाता है कि अमुक पदार्थ मेरे आत्मा के अनुकूल तथा अमुक प्रतिकूल है तो सत्य कार्यों में प्रवृति होती है, जिसके भोगन के लिये जन्म कों आवश्कता नहीं होती। इसी प्रकार जब जब अपने प्रकृति तथा ईश्वर के गुणों का ठीक ठीक निश्चय कर लेता है तब वह हिताहित को ठीक साधन कर लेता है जिस प्रकार जुगराफिये (भूगोल) और नकशों (चित्र) के द्वारा हम को हर एक नगर देश समुन्द्र झीलादि का याथार्थ ज्ञान बिना श्रम घर बैठे सिखला दिया जाता है और यह भी प्रकट कर दिया जाता है कि अमुक नगर में यह वस्तु उत्पन्न होती है, वहां के लोगों का यह मत है, उनकी यह रीति है। जब मनुष्य इस प्रकार जान लेता है कि अमुक देशवासियों का यह धर्म है ऐसा स्वभाव है ऐसा धन है, ऐसे कारीगर हैं, उनका ऐसा चालचलन है, इत्यादि बातोंको जानकर उसको अपने अभीष्ट की सिद्धि का ज्ञान जिस स्थल से प्रतीत होता है वह वहीं जाता है, अन्यथा व्यर्थ भ्रमण करके अपनी आयु का नाश नहीं करता। इसी प्रकार उस परमात्मा की दयालुता से प्रकृति का पूरा नकशा जिसके जानने से प्रकृति के पूरे सिद्धान्त को जानकर अपने आत्मा के अनुकूल वा प्रतिकूल न जानकर हेय उपादेय रूप वृत्ति को इसमें न फंसाकर अपने अभीष्ट आनन्द के लिए यत्न करता है और यह पूर्ण विवेकी ज्ञान के आश्रय अभीष्ट को प्राप्त करके अतीव दुःखको प्राप्त नही होता।

क्योंकि यह तो सामान्य पुरुष भी नहीं चाहता कि बिना प्रयोजन के पक्षपात करके अपने नाम को कलंकित करे तो ईश्वर में यह संदेह ही नहीं हो सकता। प्यारे पाठको! संसार में कर्मों के फल के बिना कोई भी सुखी दुःखी नहीं होता, और जब तक कर्मों की विधि निषेध निश्चय न हो जाय तब तक

उन कर्मों में प्रीति नहीं होती। इससे भी ज्ञात होता है कि कर्मों की विधि निषेध का ज्ञान ईश्वर ने जीवों को दिया है।

प्यारे परीक्षकजनो ! यह तो आप ठीक रीति से समझते हैं कि जो मनुष्य जिस वस्तु वा कौशल को बनाता है जब तक उसको यथार्थ बर्तने की विधि मुख से वा लिखकर न बतला दे. तब तक उसका यथार्थ बर्ताव किसी को भी नहीं आता और यह भी हम देखते हैं कि हमारे सामने जो घड़ियें अमरीका वा यूरुपदेश से आती हैं, जब तक उसको कुंजी लगाने का समय वा बिधि और सुइयों के घटाने बढ़ाने के नियम, तेज और धीमा करने का विचार हमको न विदित होवे तब तक उस घड़ी से हम यथार्थ प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते और न हम इस वस्तु के बिगड़ने से दोषी ठहराये जा सकते हैं। हम जगत् में देखते हैं कि जहाँ हम बिना देखे थोड़ी दूर भी चले, वहीं ठोकर खाई जो जतलाती है कि ईश्वर ने जो तुम्हें आंखें देकर देखकर चलने की आज्ञा दी थी, उसको भंग करने का यह फल है।

प्यारे पाठको ! इसी प्रकार जब ईश्वर के दिये हुए इन्द्रियों के नियमों को तोड़ कर प्रत्यक्ष में दुःख उठाते हैं इससे यह अनुमान सिद्ध है कि वर्त्तमान दुःख भी पूर्व में जो ईश्वर आज्ञा उल्लघन की हैं, उनका फल है।

महाशयगण ! जब यह निश्चय होगया कि दुःख ईश्वर आज्ञा उल्लंघन का फल है तो यह बात छिपी नहीं रहती कि ईश्वर ने हमें क्या आज्ञा दी है। अब ईश्वर आज्ञा का हम उसके दिये नियमों तथा विधि निषेध रूपी वेदों से पाते हैं।

प्यारे पाठको ! जब निश्चय हो चुका तो हम उन पुस्तकों की, जिनको संसार में ईश्वर आज्ञा मानते हैं, परीक्षा करने के लिये उद्योग करते हैं।

प्यारे पाठको ! वेदों को छोड़कर बाकी ४ पुस्तकें तौरेत, जबूर, इंजील और कुरान को अधिकांश लोग ईश्वर आज्ञा के नाम से पुकारते हैं।

पहिली पुस्तक तौरेत, तो मूसा के समय में उतरी विचार यह उत्पन्न होगा कि मूसा से पहिले लोगों को विधि निषेध का ज्ञान किस प्रकार से होता था और आदम से लेकर मूसा तक ईश्वर आज्ञा संसार में थी या नहीं ? और मूसा से पहिले संसार में कौन बात न थी, जिसके लिये ईश्वरीय पुस्तक की आवश्यकता थी, जिसको तौरेत ने पूरा किया। इसका उत्तर यथार्थ देना अति कठिन है।

प्यारे पाठको ! यदि दुर्जनतोषन्याय से यह भी मान लें कि तौरेत की अति आवश्यकता थी तो तौरेत में क्या न्यूनता थी जिसको पूरा करने के लिये जबूर की आवश्यकता हुई और तौरेत के बनाने वाले को उस आवश्यकता का ज्ञान पूर्व था वा नहीं ? यदि था तो पहिले क्यों न लिखा और आदम से लेकर दाऊद तक मनुष्यों का जीवन अधूरेपन में गया और उनको ईश्वर की यथार्थ आज्ञाओं को न पालने से वंचित रह कर जो दुःख उठाना पड़ा, इसका दोष किसपर आवेगा ? तौरेत के बनाने वाले पर ?

प्यारे पाठको संसार में दो प्रकार का ज्ञान प्रतीत होता है एक तो सामान्य ज्ञान दूसरा विशेष ज्ञान। सामान्य ज्ञान तो जीव में स्वभाव से ही रहता है क्योंकि जीव अल्पज्ञ है अर्थात् नियमित ज्ञान स्वभाव से समस्त जीवों में रहता है, परन्तु विशेष ज्ञान बिना किसी निमित्तसे नहीं हो सकता। खाना 'सोना' रोना इत्यादिक जो कार्य्य पशु 'पक्षी' सपादि सब योनियों में रहता है वह स्वाभाविक है, परन्तु हर एक योनि में जो विशेष ज्ञान है वह किसी निमित्त अर्थात् दूसरे के सिखाने से प्राप्त होता है।

मित्रवर्गो ! जब हम समस्त जीवों से मनुष्यों की तुलना करते हैं उस समय समस्त जीवों में भोगशक्ति को पाते हैं। जैसे गौ, भैंस, अश्वादिक पशु, तथा हंसादिक पक्षी वा सर्पादिक तिर्य्यक् जीव, अन्नादि पदार्थों को भोगते हैं, परन्तु उनको अन्नादिक पदार्थों की वृद्धि तथा उत्पत्ति करने का ज्ञान नहीं प्रतीत होता इससे ज्ञात होता है कि जीव स्वभाव से वर्तमान अवस्था का ज्ञान रखता है किन्तु जब हम मनुष्यों में कर्तृत्व शक्ति अर्थात् कर्मों के करने की सामर्थ्य को विचारदृष्टि से विचारते हैं तो यह सामर्थ्य अन्य जीवों में न पाकर हमें विश्वास होता है कि यह शक्ति किसी निमित्त से उत्पन्न हुई है और जब हम अशिक्षित पुरुषों को देखते हैं तो वे भी कर्तृत्व शक्ति

से शून्य ही प्रतीत होते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञान होता है कि करने की सामर्थ्य प्राप्ति मनुष्यों को शिक्षा से हुई है। अब यह विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्यों को शिक्षा किससे प्राप्त हुई? बहुत लोग तो कहेंगे कि शिक्षा जीवों के परस्पर मेल से उत्पन्न होती है क्योंकि बहुतों की अल्पज्ञता या सामान्य ज्ञान मिलकर बहुज्ञता या विशेष ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, परन्तु तत्वदृष्टि के विचार से यह मिथ्या प्रतीत होता है। जैसे दियासलाई में सामान्य अग्नि है और रगड़ने से विशेषाग्नि प्रकट होती है तो रगड़ना निमित्त ही विशेषाग्नि का उत्पादक प्रतीत होता है, और डिब्बी में सौ दियासलाइयों के योग से विशेषाग्नि का उत्पन्न करने वाला निमित्त कारण नहीं। जब एक सलाई में विशेषाग्नि प्रकट हो जाती है तो वह बहुत सी वस्तुओं को यह शक्ति दे सकती है। इसी प्रकार जब तक जीव को शिक्षा प्राप्त न होगी तब तक उसमें यह सामर्थ्य न होगी।

प्रियपाठको! कुछ लोग यह कहते हैं कि जीवात्मा नित्य प्रति उन्नति करता है, इससे काल पाकर सर्वज्ञ हो जायेगा। परन्तु उनका यह सिद्धान्त ठीक नहीं, क्योंकि जीवात्मा का ज्ञान विषय कभी विना निमित्त उन्नति नहीं कर सकता। इसमें हेतु यह है कि कोई वस्तु भी उन्नति नहीं करती किन्तु अपने उपयोगी अवयवों को प्रकृति से ग्रहण करती है। उसको मूढ़ पुरुष उसकी उन्नति मानता है किन्तु गुणों के उचित सहकारी निमित्त को पाकर अधिक हो जाती है परंतु देश कालादि तथा प्रकृति यह सब ज्ञान से शून्य हैं इनसे सर्वज्ञता का मिलना असम्भव है। बहुत से भाई यहाँ शङ्का करेंगे कि जीव जहाँ जायेगा वहाँ के पदार्थ को देख कर अपनी ज्ञान शक्ति को बिना किसी निमित्त से चक्षु में प्रत्यक्ष पदार्थों के देखने की शक्ति हो जाती है इससे रूप ज्ञान का अभाव ही रहा और यह शक्ति सब जीवों में स्वतः उपस्थित है, इसको तुम विशेष ज्ञान नहीं कह सकते, क्योंकि संसार के पशु पक्षी रूप ज्ञान को प्राप्त हैं, किन्तु प्रत्यक्ष में अतिरिक्त अनुमानादि जन्म ज्ञान जिससे कार्य को देख कर लिंगी का बोध होता तथा नित्य के व्यवहारों से अनुभव बिना शिक्षा के प्राप्त नहीं होता। इसलिये अवश्य अनुमान होता है कि यह शिक्षा मनुष्य को कहीं से प्राप्त हुई है।

प्रिय मित्रो! यह तो आप स्वीकार करते हैं कि जब तक आप किसी भृत्य वा संतान को किसी कार्य के करने की आज्ञा न दें और कुकर्मों के करने का निषेधयुक्त उपदेश न करें तब तक उसको किसी कर्म के करने न करने के लिये दोषी नहीं बना सकते, और न उसको दण्ड दे सकते हैं। यदि आप उसको दण्ड दें तो कोई भी आपको न्यायशील या भला नहीं कहेगा। यदि आप किसी न्यायशील मनुष्य को दण्ड देते देखेंगे तो आपको यह दो बातें ध्यान आवेंगी या तो उस अपराधी ने न्यायाधीश की आज्ञा का उल्लंघन किया है, या वह न्यायाधीश अन्यायी है। पहिली अवस्था में तो उसकी आज्ञा का प्रचार होना आवश्यक है।

महाशयगण! अब आप विचारें कि सन्सार में जो करोड़ो जीव जो नाना प्रकार के दुःख पा रहे हैं इनको देखकर समझदार मनुष्य या तो दुःख को पूर्व कर्म का फल समझेगा वा दुःखदाता ईश्वर को अन्यायी जानेगा किन्तु ईश्वर न्यायकारी है, उसको अन्यायी कहना केवल मूर्खों का प्रलाप मात्र है। हाँ, यह सब मनुष्यों के पापों का फल है, पाप ईश्वराज्ञा को उल्लंघन करने का नाम है इससे भी सिद्ध होता है कि ईश्वर ने अवश्य कोई आज्ञा दी है जिनके अनुसार चल कर मनुष्य इन दुःखों से छूट सकता है जिसके विरुद्ध चलने ही से मनुष्य इन दुःखों से ग्रस्त हुआ है।

प्यारे भाईयो! जब इस प्रकार ईश्वर निमित्त नियम या आज्ञा या सत्यविद्या युक्त पुस्तक की आवश्यकता प्रतीत होती है और ईश्वर के न्यायादि-गुणो से भी लक्ष्य होता है कि अवश्य उसने प्रकृति के नियमों को संसार में प्रचार किया।

प्यारे पाठको! यदि हम यह मान लें कि संसार में ईश्वर आज्ञा प्रचलित है तो हमें उसका विचार करना पड़ता है कि ईश्वर आज्ञा के लक्षण क्या हैं वा ईश्वर ने जो हमें वेदों का ज्ञान दिया है वह कैसा है? पहिला लक्षण हम आवश्यकता के अनुसार यह करते हैं कि "हिताहितसाधनताबोधकत्व

वेदत्वम्" अर्थात् जो हित जीवात्मा के अनुकूल और अहित जीवात्मा के प्रतिकूल साधनों का बोधक अर्थात् बतलाने वाला हो उसे वेद कहते हैं। तो यह लक्षण सब ग्रन्थों में अतिव्याप्त होता है अर्थात् सब ग्रन्थ थोड़ी बहुत हित की विधि और अहित का निषेध लिये रहते हैं। फिर लक्षण इस प्रकार करते हैं कि "हिताहितसाधनताबोधकानि चापुरुषवाक्यानि-इति वेदः" अर्थात् जो हिताहित का बोधक अपुरुष-वाक्य अर्थात् किसी मनुष्य का कहा हुआ वाक्य नहीं, उसे वेद कहते हैं। अब नास्तिकों के ग्रन्थों और कुरान, अंजील, तौरेत, जबूर इन पुस्तकों में अतिव्याप्ति होगी। क्योंकि जैन लोग अपने तीर्थङ्करों को ईश्वर मानते हैं और मुसलमान लोग क़ुरान को ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं, ईसाई अंजील, और यहूदी तौरेत और जबूर को। अब वेदों का लक्षण यह होगा "हिताहितसाधनताबोधकानि चापुरुषवाक्यानि ब्रह्म प्रतिपादकानि सृष्टि कर्माविरुद्धानि इति वेदाः" इसमें जो अवस्था हिताहित ज्ञान का बोधक, पुरुष-वाक्य न हो, ब्रह्म का प्रतिपादक हो और सृष्टिक्रम विरुद्ध न हो उसे वेद कहेंगे। परन्तु वेद शब्दमय है शब्द को प्रमाण नहीं माना जाता। जब तक उसमें यह दोष पाये जावें जैसा महात्मा गौतम जी ने शब्द परीक्षा में लिखा है—

"तदप्रामाण्यमनृतव्याघातनरुक्तिदोषेभ्यः"।
न्या० द०

अर्थ—शब्द अप्रामाण्य है क्योंकि उसमें अनृत नाम झूठा होना, व्याघात नाम परस्पर विरुद्ध शब्द कभी सिद्धि दायक नहीं होता। इस कारण उसको प्रमाण नहीं माना जाता क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है वह अनृत वचन कभी नहीं कहता। उसका कथन तत्व ज्ञान के अनुकूल होता है। इस कारण वेदों में यह दोष न होना चाहिए और सर्वज्ञ अपने पूर्व कथन को भूल कर उसके विरुद्ध भी नहीं कहता। इस कारण व्याघात दोष भी वेदों में नहीं हो सकता और पुनरुक्ति भी अज्ञानी के कथन में हुआ करती है। वेदों को इन दोषों से रहित गौतम आदि महात्मा ऋषियों ने अपने अपने शास्त्रों में सिद्ध किया है।

—❀—

❀ ओ३म् ❀

वेद किस पर प्रकट हुए

प्यारे पाठक! इस संसार में यह नियम प्रतीत होता है कि प्रत्येक मनुष्य जिस प्रकार के संस्कार रखता है प्रति वस्तु के तत्व को उसी प्रकार का अपना धर्म समझता है। बहुत थोड़े मनुष्य हैं कि जिनको सत्य की जिज्ञासा हो और झूठ से घृणा करें। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य इनमें बटोही (पथिक) के समान है और बटोही के वास्ते उचित है कि वह हर कदम (डग) पर अपने पांव की जमीन छोड़े। अगर वह उसी जगह पर खड़ा रहे तो कभी अभीष्ट स्थान का मुंह नहीं देख सकता। इसलिए जो मनुष्य बिना अनुसन्धान हठ करने के आग्रही हो गये हैं, उनको सत्य-असत्य का कुछ विवेक नहीं रहता और वह अपने संस्कार एवं अविद्या के कारण सदा सत्य से विमुख रहा करते हैं।

प्यारे दर्शक! आज मुझे मुन्शी इन्द्रमणि जी की बनाई हुई पुस्तक "वेदद्वारप्रकाश" एक सज्जन के द्वारा मिली, जिसको देखकर मैं चकित हो गया कि संसार में ऐसे भी मनुष्य उपस्थित हैं जो अशुद्धि करके दूसरों की सच्ची बात को अशुद्ध करने का उपाय करते हैं। चूंकि ऐसे पुरुषों के लेखों से सर्व-साधारण के भ्रम में पड़ने का सन्देह है, इसलिए इसका उत्तर लिखना मुझे आवश्यकीय विदित हुआ।

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री० विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र । डाक खर्च माफ ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां।

महात्मा आनन्द स्वामी—"श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्दजैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुनकर मेरा अन्तकरण गद गद हुआ

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार—आर्य जगत् में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जावेगी।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य–श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है। अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिये कवि का धन्यवाद करता हूं ।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो, यह कामना है।

"ऋषि गाथा महाकाव्य" ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें। इसी उद्देश्य से हम ने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है। आप आज ही ४) का मनी आर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखकः— गंगा प्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू है उन सब का ही इस पुस्तक में समामेश है आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २॥)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

दो नवीन पुस्तकें

भगवान शंकर और दयानन्द

यह पुस्तक श्री आनन्द स्वामी जी के उपदेशों का संग्रह है। इस पुस्तक में बहुत ही सरल शब्दों में जगत् गुरु शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा महर्षि दयानन्द के त्रैतवाद का सुन्दर चित्र खेंचा है। मूल्य ४१ नये पैसे (।=)॥)। ६ नये पैसे डाक खर्च।

एक ही रास्ता

इस पुस्तक में स्वामीजी की सात दिन की ओंकार व्याख्या है। प्रणायाम पर स्वामी जी ने अच्छी व्याख्या की है। मूल्य ॥=) डाक खर्च १३ नये पैसे

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
४	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२।।)
११	धान की खेती	१।।)
१२	संतरे की बागवानी	२।।)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२।।)

नोट:— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६४।।।=) होती है कसाथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्
ऋग्
यजु
साम
अथर्व

वेद प्रकाश

वर्ष ५ | अंक ११
जेष्ठ शक सं० १८७९, जून १९५७, दयानन्दाब्द १३३
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द
मू०नये पैसे१९, वार्षिक २)
विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

ईश्वरी शक्तियाँ

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥
ऋ० ७।३५।४॥

अर्थ—(ज्योतिः अनीकः अग्निः नः शम्) अत्यन्त प्रकाशक वा तेजस्वी अग्नि हमारे लिये शान्तिदायक हो (मित्रा वरुणौ नः शम् अस्तु) प्राण उदान अथवा वायु और जल सुख देने वाले हों (अश्विनाशम्) उपदेशक या अध्यापक सुखदायक हो (सुकृतां: सुकृतानि नः शमसंतु) धर्मात्माओं के धर्माचरण हमें शान्ति देने वाले हों (इषिरः वात अभिवातु) शीघ्रगामी इच्छित वायु हमारे चारों ओर बहे।

प्रकाशस्वरूप अग्नि हमारे लिये सुखकारक हो, प्राण और जल हमारे लिये सुखकारक हों, उपदेशक और विद्वान् शान्तिकारक हों, धर्मात्माओं के शुभकर्म हमारे लिये शान्तिकारक हों, गमनशील पवन हमारे लिए सुख देती हुआ बहे।

मध्य प्रदेश ईसाई मिश्नरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिश्नरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए। इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिश्नरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है। भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों की इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी। अतः इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करें एक प्रति का मूल्य ||) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मंगाने पर |=) अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खर्च माफ़।

वेदप्रकाश का आगामी वर्ष का विशेषांक

पं० लेखराम आर्य पथिक लिखित

सृष्टि का इतिहास

श्रावणी महापर्व पर प्रकाशित होगा। जिसका मूल्य २) होगा। वेदप्रकाश के ग्राहकों को १) में डाक खर्च सहित मिलेगा। इसलिए आगामी वर्ष के चन्दे २) और १) सृष्टि का इतिहास के लिए मिलाकर ३) भेजने चाहिए।

वेदप्रकाश के पिछले दो विशेषाँक

बाल्मीकि रामायण

सम्पादक :—श्री प्रेमचन्द विद्यासागर भास्कर
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय
मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को ८) में।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

इस संग्रह में स्वामी की २० पुस्तकों का संग्रह है। मूल्य ४||) रियायती ३||)

गोविन्दराम हासानन्द वेदप्रकाश कार्यालय,
नई सड़क, देहली।

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक-प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मति:—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं। आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं' वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है। वैदिक सुक्तोंके प्राय ४०० मन्त्रों की शृंखलावद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक हैं।'

मिलने का पता:—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

(विद्वान तथा स्वाध्याय प्रेमियों ने पसन्द की हैं)

आनन्द गायत्री कथा	||)	प्रभु भक्ति १|), सजि०१||)	
प्रभु दर्शन	२||)	तत्वज्ञान	३)
सुख का साधन	—)	एक ही रास्ता	||=)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें

ओंकार निर्णय	१||)	भारतीय संस्कृति के तीन	
योगासन सचित्र	१||)	प्रतीक, ओ३म, आर्य,	
वैदिक प्रार्थना	१||)	नमस्ते की व्याख्या	||)
दयानन्द चित्रावली	२|)	ईश्वरीय नियम और	
वैदिक सिद्धान्तों पर		मनुष्य धर्म	||=)
बहनों की बातें	१|)	वैदिक संध्या रहस्य	|=)
आर्य समाज क्याहै ?	||)	वैदिक यज्ञ रहस्य	|=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य		सामाजिक पद्धतियां	|=)

गोविन्दरम हासानन्द,
नई सड़क, देहली।

विवाह की प्रशंसा

(लेखक :—स्वर्गीय वेदशास्त्रज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

ओ३म् । तदिन्मे छन्त्सद् वपुषो वपुष्टर पुत्रो यज्ञान पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंसः इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥ ऋ० १०।३२।३

(तत्) वह (मे) मुझे (वपुषः) सौन्दर्य से (इत्) भी (वपुष्टरम्) अधिक सुन्दर (छन्त्यत्) भाता है (यत् जो (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः) मां बाप के (जानम्) जनन कर्म का (अधीयति) उत्साह से स्मरण करता है [अर्थात् सन्तानतन्तु बनाये रखना चाहता है] स्त्री (पतिम्) पति को (वहति) धारती है, विवाहती है (वग्नुना) आनन्द से (पुंसः) पुरुष का (इत) भी (सुमत्) अत्यन्त (भद्रः) बढ़िया (वहतुः) विवाह (परिष्कृत) संपन्न हो जाता है ।

मानों यह एक सद्गृहस्थ की भावना है । विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तान है । गृहस्थ को पहली प्रसन्नता तब होती है जब उसके सन्तान उत्पन्न होती है दूसरी प्रसन्नता उसे तब होती है जब पुत्र मां बाप से अपना विवाह कराने के लिये निवेदन करता है वेद कहता है । पुत्र का इस अवस्था को प्राप्त होना

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषोवपुष्टरम् =मुझे सुन्दरता की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर लगता है ।

कोई काव्यरसिक ही इसका रस ले सकता है । अर्थात् गृहस्थ होना सुन्दरता की पराकाष्ठा है इससे अधिक गार्हस्थ्य की प्रशंसा और क्या हो सकती है ।

गृहस्थधर्म्म की प्रशंसा के साथ दो निर्देश इसमें मनन और धारण करने योग्य हैं—

१. **पुत्रो यज्ञानं पित्रोरधीयति**—बताता है कि माता पिता बलात्कार से सन्तान का विवाह न कर दें, वरन् जब सन्तान माता पिता के जननकर्म्म का स्मरण करें । आचार्य्य समावर्त्तन करते हुए उपदेश देते हैं—

प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सीः (तै० उ०)=सन्तान के क्रम को न तोड़ना ।

जिसकी शिक्षा दीक्षा विधि से हुई है, ब्रह्मचर्य भंग के कारण जिसमें विषय-वासना का उद्दाम झंझावात न खड़ा हो गया, वह तो तभी विवाह की उत्कण्ठा करेगा, जब वह अपने तथा पत्नी के पालने में समर्थ होगा क्योंकि विवाह में एक प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—

ममेयमस्तु पोष्या (अ० १४।५२)=आज से यह वधू मेरी पोष्या होगी । अर्थात् मैं इसकी पालना करूंगा ।

जिसके पास अपने खाने को नहीं, वह दूसरों का पालन कैसे करेगा ? अतः विवाह का ठीक समय वह है जब गृहस्थी चलाने के लिए अपेक्षित सामग्री के साथ विवाह के लिये उत्कण्ठा भी हो ।

२. पुरुष का बढ़िया विवाह तभी होता है जब

जाया पतिं वहति=पत्नी पति को विवाहती है ।

अर्थात् विवाह में वरण का अधिकार कन्या का है । जाने ! आज लोग इसे क्यों भूल गये ?

(स्वाध्याय सन्दोह से)

॥ कर्म और धर्म ॥

लेः—विद्याराम वर्मा गोरमी (अथाईखेड़ा) भिण्ड

जिसने हम सब को उपजाया।
उसको गढ़ हमने दिखलाया॥
दुनियां को क्या मार्ग बताया।
यही हमारा कर्म था? क्या यही हमारा धर्म था॥

गप्पें लिख पुराण में दीन्हीं।
भूत प्रेत की पूजा कीन्ही॥
हाय तर्क वेदों से कीनी।
क्या येही सत्कर्म था? क्या नहीं हमारा भर्म था?

सत्पुरुषों को चोर बताया।
देखो ईश्वर भी ठहराया॥
ऋषि मुनियों को दोष लगाया।
ये उन्नति का कर्म था? क्या यही सनातन धर्म था?

आर्यों की संतान कहाओ।
वैदिक धर्म क्यों न अपनाओ॥
महर्षि के सब मिल गुण गाओ।
क्यों कि मिटाया भर्म था समझाया वैदिक धर्म था?

—=—

महर्षि दयानन्द का १८५७

कितनों ने सुख सम्पत्ति सभी,
मां के चरणों पर वारी थी।
इतिहास देखना था यह,
सन् ५७ की तैयारी थी॥
तू क्यों मारा २ फिरता,
वह सिद्धि कौन सी पानी है।
अथवा तुझको ही ५७ की,
क्रांति महान् बनानी है॥

ऐसी ओजस्विनी प्रवाहशील पद्यों में महर्षि दयानन्द की जीवनी पढ़िये। ऋषि गाथा काव्य से ये दो पद्य उद्धृत है मूल्य ४) अग्रिम आने पर डाक खर्च माफ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

बाल शिक्षा

(ले० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

खुदत वाजसातये। (अथर्व २०।१३७।२

(वाजसातये) बल प्राप्ति के लिये (खुदत) खेलो, व्यायाम करो!

नवयुवको!

यदि आप बलवान् शक्तिशाली तथा वीर बनना चाहते हैं तो खूब खेलो।

खेलनेसे (व्यायाम करने से) शारीरिक बल बढ़ता है। शरीर सुन्दर और सुडौल हो जाता है। शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो जाता है। आलस्य पास नहीं फटकता। स्फूर्ति, साहस शक्ति और धैर्य की वृद्धि होती है, इतना ही नहीं भूख प्यास, गर्मी सर्दी आदि के सहन करने की शक्ति उत्पन्न होती है तथा उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

खेलने से पट्ठों को शक्ति मिलती है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है, फेफड़े बलवान् होते हैं! रक्त शुद्ध होता है तथा आयु दीर्घ होती है। व्यायाम से चरबी घट कर मोटापा ठीक हो जाता है।

व्यायामी मनुष्य जो खाता है वही पच कर शरीर का अंग बन जाता है, अतः उस का बल और शक्ति बढ़ने लगती है। शरीर हृष्ट पुष्ट और दृढ़ हो जाता है। रोग और बुढ़ापा उस के पास नहीं आते। मृत्यु भी दूर भागती है।

व्यायाम करने वाले में अदम्य उत्साह और बल आजाता है। वह कार्य करने से जी नहीं चुराता। कठिन से कठिन कार्योंको हंसते हंसते कर डालता है। थकना और हांपना तो वह जानता ही नहीं।

स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये खूब खेलना चाहिये, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आप हर समय खेलते ही रहें। जो पढ़ने का समय है उस में मन लगा कर पढ़ो और खेलनेके समय खूब खेलो, क्यों कि :—

जब समय पढ़ने का हो तब खूब पढ़ना चाहिये।
खेल के अवसर पै खेलो हर्ष बढ़ना चाहिये॥

वेदोक्त पारवारिक कर्त्तव्य

(विद्यामार्तण्ड श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति)

किसी समाज और राष्ट्र का भविष्य उसके अङ्गभूत व्यक्तियों और परिवारों पर निर्भर होता है । यदि व्यक्तियों का जीवन पवित्र नहीं और वे अपने पारिवारिक कर्तव्यों का पालन नहीं करते तो समाज और राष्ट्र की भी सर्वतोमुखी उन्नति असम्भव है। अत: पारिवारिक कर्तव्यों का पालन सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति की आधारशिला है। वेदों में न केवल आत्मा, परमात्मा, उनके परस्पर सम्बन्ध, जगत् की उत्पत्ति इत्यादि विषयों का निरूपण है अपितु उनमें पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का भी बड़ी उत्तमता से प्रतिपादन किया गया है। इस लेख में मैं वेदोक्त पारिवारिक कर्तव्यों का संक्षेप से दिग्दर्शन कराना चाहता हूं जिस से सब गृहस्थ अपने कर्तव्यों का भली भांति पालन करके समाज और राष्ट्र को उन्नत करने में पूर्ण सहयोग दे सकें। वेदों के अनेक सूक्तों में इन पारिवारिक कर्तव्यों और आदर्शों का प्रतिपादन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का ८५वां सूक्त सम्पूर्ण रूप से विवाह विषयक है, जिसके अनेक मन्त्र अब भी सर्वत्र विवाहसंस्कार के समय पढ़े जाते हैं। यजुर्वेद के १२ वें और १४वें अध्याय के बहुत से मन्त्रों में पारिवारिक कर्तव्यों का बड़ा उत्तम निरूपण किया गया है। अथर्ववेद का समस्त १४वां काण्ड विवाह के आदर्शों और विवाहित स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का बड़ी उत्तमता से प्रतिपादन करता है। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक मन्त्रों और सूक्तों में पारिवारिक कर्तव्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इन में अथर्ववेद के ३य काण्ड का ३०वां सूक्त सुप्रसिद्ध और अतिस्पष्ट तथा सरल होने के कारण यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस में सागर को गागर में भरा गया है ऐसा कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। अतः सबसे पहले मैं इसी सूक्त के मंत्रों का अर्थ-सहित उल्लेख करना उचित समझता हूं। इस सूक्त में जो शिक्षाएं दी गई हैं वे कितनी सार्वभौम हैं इसको विचारशील पाठक स्वयम् अनुभव करेंगे। वे शिक्षाएं सामाजिक, राष्ट्रीय और समस्त विश्व के कल्याण की दृष्टि से भी सर्वथा उपयुक्त हैं। इस अत्युत्तम सूक्त का प्रारम्भिक मन्त्र है :—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

—'मैं तुम्हारे हृदयों और मनों को मिलाता और द्वेष, वैर विरोधादि को दूर भगाता हूं। जिस प्रकार गौ नवजात बछड़े के साथ प्रेम करती है वैसे तुम एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक कामना से वर्ता करो।' गौ का नवजात बछड़े के साथ प्रेम लोक में सुप्रसिद्ध है जिस को देखने वाले सब जानते हैं। ऐसा प्रेम परिवार तथा समाज के सब लोगों का परस्पर होना चाहिये। यह एक सामान्य भूमिका पारिवारिक कर्तव्यों की लौकिक उपाय द्वारा बांधी गई है जो अत्यधिक आकर्षक है।

२य मन्त्र में माता-पिता के प्रति पुत्र के और पति-पत्नी के पारस्परिक व्यवहार का आदर्श बताया गया है जो इन शब्दों में है :—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

—"पुत्र पिता का अनुव्रत बने। पिता के शुभ संकल्पों और उसके द्वारा प्रारब्ध उत्तम कार्यों को पूरा करने वाला बने। वह पुत्र माता के साथ अपने मत को सदा मिला कर रखे। कभी माता-पिता को कष्ट देने वाला और उनकी धर्मयुक्त आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाला न हो! पत्नी पति के लिये ऐसी

वाणी का प्रयोग करे जिसमें मानो शहद लगा हुआ हो और जो सदा शान्ति देने वाली हो।" अन्य अनेक स्थानों पर भी पति के लिए ऐसी मधुर वाणी के प्रयोग का वेदमन्त्रों में उपदेश है जिनमें उसके मुख से कहलाया गया है कि—

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥
परि त्वा परितत्नुना इक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो मन्नापगा असः ॥

"मेरा जाना-आना, किसी काम में प्रवृत होना और उससे निवृत्त होना सब कुछ माधुर्य युक्त हो। मैं वाणी से सदा मधुर वचन बोलूं और मेरी दृष्टि भी माधुर्य से परिपूर्ण हो। हे देवी! मैं गन्ने के रस के समान मधुर भाव से सर्वथा द्वेषरहित व्यवहार के लिये तुम्हारे पास आता हूं जिससे तुम सदा मेरी कामना करने वाली और मुझसे विमुख न होने वाली बनो।"

इस प्रकार यह माधुर्य तथा प्रेममय व्यवहार पति-पत्नी आदि सबके लिये समान रूप से है जैसा कि इसी सूक्त के अन्य मन्त्रों से स्पष्ट है। तृतीय मन्त्र में भाई-बहिनों के प्रेममय विरोधरहित व्यवहार का उपदेश दिया गया है कि—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

—"भाई-भाई और बहिन-बहिन के साथ कभी द्वेष व विरोध न करे। किन्तु सब सम्यक् प्रेमादि से युक्त और समान सत्यभाषणादि उत्तम व्रतों और गुणकर्म स्वभाव को धारण करने वाले होकर शुद्ध बुद्धि औह मंगलकारिणी रीति से एक दूसरे के साथ सुखदायक वाणी को बोला करो।"

इस प्रकार कुछ पारिवारिक कर्तव्यों का निर्देश करते हुए चतुर्थ मन्त्र में विद्वानों का आदर्श सबके सम्मुख रखा गया है जो कभी परस्पर द्वेष नहीं करते।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

—"मैं तुम सबके कल्याण के लिये उस उत्तम ज्ञान को देता हूं जिसे प्राप्त करके सत्यनिष्ठ ज्ञानी कभी परस्पर विरोध नहीं करते और न द्वेष करते हैं।" सच्चे ज्ञान के बिना कर्तव्यपालन सम्भव नहीं, अतः विद्वानों के सत्संग और उनके उपदेश से उत्तम ज्ञान की प्राप्ति का निदेश किया गया है।

छोटों और बड़ों के परस्पर सहयोगपूर्ण व्यवहार का उपदेश पंचम मन्त्र में है :—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

—"मनुष्यो! तुम बड़ों का मान करने वाले उत्तम ज्ञानयुक्त धुरन्धर कार्य-दक्ष होकर विचरते और परस्पर मिलकर कार्य-सिद्धि करते हुए एक दूसरे से विरोध न करो। एक दूसरे के प्रति सत्य मधुर भाषण करते हुए प्राप्त होओ। मैं तुम्हें एक सत्य धर्म मार्ग की ओर जाने वाले तथा समान लाभालाभ से एक दूसरे के सहायक और समान मन वाला परस्पर प्रेमी करता हूं।" परस्पर प्रेम-पूर्ण सहयोग की भावना रखने का इससे उत्तम क्या उपदेश हो सकता है? जिस परिवार, समाज वा राष्ट्र में लोग इस वैदिक शिक्षा का अनुसरण करने वाले हों वहां सदा सुख, शान्ति, आनन्द और समृद्धि का निवास होगा इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं।

परस्पर प्रेम की यह भावना कार्य और व्यवहार में प्रकट होनी चाहिए केवल बातचीत व संभाषण में नहीं, इस बात का उपदेश इस सूक्त के षष्ट मन्त्र में बड़ी उत्तमता से दिया गया है।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः

—"हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम्हारी प्याऊ आदि सबके लिए समान होनी चाहिए । (कल्पित जाति-भेद-जन्य ऊँच-नीच के भाव को धारण करते हुए इसमें किसी प्रकार का भेद भाव न होना चाहिए।) तुम्हारा खानपान भी साथ हो। (इसमें भी कल्पित ऊंच-नीच के भावों से प्रेरित भेद-भाव न होना चाहिए। खान-पान में भेदभाव का अभाव पारस्परिक प्रेम का बाह्य-चिह्न है जो उसे दृढ़ करता है। प्रेम से मिलकर परिवार तथा समाज के लोगों को खान-पान आदि सब व्यवहार करने चाहिएँ।) तुम्हें मैं समान रूप से धर्म कार्य रूप रथ में युक्त करता हूं। मिल कर धर्म कार्यों को प्रेम से अपनी-अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार सदा किया करो। जैसे नाभि के चारों ओर आरे होते हैं ऐसे ही तुम अपने परिवार वा समाज के नेता के चारों ओर बैठ कर अग्रणी—सबसे बड़े ज्ञानस्वरूप नेता परमेश्वर की आराधना और अग्नि-होत्रादि किया करो।" परिवार के सब लोग मिलकर अग्निहोत्र, स्वाध्यायादि करें तो उनमें न केवल प्रेम की वृद्धि होती है, किन्तु नित्यस्वाध्याय से ज्ञान वृद्धि होकर उनकी सब प्रकार से उन्नति होती है तथा घर का वायुमण्डल पवित्र और शान्तिमय बनता है। सूक्त के अन्तिम मन्त्र में उपसंहार करते हुए कहा गया है कि—

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणो-
म्येकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः
सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥

—"मैं तुम सबको एक सत्य मार्ग की ओर साथ साथ बढ़ने वाले, परस्पर समान मन वाले, एक ही धर्म कृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले, अपनी अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार प्रेमपूर्वक कार्य-विभाजन करके एक दूसरे के उपकार में नियुक्त करता हूं। व्यावहारिक वा पारमार्थिक सुख रूप अमृत की रक्षा करने वाले सत्यनिष्ठ विद्वानों की तरह प्रातः सायं तुम मिला करो और तुम्हारा मन का आनन्दयुक्त शुद्ध स्वभाव सदा बना रहे।"

इस सूक्त में पारिवारिक कर्तव्यों का कितना अच्छा निरूपण किया गया है यह लिखने की आवश्यकता नहीं। वस्तुतः न केवल पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए उत्तम साधन यहां बताए गए हैं बल्कि सामाजिक, राष्ट्रीय और विश्व-शान्ति के साधनों का भी यहां उत्तम निर्देश किया गया है। परस्पर प्रेम, विश्वास और सहयोग की भावना पर मन्त्रों में बल दिया गया है। गृहों के विषय में वेदों में कहा गया है कि—

"इमे गृहा मयोभुवः"—"ये घर सुखदायक हैं"। किन्तु उनकी सुखदायकता परिवार के सदस्यों के परस्पर प्रेम पर निर्भर है इसी लिए यजु० ३।४२ में कहा है कि—

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

—"प्रवास में रहता हुआ मनुष्य जिनका चिन्तन करता है जिनमें अत्यधिक सौमनस (प्रसन्नता और प्रीति) का निवास होता है उन्हीं गृहों की हम प्रशंसा करते हैं।" लोग तो उपर्युक्त पारिवारिक कर्तव्यों के पालन न होने के कारण घर को अशांति का कारण समझते हैं, किन्तु यजुर्वेद ३।४३ में कहा है.

क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवं शग्मं शंयोः शंयोः॥

—"मैं कल्याण और शान्ति के लिए घर में प्रवेश करता हूँ। यहां सदा शान्ति और व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सुख का निवास हो।" श्रद्धा तथा ज्ञानपूर्वक पचमहायज्ञों तथा संस्कारों के अनुष्ठान से ही घरों का ऐसा पवित्र शान्तिदायक वायुमण्डल बन सकता है।

यज्ञमय जीवन व्यवहार

(लेखक—श्री लालचन्द जी मेरठ)

यज्ञमय जीवन-व्यवहार और सर्वोदय का कार्यक्रम एक ही है। यज्ञमय जीवन व्यवहार में सभी को एक दूसरे की सहायता मिलनी अनिवार्य है। सहकारिता यही है कि वैयक्तिक रूप में सभी स्वावलंबी हों परन्तु सभी एक दूसरे से स्वेच्छापूर्ण पारस्परिक सहयोग कर रहे हों। जब कोई व्यक्ति केवल अपनी ही अपनी में संतुष्ट न रहकर सब की उन्नति में सहयोग देता है तो वह वास्तव में यज्ञमय जीवन व्यवहार कर रहा है। ऐसे पारस्परिक सहयोग में सभी का मंगल है, सभी इस प्रकार उन्नत होते हैं और एक उन्नत समाज संगठित होता है, जिस में शक्ति होती है, ऐश्वर्य होता है, सामर्थ्य होता है, और वह समाज प्रभावशाली अवश्य होता है।

यज्ञ भावना से ओत प्रोत जीवन व्यवहार में सभी स्वतन्त्र रहते हुए समाज और राष्ट्र के मंगल के लिए पारस्परिक सहयोग करते हैं। इस प्रकार सभी स्वाधीन रहते हैं, किसी का दूसरे पर दबाव नहीं होता, क्योंकि सहयोग स्वेच्छा पूर्ण होता है और सर्वहित के लिए होता है। एवं सहयोग में आर्यत्व अथवा देवत्व का विकास होता है। दिव्यगुण धारी मनुष्य ही इस प्रकार का सहयोग करते हैं, जिन में जीवन है, जिन में सत्ज्ञान है, जिन में आत्म विश्वास है, जिनमें परस्पर विश्वास और व्यापार स्नेह है, वही समर्थ हैं,और ये स्वेच्छापूर्ण पारस्पारिक सहयोग द्वारा सर्वोन्नति करते हैं। सर्वोन्नति ही सर्वोदय है इसमें सभी का सर्व भाव से समर्पण होता है सभी तत्परता और संलग्नता से कर्तव्य पालन करते हैं और सभी समुन्नत होते हैं। यह सहयोग अत्यंत आवश्यक है। इसमें स्वतंत्र रहते हुए स्वेच्छा से सभी मिलकर सर्व मगल के कार्य सर्व हित की भावना से करते हैं

पारस्परिक व्यवहार में ऋत का होना सहयोग को स्थायी रखने के लिए अनिवार्य है, वरना आपस में विश्वास न होगा और सहयोग निभ न सकेगा। आपस के व्यवहारों में यदि अनृत रहेगा और आपस में संकोच और छिपाव होगा तो सहयोग चिरस्थायी न रहेगा। सहयोग को चिरस्थायी बनाने के लिये आपस का सच्चा सरल सीधा व्यवहार अत्यन्त आवश्यक है यदि आपस के व्यवहार में अनृत रहा तो स्वार्थ वासना अवश्य उभरेगी और वास्तव में स्वार्थ पूर्ति के लिए ही अनृत व्यवहार होता है समाज के चिरस्थायी संगठन के लिए और सहयोग द्वारा सर्वोदय के लिए के व्यवहार में ऋत रहना ही चाहिये। बिना ऋत के सहयोग टिक नहीं सकता।

जहां सहकारिता के साथ उद्योग धन्धे चल रहे हैं वहां आपस के व्यवहार में ऋत आवश्यक है? छल कपट के होते हुए सहकारिता नहीं रहती। सारांश यह कि स्वेच्छा पूर्ण पारस्परिक सहयोग तभी चिरस्थायी रहेगा और उससे सब का हित होगा यदि आपस के व्यवहार निच्छल और निष्कपट रहेंगे। ऋत के व्यवहार में स्वार्थ जनित छल कपट के लिए स्थान नहीं। ऋत का व्यवहार ही यज्ञमय जीवन-व्यवहार है इसमें सभी का लाभ है। यह जो यज्ञ द्वारा सर्व मंगल होना कहा गया है वह इसी प्रकार तो होता है।

यज्ञमय जीवन व्यवहार में सभी एक दूसरे के हृदय में एक ही भगवान को अनुभव करते हुए आपस में प्रेमयुक्त सद् व्यवहार करते रहते हैं। यह आचरण पवित्र है और सुन्दर है। हम जब अपने हृदय में अपने साथ ही भगवान को अनुमान करते हैं तो हम उसी भगवान को सब में भी अनुभव करने लगते हैं और आपस में स्नेह और सौहार्द स्थिर रहता है।

वैदिक धर्म ही क्यों ?

लेखक—पं० हरिदेव जी आर्योपदेशक, देहली

हम वैदिक धर्मी क्यों बनें यह ऐसा प्रश्न है जिस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है, क्योंकि इस समय संसार में अनेकों मत मतान्तर तथा सम्प्रदाय हैं जो भोले भाले लोगों को बहका फुसलाकर तथा अपने मत की झूठी सच्ची विशेषताएं सुनाकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं, तथा उन्हें झूठी कपोल कल्पित आशायें दिलाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं और प्रकट यह करते हैं कि हमारा मत वा सम्प्रदाय ही सर्वोत्कृष्ट है और इसी से ही संसार का कल्याण हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत आर्य समाज का यह प्रारम्भ से ही युक्ति युक्त, ऋषि मुनि प्रोक्त सर्वशास्त्र सम्मत सत्य सिद्धान्त है कि वैदिक धर्म ही सर्वोकृष्ट धर्म है। और इसी के मानने तथा अपने आचरण में लाने से ही विश्व का कल्याण हो सकता है। जब तक मानव संसार वैदिक धर्म को न अपनायेगा और इसके अनुसार स्वकीय जीवन न बितायेगा तब तक कोई व्यक्ति जाति तथा कोई देश, सुख समृद्धि तथा शान्ति सम्पन्न न हो पायगा। इस पर लोग प्रश्न करते है कि आखिर वह कौन सी विशेषता है जो वैदिक धर्म में तो है किन्तु और मतों या सम्प्रदायों में नहीं, जिसके लिये धर्म पर इतना बल दिया जाता है। उत्तर में हमारा निवेदन है कि वैदिक धर्म से अन्य मतों की तुलना ऐसा है जैसे सूर्य के साथ दीपक की, अथवा समुद्र के साथ किसी स्थान पर पड़े हुए चुल्लू भर पानी की। वास्तव में वैदिक धर्म से किसी मत की तुलना की ही नहीं जा सकती। जरा विचारिये कि प्रकाश पुंज तेजो भण्डार सूर्य के साथ टिमटिमाते सितारों की समता ही क्या, प्रखर देदीप्य मान गैस के सम्मुख बुझते से दीपों का सत्व ही क्या, अगाध पयोनिधि से क्षुद्र बहती हुई जल धाराओं का साम्मुख्य ही क्या, वास्तव में वैदिक धर्म पूर्ण प्रकाश युक्त गैस है तो यह बुझते हुए दीपक, यदि वैदिक धर्म अगम्य अगाध अथाह समुद्र है तो यह मत उसी से उत्पन्न हुई थोड़े समय तक उससे विभिन्न प्रतीत होने वाली तरंगें हैं। जो अन्ततः उसी मे ही विलीन हो जायेंगी, पुनः ऐसी अवस्था में वैदिक धर्म से किसी मत विशेष की तुलना अथवा समता कैसी, इसलिये किसी मत विशेष से इसकी तुलना न करते हुए वैदिक धर्म की कुछ विशेषताएं आपके समक्ष रखता हूँ। पढ़िये विचारिए और स्वयं ही अन्य मतों से तुलना कीजिये आप अनुभव करेंगे कि विशेषताओं के समूह का नाम ही वैदिक धर्म है और जो अन्य मतों में कोई विशेषता जान पड़ती है वह भी वास्तव में वैदिक धर्म से ही लाई गई है अन्यथा कुछ नहीं। अतः—

(१) वैदिक धर्म की पहली विशेषता है कि यह ईश्वरीय ज्ञान है और किसी एक व्यक्ति, जाति या देश विशेष के लिये इसका अविर्भाव नहीं हुआ किंतु यह सार्व भौम धर्म है और आदि सृष्टि में चार ऋषियों द्वारा सर्व संसार के कल्याणार्थ इसका प्रकाश हुआ, आदि सृष्टि में इसलिए कि कोई मनुष्य इसके लाभ से वंचित न रह जाय जिससे ईश्वर पर पक्षपात तथा अन्याय का दोष न लग सके। प्रसिद्ध विद्वान् मैक्स मूलर ने सुन्दर शब्दों में कहा है—

"If there is a God who has created heaven and earth it will be unjust His Moses, of His divine knowledge. Reason and comparative study of religions declares that God gave His divine knowledge to mankind from his first appearance on earth".

(Science and religion)

अतः यह प्रत्येक प्रकार के भेदभाव या फिरकादारी से उच्चतर होकर मनुष्यमात्र को मनुष्य बनाने की प्रेरणा करता है और आदेश देता है कि "मनुर्भव" अर्थात मनुष्य बन, इसी में तेरा कल्याण होगा सच्चा मानव बनने के लिये यदि साधनों की गवेषणा हो तो आर्य समाज के दस नियमों को ही विशेष ध्यान से पढ़ें जिनसे आपको ज्ञान होगा कि मनुष्य के अपने प्रति क्या कर्तव्य हैं, अपने से भिन्न दूसरों के प्रति उसके क्या कर्तव्य हैं, ईश्वर के जानने के लिए उसे क्या करना चाहिए, यही मनुष्यता की ओर बढ़ने के अद्भुत सुनहले नियम हैं जिन के द्वारा मनुष्य समाज उन्नति के पथ पर आरूढ़ हो सकता है जरा विचार की ही आवश्यकता है विचार कीजिये और लाभ उठाइये।

(२) वैदिक धर्म की दूसरी विशेषता यह है कि यह ईश्वर से सीधा सम्बन्ध बताता है। इसमें किसी पीर पैगम्बर, औलिया साधुसंत महात्मा की सिफारिश की आवश्यकता नहीं किन्तु "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" का सुन्दर उपदेश देता कि ऐ संसार के लोगो ! उसी परमात्मा को जानकर ही तुम मृत्यु के भय से बच सकते हो, उस परमात्मा को जाने बिना और कोई कल्याण का मार्ग है ही नहीं। कई सज्जनों का विचार है कि जैसे राजा को मिलने के लिये बीच के किसी अच्छे हाकिम की सिफारिश तथा उनसे आज्ञा की आवश्यकता पड़ती है वैसे ही ईश्वर रूपी राजा को मिलने के लिये भी साधु सन्तों मूर्तियों आदि का सहारा या सिफारिश जरूरी है उन भाइयों के लिये हमारा कहना है कि जिस प्रकार राजा का बेटा बिना सिफारिश या किसी नौकर चाकर की सहायता के सीधा पिता से जा मिलता है उसे कोई मिलने से रोक नहीं सकता उसी प्रकार वह ईश्वर हमारा सच्चा पिता है और हम उसके प्यारे पुत्र, पिता और पुत्र के मिलाप में किसी तीसरे की आवश्यकता नहीं, इसलिये वेद कहता है कि "त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता च शतक्रतो बभूविथ, अथाते सुम्नमीमहे" अर्थात् हे सबको वास देने वाले प्रभु आप ही हमारे सच्चे पिता और आप ही हमारी कल्याण कर्तृ सच्ची माता हैं इसलिये हम आपकी शरण चाहते हैं।

(३) वैदिक धर्म की तीसरी विशेषता यह है कि यह नकद धर्म है जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। रत्ति कम न माशा ज्यादा। वेद क्या ही सुन्दर कहता है कि "अनूनं पात्र निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति" अर्थात् मनुष्यों के कर्मों का पात्र उसके सामने रखा है जिसमें किसी प्रकार की न्यूनता, अधिकता नहीं अथवा किसी अन्य का हस्ताक्षेप नहीं। मानव जो कुछ उसमें डाल कर पकायेगा। वही उसको प्राप्त होगा उसमें थोड़ी भी अदला बदली न होगी, इसी के अनुसार ही सम्भवतः किसी उर्दू कवि ने कहा कि—

कुछ देर है पर अन्धेर नहीं, इन्साफ है। अदल परस्ती है, इस हाथ करो इस हाथ मिले यहां सौदा दस्तबदस्ती है!

मनु महाराज तो पूर्व ही कह गए हैं कि—

'नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥
एकः प्रजायते जन्तु रेक एव प्रलीयते।
एकोनु भुंक्ते सुकृतकमेक एव च दुष्कृतम्॥

अर्थात् परलोक में माता, पिता, स्त्री सम्बन्धी कोई भी सहायक नहीं हो सकता यदि कोई साथ देता है तो केवल धर्म ही" अकेला ही प्राणी उत्पन्न होता है और अकेला ही नाश को प्राप्त होता है तथा अकेला ही अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मों के फल का उपभोग करता है वैदिक धर्म इस धर्म नियम द्वारा सबको सावधान करता है और बुरे कर्मों से हटाकर सत्कर्मों की ओर प्रेरित करता है। यह इसकी तीसरी विशेषता है।

(४) वैदिक धर्म की चौथी विशेषता है कि यह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य जीवन का पूरा प्रोग्राम उपस्थित करता है और वह है आश्रम धर्म यानी प्रथम २५ वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन तथा कठिन तपस्या करते हुए शारीरिक, मानसिक, आत्मिक विकास प्राप्त करना, पुनः विवाह करके

पच्चीस वर्ष पर्यन्त शुभ कार्य करते हुए उत्तम संतानोत्पत्ति द्वारा देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृऋण से उऋण होने का प्रयत्न करना । इसके पश्चात् पच्चीस वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम धारण करके तपोमय जीवन व्यतीत करना तथा गृहस्थ में खोई हुई शक्तियों को पुनः प्राप्त करते हुए देश के बच्चों को शिक्षा के भूषण सेविभूषित करना जीवन के अन्तिम भाग में संन्यासी बन कर "अयं निजः परोवेति" अर्थात् यह अपना, यह पराया है इस को छोड़कर संसार के लाभ तथा उपकार में अपना जीवन लगा देना। ऐसा क्रमबद्ध प्रोग्राम जिसके द्वारा मनुष्य क्रमशः उन्नति के मार्ग पर आरूढ़ होता जाये और अपने अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करले, किसी अन्य मत या सम्प्रदाय में आपको न मिलेगा। इसी व्यवस्था से आकर्षित होकर महात्मा टालस्टाय ने अपनी पत्नी के नाम एक पत्र में लिखा था, कि 'जिस प्रकार हिंदू लोग साठ वर्ष की अवस्था में जंगल में चले जाते हैं उसी तरह मैं भी अपने जीवन के अन्तिम दिन ईश्वर भजन में व्यतीत करना चाहता हूँ।" वैसे तो सब देशों में आज भी इस नियम का पालन होता है क्योंकि सरकार भी ५५ वर्ष से ऊपर के मनुष्य को कार्य से मुक्त कर देती है, किन्तु इस का लाभ नहीं उठाया जाता, जहां पूर्व युग में लोग कार्य मुक्त होने पर आत्मोन्नति, देश एवं जाति की सेवा में लगते थे वहाँ आज के युग में मानव केवल लाठी का सहारा लिये मृत्यु के दिन पूरे करता है।

(५) वैदिक धर्म की पांचवीं विशेषता यह है कि संसार की व्यवस्था को स्थिर रखने के लिये अथवा दुनिया के निजाम को भली भांति सुचारु रूप से चलाने के लिये वर्ण धर्म की व्यवस्था करता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र द्वारा क्रमशः शिक्षा, रक्षा, जीविका, कारीगरी आदि जीवन उपयोगी साधनों को विकसित करने का उपाय बतलाता है। अथवा मानव समाज के शत्रु अज्ञान अन्याय अभाव के विरुद्ध ऐसी सेना तैयार करता है जिसका कभी पराजय न हो सके। वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन्म से नहीं अपितु कर्म से मानता है, जो नीच कुल में पैदा होकर ऊंचे कर्म करेगा यह उच्च वर्ग में चला जावेगा और जो ऊंचे वर्ग में पैदा होकर नीच कर्म करेगा वह नीच माना जावेगा इसीलिये मनुजी महाराज कहते हैं शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चे शूद्रताम् ।' अपने कर्मों से शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

(६) वैदिक धर्म की छटी विशेषता यह है कि यह हर बात को तर्क तथा बुद्धि की कसौटी पर परख कर ही मानने की प्रेरणा करता है, अन्धा धुन्ध नहीं। इसलिये वेद में स्थान २ पर बुद्धि की प्रार्थना की गई है यथा "धियोयोनः प्रचोदयात्" तथा "यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते इत्यादि मन्त्रों में, अतः बुद्धि विरुद्ध जितनी भी बातें हैं वैदिक धर्म उसका खण्डन करता है यथा मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, करामात व चमत्कार, रूहों को बुलाना, अन्धविश्वास गुरुडम, कबर पूजा, स्थावर (वृक्ष) पूजा, पत्थर पूजादि सबको त्याज्य बतलाता है। आज इसी सत्य को पश्चिमी विद्वान् भी स्वीकार करते जा रहे हैं यथा—

"The Vedic Religion recognises but one God. It is a thoroughly scientific religion where religion and science meet hand in hand. here, theology is based upon science and philosophy."

—W. D. Brown.

अर्थात् "वैदिक धर्म पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है। इसमें धर्म और विज्ञान एक दूसरे के प्रतिकूल नहीं अपितु अनुकूल हैं यहाँ धर्म का आधार फिलासफी और विज्ञान पर है"

(७) वैदिक धर्म की सातवीं विशेषता यह है कि यह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर नहीं। यदि मेरे धर्म से महर्षि कणाद, गौतम, जैमिनि और दयानन्द जी को निकाल दिया जावे तो मेरे धर्म की कुछ भी हानि नहीं किन्तु यदि सनातन धर्म से महाराज राम और कृष्ण को, बौद्ध मत से महात्मा बुद्ध को, ईसाई मजहब से ईसा मसीह को पारसी मजहब से हजरत जरदुस्त को, इसलाम मत से हज-

रत मुहम्मद साहिब को, मिर्जाई मत से जनाब गुलाम अहमद कादियानी को निकाल दिया जावे तो इन मतों का ढांचा स्थिर नहीं रह सकता अनुचित रूप से पीर पैगम्बरों को महत्व देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि संसार के सभी सम्प्रदायों ने ईश्वर की उपेक्षा ही नहीं की अपितु उन पीर पैगम्बरों एवं सुधारकों को ईश्वर से भी आगे बढ़ा दिया है, जैसे कि हमारे मुहमदी भाई कहते हैं।

अल्लाह के पल्ले में वहदत के सिवा क्या है। लेना है सो ले लेंगे हम अपने मुहम्मद से। सत्य तो यह है कि आज धार्मिक जगत में जो कलह क्लेश ईर्षा द्वेष तथा विषमता दृष्टिगोचर हो रही है, वह इसी व्यक्ति पूजा को महत्व देने का ही फल है किसी तत्ववेत्ता ने क्या ही सुन्दर तथ्य का निरूपण किया है—

"Much of the bitterness which we find in religious circles these days is not to God or His worshsip but due to the mediators, agents, priests and the like who pretend to have monopolised the benefits of spirituality for themselves or of for their followers."

(८) वैदिक धर्म की आठवीं विशेषता है कि वंदिक धर्म मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य जो कि मुक्ति है उसका सत्य स्वरूप तथा उसके ठीक २ साधन बतलाता है, स्वर्ग नरक बहिश्त दोजख, हूरो गिलमान के खियाली पुलाव से सदैव दूर भागता है। यथा वैदिक धर्म में मोक्ष का स्वरूप बताते हुए महर्षि गौतम मुनि न्यायदर्शन में लिखते हैं कि:—

"तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग."

दुःखों के अत्यन्त अभाव का नाम ही मोक्ष है। जिसमें केवल आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। मुक्त आत्मा सच्चिदानन्द परमेश्वर के आनन्द में रमण करती हुई यथेच्छ सर्वत्र आकाश मण्डल में विचरण करता है और समस्त दुःखों से महाकाल पर्यन्त छूट जाता है।

(९) वैदिक धर्म की नवमीं विशेषता यह कि जितने मत मतान्तर संसार में हैं उनका आदि स्रोत यही है क्योंकि संसार के सब इतिहास विद्वान् इस बात में एक मत है कि संसार के पुस्तकालय में सब से प्राचीन पुस्तक वेद ही है। अतः जो भी सत्य सिद्धान्त किसी के पास हैं वह इसी धर्म से ही लिये गये हैं। जार्ज बर्नार्डशा ने भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है:—

"There is only one religion though there are thousand versions of it."

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि नवीन मत मतान्तरों की उत्पत्ति बहुत थाड़े समय से हुई है और वैदिक धर्म तथा वेद ज्ञान सृष्टि के आरम्भ काल से चला आता है यथा:—

(१) सिखमत ४०० वर्ष (२) इसलाम १३७० वर्ष
(३) ईसाईमत १९५६ ,, (४) बौद्ध जैनमत २५०० ,,
(५) यहूदी मत ३००० ,, (६) पारसी मत ४५०० ,,

किन्तु इनके विपरीत वैदिक धर्म १९७२९४९०-५६ वर्ष से सतत चला आता है जब कि संसार का आरम्भ हुआ था और संसार के अन्त तक वेद ज्ञान ही स्थिर रहेगा वेद भगवान ने स्वयं ही आज्ञा दी है कि—

पश्य देवस्य काव्यं न ममार नजीर्यति

परमेश्वर के काव्य वेद को देखो जो न मरता और न पुराना होता है अनादि से अनन्त काल पर्यन्त अवस्थित रहता है।

(१०) वैदिक धर्म की दसवों विशेषता है कि यह ईश्वर का ऐसा सुन्दर और सत्यस्वरूप लोगों के समक्ष रखता है कि आज तक कोई सम्प्रदाय ऐसा ईश्वर का स्वरूप वर्णन नहीं कर सका जैसा कि आर्य समाज का दूसरा नियम ही देखिये कि— ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि कर्ता है, उसी की उपासना करनी

योग्य है। कैसा अद्भुत स्वरूप है वैदिक धर्म का। वैदिक धर्ममें ईश्वरके सामने घण्टा घड़ियाल बजाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह भूख प्यास से परे है, उसे आकाश से नीचे ऊपर चक्कर काटने की भी आवश्यकता नहीं क्यों कि वह सर्व व्यापक है एक देशी नहीं, वैदिक धर्म में ईश्वर को किसी प्रकार के विषय भोगों की चाह नहीं क्योंकि वह इन्द्रिय रहित, निराकार, तथा सर्व प्रकार के सांसारिक विषयों से परे है।

(११) वैदिक धर्म की ग्यारहवीं विशेषता यह है कि स्त्री और पुरुष को अपने २ क्षेत्र में समान अधिकार देता है, जब कि अन्य मतों ने इस मानव जाति के आधे भाग की सर्वथा उपेक्षा की है और इसे पशुओं से भी नीचे गिरा दिया है, यथा तुलसीदास जी ने "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी" का उपदेश दिया, तो शंकराचार्य जैसे महान् विद्वान् ने " किमेकं द्वारं नरकस्य नारी" कह कर नरक का द्वार मात्र घोषित किया, मुसलमानों ने इसे शैतान की रस्सी से उपमा दी। तो ईसाईयों ने आदम की पसली से उत्पन्न होने की कपोल कल्पना के कारण इसे आत्मा रहित मान कर निर्जीव ही बना दिया किसी ने उसे अबला कहा तो किसी ने उसे पैर की जूती कहकर ठुकराया, किन्तु इनके प्रतिकूल एक वैदिक धर्म ही है जो उच्च स्वर से कहता है, कि

इड़े रन्ते काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती मही विश्रुतिः। एताते अघ्नेये नामानि देवेभ्योमा सुकृतं ब्रूतात्॥

(इड़े) प्रशंसित गुण युक्त (रन्ते) रमणीय (काम्ये) चाहने योग्य (चन्द्रे) आनन्दित करने वाली (ज्योते) घर में ज्योति के समान प्रकाशमान (अदिते:) दीनता और दुर्बलता के विचारों से रहित सरस्वती) विदुषी (मही) महान विचारों तथा उदार भावों से युक्त (विश्रुति) बहुश्रुता (अघ्नये) हे कभी न मारने तथा तिरस्कार करने योग्य देवी, यह सब तेरे नाम हैं, इन गुणों से युक्त होकर देवों के लिये तथा मेरे लिये शुभ कर्मों का उपदेश कर। यह स्त्री जाति के प्रति कैसी मनोहर तथा उच्च भावनाओं का प्रकाशन है, मनु जी तो स्पष्ट कहते हैं "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" कि जहां देवियों की पूजा और सत्कार होता है वहां देवता निवास करते हैं और जहां नारियों की निन्दा वा अपमान होता है वहां कभी सुख शांति तथा समृद्धि का राज्य नहीं हो सकता। मातृ शक्ति के रूप में तो इस की पूजा वा महानता से कोई इन्कार कर ही नहीं सकता, इसी लिये किसी वैदिक धर्मी ने कहा है कि "नारी निन्दा मत करो नारी नर की खान नारी से नर उपजे ध्रुव प्रहलाद समान।"

(१२) वैदिक धर्म की बारहवीं विशेषता है कि यह प्रत्येक मनुष्य को गुण ग्राही बनने, आगे बढ़ने तथा हर प्रकार की उन्नति करने, के लिये उत्साहित तथा प्रेरित करता है, जहां सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए, इस धर्म का सुनहला सिद्धांत है, वहां आप्नुहि श्रेयांसमतिसम क्राम अर्थात् ऐ मानव तू अपने गुणों द्वारा (दूसरों को अनुचित ढंग से गिरा कर नहीं) अपने समान योग्यता वालों का अतिक्रमण करते हुए महत्त्व को प्राप्त कर इस धर्म का सर्वोत्कृष्ट आदेश है।

(१३) इस की तेरहवीं विशेषता यह है कि यह अन्यमतों की भांति किसी व्यक्ति को किसी व्यक्ति विशेष पर ईमान लाने, किसी मत विशेष का अनुयायी होने तथा किसी चिन्ह विशेष को धारण करने के कारण ही महत्व नहीं देता, किन्तु न "लिंगं धर्म कारणं" केवल बाह्य चिन्ह धर्म के कारण नहीं का उपदेश देते हुए वास्तविक अर्थों में धार्मिक बनने की चेतावनी देता है और धर्म का लक्ष लक्षण 'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सधर्मः।' (अर्थात्) अभ्युदय यानी शरीर, कुटुम्ब, घर जाति समाज, नगर, राष्ट्र आदि की उन्नति, पूर्णता और इनकी निजी शक्तियों का पूर्ण विकास करना, (निश्रेयस) आत्मा, बुद्धि, मन इन्द्रिय, इन की उन्नति पूर्णता और इन की निजी शक्तियों का पूर्ण विकास अथवा इहलौकिक वा पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति करना बत-

लाता है और पांच महायज्ञों का साधन रूप में वर्णन करता है।

(१४) इस की चौदहवीं विशेषता यह है कि यह सब की उन्नति में अपनी उन्नति का सिद्धान्त स्थिर करता है, मुसलमान कहते हैं मुसलमानों का भला करना ही दीन की सच्ची खिदमत है, और यही सब से बड़ा ईमान है। यही कारण है कि बंगाल में अकाल के दिनों में मिस्टर जिन्ना ने एक हजार की अत्यल्प राशी पीड़ितों की सहातार्थ भेजी तो शरत लगादी कि यह रुपया केवल मुसलमानों पर खर्च किया जावे किसी अन्य पर नहीं, यही अन्य सब्मतों की स्थिति है किन्तु इसके विपरीत वैदिक धर्म के अनुयाइयों ने समय २ पर होने वाले प्रत्येक प्रकार के संकट, दुख, अकाल में लाखों रुपये बिना किसी मत भेद के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, सब पर व्यय किये तथा सब की समान रूप से सेवा की क्योंकि उनके धर्म का सिद्धान्त है कि किसी को भी "अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये" अथवा संसार का उपकार करना इत्यादि। यदि आज लोग इन वैदिक नियमों पर चलना आरम्भ करदें तो विश्व भर की समस्यायें एक दम हल हो जायें।

(१५) यह धर्म व्यक्ति और समष्टि के सम्बन्ध का यथार्थ रूप में समन्वय करता है, इस समय संसार में दो विचार-धारायें चल रही हैं एक विचार धारा यह है कि मनुष्यों को सदैव अपनी उन्नति की ही बात सोचनी चाहिये क्योंकि व्यक्ति गत उन्नति से समाज अपने आप ही उन्नत होता रहेगा, जप, तप, त्याग, संयम ब्रह्मचर्य योग द्वारा तुम अपनी उन्नति करो, तुम्हें दूसरों से क्या। वह कहते हैं—

तू अपनो निबेड़ तैनू होर नाल की
अपनी गठड़ी संभाल तैनू चोर नाल की

इसके विपरीत दूसरी विचार धारा है कि समाज ही सब कुछ है समाज के सन्मुख व्यक्ति का कुछ महत्व ही नहीं, अतः समाज के लिये व्यक्तियों का शोषण एवं समपर्ण साधारण बात है, इन दोनों मतों का समन्वय करते हुए वैदिक धर्म आदेश देता है कि जो समाज अपने अस्तित्व के लिये व्यक्ति के अस्तित्व को कुर्बान कर देता है वह उस माता के समान है जो अपने पुत्रों को मार कर खा गई हो और जो व्यक्ति स्वार्थ वश सार्वजिनक नियमों को तोड़ता है वह उस नादान बच्चे के तुल्य है जिस ने हाथ सेंकने के लिये अपने घर को ही आग लगादी हो अतः सत्य मार्ग यह है कि, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

(१६) वैदिक धर्म की सोलहवीं विशेषता है कि यह प्रत्येक प्रकार के भेद भाव छूतछात, जातपात, अमीर, गरीब, अपना पराया की कल्पित तथा अस्थाई सीमाओं को तोड़कर प्राणिमात्र से प्रेमभाव तथा मित्र भाव से रहने की आज्ञा देता है, "मित्रस्थाई चक्षुषा सर्वाणि भूतान समीक्षे" का सुन्दर सिद्धान्त इस का आधार भूत है, इसी लिये, सर्व प्रकार के विवादों तथा वादों से ऊंचा होकर आर्य (भले) दस्यु (बुरे) के स्वाभाविक भेद से मानव समाज को दो भागों में विभाजित कर सब को आर्य बनने तथा दस्यु या राक्षसों को भी आर्या बनाने की प्रेरणा करता हुआ घोषणा करता है कि

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
अपऽघ्नन्ऽरावणाः

अर्थात् ए ज्ञानी मनुष्यो! प्रभु के साम्राज्य की वृद्धि करो, दुष्टों का दमन करो और सारे संसार को आर्य बना दो"

घर बैठे संस्कृत पढ़िये

यदि आप थोड़े परिश्रम थोड़े व्यय और बिना किसी की सहायता के संस्कृत पढ़ना चाहते हैं तो आज ही हमारी—

सरल संस्कृत शिक्षा

प्रथम भाग की १ प्रति ७ आना मूल्य भेज कर मंगाइये। पसंद न हो तो मूल्य वापिस की शर्त है।

पताः—मैनेजर आगरा बुक स्टोर अजमेर

गौहत्या कौन कराता है?

आजकल भारतवर्ष में यह प्रश्न उठ रहा है कि गौ रक्षा हो। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, यहां के निवासियों का आहार घृत और दुग्ध है। गौरक्षा के बिना भारतवर्ष का उन्नति पर जाना दुस्तर है। इस विचार को देश में फैला हुआ देखकर प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक रीति पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि गौहत्या करता कौन है? जिससे अपील करें कि भाई तुम गौहत्या छोड़ दो, इससे देश को हानि पहुँचती है। हिन्दू कहते हैं कि गौहत्या मुसलमान करते हैं, गवर्नमेंट फौजों के लिये करती है, उनसे अपली करनी चाहिए कि वह इस खराबी को त्याग दें, जिससे भारतवर्ष तबाह न हों। जब हम हिन्दुओं के इस दावे को गम्भीरता से सोचते हैं तो हमें ये दावा बेजान मालूम होता है—बल्कि मुसलमान इत्यादि तो इस बुराई को विवश होकर करते हैं। असली जड़ इसकी हिन्दू है। यदि कुल हिन्दू एकमत हो जावें तो कल ही गौहत्या बन्द हो सकती है। मुसलमान और अंग्रेज जिन देशों में उत्पन्न हुए उन देशों में अन्न की इतनी पैदावार नहीं, जितनी की उनको आवश्यकता है, अतएव उन देशों में मांस और मछली खानेवाले मनुष्य अधिक उत्पन्न हुए, जिनसे उनके संस्कार ही मांसाहारी के थे, उनकी धार्मिक पुस्तकें भी उनको आज्ञा देती हैं—उनके नेताओं के कथन भी उनकी सहायता करते हैं, परन्तु हिन्दुओं की दशा उनसे बिलकुल पृथक है। हिन्दुओं के वेद माँसाहारी को राक्षस बतलाकर राजा को दण्ड देने की आज्ञा देते हैं। ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ५ में 'राक्षसो हन्' सुक्त के २५ मंत्र इस विषय में विद्यमान है। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र मनुस्मृति में ८ आदमियों को घातक अर्थात् कसाई बतलाया है—पशु के मारने की सम्मति देनेवाला, मारनेवाला, अंगों के पृथक-पृथक करनेवाला, मांस को लानेवाला; पकानेवाला, खानेवाला, परोसनेवाला इत्यादि। हिन्दुओं के नेता मांसाहारियों को राक्षस ही समझते रहे। रावण यद्यपि पुलिस्त्य मुनि का पोता, लंका का राजा और पंडित होने के कारण भी राक्षस कहलाया। आज कल प्रायः हिन्दू उपदेशक हिन्दू के अर्थ ही हिंसा से दूर रहनेवाला कर रहे हैं। इन सब बातों की विद्यमानता में हिन्दू लोग मांसाहार को छोड़ने पर तय्यार नहीं, ऐसी दशा में मुसलमानों से आशा रखना कि वह मांसाहार और गौ हिंसा छोड़ दें, एक मूर्खता का ख्याल है। हिन्दू और सिक्खों में मांसाहार दावानल की तरह बढ़ रहा है। जो जातिये माँस से बिल्कुल घृणा करती थीं। अर्थात् गौड़, सनाढ्य, ब्राह्मण, अग्रवाल वैश्य, महेश्वरी वैश्य, ऐसे बहुत से बनिये व जैनी लोग बिना किसी विवाद के निरामिषाहारी समझी जाती थीं—आज-कल इन जातियों के सैकड़ों बालक मांसाहार और मद्यपान के इच्छुक दिखाई पड़ते हैं। यह बात भी सर्वसम्मत है कि हिन्दु मुसलमानों से अधिक रुपयेवाले हैं और मुसलमानों से अधिक रुपया कमाना जानते हैं, इसलिये जिस मांस को हिन्दू खाते हैं (और माँसाहारी हिन्दुओं की संख्या पन्द्रह करोड़ से कम नहीं) उसका बहुमूल्य होना आवश्यक है। जब मुसलमान उस मांस को जिसे हिन्दू खाते हैं, अपनी निर्धनता और मांस के बहुमूल्य होने के कारण खा नहीं सकते, तो मजबूरन गौ जैसे लाभकारी पशु का बध करते हैं। यदि पन्द्रह करोड़ हिन्दू माँसाहार को छोड़ दें। तो बकरे इत्यादि का सस्ता हो जाना सम्भव है इस दशा में और मुसलमान भी इसको खाकर गौ हिंसा से बच सकते हैं और गवर्नमेंट भी फौजों के लिये इसको खरीदने में आगा-पीछा न करेगी—अगर हिन्दू ये चाहें कि हम तो अपने पेट को पशुओं की कब्र बनाते हैं और मुसलमान मांसाहार से हाथ

खींचले । हिन्दुओं की यह इच्छा न तो न्याय कहला सकती है और नाहीं मुसलमान इसको मान सकते हैं। अतएव वर्त्तमान दशा में जो लोग चाहते हैं कि गौहत्या बन्द हो जावे तो उनका कर्त्तव्य यह है कि हिन्दुओं को मांसभक्षण करने से पृथक करने की कोशिश करें और जितना रुपया गौरक्षा के वास्ते खर्चना मंजूर हो उसको मांसाहार के विरुद्ध प्रचार करने में व्यय करें—यदि हिन्दुओं से मांस छुड़ाने में सनातन-सभा, महामन्डल, जैन सभा, आर्यसमाज और दूसरी जातीय सभायें सफल हो जावें या हिन्दू सभा ही इस सफलता को प्राप्त कर ले तो समझना चाहिए कि उसने वैदिक धर्म की रक्षा का बड़ा काम कर लिया—बहुत से लोग प्रश्न करेंगे कि इस समय हिन्दुओं की इन जातियों में जिनमें मांसाहार का प्रचार न था, तब मांसाहार क्यों बढ़ रहा है—इसका यह है कि वर्त्तमान समय में बहुत से कारण हैं, जिनसे मांसाहार की उन्नति हो रही है। पहला कारण तो शिक्षा प्राप्ति के लिये विलायत जाना है, जहां कोई आदमी जब तक अपने धर्म पर पूर्णविश्वास रखनेवाला न हो, मांसाहार से बच नहीं सकता। क्योंकि वहां अधिक लोग मांसाहारी ही साथी मिलते हैं दूसरा कारण धार्मिक शिक्षा की न्यूनता है, जिससे हिन्दू आत्मोन्नति से दूर रहकर जिह्वा के के स्वादु के दास बन गये। तीसरा कारण उस असत्य विचार का फैल जाना है कि मांसाहार बल बढ़ाता है यदि विचार दृष्टि से देखा जावे तो ऐसी बहुत-सी चना इत्यादि घास पात हैं, जिनमें मांस से अधिक बल है। चौथा कारण इस खयाल का फैल जाना है कि खाने पीने से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं वस्तुतः यह विचार नितान्त मूर्खता का विचार है, क्योंकि आहार से मन बनता है और मन से अच्छे और बुरे कर्म बनते हैं। यदि कोई मनुष्य खराब औजार से काम करेगा तो अवश्य ही खराब होगा। इसी ख्याल से प्रत्येक मत में खाने पीने के सम्बन्ध आदेश निर्देश विद्यमान हैं। यह भक्ष्याभक्ष्य तीन प्रकार से है—प्रथम धर्मशास्त्र का बतलाया हुआ, जिससे मन खराब बनता है—उसको धर्मशास्त्र अभक्ष्य बतलाता है, जिससे मन अच्छा बनता है। दूसरा वैद्यक शास्त्रके अनुसार जिनका शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध है। जिससे शरीर को लाभ पहुंचे उसको भक्ष्य अर्थात् खाने के योग्य कहते हैं। जिससे शरीर को हानि पहुंचे, यह वैद्यक शास्त्र के अनुसार अभक्ष्य है अर्थात् खाने योग्य नहीं—तीसरा समाज की अपेक्षा से समाज अभक्ष्य माने वह खाने नहीं योग्य है। समाज की स्थिति यतः शरीर पर निर्भर है इसलिये शरीर को समाज के सम्बन्ध में उत्कृष्टता दी गई है—यदि शरीर रोगी हो तो समाज भी रोगी होगा। अतएव समाज को स्वस्थ रखने के लिये शरीर का स्वस्थ रखना आवश्यक है और शरीर को ठीक रीति पर काम में लगाने के लिये शुद्ध मन की आवश्यकता है, यदि मन खराब हो शरीर काम नहीं कर सकता—इसलिये शरीर पर मन को उत्कृष्टता प्राप्त है और मन यतः आहार से बनता है अतः आहार को मन से पृथक रखना पशुता है। इसी कारण सम्पूर्ण मतवादियों ने विहित और अविहित का सिद्धान्त दर्ज किया है ! ऐसी दशा में जब कि शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक उन्नति के साथ आहार का सम्बन्ध है तो जो आर्य-समाज शारीरिक, आत्मिक और सामाजिकोन्नति का मुख्योद्देश्य रख कर स्थापन हुआ है, उसके नादान नेताओं का यह ख्याल कि खाने पीने से धर्म का कोई सम्बन्ध ही नहीं, कैसा भयानक है। जहां ये विचार धर्म-शास्त्र के विरुद्ध है, वहां प्रमाणों से भी दोष पूर्ण सिद्ध होता है। बस जब तक हिन्दू लोग मांसाहार को न छोड़ें तब तक गौहत्या का बन्द होना असम्भव है यदि हिन्दू मांसाहार छोड़े दें तो गौहत्या का बन्द होना आवश्यक है मानो गौहत्या हिन्दुओं के हाथ में है इस दशा में कौन कह सकता है कि गौहत्या मुसलमान करते हैं या गवर्नमेंट करती है—बुद्धिमानों को यही कहना पड़ता है कि गौहत्या मांसाहारी हिन्दुओं के कारण होती है। हिन्दू यदि गौरक्षा चाहते हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि मांसाहार को छुड़ाने में समस्त शक्ति

व्यय कर दें—हिन्दू लोग गौरक्षा के वास्ते प्राण देते थे, क्या उनकी सन्तान जिह्वा के चस्के को भी नहीं छोड़ सकती। गुरु गोविन्दसिंहजी देवी से प्रार्थना भी करते हैं कि गौघात का दोष संसार से मिटाऊं, क्या गुरु गोविन्दसिंह के सच्चे भक्त गौभक्षण जो गोघात का कारण है, इसको करके गौरक्षक कहला सकते हैं। बाबा नानक साहब तो स्थान-स्थान पर मांसाहार का खण्डन करते हैं क्या बाबानानक के अनुयायी मांस भक्षण करते हुए बाबा साहब के सच्चे अनुयायी कहला सकते हैं। वेदों ने तो मांसाहारी को राक्षस बतला ही दिया है, प्राचीन काल में इस पर प्रयोग भी होता रहा है। रावण पुलस्त्य मुनि का पोता, सब का भक्त होते हुए भी मांसाहार के कारण राक्षस कहलाया। ऐसी दशा में जो ब्राह्मण मांसाहार करते हुए सनातन धर्मी कहलाते हैं, वह ऐसे ही ब्राह्मण और सनातन धर्मी हैं, जैसे पंजाब में नाई का नाम राजा रख दिया जाता है। ऋषि दयादन्द ने तो मांसाहारियों और मद्य पीने वालों के हाथ का खाना तक मना किया है, तो उस दशा में वह आर्य कैसे कहला सकता है जो कि धर्म को जिह्वा के स्वादु के आगे तुच्छ समझता है। वैदिक धर्मियों! यदि तुम गोहत्या को दूर करना चाहते हो तो मांसाहार को दूर करो अन्यथा मुसलमानों और ईसाईयों पर गौहत्या का दोष लगाना छोड दो। वर्तमान दशा में गौहत्या का दोष तुम्हारे सिर है, क्या तुम गौरक्षा के लिए कटिबद्ध होकर माँस भक्षण छुडाने का यत्न नहीं करोगे? जब हिन्दुओं से गौ मांस भक्षण छुडा दोगे तो अपने आप भारत में गोरक्षा हो जायगी—अन्न सस्ता हो जायगा—अर्थात् भारत का सब क्लेश दूर हो जायगा।

समाचार संग्रह

—१० मई को सारे देश में, ५७ का स्वतन्त्रता संग्राम बड़ी धूमधाम से मनाया गया। सरकारी तौर पर सन् १८५७ का स्वातन्त्र समर १५-१६ अगस्त को मनाया जायेगा।

× ×

—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के चुनाव में श्री युत युवराज रणंजय सिंह जी अमेठी को प्रधान चुना गया।

× ×

—स्वामी वेदानन्द जी के जीवन चरित्र लिखने का कार्य प्रारम्भ हो गया है उनके जीवन सम्बन्धी घटनाएं जिन्हें पता हों वे श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक, दयानन्द वेदविद्यालय, युसूफ सराय नई देहली को लिखें।

× +

—पंजाब हिन्दी रक्षा समिति ने पंजाब में हिन्दी रक्षा के लिए सत्याग्रह करना निश्चित किया है। सारा कार्य आर्य समाज के नेताओं ने सम्भाला है।

× ×

—श्री चन्द्रानन्द वानप्रस्थी (चान्द करुण शारदा) के ७० वें जन्म दिवस के अवसर पर (जो १४ जून को मनाया जावेगा) देश तथा विदेश के सैंकड़ों लोगों द्वारा उन्हें शुभ कामनाएं प्राप्त हुई हैं। जिनमें डा० राधाकृष्णन श्री के एम मुंशी आदि उल्लेखनीय है।

नमस्ते की व्याख्या

श्री पं० सुखदेव वेदालंकार कृत छप कर तैयार हो गई। जनता की मांग को देखकर इसे बहुत ही सुन्दर ढंग से छापा गया है मूल्य =) सैंकड़ा १०)

ओंकार व्याख्या

लेखक—पं० अयोध्याप्रसाद कलकत्ता

लेखक ने बड़ी विद्वतापूर्ण ओंकार की व्याख्या की है। मूल्य =) सैकड़ा १०)

दोनों ट्रैक्ट प्रचारार्थ मंगाइये।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

हमारे अद्वितीय तीन ग्रंथ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्त्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इसीलिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके है, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४॥)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका– आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार' दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिल्कुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े तीन रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१–'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२–'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाह जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्णन से टक्कर लेती है।"

आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, ओज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलवीर एवेन्यू, देहरादून।

वेद किस पर प्रकट हुए (गतांग से आगे)

मुन्शी साहब ने पहले पृष्ठ में लिखा है "इसके उपरान्त सत्य के जिज्ञासु और असत्य के जिज्ञासु पुरुषों को ज्ञात हो कि अनादि काल से ऋषि, मुनि, पण्डित और आचार्य्य एक मत होकर यह निश्चय करते चले आये हैं कि वेद हमको ब्रह्मा जी के द्वारा मिला !"

शोक ! मुन्शी साहब ने आचार्य्यों का नाम तो लिखा परन्तु प्रमाण कोई भी नहीं दिया । प्यारे मित्रो ! आज तक चारों वेदों का भाष्य केवल सायणाचार्य के और किसी ने नहीं किया । शोक कि मुन्शी जी ने उसके भाष्य और भूमिका का दर्शन तक नहीं किया और यों ही लिख दिया कि सब आचार्य उस पर सहमत हैं । देखिये, सायणाचार्य कृत ऋग्वेद भाष्य, उपक्रमणिका पृ० ४ पं० ७ छापा कलकत्ता :—

"जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् ।"

"जीव विशेष अग्नि वायु आदित्य को वेदों का प्रकाशक होने से ।" महाशय ! सायणाचार्य स्वयं ही नहीं लिखते वरन् ऐतरेय ब्राह्मण का एक प्रमाण भी उद्धृत करते हैं :—

ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यादैतरेय ब्राह्मण पञ्चकम् ।।३२।

क्यों महाशय ! क्या सायणाचार्य ब्रह्मा पर वेद उतरना मानते हैं या अग्नि वायु आदित्य आदि ऋषियों पर ! मुन्शी जी ने पुस्तकों का विचार किया नहीं, विना पढ़े लिखे लिख मारा कि 'सारे आचार्य इस पर एक मत हैं ।' मुन्शी जी ने एक भी आचार्य का नाम जिसने वेदों पर भाष्य किया हो अपने प्रमाण में नहीं लिखा । मुन्शी जी ने जो 'जनी प्रादुर्भावे' इस धातु को लेकर यह बात लिखी कि अग्नि वायु आदित्य ने इनका कर्मकाण्ड प्रचार किया होगा, यह भी पुस्तकों के न देखने का फल है । यदि अपने आचार्यों की सम्मति को शास्त्रों में पढ़ा होता तो आपको यह झूठा भ्रम न होता । देखो सायणाचार्य्य लिखते हैं :—

ईश्वरस्याग्न्यादिप्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम् ।। ऋ० म० उसक्र० पृ० ४ पं० ६ छापा कलकत्ता ।।

यहां पर मुन्शी जी, आचार्य्य अग्नि आदि का प्रेरक होने से ईश्वर को वेद का निर्माता ठहराता है और मुन्शी जी उसके विरुद्ध अपनी कपोल कल्पना से ब्रह्मा से अग्नि वायु आदित्य का पढ़ना बतलाते हैं ।

प्यारे पाठकगण ! आप न्याय करें कि आचार्य की सम्मति के विरुद्ध स्वामी जी हैं या मुन्शी जी । जब चारों वेदों के भाष्यकर्ता सायणाचार्य मुन्शी जी सम्मति को झूठी बतला रहे हैं तो समझ लीजिये कि मुन्शी जी का यह कथन कि सब आचार्य उसपर सहमत हैं, ठीक नहीं ।

मुन्शी जीने गायत्री उपनिषद् को भी नहीं देखा । नहीं तो ज्ञात हो जाता कि ब्रह्मा वेदों से पैदा होता है अर्थात् वेद के पढ़ने से ब्रह्मा बनता है ।

वेदात् ब्रह्मा भवति ।। गायत्र्युपनिषद् ।।

जिसका अर्थ यह है कि वेदों से ब्रह्मा होता है न कि ब्रह्मा से वेद । जबकि अग्नि आदि से तो वेदों की उत्पत्ति मानी जाती है और वेदों से ब्रह्मा की तो इस दशा में आपका लिखना किसी तरह मानने के योग्य ज्ञात नहीं होता ।

पृष्ठ ५ पर मुन्शी जी ने स्वामी जी का लिखा हुआ शतपथ का एक वाक्य प्रस्तुत किया है:—

"अग्नेर्वै ऋग्वेदोऽजायत वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः ।"

मुन्शी जी की इस पर शङ्का यह है कि 'वै" शब्द श्रुति में नहीं, "सूर्यात" की जगह आदित्यात् है । प्यारे मित्रो ! 'वै" और "एव" पर्य्याय शब्द हैं और ऐतरेय ब्राह्मण की श्रुति में "एव" शब्द विद्यमान है, जिसके अर्थ निश्चय (यकीन) के हैं । फिर आपका कहना किस तरह पर ठीक माना जासकता है ? क्योंकि सिद्धान्त में तो कुछ भी भेद न आया । रहा सूर्य और

आदित्य, ये भी पर्य्याय शब्द हैं इससे भी आपका कुछ कार्य सिद्ध न हुआ, और जो आप कहते हैं "अजायत" शब्द बढ़ाया है वह भी इस श्रुति में विद्यमान है।

और पृ० १० में मुन्शी जी कहते हैं कि स्वामी जी ने जो अग्नि आदि को महर्षि लिखा है, यह ठीक नहीं,क्योंकि वेदों में इनको देवता कहा गया है कि जिसके प्रमाण में आप यह मन्त्र उद्धृत करते हैं :—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता। इत्यादि॥

मुन्शी जी के इस लेखने तो विदित कर दिया कि सचमुच मुन्शी जी की राय को हठ ने अपना घर बना लिया था, क्योंकि उन्होंने जड़ वस्तु देवताओं के लिये जो वेदों में प्रमाण था बिना प्रसङ्ग के उपस्थित किया। सायणाचार्य अपने भाष्य में तो अग्नि, वायु और आदित्य को जीव विशेष बतला रहे हैं परन्तु मुन्शी जीं उसके विरुद्ध समझ कर कि न तो चन्द्रमा जीव विशेष है न सूर्य जीव विशेष है किन्तु जड़ पदार्थ हैं उनको जीवों के स्थान में बता रहे हैं। किन्तु पृष्ठ २५ में तो मुन्शी जी ने यही मन्त्र उद्धृत करके स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा जी ने अग्नि वायु सूर्य आदि को उत्पन्न किया। क्या ही अच्छा होता कि मुन्शी जी इस लेख से पहिले इस श्रुति के अर्थों को शुरु से पढ़ लेते।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरग्ने रापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नमन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः॥

प्यारे मित्रो! चूंकि ब्रह्मा पुरुष है इसलिये वह अग्नि आदि वसुदेवताओं से पीछे उत्पन्न हुआ। मुन्शी जी को इतना भी विचार न आया किं श्रुति के अनुकूल जल अग्नि के पश्चात पैदा हुआ और आपके ब्रह्मा जी पुराणों के अनुसार कमल से पैदा हुए, तब उनकी चारों ओर जल ही जल दृष्टि में आया। भला सोचिये ब्रह्मा से पहले जल और जल से पहले अग्नि थी या नही? महाराय मुन्शी जी साहब, जबकि शतपथ में अग्नि वायु आदित्य से वेदोत्पत्ति सिद्ध है और मनु ने भी इसको माना है:—

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थं मृग्यजुः सामलक्षणम्॥

ऐतरेय ब्राह्मण भी अग्नि वायु से वेदों का प्रादुर्भाव मानता है और गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसा लिखा है।

अग्नेर्ऋग्वेदं वायोर्यजुर्वेदमादित्यात् सामवेदम्॥

अग्नि से ऋग्वेद पैदा हुआ, और वायु से यजुर्वेद, और आदित्य से सामवेद पैदा हुआ। जिससे स्पष्ट शब्दों में पाया जाता है कि अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा ऋषियों पर वेद उतरे। गोपथ ब्राह्मण में जो सिलसिला (क्रम) ब्रह्म परमात्मा से लेकर अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा तक प्रतिपादन किया गया है उसमें कहीं ब्रह्मा का नाम तब नही और अङ्गिरा को तो स्पष्ट शब्दों में ऋषि लिखा है। जबकि अथर्व का पैदा या प्रकाश करना अङ्गिरा नामक ऋषि द्वार है तो फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि अग्नि आदिक ऋषि नहीं हैं? और वेदों का प्रकाश सिवाय चेतन के हो नही सकता और भौतिक अग्नि वायु आदित्य अचेतन हैं। हां अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा के लिये देवता शब्द भी आ सकता है क्योंकि देवता विद्वान का नाम है और भौतिक अग्नि वायु और सूर्य को भी दिव्यगुण वाला होने से देवता कह सकते हैं। गायत्री उपनिषद से भी नही पाया जाता है कि वेद से ब्रह्मा बनता है अर्थात् वेदाध्ययन से ब्रह्मा कहलाता है। तो इस अवस्था में इन सम्पूर्ण पुस्तकोंके प्रमाणों के विरुद्ध उपनिषद् की तुलना ही क्या है और उस श्रुति का अर्थ यह हो सकता है।

"यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै"॥

जिसने ब्रह्मा को पूर्व काल में पैदा किया अर्थात् चारों वेद अग्नि आदि के द्वारा उसको पढ़ा कर ब्रह्मा बनाया, अन्यथा वेदों के बिना तो वह ब्रह्मा हो नहीं सकता और पूर्व शब्द सापेक्ष्य है चूंकि श्वेताश्वतरो-

पनिषद् के बनाने वाले से ब्रह्मा पहिले पैदा हुए, इसीलिये इसके यह अर्थ नहीं कि वह सबसे पहिले पैदा हुए। इसके लिये कोई मन्त्र प्रमाण नहीः—

ब्रह्मा देवानां प्रथमो बभूव ॥

ब्रह्मा देवताओं में पहिले पैदा हुआ, जिसके अर्थ प्रथम होने के हैं जैसे किसी की योग्यता का देख कर कहा जाता है यह सबसे प्रथम है। इसके अर्थ यह होते हैं कि यह सबसे योग्य है। ब्रह्मा सम्पूर्ण विद्वानों से अधिक विद्वान् है, इसलिए कहा गया कि ब्रह्मा देवताओं में अव्वल नम्बर पर है या संसारमें जितने विद्वान् होंगे ब्रह्मा उन सबका शिरोमणि होगा, क्योंकि ब्रह्मा चारों वेदों का ज्ञाता होता है, शेष इससे कम होंगे। इसलिये यहां प्रथम मनुष्य का वाचक नहीं, किन्तु योग्यता का बतलाने वाला हैं।

और आपने जो मनु का अर्थ उल्टा किया है, यह आपका हठ है धातु के अनेकार्थ होने से क्या कोई विरूद्ध अर्थ भी निकाल सकता है? क्या कहीं दुह धातु दानार्थ आज तक किसी ने प्रयोग की है यदि की है तो इसका उदाहरण दीजिये! नहीं, इस झूंठे दावे से बाज़ आइये। यद्यपि व्याकरण में धातु यानि मसदर के अनेक अर्थ होते हैं परन्तु वे परस्पर विरुद्ध नहीं हो सकते। चूंकि देना और लेना परस्पर विरूद्ध है! कौन आदमी है जिसको कहा जावे कि गाय से दूध दुहा गया? और अर्थ यह किये जावें कि गाय का दूध दिया। मुन्शी जी! यहां कुल्लूकभट्ट और स्वामीजी का अर्थ ठीक है और पञ्चमी विभक्ति है! आपने जो शास्त्रज्ञानशून्य होकर लिख मारा यह आपकी भूल है और आपने जो पाराशर सूत्र आदि के प्रमाण दिये हैं वह एक दूसरे के विरूद्ध होने से प्रमाणनहीं और असम्भव भी हैं। क्योंकि कहीं आप सूर्य को पृष्ट २६ पर ब्रह्मा जी का बेटा ठहराते हैं और कहीं पृष्ट २७ में ब्रह्मा जी के बेटे का दोहित्र बतलाते हैं। मुन्शी साहब ने जो यह लिखा है कि अग्नि आदि की उत्पत्ति से पहले ब्रह्मा जी के पास वेद थे तो इसके लिए प्रमाण देना चाहिये, नहीं तो आपका कहना कोई प्रमाण नहीं और जो सांख्य का सूत्र आपने उपस्थित किया है वह ब्रह्मा को सृष्टि का आदि नहीं बतलाता, किन्तु उसके ज्ञानवान् होने से तात्पर्य है। सूत्र यह है:—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त तत्कृते सृष्टिराविवेकात्।

जिसका प्रयोजन यह है अर्थात् उच्च कोटि के ज्ञानी चारों वेदों के वक्ता ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक जितनीसृष्टि है वह सब पुरुष के लिये है। रही यह बात, कि ब्रह्मा ने ब्रह्मविद्या अथर्वा आदि को पढ़ाई है, उसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्मविद्या से अभिप्राय उपनिषदों से है, वेदों से नहीं। क्योंकि इन ब्रह्मादिकों ने ब्राह्मण ग्रन्थ बनाए और उपनिषद् भी ब्राह्मण ग्रन्थों से निकले। जैसे बृहदारण्यक उपनिषद शतपथ ब्राह्मण का एक कांड है इसलिये ये ग्रन्थ ब्रह्मा जी ने ऋषियों को पढ़ाये। मुन्शी जी ने जो प्रस्ताव किया है वह नितान्त ऐतरेय ब्राह्मण के विरुद्ध हैं और सायणाचार्य्य की भी सम्मति के विपरीत है और गायत्री उपनिषद् शतपथ के विरुद्ध होने से निश्चय अशुद्ध है।

मुन्शी जी जो संज्ञा या नाम आदि का कारण ब्रह्मा को मानकर यह लिखते हैं कि अग्नि वायु आदित्य आदि नाम ब्रह्मा जी ने रक्खे, यह तो स्पष्ट प्रसिद्ध है। संज्ञा कर्म ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं जैसा कि महर्षि कणाद वैशेषिक शास्त्र में लिखते हैं:—

ब्राह्मणे संज्ञा कर्म०

अर्थात् संज्ञा आदि का प्रचार ब्राह्मण ग्रन्थों में है। यदि मुन्शी जी यह कहें कि ब्रह्मा से पहिले अग्नि वायु आदित्य नाम किसने रक्खे हैं तो मैं कहता हूँ "ब्रह्मा" यह नाम किस तरह रक्खा गया यह शंका दोनों पक्ष में समान है।

शोक! मुन्शी जी को लिखते समय आग्रह के कारण आगा पीछा स्मरण न रहा। एक स्थल पर स्वयं अग्नि को तपस्वी लिखा और दूसरे स्थल पर उनके ऋषि होने पर शंका की और कहा कि वेदों में देवता माने गये हैं, ऋषि नहीं?

प्यारे पाठकगण! इसी तरह हर आदमी जब तक किसी वस्तु के तत्व को न जाने तब तक उस यथार्थता से उसका ज्ञान नहीं होता और जब तक ठीक ज्ञान न हो तब तक उस पर आरूढ़ नहीं हो

सकता है और जब तक आरूढ़ न हो तब तक आत्मा को शान्ति नहीं होती । जब तक आत्मा को शान्ति न हो तब तक मनुष्य हठ और दुराग्रह से बच नहीं सकता और उसको पुराने संस्कारों के अनुकूल सदैव अविद्या से कष्ट होता है और दूसरे जो अविद्या से स्वार्थता उत्पन्न हो जाती है उसकी चिकित्सा भी विद्या है । मैंने जहाँ तक पुस्तकों को देखा तो उनमें अग्नि वायु अंगिरा आदित्य पर ही वेदों का उतरना बताया गया है और ये ठीक भी है कि जो ऋषि सृष्टि के आदि में पैदा होते हैं उनको मुक्ति से लौटने के कारण शुद्ध संस्कार और समझने की शक्ति होती है और उन्हीं के आत्मा में परमात्मा वेदों का उपदेश करते हैं । और ब्रह्मा तो चारों वेदों के जानने वाले का नाम है वह हर एक यज्ञ में अपनी योग्यतानुसार बनाया जाता है । इसलिए ब्रह्मा के सदैव बनने से और अग्नि आदि के सृष्टि के आदि में पैदा होने से मालूम होता है कि वेदों का प्रकाश इन्हीं महात्माओं पर हुआ । इसलिए वेदों के प्रत्येक भाष्यकारों ने वेदों का अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा ऋषियों पर उतरना माना है, ब्रह्मा पर नहीं ।

प्यारे पाठकगण ! जब तक हमें प्रामाणिक ग्रंथों से इस बात का प्रमाण न मिल जावे तो किस प्रकार कोई बुद्धिमान पुरुष उसको मान सकता है और वेदानुकूल प्रामाणिक ग्रंथों में ब्रह्मा पर वेदों के उतरने की कहीं गन्ध भी नहीं । इसलिए स्वीकार करना पड़ता है कि वेद अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा पर उतरे । जब तक विपक्षी लोग कोई पुष्ट प्रमाण उसके खण्डन में न दें, निस्सन्देह प्रत्येक मनुष्य को यह ही मानना पड़ता है ।

प्यारे पाठक गण ! आप उद्योग करें कि संसार में वेदों का प्रचार अधिक हो ताकि वेद के वे सिद्धांत जो आज कल साधारण लोगों पर विदित न होने से उपयोगी होने पर भी संसार को लाभ नहीं पहुँचा सकते, उनसे संसार के लाभ पहुंचाने और लोग वेदोंके अभ्यास से अपनी बुद्धि को सुधार कर अपनी आत्मा की शान्ति प्राप्त करके संसार में स्वार्थ आदि व्याधियों से बच कर संसार में परोपकार करते हुए अन्त को मुक्ति सुख को प्राप्त करें ।

॥ ओ३म् शान्तिः ३ ॥

❀ ओ३म् ❀

वेदों का महत्व

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।

यजु० अ० ३२ मं० १४

प्यारे भाइयो ! इस वेद मन्त्र में ईश्वर जीवों को इस बात का उपदेश करते हैं कि हे जीव यदि तुम अपनी आत्मा की शांति के लिए किसी वस्तु की मुझसे प्रार्थना करना चाहते हो तो मुझसे ऐसी वस्तु मांगो कि जिसके प्राप्त होने के पश्चात तुम्हें दूसरी बार मांगने की आवश्यकता न हो । जिस को प्राप्त करके तुम्हारी आत्मा फिर कभी दुःखी न हों और जिसके होने से तुम कभी अपने आपको किसी कामके करने में जो तुम्हारे लिये बनाये गये हैं, अयोग्य न समझो और जो पदार्थ तुमको संसार में अपने प्रयत्न से न मिल सकता हो उसके लिये मुझसे मांगो । प्यारे मित्रो ! इस मन्त्र का अर्थ यह है कि हे ज्ञान स्वरूप तथा प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! जिस मेधा नामक धारणावती बुद्धि की देवगण अर्थात् विद्वान् उपासना करते है, जिस बुद्धि को पूर्वकल्पके ऋषि मुनि और हमारे पुरुषा को प्राप्त थे, आप उसी बुद्धि से हमें बुद्धिमान कीजिये । प्यारे मित्रो ! शास्त्रों में बुद्धि दो प्रकार की मानी गई है । एक 'धी' दूसरी 'मेधा' । धी उस बुद्धि को कहते हैं जिसकी शक्ति जल के तुल्य है । जिस प्रकार जल में जो मिलाने की शक्ति है नियत किये हुए पदार्थ को मिलाकर समाप्त हो जाती है और वह शक्ति

अधिक नहीं बढ़ सकती। इसी प्रकार भी यह बुद्धि है कि जिससे मनुष्य मोटी मोटी सांसारिक बातें जान सकता है जो कि हरएक योनि के लिये नियत है और नियत है और जिससे केवल प्रत्यक्ष वस्तुओं के अतिरिक्त और वस्तुओं का ज्ञान नहीं हो सकता और जिस बुद्धि का भव्य संसार की बाह्य इच्छाओं को छोड़कर आत्मविद्या को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी मेधा उस बुद्धि को कहते हैं जिसकी शक्ति अग्नि के तुल्य है। अग्नि में जो दाह शक्ति है जितने भी दहन योग्य पदार्थ उसके सम्मुख आते जावेंगे उतनी ही वह बढ़ती जायेगी, और वह शक्ति कभी समाप्त न होगी, जब तक जलाने के योग्य पदार्थ उसके सामने आते जायें। उसी प्रकार मेधाबुद्धि वाला मनुष्य जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति के यथार्थ ज्ञान को प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द के द्वारा प्राप्त करके उसके साथ ठीक उचित बर्ताव करके अपने आत्मा की सच्ची शान्ति को प्राप्त कर सकता है। वह भूत कामों के फलों को देखता हुआ वर्तमान को आगे के सुधार में व्यय कर सकता है, शरीर इन्द्रियों और मन से जो आत्मा को अपने उद्देश्य पर पहुँचाने के स्थान में रथ लगाम और घोड़ों के तुल्य दिये हैं वश में करता है वह कभी इन्द्रियों का सेवक नहीं बनता और न इन्द्रियों को बलहीन होने देता है। वरन् जानता है कि इन्द्रियों की प्रबलता और निर्बलता दोनों मेरे लिये हानिकारक हैं, क्यों कि प्रबल इन्द्रियां आत्मा को प्रकृति के गढ़े में गिरा देती हैं और निर्बल इन्द्रियां ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने का काम नहीं दे सकती हैं। आर्यजनों ने इस मन्त्र के अर्थ को समझ कर और प्रत्यक्ष में यह बात देखकर कि एक आदमी ५०० भैंसों का झुन्ड चराता है और वही एक आदमी दो आदमियो को नहीं पकड़ सकता। क्यों कि भैंस में बुद्धि नहीं है, और वह यह नहीं समझ सकती कि मैं किस प्रकार इसके हाथ से छूट सकती हूँ और आदमी बुद्धि के होने से यह समझते हैं कि यदि दोनों इधर उधर को चल दें तो यह आदमी हमें कभी नहीं पकड़ सकता, हमारे ऋषियों ने यह परिणाम निकाला था :—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतोबलम्।
॥ पञ्चतन्त्रे ॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि हैं उसको बल भी है और निर्बुद्धि को किस प्रकार बल हो सकता है ? मैं इस पर एक बात लिखता हूँ—एक बार बुद्धि और प्रारब्ध में झगड़ा हुआ। बुद्धि ने कहा कि मेरी शक्ति बड़ी है, मैं जिसको कहूँ सुखी करूं और मेरे बिना कोई बड़ा नहीं हो सकता। भाग्य ने कहा कि मेरी शक्ति अधिक है मैं तेरे बिना काम कर सकता हूँ। तू मेरे बिना काम नहीं कर सकती। प्रत्येक ने अपनी अपनी युक्तियाँ बलपूर्वक दीं, परन्तु जब यह झगड़ा युक्तियों से पूरा होता दिखाई न दिया तो बुद्धि ने प्रारब्ध से कहा कि यदि तू इस गडरिये को जो सामने जंगल में भेड़े चरा रहा है मेरी सहायता बिना यदि बादशाह बना दे तो मैं मान लूंगी कि तेरी शक्ति बड़ी है। यह सुनकर प्रारब्ध ने उसको बादशाह बनाने का यत्न आरम्भ किया। प्रारब्ध ने एक बड़ी अमूल्य खड़ाऊं जिसमें लाखों रुपयों के रत्न जड़े हुए थे, लाकर गड़रिये के आगे रख दी, गड़रिया उनको पहन कर फिरने लगा। फिर प्रारब्ध ने एक व्यौपारी को वहाँ पहुँचा दिया। व्यापारी उस खड़ाऊं को देखकर चकित हा गया। उसने गडरिये से कहा कि तुम यह खड़ाऊं बेच दो। गड़रिये ने जवाब दिया मोल ले लो। व्यापारी ने कहा—मूल्य कहो। गड़रिये ने कहा कि क्या मूल्य बतलाऊं, मुझे नित्य रोटी खाने के लिए गाँव में जाना पड़ता है, यदि तुम दो मन भुने चने इस खड़ाऊ का मूल्य दे दो तो मैं चने चबा कर भेड़ों का दूध पी लूंगा और गाँव में जाने के कष्ट से छूट जाऊंगा। सारांश यह है कि इस निर्बुद्धि गड़रिये ने ऐसी अमूल्य खड़ाऊं जिसमें एक एक हीरा लाखों रुपये का था दो मन भुने चनों में बेच डालीं। यह देखकर प्रारब्ध ने और बल दिया। उस व्यापारी को एक राजा के दरबार में पहुँचा दिया। जिस समय व्यापारी ने वह खड़ाऊं राजा को भेंट की, राजा चकित रह गया और व्यापारी से पूछा कि "तुमने यह खड़ाऊं कहां से ली हैं।" उसने जवाब दिया कि 'एक राजा मेरा मित्र है उसने यह

खड़ाऊ मुझे ही हैं ?" राजा ने पूछा "क्या उस राजा के पास ऐसी और खड़ाऊं हैं ?" व्यापारी ने जवाब दिया, हां हैं । "राजा ने पूछा क्या उस राजा के कोई लड़का भी है ?" व्यापारी ने कहा—"हां !" उसके लड़का भी है । यह सुनकर राजा ने कहा कि "जाओ मेरी लड़की की सगाई उस राजा के लड़के के साथ करा दो ।" ये सब बातें जब प्रारब्ध के बल से कह चुका, तब राजा की पिछली बात को सुन कर चकित हो गया । क्योंकि ज्ञात था कि खड़ाऊं तो गड़रिये से ली हैं, न कोई राजा है न राजा का लड़का ! लेकिन इस झूठ बात के मुंह से निकल जाने से उसने सोचा कि यदि इस समय मैं अपने झूंठ को स्वीकार करता हूँ तो राजा न मालूम क्या दंड देवे । विचार करके उसने सोचा कि जिस प्रकार हो सके राजा के नगर से निकल चलना चाहिए । उसने राजा से कहा कि "मैं आपकी लड़की की सगाई करने के लिये जाता हूँ" यह कहकर जिस ओर से आया उसी ओर को प्रस्थान किया । जब उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने गडरिये को देखा था तो क्या देखता है कि वह गडरिया उससे अधिक मूल्य की खड़ाऊँ पहन रहा है । व्यापारी इस बात से विस्मित हो गया । उसने सोचा कि यह कोई सिद्ध पुरुष है । जिसको इस भांति वस्तुए कुदरत से मिलती हैं । उसने सोचा कि यहां ठहर कर इसका हाल मालूम कर लेना चाहिए । यह सोच कर उसने वहां डेरे लगा दिये, उसके पास बहुत सा तांबा लदा हुआ था, वह सब सामग्री वृक्ष के नीचे एक ओर रख दी । जब-दोपहर हुई तो गडरिया धूप का मारा उस वृक्ष के नीचे आया जहां तांबे के ढ़ेर पड़े हुए थे । वह उस ढ़ेर के साथ सिर लगाकर सो गया । उसके तकिये लगाने से प्रारब्ध ने तांबे को सोना कर दिया जब व्यापारी ने यह देखा तब उसे विचार आया कि जिस आदमी के सिर लगाने से तांबा सोना हो जाता है, उसको राजा बनाना कौन बड़ी बात है । यह सोचकर व्योपारी ने पृथ्वी मोल ली और किला बनाना आरम्भ कर दिया ओर सेना भी रखने लगा जब सब सामग्री प्रस्तुत हो गई, तब उस गडरिये को पकड़कर किले में ले गया । अच्छे राजशाही वस्त्र पहना दिये और मंत्री, धनिक, चाटुकार सेवक, रख दिये । फिर उस राजा को चिट्ठी लिखी कि हमारे राजा ने आप की लड़की की सगाई स्वीकृत कर ली है, जो तिथि नियत करो, बरात उस दिन पहुँच जाये, राजा ने तिथि नियत करके लिख भेजी, इधर बिवाह का प्रबन्ध होने लगा । एक दिन जब दरबार लगा हुआ था, सब मन्त्री और अमीर बैठे हुए थे, गडरिया राजसी तख्त पर तकिया लगाये राजा बना बैठा था, उस वक्त गडरिये ने व्यापारी से कहा कि "तुम मुझे छोड़ दो, देखो मेरी भेड़ें किसान के खेत में चली जावेंगी ओर वह मुझे पीटेगा ।" यह सुनकर सब लोग हँस पड़े ओर व्यापारी दिल में बिस्मित हुआ कि इसका क्या प्रतिकार किया जाये। जो कहीं उस राजा से इसने कह दिया तो मैं निष्प्रयोजन मारा जाऊँगा । फिर व्यापारीने उस गडरियेसे कहा कि "यदि तुम फिर कभी ऐसा शब्द ऊंचे स्वर से कहोगे तो तुम्हें खड्ग से मार दूंगा, जो कुछ कहना हो मेरे कान में कहना ॥" निदान विवाह की तिथि निकट आ गई। व्यापारी बरात लेकर चला । जब राजा का नगर निकट आ गया और उधर से राजा का मंत्री बहुत से कामदारों (कार्यभारियों) सेना और सैनिकों के साथ अगवानी (लेने) को आया तो उन्हें देखकर गडरिये को बिचार आया कि कदाचित मेरी भेड़ इनके खेत में जा पड़ी और ये मेरे पकड़ने को आये । चूंकि बात कान में कही गई और किसी को बिदित न हुई और लोगों ने व्यापारी से पूछा कि राजकुमार जी क्या कथन करते हैं तो व्यापारी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार आदमी अगवानी के लिए आये हैं सबको पांच २ लाख रुपया इनाम दिया जाये । निदान प्रतिएक आदमी को पांच २ लाख रुपया इनाम दिया गया, नगर में प्रसिद्ध हो गया कि एक बड़े भारी राजा का लड़का विवाह के लिये आया है, जो हर एक आदमी को लाखों रुपये इनाम देता है सैकड़ों हजारों का नाम नहीं जानता । राजा भी डरा कि मैंने बड़े भारी राजा से नाता जोड़ लिया है, परमेश्वर ही प्रतिष्ठा रक्खेगा तो रहेगी । निदान उस गडरिये का विवाह राजा की लड़की से हो गया । यहां तक बुद्धिमान व्यापारी के बल से प्रारब्धकी सफलता हुई । परन्तु रात को गड़रिया अकेला राजा के महल

में रहा, जब झाड़, फानूस लैम्प जलते देखे तो उस गडरिये को ध्यान आया कि जंगल में भूतों की आग सुनी थी, वह यही आग है !मैं इस में जलकर मर जाऊंगा। वह गडरिया यह सोच रहा था इतने में बादशाह कीं लड़की गडरिये की तरफ आई और जब उसने आभूषणों का शब्द सुना तो उसे ध्यान आया कि कोई चुड़ैल मेरे मारने के लिये आ रही है। यह सोच कर वह झट पट एक दरवाजे की ओट में छिप गया, राजकुमारी ने देखा कि राजकुमार यहां नहीं, वह दूसरे मंदिर में चली गई। उसके जाते ही इसे ध्यान आया कि अभी एक चुडैल से बचा हूँ न मालूम यहां कितनी चुड़ैल और आवें, इसलिए यहां से भाग चलना चाहिए। यह सोच ही रहा था कि उसे एक जीना ऊपर की तरफ दिखाई दिया, वह झट ऊपर चढ़ गया और एक ओर छज्जे में हाथ डालकर नीचे कूद कर भागने का विचार किया।उस वक्त बुद्धिने प्रारब्ध से कहा कि देख तेरे बनाने से यह राजा न बना, बरन अब गिरकर मरेगा।

प्यारे मित्रो ! इस कहानी के दृष्टान्त से आप समझ गये होंगे कि यदि संसार की सब सामग्री एक ओर प्रस्तुत हो जावे तो भी जब तक मनुष्य को बुद्धि न आवे जब तक अपने मनोरथ को नहीं पहुँच सकता है।

प्यारे बुद्धिमान् भाईयो ! यदि आप पर्य्यटन के लिये किसी जंगलमें जायें और वहां किसी यात्री को बड़े वेग से यात्रा करता देखें और आप उससे प्रश्न करें कि तुम कहां जाओगे, और वह उत्तर देना नहीं जानता, और उससे पूछें 'किस मार्ग से जाओगे' वह कहे 'मैं नहीं जानता' आप उससे पूछें 'कहां से आये हो ?' वह उत्तर दे 'मैं नहीं जानता' आप उससे कहें 'तुम्हारे पास यात्रा की सामग्री कितनी है ?' वह कहे 'मैं नही जानता।' क्या ऐसे यात्री को देख कर जो प्रतिश्वास चलता हो परन्तु पहुँचने के स्थान और यात्रा की सामग्री से नितान्त अपरिचित हो, उसको देख कर क्या आपकी बुद्धि यह विचार न करेगी कि यह बड़ा भारीमूर्ख और उन्मत्त है क्योंकि बुद्धिमान लोग कहते हैं कि—

प्रयोजनमनभिसन्धाय प्रेक्षावन्तो न प्रवर्तन्तइति ।

अर्थात उद्धेश्य का मन में ध्यान रक्खे बिना थोड़ी बुद्धि वाला मनुष्य भी किसी काम को आरम्भ नहीं करता। बुद्धिमान पुरुषों ! सोचने का स्थान है कि आप जो संसार की यात्रा में अहर्निश चल रहे हैं क्या आपको विदित है कि वह कौनसा मार्ग या अवस्था है जहां पर पहुँचकर यह समझ सकें कि हमने जिस उद्धेश्य के लिए काम आरम्भ किया था वह पूरा हो गया ! मैं समझता हूँ कदाचित् मनुष्यों ने इन प्रश्न के उत्तर कोजिसका वह यथार्थ रीति पर कुछ न कुछ उत्तर दे रहे हैं, इन्होने बुद्धिमत्ता से कुछ नहीं सोचा यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य अनगिनत कामों के करते हुए भी एक पल मनुष्य जीवन के उद्धेश्य को पूरा करना चाहता है और इसी के न समझने के कारण आदमियों में विरुद्ध सम्मति झगड़े उत्पन्न हो रहे हैं। जब मनुष्यों के असली जीवन पर दृष्टि डालकर उनकी वाणी से सुनते हैं और ऋषियों के विचार की ओर देखते हैं तो सब मनुष्यों का नहीं सम्पूर्ण जीवों का एक ही उद्धेश्य विदित होता है, कि महात्मा कपिल ऋषि अपने सांख्य शास्त्रके आरम्भ में कहते हैं:—

अथ त्रिविध दुःखात्यंत निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः।
सां० १०१

अर्थात संसार में जितने प्राणी हैं सब तीन प्रकार के दुःखों के दूर करने का प्रयत्न करते हैं जिससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जीवन का उद्धेश्य तीनों प्रकार के दुःख अर्थात आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से छूटना है।आध्यात्मिक उन दुःखों को कहते हैं जो शरीर के भीतर से उत्पन्न होते हैं जैसे चिन्ता, रोग, क्रोध और ईर्ष्या आदि, औरआधिभौतिक दुःख वह हैं जो दूसरे प्राणियों के निमित्त से उत्पन्न होते हैं जैसे कुत्ते इत्यादि जन्तु के काटने या मनुष्यों में परस्पर की लड़ाई में शस्त्रों के आघात से उत्पन्न होता है; आधिदैविक दुःख वह है जो दैवी शक्तियों अर्थात बिजुली के गिरने, वायु के वेग से चलने, सर्दी गर्मी के अधिक होने, वर्षा के अधिक या कम होने से उत्पन्न होते हैं। अब प्रश्न

यह उत्पन्न होता है कि दुःख, काल के सम्बन्ध से ३ प्रकार का है, भूत दुःख वर्तमान दुःख, अनागत दुःख। इनमें से भूत तो स्वय नाश हो ही गया और वर्तमान दुःख भी प्रतिक्षण भूत होनेसे नाश हो जाता है, इस लिये इनका पुरुषार्थ नहीं किन्तु आने वाले दुःख को दूर करने का नाम पुरुषार्थ है। जैसा कि महात्मा पतंजलि मुनि अपने योग शास्त्र में लिखते हैं:—

हेयं दुःखमनागतम । यो० २।१६

प्यारे पाठकगण! साधारण बुद्धि के आदमी यह शंका करेंगे कि जो रोग अभी उत्पन्न नही हुआ उसका निदान क्या हो सकता है या जो भूख अभी लगी नहीं उसका नाश किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि संसार में प्राप्त वस्तु का निषेध देखा जाता है और अप्राप्त का निषेध किसी प्रकार हो ही नहीं सकता परन्तु जो बुद्धिमान मनुष्य हैं वह समझते हैं कि जिस वस्तु का नाश करना हो उसके बीज का नाश करना चाहिये जैसा कि महात्मा कणाद जी ने लिखा है:—

कारणाऽभावात कार्यऽभावः। वै० १।२।१

अर्थात् कारण के न होने ही से कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता जिस प्रकार बीज के बिना कोई वृक्ष नहीं होता इसी प्रकार जब दुःख का कारण न रहेगा तो दुःख भी उत्पन्न न होगा और दुःख के कारण का नाश करना ही आने वाले दुःख का नाश करना है। प्यारे भ्रातृगण! हमारे वैद्य लोग भी जब किसी रोग की चिकित्सा करना चाहते हैं तो उसके वास्ते उन्होंने जो २ नियम किये हैं जब तक उन नियमों के अनुकूल चिकित्सा न की जाय तब तक रोग। दूर नहीं हो सकता, जैसा महात्मा लोलिम्बराज अपने वैद्य जीवन ग्रन्थ में लिखते हैं। वैद्य कृत्यमाहः—

आदौ निदान विधिना विध्याद् व्याधिनिश्चयम्।
ततः साध्यं समीक्षेत पश्चात् भिषगुपाचरेत्॥
(प्रेम विलसे)

(अर्थ) पहले निदान अर्थात् रोग के कारण आदि से रोग को ज्ञात करे कि वह रोग साध्य है या असाध्य है? यदि ज्ञात हो जाये कि रोग साध्य है अर्थात् चिकित्सा करने योग्य है तो जिस प्रकार रोग उत्पन्न हुआ हो उसके विरुद्ध रीति से चिकित्सा करे।

प्यारे पाठकगण! जिस प्रकार वैद्यक शास्त्र में चार वस्तुएं मानी गई हैं, एक रोग दूसरी अरोग्यता और तीसरा रोग का कारण चौथे रोग दूर करने के कारण अर्थात औषध। इसी प्रकार मोक्ष शास्त्र में चारों वस्तुएं माननी पड़ती हैं यानी एक हेय अर्थात् त्यागने या दूर करने योग्य अर्थात दुःख दूसरे हानि अर्थात दुःख के न होने की दशा अर्थात् आरोग्य अवस्था, तीसरी हेय हेतु अर्थात् दुःख का कारण चौथे हानोपाय यानी दुःख से छूटने की औषधियां रीति।

बन्धुगण! अब हम इस बात की जांच आरम्भ करते हैं कि मोक्ष होना या तीनों प्रकार के दुःख से छूटना असम्भव है या नहीं? पहले प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि दुःख जीव का स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक, यदि यह माना जाय कि दुःख जीव का स्वाभाविक गुण है तो इससे मुक्ति किसी प्रकार हो नहीं सकती! क्योंकि यदि दुःख कारण से उत्पन्न होता तो उसके कारण के नाश से दुःख दूर हो सकता है परन्तु जब उसका कोई हेतु अर्थात् कारण ही नहीं तो उसका दूर होना असम्भव है और महात्मा कपिल मुनि अपने शास्त्र में लिखते हैं:—

न स्वभावतो बद्धस्य, मोक्षसाधनोपदेशविधिः।
सां० १।७

(अर्थ) स्वाभाविक फंसे हुए जीव के लिये मोक्ष साधन का उपदेश हो नहीं सकता क्योंकि स्वभाव अविनाशी है। कोई आदमी अग्नि की गर्मी दूर करने का प्रयत्न नहीं करता और न अग्नि के होते हुए गर्मी दूर हो सकती है। महात्मा कपिल जी लिखते हैं:—

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्
। सां० १ । ८

क्योंकि प्रत्येक वस्तु का प्राकृतिक गुण बिना गुणी के नाश हुए नाश नहीं हो सकता और गुणी को नाश करना यहां अभीष्ट नहीं वरन् उसमें से

क्रमशः

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री० विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र। डाक खर्च माफ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां।

महात्मा आनन्द स्वामी—"श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुनकर मेरा अन्तकरण गद गद हुआ

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार—आर्य जगत् में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जावेगी।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य—श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है। अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिये कवि का धन्यवाद करता हूं।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो, यह कामना है।

"ऋषि गाथा महाकाव्य" ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें। इसी उद्देश्य से हम ने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है। आप आज ही ४) का मनी आर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखक:— गंगा प्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू है उन सब का ही इस पुस्तक में समामेश है आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २।।)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

दो नवीन पुस्तकें

भगवान शंकर और दयानन्द

यह पुस्तक श्री आनन्द स्वामी जी के उपदेशों का संग्रह है। इस पुस्तक में बहुत ही सरल शब्दों में जगत् गुरू शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा महर्षि दयानन्द के त्रैतवाद का सुन्दर चित्र खेंचा है। मूल्य ४१ नये पैसे (।≈)।।)। ६ नये पैसे डाक खर्च।

एक ही रास्ता

इस पुस्तक में स्वामीजी की सात दिन की ओंकार व्याख्या है। प्रणायाम पर स्वामी जी ने अच्छी व्याख्या की है। मूल्य ।।≈) डाक खच १३ नये पैसे

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

☞ गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
४	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२।।)
११	धान की खेती	१।।)
१२	संतरे की बागवानी	२।।)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२।।)

नोटः— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है कसाथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मंगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ़्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्
ऋग्
यजु
साम
अथर्व

वेद प्रकाश

वर्ष ५ | आषाढ़ शक सं० १८७९, जुलाई १९५७, दयानन्दाब्द १३३ | मू०नये पसे१६, वार्षिक २)
अंक १२ | सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द | विदेशों से ४ शिलिंग

ओ३म्

आगामी छटे वर्ष का प्रथम अंक

सृष्टि का इतिहास

अमर शहीद श्री पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिर लिखित "तवारिख़े दुनिया" उर्दू का हिन्दी अनुवाद वेदप्रकाश के विशेषाँक के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। इस अंक का मूल्य २) होगा, किन्तु वेदप्रकाश के ग्राहकों को केवल १) में मिलेगा, इसलिये इस सूचना को पढ़ते ही, पत्र का मूल्य २) वार्षिक के साथ १) विशेषाँक मिलाकर ३) का मनीआर्डर शीघ्र भेज देवें।

प्रत्येक ग्राहक से निवेदन है कि—

प्रयत्न करके अपने मित्रों को भी ग्राहक बना वेदप्रकाश के ग्राहक संख्या को बढ़ाने में सहयोग देवें। ५ ग्राहक बनाकर विशेषांक सहित १५) भेजने वालों को ६ विशेषांक एक साथ रजिस्टरी से भेजेंगे और वर्ष तक वेदप्रकाश भी भेजते रहेंगे।

इतिहास का पठन पाठन जहां अपने भूतकाल के वैभव व उन्नतावस्था का ज्ञान होता है, अपनी भूलों का भी ज्ञान प्राप्त कर भविष्य का निर्माण करने में मार्ग का ज्ञान प्राप्त होना है, इसलिये प्रत्येक को पढ़ना चाहिये।

नोट :—अगला अङ्क केवल उन्हीं को भेजा जावेगा जिनका १) आ जावेगा।

मध्य प्रदेश ईसाई मिश्नरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिश्नरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए। इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिश्नरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है। भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों की इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी। अतः इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करें एक प्रति का मूल्य ।।) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मंगाने पर ।≈) अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खर्च माफ़।

वेदप्रकाश का आगामी वर्ष का विशेषांक

पं० लेखराम आर्य पथिक लिखित

सृष्टि का इतिहास

श्रावणी महापर्व पर प्रकाशित होगा। जिसका मूल्य २) होगा। वेदप्रकाश के ग्राहकों को १) में डाक खर्च सहित मिलेगा। इसलिए आगामी वर्ष के चन्दे २) और १) सृष्टि का इतिहास के लिए मिलाकर ३) भेजने चाहिए।

वेदप्रकाश के पिछले दो विशेषाँक

वाल्मीकि रामायण

सम्पादक:—श्री प्रेमचन्द विद्यासागर भास्कर
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय
मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को ८) में।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

इस संग्रह में स्वामी की २० पुस्तकों का संग्रह है। मूल्य ४।।) रियायती ३।।)

गोविन्दराम हासानन्द वेदप्रकाश कार्यालय,
नई सड़क, देहली।

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक-प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं। आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं' वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है। वैदिक सुक्तोंके प्राय ४०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक हैं।'

मिलने का पताः—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

(विद्वान तथा स्वाध्याय प्रेमियों ने पसन्द की हैं)

आनन्द गायत्री कथा ।।) प्रभु भक्ति १।), सजि० १।।)
प्रभु दर्शन २।।) तत्वज्ञान ३)
सुख का साधन ―) एक ही रास्ता ।।≈)

आर्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें

ओंकार निर्णय १।।) भारतीय संस्कृति के तीन
योगासन सचित्र १।।) प्रतीक, ओ३म, आर्य,
वैदिक प्रार्थना १।।) नमस्ते की व्याख्या ।।)
दयानन्द चित्रावली २।) ईश्वरीय नियम और
वैदिक सिद्धान्तों पर मनुष्य धर्म ।।≈)
बहनों की बातें १।) वैदिक संध्या रहस्य ।≈)
आर्य समाज क्याहै? ।।) वैदिक यज्ञ रहस्य ।≈)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य सामाजिक पद्धतियां ।≈)

गोविन्दरम हासानन्द,
नई सड़क, देहली।

मेरी बुद्धि कर्मशील हो

(लेखक:—स्वर्गीय वेदशास्त्रज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

ओ३म् । किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशय त्वाशृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ऋ. ११।४२।३

हे (अङ्ग) प्यारे ! लोग (त्वा) तुझे (किम्) क्यों (भोजन) सब को देने वाला (आहुः) कहते हैं ! (मा) मुझ को (शिशीहि) शीघ्रतायुक्त कर । मैं (त्वा) तुझ को (शिशयम्) शीघ्रकारी (शृणोमि) सुनता हूँ । (मम) मेरी (धीः) बुद्धि (अप्नस्वती) कर्मशीला हो । हे (शक्र) शक्तिमन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वसुविदम्) धन प्राप्त कराने वाला (भगन्) भाग्य (नः) हमें (आ+भर) दे ।

प्रभो ! समस्त आस्तिक तुझे पालक कहते हैं ? क्यों वे ऐसा कहते हैं ? मैं तो भूखों मर रहा हूँ । तू किसकी पालना करता है ? सब की पालना करता है । तो मुझे क्यों नहीं पालता ? मुझे क्यों भूखों मरने दे रहा है ? तुझे मुझ पर दया क्यों नहीं आती ।

प्रभो ! शिशयं त्वा शृणोमि मैं तुझे शीघ्रकारी सुनता हूँ । किन्तु मैं तो आलसी हूँ । दीर्घसूत्री हूँ । तुझे पल में प्रलय करना आता है । मुझे युग बीत जाते हैं । तेरे धाम से जब से वापस आया, जाने कितने युग बीते, कितने कल्प गये, किन्तु, मैं वापस न जा सका । ज्ञात नहीं, उस सड़क पर भी पड़ा हूँ या नहीं । दयालो ! शिशीह मा=मुझे तेज कर दे । तू शीघ्रकारी है, शीघ्रकारिता तुझ से ही मांगूगा और किसी से क्यों मांगू ?

तू ने मुझे बुद्धि दी । मैं उससे कुछ कर न पाया । अब उससे करना चाहता हूँ । अतः

अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र=

शक्तिमन् भगवन् ! आशुकारिन् ! शीघ्रता कीजिये । मेरी बुद्धि को कर्म्म से युक्त कीजिये । सुनता हूँ, तुझे कर्म्म प्यारे हैं । अतः मेरा बुद्धि में कर्मण्यता आवे । किन्तु कर्म्म का बोध तू ही करायेगा, तो कुछ बनेगा । मैं कहीं विकर्म्म ही न कर दूं । उलटा कर्म्म करके तेरे कोप का, तेरी उपेक्षा का भाजन न बनूं ।

भगवन् ! तू धनवान् है । मुझे धन चाहिये; किन्तु तू ने

धनं न स्पन्द्रं बहुलम् (१०।४२।५)= [अत्यन्त चंचल धन की भांति] कह कर मुझे धन से डरा दिया है ।

परन्तु फिर भी धन की चाह नहीं मिटी । अतः मघवन् !

वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः=धन दिलाने वाला भग=भाग्य हमें दे ।

मुझ अकेले को नहीं, सब को । प्रभो, तू भक्तों का कल्याणकारी है अतः

कृधि धियं जरित्रे वाजरत्नाम् (ऋ. १०।४२।७) =

भक्त के प्रति वाजरत्ना=ज्ञानधन मन बना । भक्त को तू ज्ञान धन दे । हम सब को यही धन चाहिये । दे धनी ! दे । देकर भी तेरा निधि भरा ही रहता है । अतः दे ।

(स्वाध्याय सन्दोह से)

अनाथों के नाथ।

जो कोई पाप करे जग में,
बस दुख उठावत है सोइ-सोई।
बोए बबूल तो काँटे लगें,
और आम बोरा मीठ फल होई।
दुष्ट जन डूबें भव सागर,
श्रेष्ठ जनों की मुक्ति होई,
"नाथ" कहो किस भाँति तरें,
जब उत्तम कर्म कियो नहीं कोई॥
नाहिं विचार कियो मन माँह,
अज्ञान में आयु निरर्थक खोई,
तज सत-संग कुसंग कियो,
शुभ कर्म बिना दियो जन्म बिगोई॥
आय फँसो मंझधार के बीच,
अरु पार लगय्या दीखे न कोई,
मोहे भरोसो है "नाथ" वै,
नाथ बचावेंगे आप ही और न कोई॥
आप दयालु कहाओ प्रभु,
अब मोहि दया कर शीघ्र बचाओ,
मोहि पतित को शीघ्र उबारो,
जो नाथ पतित पावन कहलाओ।
आप पिता मैं कपूत तुम्हारो,
बाँह पकड़ मुझ को अपनाओ,
भटकत--भटकत तंग भयो,
तब 'नाथ' शरण मैं आपकी आयो॥
दीनानाथ कहाओ प्रभु,
कहो मो सम दीन कहाँ है कोई,
प्रेम की दृष्टि से देखो मुझे दुखी,
पाप कट जाये खोई।
सारे ही जग के हैं रक्षक आप,
तुम्हीं से तो रक्षा जहान की होई,
'नाथ" अनाथों के नाथ भये तब,
नाथ अनाथ रहा कहाँ कोई॥

श्री नत्थन लाल आर्य

बाल शिक्षा

(ले० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी)

सखा सखायमतरद्विषूचो। (ऋ० ६।१६।६)

(सखा) मित्र (सखायम्) मित्र को (विषूचोः) संकट से (अतरत्) बचाता है।

नवयुवको !

संसार में सच्चे मित्रों की बहुत कमी है। हां, स्वार्थ वश मित्र बनने वाले और स्वार्थ पूरा होने पर आंख दिखाने वाले तो बहुत मिल जायेंगे।

सच्चे मित्र वही हैं जो आपत्ति के समय काम आवें। सच्चे मित्रों का प्रेम और सहायता आदर्श होती है। उन में एक दूसरे पर पूरा विश्वास होता है। वे अपने हृदय एक दूसरे के समक्ष खोल कर रख देते हैं। मित्र मित्र के दुःख में दुःखी और मित्र के सुख में सुखी होता है। सच्चे मित्र एक दूसरे पर जीवन न्यौछावर कर सकते हैं। सच्चा मित्र अपने मित्र को संकट से बचाता है। विपत्ति के समय सहायता करता है। मित्र के पसीने के बदले अपना रक्त बहाता है। पथ भ्रष्ट होने से रक्षा करता है, गलतियों को समझाता है तथा व्यसनों के सागर से पार लगाता है।

स्वार्थी मित्रों को पहचान कर उन से दूर रहना चाहिये। स्वार्थी मित्र संकट पड़ने पर अपने मित्र को छोड़ भाग खड़े होते हैं। आप ने उस स्वार्थी मित्र की कहानी तो अवश्य ही सुनी या पढ़ी होगी जो एक रीछ के आने पर अपने मित्र को छोड़ कर वृक्ष पर चढ़ गया था। स्वार्थी मित्र महान् दुःख दाई होते हैं अतः उन से अवश्य बचना चाहिये।

प्रभु आप को बल, शक्ति और सामर्थ्य दे कि आप योगी राज कृष्ण और सुदामा की भांति विश्वास पात्र और सच्चे मित्र बनें।

विविध भाषाओं और नाना धर्मों वाले राष्ट्रवासी

(लेखकः—श्री पं० प्रियव्रत वेद वाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी)

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचंस नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥

अर्थ—(बहुधा) अनेक प्रकार से (विवाचसम्) विविध प्रकार की वाणियों को बोलने वाले (नानाधर्माणं) अनेक प्रकार के धर्मों का पालन करने वाले (जनम्) लोगों को (यथौकसम्) समान घर में रहने वालों को भाँतिं (बिभ्रती) धारण करती हुई (पृथिवी) हमारी मातृ भूमि (ध्रुवा) स्थिर खड़ी हुई (अनपस्फुरन्ती) हिलना डुलना न करती हुई (धेनुः) दुधारु गौ (इव) की तरह (मे) मेरे लिए (द्रविणस्य) धन की (सहस्त्रं) हजारों (धाराः) धाराओं को (दुहाम्) दुहे-प्रदान करे। अथर्व १२-१ ४५

हमारी मातृ भूमि पर लाखों और करोड़ों मनुष्य रहते हैं। वो भिन्न प्रकार की वाणियें बोलते हैं उन की तरह तरह की बोलियाँ हैं। एक ही भाषा बोलते हुए भी उनके मुखों की ध्वनियों के भेद के कारण उनकी वाणियें भिन्न २ प्रकारकी हो जाती हैं किसीकी आवाज कैसी है और किसी की कैसी उनकी आवाजों में भेद के कारण, एक ही भाषा बोलते हुए भी उनकी वाणियें और बोलियें भिन्न २ प्रकार की हो जाती हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि जलवायु और अन्य परिस्थितियों के भेद और उनके भिन्न प्रकार प्रभाव अपनी पुरानी भाषा को शुद्ध रखने के लिए प्रयत्न में शिथिल और असावधानी आदि कारणों से कालक्रम में भेद पड़ते पड़ते राष्ट्र के एक भाग या प्रान्त में रहने वाले लोगों की भाषा दूसरे भाग या प्रान्त में रहने वाले लोगों की भाषा से सर्वथा भिन्न प्रकार की हो जाती है। इस अवस्था में राष्ट्र निवासियो की वाणियें और भी भिन्न भिन्न प्रकार की हो जाती हैं।

हमारे राष्ट्र के लाखों और करोड़ों निवासी नाना प्रकार के धर्मों का पालन करते हैं—नाना प्रकार व्यवहारों का अनुष्ठान करते हैं। कोई किसी काम को कर रहा है कोई किसी को। काई किसी कर्तव्य का पालन कर रहा है कोई किसी को। कोई राज्यधिकारी के कर्तव्यों का पालन कर रहा है कोई प्रजा जन के। कोई गुरुके कर्तव्यों का पालनो कर रहा है कोई शिष्य के। कोई माता पिता के कर्तव्यों का पालन कर रहा है कोई सन्तान के। कोई पति के कर्तव्यों का पालन कर रहा है कोई पत्नी के। इसी प्रकार सब राष्ट्र वासी अनेक प्रकार के कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं।

कई बार ऐसा भी होता है राष्ट्र के कुछ लोगों के आत्मा, परमात्मा और प्रकृति या जगद्विषयक मन्तव्य विचार भेद के कारण दूसरे लोगों से भिन्न प्रकार हो जाते हैं। उनका दर्शन शास्त्र दूसरों से भिन्न प्रकार का हो जाता है। इस दर्शन भेद या मन्तव्य भेद के कारण उनके व्यावहारिक कर्तव्याकर्तव्य सम्बन्धी विचार भी भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। और इस विचार भेद पर आश्रित उनके पूजा पाठ खान पान, विवाह शादी आदि से सम्बन्धित निश्चय और आचरण भी दूसरों से भिन्न तरह के हों जाते हैं। दूसरे शब्दों में प्रचलित अर्थों में समझा जाने वाला धर्म भी उनका दूसरों के धर्म से पृथक प्रकार का हो जाता है। इस दृष्टि से भी राष्ट्र में नाना धर्मों को मानने वाले लोग हो जाते हैं।

हमारी मातृ भूमि पर रहने वाले ये विवध प्रकार की बोलियों को बोलने वाले तथा नाना प्रकार के कामों को करने वाले, नाना प्रकार के धर्मों का पालन करने वाले, लोग परस्पर मिल कर रहते हैं। इस प्रकार मिल कर रहते हैं जिस प्रकार एक घर में रहने वाले लोग प्रेम से मिल कर रहा करते हैं। घर

का कोई व्यक्ति कोई काम कर रहा होता है कोई व्यक्ति कोई। घर में पिता कुछ काम करता है, माता कुछ काम करती है, भाई कुछ काम करते हैं बहिने कुछ काम करती हैं। विभिन्न प्रकार के काम करते हुए और कुछ अंश में विभिन्न प्रकार की वाणियें बोलते हुए भी एक घर के सब सदस्य परस्पर प्रेम से मिलकर रहते हैं। उसी प्रकार हमारे राष्ट्र के विभिन्न प्रकार की बोलियों को बोलने वाले तथा विभिन्न धर्मों को मानने और पालने वाले निवासी भी परस्पर प्रेम से मिलकर रहते हैं। अपने वाणी भेद, भाषा भेद और धर्म भेद के कारण वे आपस में लड़ते झगड़ते हैं। अपने राष्ट्र को वे अपना घर समझते हैं और उसमें घर के सदस्यों की भांति ही प्रेम से मिलकर रहते है ।

राष्ट्र वासियों के परस्पर प्रेम से मिलकर रहने का परिणाम यह होता है कि हमारी मातृ भूमि अपने निवासियों के लिए द्रविण की, सब प्रकार के धन ऐश्वर्य की, सहस्त्रों धाराओं को स्थिर और अविचल भाव से बहाती रहती है। जैसे एक दुधारू गाय स्थिर, चुपचाप, खड़ी होकर बिना हिले डुले अपने कृपापात्र दोग्धा के लिए, अमृत जैसे दूध की धारायें प्रवाहित कर देती है । उसी प्रकार हमारी मातृ भूमि-रूपी गाय भी अपने निवासियों के लिए कृपामयी होकर उनके कल्याण और सुख समृद्धि के लिए सहस्त्रों प्रकार के एश्वर्य की धारओं को स्थिर रूप से प्रवाहित करती रहती है। उसका ऐश्वर्यदान निरन्तर चलता रहता है।

हे हमारी मातृ भूमि--रूपी गौ-माता ! हम पुत्रोंपर अपनी कृपादृष्टि निरन्तर रखना और अपने ऐश्वर्य की धाराओं को हमारे लिए सदा बहाती रहना।

मातृ भूमि के इस वर्णन और उससे की गई उस प्रार्थना द्वारा वेद ने यह उपदेश दिया है कि सब राष्ट्र वासियों को वाणी-भेद, भाषा-भेद और धर्म भेद रहने की अवस्था में भी प्रेम से मिलकर रहना चाहिए। उन्हें अपनी मातृ भूमि को अपना घर समझना चाहिए। और एक घर के निवासी जैसे प्रेम से मिल कर रहते हैं वैसे ही राष्ट्र वासियों को मिलकर रहना चाहिए । जब वे इस प्रकार से मिल रहेंगे तभी उनका राष्ट्र उन्नति कर सकेगा । और उसके लिए ऐश्वर्य की धारायें प्रवाहित कर सकेगा। जिस राष्ट्र के निवासी लड़ते और झगड़ते रहते हैं वह राष्ट्र कभी उन्नत और समृद्ध नहीं हो सकता।

* * *

स्वामी जी सबसे बढ़कर

श्री खदीजा बेगम एम. ए.

महर्षि दयानन्द जी भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से हैं जिनका नाम संसार के इतिहास में विशेषतया भारत के इतिहासाकाश सदैव के लिए एक चमकते हुए सितारे की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जावे थोड़ा है। स्वामी जी बड़े निर्भय और पूर्ण सत्य सम्पन्न थे। अगर वह भारत वर्ष में पैदा न हुए होते तो आज हमको महात्मा गांधी तिलक और लाल लाजपतराय जैसे देश भक्तो के दर्शन भी न प्राप्त होते। नेपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट एवं विजयी संसार में हो चुके हैं। परन्तु स्वामी जी इन सबसे बढ़ कर थे। उन्होने अपने ऊपर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर ब्रह्मचर्य का पालन किया।

परम हंस दयानन्द

सर सैयद अहमद

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेद ज्ञाता थे। वे विद्वान ही नहीं किन्तु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परमहंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योति निर्भय निराकार परमेश्वर की अराधना करने की शिक्षा दी, हमारा स्वामी से घनिष्ट सम्बन्ध था, और हम उनका आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान और श्रेष्ठ थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे। वर्तमान भारत में उनके समान मनुष्य मिलना अत्यन्त कठिन है।

सुखद आर्य विवाह सम्पन्न

सूचित करने हर्ष होता है कि वेद प्रकाश के अध्यक्ष एवं आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक श्री गोविन्दराम जी की सुपुत्री चि. सरस्वती देवी हिन्दी प्रभाकर, सिद्धान्त रत्न, बी ए० (का ०) का शुभ विवाह इन्दौर तथा झालरापाटन (राजस्थान) निवासी अखिल भारतीय हिन्दू-धर्म रक्षिणी सभा तथा झालरा पाटन रेड क्रोस सोसाइटी के मंत्री आर्य समाज के कर्मठ महोपदेशक श्री पण्डित लालारामजी आर्य के द्वितीय पुत्र पं० यज्ञदतजी आर्य एम० ए० एल, एल. बी० वकील के साथ इन्दौर नगर में ७ जून १९५७ शुक्रवार ज्येष्ठशुक्ल १० गंगादशमी के दिन सायंकाल गोधूलि (६ बजे) प्रिन्स यशवन्तरोड स्थित गान्धी भवन में आर्य जगत् के प्रसिद्ध पण्डित श्री पं० वाचस्पति जी तथा भरतपुर के श्री सांवलप्रसाद जी चतुर्वेदी जी के द्वारा विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

विवाह उपरान्त श्री पं० वाचस्पति जी ने तथा श्री सांवल प्रसाद जी ने वैदिक विवाह की महत्ता का वर्णनकिया जिस में गुण कर्मानुसार विवाह पर बल दिया विवाह मण्डप में इन्दौर नगर के अनेक गण मान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति पधारे थे, मध्यप्रदेशके शिक्षा मन्त्री प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान महोदय तथा अनेक व्यापारी वर्ग के भी व्यक्ति पधारे थे बम्बई वालकेश्वर स्थित सीतल बाग के मालिक श्री सेठ सीतल दासजी ' श्री गोविन्दरामजी के मामा साहेब भी पधारे थे।

इस शुभ अवसर पर श्री झालावाड नरेश. श्री इन्दौर नरेश, श्री चन्द्रानन्द वानप्रस्थी अजमेर, श्री पं० आनन्दप्रिय बडौदा श्री सेठ नानजी कालीदास मेहता पोरबन्दर पं० राम भरोसेलाल मद्रास तथा अनेक लब्धप्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आशीर्वाद भेजें

— कृष्णचन्द्र आर्य

श्री पण्डित लालाराम आर्य का संक्षिप्त परिचय

पण्डित जी का जन्म स्थान मथुरा जिले में मेघपुर ग्राम का है आप पालीवाल ब्राह्मण कुलोत्पन्न है किन्तु कार्य क्षत्रियोचित हिन्दु अबलाओं की रक्षा का कार्य करते रहे हैं और कर रहे हैं।

ऋषिदयानन्द को मथुरा जन्मशताब्दी के समय तक आप कट्टर सनातन धर्मी रहे, शताब्दी उत्सव के समय मथुरा के पवित्र स्थान विश्राम घाट पर आर्य और सनातनीं ओं में जो मारपीट इस कारण से हुई थी कि कुछ जोशीले आर्य विद्यार्थी मथुरा के पण्डों के कहने पर भी विश्राम घाट पर जूते पहने उत्तर गये थे इसी पर मारपीट तथा हाथा पाई हो गई थी उसमें श्री लालाराम जीने भी आर्य युवकों को मारा पीटा था।

कुछ वर्ष वाद मालाबार में मोपला काण्ड हुआ इसमें मोपला मुसलमानों ने जो हिन्दुओं पर अत्याचार किये उसका वर्णन स्वर्गिय स्वामी श्रद्धानन्द जी के एक व्याख्यान में श्री लालारामजी ने सुना, मुसलमानों के अत्याचारों का वर्णन सुन इनके हृदय पर आघात हुआ तबसे ये आर्य समाज को हिन्दू धर्म रक्षक के रूप में समझने लगेऔर आर्य समाज में प्रवेश किया, आर्य समाज में उपदेशक के रूप में कार्य करते हुए शुद्धिके कार्य में विशेष रूप से रुचि लेने लगें।

मुसलमानों द्वारा हिन्दु ललनाओं का अपहरण की कथाओं ने इनके हृदय पर और भी आधात किया इस आघात के फलस्वरूप इन्द्रौर में अखिल भारतीय-हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का संगठन किया तथा झालरापाटन में भीं अवलाओं के रक्षार्थ आश्रम खोला, जिससे अनेक हिन्दू विचार के राजा तथा सेठ साहुकारों से सहायता एवं सहयोग मिलता रहा अकेले इसी कर्म वीर के प्रयत्न से कहते हैं। २०-२५ हजार अबलाओं का यवनों के पंजों से उद्धार हुआ है। अब भी हो रहा है मुसलमानों तथा पुलिस द्वारा पर इन सबमें वीर हो गया। करीब १५० मुकद में चले होंगे

—विरक्त देव वानप्रस्थी

पंजाब में हिन्दी-पंजाबी-विवाद

पंजाब प्रान्त की भाषा पंजाबी है इसमें कोई विवाद नहीं–विवाद है केवल देवनागरी और गुरमुखी लिपि का। गुरमुखी को पंजाबी लिपि ही मानना उचित नहीं पंजाबी लिपि का निर्माण सिख गुरुओं ने किया था गुरुग्रन्थ साहब सर्व प्रथम उर्दू लिपि में लिखा गया। गुरमुखी लिपि और उर्दू लिपि के पहले पंजाब में लिपि थी जो कि अबतक पंजाबी वैश्यगण अपनी बही खातों में लिखते आते, हैं जिसे मुडियाँ अक्षर कहते हैं, मुस्लिम राज्य से सरकारी लिपि उर्दू रहने से शिक्षित नवयुवक वां पंजाबी मुंडिया लिपि के अभ्यासी नहीं रहे वे अपना पत्र व्यहार उर्दू में करते हैं। गुरमुखी को पंजाबी लिपि कहना ही मूर्खता है

भाषा के आधार पर प्रान्तों के निर्माण के सिलसिले में अन्य प्रान्तों की तरह पंजाब में भी विवाद खड़ा हुआ। सिखों की मांग रही पंजाबी सुबा बने अन्य पंजाब के निवासी--हिन्दु आर्यों की मांग रही महापँजाब प्रान्त का निर्माण होवे, इस विवाद ने बहुत उग्ररुपधारण किया, हिन्दुओं की अपेक्षा सिक्खों में उग्रता बहुत है। इस लिये उनकी उग्रता से डर कर भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल तथा कांग्रेस के हाई कमान ने सिक्खों से समझौता करके पँजाबी जोन का निर्माण किया जिसमें हिन्दू बहुमत प्रदेश को भी सिखों के आधीन करके इस विवाद का सूत्र पाठ आरम्भ कर दिया है, शिक्षा में हिन्दी के स्थान पर गुरमुखी लिपि को प्रधानता दी गई है। जिसे पन्जाब के हिन्दू-आर्य स्वीकार नहीं करते वे अपने बच्चों को जबरन सिख सम्प्रदाय की लिपि जिसमें सिवाय सम्प्रदाय के कुछ साहित्य नहीं है नहीं पढ़ाना चाहते, सँस्कृत भारतीय संस्कृति का जो प्रमुख साहित्य है वह देवनागरी लिपि में है गुरमुखीलिपि पढ़ने से हिन्दू आर्योंकी सन्तान अपनी संस्कृति से अनभिज्ञ रह जाती है जिससे आर्य हिन्दू संस्कृति को खतरा है जो कि स्वीकार योग्य नहीं।

हिन्दी रक्षा समिति के कार्य की सराहना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाद्वारा प्रस्ताव पास

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा नियुक्त सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त ने प्रेस को निम्न लिखित वक्तव्य दिया है।

"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक प्रस्ताव पास करके हिन्दी रक्षा समिति पंजाब के कार्य की सराहना की है और इस आन्दोलन को सार्वदेशिक और उग्ररूप देने के लिये एक समिति का निर्माण किया है।

हमारी स्थिति के सम्बन्ध में कुछ भ्रांति का होना सम्भव है जिसका मैं निराकरण कर देना चाहता हूँ आर्य समाज का आन्दोलन किसी भी व्यक्ति पर हिन्दी अथवा अन्य किसी भी भाषा को बलात लादने के लिये नहीं किया जायेगा। आर्य समाज से आन्दोलन का वास्तविक उद्देश्य समस्त भाषाओं को स्वतन्त्रता प्रदान करना है, जिसमें हिन्दी भी सम्मिलित है। आर्य समाज किसी भी भाषा को बलात लादने के विरुद्ध है। यही बात हिन्दी केसम्बन्धमें चरितार्थ होती है। विद्यार्थी की शिक्षा का माध्यम निश्चित करने में उसके संरक्षक का प्रमुख अधिकार होना चाहिए। किसी भी स्टेज पर वह विवश नहीं किया जाना चाहिये।

महर्षि दयानन्द और राजाराममोहन राय

लेखक—श्री भवानी लाल भारतीय
एम० ए० सिद्धान्त वाचस्पति

प्रकाशक—आर्य प्रकाश पुस्तकालय, आगरा
मूल्य १) पृष्ठ सं० १३८

प्रस्तुत पुस्तक काफी खोज व अध्ययन के पश्चात लिखी हुई मालूम होती है। इसमें महर्षि दयानन्द और राजा राम मोहन राय के तुलनात्मक विचारों की चर्चा है। धर्म, दर्शन, ईश्वर, शिक्षा, स्वराज्य आदि के सम्बन्ध में दोनों नेताओं के विचार तुलनात्मक दृष्टि से पाठक इस पुस्तक में पढ़ सकते हैं। इस प्रकार की तुलनात्मक रचनाओं की आज बड़ी आवश्यकता है।

पढ़ने और प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रेक्ट

१ मनुष्यबन—ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती।
२ गायत्रीमाता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी।
४ आस्तिक नास्तिक संवाद—महर्षि दयानन्द।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्रजी देहलवी।
८ कल्याणी बन—पं० गणेशदत्त 'इन्द्र'।
९ आर्यों का आदि देश—काशीनाथजी शास्त्री।
१० धर्म और अधर्म—पं० रामचन्द्र देहलवी।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी।
१३ पं० लेखराम—रामगोपालजी विद्यालंकार।
१४ सीता माता—सरस्वतीदेवी 'प्रभाकर'
१५ गोमाता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी कविरत्न।
१७ चोटी का महत्व—पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस
२० मर्यादा पुरुषोतमराम—प्रह्लाद 'प्रभाकर'।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य वेदव्रत।
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य—जगदीशचन्द्र
२५ वेदमाता।
२६ श्रद्धामाता।
२७ धरती माता।
२८ धर्म की रक्षा करो। ब्र० प्रभुदत्त जी।
२९ मनुष्य के कर्त्तव्य—म० नारायण स्वामी।
३० सत्संग भजन।
३१ ऋषिदयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व।
३२ गोपालदयानन्द।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा।
३४ वैदिक भक्तिवाद।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द।
३७ आर्य समाज की उन्नति का साधन।
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक-शिव पूजन सिंह
४० पति व्रत धर्म—एक विदूषी महिला
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा—राजेन्द्र जी
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द—भगवत शरण बी० ए०
४३ ईश्वरावतार—स्वामी नित्यानन्द जी
४४ कर्म योगी श्री कृष्ण—श्री प्रेम चन्द
४५ ईसाइयों का भयंकर षड़यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार—श्री लालचन्द्र जी
४७ शिक्षा का उद्देश्य—श्री पूर्णचन्द्र जी
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी
४९ वर्णव्यवस्था—स्वामी दर्शनानन्द।
५० कर्मव्यवस्था ,, ,,
५१ वेदज्ञान—विष्णु दयाल जी।
५२ तुलसी रामायण और आर्य समाज।
५३ सत्य की खोज—काशीनाथ शास्त्री।
५४ मुर्दा क्यों जलावें—प्रेम शरण जी।
५५ स्वामीदयानन्द का उद्देश्य—स्वा० दर्शनानन्द
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य— ,,
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध—पं० राजेन्द्रजी
५८ श्रेय और प्रेय—प्रो० नित्यानन्द जी एम० ए०
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त-रवि वर्मा सि० शास्त्री
६२ जीवन की समस्यायें—पं० रामचन्द्र देहलवी।
६३ देवताओं की कहानी—कैलाश बिहारी।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय।
६५ धूम्रपान— ,, ,,
६६ सिनेमा और हम— ,, ,,
६७ दयानन्द कौन—देवेन्द्रनाथ मुखोपध्याय।
६८ कृण्वन्तोविश्वमार्यम्—प्रेमकुमार पाण्डेय।
६९ चाय भयंकर विष—जगदीश चन्द्र।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है—ज० विद्या०
७१ ईश्वर सब जगह है—विष्णु दयाल जी।
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों—रामचन्द्र देहलवी।
७३ चरित्र निर्माण—जगदीश विद्यार्थी

प्रत्येक ट्रेक्ट—-) सैकड़ा ४) हजार ३५) रु०

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

ऋग्वेद भाष्य अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशन के सम्बन्ध में

पूज्य श्री महात्मा आत्मानन्द सरस्वती जी की अपील

सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ये ऋषि दयानन्द जी रचित तीन ग्रन्थ वैदिक धर्म के सत्यस्वरूप को प्रमाणित करते हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' का अर्थ है—'वेद के सच्चे अर्थ पर प्रकाश'। यह सच्चा अर्थ कहां है ? चारों वेद पुस्तकों में है। उसी पर यह ग्रन्थ प्रकाश डालता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तो ऋषिदयानन्दप्रणीत वेदभाष्यों की भूमिका ही है। संस्कार विधि भी षोडश संस्कारों को समझाते हुए वेदार्थ ही पर प्रकाश डालता है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि वैदिक धर्म के लिए वेदार्थ ही मुख्य है और इसी के लिए ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त परिश्रम किया है। आर्यसमाज ने भी इसके लिए बहुत कुछ कर डाला है। चारों वेदों के भाषानुवाद हो चुके हैं। सत्यार्थप्रकाश का तो एक बड़ा संस्करण बहुत मोटे टाइप में सटिप्पण स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी की कृपा से छप गया है। उसका चीनी भाषा में अनुवाद भी श्री पूज्य वानप्रस्थी गोविन्दराम जी मेहता की कृपा से छप गया है परन्तु विदेशों में प्रचारार्थ एवं अन्ताराष्ट्रीय केन्द्रों में ऋषि दयानन्द जी के मन्तव्यानुसार वेदार्थ को प्रस्तुत करने के लिए आंग्लभाषा में अब तक आर्यसमाज ने कोई वेदभाष्य बनवाया नहीं। आर्यसमाज इसमें उपेक्षा करता हुआ सा दीखता है। वास्तव में धनाभाव के कारण आर्यसमाज इन त्रुटियों को दूर करने में असमर्थ रहा है। प्रभूत धन व्यय करके एक बाहर के अनार्य विद्वान से ऋग्वेद का आंग्लभाष्य लिखवाया जा सकता सम्भवतः यह ऋषि दयानन्द जी के मन्तव्यों के अनुकूल हो भी जाता, परन्तु कई त्रुटियां भी रह जाती और द्रव्य भी बहुत अधिक व्यय होता। किन्तु ईश्वरेच्छा से अब परिस्थिति में बहुत अन्तर पड़ गया है।

आर्यसमाज में अब एक संस्कृत, आंग्लभाषा, आर्यभाषा, के विशेषज्ञ, वेदार्थविद्, वैदिकधर्मी विद्वान निकल आये हैं जिनके वैदिक सिद्धान्तों पर लिखे हुए कई आंग्ल ग्रन्थ गत बीस वर्षों से प्रचार में हैं स्वामी भूमानन्द सरस्वती जी एम० ए०, जिनसे आर्यजगत् अपरिचित नहीं है। हमने स्वामी जी को गोविन्दभवन में ठहराकर यह कार्य कराना आरम्भ कर दिया है। स्वामी भूमानन्द जी गत नवम्बर १९५५ से ऋषि दयानन्द रचित भाष्य समेत ऋग्वेद का आंग्ल भाषा में अनुवाद कर रहे हैं। अब तक ६०० पृष्ठ फुलस्केप लिख चुके हैं। प्रथम मण्डल के २४ सूक्त हो गये हैं। २० सूक्तों का तो भावार्थ समेत संक्षिप्त अनुवाद केवल डेढ़ सौ पृष्ठों में लिखा गया है। दिवंगत स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी महाराज ने इस भाष्य को सहर्ष छपवाने को स्वीकार किया था। उनके देहावसान के कारण यह कार्य पिछड़ गया है। परन्तु अब इसको कर डालना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि जब कोई विदेशी जिज्ञासु भगवान् दयानन्द जी के मन्तव्यानुसार किसी वेद का आंग्लानुवाद मांगते हैं तो हमें बगलें झांकना पड़ता है।

प्रथम मण्डल के २० सूक्तों का ग्रन्थ लगभग ४५० पृष्ठों का होगा। छपाई, कागज का मूल्य, कपड़े की जिल्द, कवर पर सुनहली टाइटल यह सब ध्यान में रखकर पुस्तक का मूल्य ७॥) साढ़े सात रुपये रखा है डाक व्यय अतिरिक्त। जो पूर्व ही रुपये भेजकर ग्राहक बनेंगे उनसे ४॥) साढ़े चार ही रुपये लिये जायेंगे। डाक व्यय पृथक

दो मन्त्रों के भाष्य का नमूना पत्र लिख कर मंगवा सकते हैं।

गोविन्द भवन — भवदीय

दयानन्द वाटिका — स्वा० आत्मानन्द सरस्वती,

सब्जी मण्डी देहली — प्रधान, आर्य साधुमण्डल

नोट—प्रत्येक आर्य एवं आर्य संस्थाको इस आवश्यक पवित्र कार्य में योग देना चाहिये।

भवदीय--गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या

आठवाँ नियम।

'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।'

उलटे ज्ञान को, मिथ्याज्ञान को और विपरीत समझ को अविद्या कहा जाता है। आर्य सभासदों को उसका नाश करना चाहिये। यथार्थ ज्ञान का, सच्ची और सीधी समझ का नाम विद्या है। आर्य सभासदों को उसकी वृद्धि करनी चाहिए। अविद्या के यदि दो भाग किये जायें—एक तो इस लोक-सम्बन्धी अविद्या, और दूसरा परलोक विषयक अविद्या—तो इस नियम का सार सुगमता से समझ में आ सकता है। इस लोक का अज्ञान यह है कि अपने घर बार की सार सम्भाल न करना, बाल-बच्चों को उन्नत करने के उपाय न समझना, पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों के कर्तव्यों का पालन न करना, अपने हानि-लाभ में अजान होना, और संसार यात्रा के चलाने में अयोग्य बने रहना, इत्यादि। सांसारिक अविद्या के कारण गृहस्थों के घरों में कई ऐसे कुसंस्कार, अनाचार और कुलक्षण आ जाते हैं जिन से उनके पारिवारिक सुखमय जीवन स्तम्भ को दीमक लग जाती है। उसका गृह भारी भ्रमों का भवन बन जाता है उनके घर में अनेक अनृतमूलक पूजा-पाठ चल पड़ते हैं, व्रत-नियम प्रवृत्त हो जाते हैं। यथार्थ ज्ञान द्वारा इन सबका सर्वनाश करना इस आठवें नियम के व्रतियों का धर्म्म है। वे इन दोषों से अपने सम्बन्धियों और बन्धुओं को बचे रहने का उपदेश करें।

इसी प्रकार देश की कुरीतियों का भी निवारण करना उनका कर्त्तव्य है। आर्य सभासदों को अपने हृदय में यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिए कि समाज का संगठन में न आने वाले जन भी बन सकते हैं। उनके मोक्ष मार्ग में, ईश्वर-पूजन में, वेदाध्ययन में, कोई बाधा नहीं आ सकती। आर्य्य समाज का सभासद न बनने से किसी का उन्नति-पथ नहीं रुकता, स्वर्ग का द्वार नहीं बंद होता। आर्य समाज का सभासद बनना तो अपने ऊपर कर्त्तव्य का भार लेना है। वैदिक धर्म्म के लिए आर्य-सेवक-सेना-संघ में भरती होना है! इस सेवक संघ का परम धर्म्म वेद-विद्या का ग्रहण करना और फैलाना है। शारीरिक, आत्मिक और सभा-सामाजिक उन्नति के साधनों द्वारा संसार का उपकार करना, लोक हित के कार्य करना, सभासद बनने का मुख्य उद्देश्य है! अपने भरण-पोषण के लिए तो सभी जीव जीते हैं, परन्तु धर्म्म और परहित के लिए जीना एक उत्तम जीना है। यही मनुष्य-तन धारण करने का सार है। लौकिक और पारलौकिक ज्ञान का दीपक दिखा कर जनता से अविद्या-अन्धकार का नाश करना मनुष्य-जीवन की उच्च कला का चमकाना है। ऐसे ही उद्देश्यों और कर्त्तव्यों को दृष्टिगोचर करके, आर्य्य सभासदों का सेवा-संघ सुगठित हुआ है। इस कारण, आर्य सभासद जिस गली में रहे, जिस कूचे में बसे, जिस ग्राम अथवा नगर में निवास करे, जिस बिरादरी और जाति से सम्बन्ध रक्खे, वहीं वह एक जाज्वल्यमान ज्योति का काम दे। जनता के लिए एक ज्योति-स्तम्भ बन जाय। सुमति, सुशिक्षा और शुभ संस्कारों का स्रोत बहाता रहे। आर्य्य जनों को ऐसा कार्य्य कुशल और सुचतुर होना चाहिए कि जनता उनको आप ही चाहे, आगे स्थान दे, और यह समझे कि इस सेवा संघ के बिना कार्य्य-सिद्ध महा कठिन है।

परलोक-सम्बन्धी विषयों की जो अविद्या है, वह अधर्म्म की प्रवृत्ति है, आत्मा-अनात्माको न समझना है। इस अविद्यान्धकार में ग्रस्त जन नहीं जाना करते कि परमेश्वर का स्वरूप कैसा है; धर्म्म किसे कहते हैं, हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है, किस किस कर्म्म के करने से आत्म-कल्याण होगा, और सत्यासत्य में क्या भेद है। इत्यादि विषयों से अजान जनों को सत्पथ पर लाने के लिए आर्य जन को

पुस्तकों का प्रचार करना चाहिए। वे परिवारों में मुहल्लों में, बाजारों में, नगरों में तथा मेलों में धर्म्म-प्रचार के उपाय और प्रबन्ध करें। छोटी छोटी पुस्तिकाएं वितरण करना भी उपयोगी समझें। उत्साही जन समय निकालकर अन्यधर्म्मी सज्जनों से मिलें। वार्त्तालाप द्वारा उनको आर्य धर्म्म का महत्व बतायें। प्रश्नोत्तर द्वारा उनके सन्देह दूर करें।

विद्या की वृद्धि के लिए आर्य्यों को अनेक उपाय करने चाहिएं। वे आर्थिक और पारमार्थिक विद्या के बढ़ाने के साधन उपस्थित करें। जितनी भी आर्थिक विद्यायें हैं—इस लोक का ज्ञान, इस लोक को सुखमय बनाने का ज्ञान—जनता में उनका प्रचार करने के लिए पाठशालाएं खोलना, विद्यालय चलाना अच्छे साधन हैं। उद्योग-शिक्षणालय और कला-भवन स्थापित करना भी उत्तम कर्म है। अवकाश-शिक्षणालय और रात्रिपाठशालाएं भी विद्या की वृद्धि करने के साधन हैं।

पारमार्थिक विद्या बढ़ाने के लिए ऐसे विद्यालय स्थापित किये जायं, जिन में वेद-विद्या का पठन-पाठन हो, दर्शन शास्त्रों की शिक्षा मिले, स्मार्त्त धर्म्म का बोध हो, और ऐसे साधन-सत्संग लगाये जायं जिन में जीवन को उच्च बनाने के उपाय उपयोग में लाये जा सकें, अधिकारी जनकों को आत्म-चिन्तन का अवसर मिले, प्राणायामादि योगांगों की रीति समझाई जाय।

आर्य्य सभासद की यह दृढ़ धारणा होनी चाहिये कि संसार में जितने दुःख हैं, वे सब अविद्या जन्य हैं। अविद्या ही शारीरिक और मानसिक क्लेशों की जननी है। इसी भूमि में नाना कष्टों के पेड़ उत्पन्न होते हैं। जिस जन में और जिस जाति में जितनी अधिक अविद्या होगी, उतना ही उसका जीवन संकट-संकुल होगा—उतनी ही उसके हित के हेतुओं की हत्या होती रहेगी। इस कारण विद्या का प्रचार करना क्या है, मानो जन और जनता में से अन्धकार का वहिष्कार करना है, दुःख दारिद्र्य को धकेल निकालना है, विपत्तियों को मार भगाना है। हिताहित को जानने वाले विवेकी जन सदा सुगठित, सावधान, सुसज्जित और सबल बने रहते हैं। वे कभी अज्ञान-कूप में नहीं कूदते। ऐसे विद्यारूप उपयोगी दान को देना एक महान कर्म्म है, उत्तम धर्म्म है। यह दान जितना दिया जाय उतना ही थोड़ा है।

आर्य्य जनों का धर्म्म ज्ञान है—वेद है। आत्मा ज्ञान है। परमात्मा ज्ञान स्वरूप है। उनके धार्मिक कर्म्म भी ज्ञानानुकूल ही समझे जाते हैं। आर्य्य ऋषिजन ज्ञान की ही पूजा किया करते थे। उनके मत में पाप-पुन्य को भस्मसात् करने के लिए यथार्थ ज्ञान की केवल एक चिनगारी बहुत है। जन्म-मरण के बन्धन-बन को काटने के लिए विद्या का कुठार पर्य्याप्त है। भगवान् कपिल ने आत्मज्ञान, विवेक को संसार-सागर से पार पाने का एक मात्र साधन बताया है। आर्य्य धर्म्म में ज्ञान-दान के समान-दूसरा दान और ज्ञान के सदृश दूसरी पवित्र वस्तु नहीं बताई गई। पवित्र में भी परमानन्द को प्राप्ति का परम उपाय परमात्म-ज्ञान को ही कहा है। जिस धर्म्म में, जिस कर्म्म में विद्या का इतना यशोगान हो, इतना महत्व हो, इतना ऊंचा आसन हो, उसको विद्या के विस्तार के लिए कितना यत्न, कितना पुरुषार्थ और कितना त्याग करना चाहिए, इसके बताने की कुछ भी आवश्यकता नहीं।

नवाँ नियम

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

किसी जन अथवा जनता का अधोगति—नीचे से उठ खड़े होना, आचार-विचार में अच्छे होते जाना, ज्ञान ध्यानमें वृद्धि करना, बल में, बुद्धि में, मान में और धनादि में बढ़ना "उन्नति" कहलाता है। प्रत्येक आर्य्य सभासद अपनी ही उन्नति करके सन्तोष न धारण कर ले, किन्तु यह समझे कि सबकी उन्नति में मेरी उन्नति है, सबकी श्रीवृद्धि में मेरी वृद्धि है, सबके सुखमें मेरा सुख है।

संसार में प्रत्येक वस्तु चञ्चल है। परमाणु से

पर्वत पर्य्यन्त, एक तुच्छातितुच्छ नक्षत्र से सूर्य्य तक, सभी गतिमान हैं। स्थिर कोई भी वस्तु नहीं है। जो दुर्ग, देवालय, भवन और पहाड़ आदि वस्तुएं ठोस दीखती हैं, जिन्हें हम समझते हैं कि ये स्थिर हैं, उनके भी परमाणु अतीव उतावली से चक्कर लगा रहे हैं, बड़े तीव्र वेग से दौड़ रहे हैं। देह की भी तो वही दशा है। इसकी अस्थियों आदि के परमाणु उतने ही वेग से गतिमान हैं जितने दूसरे पदार्थों के। यदि किसी वस्तु का एक परमाणु भी रुक जाय, न चले, गति बन्द कर दे, तो सारे ब्रह्माण्ड में तत्काल प्रलय हो जाय। आर्य्य विद्वान् इस दृश्यमान को संसार और जगत् के नाम से पुकारते हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ गतिमान् और चलने वाला ही है।

इस चलायमान चंचल लोक में या तो क्षय होता रहता है या उपचय—आगे बढ़ना वा पीछे को लौटना, चढ़ना वा गिरना। सारांश यह कि किसी भी पदार्थ को लीजिये, वह गतिमान होगा। उसकी वृद्धि हो रही होगी अथवा हानि। यही नियम मनुष्य-मण्डल में भी काम करता है। कोई व्यक्ति अथवा जनता या तो उन्नति के पथ पर पदार्पण करती दीख पड़ेगी या उसका शतशः अधोमुख विनिपात हो रहा होगा। इस कारण, इस गमनशील जगत् में जो जन, जत्था व जाति सुख से, प्रतिष्ठा से, मान-मर्यादा से जीना चाहे, उसके लिए यही एक साधन है कि वह सदा उन्नति के सोपान पर पाँव रखते हुए ऊपर को चढ़े, आगे बढ़े, नही तो अधोगति अवश्यम्भावी है। इस संसार में सुदिन का सदा स्थिर बना रहना सर्वथा असम्भव है।

जब जीवन के घोर संग्राम में जीत वा हार—उन्नति वा अवनति—ये दो ही परिणाम निकलते हैं, तब पराजय—मरण—से डरनेवालोंको निरन्तर उन्नति के पथ पर हीं आरूढ़ रहना चाहिए। परन्तु साथ ही यह भी समझना चाहिए कि केवल अपनी उन्नति—एक व्यक्ति की उन्नति—सच्ची उन्नति नहीं है। समूह की—सबकी—उन्नति में सच्ची उन्नति हुआ करती है। यदि एक ही मनुष्य धनवान् हो और शेष सारे निर्धन हों, तो बहुत उस एकको अपने समान बना लेंगे। प्रथम तो वह बहुत दिनों तक धनी ही नहीं रह सकता। फिर यदि कुछ दिनों तक रहा भी तो चिन्ता में चूर हो कर और रातों जागकर एक व्यक्ति अथवा कतिपय व्यक्ति बल प्राप्त कर लें तो वह अथवा वे अत्याचार और अनर्थपूर्वक अपने बल की सत्ता चलावेंगे। इससे वैर-विरोधकी, दाँवघातकी दावानल दहक उठेगी, जो थोड़े बलवालोंके बलरूपी वनको भस्म ही बनाकर शांत होगी। यदि भीतर से ऐसा न भी हो तो बाहर की बलिष्ठ शक्ति उनका मर्दन कर देगी। सारे मुहल्ले में चीख-चहाड़ा, रोना-पीटना, मार-धाड़ आदि उपद्रव हो रहे हों तो वहां एक व्यक्ति चाहे वह कितना ही सुरक्षित और नीरोग क्यों न हो, सुखसे सो नहीं सकता। उसकी सुखकी नींद के लिए सारे मुहल्ले में शान्ति का होना आवश्यक है। लाखों जनों में एक दो ज्ञानी जन भी मूढ़ बना दिये जाते हैं। धन, सुख और ज्ञान जितनी अधिक जन-संख्या में होंगे, उतने ही अधिक स्थिर होंगे।

इतने बड़े भारत में थोड़ेसे जनोंके हाथमें शस्त्र रहनेसे वे बाहरके आक्रमणकारी वैरियोंको नहीं रोक सके। वे क्षत्रिय जन एक एक करके मरते गये, बटते गये, जिससे उनकी हार होती रही। कोई भी छोटीसे छोटी जाति, जिसके सब जन सशस्त्र हों, नहीं मरती। आर्य्य धर्म्मशास्त्र भी बहुत थोड़े मनुष्योंके पास थे। शेष जनता धर्म्म-ग्रन्थोंसे निरी कोरी थी। इसी कारण आर्य्यों में अनेक मतोंकी सृष्टि हो गई; और यहाँ आकर विदेशीय धर्म्म भी सफल हुए। जिस देशकी जनताके हाथमें अपना धर्म्म-शास्त्र होता है, वहाँ उसके धर्म्मकी ऐसी दुर्दशा नहीं हो सकती। शस्त्र-बल अथवा शास्त्र-बल जितने अधिक जनोंको प्राप्त होगा, उतना ही वह परिपुष्ट समझा जाता है। ये दोनों शक्तियाँ स्वल्प जन-संख्याके हाथमें होंगी तो स्वार्थवश उनका दुरुपयोग भी होगा। उनसे अन्याय अनर्थ, अत्याचार, अनाचार आदिका होना बहुत ही सम्भव है। इस कारण इसका अधिकार होना सुखदायक है।

गिने चुने मनुष्योंके हाथमें व्यापार आ जाने-

से लोग सम्मिलित व्यापार-पद्धितसे बड़ी भारी संख्याको निकम्मा बना देते हैं। कारखाने खोलकर लाखों परिश्रमियों का काम अपहरण कर लेते हैं, जिससे यह दल दिनों दिन दरिद्र, दाने दानेसे तंग और तनसे नंगा होने लग जाता है। ऐसे व्यापारियों को तो धन रखनेके लिए स्थान नहीं मिलता। वे अस्वाभाविक जीवनमें रुपये-पैसों को पानी की तरह बहाते फिरते हैं। पर उधर वे बेचारे श्रमी हैं जो पैसे पैसे को तरसते हैं, जिनके पेटको भूखका कीड़ा काट काटकर खा रहा है, पर औषधोपचार करनेका कोई भी साधन नहीं। वे हैं तो मनुष्याकार, पर पशुओं से भी गये बीते हैं। यह दुखड़ा भी तभी दूर हो सकता है जब जातीय सम्पत्ति पर सबका अधिकार हो और सबके कमा खानेके लिए साधन मिलें।

धनुर्वेद के कई ऐसे भेद थे जो विद्वान् जनोंके प्राणों के साथ ही, पखेरुओंके साथ पखेरुओंकी भाँति, उड़ गये! यदि वे रहस्य पृथ्वीराज और राणा प्रतापसिंह जैसों को मिल जाते तो भारतका सौभाग्य-सूर्य्य अस्त न होता, आर्य जाति की जीवन-जड़ पर अवनतिके कुल्हाड़ेका आघात न होने पाता। परन्तु सुना जाता है कि वे शस्त्र-विद्यायें थोड़े से जनों की सम्पत्ति हुआ करती थी। बहु जन-संख्या को नहीं दी जाती थी इसी लिए उनका आज अभाव है—सर्वलोप है।

महान् अलक्षेन्द्र जब सिन्धुसे इस पार आया, तब उसकी सेनाको विषैले साँपोंने बड़ी भारी हानि पहुंचाई। उसे पता लगा कि यहां के संन्यासियोंके पास ऐसी औषधि है जिसके सेवनसे साँप का काटा हुआ मनुष्य नहीं मरता—उसको विष नहीं चढ़ता। अलक्षेन्द्रने दो संन्यासियों को सेनामें सर्प-चिकित्सा पर नियत कर दिया। उनकी सिद्ध औषधिका उसने आश्चर्य्य-जनक, चमत्कारी प्रभाव देखा। आज भी आये बरस सैंकड़ों भारतवासी साँपोंके काटनेसे मरते हैं, परन्तु वह जड़ी नहीं मिलती। इसका एक मात्र कारण यही है कि ऐसी-बूटियों का ज्ञान किसी बिरले जनको ही हुआ करता था। वह भी अपने जीवन भरमें एकाध ही मनुष्यों को कदाचित् बताता था। बहुधा तो किसीको बिना बताये ही लोग प्राण त्याग देते थे। इस भाव ने न जाने कितनी प्रभाव-जनक जड़ियोंका जगत्में अभाव कर दिया है।

ऊपरकी सारी पंक्तियाँ इस भावको स्पष्ट करती हैं कि कोई गुण, कोई विद्या, कोई बल और कोई उन्नति थोड़ी जन-संख्यामें हो तो वह नहींके बराबर है। उसका नाश हो जाता है। उससे अधिक मनुष्यों को लाभ नहीं होता। इसलिए उसका जितना विस्तार हो, प्रचार हो- उतना ही अच्छा है। उतना ही अधिक सुख है।

नवें नियमके व्रतीको अपने ज्ञानका, गुणका, विद्याका गोपन नहीं करना चाहिए; किंतु उनके प्रचारसे वह सबकी उन्नतिकी मङ्गल-कामना करे। कर्म-कौशलकी सबको शिक्षा दे। उसके काम सार्वजनिक हित-बुद्धिसे हों। वह सार्वजनिक जीवन बनाने और काम करनेका पूरा प्रयत्न करे।

नवें व्रतके पालनकर्त्ता को विचारना चाहिये कि अपनी ही उन्नतिमें सन्तुष्ट रहनेवाला मनुष्य परले सिरेका स्वार्थी हुआ करता है। अपने ही प्राणों का पालन-पोषण करना, अपने ही प्रयोजनको यथा तथा साधना, अपनी ही बल-बुद्धि और धनादिकी वृद्धि में सन्तोषी बन जाना और पर-हित, परोपकार और पराई उन्नतिमें कुछ भी योग न देना मानुषी कर्मके विपरीत है। ऐसा जीवन पशु-जीवनके समान है। आर्य्य जनका यह लक्ष्य होना चाहिये कि सभी जन आचार विचार में उन्नत हों; क्योंकि जब तक मनुष्यों की बड़ी संख्या इस विषय में उन्नति न करे, एक व्यक्तिका सदाचार सुरक्षित नहीं रह सकता। वेश्याओं के समीप जैसे सतीका सतीत्व सन्देहमें पड़ जाता है, मदिरा पीनेवालों में बैठनेसे एक शुद्ध जनमें मद्यके दोष का आना बहुत सम्भव है, इसी प्रकार यदि सबमें समानता, शिष्टता और आचार-सम्बंधी उन्नति न हो तो एक मनुष्यका उन्नत रहना महा कठिन काम है। इस विषयमें भी आर्य्यों को चाहिए कि जनता को उन्नतिके पथ पर चलायें। लोगों की रुचिको उन्नत करें।

जनताके स्वभाव को समुन्नति दें। बर्ताव-व्यवहारमें मेल-मिलापमें मिठास लावें। उनके सामाजिक कार्य्योंमें सांसारिक कामोंमें भद्रता भर; और जितना उनसे हो सके, दूसरे जनके जीवनको, काम काजके प्रकारको, आजीविकाके साधनों को सहायता देकर समुन्नत करें। दूसरे की बढ़तीमें अपना बढ़ना मानें।

यदि कोई आर्य्य किसी कला-कौशल में निपुण है, हाथके काम में कुशल है, अथवा किसी विशेष काममें चतुर है, तो वह भेद उसे अपने धर्म्म-भाइयों को अवश्य बताना चाहिये। वह अपने बन्धुओंको भी साथ लेकर आगे बढ़े। यदि किसी कारखानोंमें, कला-भवनमें, प्रयोग-शालामें या किसी कार्य्यालयमें कोई कार्य्य-कुशल आर्य्य है और उसके सामने एक दूसरा मनुष्य, अपने अनाड़ीपनेसे, वहाँ नाना कष्ट उठा रहा है, तो उस आर्य्यका कर्त्तव्य है कि उस जनको सहायता देकर निपुण बना दें। सुबोध विद्यार्थी निर्बल विद्यार्थीकी सहायता करके उसको उन्नति प्रदान करें। इत्यादि साधनोंसे सब समुन्नत करना आर्य्यजन अपना धर्म्म समझें।

दसवाँ नियम।

“सब मनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारी निमय पालनेमें परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियममें सब स्वतन्त्र रहें।”

सब मनुष्योंको—सब आर्य्य सामाजिक सभासदोंको—उन सामाजिक नियमोंमें परतन्त्र रहना चाहिये जो सर्वहितकारी हों, जिनका प्रभाव सब सभासदों पर हो, अथवा जो जनताके हितके साथ सम्बन्ध रखते हों। और उस नियममें सब सभासद स्वाधीन समझे जायँ जो नियम एक व्यक्तिके साथ सम्बद्ध हो।

इस ऊपर के दसवें नियममें सभासदोंकी स्वतन्त्रता और परतन्त्रताकी सीमा नियत की गई है। कौन काम ऐसे हैं जो एक व्यक्ति के अनुकूल न होते हुए भी उसे करना उचित हैं और अनुकूल होने पर भी न करने चाहियें, इसका निर्णय किया है। एक सभासद दूसरे सभासदके कौन से काममें हस्तक्षेप करनेका अधिकार रखता है, उसका यह काम किस कर्म्म में उचित है और किसमें अनुचित है, यह बताया गया है।

आर्य्य सभासदोंकी स्वतन्त्रताकी सीमाके भीतर कितने कर्म्म हैं और परतन्त्रतामें कौन कौन से हैं, उनकी गिनती गिनाना कठिन है। इसी कारण परतन्त्रताके कर्म्मोंकी सीमा प्रदर्शित करते हुए “सामाजिक सर्वहितकारी” नियम बताये हैं। ऐसे नियमोंको यदि आर्य्य समाजके नियमोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो पहले नियमसे दसवें नियम तक; इन नौ नियमोंके मानने—पालने—में सब आर्य्य सभासदोंको परतन्त्र रहना चाहिये। इस विचारके अनुसार जो जन जगत्के आदि-मूल कारणमें, उसके स्वरूपमें, और वेदादि मन्तव्योंमें विश्वास नहीं रखता, वह दशम् नियमकी दृष्टि में सर्वहितकारी—सर्वमान्य—नियमोंको लाँघ जानेसे आर्य्य सामाजिक सभासदोंके दलसे दूर जा पड़ा है। वह सभासद नहीं रह सकता।

इन नियमोंका पालन करनेवाले जन ही आर्य्य सभासद बन सकते हैं। नियमोंका अध्ययन करनेसे और दसवें नियमको देखने से तो यही प्रतीत होता है कि जो मनुष्य ईश्वर-विश्वाससे शून्य है, अथवा उसके स्वरूपको दूसरे नियमके वर्णनानुसार नहीं मानता, सन्ध्या उपासना तक भी नहीं करता, वेदके स्वाध्यायमें निरा निर्लेप है, यहां तक कि अनुवाद द्वारा स्वाध्याय करने के लिए आर्य्य भाषा भी नहीं सीख सका, वह आर्य्य सभासद नहीं बनाया जा सकता। दुराग्रही, महा हठीको, सत्यासत्यके अविवेकीको, विचारशून्यको, अनुपकारीको, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नतिके मार्गसे विमुखको, और अप्रेमसे, अधर्म्मसे अयोग्य व्यवहार करनेवालेको सभासद बनाना अनीति है। वह जन भी आर्य्य सभासद नहीं बनाया जाना चाहिये जो विद्याकी वृद्धिमें कुछ भी यत्न न करे—यत्किञ्चित् भी योग न दे और जो स्वार्थसिन्धु बनकर अपनी ही उन्नतिमें सन्तुष्ट रहे—पराये हानि-लाभका कदापि विचार न करे। सामाजिक सर्वहितकारी

नियमों में संस्कार भी आ सकते हैं। विवाहादि संस्कारोंकी रीति नीति तोड़ने और मर्यादा भङ्ग करनेसे समाजकी हानि होती है। उसमें अनियमता आ जाती है। सारे सामाजिक सम्बन्ध और सदाचारके बन्धन अस्त व्यस्त हो जाते हैं। कई विद्वान् नैत्यिक यज्ञको भी सर्वहितकारी नियमों में गिनते हैं।

किसी व्यक्तिके जिन कर्मोंसे समाज के गौरवको बट्टा लगता हो, उसका प्रचार और विस्तार रुकता हो; धर्म्मकी हानि होती हो, उन कर्मोंके करनेमें व्यक्ति पराधीन है। उनको वह नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो कर्म एक व्यक्तिके लिए तो हितकर है, परन्तु उनके करनेसे बहुतोंको दुःख होता है, लोक-हितकी हानि होनेकी सम्भावना है। जो कर्म जातीय हितके विरुद्ध हैं, उनका न करना दशम नियमके आदेशानुकूल है। उन देश-सम्बन्धी नियमोंका उल्लघन करना भी अनुचित है। जिनके कारण जनताको लाभ होता है—जातिका हित हुआ करता है।

दस नियमोंके अनुसार, प्रत्येकका हितकारी नियम कौन है, यह बात विशेष विचार से ही जानी जा सकती है। विश्वासका साधारण स्वरूप—जैसे ईश्वर जगत्का आदि मूल है, निराकार, सर्वव्यापी और अजन्मा है—समान तो अवश्य है, परन्तु प्रत्येककी बुद्धिमें तारतम्य होनेसे ज्ञानमें न्यूनाधिक्य रहे तो सभासद बननेमें बाधा नही आ सकती। किसी वस्तुका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेमें करोड़ों पद पार करने होते हैं। सूर्यके सामान्य अस्तित्व—ज्योतिर्मय पिण्ड—को तो सभी मानते हैं, परन्तु उसके असंख्य और सूक्ष्म भेदोंको जाननेवाला सर्वज्ञ दीखना दुर्लभ है। एक पुष्परूप पोथीकी पूरी व्याख्या कोई विरला विद्वान् ही कर पाता है। जब यह दशा दृश्य जगत्की है, तब सर्वव्यापी, निराकार और अनन्त प्रभुके सारे स्वरूपका साक्षात् करना सबके लिऐ कितना असम्भव है, यह सभी समझते हैं। इस कारण यदि ज्ञानमें न्यूनाधिक्य हो तो उसमें सब आर्य सभासद स्वतन्त्र रहें, उनको समान समझ सम्पादन करनेके लिए विवश नहीं किया जा सकता।

यह तो आवश्यक है कि सभी आर्य सभासद वेद पवित्रके पठन-पाठन श्रवण-श्रावणमें परिश्रम करें, स्वाध्याय-व्रतको पालें, परन्तु यह कब सम्भव है कि सभी सभासद एक से वेद-पाठी हों, वेद-वेदाङ्गको जान सकें, और अर्थ-परमार्थको समझनेमें निपुण हो जायें। सब मनुष्योंको एक सा अवकाश नहीं मिलता; साधन भी नही प्राप्त होता। उनमें स्मृति समान नहीं होती; ऊहा-पोह विवेक और बुद्धि-बलमें परस्पर बड़ा अन्तर हुआ करता है। इसलिए प्रत्येक आर्य सभासद इस विषयमें अपने साधनानुसार उन्नति करनेमें स्वतन्त्र है।

यदि मतामत देते समय, अथवा अन्य अनेक व्यवहारोंमें कोई सभासद दूसरे सभासदोंके कथनकी सत्यताको समझ ही नहीं सका तो यह कैसे कहा जाय कि वह सत्यको ग्रहण करने और असत्यको ग्रहण करने और असत्यको छोड़नेमें संकुचाता है। इसलिए इसमें भी प्रत्येकको अपनी समझके अनुसार सत्यासत्यके मानने और छोड़नेमें स्वतन्त्रता है। सत्यासत्यके असंख्य सूक्ष्म भेदों को समझते समय पारंगत पण्डित भी चक्कर खा जाते हैं। सबकी विवेक दृष्टि एक सी नहीं हो सकती। यदि कोई जन-विशेष विवेकमें निर्बल है, तो वह आर्य्य सभासदीसे वंचित नहीं हो सकता।

प्रत्येक नरनारीके पास परोपकारके साधन एक से नहीं हो सकते। सामर्थ्यमें, साधनोंमें, सामग्रीमें भेद होनेसे क्रियामें अवश्य भेद हुआ करता है। कई जनोंकी अन्तरङ्ग और बहिरङ्गकी स्थिति ही ऐसी होतीं है कि वे सहसा यत्न करने पर भी बलिष्ठ और मोटे नहीं हो सकते, वे दुबले ही बने रहते हैं। सबके पास समान धन नहीं होता जिससे वे जन-सेवामें पूरा भाग लें। आत्मिक उन्नतिमें सबका समान होना असम्भव है। सबकी प्रकृति एक सी नहीं होती। अतएव यथायोग्य बर्ताव में भेद रह ही जाता है। इत्यादि कारणोंको लक्ष्यमें रखकर यही परिणाम निकाला जा सकता है कि

नियमोंके साधारण पक्षको मानना और पालना सब आर्य्य सभासदोंका कर्त्तव्य है। उसमें वे पराधीन हैं। परन्तु विशेषता में, गहराईमें, अपने साधनों, स्थितियों और योग्यताओंके अनुसार सभी यत्न तो करें, पर हैं वे सब स्वतन्त्र।

अपना भवन कैसा, कितना और कहाँ बनवाना, किस समय भोजन करना, कितने कपड़े पहनना आदि सब प्रत्येकके हितकारी कर्म हैं। इनके करनेमें प्रत्येक जनको स्वतन्त्रता है। ऐसे अन्य नाना काम में जो एक ही व्यक्तिके साथ सम्बन्ध रखते हैं। समाजका उनमें हस्तक्षेप करना नियमोंके न्यायके विरुद्ध है।

किसी के निजू कामोंमें आप ही आप आ कूदना उसकी उचित स्वतन्त्रताको मिटाना है। किसीका अनुचित कर्म्म जब तक फूट न निकले, समाजको दूषित करनेका कारण न बनने लगे, तब तक उसे सर्वसाधारणमें प्रकट नहीं करना चाहिये। परन्तु उसको मित्रभावसे समझाने में कोई दोष नहीं है। छोटी बातोंको, व्यक्तियों के साधारण कर्म्मोंको समाजके क्षेत्रमें ले आना उचित नहीं है। इसका परिणाम अनिष्ट ही हुआ करता है। किसीको जितनी अधिक और उचित स्वतन्त्रता मिलेगी, उतना ही अधिक वह उन्नत होगा। उससे समाजमें भी शान्ति बनी रहेगी। जिन सामाजिक सर्वहितकारी नियमोंमें सब सभासद परतन्त्र बताये गये हैं, उनका उपयोग भी सुकोमलसे हो, तभी उत्तम है। परतन्त्रता स्वल्प और कोमल ही सहनकी जा सकती है। आज्ञा जितनी थोड़ी बार दी जाय, उतना ही उसका अच्छा पालन होता है। बन्धन थोड़े और वे भी ढीले और सुकोमल हों, तभी निभ सकते हैं। बहुत बातोंके बन्धन, बहुत परतन्त्रता, बार बारकी आज्ञा और कड़ा शासन, ये चिरकाल तक नहीं चला करते। इनको तोड़ने पर लोग उतारू हो जाया करते हैं। इतिहास इस बातकी साक्षी देता है कि बहुत बार तो कठोर शासन और कड़ी परतन्त्रताने ही स्वतन्त्रता का मार्ग दिखाया है। जिन धर्म्मोंने अपने आरम्भ-कालमें बहुत बन्धन बनाये, कड़े नियम चलाये, मानवी प्रकृतिको परतन्त्रताकी कठिन शृङ्खलामें जकड़ा, कालान्तरमें उन धर्म्मोंके नियम-संयमसे, व्रत-बन्धनसे जनता स्वतन्त्र हो गई। वे बन्धन और नियम नाममात्रके रह गये।

दशम नियमके पालकोंको समझना चाहिये कि कड़ा कर्मकाण्ड देर तक नहीं चला करता, बहुतसे व्रत-नियम सबसे नहीं निभाये जाते। लोग उनको तोड़ तो देते ही हैं, उन पर चलते तो हैं ही नहीं, परन्तु समाजके भयसे ऐसा कह नहीं सकते। उत्कृष्ट क्रिया-कर्मका ऊपरसे आडम्बर दिखाते रहते हैं, जिससे समाजमें धर्म्म, सत्य और सरलताके स्थान पर डींग और दम्भ आ आसन लगाते हैं। वास्तविकताके स्थानमें दिखलावा ही रह जाता है। इसलिए सर्वहितकारी सामाजिक नियमोंके मोतियोंकी लड़ीको कड़े हाथोंसे न खींचकर, अति कोमलतासे तानना—इससे काम लेना—चाहिए। और प्रत्येक हितकारी नियमोंमें सबको पूरी स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

। इति ।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखकः - गंगा प्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू है उन सब का ही इस पुस्तक में समामेश है आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २॥)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

दो नवीन पुस्तकें

भगवान शंकर और दयानन्द

यह पुस्तक श्री आनन्द स्वामी जी के उपदेशों का संग्रह है। इस पुस्तक में बहुत ही सरल शब्दों में जगत् गुरू शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा महर्षि दयानन्द के त्रैतवाद का सुन्दर चित्र खेंचा है। मूल्य ४१ नये पैसे (।=)॥)। ६ नये पैसे डाक खर्च।

एक ही रास्ता

इस पुस्तक में स्वामीजी की सात दिन की ओंकार व्याख्या है। प्रणायाम पर स्वामी जी ने अच्छी व्याख्या की है। मूल्य ॥=) डाक खच १३ नये पैसे

पठन पाठन और स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

उपनिषद्-आर्य-भाष्य

(महामहोपाध्याय स्व० पं० आर्यमुनि कृत भाष्य)

मंत्रों का पद पदार्थ और विस्तृत भूमिका सहित आठ उपनिषदें भाषानुवाद सहित। सजिल्द ७०० पृष्ठों का ग्रन्थ मूल्य ६) मात्र।

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह सचित्र

ऋषि के प्रामाणिक ७ असली फोटो सहित २० पुस्तकों का अपूर्व संग्रह। प्रत्येक आर्य और समाजों को संग्रहित करना और पढ़ना आवश्यक है। मूल्य सजिल्द ग्रन्थ का ४।।) रियायती मूल्य ३।।)

वाल्मीकि रामायण सचित्र

(धारावाही हिन्दी मूल संस्कृत सहित)

सम्पादक—श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ज्वालापुर म० वि०
भूमिका लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

मूल श्लोक सहित संशोधित प्रक्षिप्त और अनावश्यक कथा तथा साम्प्रदायिक भावनायें निकालकर शिक्षाप्रद कथा-वार्ता के उपयुक्त संस्करण विवाहादि में उपहार देने योग्य। सुन्दर सजिल्द पुस्तक मूल्य १२) रियायती मूल्य ८) मात्र।

संस्कार विधि विमर्श

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० का०)

चिकित्सा-प्रजनन और प्रजाशास्त्र के आधार पर संस्कार विधि की व्याख्या मूल्य ३) रियायती मूल्य २)

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

(लेखक—श्री अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न गु० कां०)

संतति नियमन आदि विषयों के साथ साथ दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा के रूप में सरल और प्रामाणिक पुस्तक मूल्य ३) मू० रियायती २)

स्व० स्वामी वेदानन्द सरस्वती कृत

स्वाध्याय संदोह	४)	वेद परिचय	।=)
स्वाध्याय संग्रह	२)	सावित्री प्रकाश	१)
गोहत्या महापाप	।।)	गुरुधाम (नाटक)	।।)
सत्यार्थ प्रकाश शंका-समाधान	।)	स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वीर बच्चोंकी कहानी	।।।)	आदर्श सुधारक दयानंद	।।=)
गृहस्थाश्रम	।।=)	बाल शिक्षक	।=)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)	विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≥)
दर्शनानंद ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध	२।।)	उत्तरार्द्ध	२।।)

विवाह और विवाहित जीवन

लेखक गंगाप्रसाद उपाध्याय M. A.

पण्डित जी की Marriage and Married life पुस्तक का यह अविकल अनुवाद श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक जी ने किया है। पुस्तक विवाह आदि शुभ अवसरों पर उपहार देने योग्य है। आकर्षक टाइटल। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।)

श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थी

कृत कुछ प्राप्य पुस्तकों के नये संस्करण

उपनिषद् कथा	१।)
मातृशक्ति का वैदिक स्वरूप	१=)
मनुष्य के कर्तव्य	१=)
गायत्रीमहत्व	१)
THE GRANDEUR OF GAYATRI	१।।)

मिलने का पता—

(१) श्री रामलाल मलिक
५/६० कनाट सरकस, नई देहली

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता:— **गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली ६**

वेदों का महत्व(गतांक से आगे)

दुःख की स्थिति नाश करना है और स्वाभाविक गुण नाश नहीं हुआ करता। प्यारे पाठकगण ! हर एक शास्त्र में दुःख को दूर करने की रीतियों का उपदेश है दूसरे हर एक जीव के भीतर दुःख दूर करनेका विचार लगा हुआ है जिससे विदित होता है कि दुःख जीव का स्वाभाविक गुण नहीं वरन कृत्रिम गुण है। जब यह ज्ञात हो चुका कि दुःख बाह्य गुण ही जीव के भीतर आया है उसके कारणों की अन्वेषणा आरम्भ करनी पड़ती है। क्योंकि जब तक कारण ज्ञात न हों दुःख दूर नहीं हो सकता। बहुत लोग यह कहते हैं कि दुःख के होने में काल कारण है, जैसे आजकल कलियुग है और इस कारण लोग पाप करते हैं और दुःख पाते हैं। परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं, क्योंकि काल सर्वव्यापक और नित्य है ! अब भी बहुत से मनुष्य धर्म करते हैं और मुक्ति पाते हैं। इसलिये काल दुःख का कारण नहीं हो सकता। महात्मा कपिल जी लिखते हैं:—

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्
सां० १। १२

(अर्थ) काल के कारण से दुःख सुख उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि काल व्यापक और नित्य है। जब काल ही दुःख का कारण माना जावे तो सभी पुरुष दुःखी होने चाहियें। बहुधा आदमी यह कहते हैं कि देश के कारण से दुःख उत्पन्न होता है।जैसे बहुत से लोग समझते हैं कि जो आदमी अटक के पार जाता है वह पापी हो जाता है। महात्मा कपिल जी ने इसका खण्डन किया है।

न देश योगतोऽप्यस्मात । सां। १॥१३

(अर्थ) देश के कारण भी दुःख नहीं हो सकता क्योंकि देश भी सर्व व्यापक है इसलिए इसका सबके साथ सम्बन्ध रहेगा। जो लोग देश या काल से दुःख मानते हैं, उनके मत में यही दोष रहेगा कि सब शास्त्रों के सिद्धान्तों के अनुसार काल और देश सबके असाधारण कारण का निमित्त कारण नहीं हो सकता। इसलिए काल और देश से दुःख कहना ठीक नहीं है और कर्म के योग से बन्धन नहीं हो सकता क्योंकि काम शरीर से होते हैं और शरीर बिना कर्मों के हो नहीं सकता। पहले बन्धन होता है, तब शरीर उत्पन्न होता है और शरीर से कर्म होते हैं। इसलिए कर्म दूसरे का धर्म होने से बन्धनका कारण नहीं है। महात्मा कपिल जी लिखते हैं—कर्म करना भी जीव का धर्म नहीं। इस वास्ते कर्म से बन्धन नहीं हो सकता।

न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात सां० १ । ५२

और अवस्था से भी बन्धन नहीं हो सकता, क्योंकि बन्धन भी शरीर का धर्म है,शरीर बद्धका होता है मुक्त का नहींहोता इसलिये महात्मा कपिल जी लिखते हैं:—

नावस्थातो देहधर्म्मत्वात्तस्याः । सां०१।१४

प्रथम अवस्था से बंधन नहीं होता क्योंकि यह शरीर का धर्म है। यहां पर शंका होती है कि यह जरादि अवस्था जीव की ही क्यों न मानी जावे। महात्मा कपिल जी लिखते हैं—

असङ्गोऽयं पुरुषः इति । सां० १।१५

यह जीव असंग है इसका जरादि अवस्थाओं से मेल नहीं है, जब देश काल और अवस्था और कर्म से बन्धन का होना सिद्ध नहीं होता तो उस समय सोचना पड़ता है कि क्या कारण है जिससे बंधन उत्पन्न होता है। महात्मा कपिल जी लिखते है:—

बंधो विपर्य्ययात । सां ० ३।२४।

(अर्थ) बिपर्यय अर्थात उलटे ज्ञान से बन्ध उत्पन्न होता है अर्थात जिस समय जड़ प्रकृति को जिसका जीव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं सुख दुःख का कारण समझकर उसको प्राप्त करने और छोड़ने में लग जाता है तो उससे उसको राग, प्रवृत्ति उत्पन्न हो कर्म करने का स्वभाव हो जाता है इसी से जन्म मरण और दुःख उत्पन्न होते हैं। भ्रातृगण ! हम

संसार में भी देखते हैं कि सिवाय अज्ञान के और कोई कारण दुःख का प्रतीत नहीं होता जैसा संसार के सम्पूर्ण मनुष्य यह मानते हैं कि अन्न का भोजन प्राणों का जीवन है और विना भोजन मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, परन्तु जिस समय वही अन्न कच्चा खाया जावे तो विशूचिका के से रोग उत्पन्न करके मनुष्यों का प्राण घातक होजाता है। सिवाय इसके विष अर्थात सखिंया को सब मनुष्य हलाहल और मार डालने वाली वस्तु समझते हैं, यदि उस सखिंया को वैद्यिक शास्त्र की रीति से पकाकर खाया जावे तो कोढ़ सदृश बड़े २ रोग दूर होकर मनुष्यों के प्राण अमृत समान हो जाते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि सम्पूर्ण संसार के पदार्थों में मनुष्यों के लिये कोई वस्तु लाभदायक या हानिकारक नहीं है, वस्तुओं का उचित व्यवहार करना लाभदायक है और अनुचित व्यवहार करना हानिकारक है। दूसरे यदि कोई मनुष्य अन्धेरी गुफा में चला जाय तो हृदय पर चारों ओर से भय जम जाता है परन्तु प्रकाश में भयानक वस्तुओं के देखने से भी इतनी घबराहट नहीं होती। इससे यह विदित हुआ कि संसार में अज्ञान या अविद्या दुःखों का कारण है और ज्ञान अर्थात विद्या सुखों का कारण है। महात्मा पतञ्जलि मुनि भी अपने योग शास्त्र में उपदेश करते हैं:—

तस्य हेतुरविद्या॥ यो० २।२४

(अर्थ) अर्थात् क्लेश और दुःख जो हेय अर्थात् त्यागने योग्य हैं, जिसका दूर करना पुरुषार्थ कहलाता है, उन दुःखों का कारण अविद्या है और इसी अविद्या से सम्पूर्ण क्लेश उत्पन्न होते हैं।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः
यो० ।२।३।

अर्थ—संसार में पांच ही क्लेश हैं। प्रथम अविद्या अर्थात् मूर्खता, दूसरे अस्मिता अर्थात अहंभाव, तीसरे राग अर्थात् प्यार, चोथे द्वेष अर्थात् घृणा और अभिनिवेष अर्थात पूर्व जन्म और मृत्यु के दुःख के विचार और मृत्यु से डरने के प्रयत्न। प्यारे भाइयो! इन पांचों क्लेशों में भी अविद्या सब क्लेशों का कारण है और उसी से सब उत्पन्न होते हैं। जैसा कि महात्मा पतञ्जलि ऋषि लिखते हैं:—

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्।
यो० २।४।

अर्थ—अहंभाव स्नेह और घृणा पूर्व जन्म का कारण अविद्या अर्थात् मूर्खता है। प्यारे पाठकगण! यहाँ पर शंका उत्पन्न होगी कि अविद्या जीव का स्वाभाविक गुण है, या बाहर से आती है? यदि आप स्वाभाविक मान लेंगे तो फिर वही शंका होगी और नैमित्तिक मानेंगे तो उसका निमित्त भिन्न मानना पड़ेगा और कदाचित् उस निमित्त में भी यही शङ्का होकर कोई क्रम उत्पन्न हो। इसलिए यह ज्ञात होना चाहिये कि जीव की स्वाभाविक दशा क्या है? जिस से बार बार स्वाभाविक और नैमित्तिक होने की शङ्का न हो। महात्मा गौतम जी लिखते हैं:—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।
न्या० १।१।१०

अर्थ—इच्छा अर्थात् जिस वस्तु को आत्मा के अनुकूल समझा है उसके प्राप्त करने की इच्छा, द्वेष अर्थात् जिस पदार्थ को आत्मा के प्रतिकूल समझा है उसके त्यागने की इच्छा, सुख अर्थात् आत्मा के अनुकूल अर्थात् स्वतन्त्रता पूर्वक पराधीन होने से दूर रहना। दुःख अर्थात् आत्मा का अपने से अलग पदार्थों को अपना उद्देश्य मान कर उनको अपने पास उपस्तिथ न देखना या जिस वस्तु की इच्छा है उसका न मिलना दुःख है। प्रयत्न सुखदायी पदार्थों के इकट्ठा करने और दुःखदायी पदार्थों के त्यागने की गति को प्रयत्न कहते हैं अर्थात् ज्ञान का स्वरूप जानना। सज्जन गण! यहां आत्मा के लक्षणों में दुःख और सुख को देखकर यह विचार उत्पन्न होता होगा कि जब दुःख आत्मा का लक्षण है तो स्वाभाविक गुण ज्ञात होता है, तो फिर उसका नाश किस तरह हो सकता है? और दूसरे दुःख और सुख दोनों परस्पर विरोधी गुण किस प्रकार आत्मा रूपी एक वस्तु में रह सकते हैं। परन्तु शास्त्रकार आत्मा की दो

अवस्थाएं मानते हैं। एक शुद्ध आत्मा दूसरे शरीरस्थ आत्मा, और उनकी दोनों अवस्थाओं के गुण भिन्न होते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रयत्न और ज्ञान तो शुद्ध आत्मा का लक्षण है। और सुख दुःख इच्छा द्वेष ये सब शरीरस्थ आत्मा के लक्षण हैं। जैसे दही जब कि शुद्ध अवस्था में हो उसके गुण और हैं परन्तु जब दही तांबे के पात्र में हो तो उस समय उस के गुण भिन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार जीव के गुण दोनों अवस्थाओं में अलग अलग होते हैं। क्योंकि शरीरस्थ आत्मा के साथ में मन बुद्धि इन्द्रिय आदि ऐसी वस्तुएं होती हैं; जिनका प्रभाव आत्मा पर पड़ा हुआ ज्ञात होता है। इससे स्वाभाविक दशा जीव की ज्ञान और क्रिया से एक होती है और जब तक आत्मा में इन दो गुणों से अधिक बाहिरी गुण नहीं आ जाते तब तक आत्मा दुःखों से भिन्न होता है।

भ्रातृगण! कुछ मनुष्य आत्मा को मुक्त या सुखस्वरूप मानते हैं। परन्तु इस दशा में आत्मा कभी दुःखी या बद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि स्वाभाविक गुण नहीं हों सकते और न स्वरूप से उनमें भिन्न गुण आ सकते हैं। जैसे अग्नि में गर्मी है वह किसी काल में भी सर्द नहीं हो सकता। बहुधा लोग कहते हैं, कि सुख तो आत्मा का स्वाभाविक धर्म है। परन्तु आत्मा में दुःख केवल भ्रम से प्रतीत होता है। उनका यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि भ्रांति अपने से भिन्न पदार्थ में हो सकती है, परन्तु अपने में नहीं हो सकती। जैसे सूर्य का प्रकाश मेघ के छा जाने से संसार के लोगों को प्रतीत नहीं होता, परन्तु सूर्य स्वयं उस समय भी वैसा ही प्रकाशित होता है। इसलिए आत्मा का स्वाभाविक गुण बद्ध है या मुक्त, यह दोनो नहीं बन सकते वरन् यह दोनों गुण नैमित्तिक हैं। जैसे संसार में हम तीन पदार्थ देखते हैं। यथा पानी ठंडा होता है, और आग यह गर्म होती है, वायु उसमें स्पर्श गुण तो है परन्तु इसमें ठंडापन या गर्मी नहीं। यद्यपि स्पर्श से ठंडे और गर्म का ज्ञान होता है और वायु का गुण भी स्पर्श ही है परन्तु उसमें ठंडक और गर्मी दूसरी वस्तुओं की है अर्थात् जिस समय गर्मी के दिनों में वायु चलती है उस समय वायु गर्म विदित होती है और सर्दी की ऋतु में वायु सर्द होती है या गर्मी के दिनों में सील वाले मकानों या देशों की हवा ठंडी और सूखे मकानों या देशों की हवा गर्म होती है। इसलिए जल सदैव सर्द है और अग्नि सदैव गर्म है, और वायु न सर्द है न गर्म है। इसी प्रकार प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा तीन अनादि और नित्य पदार्थ हैं जिनमें से प्रकृति सत्यस्वरूप है लेकिन चैतन्य नहीं है, और उसमें सतोगुण रजोगुण और तमोगुण सम अवस्था में रहते हैं। और प्रकृति के कार्य पांच भूतों में ये गुण भिन्न हो गये हैं। सतोगुण का अर्थ है प्रकाश करने वाला, रजोगुण चलने वाला, तमोगुण अंधकार फैलाने वाला और स्थिरता देने वाला। इन पांच भूतों में से अग्नि तो सतोगुण रखती है, और वायु आकाश और जल रजोगुण है और पृथ्वी तमोगुण है। दूसरी वस्तु जीवात्मा है सो सत्चित् है। जिसमें सत्ता और ज्ञान दो गुण पाये जाते हैं, वह जड़ नहीं है, परन्तु सर्वज्ञ भी नहीं है और प्रत्येक शरीर में अलग२ होने से नाना और एक देशी हैं। तीसरी वस्तु परमात्मा है जो सत्चित् आनन्द है जिसमें सत्ता और पूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है और सर्वज्ञ और सर्वव्यापक भी है। वह तीनों काल में अपने आनन्द गुण से भिन्न नहीं होता। अब ज्ञात हो गया कि जड़ प्रकृति तो सदा बद्ध है वह कभी मुक्त हो ही नहीं सकती, क्योंकि संसार में भी देखा जाता है कि जड़ वस्तु तो स्वतन्त्र हो ही नहीं सकतीं और अल्पज्ञ जीवात्मा प्रकृति के संसर्ग से बद्ध होता है और परमात्मा के संसर्ग से मुक्त होता है यथार्त में न ये बद्ध हैं न मुक्त, और तीसरे परमात्मा सदा मुक्त है। भ्रातृगण! वेद ने भी इस बात को दिखलाया है:—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूति मुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः॥
वाजसनेयोपनिषद्॥ ६॥

वह लोग महा अंधकार क प्राप्त होते हैं, जो कारण रूप प्रकृति को ईश्वर के स्थान अर्थात् सुख का अधिकरण समझकर उपासना करते हैं, और वह लोग जो कार्य रूप प्रकृति की उपासना करते हैं वह उससे भी अधिक दुःखों में पड़ जाते है। प्यारे भ्रातृ-

गण। चूंकि प्रकृति में आनन्द गुण नहीं है, इसलिये प्रकृति के आनन्द की कामना करना मिथ्या ज्ञान है यही सारे दुःखों का मूल है क्योंकि इससे सब बुरी बातें उत्पन्न हो जाती है। जैसे एक मनुष्य को सर्दी की इच्छा है और उसे ज्ञान हो गया कि अग्नि से सर्दी मिलती है, वह अग्नि की उपासना करने लगा। क्या आप विचार कर सकते हैं कि जिस अग्नि में सर्दी का गुण भी नहीं उस अग्नि से कोई आदमी बहुत सा पुरुषार्थ करके बड़ी विद्या को व्यय करके सर्दी प्राप्त कर लेगा? नही २ वरन् वह अपनी दशा को बिगाड़ लेगा। जैसे मृगतृष्णा के जल में प्यास बुझाने की शक्ति नहीं तो क्या वह मृग जो उस बालू को जल समझकर उस ओर जाता है क्या कभी अपनी प्यास बुझा सकता है? महात्मा गौतम जी ने अपने शास्त्र में लिखा है:—

दुःखजन्मप्रवृत्ति दोषमिथ्या ज्ञांनानामुत्तरोत्त
रापाये तदन्तरापायादपवर्गः ॥ १ । १ । २

(अर्थ) क्योंकि सब दुःखों का मूल कारण मिथ्या ज्ञान है अर्थात् जड़ प्रकृति है जिसमें आनन्द का लेश भी नहीं, उससे आनन्द की लालसा की जाती है और उसी से जिन पदार्थों को जीवात्मा अपने अनुकूल समझता उनमें राग पैदा हो जाता है और जिनको अपने प्रतिकूल समझता उसमें द्वेषउत्पन्न हो जाता है, और राग से वस्तु के ग्रहण करने केलिए प्रयत्न होता है और द्वेष से त्यागने के लिये पुरुषार्थ किया जाता है और इस त्याग और ग्रहण के पुरुषार्थ का नाम प्रवृति है और इस प्रवृत्ति में पड़कर जीव धर्म अधर्म दोनों प्रकार के कर्म करता है। जैसे वाणी से भूंठ बोलना और मन से किसी का बुरा चाहना और हाथ से किसी की हत्या करना, और आंखों से दूसरे की वस्तु को बुरा देखना, या उसके विरुद्ध सारे अच्छे काम करना है। इस प्रकार के धर्म अधर्म से मुक्ति पैदा होती है जिसके भोगने के लिए जीव जन्म मरण को प्राप्त करता है और यह जन्म मरण बड़े भारी दुःख हैं। जब तक इनकी जड़ न कट जाये तब तक मनुष्य इनसे बच नहीं सकता इनकी जड़ या इनके आदि कारण मिथ्या ज्ञान हैं सो जब तक मिथ्या ज्ञान का नाश न हो तब तक दुःखों का नाश नहीं हो सकता और यह नियम संसार में देखा जाता है कि विरुद्ध गुणवाली वस्तुएं विनाशक हुआ करती हैं, जैसे यदि रोग सर्दी से पैदा होगातो उसके नाश करने वाली गर्म औषधि होगी, इसी प्रकार मिथ्या ज्ञान का विरुद्ध भी सत्य ज्ञान है, जब सत ज्ञान होगा तब उसका विरोधी मिथ्या ज्ञान आपसे आप नष्ट हो जायेगा। जैसे संसार में अंधकार प्रकाश के होते ही नष्ट हो जाता है। इसलिये जब मिथ्या ज्ञान नाश हो गया तो उससे पैदा होने वाले राग द्वेष उत्पन्न नहीं होते और राग द्वेष के नाश हो जाने से उनमें कार्य्य प्रवृत्ति उत्पन्न नही होती और प्रवृत्ति के न होने से उसके कार्य्य धर्म अधर्म नहीं रहते और उनके न होने से मुक्ति पैदा नहीं होती और मुक्ति के न रहने से जन्म मरण ही नहीं रहते और जन्म मरण के न होने से दुःख मूल नाश होसे जाता है सो दुःख के दूर करने का नाम सत ज्ञान है। महात्मा गौतमजी कहते हैं—

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्ता
वयव तर्कनिर्णय वाद जल्पवितण्डा हेत्वाभास
छल जाति निग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निःश्रेय
साधिगमः ॥ न्याय १ । १ । १

(अर्थ) प्रमान, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिध्दान्त, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास छल, जाति, निग्रहहस्थान, इन सोलह पदार्थों के तत्व ज्ञान से मुक्ति होती है। प्रमाण, जिसके बिना कोई वस्तु सिद्ध नहीं हो सकती। जब तक वस्तु सिध्द न हो उससे काम नहीं लिया जा सकता और काम लेने के लिये इन चार वस्तुओं का ज्ञान आवश्यक है, प्रमित, प्रमाण, प्रमेह, प्रमाता। प्रमित उसको कहते हैं जो किसी प्रमेह को प्रमाण के द्वारा सिद्ध करे और जो कुछ प्राप्त हो उसे प्रमित कहते हैं, जैसे एक वस्तु लाल है जो आदमी उसको ज्ञात करता है वह प्रमाता है और आंख प्रमाण हैं, लाल रंग की वस्तु प्रमेय हैं और उसका ज्ञान प्रमित है।

प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दाः प्रमाणानि ॥
न्या० । १ । १ । ३

प्रमाण चार हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द । और जो वस्तु इन प्रमाणों से सिद्ध न हो और उसके होने का निश्चय होना समझदार के वास्ते असम्भव ज्ञात होता है। जो ज्ञान इन्द्रिय और अर्थ से पैदा होता है उसके ज्ञान के हेतु को प्रत्यक्ष प्रमाण और उस ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं और ज्ञान प्रत्यक्ष से व्याप्ति लेकर उसके अनुकूल तीन तौर पर अर्थात कार्य से कारण का अनुमान और कारण से कार्य का अनुमान और सामान्य गुण से गुणी होता है उसे अनुमान कहते हैं। जैसे नदी के बढ़ाव को देख कर यह ज्ञात किया जाता है कि पहाड़ में वर्षा हुई है और घनघोर बादल को देख कर विचार होता है कि मेह बरसेगा और दूर से धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है, यह तीनों प्रकार का ज्ञान अनुमान कहलाता है। और जहां प्रत्यक्ष सामान्य कर्मों के होने से वस्तुओं को सिद्ध करना हो या जिससे उसकी सिद्धि की जावे उसे उपमान कहते हैं। जैसे किसी ने नील गाय नहीं देखी उससे कहा गया कि गौ के सदृश नील गाय होती है वह आदमी जहाँ जङ्गल में गया उसने नील गाय को देख कर गौ को मिलाने से ज्ञान कर लिया। चौथे जिस आदमी ने किसी वस्तु को प्रत्यक्ष करके उसके गुणों के सदृश जो उपदेश किया हो उसे शब्द कहते हैं। शब्द दो प्रकार का होता है एक प्रत्यक्ष जो वस्तु को बतलाता है, दूसरा वह जो अप्रत्यक्ष की बातों को बतलाता है।

आत्माशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृति दोष प्रेत्य-
भाव फल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्॥न्या० १।१।६

यह ज्ञान प्रमेय कहलाता है। आत्मा जिसके ज्ञान और प्रयत्न दो चिह्न हैं, शरीर जिसमें बैठकर इन्द्रिय अर्थ के लिये चेष्टा करती है, तीसरे इन्द्रिय जो ज्ञान और कर्म के लिये दिये गये वह पांच ज्ञान इन्द्रियां अर्थात आंख; कान, नाक, जिह्वा और खाल, पांच कर्म इन्द्रिय अर्थात् हाथ, पैर, जिह्वा और मल मूत्र के स्थान हैं, चौथे बुद्धि जिसका नाम ज्ञान यो उपलब्धि है, पाँचवें मन जिसके कारण एक काल में दो वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता है मन जिस इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध रखता है उसके विषय का ज्ञान होता है और जिस इन्द्रिय के विषय से सम्बन्ध नहीं रखता उस इन्द्रिय के काम करते हुए भी उस विषय का ठीक ज्ञान नहीं होता, छठवें दोष जिनके कारण जीवात्मा प्रवृत्ति करता है, यह मिथ्या उत्पन्न हुआ राग और द्वेष है जिस वस्तु को आत्मा के अनुकूल समझता है उसमें राग अर्थात् इच्छा उत्पन्न होती है, सातवां प्रेत्यभाव, अर्थात् आत्मा का शरीर मन बुद्धि से भिन्न होकर दूसरे शरीर के साथ सम्बन्ध करना या पुनर्जन्म यह प्रेत्यभाव कहलाता है, आठवां अर्थ जो सुख दुःख का कारण या इन्द्रियों का विषय है। आँख का विषय रूप है सो वह रूप तेज में रहता है, दूसरे कान का विषय शब्द है सो वह आकश का गुण है, तीसरे नासिका का विषय गन्ध है सो यह पृथ्वी में रहता है, चोथे रसना अर्थात जीभ का विषय रस है सो यह जल में रहता है, पांचवें खाल का विषय स्पर्श है सो यह हवा में रहता है, नवां फल जो काम करने के पश्चात् प्राप्त होता है। दशवें दुःख अर्थात् पराधीनता का होना क्योंकि संसार के सब विद्वानों की इस पर एक सम्मति है कि कामनाओं का होना और पूरे करने के मार्गों का न होना या किसी वस्तु से घृणा होना और उसके दूर करने की शक्ति का न रहना दुःख कहलाता है। ग्यारहवां अपवर्ग अर्थात् मुक्ति यह दुःखों के निःशेष होने की अवस्था का नाम है अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों का सर्वथा न होना। बारहवें प्रवृत्ति धर्माधर्म। ऐसा ही महात्मा कणाद् जी ने भी मुक्ति का कारण सत्यज्ञान ही माना है। जैसा कि लिखा है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वै०
१ । २

जिससे तत्वज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है उसे धर्म कहते हैं या जिससे तत्वज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है। यहाँ पर यह संदेह होता है कि यदि ऐसा कहा जाता कि जिससे मुक्ति होती है वही धर्म है तो उस दशा में काम चल जाता क्योंकि कर्म के बिना

मुक्ति हो ही नहीं सकती। परन्तु ऋषि का यह कथन है कि यदि तत्वज्ञान के नियम को छोड़ दिया जावे तो लोग अधर्म को भी धर्म बतलाने लगेंगे क्योंकि मुक्ति तो पीछे होगी और धर्म पूर्व करना पड़ेगा, उस समय वाममार्ग जैसे महा पाप भी धर्म हो जायेंगे और सब की सब व्यवस्था नष्ट हो जायगा। और महात्मा कपिल जी ने भी मुक्ति का कारण तत्वज्ञान ही को माना है:—

ज्ञानान्मुक्तिः। सां० ३। २३

ज्ञानसे मुक्ति होती है क्योंकि मिथ्या ज्ञानसे बद्ध होता है। ऐसा ही महात्मा पतंजलि भी कहते हैं:—

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायाः। यो० २।२६

दुःख निवृत्ति का निदान, मिथ्याज्ञान से रहित तत्वज्ञान ही हो सकता है, क्योंकि अविद्याका नाश विद्या के बिना हो नहीं सकता और कारण के नाश के बिना कार्य का नाश नहीं हो सकता। भ्रातृगण! इन सब प्रमाणों से जाना गया कि संसार में दुःख निवृत्ति का निदान केवल पदार्थों के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान है परन्तु इसमें सन्देह उत्पन्न होने लगता है कि किन पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है। पदार्थों की तीन अवस्थाएं हैं—प्रतिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक, इनमें से प्रतिभासिक तो भ्रांति है इस सत्ता का ज्ञान तो दुःख का कारण है, उससे दुःख निवृत्ति किसी प्रकार हो नहीं सकती, व्यावहारिक सत्ता भी परिणामी है उसका ज्ञान भी तत्वज्ञान कहलाने योग्य हैं। केवल पारमार्थिकता का ज्ञान आवश्यक है और परमार्थ में तीन पदार्थ प्रतीत होते हैं अर्थात् जीव ईश्वर और प्रकृति। इसलिये जीव को ईश्वर और प्रकृति का ज्ञान होना परमावश्यक हुआ। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि न्यूनशक्ति न्यूनज्ञान वाला जीव अपनी अवस्थामें किस प्रकार अनन्त प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और किसप्रकार ईश्वरको जो अति सूक्ष्म और इन्द्रियों का विषय नहीं, ज्ञात कर सकता है जब ईश्वर और प्रकृति का ज्ञान होना जीवके लिये असम्भव है तो संसार में कोई जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु प्रत्येक जीव के भीतर मुक्ति की इच्छा है और असम्भव वस्तु की इच्छा हुआ नहीं करती। अब यहां विचार हुआ कि किस प्रकार तत्वज्ञान हो! इस बात के उत्तर के लिये महात्मा कणादजी ने उत्तर दिया है:—

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वै० १।३

तत्वज्ञान का उपदेश अर्थात् धर्म का बोधक होने से वेद का प्रमाण करना जीवों के पदार्थ ज्ञान के लिये आवश्यक है या ईश्वर सर्वज्ञ जो प्रत्येक स्थान पर विद्यमान और प्रत्येक पदार्थ के मूल से परिचित है उसका ये उपदेश होने से वेद से ही तत्वज्ञान लेना चाहिए क्योंकि वेद के बिना मनुष्य तत्वज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसे ही महात्मा जैमिनि ऋषि उपदेश करते हैं:—

चोदनालक्षणार्थो धर्मः॥ मी० १। १।२।

(अर्थ) जिस काम में वेद के द्वारा ईश्वर की प्रेरणा ज्ञात हो उसी का करना धर्म है और जो वेद विरुद्ध हो वह अधर्म है। अब यहां पर आशय निकला कि वेद ही ईश्वरकृत होने से धर्म के बोधक हैं और महात्मा व्यासजी भी अपने शारीरिक सूत्रों में वेद को ईश्वरकृत बतला रहे हैं।

शास्त्रयोनित्वात्॥ वेदान्त० १।१।३।

यहाँ पर वह ईश्वर को वेदों का कर्त्ता होना सिद्ध करते हैं। अर्थात् कोई जीव वेदों को बना नहीं सकता क्योंकि बिना शिक्षा के कुछ भी ज्ञान संबन्धी काम करने की सामर्थ्य नहीं रखता, और न वेदों के विषयों का, जिनका सब विद्याओं से सम्बन्ध है, बिना उपदेश के ज्ञान हो सकता है। इसलिये कुल ऋषियों के विचार में जिन्होंने वेदों की अन्वेषणा की वेद ईश्वर का ज्ञाता ज्ञात हुआ। प्रश्न यह है कि वेद क्या है? और उसका लक्षण क्या है? पहले कहा है कि:—

हिताहितसाधनतावोधकत्वम्,

अर्थात् जो भलाई और बुराई का स्थल बतलाने

वाला हो, उसे वेद कहते हैं परन्तु यह लक्षण वैद्यक शास्त्र और नीति शास्त्रादि में, जो मनुष्यों की बनाई हुई पुस्तकें हैं उनमें भी घट गया, इसलिये फिर कहा:—

हिताहितसाधनताबोधकानि चापुरुषवाक्यानि ब्रह्मप्रतिपादकानीति ।।

अर्थात् जो मनुष्य का बनाया हुआ न हो और भले बुरे साधनों का बताने वाला हो। जब यह लक्षण होगातो कुरान इंजील, तौरेत इत्यादिको ईसाई और मुहम्मदी भाई ऐसा ही मानते हैं और जैनी लोग अपने ग्रंथों को पुरुष का लेख नहीं मानते। इसलिए वेदों का लक्षण किया गया है कि जो संसार की किसी पुस्तक में नही घट सकता—

ब्रह्मप्रतिपादकानि अनृतव्याघातपुनक्तिदोषादिरहितानि सृष्टिक्रमाविरुद्धानि वाक्यजातानि ।

जो सृष्टि के आदि से लेकर भले और बुरे साधनों का जताने वाला मनुष्य का वाक्य न हो और ब्रह्मा का भी प्रतिपादक हो और झूठ, झगड़ादि वाली बातों से रहित हो और उसमें निष्प्रयोजन एक ही अर्थ का दोबारा वर्णन न किया हो और वह सृष्टिक्रम से विरुद्ध न हो। प्यारे पाठकगण ! अब देखना चाहिए कि वेदों में ये प्रशंसा पाई जाती है या नहीं और दूसरे बहुत से लोग यह भी संदेह उत्पन्न करेंगे कि वेद केवल हिन्दुओं ने मान लिये हैं नहीं तो उसमें ऐसा कोई कारण ईश्वरीय ज्ञान होने का नहीं है। क्योंकि वेदपाठियों ने कभी नहीं कहा कि तुम वेदों को बिना अन्वेषणा के मान लो ; और अन्वेषणा दो प्रकार की होती है एक भीतरी दूसरी बाहरी। भीतरी अन्वेषणा तो उसके अपनी प्रशंसा के स्पष्ट करने से ज्ञात होती है और बाहरी अन्वेषणा उन लोगों के वचन से होती है जिन लोगों ने पहले समय में उसकी आन्तरिक अन्वेषणा की थी। हमारे कुछ मित्र कहेंगे कि जब समीक्षक ने भी आन्तरिक प्रशंसा ही से अन्वेषणा की है और हम भी आन्तरिक गुणों ही से अन्वेषणा करते है इसलिये दोनों एक ही बात है अतः हम वर्तमान समय में अपनी अन्वेषणा पर भरोसा करेंगे परन्तु यह बात ठीक नहीं, प्रथम तो पिछले समय की पुस्तकें द्वेष और स्वार्थ से नहीं भरी थीं उस समय के लोगो को समय मिलने के कारण और संस्कृत विद्या के पठन पाठन से बहुत अवसर अन्वेषणा के मिल सके थे, इसलिये जितनी अन्वेषणायें भूतकाल में की गई हैं वह भी प्रथम कोटि का प्रमाण मानना चाहिए और इस समय भी द्वेष और स्वार्थ को छोड़कर अन्वेषणा करनी योग्य है।

प्यारे मित्रो ! यदि हम ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं और मनुष्यकृत वस्तुओं में भेद करना चाहें तो हमें दोनों प्रकार की वस्तुओं के गुणों की तुलना कर के उनके उदाहरण फल निकालना चाहिए। जैसे हम देखते हैं कि एक बड़ के वृक्ष का छोटा सा बीज है और उसके सामने आदमी का बनाया एक बिल्लौर का गोला रख लीजिए। प्रत्येक स्वरूप में तो यह बिल्लौर का गोला उस बीज से शक्ति, सुन्दरता और रङ्ग, सारांश कि प्रत्येक गुण में उससे बढ़कर है परन्तु यदि ध्यान की दृष्टि से जाचें तो ज्ञात हो जायगा कि बिल्लौर का गोला अपने बनाने वाले की निर्बलता के कारणजितने बाह्य गुण रखता है उसका दसवां भाग भी इसमें आन्तरिक गुण नहीं है, वरन उस बीज के सामने तो किसी प्रकार आ ही नहीं सकता। क्योंकि बीज में उसके बनाने वाले के विद्वान होने के कारण छिपी हुई इतनी शक्ति है कि वह एक बीज सब संसार में यदि चाहें तो बढ़ कर वृक्ष हो सकता है इस छोटे से बीज के भीतर फल बनाने की शक्ति, पत्ता शाखा अंकुर इत्यादि, सारांश यह है कि उसका आन्तरिक भाग अपने बनाने वाले की विद्या के पूर्ण प्रमाण हैं।

प्यारे मित्रो ! अतः ईश्वर की बनाई हुई पुस्तकों में भी इसी प्रकार गुण होने चाहियें कि शब्द तो बहुत कम हों परन्तु अर्थ बहुत अधिक, दूसरे लगभग संसार भर इसबात को मानता है कि यह जगत् परमेश्वर ने बनाया है और इस जगत् की वस्तुओं के लिये

परमेश्वर ने जिह्वा दी है। अतः उस पुस्तक का सृष्टि नियम के अनुकूल होना आवश्यक है क्योंकि ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है और ईश्वर ज्ञानी है और अच्छे मनुष्यों के वचनों में विरुद्धता नहीं होती तो ईश्वर की बनाई पुस्तक उसके कर्म के किस प्रकार विरुद्ध हो सकती है। तीसरे यह बात है कि प्रत्येक मनुष्य मनुष्यत्व के कारण कुछ न कुछ पक्षपात रखता है' जैसे जब इस भारत वर्ष में ब्राह्मणो का प्राबल्य था उस समय ब्राह्मण दण्ड नीति से अभियुक्त नहीं किये जाते थे और जब यहां यवनों का प्राबल्य था तो यवन किसी हिन्दु को मारकर दण्ड नहीं पाता था और हिन्दु किसी यवनको थोड़ीसी बात कहनेसे फांसी चढ़ा दिया जाता था। "हक़ीकतराय" इत्यादि के सैकड़ों उदाहरण विद्यमान हैं जो बालक होते हुए भी यवनों के द्वेष से इस्लाम की भेंट हुए। फिर जब सिक्खों का राज्य होंगया तो एक सिक्ख कई यवनों को मार करके भी फांसी का दण्ड नहीं पाता था। अब अँग्रेजी राज्य में न्याय तथा द्वेष रहित होने से बड़ी धूम मचरही है परन्तु मानुषीगुण यहांसे भीनहीं गया क्योंकि आज तक कई भारतवासियों के मारने से कोई गोरा फांसी पर नहीं चढ़ा। इसलिये अपनी जाति और देश का पक्षपात या अपने कुटुम्ब और समीपवर्तियों का पक्ष मानुषिक गुण है। बस, जिन जिनमें दूसरों पर भिन्न जाति होने के कारण या दूसरी जाति और धर्म पर अन्य जाति के होने के कारण अत्याचार नीति युक्त रक्खा गया हो वह पुस्तक मनुष्यकृत है या जिस पुस्तक में किसी देश या जाति की प्रशंसा की गई हो वह मनुष्यकृत है, और जिस पुस्तक में सबदेश व जाति और जातियों को एक ही दृष्टि से देखा गया हो वह ईश्वरकृत पुस्तक है।

प्यारे मित्रो! सिवाय ऊपर लिखे हुए गुणों के जो प्रत्येक ईश्वरकृत पुस्तक के लिये बहुत आवश्यक है एक और बात भी ध्यान में रखना चाहिये। चूंकि पुस्तक के आने का कारण मनुष्य की अविद्या को दूर करके मनुष्यों को ज्ञान सम्बन्धी सहायता देना है जिससे मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा ज्ञात करके उसी के अनुसार अपने जीवन को पूरा करे और जो पुस्तक बुद्धि और ज्ञान के विपरीत हो वह नितान्त मनुष्यकृत पुस्तक मानी जायगी, और जिस पुस्तक का विषय नितान्त बुद्धि का एक सिरा और जिसको युक्ति से कुछ भय न हो वह पुस्तक ईश्वरीय पुस्तक कहलाने की अधिकारिणी है चूंकि हम संसार में ईश्वरीय प्रकाश और मानवी प्रकाश को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि मानवी प्रकाश-जैसे दीपक (लैम्प) इत्यादि मानवी प्रकाश है। जैसे दीपक (लैम्प) इत्यादि को सदैव वायु से भय लगा रहता है और जहाँ थोड़ी सी वायु लगती है दीपक बुझ जाता है। परन्तु परमेश्वर के बनाये हुए सूर्य को वायु से नेक भी भय नहीं रहता वरन् सूरज के सम्मुख बिना वायु के मनुष्य ठहर नहीं सकते। इसी दृष्टान्त से हमें परमेश्वर ने बतला दिया है कि उसकी बनाई हुई पुस्तक को युक्ति कुछ भय नहीं है वरन् उसके बिना युक्ति समझ भी नहीं सकते। परन्तु जितनी मनुष्यकृत पुस्तकें हैं वह सब युक्ति से डरती हैं उनको मानने वाले जब कभी युक्ति से काम लें तो उनका विश्वास निर्बल पड़ जाता है। बस, ऐसी पुस्तक में जिसमें लिखा हो कि युक्ति देना बुराई है या "धर्म में बुद्धि का प्रवेश नहीं" नितान्त मनुष्यकृत है, और उन पुस्तकों से उद्देश्य पर पहुँचना कठिन है।

प्यारे मित्रों! आप एक और भी ध्यान रक्खें कि जिस समय संसार में सूर्य की किरणें आनी आरम्भ होती हैं तो अँधेरा एक दम से उड़ जाता है लेकिन दीपकों के प्रकाश से अँधेरा बहुत कम उड़ता है और उसका प्रकाश दूर तक नहीं पहुँचता। इसलिये जिस पुस्तक से संसार की सम्पूर्ण मूर्खता नष्ट हो जाय और मनुष्यों में से द्वैष भाव हट कर एकता पैदा हो जाय वही ईश्वरकृत पुस्तक है। अब हम वेद में इन्हीं बातों की ढूंढ़ (खोज) करेंगे। यदि इस समय देश में देखा जाय कि कितनी बातें ऐसी हैं किजिनके कारण मनुष्य आपसमें भाई-भाईहोने पर भी और बुद्धिमान हो करके भी एक दूसरे के दुःखदायी शत्रु बन रहे हैं। जब हम भले प्रकार सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि पहली बात जिसने संसार को टुकड़ा २ किया ईश्वर के न मानने की है, जो लोग नास्तिक हैं, वह ईश्वर का होना नहीं मानते। दूसरी बात ईश्वर की गणना की है अर्थात ईश्वर एक है या अनेक? (क्रमशः)

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्र डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर–इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरेक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२—पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगो में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रन्थ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इसमें खूब खोल कर नहीं समझाया गया हो।

५—हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते चले जाय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय—दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयोंके लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देन के लिये, भेंट के लिए इससे बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ हैं, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिर भी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्त्व

कुछ सम्मतियों का सार

१—'आर्य' लिखता है—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य-समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२—'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है-"हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—'नव-भारत टाइम्स' लिखता है—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मन्थन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रन्थ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दी के संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

'आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन सरस्वती. आज' आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रंथ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रे रियों, पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी सस्थाओं में खरीदा जाने वाल ।

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

गेहूँ की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीजकी पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
४	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२।।)
११	धान की खेती	१।।)
१२	संतरे की बागवानी	२।।)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।)
२२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२।।)

नोट:— ❀ कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा।

❀❀ ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है कसाथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।—)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जावेगा। पूरा सैट मंगाने वाले सज्जन ५) एडवांस भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें। क्योंकि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादा लगता है।

❀❀❀ डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा। विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ़्त मंगावें। केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक ने महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां देहली
में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

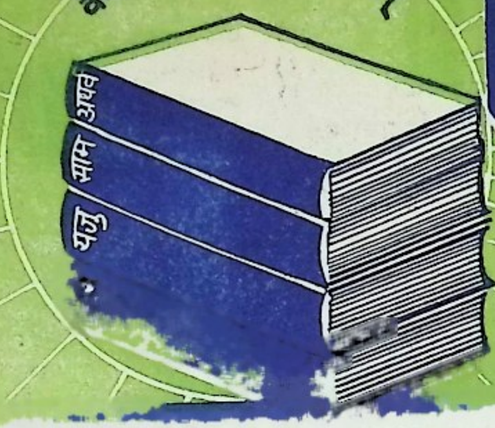

वेद प्रकाश

वर्ष ६ अंक २ } भाद्रपद शक सं. १८७९, सितम्बर १९५७, दयानन्दाब्द १३३ { मू० नयेपैसे १९, वार्षिक २) विदेशों से ४ शिलिंग
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

तीनों लोकों से रक्षा की प्रार्थना—

शं नो द्यावापृथवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु ॥५॥
ऋ० ७। ३५। ५॥

अर्थ—(पूर्वहुतौ द्यावा पृथिवी नः शं) पूर्व प्रशंसित सूर्यवत तेजस्वी विद्वान् पुरुष तथा पृथिवीवत् स्त्री हमें शान्तिदायक हों (दृशये अन्तरिक्षं नः शम् अस्तु) उत्तम रीति से देखने के लिये अन्तरिक्ष हमें सुखदायक हो (वनिनः औषधीः शनः भवन्तु) बन की औषधियाँ वा वृक्ष हमारे लिए शांति दायक हो (रजसः पतिं जिष्णु नः शम्) सब लोकों का पति जयशील ईश्वर हमारे लिये सुख का हेतु हो।

प्रशंसित क्रियाओं में प्रकाशित द्युलोक और पृथ्वी लोक तथा सूर्य और अन्तरिक्ष हमें शान्तिदायक हों, औषधियाँ वन के पदार्थ हमें शान्तिदायक हों और सकल धनवान् हमें सुख दिया करें।

नोट—अगस्त का अंक सृष्टि का इतिहास है साधारण अंक नहीं छापा गया।

स्वाध्याय योग्य पुस्तकें

ऋग्वेद मूल बड़ी साइज ६॥)
,, छोटी ,, ७॥)
यजुर्वेद बड़ी ,, ४)
,, छोटी ,, २॥)
,, गुटका सा. २)
सामवेद बड़ी सा. २)
,, गुटका साइज १॥)
अथर्ववेद बड़ी सा. ६)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका २॥)
ऋग्वेद भाष्य (जयदेव) ४६)
यजुर्वेद ,, ,, १४)
सामवेद ,, ,, ७)
अथर्ववेद ,, ,, २८)
यजुर्वेद भाष्य (यू. पी. सभा) सजिल्द ५॥)

पं. तुलसीराम स्वामी कृत

मनुस्मृति भाष्य ५)
न्याय दर्शन भाष्य २)
योगदर्शन १॥)
सांख्य दर्शन २॥)
वैशेषिक दर्शन २)
वेदान्त दर्शन २॥)

स्वामी दर्शनानंद कृत

उपनिषद प्रकाश ३॥)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह २॥)
,, ,, उत्तरार्द्ध २॥)
न्याय दर्शन २॥)
वैशेषिक दर्शन ३॥)
वेदान्त दर्शन ३॥)
सांख्य दर्शन १॥)
गीता भाषा १॥)
कथा पचीसी ॥।)

नारायण स्वामी कृत

मृत्यु और परलोक १।)
योग रहस्य १।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य ।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य ।=)
कर्तव्य दर्पण १) बढ़िया १।)
अमृत वर्षा २)
प्राणायाम विधि ।)
गृहस्थ जीवन रहस्य २॥)
कथा माला ॥।)
विद्यार्थी जीवन रहस्य ॥।)
पाप और पुण्य ॥)
आठ उपनिषदें ३॥≡)
वृहदारण्यकोपनिषद ४)
आर्य समाज क्या है ? ॥)

स्वामी सर्वदानंद कृत

सन्मार्ग दर्शन ४)
आनन्द संग्रह २)
ईश्वर भक्ति १॥)

म. आनंद स्वामी कृत

तत्व ज्ञान ३)
प्रभुदर्शन २॥)
प्रभु भक्ति १॥)
गायत्री कथा ॥)
एक ही रास्ता ॥=)
शंकर और दयानन्द ।=)॥
प्यारा ऋषि ॥=)
दयानन्द वचनामृत ।=)

जीवनियें

महर्षि दयानन्द (२ भाग) १२)
,, (इन्द्र वि. वा.) २)
महर्षि दर्शन (प्रि. दीवानचन्द) २)
दयानन्द चित्रावली २।)

बालोपयोगी जीवनियें

महर्षि दयानन्द सचित्र ॥-)
,, ,, सादी ।=)
स्वामी श्रद्धानन्द ।=)
पण्डित लेखराम ।=)
महात्मा हंसराज ।=)
आदर्श सुधारक दयानंद ॥=)
पत्र व्यवहार (ऋषिदयानंद) ७)

स्वामी अभयदेव कृत

वैदिक विनय ३ भाग ६)
तरगित हृदय १।)
ब्रह्मचर्य गीत २)

स्वामी वेदानंद कृत

स्वाध्याय सन्दोह ४)
स्वाध्याय संग्रह २)
वेद परिचय ।=)
वेदोपदेश १)
सावित्री प्रकाश १)

अन्य विद्वानों कृत

उपनिषद आर्य भाष्य ६)
दयानन्द ग्रंथ संग्रह ४॥)
वाल्मीकि रामायण १२)
ओ३म्कार निर्णय १॥)
जाति निर्णय ४)
योगासन सचित्र १॥)
वैदिक प्रार्थना १॥)
सृष्टि का इतिहास २)
बहनों की बातें १।)
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म ॥=)
सन्ध्या विनय ॥)
प्रार्थना प्रदीप ॥)
भारतीय संस्कृत के तीन प्रतीक (ओ३म् आर्य नमस्ते) ॥)
ब्रह्मचर्य जीवन ।=)
नास्तिक वाद ॥)
गो रक्षा परम कर्तव्य ॥)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान ।)
दयानन्द और वेद ।)
गुरूधाम एकांकी ॥)
बाल शिक्षक महर्षि दयानन्द ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)
सत्यार्थ प्रकाश १=) १॥)
संस्कार विधि ॥।=)
वैदिक धर्म शिक्षा ≡)
सामाजिक पद्धतियां ।=)
आर्य सत्संग गुटका ।-)
सन्ध्या हवन प्रदीपिका ॥)
वैदिक संध्या जपजी =)
ओंकार स्त्रोत्र ।-)
विश्व विज्ञान ≡)
यज्ञोपवीत मीमांसा ॥।)
संस्कार विधि विमर्श ३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य-रोग ३)
आ. स. का इतिहास १।=)
,, ,, (इन्द्र) ४)
आर्य पर्व पद्धति मात्र ।=)
अखण्ड भारत ॥)
स्वास्थ्य विज्ञान ।-)
द्विराष्ट्र सिद्धांत और राष्ट्रीय मुसलमानों का कच्चा चिट्ठा १)
महर्षि दयानन्द शिवा बावनी तर्ज में ॥)
ऋषि गाथा महाकाव्य ४)
आर्य सिद्धांत दीप १।)
गीत श्रद्धांजलि १।=)
सत्य हरिश्चन्द १।)
बीरबल की हाजिर जवाबी १)
दृष्टांत सागर ५ भाग ७)
पूर्व जन्म स्मृति ।=)

स्वामी विवेकानंद कृत

कर्म योग २)
भक्ति योग २)
भक्ति और वेदान्त २)
विश्व शान्ति का सन्देश २॥)

स्वामी दर्शनानंद कृत

ईश्वर विचार =)
ईश्वर प्राप्ति ≡)
जीवात्मा =)
वेदों का महत्व ।)
वेदों की आवश्यकता -)
वेद किस पर प्रकट हुए -)
कर्म व्यवस्था -)
वर्ण व्यवस्था -)
पितृ श्राद्ध विचार -)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य -)
,, लक्ष्य -)

चित्र ! चित्र !! चित्र !!!

महर्षि दयानन्द ।=)
दयानन्द चित्र पट ॥)
प्रार्थना के आठ मन्त्र ।-)
संध्या मंत्र ।-)
आर्य समाज के नियम ।-)
यम-नियम व्याख्या ।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न ।-)
संगठन सुक्त ।-)
चारों वेदों के प्रथम मंत्र ≡)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली ।

* सृष्टि से पूर्व संसार की दशा *

[लेखकः—पूज्यपाद वेदशास्त्रज्ञ स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द जी]

ओ३म् । गीर्णं भुवनं तमसापगूढमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥ ऋ १०।८८।२

(भुवनम्) संसार (गीर्णम्) निगीर्ण, निगला हुआ सा और (तमसा) अन्धकार से (अपगूढ़म्) बुरी तरह ढका था। (अग्नौ+जाते) अग्नि के उत्पन्न होने पर (स्वः) प्रकाश, आनन्द (आविः) प्रकट (अभवत्) हुआ। (तस्य+अस्य) उस इस प्रसिद्ध अग्नि के (सख्ये) सख्य में, मैत्री में सहयोग में (पृथिवी) पृथिवी (द्यौः) द्यौ (आपः) जल तथा अन्तरिक्ष और (ओषधीः) औषधियां (अरणयन्) मानो प्रसन्न हो उठीं।

सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व क्या था, कैसा था ? ये प्रश्न प्रायः सभी विवेकशील महानुभावों के हृदय में उठते हैं। किन्तु जैसा इनका समाधान वेद में है, और किसी भी धर्म ग्रन्थ में नहीं है। उत्पत्ति से पूर्व यह—**गीर्णं भुवनं तमसापगूढम्**=

संसार निगला हुआ सा और अन्धकार से अत्यन्त आच्छादित था।

सूर्य्यचन्द्र ग्रह नक्षत्र ताराआदि, सस्यश्यामला मही, कलकलध्वनि करके बहतेजल, सरसर करती धीर समीर (वायु) आदि पदार्थों का नाम संसार है। सृष्टि से पूर्व सुतराम् यह संसार अपने कारण में विलीन था, इसको वेद ने '**गीर्णं भुवनम्** कहा है। जब सूर्य्य चन्द्रादि प्रकाशमय पिंड न थे तो अन्धकार ही होगा। इस अवस्था को **तमसापगूढम्**=अन्धकार से अत्यन्त आच्छन्न था शब्दों में व्यक्त किया गया है। ऋग्वेद १०।१२९।३ में इसी भाव को अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा है—**तमआसीत्तमसागूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्**=सृष्टि से पूर्व तम=अन्धकार था, और अन्धकार के कारण सब गुप्त था। और यह सारा सरणशील पदार्थ लिंगरहित हो रहा था।

मनुस्मृति में इसका अनुवाद सा ही है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञानमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेय प्रसुप्तमिव सर्वतः

यह समस्त संसार तमोभूत=अन्धकाराच्छन्न प्रकृति में था, और प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द अर्थापत्ति आदि का अविषय हो रहा था। क्योंकि वह सर्वथा प्रसुप्त=निश्चेष्ट था।

सृष्टि में सबसे पूर्व एक आग्नेय पिंड पैदा हुआ, और

आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ=अग्नि के उत्पन्न होने पर प्रकाश हो गया।

इस आग्नेय पिंड के पीछे सारी सृष्टि क्रमशः उत्पन्न हुई—

तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्येअस्य

इस महान् आग्नेय पिंड के सहयोग में पृथिवी द्यौ, जल और औषधियां रमण करने लगीं।

सूर्य्य से पृथिवीपिंड पृथक हुआ, सहस्त्रों वर्ष उस पर मूसलाधार वर्षा होती रही। तब कहीं पृथिवी ठंडी हुई, और उसके पश्चात् औषधिवनस्पति आदि की उत्पत्ति हुई।

सृष्टि उत्पत्ति का यह क्रम आजकल के वैज्ञानिक बतलाते हैं, वेद विज्ञान का सिद्धान्तग्रन्थ है। इस में ऐसे गंभीर वैज्ञानिक तत्वों को देखकर पश्चिमी विद्वान् चकित रह जाते हैं। [स्वाध्याय सन्दोह से]

चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने

हिन्दी भाषा का गौरव मान बचाने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥
परवाह नहीं दाने दाने को तरसे।
परवाह नहीं लाठी या गोली बरसे॥
तू बढ़े चला चल निर्भय सीना ताने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥ १॥
कैरों शासन ने कर अपनी मनमानी।
हिन्दी हिन्दू के सर्वनाश की ठानी॥
उठ सावधान हो मत सो ताने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥२॥
जिस दिन के हित तू माता ने जन्माया।
ले देख भाग्य से वह सुन्दर दिन आया॥
आ कर्म भूमि में जौहर विकट दिखाने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥३॥
भारत का गौरव हिन्दी पर आश्रित है।
हिन्दी जीवित तो हिन्दू जाति जीवित है॥
तू छेड़ आज हिन्दी के मस्त तराने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥४॥
धन, धरती निज प्राणों की ममता तजकर।
कर्तव्य हेतु होजा 'प्रकाश' न्यौछावर॥
ज्यों दीपक पर मर मिटते परवाने।
चल चण्डीगढ़ को धर्मवीर मर्दाने॥५॥

—श्री प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न, अजमेर

हमारी सात मांगें

१—सम्पूर्ण नए पंजाब राज्य में एक ही भाषा योजना लागू होनी चाहिये।

२—शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम का चुनाव पूरी तरह माता-पिता की इच्छा पर छोड़ देना चाहिये।

३—किसी भी विशेष स्तर पर दोनों भाषाओं में से किसी एक भाषा का, द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाना अनिवार्य नहीं होना चाहिये।

४—शासन के प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का स्थान हिन्दी को दिया जाना चाहिये।

५—जिले के स्तर या उसके नीचे की सरकार की सूचनाएँ और निर्देश दोनों भाषाओं में होने चाहिये।

६—किसी भी भाषा में प्रार्थना पत्र देने की आज्ञा होनी चाहिये। उनके उत्तर भी उसी भाषा में होने चाहिये।

७—जिले स्तर तथा उसके नीचे के सरकारी कागजात दोनों लिपियों में होने चाहिये।

पंजाब में चल रहे

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के विरोधियों को युक्तियुक्त उत्तर

[श्री सन्तराम जी बी० ए० होशियारपुर]

आर्य समाज ने पंजाब में हिंदी की रक्षा के लिए जो सात्विक आंदोलन जारी किया है उसके विरोधियों की आपत्तियों का सारांश यह है :

१—पंजाबी १४ स्वीकृत भाषाओं में से एक क्षेत्रीय भाषा है। इस को दबा कर इसका स्थान हिन्दी को दिलाने पर हठ करना अनुचित और हिन्दी के लिए घातक है।

२—यह आंदोलन धार्मिक या सांस्कृतिक नहीं यह संस्कृति की आड़ में राजनीति सत्ता हथियाने का आंदोलन है।

३—हिन्दी राष्ट्र भाषा घोषित हो चुकी है। हिन्दी के साथ यदि क्षेत्रीय भाषा पंजाबी भी पढ़ ली जाय तो इसमें कोई आपत्ति क्यों हो ?

४—पंजाब एक सीमावर्ती राज्य है। यहां सिखों की बहुतायत है। यहां अशान्ति फैलने से सिख रूठ कर पाकिस्तान से जा मिलेंगे और भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण हो जायगा।

१—यह ठीक है कि पंजाबी भी १४ भाषाओं में से एक भाषा मानी गई है, परन्तु आर्य समाज किसी भाषा को दबाने की मांग नहीं करता। उसका कहना तो यह है कि जो लोग पंजाबी को अपनी क्षेत्रीय भाषा मानते हैं वे बेशक पंजाबी पढ़ें। परन्तु जो लोग पंजाबी को अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा नहीं मानते उन पर पंजाबी बलात न लादी जाय। पंजाब की सत्तर प्रति सैकड़ा जनता हिन्दी को अपनी मातृ भाषा, क्षेत्रीय भाषा तथा धार्मिक भाषा मानती है हमारी माताएं-बहनें सदा से हिन्दी पढ़ती और लिखती आई हैं। हमने गुरुमुखी लिपि में पंजाबी को कभी अपनी मातृ भाषा या धार्मिक भाषा नहीं माना। हमारे सभी धार्मिक ग्रंथ हिंदी में हैं। कथा-वार्ता हिंदी में होती है। पंजाब विश्वविद्यालय में अब भी जितने छात्र हिंदी परीक्षाओं में बैठते है उनका पांचवा भाग भी पंजाबी की परीक्षा में नहीं बैठते। अवधी, व्रज, डिंगल और जौनपुरी की भांति पंजाबी भी हिंदी की ही एक शाखा है। इस बात को पञ्जाब सरकार का सरकारी पत्र 'जागृति' भी मानता है। क्या कभी किसी ने व्रज या अवधी भाषा का उत्तर प्रदेश की साहित्यिक या अदालती भाषा बनाने का दुराग्रह किया ? फिर पंजाबी को पंजाब की अदालती भाषा बनाने पर किस उद्देश्य से हठ किया जा रहा है ? हिमाचल प्रदेश और बिहार में अदालत की भाषा और शिक्षा का माध्यम हिंदी है। मैं पूछता हूँ, क्या हिमाचल में वही भाषा बोली जाती है जो पटना में बोली जाती है ? काश्मीर में भी उर्दू नहीं बोली जाती। वहां अदालत की भाषा उर्दू क्यों रखी गई है ? संस्कृत भी १४ भाषाओं में से एक मानी गई है। बताया जाय कि भारत के किस भाग में शिक्षा का माध्यम और अदालत की भाषा संस्कृत है।

इस आन्दोलन के विरोधी तनिक सोचें कि यदि पंजाबी हिन्दुओं की मातृ भाषा है तो वे इतने मूढ़ और अदूरदर्शी क्यों हैं जो इसे अपनी मातृ भाषा मानने में इन्कार करते हैं ? सिखों को ही पंजाब की बोली की रक्षा की इतनी चिन्ता क्यों है ? बंगाल में यदि बंगाली है तो इसका कारण यह है कि वहां के सौ प्रति सैकड़ा अधिवासी बंगाली के पक्ष में है। पर यह बात पंजाब में नहीं। यहां सिख राजा रणजीत सिंह के राजत्वकाल में भी पंजाबी राजभाषा कभी नहीं बनी। उनके राजत्वकाल में भी सिक्खों पर हिन्दी तो लिखी रहती थी, गुरुमुखी नहीं।

जो लोग गुरुमुखी नहीं जानते वे नहीं जानते कि गुरुमुखी और हिन्दी अक्षर एक साथ पढ़ने से बच्चे के विकास में कितनी बाधा आती है। प, भ,

म, स, घ, ध, इत्यादि अक्षर ऐसे हैं जिनका रूप दोनों लिपियों में है, परन्तु उनकी ध्वनि या उच्चारण एक में कुछ है तो दूसरी में कुछ और। हिन्दी में 'परम' लिखा हो तो गुरुमुखी और हिन्दी दोनो पढ़ने वाला बालक दुविधा में पड़ जाता है कि इसे 'परम' पढ़ें या 'धरम'। उर्दू और अंग्रेजी लिपियों की दशा में हिन्दी के साथ इस प्रकार की कोई गड़बड़ नहीं होती। "सिख रिलीजन" नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक श्री मकालिफ ने तो इस गड़बड़ को देख कर यहां तक लिख दिया है कि कोई व्यक्ति संस्कृत और हिन्दी में कितना ही निपुण क्यों न हो, एक बार गुरुमुखी का अभ्यस्त हो जाने पर वह नागरी में लिखे ग्रन्थ पड़ना बिल्कुल छोड़ देगा। (देखो, "सिख रिलीजन" दूसरा भाग पृष्ठ ५६-५७) इसके अतिरिक्त बच्चे को एक बड़ी कठिनाई यह है कि गुरुमुखी अध्यापक के पास यदि वह 'कृपा स्पष्ट, मनुष्य, सभ्यता' कहेगा तो थप्पड़ खायेगा और यदि हिन्दी अध्यापक की घण्टी में इनको 'किरपा, सपशट, मनुख, सभयता, कहेगा तो थप्पड़ खायगा।

हिन्दी-प्रेमी पंजाबियों को डराया जा रहा है कि यदि तुम पंजाबी नहीं पढ़ोगे और हिन्दी पर बल दोगे तो मद्रास के तमिल और बंगाल के बंगाली हिंदी से विद्रोह कर देंगे। मेरा उत्तर यह है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार आदि कई राज्यों के लोग अब भी आरम्भ से हिन्दी पढ़ते हैं। उनको भी आप तमिल आदि लोगों के इन हिन्दी के विरुद्ध विद्रोह का भय दिखा कर हिन्दी छोड़ने पर क्यों विवश नही करते ? जिस प्रकार पंजाब में सिखों की भाषा पढ़ने पर लोगों को बाध्य किया जा रहा है, उस तरह किसी भी राज्य में हिन्दी वहां के आदि वासियों पर बलात ठूंसी नहीं जा रही। हिन्दी को यदि राष्ट्रभाषा बनाया गया है तो पंजाबी हिन्दुओं पर कोई उपकार नहीं किया गया है। हिन्दी के अपने गुणों और प्रसार के कारण ही उसे राष्ट्रभाषा का पद देना पड़ा है। बताइए तो सही और कौन सी ऐसी भाषा है जो भारत की राष्ट्र-भाषा बनने की योग्यता रखती है ? चाहिए तो यह था कि जो लोग हिन्दी का विरोध करते हैं उनको दबाया और जो उसका प्रसार चाहते हैं उनको प्रोत्साहित किया जाय, परन्तु किया इसके विपरीत जा रहा है। सरकार न्याय और सत्य की रक्षा में असमर्थ है। तभी तो वह पंजाब के सिख कांग्रेसियों, विधान-सभाइयों, मंत्रियों, और लोक-सभा के सिख उपाध्यक्ष को सिख आन्दोलन में भाग लेने, लोगों को सिख बनाने के लिए 'अमृत-प्रचार, आन्दोलन चलाने और हिन्दुओं को भयभीत करने के लिए 'धोती—, टोपी यमुना पार' जैसे उत्तेजक नारे लगाने से रोकने का साहस नहीं करती।

२—दूसरी आपत्ति का उत्तर यह है कि जिस व्यक्ति को पांडूरोग हो जाता है उसे प्रत्येक वस्तु पीली दीखती है। पंजाब का सत्ताधारी दल क्यों कि उचित और अनुचित सब रीतियों से अपनी सत्ता को बनाए रखना चाहता है, इसलिए उसे आर्य समाज का हिन्दी रक्षा आन्दोलन राजनीतिक और साम्प्रदायिक ही लगता है। उनसे कोई पूछे कि जो वीतराग संसार-त्यागी बुद्ध सन्यासी अपने प्राणों की आहुति देने को उद्यत हुए हैं क्या वे राजसत्ता हाथियाने के लिए इस आन्दोलन में कूदे हैं ? कांग्रेस को तो आज हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का विचार आया है, परन्तु आज नव्वे वर्ष पूर्व आर्य समाज के पूज्य प्रवर्तक, त्रिकालदर्शी महर्षि दयानन्द ने, काठियावाड़ गुजरात में जन्म लेने और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी हिन्दी को अपनाया और अपने अनुयायियों को उसे अपनाने का उपदेश दिया था।

३—कहने को हिन्दी राष्ट्रभाषा है, परन्तु पंजाब में वह सिख सत्ताधारियों की बांदी है।

पंजाब में आरम्भ में सब बच्चों को गुरुमुखी पढ़ाने की व्यवस्था है। चौथी या छठी कक्षा में जाकर ही उन्हें हिन्दी अक्षर सिखाने का आदेश है। जब तक किसी स्कूल में चालीस छात्र हिन्दी पढ़ने के लिये आवेदनपत्र देने वाले नहीं, ३९ छात्रों के लिए हिन्दी—शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया जाता।

देहातों में तो सारे स्कूल में ही कठिनता से ४० बच्चे होते हैं। इस लिए अधिकांश बच्चे हिन्दी पढ़े बिना ही अपनी शिक्षा समाप्त कर देते हैं। वे हिन्दी में लिखी अपनी धर्म पुस्तकें नहीं पढ़ सकते। फिर जिला स्तर तक सारी कार्यवाही गुरुमुखी में कर दी गई है। ऐसी दशा में साधारण मनुष्य हिन्दी किस लिए पढ़ेगा ? राष्ट्रभाषा के रास्ते में इस प्रकार की रुकावट डाल कर भी कहा जा रहा है कि इसकी गति अबाध है।

अंग्रेजों ने जब पहले-पहल सिखों को हरा कर पंजाब पर अधिकार किया तो सिखों को जनता की दृष्टि में गिराने के लिए ट्रम्प नामक एक विद्वान से सिखों के धर्म-ग्रन्थ का अनुवाद कराया। उस में ट्रम्प महाशय ने सिख गुरुओं की अपनी 'साखियों' से ही उन गुरुओं के चरित्र को बड़ा गिरा हुआ और उनके धर्म को बेसिर-पैर का सिद्ध किया है। इसके बाद जब सन् १९०९ में अंग्रेजों को हिन्दुओं को कमजोर करने के लिए सिखों को उनसे अलग करने की अवश्यकता अनुभव हुई तो उन्होंने मुखालिफ नाम के एक दूसरे विद्वान से उसी 'ग्रन्थ' का अनुवाद कराया, उस में मुखालिफ ने एड़ी चोटी का जोर लगा कर सिखों को हिन्दुओं से एक बिल्कुल अलग धर्म वाला सिद्ध करने का यत्न किया है उसने लिखा है कि हिन्दू धर्म रूपी अजगर ने अपेक्षाकृत शिशु सिख धर्म को अपनी लपेट में ले लिया है। यदि अंग्रेजी सरकार सिख धर्म की रक्षा नहीं करेगी तो यह अजगर इसे निगल जायगा। (देखो मुखालिफ कृत "सिख रिलीजन", भूमिका, पृष्ठ २५)। तब अंग्रेजों ने सिखों को नौकरियों में कई सुभीते दिए, जिससे बहुत से लोग सिख बन गये। इस लोकराज में क्योंकि किसी सम्प्रदाय को विशेषाधिकार नहीं मिल सकते, इसलिए सिख पंजाबी भाषा, सिख सूबा, सीमावर्ती प्रान्त इत्यादि नाना प्रकार के बहानों से उन्हीं विशेष सुविधाओं को अपने लिए सुरक्षित करना चाहते हैं।

४ः—सीमावर्ती राज्य में शांति रखने का कोई अच्छा उपाय नहीं कि न्यायालय और सत्यासत्य का विचार छोड़ कर जनता की भावनाओं को बलपूर्वक कुचल डाला जाय। न्याय और सत्य की प्रतिष्ठा से ही सच्ची और स्थायी शांति हो सकती है।

स्मरण रहे कि न कोई जाति कायर है और न ही कोई जाति वीर। परिस्थिति ही उसको ऐसा बना देती है। यदि भारत सरकार को सिखों का डर है तो वह डरती फिरे। हिन्दू सिखों से भयभीत नहीं। वे सिखों से स्वयं निपट सकते हैं।

आर्य समाज के इस आन्दोलन को चलाने वाले कोई अपढ़ किसान या मजदूर नहीं। इसके संचालक विद्याबुद्धि, देश-प्रेम और सत्य-निष्ठा में भारत सरकार के बड़े से बड़े अधिकारी से कम नहीं। सीमा पुनर्गठन आयोग के निष्पक्ष और उच्च कोटि के विद्वान् आयुक्तों का प्रतिवेदन भी आर्य समाज की मांगों का समर्थन करता था। परन्तु सरकार ने उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। इसी से वह उलझन में फंस गई है।

(शेष १२ वें पृष्ठ का)

घटीं यहां सब के लिए तो स्थान नहीं परन्तु ज्योतिष सम्बन्धी एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। एक दिन अध्ययन के पश्चात् स्वामी जी अपने सहपाठियों के साथ वापस लौट रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक बहुत बड़ा पोस्टर लगा देखा, 'ज्योतिष का चमत्कार।' ये पोस्टर किसी बहुत बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी ने लगवाये थे जिस का नाम मुझे स्मरण नहीं रहा। स्वामी जी और उनके साथियों ने उस पोस्टर को पढ़ा। स्वामी जी का फलित ज्योतिष में विश्वास उठ ही चुका था उन्हें पता नहीं क्या सूझा, उस पोस्टर पर लिख दिया आज दोपहर बाद ज्योतिषी जी को जैल होगी। और सचमुच माध्याह्नोपरान्त ज्योतिषी जी जैल की तानें गिन रहे थे। जब स्वामी जी को इस घटना का पता लगा तो स्वामी जी उनसे मिलने गये। वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने उससे पूछा, "ज्योतिषी जी। आज अपना भविष्य देखा था या नहीं।" ज्योतिषी जी बहुत लज्जित हुए यह घटना बिद्युत की भांति सारे नगर में फैल गई। गुरु वर भी बहुत प्रभावित हुए और स्वामी जी को अधिक मनोयोग से पढ़ाने लगे। क्रमशः

सत्य-निष्ठा

[लेखक—श्री शिव प्रसाद जी सिद्धान्त शास्त्री]

संसार के सब धर्म सत्य की महत्ता को स्वीकार करते हैं। वेदों तथा शास्त्रों में सत्य की अमित महिमा वर्णन की गई है। ईश्वर का एक नाम सत्य भी है। ब्रह्म कहाँ है ? इसका उत्तर उपनिषदों में इस प्रकार दिया गया है, 'तते सत्ये प्रतिष्ठितम्'। वृहदा० ५। १४। ५। अर्थात् वह सत्य में प्रतिष्ठित है। अतः यदि ब्रह्म की प्राप्ति अभीष्ट है तो किसी भी दशा में सत्य का त्याग न करना चाहिए, अपितु उसका पूर्णतया पालन करना चाहिए। मन में सत्य विचार रखना, जो बात जैसी हो उसे वैसा ही कहना और व्यवहार में भी सत्य का त्याग न करना सत्य का वास्तविक पालन है। परन्तु जन साधारण में यह भ्रम फैला हुआ है कि पूर्णतया सत्य का व्यवहार करने से कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। इस भ्रम का कारण यह है कि लोग असत्य के अभ्यासी बन गये हैं और जिस प्रकार के आचरण के हम अभ्यासी बन जाते हैं वह हमें स्वाभाविक प्रतीत होने लगता है। हमारे काय और व्यवहार में असत्य का समावेश इतनी सरलता से होने लगा है कि सत्य की सफलता में हमारा विश्वास नहीं रहा। जब एक व्यक्ति अपने वर्ग के अन्य व्यक्तियों को असत्य व्यवहार करते हुए सफलता प्राप्त करते देखता है तो उसके मन में भी उद्वेग उत्पन्न हो जाता है और देखा-देखी वह भी सत्य के मार्ग से विमुख होने लगता है। परन्तु यदि ईश्वर के न्याय में विश्वास हो तो प्रत्येक स्थिति में मनुष्य सत्य का पालन कर सकता है। उसके प्रत्येक दिन के व्यवहार से जब लोग उसकी परीक्षा कर लेते हैं तो उस पर उनका विश्वास दृढ़ हो जाता है और उसके प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है। फलतः उसके आदर और प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर वृद्धि होनी आरम्भ हो जाती है और तब सफलता उसके अति निकट आ जाती है। इसके विपरीत मिथ्याचरण से मनुष्य पतन की ओर जाने लगता है। सम्भव है कि मिथ्याचरण के द्वारा उसे आरम्भ में आर्थिक लाभ हो जावे, उसके मान में भी वृद्धि हो जावे और उसकी झूठी प्रशंसा करने वालों की भी कमी न रहे, परन्तु कालान्तर में उसका तेज क्षय को प्राप्त होने लगता है। उसका वास्तविक स्वरूप सम्मुख आने पर वह मनुष्य जनता की श्रद्धा को खो बैठता है और तब उसका जीवन सामान्य जनों ने भी अधिक गिर जाता है।

सत्यं यशः श्रीर्मयि श्री श्रयताम् स्वाहा ॥

अर्थ—मेरे भीतर सत्यनिष्ठा स्थिर रहे, मुझे कीर्ति प्राप्त हो, मुझे शोभा तथा सम्पत्ति प्राप्त हो।

यह आस्तिक पुरुष की हार्दिक प्रार्थना है। यहाँ पर सत्य का आह्वान यश और सम्पत्ति के पूर्व किया गया है। इसका आशय यह है कि मनसा वाचा कर्मणा सत्य का पालन करते हुए ही यश और लक्ष्मी की कामना करना चाहिए, यही आर्यत्व है, यही देवत्व है। 'सत्यम् वै देवाः' महात्माओं का सत्य ही धन है।

इसमें संदेह नहीं कि सत्य का पूर्णतया पालन एक कठोर धर्म है और बिना ईश्वर की सहायता के हम उसका पालन नहीं कर सकते। इसके निमित्त हमें दृढ़ व्रत लेना होता है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं
तन्मे शध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

भावार्थ—हे प्रकाश स्वरूप व्रतों के पालक परमात्मन्! मैं व्रत का पालन करूँगा। उसके पालन करने की मुझे सामर्थ्य दीजिए और मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण कीजिए। वह व्रत यह है कि मैं

अनृत अर्थात् असत्य को छोड़कर सत्य को धारण करूं ।

अब विचारणीय यह है कि मनुष्य सत्य से विमुख क्यों हो जाता है और असत्य की ओर क्यों जाने लगता है । इसका समाधान उपनिषद् में निम्न लिखित शब्दों में किया गया है :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय् दृष्टये ॥

भावार्थ—सत्य का मुख सुवर्ण के पात्र से ढका हुआ है । हे पोषक प्रभो । सत्य धर्म दिखाई देने के लिए इस आवरण को हटा दें ।

सुवर्णमय पात्र से अभिप्राय उन चमक दमक वाली वस्तुओं से है जो मनुष्य को प्रलोभन में डालकर उसे सत्य मार्ग से विचलित कर देती है । लोभ ही मनुष्य को सत्य मार्ग से हटा कर असत्य मार्ग की ओर ले जाता है । यही मनुष्य का घोर शत्रु है । मनुष्य चोरी करता है, दूसरे को धोखा देता है, न्यायालय में झूठी साक्ष्य देता है किस लिए, धन के लालच से । राजनीति में नेतागण अपने असत्य सिद्धान्त को मनाने के लिए अथक परिश्रम करते हैं किस लिए ? अधिकार लिप्सा के कारण । यदि हृदय में ईश्वर पर विश्वास हो तो हम ऐसे निन्दनीय कार्यों से अवश्य ही बचे रहें । इसीलिए वेदों में शिक्षा दी गयी है :

मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

किसी के धन का लालच न करो ।

जो कुछ ऊपर कहा गया है वह पारमार्थिक दृष्टि से कहा गया है । परन्तु लोक में भी जो मान्यता समाज में सत्यानुगामी को प्राप्त होती है वह अन्यों को नहीं हो सकती, किन्तु अब आवश्यकता है पूर्ण सत्य-निष्ठा की । जो सत्य के व्रत का पूर्णतया पालन करते हैं, वे संसार में यश लाभ करते हुए अपने आदर्श के द्वारा अन्यों के भी पथ-प्रदर्शक बन जाते हैं । महात्मा गाँधी को जो गौरव तथा सम्मान सत्य के पालन से प्राप्त हुआ, वह क्या उनको धन के संचय अथवा उच्च से उच्च उपाधियों से प्राप्त हो सकता था ? कदापि नहीं ।

खेद की बात है कि राष्ट्रोन्नति की पुकार तो चारों ओर हो रही है परन्तु सत्य के प्रसार की ओर, जो सदाचार का मुख्य अंग है, समुचित ध्यान नहीं दिया जाता । इस विषय को महत्व देना राष्ट्र के कर्णधारों का प्रमुख कर्त्तव्य है । साथ ही साहित्य-सेवियों का भी यह ध्येय होना चाहिये कि सत्य-प्रसारक साहित्य जन-जन के करों में पहुंचे ।

बाल शिक्षा

(ले० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी)

मा स्रेधत । (ऋ० ७ । ३२ । ६)

(स्रेधत) हिंसा (मा) मत करो ।

ऋषि सन्तानो !

मन वचन तथा कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट देने का नाम हिंसा है । वेद की यह सूक्ति आदेश दे रही है कि हिंसा मत करो । अतः मन वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट मत दो । किसी भी प्राणी के प्रति द्रोह—वैर की भावना मत रक्खो ।

अहिंसा का पालन उसी समय हो सकता है जब मनुष्य के हृदय में प्रेम का सागर ठाठें मार रहा हो । जिन का हृदय कठोर है, वे अहिंसा का पालन नहीं कर सकते । अतः अहिंसा का पालन करने के लिये अपने हृदय में प्रेम उत्पन्न करो । मधुर व्यवहार करो तथा किसी को कष्ट मत दो ।

परन्तु अहिंसा का यह अर्थ कदापि नहीं कि कायर दुर्बल की भान्ति अत्याचार सहते जाओ । देश, धर्म और जाति पर आक्रमण हो रहा हो और शस्त्र ही न उठाओ । अबलाओं पर अत्याचार हो रहा हो, मातृशक्ति को अपमानित किया जा रहा हो तथा धन सम्पति को लूटा जा रहा हो और आप देखते रहें । आतताई को तो मार देना ही पुण्य है मनु जी महाराज ने तो स्पष्ट आज्ञा दी है कि आतताई चाहे बालक, स्त्री, पुरुष, वेदज्ञ कोई भी क्यों न हो उसे बिना विचारे मार देना चाहिये । एक आतताई के मारने से पुण्य अधिक होगा इसी लिये कहा है, "वैदिकि हिंसा-हिंसाऽन भवति ।" वेद की हिंसा हिंसा नहीं है । वेद सिद्धान्त रूप से अहिंसा का पालन सिखाते हुए भी दुष्टों के मारने का आदेश देता है ।

हिंसक को शान्ति प्राप्त नहीं होती । सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिये हमें अहिंसा को जीवन में लाना चाहिये ।

जीवन वृत

श्री स्वामी वेदानन्द जी

[लेखक—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक]

ओ३म् । स जायमानः परमेव्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना
प्रद्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥
(ऋ० १ । १४३ । २)

इस संसार में मरने के लिये तो सभी उत्पन्न होते हैं ; परन्तु धन्य हैं वे लोग जो अपने जीवन के कार्यों से किसी देश के इतिहास में कुछ भाग लेते हैं, तथा अपने कर्म, पुरुषार्थ और चरित्र द्वारा भावी सन्तति के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण छोड़ जाते हैं। धन्य हैं वे लोग जो किसी देश की बुझती हुई ज्ञान ज्योति को प्रदीप्त करने के लिये प्रयत्न और पुरुषार्थ करते हैं तथा अपना बलिदान करने से भी नहीं हिचकते। धन्य हैं वे प्रभु के प्यारे जो अपनी बुद्धि और मस्तिष्क से अपनी विद्वत्ता और कौशल से सृष्टि में उथल पुथल मचा देते हैं एवं धन्य भाग्य हैं वे मनुष्य जो अपने प्राचीन ऋषि और महर्षियों के मध्यम पड़ते हुए कला और कौशल को पुनः प्रकट करने के लिये संसार का कल्याण और धर्म का उद्धार करने के लिए अपने जीवन से तनिक भी मोह नहीं करते। परमहंस परिव्राजकाचार्य, महान् विद्वान्, विद्या के अगाध समुद्र, दर्शनों के मर्मज्ञ, इतिहास और राजनीति के विशेषज्ञ, अनेक देशी और विदेशी भाषाओं के ज्ञाता श्री स्वामी वेदानन्द (दयानन्द तीर्थ) का नाम भी ऐसे ही महापुरुषों और कर्मयोगियों की गणना में आता है, जिनकी विद्वत्ता, ज्ञान, तेज, तप, बलिदान, ईश्वर परायणता, कर्मयोगिता और शुभ कर्म, मनुष्य समाज के लिये अनुकरणीय उदाहरण है, और संसार रूपी समुद्र में भूले भटके मल्लाहों को प्रकाशस्तम्भ (light house) का काम देते हैं।

जन्म तथा बाल्यकाल

स्वामी वेदानन्द जी महाराज एक आदर्श एवं उच्च कोटि के विरक्त सन्यासी थे। उत्तम कोटि के सन्यासी अपने परिवार परिजन का परिचय देने में हिचकिचाया करते हैं क्योंकि वह तो समस्त संसार को ही अपना परिवार मानते हैं, अतः अपने छोटे से परिवार का परिचय देने का अवसर ही नहीं आने देते। स्वामी जी महाराज भी इस सन्यासी सुलभ मर्यादा का पालन करते हुए अपने परिवार जनों का परिचय नहीं देते थे। परिवार जनो के परिचय की तो बात ही क्या वे तो अपनी आयु के सम्बन्ध में भी मौन ही रहा करते थे। यदि कभी कोई उनसे उनकी आयु के सम्बन्ध में पूछता तो स्वामी जी महाराज कहते, "माता पिता ने टेवा हमारे हाथ में नहीं दिया।" इस प्रकार स्वामी जी अपना पूर्व परिचय देने का निषेध करते थे उनके शिष्यों और भक्तों की उनका पूर्व परिचय जानने की इच्छा उतनी ही बलवती होती जाती थी। अनेक सज्जनों, मित्रों तथा भक्तों के बार-बार प्रार्थना, अनुनय विनय और आग्रह पर स्वामी जी महाराज ने स्वलिखित "जीवन की भूलें" नामक स्वजीवनी में अपने परिवार का कुछ परिचय अवश्य दिया है, परन्तु अपनी जन्म तिथि तथा पूर्व नाम आदि के सम्बन्ध में वहाँ भी मौन ही रहे हैं।

स्वामी जी के शब्दों में स्वामी जी का "जन्म भारत वर्ष की पुण्यतर सप्तमोक्षदा पुरियों में भी पुण्यतम...... उज्जयनी नगरी में हुआ।

स्वामी जी महाराज अपने जन्म ग्रहण को एक बड़ी भारी भूल मानते थे। स्वामी जी किस तिथि और किस सम्वत में उत्पन्न हुए इस विषय में स्वामी जी लिखिते हैं, "इस भयंकर भूल की तिथि, वार आदि के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ कह सकना तनिक कठिन है अतः इस विषय में मौन रहना ही भला है।"

स्वामी जी के पिता का नाम कृष्ण मोहन ज्येष्ठानन्द चतुर्वेदी था। आप लाखों वैष्णवों के कुल गुरु परम वैष्णव थे। आप सारस्वत ब्राह्मण और श्री कृष्ण के उपासक थे। वे बहुत बड़ी भूसम्पति तथा महान् धनैश्वर्य के स्वामी थे। इसका पता स्वामी जी के निम्नलिखित शब्दों से भली प्रकार हो जाता है, "मैं स्वर्ण और चान्दी के पात्रों में दूध पीता उत्पन्न हुआ। सांसारिक सुख संविधा कही जाने वाली किसी भी वस्तु की उस वंश में अनुपपत्ति न थी।"

कृष्ण मोहन जी संध्योपासन होम, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व यज्ञ के साथ गीता का पाठ नित्य नियम पूर्वक किया करते थे। इसमें कभी अनध्याय नहीं होने देते थे आप का स्वभाव बहुत कोमल और विनम्र था। स्वामी जी ने अपने पिता जी के सम्बन्ध में लिखा है, "मेरे पिता विद्या सम्पन्न प्रभूत धन विभूति के स्वामी होकर अत्यन्त शान्त स्वभाव के थे उन में क्रोध प्रायः नहीं था वे धैर्य से बात सुनते और धैर्य से उत्तर देते। कोई उनकी बात को बीच में टोक दे तो हंस कर कहते अच्छा भाई तुम सुनाओ। सम्भव इसी गुण के कारण वे अशत्रु एवं अजात शत्रु थे।"

वेदानन्द जी के अतिरिक्त कृष्णमोहन ज्येष्ठानन्द जी के और भी सन्ताने थी परन्तु कितनी थी इसका भी कोई उल्लेख स्वामी जी ने नहीं किया है। स्वामी जी अपने भाईयों में सबसे छोटे थे।

स्वामी जी का जन्म नाम क्या था, इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ कह सकना अत्यन्त कठिन है क्योंकि कोई उनका नाम यशवन्त राय बताता है तो कोई धर्मदत्त और कोई मूलचन्द। इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक जानकारी तो उसी समय दी जा सकेगी जब स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में विशेष अनुसन्धान और गवेषणा की जायेगी। वेदानन्द जी युवावस्था में ही सन्यासी हो गये थे, अतः संसार के समक्ष वे इसी नाम से आये हैं।

तीन वर्षों तक अन्धा रहना

अपने आलोक से गृह को आलोकित करते हुए हमारे चरित नायक द्वितीया के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। जब आप का दूसरा जन्मदिन आया तो उस दिन घर में विशेष उत्सव का आयोजन किया गया। अनेक बन्धु बान्धव गृह की शोभा बढ़ा रहे थे। स्वामी जी के हाथों से ब्राह्मणों एवं दीन जनों को दान दिलाया जा रहा था। एक ओर स्वस्तिवाचन और शान्ति प्रकरण से यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा था। यज्ञ की समाप्ति पर कुल पुरोहित एवं अन्य अनेक ब्राह्मणों ने स्वामी जी के मस्तिष्क पर चन्दन और अक्षत आदि लगा कर आशीर्वाद दिये। उसके पश्चात आमंत्रित बन्धु बान्धवों ने स्वामी जी को अनेक उपहार भेंट किये।

दिन भर की चहल-पहल आनन्द और उत्सव के पश्चात् जब स्वामी जी प्रातः काल उठे तो उनके शरीर के समस्त अंग प्रत्यंग ठीक थे परन्तु स्वामी जी की आँखों में प्रकाश न था। यह एक ऐसी आश्चर्यजनक और अद्भुत घटना थी मानो चोर किसी घर में घुसे हों और किसी भी वस्तु को हाथ न लगा कर दो बहुमूल्य हीरों को ले गये हों।

माता पिता को स्वामी जी की इस दशा से बहुत दुःख हुआ। कदाचित् नेत्र मनुष्य शरीर में सब से श्रेष्ठ तथा कोमल अंग है। आंखों की उपयोगिता और महत्व को चक्षुहीन अन्धा ही जान सकता है। "नेत्र हैं तो जहान है नहीं तो संसार श्मशान है।" आंखों के इस महत्व को सम्मुख कर स्वामी जी के पिता ने जिन का वैद्यक में अच्छा प्रवेश तथा पहले स्वयं चिकित्सा आरम्भ की, फिर स्वामी जी के नाना जो एक सिद्धहस्त वैद्य थे उनसे चिकित्सा कराई परन्तु जब उनके द्वारा भी आरोग्य प्राप्त न हुआ

तो भारत के प्रसिद्ध चिकित्सकों, वैद्यों और डाक्टरों से भी चिकित्सा कराई। जिसने जितना धन मांगा उन्होंने मुक्तहस्त से दिया। तीन वर्ष तक निरंतर उपचार कराते रहे परंतु तनिक भी लाभ नहीं हुआ।

माता पिता की चिंता बढ़ती जा रही थी। वे सोचा करते थे कि नयन विहीन बालक संसार में अपने दिन किस प्रकार व्यतीत करेगा कि एक दिन उनके एक कृषक ने आ कर कहा, "महाराज! यदि आज्ञा दें तो मैं भी इन की चिकित्सा कर देखूं। स्वामी जो के चाचा जी की इच्छा तो नहीं थी परन्तु पिता जी ने उसे आज्ञा दे दी। कृषक ने जंगल से एक औषध लाकर उसका रस स्वामी जी की आंखों में टपकाया तथा मलाई रखवा कर ऊपर से पट्टी बंधवा दी। दूसरे दिन पट्टी खोली गई तो तीन वर्ष के पश्चात् आज स्वामी जी की आंखों में प्रकाश था। कृषक का आग्रह था कि यह चिकित्सा ४० दिन तक चलनी चाहिए परन्तु स्वामी जी ने इस चिकित्सा को ८-१० दिन से अधिक न चलने दिया। इस चिकित्सा के लिए कृषक को इतना धन दिया गया कि उसकी दरिद्रता का अन्त हो गया।

प्रत्येक पिताकी यह भव्य भावना होती है कि उसका पुत्र उसके अनुकूल आचरण वाला बने। श्री कृष्ण मोहन जी भी अपने पुत्र को दृढ़ एवं उदार वैष्णव बनाना चाहते थे। अतः जब स्वामी जी कुछ बड़े हुए तो उन्हें विष्णु की स्तुतियां, कृष्ण स्तोत्र, सूर दास, तुकाराम, और नरसी के भजन याद कराये गये। यह सब कुछ उसी अवस्था में हुआ जब स्वामी जी नयन विहीन थे। इससे स्वामी जी के जीवन पर आस्तिकता की गहरी छाप पड़ी जो आगे चल कर उनके लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

"होन हार वीरवान के होत चीकने पात" यह उक्ति हमारे चरित्र नायक के ऊपर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। बचपन ही से आपके उज्जवल भविष्य के चिन्ह दृष्टि गोचर हो रहे थे। अभी दूध के दांत थे कि आपके मस्तिष्क से महान् व्यक्तित्व का प्रकाश झलकता था। इसका प्रमाण इस प्रकार मिलता है कि जब आप की आयु केवल पांच वर्ष की थी तो आपके पिता जी के परिचित एक ज्योतिषी वहां आये। पिता जी ने स्वामी जी के भविष्य के सम्बन्ध में उस से कुछ प्रश्न पूछे। उसने बहुत सी बातें बताई परन्तु एक बात तो ऐसी बताई जिससे पिता जी चिन्ता सागर में डूब गये। ज्योतिषी जी ने बताया कि स्वामी जी के दो विवाह होंगे। स्वामी जी के परिवार में बहु विवाह को बहुत बुरा माना जाता था अतः स्वामी जी के पिता जी ने पुनः पूछा कि, "एक पत्नी के मरने पर दूसरा विवाह होगा या जीवित रहते हुये ही। ज्योतिषी ने कहा, "पहली पत्नी के जीवित रहते हुये ही दूसरा विवाह होगा।" यह भविष्य वाणी सुन कर पिता ने अपना हाथ सिर पर दे मारा। जब स्वामी जी ने यह दृश्य देखा तो यद्यपि वे विवाह के स्वरूप को नहीं जानते थे फिर भी उन्होंने मन ही मन भीष्म प्रतिज्ञा की चाहे कुछ भी हो जिस विवाह के कारण पिता जी को इतना कष्ट होता है, मैं उस विवाह को कदापि न करूंगा। प्रभु ने भी उन्हें उस प्रतिज्ञा पालन में सहायता दी। माता को पुत्र पर विशेष स्नेह होता है। यदि स्वामी जी के ब्रह्मचर्य में कोई बाधा हो सकती थी तो वह थी माता की ममता, परन्तु जब स्वामी जी की माताजी मरण शैया पर थी तो वे स्वामी जी को एक आदेश दे गई कि आजीवन ब्रह्मचारी रहना। स्वामी जी जीवन पर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा और माता की आज्ञा का पालन करते रहे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर व्यतीत किया।

एक बार स्वामी जी के पिता जी ने अपने गृह पर "सत्य नारायण" की कथा कराई। स्वामी जी इसके यजमान बनाये गये। कथा समाप्त करने के पश्चात् पण्डित जी ने दक्षिणा मागी। स्वामी जी दक्षिणा देते न थे। अंत में बात पिता जी के पास पहुंची। पिता जी ने पूछा, "छोटे महाराज! क्या बात है, पण्डित जी को दक्षिणा क्यों नहीं देते?" स्वामी जी ने कहा, पण्डित जी ने कथा तो सुनाई ही नहीं है दक्षिणा किस बात की दूं।" जब पण्डित

जी ने कहा कि अभी सारी कथा सुना कर चुका हूँ तो स्वामी जी ने कहा; 'पण्डित जी ने कथा नहीं सुनाई उसका फल सुनाया है कि राजा ने कथा सुनी तो उस को यह लाभ हुआ, लकड़हारे ने कथा सुनी तो उस को यह लाभ हुआ, वह कथा क्या थी जिसे राजा और लकड़हारे ने सुना था इसकी पण्डित जी ने तनिक भी चर्चा नहीं की।' पिताजी स्वामी जी के इस तर्क से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामी जी से कहा अब तो तुम इन पण्डित जी को दक्षिणा दे दो। भविष्य में हमारे गृह पर कभी भी "सत्य नारायण" की कथा नहीं होगी।

शिक्षा

जब स्वामी जी ने नेत्र लाभ किया तो उनकी अवस्था पाँच वर्ष की हो चुकी थी अतः पिता जी ने उन्हें पढ़ाने का निश्चय किया। पिता जी उन्हें संस्कृत पढ़ाना चाहते थे परन्तु स्वामी जी अपने बड़े भाई की भांति आंग्ल भाषा पढ़ना चाहते थे। स्वामी जी के आग्रह पर माता जी ने आज्ञा दे दी और स्वामी जी का अंग्रेजी शिक्षण प्रारम्भ हुआ स्वामी जी सारस्वत ब्राह्मण कुलभूषण थे। आप की बुद्धि बहुत तीव्र और सूक्ष्म थी। असाधारण बुद्धि के साथ साथ निडरता और सत्य वादिता भी आपके स्वभाव में कूट कूट कर भरी हुई थी। आप की असाधारण बुद्धि और सत्य वादिता का परिचय आपके विद्यार्थी काल में ही उपलब्ध हो जाता है। जब स्वामी जी छोटे थे और छटी श्रेणी में पढ़ते थे तो इतिहास पढ़ाते हुए उनके अध्यापक ने एक सर्वथा असम्भव, मिथ्या और बुद्धि विरुद्ध कुगाथा पढ़ाई कि चन्द्र गुप्त और यमन राजा सैलूकस के घमसान युद्ध में चन्द्रगुप्त को करारी हार हुई। इस हार के परिणाम स्वरूप सैलूकस ने बखतर से यमुना तक का सारा प्रदेश चंद्रगुप्त को दे दिया और अपनी कन्या भी उसको दे दीं। स्वामी जी उठे और कहने लगे, "यह बात सर्वथा अशुद्ध है। सत्य बात तो यह हो सकती है कि उस युद्ध में सैलूकस को भारी पराजय का मुख देखना पड़ा, उसे अपने प्राण बचाने कठिन हो गये। अपने प्राणों की रक्षा के लिये उसने अपनी कन्या और राज्य भेंट किया।" अध्यापक ने कहा, "बात तो जो तुम कह रहे हो वही ठीक है परन्तु परीक्षा में ऐसा ही लिखना जैसा मैंने पढ़ाया है।" स्वामी जी उस समय आर्य समाज से परिचित नहीं थे।

जैसा पूर्व कहा जा चुका है, स्वामी जी के हृदय पर आस्तिकता, धर्म वेद और ऋषि मुनियों के प्रति श्रद्धा की गहरी छाप पड़ चुकी थी। यह ध्रुव सत्य है कि स्वामी जी पिता जी के अंग्रेजी शिक्षण के विरुद्ध होते हुए भी अंग्रेजी अध्ययन करना चाहते थे, परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि स्वामी जी संस्कृत न पढ़ना चाहते हों। स्वामी जी की वेदों को पढ़ने की भी प्रबल इच्छा थी। एक दिन स्वामी जी ने पिता जी से पूछा कि वेद कितने हैं? स्वामी जी को बतला दिया गया कि वेद चार हैं, ऋग्यजु साम और अथर्व। जब स्वामी जी ने पुनः पूछा कि वेद कितने बड़े हैं तो वहां वेद न थे परन्तु स्वामी जी को बताया गया कि "वेद इतने बड़े हैं कि ४० हाथियों पर लद कर चलते हैं" स्वामी जी घबरा गये। उनके मन में तो संस्कार था कि वेद पढ़ने चाहिये, परन्तु यह बात सुन कर वे निराश हो गये और कुछ उदास रहने लगे। एक दिन पिता जी ने पूछा, "छोटे महाराज! उदास क्यों रहते हो?" स्वामी जीने कहा, "मेरी दृढ़ इच्छा थी कि मैं वेदों को पढ़ूं परन्तु अब यह जीवन व्यर्थ ही जायगा क्यों कि इस जीवन में तो वेद पढ़े नहीं जा सकते। "पिताजी ने कहा" चिंता की कोई बात नहीं है, हम तुम्हें कर्म काण्ड उपयोगी सारे वेद पढ़ायेंगे।" परन्तु इस उत्तर से स्यामी जी की संतुष्टि नहीं हुइ।

एक दिन स्वामी जी का किसी आर्य विद्वान् से वार्तालाप हुआ उन्हों ने स्वामी जी को वैदिक धर्मी बनने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी की वह वेद सम्बन्धी जिज्ञासा दबी नहीं थी। उन्होंने कहा, "आपका धर्म ग्रन्थ तो वेद है, पहले मुझे वेदों को दिखलाओ।" उन्होंने चारों वेद स्वामी जी के समक्ष रख दिये परन्तु स्वामी जी को तो कुछ और ही बताया गया था अतः उन्हें विश्वास नहीं हुआ। स्वामी जी ने कहा, "आप इन वेदों को दो तीन दिन के लिये मुझे दे दें।" उन से वेद

लेकर स्वामी जी किसी पौराणिक विद्वान् के पास पहुंचे और उन से पूछा, "क्या वेद यही हैं ?" उन्हों ने कहा, हाँ, यही वेद हैं, इनके ऊपर स्पष्ट वेद संहिता लिखा हुआ है।" स्वामी जी ने पूछा कहीं आर्य समाजियों ने काट छांट तो नहीं कर दी।" उन्होंने कहा, "नहीं, वेद इससे अधिक नहीं है।" यह जान कर स्वामी जी को अति प्रसन्नता हुई उन्हों ने सोचा ये तो बाल्मीकीय रामायण से भी छोटे हैं, इन्हें तो मैं रगड़ डालूँगा। स्वामी जी आर्य समाजी बन गये और आर्य समाज के इस उपकार को उन्होंने जीवन भर स्मरण रक्खा।

गृह त्याग

स्वामी जी ने किस कारण तथा किन परिस्थितियों से प्रेरित होकर गृह त्याग किया यह एक रहस्य है जो स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में विशेष खोज करके ही खोला जा सकता है। हाँ, गृह त्याग किस प्रकार किया इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने एक बार लेखक से वार्तालाप करते हुए कहा था कि वे अपने गृह से दूर अन्य किसी स्थान पर पिता जी के किसी परिचित के पास रहते थे और वहीं अध्ययन करते थे। वहाँ से से प्रति मास उन के व्यय का बिल पिता जी के पास भेज दिया जाया करता था और वहाँ से उसका भुगतान हो जाया करता था। स्वामी जी ने बहुत सोच विचार के पश्चात् गृह त्याग का निश्चय किया और एक दिन वहीं से चुपचाप निकल खड़े हुए। पिता जी को गृह त्याग की बात दो वर्ष पश्चात् ज्ञात हुई। जिस समय स्वामी जी ने गृह त्याग किया था उस समय आपके पिता जी आयु ७७ वर्ष थी।

सन्यास ग्रहण

भारत वर्ष में काशी नगरी को जो गौरव और महत्व प्राप्त है कदाचित् ही किसी अन्य नगर को प्राप्त हो। आर्यों के इतिहास में यह सदा ही एक विद्या पीठ बनी रही है। वेद दर्शन, उपनिषद् व्याकरण, श्रौत और स्मार्त ग्रन्थों को रहस्यों के साथ जैसा उत्तम अध्ययन यहां कराया जाता है। उसकी तुलना का अन्य स्थान मिलना दुर्लभ है। इसीलिए भारतवर्ष के विभिन्न भागों से सहस्रों विद्यार्थी इसी स्थान पर अपनी ज्ञान पिपासा को शाँत करते हैं। हमारे चरित नायक ने भी अपने विद्याध्ययन के लिए काशी को ही चुना। स्वामी जी ने ब्रह्मचारी रह कर विद्याध्ययन में अनेकों कठिनाइयां अनुभव की अतः सोच विचार के पश्चात् स्वामी जी ने सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर विद्याध्ययन का निश्चय किया और स्वामी जयानन्द जी तीर्थ से, जो एक प्रतिष्ठित आर्य सन्यासी थे, सन्यास की दीक्षा ले ली। गुरुवर ने स्वामी जी का नाम दयानन्द तीर्थ रक्खा। परन्तु जब स्वामीजी कार्य क्षेत्र में आये तो लोगों ने कहा, "आर्य समाज में दो दयानन्द नहीं हो सकते।" स्वामी जी की वेदाध्ययन में विशेष रुचि थी अतः उन्होंने अपना नाम वेदानन्द रख लिया और इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

काशी वास और शिक्षा ग्रहण

जिन दिनों की हम चर्चा कर रहे हैं उन दिनों काशी में अपने आप को आर्य घोषित करके शिक्षा ग्रहण करना बहुत कठिन था। स्वामी जी काशी में अध्ययन करना चाहते थे और अपने आप को आर्य समाजी घोषित करते हुए। एक विचित्र घटना घटी और स्वामी जी अपने आप को आर्य समाजी घोषित करते हुए विद्याध्ययन करने में सफल हो गये। बात यह हुई कि स्वामी जी जिन गुरु के पास पढ़ना चाहते थे, एक दिन उन के यहाँ खड़े हुए थे। दैव योग से एक पादरी वहां आया और गुरु जी पर हिन्दू (आर्य) धर्म के सम्बन्ध में कुतर्क के तीर छोड़ने लगा। गुरु जी उसके प्रश्नों का उत्तर न दे सके। स्वामी जी ने आव देखा न ताव, उस पादरी से उलझ पड़े। अब क्या था पादरी को लेने के देने पड़ गये और स्वामी जी ने उसको उसके घर भगा कर ही दम लिया। इस घटना से गुरु जी बहुत प्रभावित हुए और स्वामी जी को उनके चरणों में बैठ कर विद्योपार्जन करने की अनुमति मिल गई।

स्वामी जी के अध्ययन काल में अनेक घटनायें

(शेष पृष्ठ ५ पर)

छप गया ! # छप गया !! छप गया !!!

अमर शहीद श्री पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिर

कृत

सृष्टि का इतिहास

"तवारिखे दुनिया" का हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया

सम्पादक—शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० अमरसिंह जी आर्य पथिक

योरोपियन इतिहास लेखकों और उनके शिष्य भारतीय इतिहास लेखकों ने यही प्रकट किया है कि भारतीय आर्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे। यह सर्वथा असत्य है। उनका यह भी कहना है कि आर्य लोग मध्य एशिया से आकर बसे है। यह भी ठीक नहीं। भारतीय इतिहास पर इन योरोपियन इतिहासकारों ने इस प्रकार पर्दा डाला था कि हम लोग अपने प्राचीन इतिहास को भूल बैठे थे। पं० लेखराम जी ने सतत प्रयत्न के पश्चात् इस पुस्तक को लिखा था। पुस्तक ने उनकी सारी कलाईयों को खोल कर रख दिया है। आज ही मंगा कर पढ़ें। मूल्य दो रुपये। वेदप्रकाश के ग्राहकों को १) में मिलेगी। वेदप्रकाश का वार्षिक मूल्य २) तथा १) सृष्टि का का इतिहास का कुल ३) भेजें। रजिस्ट्री से मंगाने के लिये ॥≡) अधिक भेजें। साधारण डाक में मंगाने से खो जाने का डर रहेगा। या फिर अन्य पुस्तकों के साथ मंगायें।

पुस्तक पर कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ

पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति, दिल्ली

वेद प्रकाश के विशेषांक के रूप में आर्य पथिक पं० लेखराम जी प्रणीत सृष्टि का इतिहास मिला। वेदप्रकाश के विशेषांक के रूप में प्रामाणिक पुस्तकें देने का आपका उद्योग बहुत सराहनीय है। इस पद्धति से पाठकों के हाथ में स्थाई मूल्य वाला साहित्य सुगमता से पहुंच जाता है। पं० लेखराम जी की पुस्तक बहुत परिश्रम से संग्रहीत सामग्री से भरपूर है। आर्य साहित्य के सवर्धन के लिए आपका क्रियात्मक प्रयत्न प्रशसनीय हैं।

श्री चन्द्रानन्द सरस्वती, अजमेर

भूतपूर्व श्री चान्दकरण शारदा

वेद प्रकाश का छठे वर्ष का विशेषांक जिसमें धर्मवीर अमर शहीद पं० लेखराम जी लिखित "सृष्टि का इतिहास" है प्राप्त हुआ। इसका गेटअप छपाई सफाई, बहुत सुन्दर है और आकर्षक है। इसके छापने पर आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। तथा प्रत्येक भाई बहन से अपील करता हूँ कि इसे खरीद कर अवश्य पढ़ें।

श्री पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री आयुर्वेदार्य

धन्वन्तरि, दिल्ली

(पं० मुरारीलाल जी आर्योपदेशक के सुपुत्र)

पं० लेखराम जी पथिक द्वारा लिखित और पं० अमरसिंह जी आर्य पथिक द्वारा सम्पादित वेद प्रकाश का सृष्टि का इतिहास, आद्योपान्त पढ़ा। सृष्टि के इतिहास के सम्बन्ध में एशिया तथा यूरोप के प्रसिद्ध इतिहासकारों के जो अपने मत प्रदर्शित किये है वह सब भिन्न २ हैं। न इनमें सामञ्जस्य है और न एकीकरण और प्रमाण भी बहुत युक्ति संगत नहीं है किन्तु लेखराम जी पथिक ने जो 'सृष्टि का इतिहास' वैदिक साहित्य के आधार पर लिखा है वह हृदय को स्पर्श करता है प्रमाणों की अकाट्य संदेह को इस प्रकार नाश कर देती है जैसे तिमिर को भास्कर। आधुनिक इतिहासकारों को पं० लेखराम आर्य पथिक द्वारा लिखे गये इतिहास का का मनन करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ १५ पर)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली

समाचार संग्रह

—पंजाब में चल रहे हिन्दी रक्षा आन्दोलन के समझौते के सम्बन्ध में पंजाब सरकार तथा हिन्दी रक्षा आन्दोलन की उपसमिति की वार्ता भंग हो गई। समझौते की वार्ता भंग होने का कारण कांग्रेसी अकालियों हठ धर्मी ही है।

—महात्मा आनन्द स्वामी जी फिर हिन्दी रक्षा आन्दोलन के मैदान में उतरे। चण्डीगढ़ आर्य समाज की पवित्रता को भंग करने तथा वहाँ से लाउडस्पीकर धन आदि पुलिस द्वारा बलात् ले जाने पर महात्मा आनन्द भिक्षु जी ने आमरण अतशन आरम्भ किया। पूज्य महात्मा जी को सरकार ने आत्महत्या के आरोप में गिरफ्तार कर कर अम्बाला जेल में डाल दिया। महात्मा आनन्द भिक्षु जी आर्य समाज चण्डीगढ़ में अनशन कर रहे थे। अब वे जेल में कर रहे हैं। समाचार है कि महात्मा आनन्द स्वामी उसी रिक्त स्थान पर आर्य समांज चण्डीगढ़ में आमरण अनशन करने वाले थे कि सरकार ने उन्हें वन्दी बना लिया।

—रोहतक केन्द्र के लिए मऊ अकबर पुर के निवासियों ने जन सहायता अधिक संख्या में दी थी इसी दृष्टिकोण से पंजाब सरकार ने वहाँ वह अत्याचार मचाया जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता। घरों से आदमियों को निकाल-निकाल कर, बच्चों तथा महिलाओं तक को पीटा गया। यही प्रजातन्त्र है जहाँ जनता का इस प्रकार मुँह बन्द किया जाता है।

—श्री सेवाराम जी सारगसर निवासी ने आय प्रतिनिधि सभा राजस्थान को लिखा है कि गाँव भर में वे अकेले आर्य समाजी है। अस्वस्थ रहने के कारण वे जन सहायता नहीं कर सकेंगे। उनका वेतन ३०) प्रतिमास है तथा उन पर ५ सदस्यों के परिवार का बोझ है फिर भी वे १०) प्रतिमास जब तब सत्याग्रह चलेगा इस आन्दोलन के लिए देंगे। तथा आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रह के लिए भी परिवार के सदस्यों को ईश्वर के सहारे छोड़ कर घर से निकल पड़ेंगे।

—श्री कैरों को उच्चसत्ता ने परामर्श दिया है कि वे "साम्प्रदायिक तत्वों की एक न सुने, और राज्य की शान्ति एवं स्थिरता में विघ्न डालने का प्रयन्न करने वाले अराजकवादी तत्वों से कठोरता से निबटें।

—दिल्ली के जिलाधीश ने हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरिता' के सम्पादक श्री विश्वनाथ और उक्त पत्रिका में प्रकाशित एक आपत्तिजनक कविता 'राम का अन्तर्द्वन्द्व' के लेखक श्री अरविन्द कुमार के विरुद्ध धारा १०६ के अन्तर्गत मुकदमा चलाने का आदेश दिया है।

ज्ञात रहे इससे पूर्व राज्य सरकार सरिता के इसी अंक को जब्त कर चुकी है।

- हिन्दी रक्षा समिति के प्रमुख सदस्य निरोधक नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिए गये हैं। इसमें मुख्य हैं—श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती महामन्त्री पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा। प्रिंसिपल भगवानदास जी अम्बाला, डा० मंगलसेन जी रोहतक, प्रोफेसर ग्रोवर अम्बाला।

—चण्डीगढ़ और रोहतक में सत्याग्रह जोरों पर है। हजारों सत्याग्रही प्रतिदिन दोनों जगह सत्याग्रह कर रहे हैं। समाचार है कि दोनों स्थानों पर अब तक बीस हजार सत्याग्रही सत्याग्रह कर चुके हैं।

'धर्म के नाम पर' मुकदमा

(आचार्य चतुर्सेन शास्त्री की करारी हार)

अच्छे से अच्छे और गन्दे से गन्दे साहित्य के लेखक चतुरसेन शास्त्री ने लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व 'धर्म के नाम पर' पुस्तक के आठवें संस्करण के प्रकाशक तथा मेरे पर फौजदारी में झूठा मुकदमा दाखिल किया, बीसों पेशियों के बाद विद्वान् हाकिम ने अब मुकदमा खारिज कर दिया है।

अर्जी में चतुरसेन ने लिखा था कि, १६४६ में गोविन्दराम हासानन्द और श्री हरनामदास गुप्त ने मिल कर (शाजिस करके) बिना मेरी आज्ञा प्राप्त किये आठवां संस्करण प्रकाशित किया।

उत्तर में मैंने कहा आठवें संस्करण का प्रकाशक 'हिन्दी साहित्य मण्डल' देहली है तथा मुद्रक हरनामदास गुप्त है। हरनाम दास गुप्त ने कहा मैंने चतुरसेन शास्त्री की आज्ञा लेकर उसे इस संस्करण के रूप में ५०) देकर १६४६ में प्रकाशित किया। अपने सबूत में चतुरसेन ने चार गवाह पेश किये १ अपना सहोदर भाई चन्द्रसेन २ श्री उल्लास शर्मा (प्रधान कांग्रेस कमेटी जोधपुर) ३ श्री लालचन्द जी, श्री राजपाल एण्ड सन्स का कमचारी ४ श्री विजय कुमार जी (गोविन्दराम के चि० पुत्र) गवाहों की जिरह से चतुरसेन का पक्ष प्रमाणित नहीं हो सका।

मैंने अपने सबूत में दो गवाह पेश किये जिसमें १ श्री लाला चतुरसेन गुप्त शामली वाले जिन्होंने कहा कि 'धर्म के नाम पर' पुस्तक सर्व प्रथम मैंने ही चतुरसेन शास्त्री से आजसे २५ वर्ष पूर्व लिखाई के रुपये देकर लिखवाई और प्रकाशित की। इसका सर्वाधिकार मेरे पास है, किन्तु मैंने पुस्तकों का व्यवसाय छोड़ दिया, शास्त्री जी दूसरों को प्रकाशन की आज्ञा देते रहे जोकि उनकी अनधिकार चेष्टा है।

चतुरसेन शास्त्री से जिरह में हमारे वकील ने पूछा कि आपने आचार्य और शास्त्री परीक्षा कहाँ से पास की उसका प्रमाण पत्र अदालत में पेश करें, अदालत की आज्ञा होने पर भी उसने किसी पेशी में प्रमाण पत्र पेश नहीं किया।

अन्त में वकीलों की जिरह के बाद विद्वान् हाकिम ने चतुरसेन का दावा यह कह कर खारीज कर दिया कि, चतुरसेन के बयान तथा गवाहों से कोई मुकदमा नहीं बनता और मुकदमा पुस्तक प्रकाशन के ३ वर्ष की मियाद के बाहर का है, इसलिए खारिज किया जाता है।

चतुरसेन, किसी भी प्रकाशक से जिसने इनकी पुस्तकें प्रकाशित की है कोई न कोई बहाना बनाकर उस पर झूठा मुकदमा करने से नहीं चूका, शायद ही कोई प्रकाशक इसके चुंगल से छूटा हो तो छूटा हो। अतः पुस्तक प्रकाशकों को इनसे सावधान रहना चहिये।

निवेदक—गोविन्दराम हासानन्द

(शेष १३वें पृष्ठ का)

श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न, आगरा

पुस्तक अति उपयोगी और ज्ञातव्य बातों से पूर्ण है। अनुवाद भी एक विद्वान् द्वारा बड़ा सुन्दर तथा शुद्ध हुआ है। वेद प्रकाश के उपहार में एक अच्छा ग्रन्थ पाठकों को भेंट करने की प्रथा बड़ी प्रशंसनीय है। वेद प्रकाश भी अच्छा निकलता है।

आचार्य शिवपूजन सिंह कुशवाहा पथिक, कानपुर

वेद प्रकाश का "सृष्टि का इतिहास" विशेषांक प्राप्त हुआ। जिसका सम्पादन, छपाई, सफाई अत्यन्त सुन्दर, कागज बढ़िया है। पं० लेखराम जी की कृति को सुरक्षित रखने का आपका प्रयत्न अयत्न श्लाघनीय है।

हमारे अद्वितीय तीन ग्रन्थ

ब्रह्मचर्य-संदेश

[ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

नवयुवकों को 'ब्रह्मचर्य' जैसे गम्भीर विषय पर सरल, सुन्दर भाषा में जो कुछ कहा जा सकता है इस पुस्तक में कह दिया गया है। स्वर्गवासी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत-भूमि के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में 'ब्रह्मचर्य' को क्रियात्मक महत्व देने के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। ऐसे महापुरुष ने इस पुस्तक की भूमिका इसीलिए लिखी थी क्योंकि उन्होंने पुस्तक के महत्व को देख लिया था। इस पुस्तक ने हिन्दीसाहित्य में अमर स्थान बना लिया है। पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके हैं, पुस्तक की श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि इसके गुजराती में दो स्वतंत्र अनुवाद हो चुके हैं। मूल्य ४॥)

स्त्रियों की स्थिति

लेखिका - आचार्या चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०, बी० टी० (एम० पी०)

इस पुस्तक की लेखिका को, इस पुस्तक के लिखने पर हिन्दी-साहित्य-समेल्लन ने सर्वोत्तम लेखिका घोषित कर ५०० (पांच सौ) रुपये का 'सेकसरिया पुरस्कार दिया था। इस पुस्तक में स्त्रियों सम्बन्धी प्रश्नों पर बिल्कुल मौलिक ढंग से विचार किया गया है। पुस्तक की विचार-धारा में एक प्रवाह है जो साहित्यिक पुस्तकों में कम देखने में आता है। यह पुस्तक पिता अपनी पुत्री को, पति अपनी पत्नी को और भाई अपनी बहिन को भेंट दे तो इससे बढ़कर दूसरी भेंट नहीं हो सकती।

सजिल्द पुस्तक का दाम साढ़े चार रुपया।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

कुछ सम्मतियों का सार

१–**'आर्य' लिखता है**—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्य समाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायेगा।"

२–**'दैनिक-हिन्दुस्तान' लिखता है**—"हम तो यहाँ तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधा-कृष्णन से टक्कर लेती है।"

आर्य मित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन, सरस्वती, आज आदि सभी पत्रों ने इस पुस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रन्थ भी अवश्य लेना चाहिए, क्योंकि यह ग्रन्थ उपनिषद् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ संख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया।

उक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता—

विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या विहार, बलवीर एवेन्यू, देहरादून।

वेदों का महत्व (गतांग से आगे)

क्योंकि ईसाई तीन मानते हैं बाप बेटा और पवित्र आत्मा। यवन एक मानते हैं। हिन्दू तीन मानते हैं, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव। जैनी २४ मानते हैं, वरन् इससे भी अधिक। और आर्य्य एक मानते हैं। सारांश यह है कि इस बात में भिन्नता है तीसरा झगड़ा ईश्वर के स्थान का है अर्थात् ईश्वर कहां है! कोई सातवें आकाश पर मानता है अर्थात् यवन, ईसाई चौथे आकाश पर मानते हैं, जैनी मोक्ष शिला (सिद्ध शिला) पर मानते हैं, हिन्दू वैकुण्ठ में मानते हैं, कोई क्षीर सागर में मानता है, कोई गोलोक में जानता है, शैवी कैलाश पर मानते हैं सारांश यह है कि इस बात में बड़ी बड़ी भिन्नता विद्यमान हैं, चौथा झगड़ा इस बात का है कि ईश्वर कर्मों का फल किस प्रकार देता है? जैनी तो ईश्वर को फल दाता मानते ही नहीं, यवन कहते हैं कि "मुनकिरनकीर" कब्र (समाधि) पर आकर मृतक से प्रश्न करते हैं और कयामत के दिन उनका हिसाब होता है, ईसाई भी कयामत के मानने वाले हैं और हिन्दुओं का यह मत है कि यमदूत उसको यमलोक में ले जाते हैं वहां चित्रगुप्त यमराज का मीर मुंशी बहीखाता लिखता रहता है और उसके अनुसार हिसाब होकर कर्म फल दिया जाता है। तात्पर्य यह कि इस बात में और भी बहुत सी भिन्नता हैं। पांचवां झगड़ा इस बात का है कि ईश्वर ने संसार को किस वस्तु से पैदा किया? यवन कहते हैं कि अवस्तु से वस्तु को उत्पन्न किया अर्थात् 'कुन' कहते ही सब सृष्टि उत्पन्न होगई, ईसाई भी अवस्तु से वस्तु मानने वालों के साथी हैं, जैनी तो उसकी उत्पत्ति मानते ही नहीं, हिन्दुओं में भी इस बात में बड़ी भिन्नता है कोई तो अविद्या से जगत की उत्पत्ति मानता है कोई पंच भूतों से! तात्पर्य यह कि यह बात भी झगड़े में पड़ी हुई है। छटा झगड़ा इस बात का है कि जीव और ईश्वर में भेद है या नहीं? यवन तो सर्व व्यापक के मानने वाले हैं, हिन्दुओं में विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि बहुत प्रकार की भिन्नता है। सातवां झगड़ा इस बात का है कि अनादि पदार्थ कितने हैं? यवन एक, हिन्दू भिन्न ईसाई तीन, जैनी सब संसार को अनादि मानते हैं। आठवां झगड़ा वह जो इन झगड़ों की जड़ यह है कि मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? जैनी कर्म से, यवन प्रार्थना से, ईसाई कुफारा से, हिन्दू उपासना ज्ञान कर्म इत्यादि भिन्न २ नियमों से मानते हैं।

प्यारे पाठक गण! यह आठ झगड़े हैं जिसके कारण इस समय संसार में आत्मिक और शारीरिक दोनों प्रकार की लड़ाई हो रही है। अब देखना यह है कि वैदिक शिक्षा इन आठ झगड़ों को दूर कर सकती है या नहीं? मैं इस समय केवल उपनिषद का एक वाक्य जो ऋग्वेद के एक मन्त्र का स्पष्ट अनुवाद है प्रविष्ट करता हूँ।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा
यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
सुख शाश्वतन्नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

पहला प्रश्न यह था कि ईश्वर है या नहीं? दूसरा यह था कि ईश्वर एक है या अनेक! उसका उत्तर मिला कि एक है क्योंकि 'नही' का उत्तर 'है कहने से, और बहुत का उत्तर एक कहने से आ गया। अब प्रश्न उत्पन्न हुआ कि एक क्या है? और वह कहां है? उसका उत्तर मिला कि सर्वव्यापक है, क्योंकि जहां दो होंगे वहां बीच की दूरी अवश्य होगी और जहां दूरी हो वह परिमित होगा, इसलिए जो परमात्मा अनन्त है वह एक ही है और उसमें झगड़ा भी मिट गया कि वह कहां है। क्योंकि चौथे, सातवें आकाश, या वैकुण्ठ, क्षीर सागर इत्यादि में माननेसे परिमित हो जाता है। फिर प्रश्न उत्पन्न हुआ कि कहां व्यापक है, उसका उत्तर मिला कि (सर्वभूतान्तरात्मा) अर्थात् कुल जीवों और पदार्थों के भीतर विद्यमान है और इस कहने से इस

प्रश्न का उत्तर भी मिल गया कि ईश्वर कर्मों का फल किस प्रकार देते हैं अर्थात् वह प्रत्येक जीवात्मा के भीतर सब के कर्मों का साक्षी होकर देखता है और स्वयं ही उनका फल देता है। बहुत से मित्र कहेंगे कि हिन्दुओं के यमलोक का सिद्धान्त क्यों न माना जाय? किन्तु याद रहे कि एजेन्ट या पैगम्बर या दूत का मानना परिमित होने के रोग का निदान है चूंकि परमेश्वर को यह रोग नहीं, इसलिये उसके एजेन्ट या कारिन्दा दूत इत्यादि कोई नहीं है और न उसके दूत माने जा सकते हैं, क्योंकि जहाँ परमात्मा स्वयं विद्यमान न हो, वहां पर उसके पैगम्बर, एजेण्ट और दूत काम कर सकते हैं, इसलिए ऐसा कहने से सिवाय परमात्मा की अप्रतिष्ठा करने के और कोई लाभ नहीं और बही खाते का रखना भूल के रोग की चिकित्सा है। क्योंकि परमात्मा को भूल का रोग नहीं है, इसलिये उसके दर्बार में लिखने का कोई काम नहीं, यह केवल सांसारिक राजाओं को जो थोड़े ज्ञान और थोड़ी शक्ति वाले हैं, आवश्यकता है। कुछ मित्र यह कहेंगे कि मुनकरनकीर के-प्रश्नोत्तर को क्यों न मान लिया जाये? प्रथम तो यह वाक्य इस बात से मिथ्या है कि जब जीव शरीर से निकल जाता है तब उसको कबर में गाढ़ते हैं, उस समय जो प्रश्न कबर पर किये जावेंगे वह शरीर से होंगे न कि जीव से, दूसरे प्रश्न वह मनुष्य करता है जिसको उत्तर मिलने से पहले उसका ज्ञान नहीं होता, चूंकि ईश्वर सबको जानने वाला है इसलिये उस पर प्रश्न तथा उत्तर का अभियोग लगाना भी ठीक नहीं। तीसरे कयामत का सिद्धांत तो सर्वांश में मिथ्या है क्योंकि प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जीव मर कर कुल एक स्थान पर जाते हैं या अलग अलग स्थानों पर? यदि कहो कि एक स्थान पर, तो भलों को बुरों के साथ में बन्दीगृह में रखना ईश्वर के न्याय पर धब्बा है। यदि कहो कि नेकों को अच्छे स्थान पर भेजा जाता है और बुरों को दूसरे स्थान पर, तो बस न्याय हो चुका। कयामत की आवश्यकता ही न रही। यह सिद्धांत तो केवल मूर्ख लोगों ने संसारी बादशाहोंकेबन्दीगृहों और कारागार को देखकर घड़ लिया है, क्योंकि दुनिया में न्याय तिथि तक अपराधी बन्दीगृह में रहता है और उसके पश्चात् या तो वह छूट जाता है या कारागार में भेजा जाता है। पांचवां झगड़ा यह है कि ईश्वर ने संसार को किस वस्तु से बनाया? कुछ तो यह कहते हैं कि ईश्वर ने संसार को उत्पन्न ही नहीं किया जैसा कि जैनी और बौद्ध, परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि बदलने वाली वस्तु अनादि नहीं हो सकती और यह दुनिया बदलने वाली है इसलिए यह अनादि तो हो नहीं सकती। अब यवन कहते हैं कि असत् से सत् में आ गये। परन्तु उनका यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति या आग से सर्दी की उत्पत्ति मानना बुद्धि और ज्ञान के विरुद्ध है परन्तु हमारे यवन भाई कहते हैं कि जब ईश्वर ने 'कुन' कहा तो दुनिया उत्पन्न हो गयी। यहाँ पर सोचना चाहिये कि कुन किसको कहा। क्योंकि कुन विधि है और आज्ञा दूसरे पर होती है जब दूसरा है ही नहीं तो कुन कहना नितान्त झूठ हो गया। बहुत से हिन्दू कहते हैं कि अविद्या से जगत् बन गया। परन्तु यह भी मिथ्या है। क्योंकि अविद्या से जगत् की उत्पत्ति नहीं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि तुम्हारी अविद्या कोई वस्तु है वा नहीं? यदि कोई वस्तु है तो स्वयं उनका सिद्धांत मिथ्या होगया क्योंकि ब्रह्मसे भिन्न वस्तु उन्होंने स्वीकार कर ली। यदि कहें कि कोई वस्तु नहीं, तो अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति हो नहीं सकती, इन सारी अशुद्धियों को देख कर वेद ने उनके दूर करने के लिए उत्तर दिया कि जो एक सूक्ष्म प्रकृति से अर्थात् वस्तुओं के परमाणुओं से बहुत प्रकार की स्थूल वस्तुएँ बनाता है। छटा झगड़ा संसार में यह पड़ा हुआ है कि जीव और ब्रह्म एक हैं या अलग अलग। इसका उत्तर दिया गया कि उस आत्मा में रहने वाले का, अर्थात् जीव और ईश्वर का आधाराधेयभाव सम्बन्ध है, सम्बन्ध सदैव दो में होता है इसलिए जीव और ब्रह्म दो पदार्थ हैं। सातवां झगड़ा यह था कि पदार्थ अनादि कितने हैं? उत्तर मिला, जो उसके भीतर दीखते हैं अर्थात् देखने वाला जीव, और देखने की वस्तु प्रकृति और उसके भीतर देखने योग्य परमात्मा, यह तीनपदार्थ ही अनादि हैं। फिर प्रश्न यह था कि मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? उत्तर मिला, जो ईश्वर एक सारे जगत में व्याप्त रूप

सबकी आन्तरिक अवस्था को जानने वाला, और अपने आप कर्म का फल देने वाला, प्रकृति से जगत का उत्पादक और जीव ब्रह्म का भेद, ये तीन पदार्थ अनादि मानते हैं इन्हीं की मुक्ति हो सकती है, दूसरों की नहीं। प्यारे पाठकगण ! हमारे मित्र बहुधा कह उठेंगे कि तुम्हारी मुक्ति भी उसी तरह की है जिस तरह पर ईसाई कहते हैं कि ईसामसीह पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। मुसलमान मुहम्मद केअनुग्रह से मुक्ति मानते हैं, लेकिन उनका यह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जिस स्थान पर पुलिस अफसर मौजूद होवहां पर कोई भी चोरी नहीं, करता, जबकि उसको विश्वास हो कि मैं घूँस देकर बच नहीं सकता। इसी तरह पर जो मनुष्य ईश्वर का एक ओर सब स्थानों में और सब कर्मों का फल देने वाला मानता है, वह कहीं भी पाप नहीं कर सकता, उसे कष्ट किस तरह पर हो सकता है और जो ईश्वर को परिमित मानते हैं उनके मन में तो ईश्वर का होना न होना बराबर है और प्रकृति से जगत की उत्पत्ति मानने का तात्पर्य यह है कि जिससे ज्ञात रहे कि इस जगत में आनन्द नहीं, क्योंकि सत प्रकृति है सत्चित् जीव अर्थात् आत्मा है और सत्चित् आनन्द परमात्मा है। जब प्रकृति सत् ठहरी और जगत उसका कार्य है, तो जगत से आनन्द की इच्छा करना ठीक नहीं और तीन पदार्थों को नित्य मानने से यह लाभ है कि प्रकृति की उपासना से दुःख होता है, और परमात्मा की उपासना से सुख होता है और जीव, सुख-दुःख और बन्ध मोक्ष दोनों से भिन्न साक्षी रूप है और संसार के जितने मत हैं सब में इस बात के ज्ञान से सहस्रों त्रुटियां हो गई कि पाप कौन कराता है ? पुण्य कहां से होता है ? परन्तु उचित उत्तर नहीं था। वैदिकधर्म ने उसका उत्तर ऐसा दियाकि अब कहने का नहीं अवकाश अर्थात प्रकृति के संसर्ग से मूर्खता और पाप उत्पन्न होता है जिसका फल दुःख है और परमात्म के संसर्ग से पुण्य उत्पन्न होता है जिसका फल सुख है।

प्यारे पाठकगण ! इस मन्त्र ने जिस प्रकार मनुष्यों के झगड़ों को शान्त किया यह तो आपको ज्ञात हो गया अब प्रश्न यह है कि वेद ईश्वर की सृष्टि नियम के अनुकूल हैं या नहीं ? इसके उत्तर में हम आपके सामने यजुर्वेद का एक मन्त्र प्रविष्ट करते हैं जिससे आप ज्ञात करेंगे कि वैदिक शिक्षा किस प्रकार सृष्टिनियम के अनुकूल है ?—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत ॥
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अज़ायत ॥
यजु॰ अ॰ ३१ मं॰ १३

इस मन्त्र में परमात्मा ने मनुष्य योनि के विभाग और उनके कर्मों का प्रकार बतलाया है। इससे पिछले मन्त्र में यह प्रश्न उठाया गया है कि जिस प्रकार एक मनुष्य के शरीर में चार भाग हैं, पहला भाग सिर से गर्दन तक जो मुख कहलाताहै, दूसराभाग गर्दन से नीचे और कमर से ऊपर जो "बाहू' कहलाता है, तीसरा भाग (ऊरु) अर्थात कमर से नीचे घुटनों तक और चौथा भाग घुटनों से पावोंतक यह पाद कहलाता है। क्या इसी प्रकार मनुष्य जाति के कोई भाग हो सकते हैं ? इससे परमात्मा ने बतलाया कि जिस काम के लिये हमने मनुष्य शरीर में मुख का भाग उत्पन्न किया है, उसी काम के लिये संसार में ब्राह्मण वर्ण बनाया, और जिस काम का सम्बन्ध बाहू वाले भाग से है, वह काम हमने क्षत्रियों के भागमें रक्खा है; और जिस कामके लिये जंघा हैं, वह वैश्यों का काम है; और जो काम एक मनुष्य के शरीर में पांवों का है, वही काम मनुष्य जाति में शूद्र का है।

प्यारे पाठकगण ! आप ध्यान से सोचें कि मुख वाले भाग का क्या काम है ? इस भाग में पांचोंज्ञान इन्द्रियां विद्यमान हैं और किसी भाग में यह ज्ञान इन्द्रियां नहीं हैं, जिससे ज्ञात हुआ कि ब्राह्मणों का कर्त्तव्य पूरा ज्ञान प्राप्त करना है। दूसरे इस भाग में कर्म इन्द्रिय कौन हैं ? जीभ, इसका काम क्या है ? उपदेश करना। तीसरे यह भाग भौतिक शक्ति में

नीचे के सब भागों से निर्बल है। यदि आंख में थोड़ी सी मिट्टी पड़ जावे तो तुरन्त पीड़ा होने लगेगी और काम में रुकावट होगी, जिससे यह ज्ञात होता है कि यह भाग थोड़ी सी अविद्या और कुकर्मों के मैल को भी सहारने योग्य नहीं। यदि इसमें थोड़ी भी त्रुटि आजायेगी तो तुरन्त पीड़ा उत्पन्न हो जायेगी और उस भाग को जिस प्रकार से विद्या का प्रचारक समझ कर सब से ऊपर की कक्षा दी गई, इस से यह भी बतला दिया कि संसार में सब से प्रथम गणना की वस्तु जीवात्मा के लिए विद्या है। दूसरे भाग का नाम क्षत्रिय रक्खा, जिसमें बतलाया कि रक्षा का काम क्षत्रिय का है। अब आप सोचें कि यदि आंख में चोट लग आवे तो उस की चिकित्सा कौन करेगा? हाथ और पांव की रक्षा कौन करेगा? हाथ। सारांश यह है कि कुल शरीर की रक्षा हाथ से होती है। जिससे ज्ञात हुआ कि जिस तरह इस शरीर में बाहू का भाग है वैसा मनुष्य जाति में क्षत्रिय है परन्तु बाहू वाला भाग प्राकृतिक शक्ति में शरीर के सब भागों से बड़ा है जिससे बतलाया गया कि राजा को सब प्रजा से अधिक बलवान होना आवश्यक है तीसरे, यह भाग आंख कान इत्यादि की आज्ञानुसार काम करता है जिस से बतलाया गया कि क्षत्रिय को ब्राह्मण की आज्ञानुसार काम करना चाहिए या बलवान को विद्वानों की आज्ञा माननी चाहिए। तीसरा भाग वैश्य का है जो उरु कहलाता है। उसका काम परिवर्तन है और उसकी उत्तमता धन से है। जिस में बतलाया गया है कि विद्या और बल से धन का दर्जा बहुत कम है क्योंकि मूर्खों से विद्वान सहजता से धन ले सकता है और निर्बल से बली साधारणता से छीन सकता है, परंतु धनी, विद्वानसे विद्या और बलीसे बल नहीं छीन सकता। चौथा भाग घुटनों से पांवों तक है जिसे पाद कहा गया है इसे शूद्र कहते हैं। क्या कोई कह सकता है कि इस भाग का काम केवल ऊपरके भागों को उठा कर ले चलने के सिवाए कोई दूसरा हो सकता है?

प्यारे पाठकगण! वैदिक शिक्षा इतनी ईश्वरीय नियम के अनुकूल है कि इन दोनों में भेद मिल ही नहीं सकता और हम ने यह भी कहा कि यदि वेदों में पक्षपात है तो वह अवश्य मनुष्य वाक्य है। यदि पक्षपात का लेश नहीं तो अवश्य उसे ईश्वरीय पुस्तक मानना पड़ेगा। उसके प्रमाण में हम एक वेद मन्त्र प्रविष्ट करते हैं।

य: पौरुषेयेण क्रविदा समङ्क्ते-यो अश्व्येन पशुना यातुधानः । यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणिहरसापि वृश्च । ऋगवेद आ० ८ । ४ । १६

अर्थ—जो मनुष्य आदमियों के मांस से अपनी आत्मा को पालता है, या घोड़ों के मांस से पालता है या और किसी जानवर के मांस से, या गौ का दूध सारा ले लेता है बछड़ों को बिलकुल न देकर जान से मार डालता हैं राजा का धर्म है कि इन सबको प्राणों का दंड दे अर्थात इनके शिर तन से अलग करके शेष शरीर के टुकड़े २ करवा दे।

प्यारे पाठकगण! देखिये कि वेद में स्पष्ट रीति पर बतला दिया कि चाहे वह मनुष्य को मारे चाहे पशु को, दंड दोनों को तुल्य है जैसा कि मनुष्य कृत पुस्तकों में मनुष्यों का पक्षपात है कि मनुष्यों को नेक भी कष्ट देने वाला जानवर मूंजी कहलाता है और सहस्रों जानवरों को मार डालने वाला संसार में उत्तम कहलाता है, परन्तु वेद में यह बात नहीं, वरन् वेद दोनों को एक दृष्टि से देखते हैं। हमारे बहुत से मित्र कह उठेंगे कि अन्धेर होगया "जीवों को मार कर खाना और मनुष्यों को मार कर खाना बराबर पाप बतलाया। परन्तु उनको याद रखना चाहिए कि वर्तमान दशा में गवर्नमेंट का भी यही नियम है। वह कहेंगे किस प्रकार? आपको ज्ञात हो कि संसार में मनुष्यों की दो दशायें हैं। एक स्वतन्त्र, दूसरी परतन्त्र। स्वतन्त्र आदमी अपने कामों को अपनी इच्छा के अनुसार करता है और उससे लाभ या हानि उठता है, परन्तु परतन्त्र आदमी

अपनी इच्छा से कोई काम नहीं कर सकता उसको जिस काम में लगा दिया है उसको करता चला जाता है। परन्तु उसके करने से जो कुछ लाभ या हानि हो वह उसका उत्तरदाता नहीं। जैसे एक बँधुआ १० आना नित्य का काम करता है और दो आना नित्य का भोजन खाता है, शेष आठ आना नित्य का उसका अधिकार नहीं। यदि वह एक आना नित्य का काम करता है और दो आना नित्य खाता है इस दशा में भी वह हानि का उत्तरदाता नहीं। स्वतन्त्र आदमी दोनों दशाओं में उत्तरदाता है। तब बतलाइये तो सही कि यदि कोई आदमी किसी अभियुक्त को मार डाले तो हनन का अपराधी कहा जावेगा या नहीं ? मुझे जहां तक ज्ञात है अवश्य हत्या का अपराधी होगा और अभियुक्त और स्वतन्त्र के मारने वाले को दंड भी एक जैसा होगा। इसलिये इसका कारण यह है कि अपराध का न्याय तो वासना पर है। जिस मनुष्य ने स्वतन्त्र का हनन किया है उसकी वासना भी हनन की थी और जिसने अभियोगी को हनन किया है उसकी वासना भी यही थी।

प्यारे पाठकगण ! जिस प्रकार मानवी गवर्नमेन्ट मुक्त और अभियुक्त की हत्या को एकसा समझती है उसी प्रकार परमात्मा का भी नियम है, उसकी सृष्टि भी दो प्रकार के जीव हैं एक कर्म योनि अर्थात् करने वाले, दूसरी भोग योनि अर्थात् भोगने वाले। करने वाले शरीर मुक्त पुरुषों के तुल्य हैं और भोग योनि अभियुक्त के समान है। दोनों प्रकार के शरीरों को हानि पहुँचाने वाला एकसा अपराधी है। जिस तरह जो आदमी अपराध का आदि हो जाता है और उसे इस अपराध से बचाने के लिये बद्ध किया जाता है, जिन हाथों से वह दूसरों का हनन करना चाहता था या दूसरों का माल उठाता था उन हाथों में हथकड़ी डाल कर उसकी शक्ति रोक दी जाती है, जिन पांवों से वह माल लेकर भागना चाहता था उनमें भी शृंखला डाल दी जाती है। यदि बहुत बड़ा अपराधी है और उससे अपराध अधिक होगया है तो उसके शरीर को एक मकान में बन्द करके और कुछ समय तक उसकी पाप करने की आदत को कम किया जाता है, जब आदत कम हो जाती है तब वह छोड़ दिया जाता है।

हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि अभियोगी भी तो बहुधा पाप करते हैं और उनको दण्ड भी दिया जाता है। तुम किस तरह कहते हो कि अभियोगी पाप नहीं करते ? इसका उत्तर यह है कि गवर्नमेन्ट के दंड से अज्ञानी होने के कारण और अल्पशक्ति होने से विपरीत फल हो सकता है क्योंकि वह करने वाली मुख्य शक्ति पर अधिकार नहीं कर सकता।

प्यारे पाठकगण ! जितने मनुष्य हैं यह कर्त्तव्य योनि और जानवर भोगयोनि हैं और मनुष्य की करने की शक्ति, बुद्धि और मन को स्वतन्त्र रक्खा गया है और पशुओं के मन और बुद्धि का रोक दिया गया है। मनुष्य अपने कर्मों का उत्तरदाता है और पशु बिलकुल उत्तरदाता नहीं। उनके कर्मों के हानि लाभ का भार ईश्वरीय नियम का है क्योंकि कर्तव्ययोनि के ये अर्थ हैं कि जो अपनी आवश्यकता को उत्पन्न करने का ज्ञान रखती हों और उसके पास साधन भी उपस्थित हो। और भोगयोनि के ये अर्थ हैं कि केवल नियत काम तो किया करे किन्तु अपनी इच्छा से अपनी आवश्यता के पैदा करने का ज्ञान न रखे और उसके करने का साधन भी उपस्थित न हो। चूंकि सम्पूर्ण पसु जिनके उत्पन्न करने की प्रकृति ने रोक दियाहै और अपनी भावी आवश्यकता के उत्पन्न करने में असमर्थ हैं और मनुष्य अपनी आवश्यकता से आज बो कर दस वर्ष पश्चात काटने की आशा रखता है इससे स्पष्ट विदित है कि मनुष्य कर्तव्ययोनि और पशु भोगयोनि हैं।

प्यारे पाठकगण ! हमने ऊपर लिखे प्रमाणों के द्वारा जो इस पुस्तक में दिये गये हैं आपको दिखला दिया कि वैदिक शिक्षा ही है कि जिसके होने से मनुष्य जाति के सम्पूर्ण झगड़े समाप्त हो सकते हैं और यह वैदिक शिक्षा ही है कि जिसकी विद्यमानता में सब संसार में एक ही धर्म उपस्थित था। जिस शिक्षा से महाराजा हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी और

प्रतिज्ञा के पालन करने वाले महात्मा पैदा हुए थे, जिन्होंने सत्य के सामने राज्य को तुच्छ समझा, स्त्री को बेच देना अङ्गीकार किया, पुत्र को भी बेच दिया स्वयं भी एक नीच के हाथ बिक गये, परन्तु क्या मजाल कि वचन में अन्तर आ जावे। जिसका वर्णन एक कवि करता है:—

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यौहार।
सत्य वचन हरिचन्द्र को, कोई ना टारनहार॥

जिस वैदिक शिक्षा ने महाराजा रामचन्द्र को इस योग्य बनाया कि उन्होंने राज्य और सुख को धर्म के सामने तुच्छ समझा, जिस राज्य के लिये दूसरे धर्मों के लोग, बाप को बन्धन में डालने को सन्नध और भाइयों का हनन स्वीकार करते हैं, उस राज्य को वैदिक धर्म के मानने वाले वीर ने ऐसा तुच्छ समझा कि पिता की आज्ञा होते ही छोड़ने को तत्पर हो गये जहाँ अन्य मतों के लोग राज्य के सामने भाइयों को तुच्छ समझते हैं वहां वैदिक धर्म के मानने वाले भाई पर दूसरे भाई लाखों राज्य न्योछावर करने को सन्नध हैं।

प्यारे पाठकगण! वैदिक धर्म ही था कि एक अरब छियानवें करोड़ वर्ष तक चला गया, नहीं तो संसार के मतान्तर तो थोड़े दिनों में बदल जाते हैं आज १३०० वर्ष से अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ कि इस्लाम आरम्भ हुआ जिसकी ७२ से अधिक शाखायें दृष्टि आती है; एक दूसरे को झूंठा बतला रहा है शीया सुन्नियों के विरूद्ध और सुन्नी शियाओं को झगड़ालू बतला रहे हैं। ईसाई मत भी दो हजार वर्ष तक ठीक तौर पर स्थित न रह सका यद्यपि प्रत्यक्ष रीति पर ईसाई मत ससार में एक बड़ी शक्ति का समुदाय है, परन्तु वह सब प्रकृतिपूजक हो गये है, इनमें धार्मिक प्रेम नाम मात्र है।

हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि ईसाई लोग अपने धर्म्म के ऐसे पक्के हैं कि जान देकर दूसरे देशों में अपना धर्म्म फैला रहे हैं। परन्तु ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं, अधिकतर लोग नास्तिक और राजनैतिक विचार के हैं और दैशिक विचार के कारण पादरियों को बराबर सहायता दिये जाते है, परन्तु उनका निज ढंग और कर्तव्य मसीही शिक्षा से नितान्त विरुद्ध है जहां मसीह को यह विचार है कि सुई के छेद में से ऊंट का निकल जाना सहज है लेकिन एक दौलतमन्द का ईश्वर की बादशाहत में आना बहुत कठिन है, वहां इस समय अमरीका और यूरोप की कुल जातियां इन धार्मिक नियमो को, जो संसार में सबसे आवश्यक है, उत्तर दे चुकी। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म्म की पुस्तकें नित्य बदली जा रही हैं, ईसाई धर्म्म भी अनगिनत शाखाओं में विभक्त होगया है। यही दशा यहूदी और पारसी धर्म्म की है, वह भी आज नाम मात्र हैं।

प्यारे पाठकगण! संसार में जितने मानुषीमत मनुष्यों के नाम से प्रचलित हैं वह कभी भी मनुष्य की आत्मा को पूरी शान्ति नहीं दे सकते। और जब तक मनुष्य जाति में पूरे तौर पर ईश्वरीय ज्ञान के अनुसार धार्मिक शिक्षा न हो तब तक मनुष्य जाति में शान्ति का आना असम्भव है। और जब तक मनुष्य जाति में शान्ति न आवे तब तक आपस में प्रेम का बढ़ना और फूट का नाश होना असम्भव है। क्योंकि मानुषी शिक्षा से स्वार्थ की जड़ नहीं उखड़ सकती और जब तक संसार में स्वार्थ की जड़ विद्यमान है तब तक सचाई का वर्ताव कहां? और जब तक सचाई से वर्ताव न हो, तब तक आपस का विश्वास कहां? और जब तक आपस में विश्वास न हो, तब तक प्रेम कहां? और जब तक संसार में प्रेम न हो, तब तक सुख कहां?

प्यारे पाठकगण! संसार में रात के समय बहुत से दीपक जलते हैं परन्तु दीपकों का प्रकाश रात की आने वाली त्रुटियों को दूर नहीं कर सकता। जैसे शेर और भेड़िये कब घूमते हैं रात में, चोर और डाकू कब घूमते हैं, रात में; बदमाश कब बदमाशी के लिये निकलते हैं, रात में, जहाँ तक पता लगता है रात का समय बहुत से दीपों के प्रकाश के होते हुए संसार में बुराई का द्वार होता है। इसका कारण यह है कि दीपक के प्रकाश में बैठने वाला मनुष्य अपने

घर में तो प्रकाश देखता हैं, परन्तु बाहर अंधेरा पाता है। ऐसे ही ईसाई मत के आदमी अपने आपको बहिश्ती,' समझते हैं, औरों को 'दोज़खी'। बस यहीं से एक दूसरे को घृणा करने लग जाता है और जब घृणा पैदा हो गई तो उसके नाश करने का उपाय करना पड़ता है, जिससे संसार में अंधेरा फैल रहा है। इसलिये आप मानते हैं कि जब तक सूर्य्य न उदय होगा, तब तक इन रोगों की कोई चिकित्सा नहीं हो सकती। बहुधा मनुष्य दूसरों के दीपक बुझाने का प्रयत्न करते हैं जिसका फल यह होता है कि आपस में लड़ाई आरम्भ हो जाती है, और सूर्य्य भी न निकला तो उसके घर में अंधेरा हो जाता है। इसी तरह बहुत से औरों के मतों का खण्डन करते हैं जिससे उस मत के लोगों से लड़ाई होती है और उस ओर के लोग अपने नियमों से तो गिर जाते हैं और वैदिक धर्म के प्रचार न होने से इस ओर आ नहीं सकते जिससे बड़ा अंधकार अर्थात् नास्तिकता फैलती जाती है। आर्य्य समाज के खण्डन वाले तर्कों ने जहां शंकाओं के दूर करने में बड़ी भारी कृतज्ञता देश पर की है, वहाँ पर खँडन के न होने से नास्तिकता को फैलाकर बहुत हानि भी पहुँचाई है।

प्यारे पाठकगण! आपका और हमारा कर्तव्य है कि हम किसी मत का अधिकार खण्डन न करके धर्म के नियमों को जनता में फैलाने का प्रयत्न करें जिससे सर्व साधारण में नास्तिकता न फैले और लोगों को संसार के धर्मों में वैदिक धर्म की तुलना करने का अवसर मिल जावे और वह संसार में आत्मिक शान्ति के अधिकारी हो जावें। जब तक वैदिक धर्मकी शिक्षा पूरे तौरसे नहीं फैल जाती, तब तक मतमतान्तरीय खण्डनों से हानि अधिक होगी और लाभ कम होगा। इस लिये हम सब आर्य्य भाईयों से प्रार्थना करते हैं कि वह वैदिक धर्म के प्रचार के लिये प्रयत्न करें और जहां तक बन सके वेद प्रचार विधि को दृढ़ करके देश में लेख द्वारा, व्याख्यान द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार करें। इस प्रचार के लिये मनुष्य बनाने का प्रयत्न करें यदि कुछ मनुष्य इस योग्य पैदा हो सकें जो दूसरे देशों में जाकर वैदिक-धर्म की प्रतिष्ठा स्थापन करें, तो भारतवर्ष को बहुत ही लाभ हो।

हमारे बहुत से मित्र राजनैतिक विषयों में यूरुप की जातियों से तुलना करना चाहते हैं। परन्तु यह असम्भव है कि जिन यूरोपियनों से इन विचारों की अधूरी शिक्षा ली है उस शिक्षा से हम उनकी तुलना कर सकें। क्योंकि इसमें वह हमारे गुरु हैं। परन्तु क्यों न आत्मिक शिक्षा की तलवार को लेकर संसार की बराबरी के लिये खड़े हो जावें? क्योंकि आत्मिक शिक्षा विशेष आर्यावर्त की सम्पत्ति है और इसी देश से उसकी उत्पत्ति है; और अब भी इसका सामान हमारे पास उन जातियों से लाखों गुना अधिक है। इसलिये हम उनसे बढ़ सकते हैं। क्या जो प्रतिष्ठा स्वामी विवेकनन्द की अफरीका में हुई: क्या ऐसी प्रतिष्ठा बाबू सुरेन्द्रनाथ की इङ्गलिस्तान में हो सकती है? कभी नहीं। इसका कारण यह है कि राजनैतिक शिक्षा जो उनसे भीख मे मिली है उसको हम उनके सामने ले जाकर कब प्रतिष्ठा पा सकते हैं, परन्तु आत्मिक विचार हम उनको दे सकते हैं। इसमें वह हमारे हाथों की ओर देखने वाले हैं, ये हमको अवश्य संसार में प्रतिष्ठा दिला सकते हैं। क्या हानि है यदि संसार की सब जातियां क्षत्रिय और वैश्यों का काम करें अर्थात् शासन और वाणिज्य उनके हाथ में रहे, और आर्य्यावर्त ब्राह्मण वर्ण का काम दे अर्थात सबका गुरु हो जावे।

हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि दूसरे लोगों के राज्य में क्लेश होता है। परन्तु उन्हें बिचारना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य तो राजा नहीं हो सकता, इसलिए प्रत्येक को दूसरे राज्य में रहना पड़ेगा। परन्तु जो लोग गुरु होते हैं उनकी प्रतिष्ठा राजा से कुछ कम नहीं होती और राजा का प्रभाव अपने सेवकों के हृदयों पर इतना नहीं हो सकता कि जितना गुरु का अपने चेलों के हृदय पर हो सकता है। क्योंकि जब तक मनुष्य की बुद्धि किसी वस्तु के हेतु को ठीक प्रकार ज्ञात न करले, तब तक उस पर आचरण नहीं हो सकता और जब तक आचरण न हो तब तक फल

नहीं मिल सकता, और प्रत्येक पदार्थ का सच्चा ज्ञान सिवाय वैदिक धर्म के किसी मत में नहीं। क्योंकि प्रत्येक मत बुद्धि बल से निकृष्ट सिद्ध हो चुका है। इस लिए उन मतों के संचालकों ने मत में बुद्धि का प्रवेश ठीक नहीं माना। जिस प्रकार से हर एक दीपक को वायु से डर होता है उसी प्रकार हर एक मत को बुद्धि तथा युक्ति से घबराहट है, परन्तु वैदिक धर्म बुद्धि से बिलकुल नहीं घबराता। वरन् जिस तरह प्रकाश और आंख दो वस्तुओं के होने से ज्ञान होता है न तो अकेला आंख से काम चलता है और न अकेले प्रकाश से ही काम हो सकता है। संसार के हर एक मत में एक ही वस्तु है, कहीं बुद्धि नहीं है, कहीं ईश्वरीय विद्या नहीं है। मुसलमान,ईसाई, हिन्दू यहूदी, इत्यादि तो मत में बुद्धि का प्रवेश ही नहीं मानते; और जैन, बोद्ध मत, और ब्रह्म समाज वाले ईश्वरीय विद्या से नकार करते हैं अर्थात् यह मानवी दीपक वायु से घबराने वाले और अपूर्ण हैं, जिन से कभी मनुष्य को शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए हर एक आदमी का कर्तव्य है कि संसार के झगड़ों को मिटा कर शान्ति देने वाले वैदिक धर्म का प्रचार करके अपनी और संसार की उन्नति करें और संसार में सुख पूर्वक दिन व्यतीत करके मोक्ष मार्ग पर चलें। इति शम् ॥

* * *

॥ ओ३म् ॥

॥ वेद का विषय ॥

यद्यपि आर्य्यसमाज के तीसरे नियम से स्पष्टतया विदित हो जाता है कि वेद का विषय क्या है ? जिसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। परन्तु पण्डित भीमसेन जी ने स्वामी दयानन्द जी को छली बताते हुए यह सिद्ध किया कि वेद का मुख्य विषय यज्ञ है, और यही परमधर्म है। यद्यपि स्वामी जी ने वेद का पढ़ना पढ़ाना परम धर्म माना है। कोई अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। ऐसी दशा में हम यहां केवल वेद के विषय पर ही विचार करेंगे। हम पण्डित भीमसेन जी के अभिमानपूर्ण शब्दों को जिनमें कि उन्होंने स्वयं अपने लिए ही आर्य्यसमाज में सबसे बड़ा पण्डित एवम् स्वामी जी की भूलों को निकालने वाला माना है, मुण्डकोपनिषद् के इस वाक्य पर छोड़ते हैं:—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाःस्वयं धीराःपण्डितम्मन्यमानाः ॥ जंघन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अधेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ मु० खं० २ । ८

अर्थ—अविद्या में रहते हुए और अपने आपको धीर पण्डित मानते हुए मूर्ख लोग अधोगति को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार अन्धे के पीछे चल कर अन्धा कुऐं में गिरता है।

अविद्यायां वहुधा बर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ।

मु०। खं० २ । ६ ॥

अर्थ—'अविद्या में रहते हुऐ 'हम उद्देश्य पर पहुँच गये हैं, ऐसा बालक अर्थात् अज्ञानी लड़के मानते हैं। क्योंकि जो कर्म करने वाले ज्ञान को प्राप्त नहीं करते वह कर्म्म के राग में दुःखी होकर नीच योनि को प्राप्त होते हैं। वेद विषय के सम्बन्ध में लिखा है:—

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥

मु० खं० १ ॥ ४ ॥

अर्थ—ब्रह्मज्ञानी कहते हैं अर्थात वेद के जानने वाले बनाते हैं कि हमारे जानने के योग्य दो विद्या हैं एक परा दूसरी अपरा। अर्थात् एक प्रकृति और जीव का ज्ञान, दूसरी ब्रह्मविद्या। क्रमशः

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र। डाक खर्च माफ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां।

महात्मा आनन्द स्वामी—"श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुनकर मेरा अन्तकरण गद गद हुआ।

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यलंकार—आर्य जगत् में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जायगी।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य—श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिए कवि का धन्यवाद करता हूँ।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो, यह कामना है।

"ऋषि गाथा महाकाव्य"—ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें। इसी उद्देश्य से हमने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य में देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है। आप आज ही ४) का मनी आर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखकः—गंगाप्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू हैं उन सबका ही इस पुस्तक में समावेश आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विपय का प्रतिपादन गिया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २॥)

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक-प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं। आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं बैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुकीलन का परिणाम है। वैदिक सुक्तों के प्राय ३०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है।'

मिलने का पताः—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बैसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें

गेहूं की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीज की पुस्तकें

१ आलू की खेती	।।।)
२ टमाटर की खेती	।।)
३ गोभी की खेती	।।)
४ जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५ तरकारियों की खेती	१।।)
६ अच्छे बीज	।।।)
७ अच्छी खाद	२।।)
८ कपास की खेती	१)
९ गन्ने की खेती	।।।)
१० फूल फुलवारी	२।।)
११ धान की खेती	१।।)
१२ संतरे की बागवानी	२।।)
१३ आम की बागवानी	३)
१४ आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५ तिलहन की खेती	।।।=)
१६ सोयाबीन की खेती	।)
१७ तम्बाकू की खेती	।।)
१८ खेत की तैयारी	२।)
१९ फसल रक्षक औषधियां	२।)
२० व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१ खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।)
३२ फलों की खेती	३।।)
२३ पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४ तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५ ट्यूब वैल गाइड	३।।।)
२६ ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७ पोल्ट्री फार्मिग	४)
२८ उन्नत सिंचाई	२)
२९ खेती और ट्रैक्टर	६)
३० फल संरक्षण	२।।)

नोटः— * कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा ।

** ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।-)।। पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जायगा । पूरा सैट मंगाने वाले सज्जन ५) एडवान्स भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें । क्यों कि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादह लगता है ।

*** डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा । विशेष जानकारी के लिए पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें । केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मँगायें ।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयदव प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर

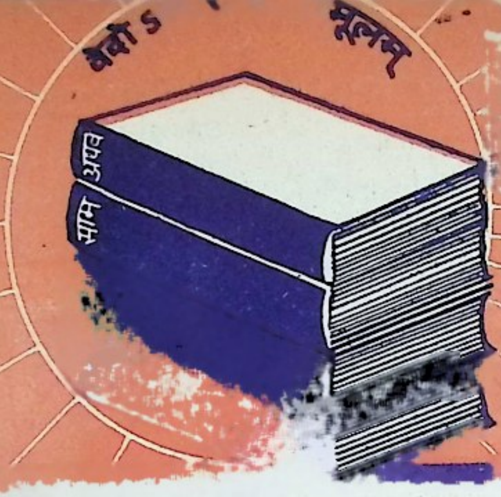

प्रकाश

वर्ष ६ } अंक ३ } आश्विन शक सं. १८७९, अक्तूबर १९५७, दयानन्दाब्द १३३ { मू० नयेपैसे १९, वार्षिक २) विदेशों से ४ शिलिंग
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

ओ३म्

शान्ति प्रार्थना

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
ऋ० ७।३५।६॥

अर्थ—(वसुभिः देवः इन्द्रः शंन अस्तु) पृथिवी आदि वसुओं के सायं प्रकाश रूप सूर्य हमारा कल्याण करे। अथवा शिष्यों सहित आचार्य हमें सुख दे। (आदित्येभिः सुशंसः वरुणः शम) तेजस्वी पुरुषों सहित प्रशंसा योग्य श्रेष्ठ राजा हमें सुख कर हो (रुद्रेभिः रुद्रः जलाषः नः शम्) दण्ड दायक शक्तियों सहित रुद्र रूप राजा शान्ति देकर हमें सुख दे ॥ अर्थात् उसका दण्ड संसार में शान्ति उत्पन्न करने वाला हो (ग्नाभिः त्वष्टा शंनः शृणोतु) परीक्षक विद्वान वाणियों द्वारा हमें सद् उपदेश सुनाये ।

दिव्य गुणयुक्त-सूर्य हमें सुखदायक हो, जल सूर्य की किरणों के साथ सुखदायक हो, शांत स्वरूप परमेश्वर नेत्र के द्वारा हमें सुखदायक हो, विवेचक विद्वान वाणियों से यहां हमें सुखमय उपदेश सुनावें ।

जिनके वेदप्रकाश पर लाल पेंसिल से × निशान लगा है उनको अगला अंक बिना वार्षिक मूल्य आये, नहीं भेजा जावेगा । विशेषांक सहित मूल्य शीघ्र भेजें ।

स्वाध्याय योग्य पुस्तकें

ऋग्वेद मूल बड़ी साइज	९॥)
,, छोटी ,,	७॥)
यजुर्वेद बड़ी ,,	४)
,, छोटी ,,	२॥)
,, गुटका सा.	२)
सामवेद बड़ी सा.	२)
,, गुटका साइज	१॥)
अथर्ववेद बड़ी सा.	६)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	२॥)
ऋग्वेद भाष्य (जयदेव)	४६)
यजुर्वेद ,, ,,	१४)
सामवेद ,, ,,	७)
अथर्ववेद ,, ,,	२८)
यजुर्वेद भाष्य (यू. पी. सभा) सजिल्द	५॥)

पं. तुलसीराम स्वामी कृत

मनुस्मृति भाष्य	५)
न्याय दर्शन भाष्य	२)
योगदर्शन	१॥)
सांख्य दर्शन	२॥)
वैशेषिक दर्शन	२)
वेदान्त दर्शन	२॥)

स्वामी दर्शनानंद कृत

उपनिषद प्रकाश	३॥)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	२॥)
,, ,, उत्तरार्द्ध	२॥)
न्याय दर्शन	२॥)
वैशेषिक दर्शन	३॥)
वेदान्त दर्शन	३॥)
सांख्य दर्शन	१॥)
गीता भाषा	१॥)
कथा पचीसी	।॥)

नारायण स्वामी कृत

मृत्यु और परलोक	१।)
योग रहस्य	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
कर्तव्य दर्पण १) बढ़िया	१।)
अमृत वर्षा	२)
प्राणायाम विधि	।)
गृहस्थ जीवन रहस्य	२॥)
कथा माला	।॥)
विद्यार्थी जीवन रहस्य	।॥)
पाप और पुण्य	॥)
आठ उपनिषदें	३॥≡)
वृहदारण्यकोपनिषद	४)
आर्य समाज क्या है ?	॥)

स्वामी सर्वदानंद कृत

सन्मार्ग दर्शन	४)
आनन्द संग्रह	२)
ईश्वर भक्ति	१॥)

म. आनंद स्वामी कृत

तत्व ज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२॥)
प्रभु भक्ति	१॥)
गायत्री कथा	॥)
एक ही रास्ता	॥=)
शंकर और दयानन्द	।=)॥
प्यारा ऋषि	॥=)
दयानन्द वचनामृत	।=)

जीवनियें

महर्षि दयानन्द (२ भाग)	१२)
,, (इन्द्र वि. वा.)	२)
महर्षि दर्शन (प्रि. दीवानचन्द)	२)
दयानन्द चित्रावली	२।)

बालोपयोगी जीवनियें

महर्षि दयानन्द सचित्र	॥-)
,, ,, सादी	।=)
स्वामी श्रद्धानन्द	।=)
पण्डित लेखराम	।=)
महात्मा हंसराज	।=)
आदर्श सुधारक दयानंद	॥=)
पत्र व्यवहार (ऋषिदयानंद)	७)

स्वामी अभयदेव कृत

वैदिक विनय ३ भाग	६)
तरंगित हृदय	१।)
ब्रह्मचर्य गीत	२)

स्वामी वेदानंद कृत

स्वाध्याय सन्दोह	४)
स्वाध्याय संग्रह	२)
वेद परिचय	।=)
वेदोपदेश	१)
सावित्री प्रकाश	१)

अन्य विद्वानों कृत

उपनिषद आर्य भाष्य	६)
दयानन्द ग्रंथ संग्रह	४॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
ओ३म्कार निर्णय	१॥)
जाति निर्णय	४)
योगासन सचित्र	१॥)
वैदिक प्रार्थना	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
बहनों की बातें	१।)
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
सन्ध्या विनय	॥)
प्रार्थना प्रदीप	॥)
भारतीय सस्कृत के तीन प्रतीक (ओ३म् आर्य नमस्ते)	॥)
ब्रह्मचर्य जीवन	।=)
नास्तिक वाद	॥)
गो रक्षा परम कर्तव्य	॥)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
दयानन्द और वेद	।)
गुरूधाम एकांकी	॥)
बाल शिक्षक महर्षि दयानन्द	।=)
गृहस्थाश्रम	॥=)
सत्यार्थ प्रकाश १=)	१॥)
संस्कार विधि	।॥=)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
सामाजिक पद्धतियां	।=)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
सन्ध्या हवन प्रदीपिका	॥)
वैदिक संध्या जपजी	=)
ओंकार स्त्रोत	।-)
विश्व विज्ञान	≡)
यज्ञोपवीत मीमांसा	।॥)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य-रोग	३)
आ. स. का इतिहास	१।=)
,, ,, (इन्द्र)	४)
आर्य पर्व पद्धति मात्र	।=)
अखण्ड भारत	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।-)
द्विराष्ट्र सिद्धांत और राष्ट्रीय मुसलमानों का कच्चा चिट्ठा	१)
महर्षि दयानन्द शिवा बावनी तर्ज में	॥)
ऋषि गाथा महाकाव्य	८)
आर्य सिद्धांत दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि	१।=)
सत्य हरिश्चन्द	१।)
बीरबल की हाजिर जवाबी	१)
दृष्टांत सागर ५ भाग	७)
पूर्व जन्म स्मृति	।=)

स्वामी विवेकानंद कृत

कर्म योग	२)
भक्ति योग	२)
भक्ति और वेदान्त	२)
विश्व शान्ति का सन्देश	२॥)

स्वामी दर्शनानंद कृत

ईश्वर विचार	=)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
जीवात्मा	=)
वेदों का महत्व	।)
वेदों की आवश्यकता	-)
वेद किस पर प्रकट हुए	-)
कर्म व्यवस्था	-)
वर्ण व्यवस्था	-)
पितृ श्राद्ध विचार	-)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	-)
,, लक्ष्य	-)

चित्र ! चित्र !! चित्र !!!

महर्षि दयानन्द	।=)
दयानन्द चित्र पट	॥)
प्रार्थना के आठ मन्त्र	।-)
संध्या मंत्र	।-)
आर्य समाज के नियम	।-)
यम-नियम व्याख्या	।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।-)
संगठन सुक्त	।-)
चारों वेदों के प्रथम मंत्र	≡)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

दान दिलाओ

लेखकः--स्वर्गीय वेदशास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

ओ३म् । वाज़स्य नु प्रसवे सं वभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ ॥ अ. ३।२०।८

हम (च) और (इमा) ये (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर भी (अन्तः) बीच में (वाजस्य) अन्न, धन, ज्ञान के (नु) ही (प्रसवे) उत्पादन के लिये (सं+बभूविम) समर्थ हुए हैं। इकट्ठे हुए हैं। (प्रजानन्) ज्ञानी (अदित्सन्तम्) न देने की इच्छा वाले से (उत) भी (दापयतु दिलाये, हे ज्ञायिन् ! (नः) हमें (सर्ववीरम्) सभी वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नियच्छ) दे, दिला ।

हम और यह सारा संसार एक ही कार्य के लिये उत्पन्न हुए हैं—

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविम्=हम वाज के ही उत्पन्न करने के लिये उत्पन्न हुए हैं ।

हमें यदि वाज=ज्ञान, अन्न, धन न मिलेगा, तो इहलोक तथा परलोक में हमारा किसी प्रकार भी निर्वाह नहीं हो सकेगा। अन्न, धन के बिना यह लोक तो चल ही नहीं सकता। शरीर रक्षा के लिये, जीवनयात्रा चलाने के लिये अन्न-धन की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु अन्न-धन का अर्जन ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। अतः हमारी इहलोकयात्रा के निर्विघ्न निर्वाह के लिये सब से प्रथम ज्ञान की आवश्यकता है, परलोक में संगति=सद्गति होगी ही तभी, जब इहलोक में हम सम्यग् ज्ञान, यथार्थ विद्या प्राप्त कर ली जाये ।

अकेले हम—शरीरधारी प्राणी हों और यह विश्वाब्रह्मांड न हो, तब अन्न धन का अर्जन कहां से हो ? अतः हमारे साथ इनका होना भी आवश्यक है। हां, हम धन अन्न आदि लेने वाले, और ये देने वाले।

जब अन्न-धन इतने आवश्यक है, तो इसके लिये यत्न भी करना चाहिये। अतः कामना है।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्=

न देने वाले को भी देने की प्रेरणा कर।

अर्थात् दे और दिला।

इसलिये अ० ३।२०।५ में प्रार्थना की है—

हे देव ! तू हमें धन दान देने की प्रेरणा कर।

केवल लेते ही न रहें, वरन् दें भी। ऐसी प्रवृत्ति होनी चाहिये।

उपनिषत् में तभी कहा है -

त्व नो देव दासवे रयिं दानाय चोदय=

श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । (तै. उ. १।११।३) ।

श्रद्धा से देना चाहिये । अश्रद्धा से देना चाहिये। शोभा से देना चाहिये। लज्जा से देना चाहिये। भय से देना चाहिये। संवित्=पात्रापात्र के विचार से देना चाहिये।

[स्वाध्याय सन्दोह से]

विद्यार्थी और सदाचार

श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी शास्त्रार्थ महारथी

ओ३म् । व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ यजु० १९. ३० ।

(व्रतेन) व्रत के द्वारा मनुष्य (दीक्षाम्) अधिकार को (आप्नोति) प्राप्त करता है और (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम्) चतुरता को आप्नोति प्राप्त करता है और (दक्षिणा) दक्षिणा से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त करता है तथा श्रद्धया श्रद्धा से (सत्यम्) सत्य (आप्यते) प्राप्त किया जाता है।
आर्य नवयुवको !

इस मन्त्र में एक बड़ी विचार की बात है कि व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है। जब कोई भी मनुष्य किसी कार्य को करने के लिए हृदय से तैयार हो जाता है और निरन्तर विघ्न बाधाओं के आने पर भी पीछे नहीं हटता तो उसे दीक्षा प्राप्त होती है, प्रवेश प्राप्त होता है। आजकल बच्चों में पढ़ने की रुचि नहीं है और इस का कारण है कि उन्होंने पढ़ने का व्रत नहीं लिया। यदि व्रत लेते तो पढ़ते और सीखते क्योंकि जिस बात का व्रत ले लेते हैं उसे बिना सिखाये सीख लेते हैं उदाहरणतः व्यसनों का कोई स्कूल नहीं है और न ही कोई अध्यापक है इसी प्रकार गाली देना सिखाने का तथा चरस और भङ्ग पीना सिखाने का भी कोई विद्यालय नहीं है, बिना अध्यापक के सीख जाते हैं। हां सिनेमा के लिए तो कह देंगे कि सीख कर आए हैं। परन्तु जितनी जल्दी वे सिनेमा की बातों को सीखते और याद कर लेते हैं। इतनी जल्दी विद्यालय के पाठ को नहीं सीखते। सिनेमा के गाने बहुत शीघ्र याद कर लेते हैं। एक बार रघुनन्दन जी एक विद्यालय में ले गये और एक विद्यार्थी से कहा कि गाना सुनाओ। एक छात्र खड़ा हुआ और गाना प्रारम्भ किया—

"मेरा मन डोले मेरा तन डोले"

मैंने कहा, "यह आप बच्चों को क्या सिखा रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "मै मीठी दवा देकर बलवान बनाना चाहता हूँ।

यह मीठी दवा नहीं, मीठा विष है। इस से हमारी पीढ़ियाँ उल्टी होती जा रही है। लड़कों की तो बात ही क्या जब लड़कियों तक को यह गाना याद है तो इस का अर्थ यह हुआ कि माता-पिता और अध्यापक सब अन्धकार में है। स्कूलों और कालिजों में चले जाइये आप को पता लग जायेगा कि बच्चों की प्रवृत्ति अपने सुधार में नहीं है। परन्तु कुछ बच्चे अपनी उन्नति का ध्यान रखते हैं यदि ध्यान दिया जाए तो यह प्रवृत्ति उन्नत हो सकती है।

जब किसी भी कार्य के लिए व्रत ले लिया जाता है, दृढ़ संकल्प ले लिया जाता है तो उस कार्य में दीक्षा हो जाती है। फिर उस दीक्षा से दक्षिणा प्राप्त होती है। दक्षिणा का अर्थ चार आने वाली दक्षिणा नहीं है अपितु दक्षिणा का अर्थ है कि उसे चतुरता प्राप्त होती है, उस कार्य में उत्साह प्राप्त होता है। दीक्षा से कुछ न कुछ प्राप्त होता है और जब दक्षिणा मिल गई तो श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। श्रद्धा का अथ है श्रद्+धा=सत्य का धारण करना. सचाई में धारणा Maintenance in truth, settlement in truth. जब सत्य धारण हो जाती है तो फिर असत्य भाषण समाप्त हो जाता है। आज विद्यार्थी की सत्य में धारणा नहीं है इस लिए बात-बात पर झूठ बोला जाता है अध्यापक घर के लिए काम देता है। दूसरे दिन पूछता है, 'काम कर लिया' तो विद्यार्थी उत्तर देते हैं 'हां कर लिया' परन्तु जब अध्यापक एक बच्चे से पूछता है कापी लाये तो कहता है 'घर भूल गया। अध्यापक कहता है घर से लाओ तो विद्यार्थी तुरन्त बहाना बना देता है, माता जी घर पर नहीं हैं। सत्य के न होने से विद्यार्थियों में से सरलता और सादगी जाती रही। हमारा अत्यन्त पतन हो गया है। सचाई को प्राप्त करने का एक ही उपाय है सत्य में धारणा। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। एक बच्चा खेल रहा है उस के पास ही एक लालटेन जल रही है। बच्चा खेलता हुआ लालटैन की चिम्नी को हाथ लगाना चाहता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति वहां बैठा है। वह जानता है कि बच्चा हाथ लगा देगा तो उस का हाथ जल जाएगा अतः वह उसे लालटैन के पास से हटा देता है। बच्चा पुनः खेलता हुआ हाथ लगाने के लिए वहां पहुंच जाता है और हाथ लगाना चाहता है वह व्यक्ति फिर हटा देता है। बच्चा तीसरी बार फिर हाथ लगाने पहुंचता है क्योंकि उसे यह पता नहीं कि चिम्नी को हाथ लगाने से हाथ जल जाएगा। वह चिम्नी को हाथ लगा देता है। जब हाथ लगा दिया, तब श्रद्धा हो गई, सत्य में धारणा हो गई। अब यदि कोई व्यक्ति उस बच्चे का हाथ पकड़ कर चिम्नी को लगाना चाहे तो वह पीछे हटेगा। क्योंकि अब उस को सत्य में धारणा हो गई है। परन्तु जहां कोई बच्चा या बड़ा व्यक्ति शारीरिक कष्ट भोग कर मानता है यह मानना अच्छा नहीं है, जैसा बुद्धिमान बताए उसी प्रकार मान लेना ही श्रेष्ठ है। उदाहरण के लिए एक शराबी से कहें कि शराब पीना अच्छा नहीं, इस के पीने से मुंह से दुर्गन्ध आती है, फेंफड़े खराब हो जाते हैं, धन नष्ट होता है, अतः इस का पीना छोड़ दो, तो वह कहता है छूटती नहीं उसे शराब की हानियां बताई जाती हैं और समझाया जाता है कि शराब के नशे में ऐसी अवस्था हो जाती है कि शराबी नालियों में गिर पड़ता है और उसके मुंह को कुत्ते चाटते हैं, तब शराबी कहता है जब ऐसी अवस्था होगी तो छोड़ देंगे। परन्तु इसके शारीरिक कष्ट भोग कर छोड़ना बुद्धिमानी नहीं।

इस के साथ ही एक बात और भी स्मरण रखने की है हम में श्रद्धा तो अवश्य होनी चाहिए, परन्तु श्रद्धा का अर्थ अन्ध-विश्वास नहीं है।

आप कुमार हैं और आप को सदाचार की शिक्षा देनी है। कुमार का अर्थ है 'कामयते भोगान् इति कुमार' जो भोगों की कामना करे उसे कुमार कहते हैं। छोटे बच्चों को, मेरे बाल ठीक है या नहीं, कुर्ते के बटन ठीक लगे हैं या नहीं, कपड़े अच्छी प्रकार साफ हैं या नहीं—इत्यादि बातों का विशेष पता नहीं होता—जब बच्चा बड़ा होकर कुमार बनता है, तो वह बालों की ओर भी ध्यान देता है, उन में प्रतिदिन कंघी करता है, कपड़ों को भी स्वच्छ रखता है परन्तु आज कुमारों में अति हो गई है जो ठीक नहीं क्योंकि Excess of every thing is bad. किसी भी बात में अति का होना बुरा है। प्रत्येक कुमार को अपने दांत स्वच्छ रखने चाहिएं, नाखून भी ठीक हों बढ़े हुए न हों, कपड़े भी स्वच्छ हों, बालों में तेल भी डला हुआ हो। यह सब कुछ ठीक है क्योंकि 'कुत्सितं मारयति इति कुमारः' जो बुराइयों को मारता है उस का नाम कुमार है। परन्तु ये सब बातें मर्यादा में रहनी चाहियें।

अब दो लाइन बन गईं। आप आंख, नाक, दांत, वस्त्र आदि सब की स्वच्छता का ध्यान रखते हुए सफाई से रहें परन्तु कोई कुत्सित बात नहीं होनी चाहिए। आप स्वच्छता से रहें परन्तु स्वच्छता सजावट में नहीं आनी चाहिए अन्यथा गाड़ी का Derailment हो जायेगा पटड़ी से नीचे उतर जायेगी।

संसार में सब भले बनना चाहते हैं परन्तु क्या भलाई स्वाभाविक वस्तु है ? एक व्यक्ति

धर्मात्मा है तो इसी लिए कि वह धर्म का आचरण करता है। एक व्यक्ति धनी है तो इसलिए कि उस ने धन का संचय किया है। एक व्यक्ति विद्वान् है तो उस ने विद्या इकट्ठी की है। ये सभी बातें स्वभाविक नहीं हैं। यदि ये बातें स्वाभाविक होतीं तो धर्मात्मा व्यक्ति धर्मात्मा कहलाता ही नहीं जैसे—कुत्ता भी स्वामी भक्त है और नौकर भी—परन्तु नौकर का दर्जा कुत्ते की अपेक्षा ऊंचा है क्योंकि कुत्ते में स्वभाव से स्वामी भक्ति है। कुत्ते को डंडा मारो तो भी पूंछ हिलाता हुआ स्वामी के पास आ जाता है परन्तु मनुष्य अविश्वास को रोक कर विश्वास को बाहर लाया है इस लिये वह प्रशंसा के योग्य है।

जीवात्मा में धार्मिकता या विद्वत्ता स्वाभाविक नहीं है। एक और उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति एक सेठ के पास गया और जाकर कुछ रुपये जमा कर दिए कि मैं एक मास के पश्चात् आकर ले लूंगा। एक मास के पश्चात् आ कर रुपये वापस मांगे तो सेठ जी ने पूरे रुपये दे दिये। वह व्यक्ति बड़ा प्रसन्न हुआ और सेठ जी की बड़ी प्रशंसा की। दूसरी ओर एक व्यक्ति एक सन्दूक में कुछ रुपये रखता है। कुछ समय के पश्चात् उन रुपयों को बाहर निकालता है और जितने रुपये रक्खे थे उतने ही रुपये पा कर उसकी प्रशंसा करता है तो लोग कहेंगे कि क्या सन्दूक भी बेईमान हो सकती थी और जब वह बेईमान नहीं हो सकती तो इमानदार भी नहीं हो सकती। सेठ की प्रशंसा हो सकती है क्योंकि वह उन रुपयों को खा सकता था अथवा वह कह सकता था कि मुझे कब दिये थे परन्तु सन्दूक न रुपयों को खा सकता है और न यह कह सकता है कि मुझे रुपये कब दिये थे।

हम भला बनना चाहते हैं परन्तु भलाई स्वाभाविक वस्तु नहीं है अतः जो स्वभाव से विद्वान् और धर्मात्मा है उस से सीखना होगा वह परमात्मा है जिसको आजकल के कई लोग नहीं मानते। फिर प्रश्न होता है कि जो ईश्वर को नहीं मानते वे धर्मात्मा और विद्वान् कहां से हो गए ? इस का समाधान यह है कि ईश्वर की ओर से ज्ञान आया है परन्तु उन ज्ञान प्राप्त करने वालों ने बताया नहीं कि धर्म का मूल कारण क्या है। जैसे पिता ने अपने पुत्र को शिक्षा दी परन्तु जिस से उसने सीखी थी लड़के को उस के दादा का नाम नहीं बताया तो वह दादा को क्या जाने ठीक इसी प्रकार ज्ञान तो प्रभु से ही आता है परन्तु लोग उस को बताते नहीं इसलिए अन्य लोग उस को नहीं जानते। हमारे अन्दर उत्तम गुण आते हैं, इन गुणों को हम माता-पिता से सीखते हैं—यह बात तो ठीक है परन्तु माता-पिता स्वतन्त्र कारण नहीं हैं।

मुरादाबाद में मेरे व्याख्यान हो रहे थे। एक व्याख्यान के प्रधान एक सैशन जज बने। उनका एक शिक्षक था। उसके सामने वे व्याख्यान की चर्चा कर रहे थे उन शिक्षक महोदय का एक मित्र भी सुन रहा था। वार्तालाप सुन कर उस मित्र ने कहा कि ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है ? शिक्षक उन्हें मेरे पास ले आया और मुझसे कहा "कि ये हमारे मित्र हैं ये कहते हैं कि ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है ?" मैंने भी उन्हें बढ़ावा दिया और कहा, कि 'इस खुदा को पहले दूर कोने में खड़ा कर दो फिर वार्तालप करेंगे।" इतना बढ़ावा देकर मैंने कहा, ' कि आप बाप से उत्पन्न हुए है दादा की तो आवश्यकता ही नहीं है।" वह कुछ लज्जित हुआ। मैंने फिर पूछा, "कि आप कुछ मानते भी है।" उन्होंने कहा, "हां गान्धी जी को मानता हूँ।" ने कहा, "पूरा मानते हो या अधूरा।" उन्होंने कहा "पूरा मानता हूँ।" "गाँधी जी तो ईश्वर को मानते थे फिर आप उन्हें पूरा कहां मानते हैं आप उन्हें अधूरा मानते हैं।" मैंने फिर एक और प्रश्न किया कि "आप गांधी जी को क्यों मानते हैं ?" उन्होंने कहा, "वे धर्मात्मा और विद्वान् थे इसलिये।" मैंने कहा, "गांधी जी में यह बातें स्वाभाविक थीं या किसी से सीखी थीं।" उन्होंने कहा, गुरु से सीखी थीं।" मैंने कहा "उनके गुरु पैदा ही हुए थे या

उन्होंने भी किसी से सीखी थीं।" उन्होंने कहा उन्होंने भी सीखी थी।" तो मैंने कहा, सृष्टि के आदि में भी कोई होना चाहिये जिससे उन्होंने सीखी थीं।" वे कहने लगे हां साहब कोई होना तो चाहिये।" मैने कहा वही धर्म और विद्या का आदि स्रोत है। उसी का नाम ईश्वर है, यदि आपको ईश्वर अच्छा नहीं लगता तो कोई और नाम रख सकते हैं।" उन्होंने कहा, "जब ईश्वर को स्वीकार ही कर लिया तो नाम बदलने की क्या आवश्यकता है। मैंने कहा, "तो उस कोने में खड़े ईश्वर को अब बुलालूँ।"

सदाचारी बनने के लिये ईश्वर का मानना आवश्यक है क्योंकि यदि एक व्यक्ति ईश्वर को न माने तो वह विद्वान् हो सकता है परन्तु उसे धर्मात्मा नहीं कह सकते। जो अच्छे मार्ग पर चले और बुरे मार्ग से दूर रहे उसे धर्मात्मा कहते हैं। ईश्वर विश्वासी बालक ही सदाचारी और धर्मात्मा हो सकते हैं। कुत्सित मारयति इति कुमारः अर्थात् जो बुरी बातों का नाश करने वाला हो वह कुमार कहाता है।

अब देखना यह है कि बिगाड़ कहां से आरम्भ होता है। बिगाड़ घर से आरम्भ होता है। बच्चों में अपने कर्तव्य को भूल जाने का स्वभाव माता-पिता से आता है। बुरी चाल चलन बाहर की अपेक्षा घर से अधिक आता है। जैसा घर का वातावरण होता है वैसा ही बच्चों का स्वभाव बन जाता है। माता-पिता का यह विचार कि जिस प्रकार वृक्ष और पौदे अपने आप बन जाते हैं इसी प्रकार बच्चे भी अपने आप बनते हैं—बहुत ही भ्रम पूर्ण है। वृक्ष और पौदे ईश्वर के अधीन हैं बच्चे माता-पिता के अधीन होते हैं। उन्हें ठीक प्रकार शिक्षित करने के लिए कभी-कभी ताड़ना भी दी जानी चाहिये। जिस प्रकार कुम्हार थप्पड़ लगा कर मटके को बनाता है इसी प्रकार सुधार की दृष्टि से कुछ ताड़ना की जाये तो बहुत उत्तम है।

बच्चे के निर्माण के लिए ताड़ना आवश्यक है परन्तु आज यदि अध्यापक बच्चे को धमका दे तो विपत्ति आ जाती है। बिना ताड़ना के बच्चे बनते नहीं अतः बच्चे मास्टर को बनाते हैं। आज अध्यापक घर जाकर यह कहता है "कि प्रभु का धन्यवाद है कि कुशलता पूर्वक घर आ गये।" आज कल बच्चे अध्यापकों के दोष निकालते हैं। परन्तु याद रखो जो गुरुओं का सम्मान नहीं करता उसमें विद्या का अंकुर नहीं उग सकता। अतः सच्चे कुमार बनो।

घर के वातावरण से ही बच्चों में उद्दण्डता आ रही है। जो हर समय यह न करो, यह न करो ही करते रहते हैं वे माता-पिता गलती पर हैं इसी लिए वातावरण बिगड़ता जा रहा है। आज अवस्था क्या है। एक ठाकुर साहिब लड़ने लगे। किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा –"ठाकुर साहिब, किसी बात पर लड़ा करो।" ठाकुर ने कहा, बात पर तो बनिया लड़ते हैं, ठाकुर बिना बात के लड़ते हैं।" आज सब ठाकुर बने हुए हैं।

आर्य कुमार ! ठाकुरपन छोड़ कर सच्चे कुमार बनो। आज से संकल्प कर लो—

१. गुरुओं का आदर करेंगे। उन का अपमान और निरादर कभी नहीं करेंगे। उन की आज्ञाओं का पालन करेंगे।

२. माता-पिता ने जिस उद्देश्य के लिए स्कूल भेजा है उसे पूरा करेंगे। अपना पाठ प्रतिदिन याद करेंगे। आज उल्टा हो रहा है। आज यदि अध्यापक पाठ पूछता है तो लड़के कहते हैं पहले अध्यापक तो पूछते नहीं थे आप तो पूछते हैं। आप आज यह संकल्प कीजिए कि जो पाठ मिलेगा उसे याद करके ले जायेंगे।

३. समय पर विद्यालय में जाना और समय पर लौट आना। विद्यालय से अवकाश होते ही सीधे घर आ जाना चाहिए न तो मार्ग में रुको, न व्यर्थ की गप्प बाजी में समय नष्ट करो और न गाली आली आदि दो। क्योंकि यदि पढ़े-लिखे भी गाली देंगे तो बाजार के

और पढ़ने वाले लड़कों में क्या अन्तर रहेगा? कोई असभ्यता सूचक बात और बकवास नहीं करनी चाहिए। नियम पूर्वक चलने वाले बनो।

४. जब अध्यापक पढ़ाने लगे तो अध्यापक की ओर पूरा ध्यान दो। एक-एक बात पर ध्यान दो क्योंकि ध्यान देने से ही ज्ञान उभरेगा। ज्ञान आप के अन्दर है वेद में कहा है—

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
यजु० ३४. ५।

अर्थात् जिस मन में ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेद और उनके अन्तर्गत होने से अथर्व वेद भी ऐसे प्रतिष्ठित हैं जैसे रथ की नाभि में आरे, वह मेरा मन शुभ सकल्प करने वाला हो।

इससे क्या आया कि ज्ञान मन के अन्दर विद्यमान है। जब अध्यापक मन के ज्ञान को उभार देता है तो मनुष्य ज्ञानवान् बन जाता है परन्तु यह ज्ञान कब उभरता है? जब ध्यान से सुनें। जब ज्ञान उभर जाता है तो बुद्धि की दासता समाप्त हो जाती है फिर बुरी आदतें छूट जाती हैं। ज्ञान के उभरने पर मनुष्य तुरन्त कह देता है कि अब ऐसा नहीं करूँगा।

मैं रिक्शा में बैठा हुआ अजमेरी गेट को ओर जा रहा था। रिक्शा वाले ने पूछा, 'एक और बैठा लूं।' मैंने कहा 'बैठा लो।' बैठने वाला सज्जन सिगरेट पी रहा था। मैंने पूछा आपने सिगरेट पीना क्यों आरम्भ किया? उसने कहा 'यूँ हीं' मैंने कहा 'यूँ हीं' भी कोई कारण होता है। मैं आपको धक्का दे दूँ और कोई पूछे कि आपने धक्का क्यों दिया और मैं कह दूँ यूँ हो तो यह कोई बात हुई? वह सज्जन विचारे लज्जित हुए और भविष्य के लिए धूम्रपान छोड़ने का वचन दिया। इन सबके कहने का तात्पर्य यह कि आप ध्यानपूर्वक सुनें तो आपके ज्ञान का विकास होगा बुद्धि तीव्र हो कर बुराइयों की ओर न फंस कर शुभ मार्ग पर चलेगी।

यह आपके समक्ष कुछ बातें रखी हैं इन के ऊपर आचरण करेंगे तो आप उन्नति के पथ पर आगे बढ़ेंगे। प्रभु आप को शक्ति दे कि आप सच्चे सदाचारी बन सकें। ॥ ओ३म् ॥

आर्ष योग प्रदीपिका

व्यास भाष्य सहित पातञ्जल योग दर्शन का सरल सारगर्भित भाषानुवाद

लेखकः—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं व्यास ऋषि भाष्य का भाषानुवाद किया गया है। योग के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर लेख होने से इसका नाम "आर्ष योग प्रदीपिका रखा गया है। यहां पातञ्जलि के सूत्रों का प्रथम अर्थ और किसी किसी क्लिष्ट सूत्र पर विवरण दिया गया है। पुनः व्यास भाष्य का अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं उस पर आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण भी दिया गया है। आशा है स्वाध्यायी और योग विषयक वर्णन के जिज्ञासु जन इसका स्वागत करेंगे। लगभग २७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३॥)

मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क देहली।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखकः—गंगाप्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू हैं उन सबका ही इस पुस्तक में समावेश आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन गिया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

श्री स्वामी वेदानन्द जी

(लेखक—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक)

(गतांक से आगे)

कार्य क्षेत्र में

हमारे चरित नायक ने काशी में निवास करते हुए स्वामी रामानन्द जी के विद्यालय में तिवारी जी से व्याकरण पढ़ा। श्री अम्बादास जी शास्त्री से दर्शनों का अध्ययन किया। श्री चन्द्र स्वामी शास्त्री जी से मीमांसा का ज्ञानोपार्जन किया। अन्त में आर्य जगत् में विद्या के श्रोत, महासमुद्र पं० काशीनाथ जी शास्त्री के चरणों में बैठ कर विद्योपार्जन किया। इस प्रकार व्याकरण, निरुक्त, न्याय, नव्य न्याय आदि शिक्षा के आभूषणों से अलंकृत और तर्क के तीरों से सुसज्जित होकर तथा ब्रह्म को अपना वर्म—ढाल बना कर स्वामी जी ने कार्य क्षेत्र में प्रवेश किया।

वाराणसी में विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात् स्वामी जी केमलपुर में निवास करने लगे, फिर रावलपण्डी में आ विराजे। सन् १९२६ में आपको दयानन्द उपदेशक विद्यालय का मुख्याध्यापक बना कर लाहौर लाया गया। यहाँ पर स्वामी जी ने 'वेदामृत' रूपी उत्तम ग्रन्थ को प्रकाशित कराया तथा 'पुराणालोचन' ग्रन्थ माला का भी आरम्भ किया जिसके अन्तर्गत पांच पुराणों की आलोचना प्रकाशित कराई गई।

लाहौर में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के साथ आपकी अच्छी निभी। परन्तु अधिकारियों के साथ मतभेद हो जाने के कारण आप लाहौर छोड़ कर डिंग जिला गुजरात चले गये। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व 'वेदार्थ कोष' का सम्पादन करने के लिए फिर लाहौर आना पड़ा।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने के पश्चात् श्री स्वामी जी को दयानन्द उपदेशक विद्यालय का आचार्य बना कर विद्यालय का कार्य भार उन पर सौंपा गया, और १३ अगस्त १९४७ तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे।

विरजानन्द वैदिक संस्थान की स्थापना

स्वामी जी महाराज वैदिक धर्म और आर्य समाज को भारतवर्ष में ही नहीं अपितु देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में छाया हुआ देखना चाहते थे, यह उनकी दिव्य भावना और प्रबल कामना थी इसी पवित्र और उदात्त भावना से प्रेरित होकर उन्होंने वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति और वैदिक सभ्यता का संसार में प्रचार और प्रसार करने के लिये, इनके सम्बन्ध में शास्त्रीय शोध (Scientific Research) करने के लिए एवं आध्यात्मोन्नति के पिपासुओं को अनुकूल वातावरण और स्वाध्याय की समुचित व्यवस्था करने के लिए, विद्वत्सम्मेलनों का आयोजन करने तथा पठन पाठन की लुप्त प्रायः आर्ष प्रणाली का उद्धार करने के लिए संवत् १९९८ में विरजानन्द वैदिक संस्थान की स्थापना की। इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन कराया। एक विद्वत्सम्मेलन भी हुआ। स्वामी जी महाराज के निधन से इस कार्य को बहुत धक्का लगा है।

भिक्षा वृति

स्वामी जी अनेक वर्षों तक दयानन्द उपदेशक विद्यालय के मुख्याध्यापक और आचार्य रहे परन्तु वे विद्यालय का अन्नग्रहण नहीं करते थे। जब तक

वे विद्यालय में रहे भिक्षा वृति द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करते रहे।

स्वामी दयानन्द सन्यास मण्डल के अध्यक्ष

आर्य समाज को अपने आरम्भ काल में सन्यासियों का जैसा सहयोग प्राप्त था बाद में वैसा सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। अकेला गृहस्थ मुनिवर पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम० ए० अपने जीवन काल में जितने अधिक और विद्वान् सन्यासियों को समाज की ओर आकर्षित कर सका था, इतना समस्त समाज मिल कर भी नहीं कर पाया है। मुनिवर गुरुदत के डगर पर चलते हुए आर्य समाज में सन्यासियों का पहले की भांति सहयोग प्राप्त करने के लिए महात्मा नारायण स्वामी जी ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी और स्वामी वेदानन्द जी से विचार विमर्श के पश्चात् सन् १९२७ में 'सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मण्डल' की स्थापना की। मण्डल का कार्यालय 'आर्य विरक्ताश्रम' (वानप्रस्थाश्रम) में रक्खा गया। सन् १९४५ में वानप्रस्थाश्रम को मण्डल के आधीन कर दिया गया तथा मण्डल के नये नियम निर्मित किए गये। अध्यक्ष के लिए यह नियम सर्व सम्मति से रखा गया कि नारायण स्वामी जी आजीवन अध्यक्ष रहेंगे और उनके पश्चात् निर्वाचन अध्यक्ष की अवधि ५ वर्ष होगी।

१५ अगस्त १९४७ को कांग्रेस की अदूरदर्शिता घुटने टेक और मुस्लिम पोषक नीति से भारत का विभाजन हो गया और लाहौर पाकिस्तान में चला गया। देश विभाजन के समय स्वामी जी बहुत रुग्ण थे। लाहौर से आप अमृतसर आ गये और कई मास यहाँ निवास किया।

१० अक्तूबर १९४७ को एक दीर्घ व्याधि के पश्चात् महात्मा नारायण स्वामी जी का देहान्त हो गया। स्वामी जी के निधन के पश्चात् अध्यक्ष नियत करने का विचार उठा। स्वामी वेदानन्द जी को सर्व सम्मति से मण्डल का अध्यक्ष बनाना निश्चित हुआ। स्वामी जी उपरोक्त अध्यक्ष सम्बन्धी नियम के कारण इस पद को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, परन्तु जब उपस्थित सदस्यों ने विश्वास दिलाया कि उस नियम में अपेक्षित परिवर्तन कर दिया जायेगा तो स्वामी जी ने अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया और आश्रम में ही रहने लगे। स्वामी जी के शब्दों में मण्डल का अध्यक्ष पद स्वीकार करना स्वामी जी की भयंकर भूल थी।

अध्यक्ष बनने पर स्वामी जी ने आश्रम की प्रणाली में कुछ सुधार करने चाहे। उनकी इच्छा थी कि आश्रमवासी अपना फालतू समय स्वाध्याय, भगवदाराधन और धार्मिक प्रवृतियों में लगायें। अतः जब स्वामी जी ने इन से परामर्श करने के पश्चात् प्रातः और सांय उपासना के लिए घण्टी बजवाने और सायंकाल को उपासना के पश्चात् ही भोजन करने का आदेश दिया तो इन 'धर्मध्वजाधारियों ने कहा, "करफ्यू लग गया।" गृहस्थ त्यागने का स्वांग भरने वाले, स्वाध्याय के स्थान पर दैनिक पत्रों को पढ़ने वाले और निरिन्द्रिय होने के कारण जितेन्द्रिय होने का दम भरने वाले तथा निठ्ठले व्यक्तियों ने जब देखा कि यह नया अध्यक्ष यहाँ रहता है और हमारा खाता हुआ हमारी इच्छा के विरुद्ध हमसे कार्य कराना चाहता है तो इन लोगों ने संगठित होकर स्वामी जी के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा और यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि हम अध्यक्ष को आजीवन बनाने के सिद्धान्ततः विरुद्ध हैं।

सन् १९५० में आश्रम वासियों ने कई खुली (छपी) चिट्ठियां सार्वदेशिक सभा और प्रान्तीय सभाओं के पास भेजी। एक छपी चिट्ठी का शीर्षक यह था --"आर्य समाज में गुरुडम, महन्तगिरि और चेला पन्थी का सूत्रपात, स्वामी वेदानन्द तथा उनके सहकारी सन्यासी टोली की सम्पत्ति लोलुपता का लज्जा जनक उदाहरण।" मण्डल में जिसके अध्यक्ष स्वामी वेदानन्द जी थे और आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त में भी तनाव हो गया। स्वामी जी ने समस्या को सुलझाने के लिए बहुत प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में वे श्री गंगाप्रसाद जी एम० ए० जयपुर से भी मिले। रुग्ण होने के कारण वे कहीं

जाने में तो असमर्थ थे अतः पत्र लिख कर उन्होंने समझौता कराने का प्रयत्न किया परन्तु कोई सफलता न मिली।

स्वामी जी महाराज छाती के रोग से पीड़ित थे। इस रोग के निदानार्थ आप दिल्ली आये और चिकित्सार्थ इरविन अस्पताल में प्रविष्ट हुए। अस्पताल में ही सूचना मिली कि स्वामी जी ने स्थूलाक्षर सत्यार्थ प्रकाश की टिप्पणी लिखने के लिए जो ग्रन्थ संग्रह किये थे और जो टिप्पणियाँ लिखी वे सब धर्म दस्युओं ने लूट ली। इन में २०००) के करंसी नोट भी थे जो किसी सज्जन ने किसी कार्य के लिये अल्प समय के लिए स्वामी जी के पास रखे थे।

स्वामी जी का हृदय शुद्ध था और उन में सच्ची सेवा का भाव था। न वे गुरुडम चलाना चाहते थे और नहीं महन्त बनना चाहते थे। यदि उनकी इच्छा गुरु और महन्त बनने की होती तो अपने घर को जहाँ वे वैष्णवों के कुलगुरु थे और लाखों रुपयों की आय वाली गद्दियों को ठोकर क्यों मारते ? जब विरोध बहुत बढ़ा तो वे इस बात पर भी सहमत हो गये कि अध्यक्ष आजीवन न रहे परन्तु फिर भी झगड़े का अन्त नहीं हुआ। अन्त में स्वामी जी ने यह सोच कर कि :—

तजो मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धि उपजत है परत भजन में भंग॥

मण्डल के अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया और वहाँ से दिल्ली चले आये।

ऋषि भक्ति

स्वामी जी की नस-नस, रोम-रोम और श्वास प्रश्वास में ऋषि भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। जब कोई ऋषि का ठेकेदार कोई सिद्धान्त विरुद्ध बात कह देता था तो स्वामी जी तिलमिला उठते थे और उसका डट कर विरोध करते थे। लगभग ५ वर्ष पूर्व 'आर्य साप्ताहिक' में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका आशय यह था क्या स्त्रियों को करवा चौथ का व्रत रखना चाहिए। इस व्रत के समर्थन में कुछ व्यक्तियों ने लेख लिखे। एक लेखक ने तो यहाँ तक लिख दिया कि स्त्रियों को यह व्रत अवश्य रखना चाहिए, मेरी पत्नी तो यह व्रत रखती ही है मैं भी रखता हूँ। जब स्वामी जी ने इस प्रकार के लेखों को पढ़ा तो वे वैदिक सिद्धान्त के विरोध को सह नहीं सके। उन्होंने करवा चौथ व्रत के खण्डन में एक लेख लिखा तथा इस अवैदिक, सारहीन और तर्क रहित कुप्रथा का प्रबल विरोध किया।

महर्षि दयानन्द अपने जीवन काल में जिस नाटक का प्रबल विरोध करते रहे। एक बार बड़े-बड़े विद्वानों की उपस्थिति में उन्हीं महर्षि दयानन्द का नाटक खेला गया। जब स्वामी जी को ऋषिवर के इस अपमान का पता लगा तो ऋषि भक्त वेदानन्द जी का हृदय तड़प उठा। वे महर्षि के इस अपमान को सहन नहीं कर सके, विरोध स्वरूप उन्होंने 'आर्य समाज या भड़वा समाज' शीर्षक से 'आर्य वीर' में एक लेख प्रकाशित कराया तथा एक लेख लिख कर और उसकी सहस्रों प्रतियों का छपवा कर वितरण कराया। इस प्रकार उन्होंने ऋषि दयानन्द के प्रति किये गये अपमान और अन्याय की घोर समालोचना की।

स्वामी जी ऋषि के परम भक्त थे। अमर शहीद पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द और वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी के समान वे ऋषि दयानन्द द्वारा प्रज्वलित की गई यज्ञाग्नि में अपने जीवन रूपी समिधा की आहुति देने आये थे जिससे वह अग्नि भड़क उठे और संसार से असत्य, अज्ञान अविद्या और अन्धकार को जला कर भस्म कर दे और समस्त संसार में ज्ञान को प्रकाशित कर दे। उन्होंने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया।

खेड़ा खुर्द में

खेड़ा खुर्द का गुरूकुल समाप्त प्रायः हो चुका था उसे फिर से बसाने के लिये आचार्य भगवान् देव जी और आचार्य राजेन्द्रनाथ जी शास्त्री की प्रेरणा पर स्वामी जी ने वहीं रहना स्वीकार कर लिया। स्वामी जी के पदार्पण से यह स्थान चमक उठा। यदि स्वामी जी कुछ समय और जीवित रहते तो यह स्थान और अधिक उन्नति करता।

आर्य्य विचारकों के विचारार्थ

आर्य्यसमाज सैद्धान्तिक राजनीति-पथ पर अग्रसर हो !

[प्रस्तोता—श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न, आगरा]

❀ धर्म्म-हीन राजनीति की कल्पना भी नहीं की जा सकती —गांधीजी
❀ 'स्वराज्य' का अर्थ है सबको सुख-सुविधायें मिलना —गांधीजी
❀ स्वस्थ आलोचना जनतन्त्र का भोजन है —गांधीजी
❀ लेखनी और वाणी की स्वतन्त्रता आवश्यक है—गांधीजी

आर्यसमाज और उसके प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने, धार्मिक जगत् में, बुद्धिवाद की समुज्ज्वल ज्योति जगमगायी। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और शिक्षा का समादर तथा सम्मान करना सिखाया। समाज-संशोधन के क्षेत्र में तो उन्होंने यह काम कर दिखाया जो इतिहास के अमर पृष्ठों पर सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। विविध दिशाओं में, सबलता तथा सफलता से किये गये आर्यसमाज के सेवा-कार्यों की किस महापुरुष ने मुक्त कंठ से प्रशंसा नहीं की।

'स्वराज्य' का स्रोत

भारत की पराधीनता से खिन्न होकर, आज से पिच्यासी वर्ष पूर्व—जब इस देश में किसी राजनैतिक सभा-संस्था का जन्म भी न हुआ था—ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"आज भारत विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो पूर्ण सुखदायक नहीं होता।"

'स्वराज्य,' 'स्वदेशीयता' का समर्थन, और एक 'सत्तात्मकता' के स्थान में प्रातिनिधिक शासन का वैदिक विधान सर्वप्रथम हमें ऋषि दयानन्द की ही लेखनी तथा वाणी में मिलता है। इसके पश्चात् तो देश के अन्य अनेक महान् नेताओं की अध्यक्षता में असंख्य बलिदानी वीरों ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए, प्राणों की बाजी लगायी। आर्यसमाजों के सदस्य तथा सेवक भी, व्यक्तिगत रूप से, बहुत बड़ी संख्या में, इस स्वातन्त्र्य-संग्राम में सोत्साह सम्मिलित हुए। अन्ततः महात्मा गांधी का तप त्याग और पुण्य-प्रताप सफल हुआ। सबको स्वतन्त्रता देवी के दिव्य दर्शन हुए। सम्मानीय नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने भी इस दिशा में अति प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

स्वराज्य का स्वरूप

'स्वराज्य' तो प्राप्त हो गया परन्तु 'सुराज्य' की आवश्यकता अभी बराबर बनी हुई है। महात्मा गाँधी की परिभाषानुसार—'सुराज्य' का अर्थ है—अन्न-वस्त्र की बहुतायत—इतनी कि उसके बिना किसी को भूखा-नंगा न रहना पड़े। एक बालिका

भी घोर अन्धकार में निर्भयता के साथ घूम-फिर सके। एक दूसरे की रक्षा तथा आदर करें। स्त्रियाँ, माताएं और बहनें समझी जाएं। ऊँच नीच का भेद-भाव न हो। कोई मन्त्री महलों में न रहे। किसी मंत्री या अधिकारियों को ऊँची तनख्वाहें न दी जाएं। बड़े-बड़े खर्चीले तथा बर्बादी-भरे सरकारी महकमे न हों। रिश्वत लेने का पाप नष्ट कर दिया जाए। शिक्षा मानसिक व्यायाम या दिमागी अय्याशी का नाम न हो, बल्कि उसका अर्थ हो—मानवता का विकास और जीवन-यापन सम्बन्धी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होना 'सुराज्य' का अर्थ यह नहीं है कि मुट्ठीभर लोग तो महलों में रहकर सुख भोगें और करोड़ों बुरी तरह संकट सहें। यदि एक आदमी अपना पेट भरता जाता है, और गरीबों की परवाह नहीं करता तो वह चोरी करता है। 'सुराज्य' में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। न किसी का शोषण किया जाय और न करने दिया जाये। लेखनी और वाणी दोनों स्वतन्त्र रहें। इत्यादि—

धर्म्म और राजनीति

महात्मा गांधी ने सुराज्य सम्बन्धी जो सुन्दर भावनाएं, उपर्युक्त शब्दों में व्यक्त की हैं, आज उन पर कहाँ ध्यान दिया जा रहा है। भारतीय 'गणतन्त्र' तो विधानसभाओं के वाचनिक प्रहार और कानूनी कोड़ों की मार से ही, भ्रष्टाचार का भूत भगाना चाहता है। धर्म्म और सदाचार का उसने सर्वथा बहिष्कार कर रखा है, जबकि महात्मा गांधी कहते हैं—

"मेरे नजदीक धर्म्म-हीन राजनीति कोई चीज नहीं है, धर्म के मानी वहमों और गतानुगतिकता के नही हैं। द्वेष करने वाला और सड़ने वाला धर्म नहीं, बल्कि विश्व-व्यापी सहिष्णुता का धर्म। मैं धर्म से भिन्न राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकता। वस्तव में धर्म तो हमारे हर एक कार्य में व्यापक होना चाहिये। धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ नहीं, उसका अर्थ है—विश्व की राजनैतिक सुव्यवस्था। बाहर की अपेक्षा भीतरी पवित्रता की ज्यादा जरूरत है। भीतर अगर घुन लगा हो तो उस पर बनाया हुआ सर्वथा दोषहीन राज-विधान भी सफेद कब्र-सा होगा। हमें आत्मशुद्धि और आत्म-त्याग की भावना बढ़ानी होगी। चरित्र के बिना सारा ज्ञान बुराइयों की जड़ है। नीति, सदाचार और धर्म एक ही बात है। इनके बिना मनुष्य जीवन बालू पर खड़े किये गये मकान की तरह है।

जिस 'धर्म्म' या 'सदाचार' को भारतीय 'गणतन्त्र' तथा 'संविधान से सर्वथा बहिष्कृत कर दिया गया हैं, उस पर महात्मा गांधी कितना बल देते हैं, यह बात उपर्युक्त पंक्तियों से भलीभांति जानी जा सकती है। महात्मा जी ने 'सुराज्य' की जो परिष्कृत परिभाषा की है, और जिन विशेषताओं को वे 'सुराज्य' संविधान में सम्मिलित करना चाहते थे, उनका आज कोई जिक्र तक नहीं करता। किसान, मजदूर तथा जनता घोर संकट में है। आर्थिक कठिनाइयों ने सबको त्रस्त-ग्रस्त कर रखा है। जिस 'सुराज्य' युग में स्नेह, समता, सहयोग तथा सद्भावना का सुखदायक दृश्य दिखाई देना चाहिये था, आज उस में दमन, पद-प्रभुता, गोली-काण्ड, हड़ताल, अनशन, विस्फोट, सत्याग्रह, भुखमरी, निरुद्यमतादि की चण्डी चिंघाड़ रही है! क्या बापू ने ऐसे ही 'स्वराज्य' या 'सुराज्य' की कल्पना की थी! क्या इसी 'सुराज्य' के लिए, देश-भक्त वीरों ने अपने अमूल्य प्राणों की आहुति दी थी! क्या इसी 'स्वतन्त्रता' के निमित्त अगणित त्यागी-तपस्वी बलि-वेदी पर चढ़े थे!

राजनैतिक सम्प्रदायवाद

देश में धार्मिक सम्प्रदाय तो क्षीण हो रहे हैं, परन्तु राजनैतिक सम्प्रदायों का बल बढ़ रहा है। इन सम्प्रदायों के ही महन्त-मठाधीशों में से कुछ प्रवीण-पुङ्गव, सत्ता देवी के पण्डे पुजारी हो जाते हैं। तब उनका आदर्श 'गांधीवाद' न रहकर, विदेशीय शासनविधि का अन्धानुसरण मात्र बन जाता है। वे अपने कृपा-कटाक्ष से निमेष मात्र में

देश-द्रोही को देश-भक्त और देश-भक्त को देश द्रोही-यानी सोने को पीतल और पीतल को सोना बना डालता हैं। सीधी-सादी और भोली-भाली जनता को अपने मनोमोहक माया जाल में फांस लेना, उनके बाएं हाथ का खेल बन जाता है। आज केवल 'गांधी जी की जय' बोलकर गांधीजी का उच्च आदर्श-संसार के सामने उपस्थित किया जा रहा है। परन्तु इस आदर्श वादिता के बेढंगे वातावरण में, सत्य-अहिंसा का श्रवण-सुखद संगीत तो नहीं सुनाई पड़ता, हाँ, ठाठ पसन्दी, स्वार्थ-साधना, पदलोलुपता, अधिकार-लिप्सा, बिरादरीवाद, पुर-परिवार-पोषकता आदि की भौंड़ी भणन्तें अवश्य कर्ण-गोचर होती रहती है।

महात्मा गांधी कहते हैं कि "लोकतन्त्र में, लेखनी तथा वाणी स्वतन्त्र होनी चाहिए। रचनात्मक और विवेकपूर्ण आलोचना ही गणतन्त्रीय सरकार का भोजन है। भेड़ों के झुण्ड की भांति बिना सोचे, बिना इधर-उधर देखे, आगे बढ़ना प्रगति नहीं है ? विचार, वाणी और आचार में सत्य होना ही सत्य है।" परन्तु आज राजनैतिक सम्प्रदायवाद में विचार-स्वातन्त्र्य के लिए कहीं स्थान नहीं ! कोई कितनी ही सद्भावना से, कैसी ही अच्छी बात क्यों न कहे, परन्तु यदि वह गुटबन्दी के विरुद्ध है तो कहने वाला तुरन्त अनुशासन की तोप से दाग दिया जाता है।

जनतन्त्र का क्रिया-क्रम

आज दलतन्त्र या पार्टी-शासन तो है, परन्तु 'जनतन्त्र' नहीं। यही देखकर वर्त्तमान युग के महान् विचारक एवम् गांधीवाद के प्रमुख मर्मज्ञ सन्त विनोवा कहते हैं—

"आज की स्थिति क्या है ? मानलो सौ वोटर्स (मतदाता) हैं। इनमें से साठ लोगों ने वोट दिये, चालीस ने नहीं। इनमें तीस वोट जिसे मिले, वह पार्टी राज चलाती है और बाकी तीस वोट भिन्न पक्षों में बँट जाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि तीस लोगों की सत्ता सौ पर चलेगी। इस पर बोगस जनतन्त्र चलता है। पुराने राजा जितना नुकसान कर सकते थे, उससे ज्यादा नुकसान ये कर सकते हैं। क्योंकि लोकमत अनुकूल है, ऐसा दावा ये कर सकते हैं।"

इतना ही नहीं, सन्त बिनोवा इसी सम्बन्ध में पुनः लिखते हैं—

"जैसे बेवकूफ बादशाह और उसका वजीर विद्वान् और ज्ञानी होता है न। बादशाह की चोटी और दाढ़ी जो भी हो, वह वजीर के हाथ में ही रहेगी। वह बादशाह तो नाम-मात्र का ही है, क्यों कि वह मूढ़ है। भले ही सिंहासन पर बिठा दिया हो, फिर भी वह भेड़ासन है। नाम-मात्र का बादशाह परन्तु गुलाम होकर बैठा है। हिन्दुस्तान की जो डिमोक्रेसी (लोकतन्त्र) है, उसकी हालत ऐसे ही बादशाह की सी है। इसलिए सारे देश का दारोमदार—उसका उद्धार करना या डुबाना—आज चन्द लोगों के हाथों में है। यानी हमने डिमोक्रैसी के नाम पर, सारी सत्ता चन्द लोगों के हाथों में दे दी है और 'डिमोक्रैसी' 'डिक्टेटर शाही' बनी हुई है।"

मोहमयी सत्ता

वस्तुतः बात यह है कि जिस राजनैतिक सम्प्रदाय या 'सियासी गुट' ने बातें बना या सब्ज बाग दिखा कर, 'वोट' बटोर लिये वही सत्ताधीश बन बैठा ! फिर पांच वर्ष तक जनता उसकी गुलाम; और वह जनता का स्वामी, सर्दार, सरकार और सब कुछ ! फिर तो योजना-युवतियाँ अपने कर्कश करों में, कठोर करों की कनक-कुसुमाञ्जलियाँ लेकर उन्हें जर्जर जनता के जीर्ण-शीर्ण शरीर पर बिखेरती हैं, सत्ता स्वामिनी दमन-दीपकों से आरती उतारती है, उपेक्षा-उद्भूत आतङ्क-अक्षतों से अर्चना की जाती है और भभकती भाषा में भुनी घुड़कियां-झिड़कियाँ अभिनंदन के लिए आगे आती हैं।

आज देश में सत्ता देवी के पण्डे पुजारी तो बहुत हैं, परन्तु निष्पक्ष नेता नहीं दिखाई देता। ऐसा निपुण निरीह नेता जो पदप्रभुता का प्रभाव

और सत्ता-सुन्दरी का बहु-पाश त्याग कर, जर्जर जनता को गांधीवाद के उच्च आदर्श की ओर अग्रसर करे। राजनैतिक सम्प्रदाय की सड़ायँद अथवा पार्टी-प्रियता के प्रपंच-पंक से दूर हो। जो निर्भीक और निष्पक्ष होकर यह बतावे कि स्वतन्त्र देश में लोकतन्त्र किस प्रकार सफल, सबल और सार्थक बन सकता है। गत वर्ष इन पंक्तियों के लेखक ने एक 'खुली चिट्ठी' लिखकर बड़े विनम्र भाव से, माननीय पं० जवाहर लाल नेहरू से प्रार्थना की थी कि वे प्रधान मन्त्रित्व का सूत्र, किन्हीं अन्य सुयोग्य हाथों में सौंप कर, अपने विशाल व्यक्तित्व और असीम अनुभव का प्रयोग 'जन-नायक' रूप में करें। इससे जनता, सत्ता और राजनैतिक सम्प्रदायवाद आदि सबका सुधार होगा। मेरी उक्त 'खुली चिट्ठी' को देश के कितने ही विचारक विद्वानों ने 'जनता की आवाज' बताया। महामान्य राष्ट्रपति के यहाँ से भी सूचना मिली कि उन्होंने वह चिट्ठी पढ़ ली है। स्वयम् नेहरूजी ने भी उत्तर प्रदेशीय राजनैतिक सम्मेलन के अवसर पर, जौनपुर में भाषण देते हुए कहा—

"इधर समाचार पत्रों में इस प्रकार का एक पत्र प्रकाशित हुआ है कि मैं जनता की तभी अधिक सेवा कर सकता हूँ, जब प्रधान मन्त्री पद छोड़कर जनता के बीच आजाऊं। मैं भी बहुत कुछ यही अनुभव किया करता हूँ और आज से तीन वर्ष पूर्व मैंने ऐसा प्रस्ताव किया भी था, परन्तु मित्रों के बहुत कुछ आग्रह करने पर मैंने यह पद न छोड़ा।"

आश्चर्य है कि नेहरूजी जैसे महान् पुरुष जिस कार्य को स्वयम् आवश्यक और उपयोगी समझते हैं, उसे वे मित्रों के आग्रहवश नहीं कर पा रहे। जन-सेवा सम्बन्धी महान् कर्त्तव्य-पालन के आगे मित्रों के मोहमय में आग्रह का क्या मूल्य हो सकता है, यह बात विचारणीय है। प्रधान मन्त्री, राजपाल आदि के तो बंधे बंधाए काम होते हैं, वे तो नेहरूजी के बिना भी चलते रहेंगे। परन्तु उनका सा विशाल व्यक्तित्व खोजने पर भी न मिलेगा। क्या ही अच्छा हो पण्डित जी मित्रों का आग्रह त्याग कर जनता के बीच आजाएं और 'स्वराज्य' को 'सुराज्य' तथा 'दलतन्त्र' को 'गणतन्त्र' बनाने का प्रयत्न करें। वे इस कार्य के सर्वथा योग्य एवम् उपयुक्त हैं। सरकारी अधिकारी रहते हुए उनसे यह महान् कार्य कदापि न हो सकेगा। विशाल व्यक्तित्व का उचित उपयोग तो जन-नायक के रूप में ही हो सकता है, सत्तधारी की हैसियत से नहीं।

जन-शिक्षण

नेता विहीन स्वतन्त्र भारत में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या वर्त्तमान परिस्थिति निराशाजनक है ? क्या ये 'स्वतन्त्रता' और 'स्वराज्य' निरर्थक रहे ! नहीं, ऐसा सोचना भी भयंकर भूल और अक्षम्य अपराध है। 'गणतन्त्र' की स्थापना देश के लिए बड़े गर्व और गौरव की बात है। उसे सब प्रकार सफल सिद्ध कर दिखाना प्रत्येक भारतवासी का प्रधान कर्त्तव्य है। महात्मा गांधी ने स्पष्ट कहा है कि "सरकार तो जैसी जनता बनादे वैसी बनती है। 'प्रजातन्त्र में' लोगों को चाहिए कि वे सरकार की कोई गलती देखें तो उसकी ओर उसका ध्यान खींचें। जरूरत समझें तो सरकार को हटादें।' इस राजनैतिक सम्प्रदायवाद के युग में ऐसा कोई नेता या संगठन नहीं जो निष्पक्ष, निर्भय और निर्लिप्त भाव से, पद-प्रभुता तथा सत्ता का मोह त्याग कर, स्वतन्त्र भारत की जनता को राजनैतिक दृष्टि से, उसका कर्त्तव्य तथा अधिकार बोध करावे। जनतन्त्र के मौलिक सिद्धान्तों को सुनावे-समझावे। 'गांधीवाद' की विशेषता बतलावे। 'गांधीवाद' क्या है ? धर्म, नीति नैतिकता, समता, सदाचार, सहयोग, स्वतंत्रता, स्नेह, सहानुभूति ही तो वास्तविक गांधी वाद है, और कुछ नहीं। ऋषि दयानंद तथा अन्य महानुभावों ने भी, देश-कल्याण के लिए इन्हीं तत्वों को बहुत पहले, आवश्यक एवम् अनिवाय बताया है। कानून बनाने वाली सभा-संसदों तथा परिषदों पर, जनता के गाढ़े परिश्रम की कमाई

बर्बाद करने से सच्चे 'सुराज्य' की स्थापना नहीं हो सकती। इस के लिए तो त्याग-तप, संयम, हृदय परिवर्तन सत्य और अहिंसा का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रिय महासभा (कांग्रेस) ने महान कार्य किया। उसकी आवाज पर कोटि-कोटि जनता देश-सेवा के पुण्य-पथ पर अग्रसर हुई, त्याग-पथ की ज्योति जगमगाई बलिदानों को बल मिला, फलतः देश स्वतन्त्र हो गया। महात्मा गांधी ने अपनी महान् दूर दर्शिता से सोचा कि कहीं त्यागी-तपस्वी राष्ट्रसेवक स्वराज्य-सुख पाकर, सत्ता-सेवी न बन जाएं, इसीलिए उन्होंने कांग्रेस को समाप्त कर, 'जनतन्त्रवाद' पर विशेष बल दिया था। परन्तु बापू की यह विमल वाणी व्यर्थ गई। परिणाम-स्वरूप जनता का नहीं, दल विशेष का राज्य स्थापन हो गया। विवेक-विरक्त 'अनुशासन' ही 'स्वराज्य' का मूल मन्त्र बना; और इसी रूप में निरंकुश राजनीति रमणी नयनहीन नर्तिका-सी बन नग्न नृत्य करने लगी।

आर्य्यसमाज का कर्त्तव्य

आर्य्यसमाज का संगठन बड़ा सुदृढ़ है। उसका विस्तार सारे देश में भी पारंगत है। जिस प्रकार उसे राजनैतिक समाज-संशोधन में अद्भुत सफलता प्राप्त की उसी प्रकार उसे राजनैतिक गन्दगी दूर करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। जिससे जनता सत्ताधीशी के चंगुल से निकल कर, धर्माधार गांधीवाद अर्थात् सत्य-अहिंसा का आश्रय ले। मत-दान के लिए वह स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोगी और उचित पात्र चुन सके। यानी ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सके जो सत्य एवम् अहिंसा-मार्ग पर चलना-चलाना अपना प्रधान कर्त्तव्य बना चुके हैं और सुखमूल सुराज्य की स्थापना में समथ तथा सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज को आरम्भ से ही 'स्वराज्य' 'स्वतन्त्रता' का सन्देश सुनाया है। उसने प्रचलित राजनीति में, सामुदायिक रूप से भाग न लेकर, सर्वथा उचित कार्य किया परन्तु साथ ही अपने सदस्यों को उनके इच्छानुसार, राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने की पूरी स्वतन्त्रता दी। फलतः सहस्त्रों आर्य्य सदस्य अपना वैयक्तिक स्थिति से, स्वातन्त्र्य-समर में सम्मिलित हुए। अब आवश्यकता है कि आर्य्य समाज बड़े उत्साह और कर्मण्य भाव से आगे बढ़े और ऋषिदयानन्द द्वारा निर्दिष्ट 'राजार्यसभाएं' स्थापित कर, सैद्धांतिक दृष्टि से राजनैतिक क्षेत्र में अवतरित हो। यानी स्वतन्त्र भारत की जनता को मानवता तथा नागरिकता का पाठ पढ़ावें। राजनैतिक भ्रष्टाचार दूर करे--स्वार्थ-पूर्ण सड़ांयद को मेटे। अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों पर और बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों पर अत्याचार न करने दें। किसी की भाषा और भावनाओं पर कोई ठेस भी न पहुंचा पाए। सत्य, अहिंसा, स्नेह, सदाचार, सहयोग, समता, सहानुभूति को महत्व दिया जाए। राजार्य्य सभाओं में वे सब व्यक्ति सम्मिलित किये जाएं जो सैद्धान्तिक राजनीति के आधार पर, सर्वसाधारण को सुख-सुविधा पहुंचाने वाले साधनों को क्रियात्मक रूप देना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि इस पुण्य कार्य में आर्य्य समाज को अवश्य सफलता प्राप्त होगी, और वह सैद्धांतिक दृष्टि से राजनैतिक क्षेत्र में भी महान् काम कर सकेगा। जन-शिक्षण द्वारा, राजनैतिक मलिनता मिटाने के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं करना।

वह सामुदायिक रूप से राजनैतिक सम्प्रदायों की भांति अपने प्रत्याशी (उम्मेदवार) खड़े कर, चुनाव चक्र में कभी न पड़ेगा। हार-जीत, अधिकार लिप्सा और पद-लोलुपता से उसे कोई सरोकार न होगा सब से पहले उसे स्वयम् विमल-विशुद्ध एवम् निरीहनिर्लिप्त बनना है, तभी वह राजनैनिक क्षेत्र की गन्दगी दूर कर उसे पवित्र-पावन यानी साफ-सुथरा बना सकेगा। आज समय की पुकार है कि आर्य्य समाज निःस्वार्थ भावना से जन-सेवक के रूप में पुण्य-पथ पर अग्रसर हो और घोर त्याग-तपस्या से प्राप्त स्वतन्त्रता तथा स्वराज्य को सब के लिए अनुकूल-मंगलमूल बनाते।

सर्वे भवन्तु सुखिनःसर्वेसन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखः भाग्भवेत्।

शङ्कर-सदन)
आगरा)

हरिशङ्कर शर्मा

प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार लिखित अद्वितीय दो ग्रन्थ

धारावाही हिन्दी में सचित्र

(१) एकादशोपनिषत्

[मूल-सहित]

भूमिका ले०—श्री डा० राधाकृष्णन्, उप-राष्ट्रपति

पुस्तक की विशेषताएं

१—इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वेतर-इन ग्यारहों उपनिषदों को सुन्दर, सरल, धारावाही हिन्दी में इस प्रकार दिया गया है कि हरएक व्यक्ति आसानी से सब कुछ समझ जाय।

२-पुस्तक धारावाही हिन्दी में लिखी गई है इस लिए, 'सत्यार्थप्रकाश' की तरह इसकी साप्ताहिक सत्संगों में कथा हो सकती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है

३—इस ग्रंथ में पचास के लगभग सुन्दर चित्र हैं।

४—कोई विषय ऐसा नहीं है जिसे इस में खूब खोल कर नहीं समझाया गया हो।

५-हिन्दी जानने वाले सिर्फ हिंदी पढ़ते चले जाय, संस्कृत जानने वाले हिन्दी के साथ मूल संस्कृत की तुलना करते जांय—दोनों के लिये ग्रन्थ एक समान उपयोगी है।

६—सत्संगों के लिए, पुस्तकालयों के लिए, निजी संग्रह के लिए, इनाम देने के लिए, भेंट के लिए इस से बढ़कर दूसरा ग्रंथ नहीं।

७—पृष्ठ संख्या डिमाई साईज के ६५० पृष्ठ है, बढ़िया कपड़े की जिल्द है, जिल्द पर चार रंगों का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का आर्ट पेपर पर छपा चित्र है, मोनो टाइप है, फिरभी दाम सिर्फ बारह रुपया है। पुस्तक की भूमिका डा० राधाकृष्णन् ने लिखी है, इसी से इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आज ही मंगाइये।

आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक

(२) आर्य-संस्कृति के मूल-तत्व

[कुछ सम्मतियों का सार]

१—**'आर्य' लिखता है**—"आर्य समाज के क्षेत्र में ठोस साहित्य की कमी कही जाती है। प्रो० सत्यव्रत जी की 'आर्य संस्कृति के मूल तत्व' एक ऐसा उच्च-कोटि का ग्रन्थ है जिसे आर्यसमाज का ठोस साहित्य कहा जा सकता है इस ग्रंथ के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों इसका स्थान आर्य समाज के साहित्य में बढ़ता जायगा।"

२—**'दैनिक हिन्दुस्तान' लिखता हैं**–"हम तो यहां तक कहने का साहस रखते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सांस्कृतिक मिशन के प्रत्येक सदस्य को इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। लेखक की विचार-शैली, प्रतिपादन शक्ति विषय-प्रवेश की सूक्ष्मता डा० राधाकृष्णन् से टक्कर लेती है।"

३—**'नव-भारत टाइम्स' लिखता है**—"लेखक ने आर्य-संस्कृति के अथाह समुद्र में पैठकर उसका मंथन करके उसमें छिपे रत्नों को बाहर लाकर रख दिया है। भाषा इतनी परिमार्जित है कि पढ़ते ही बनती है। इस ग्रंथ को अगर आर्य संस्कृति का दर्शन-शास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हिंदी के संस्कृति-सम्बंधी साहित्य में इस ग्रंथ का स्थान अमर रहने वाला है।"

'आर्यमित्र, सार्वदेशिक, आर्य-मार्तण्ड, विश्वदर्शन सरस्वती आज आदि सभी पत्रों ने इस पस्तक को आर्य-संस्कृति पर सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ घोषित किया है। जो लोग 'एकादशोपनिषत्' खरीदें उन्हें यह ग्रंथ भी अवश्य लेना चाहिए, क्यों कि यह ग्रन्थ उपनिषत् की गुत्थियों को एक दम सुलझा देता है।

पृष्ठ सख्या २७०, सजिल्द का दाम चार रुपया

उक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—**विजयकृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार, बलबीर ऐवेन्यू, देहरादून**

कैरों शाही होगी समाप्त

रचियता—श्री सोहनलाल "पथिक" रेडियो सिंगर

यह कैरों औरंगजेब बना, इसने डायर को मात किया,
अकबरपुर में हर युवा वृद्ध स्त्री बच्चों पर वार किया।
नन्हें शिशुओं को भूलों से रे उठा सड़क पर फेंक दिया,
लोगों को लिटा नितबों पर लाठी से प्रबल प्रहार किया ॥ [१]

रे उसको दया न आई बच्चों पर हाथ उठाने में,
रे उसको शर्म नहीं आई वृद्धों पर जुल्म ढहाने में।
रे उसको लाज नहीं आई बहिनों की लाज लुटाने में,
रे उसको हया नहीं आई युवकों की खाल उडाने में ॥ [२]

पन्द्रह अगस्त सत्तावन को जब प्रजा खुशी में झूम रही;
तब अकबरपुर कैरोंशाही थी फाग रक्त में खेल रही।
यह कांड देख श्री अलगू के अविरल आँसू की धार बही,
पर हृदयहीन नेहरू जी ने किंचित भी कीनी आह नहीं ॥ [३]

था हरा घाव अकबरपुर का तिस पर दूजा आघात हुआ,
फीरोजपुर की जेल में जब भीषणतम लाठी चार्ज हुआ।
उन सत्याग्रही निहत्थों पर क्यों ऐसा जुल्म अपार हुआ,
जिसकी समता मिलना मुश्किल से आज सभ्य संसार रहा। [४]

लाठी की भीषण चोटों से है आज सुमेर शहीद हुआ
हिन्दी रक्षा आन्दोलन को वह वीर रक्त से सींच गया।
उसने अपनी बली देकर के पञ्जाब प्रदेश पुनीत किया,
भारत के अमर शहीदों की श्रेणी में नाम शुमार किया। [५]

प्यारे सुमेर तुम इस युग के फिर नये हकीकत राय हुए,
हिन्दी हिन्दू की लाज बचा हँस हँस प्राणों पर खेल गये ॥
पंजाब प्रांत की आन रखी सच्चे बलिदानी सिद्ध हुए,
भारत का उन्नत भाल किया तुम जग में अमर प्रसिद्ध हुए ॥ [६]

यदि नेहरूजी ! मानवता है तो अकबरपुर को हो आओ,
है सचमुच हृदय अगर बाकी, जल्दी सुमेर के घर जाओ,
प्यारे शहीद के लिए आज तुम दो आंसू तो ढलकाओ,
उस बलिदानी के वृद्ध पिता माता को धीर बंधा आओ ॥ [७]

पर शोक ! तुम्हारा हृदय अहो पत्थर से अधिक कठोर हुआ;
यह पंचशील उपदेश आज जगभर को धोखा सिद्ध हुआ।
कैरों को छुट्टी मिली खुली वह अरे नशे में चूर हुआ,
तारासिंह की कृपाण से तव हृदय सत्य भयभीत हुआ ॥ [८]

परमानन्द, आनन्द भिक्षु प्राणों पर खेल रहे,
स्वामी रामेश्वर, जगत कृष्ण, वीरेन्द्र जेल दुख भोग रहे।

जगदेव, यज्ञदत्त, लालचन्द, रघुवीर घोर सह कष्ट रहे,
सारे भारत से सत्यग्रही सिर कफन बांध कूच रहे ॥ [९]

फिर भी क्यों आंखें बंद आज नेहरू और पन्त तुम्हारी हैं,
रे पंजाबी की आड में यह अब सिखस्तान की बारी है।
पर सच मानो यह आजादी के मिटने की तैयारी है,
हैं देशद्रोही मन्त्री बनते यह नीति जगत से न्यारी है ॥ [१०]

घनश्याम आत्मानन्द ने अन्याय मिटाने की ठानी है,
नेहरू, तारासिंह, कैरों की है कुटिल नीति अब पहीचानी,
है मचल उठा भारत सारा अब चल न सकेगी मनमानी,
बच्चा बच्चा हुंकार रहा बन कर सुमेर सा बलिदानी ॥ [११]

यदि शांति चाहते हो तो सचमुच हिंदी भक्तों का मान करो,
कैरों को हटा शीघ्र सच्चर पेप्सू फार्मूला रद करो।
आर्यों की न्याय पूर्ण सच्ची सातों माँगें स्वीकार करो,
बापू के सच्चे शिष्य हो तो मत जनमत से खिलबाड करो ॥ [१२]

सचमुच सुमेर तुम स्वर्ग चले वहाँ खडे दयानंद स्वागत को,
लेखराम, लाजपत, श्रद्धानंद दौड़े सब गोद उठाने को।
हैं बाट हकीकत देख रहे, रे भगत गले लिपटाने को,
सब भारतीय नत मस्तक हैं है धन्य तुम्हारी जननी को ॥ [१३]

प्रिय पवन यह बलिदान तेरा जल्दी पुनीत रंग लायेगा,
हिंदी आन्दोलन दिन प्रतिदिन यह दावानल सा दहकेगा।
कैरों शाही होगा समाप्त सिखस्तान धूल मिल जावेगा,
निश्चित है हिंदी को अपना सम्मान प्राप्त हो जावेगा ॥ [१४]

शुभ सूचना शुभ सूचना शुभ सूचना

हर प्रकार का आर्य सामाजिक साहित्य
वी॰ पी॰ से मंगाने का
एक मात्र विश्वस्त पता
सुबोध प्रकाशन
४५९२, चरखेवालान
दिल्ली—६

सूचीपत्र आज ही मँगाइये। उचित कमीशन भी दिया जाता है।

नेहरू को अलगूराय शास्त्री का पत्र

फिरोजपुर जेल में २४ अगस्त को निरीह हिंदी सत्याग्रहियों पर जो निर्दयतापूर्ण और निर्मम लाठी चार्ज हुआ उसकी जांच के लिये संसदीय कांग्रेस दल के महा मन्त्री श्री अलगूराय शास्त्री २७ अगस्त को फिरोजपुर पहुंचे थे। उन्होंने लोट कर प्रधान मन्त्री को जो रोमांचकारी प्रतिवेदन दिया वह नीचे दिया जाता है।

उन्होंने बताया कि किस प्रकार नेहरू जी की नीति हिंदुओं के लिए घातक है और किस प्रकार उनकी हिंदू विरोधी नीति का दुरुपयोग कर के पंजाब सरकार के अधिकारी हिंदुओं पर अत्याचार कर रहे हैं।

श्री शास्त्री ने नेहरू जी से बार-बार अनुरोध किया कि वह स्वयं फ़िरोजपुर जेल में जा कर पीड़ितों को ढाढस दें परन्तु ओमान में अरब मुसलमानों पर बम वर्षा से दुखी होने वाले नेहरू का दिल सुमेरसिंह की हत्या और सत्याग्रह की चीतकारों पर न पसीजा।

श्री शास्त्री जी ने नेहरू जी को जो प्रतिवेदन प्रस्तुत दिया वह नीचे दिया जा रहा है।

पूज्य पंडित जी,

बन्दे।

मैं आप को यह लिख कर कष्ट दे रहा हूँ। २४—८-१९५७ को फिरोजपुर केन्द्रीय कारावास में जो दुर्घटना हुई उसके रोमांचकारी समाचार मेरे पास आर्य सार्वदेशिक सभा से पहुंचे। मैंने घटना-स्थल पर जाने की स्वीकृति उन्होंने दे दी। तदनुसार मैं २७-८-५७ की रात में वहां गया। २८-८-५७ को वहां रहा और कल प्रातः यहां आया हूँ।

इस यात्रा में फ़िरोजपुर के वातावरण को देखा और उसका जो प्रभाव मेरे मन पर है, आप की सेवा में वह रखना चाहता हूँः—

(१) हिंदी सत्याग्रहियों को सिख रीजन की जेलों में एकत्रित रखना बुद्धिमता नहीं है। जेल के कैदियों में जो अधिकांश सिख हैं इन हिंदी वालों के लिए भारी घृणा है। इससे कहीं भी, किसी समय भी संघर्ष की आग भड़क सकती है। दोष इन अपराधियों का होगा, बदनाम सरकार होगी और कांग्रेस संगठन।

(२) फिरोजपुर में जिस निर्दयता, निष्ठुरता निर्ममता से हिंदी सत्याग्रहियों को जेल के कैदियों की लाठियों से पिटवा कर उनकी हड्डियां तुड़वायी गई हैं, उसे देख कर आप तो अवश्य ही विचलित हो उठेंगे। विश्वास कीजिए, मैंने कल्पना भी न की थी कि यह दृश्य देखूंगा। बूढ़े संयासी, बूढ़े लोग, बच्चे और कुछ हट्टे कट्टे भी जो सब ३१२ हैं, इस प्रकार मारे गये हैं कि यदि उस प्रकार भैंसा गाड़ी हांकने वाला, कूड़ा ले जाने वाला भंगी शहर में अपने भैंसे को पीटता दिखाई पड़े तो उसका चालान पुलिस क्रुएल्टी टु एनिमल एक्ट में किए बिना नहीं रह सकती। पंडित जी मेरी आंखों से आंसू ही बहते रहें जब तक मैं उन सत्याग्रही बंदियों में घूमता रहा।

(३) सुपरिंटेंडैंट ने बताया कि कोई भी तनाव किसी प्रकार का घटना से पूर्व उन्हें ज्ञात न था। ५७६ सत्यग्रहियों में से ३१२ को इस प्रकार पीटकर उनकी हड्डियों को तोड़ देना १०—१५ मिनट के समय में एक आश्चर्य ही लगता है। जेल के पुराने अपराधियों की सहायता से यह सब हुआ। उस दिन जेल सुपरिंटेंडैंट छुट्टी पर थे। घटना घट जाने के बाद एलार्म के परिणाम स्वरूप सब बाद में आये और जो कुछ हो गया था उसकी रोमांचकारिता पर बहुत खिन्न हुए।

(४) जेल में एक अपराध के लिए जो लोग बंद हैं उन्हें इस प्रकार पीटा जाये, यह बर्बरता का

एक भीषण नंगा नृत्य है। इस आंदोलन में साम्प्रदायिक रंग आ जाने के कारण तथा वैसे भी भाषा के प्रश्न को लेकर एक विवाद खड़ा कर देने वालों के संबंध में आप के मन में जो खेद और क्षोभ है, उसे सब जानते हैं।

आप के शब्दों का आदर इस सत्याग्रह के संचालकों ने नहीं किया, यह भी सब को विदित है और इस कारण इन लोगों पर कुछ ज्यादती की जाय तो उससे कुछ हानि सम्भव नहीं है। यह भावना भी कुछ सरकारी क्षेत्रों में कार्य करती हैं। साम्प्रदायिकता के नाम पर अहिंदू खूब लाभ उठाते हैं। हिंदू की वाणी बंद है। वह खुले तो आप की फटकार पाने का भय रहता है।

(५) आज पंजाब में हिंदुओं की दुर्गति हो रही है। भारी अल्पसंख्यकों की दया पर बहुसंख्यकों को छोड़ दिया गया है। सिख-हिंदू तनाव बढ़ती जा रही है। उसी तनाव का परिणाम है फिरोजपुर केन्द्रीय कारावास में हिंदू सत्याग्रहियों का इस प्रकार दुश्चरित्र दण्डित अपराधी सिखों के द्वारा पिटवाया जाना। सिख सत्याग्रही भी पीटे गये, इसलिए कि वह हिंदी वालों का साथ दे रहे हैं। "पढ़ो हिंदी, पढ़ो हिंदी" कह कर सत्याग्रहियों को पीटा गया।

(६) आप की सर्वोच्च सत्ता में बंदी निरीह पिटें, इससे आप का यश और तप क्षीण होता है—तब समस्त राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति घटती है। पंडित जी! जेल देखिये—अवश्य जाइये—स्वयं जाइये, कांग्रेस तथा कांग्रेसी सरकारों की मर्यादा और यश की रक्षा कीजिये, पीटे गये सत्याग्रहियों की क्षतिपूर्ति का आदेश कीजिए। आप का जाना उनके आँसू पोंछ देगा। बड़ा अत्याचार हुआ है, बड़ा अनाचार। विश्वास करें, कुछ जेल अधिकारियों को मुअत्तल कर देने तथा जूडीशियल इन्क्वायरी बैठा देने से लोगों को बड़ी राहत मिली है, परन्तु आप को स्वयं इस नृशंसता को देख लेना चाहिये। न जा सके तो पंत जी को भेजिए, गुरुमुखसिंह मुसाफिर को स्वयं जाना चाहिए।

(७) संक्षेप में मेरी सम्मति यह हैं:—

(१) फिरोजपुर सत्याग्रही कैम्प जेल हिंदी क्षेत्र में हटाया जाय; (२) कोई भी हिंदी सत्याग्रही सिख रीजन के जेल में न रखा जाय, (३) २४-८-५७ को फिरोजपुर केन्द्रीय कारावास के कैम्प जेल में पीटे गये हिंदी सत्याग्रहियों की क्षति-पूर्ति की जाय। (४) आप स्वयं उक्त जेल का निरीक्षण करें। (५) आक्रमणकारी एवं आक्रमण कराने वाले लोगों को कठोर दण्ड दिया जाये।

यदि आप चाहेंगे तो आप की सेवा में उपस्थित होकर जुबानी भी जो कुछ पूछेंगे बताऊँगा—परन्तु आपका बहूमूल्य समय मुलाकात में लेना तभी ठीक समझता हूँ जब आप बुला कर पूछना चाहें, नहीं तो लिख कर अपने विचार आपकी सेवा में भेजदेना ही मुझे उपयुक्त प्रतीत होता है। उक्त घटना के सम्बन्ध में स्थानीय नागरिकों की ओर से दिया गया विवरण में आप की सेवा में भेज रहा हूँ।

धृष्टता के लिये क्षमा चाहता हूँ।

आप का सर्वथा विश्वासनीय
(अलगूराय शास्त्री)

पुनश्चः स्वामी परमानन्द को जेल मे हटा दिया जाये।

(वीर अर्जुन से उद्दत)

(शेष २३वें पृष्ठका)

स्थान पर प्राणि हिंसा एवं तज्जन्य मांसाहार का सर्वदा निषेध किया है किंतु आज का बौद्ध समाज सूअर बकरा मुर्गा बैल ही नहीं अपितु छिपकली सर्प मेढ़क चूहा पाखाने के कीड़े तक का अहार करता है। पुनरपि वह अपने को अहिंसा का प्रचारक एवं बुद्ध का शिष्य बनने का अभिमान करता है। मांसाहार को छोड़कर ही बुद्धं शरणं गच्छामि का पाठ ठीक होगा। अन्यथा इस प्रकार के व्यवहार से कभी बौद्ध समाज संसार का पथ प्रदर्शक नहीं बन सकता है। महात्मा बुद्ध सच्चे योगी एवं अहिंसा दया के प्रतीक एवं उसके सच्चे स्वरूप थे। वे मांसाहारी न थे।

सृष्टि का इतिहास

मूल लेखकः—अमर शहीद श्री पण्डित लेखराम आर्य पथिक

सम्पादक व भूमिका लेखकः—श्री पं० अमरसिंह जी आर्य पथिक

'तवारिखे दुनिया' का हिन्दी अनुवाद। पुस्तक का मूल्य २) वेदप्रकाश के ग्राहकों को रजिस्ट्री डाक खर्च सहित १॥)

सृष्टि के इतिहास पर कुछ सम्मतिय

श्री सत्यकाम सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यरत्न

स्व० पं० लेखराम रचित 'सृष्टि का इतिहास' एक अप्राप्य ग्रन्थ था। श्री गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली वालों ने इसे पुनः प्रकाशित करके आर्य जगत् का ही नहीं अपितु इतिहास क्षेत्र के बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है। वैसे तो इतिहासों की इस युग में कमी नहीं है पर वे सारे के सारे इतिहास, २-४ को छोड़ कर, पाश्चात्य विद्वानों के पक्षपातपूर्ण लिखे गये उन इतिहासों का अन्धानुकरणमात्र हैं, जो किसी भी प्रकार भारतीय प्राचीनता की तो बात ही दूर, विश्व प्राचीनता को भी ईसा से १ से ८ सहस्र वर्ष पूर्व से आगे का मानने में हिचकिचाते हैं।

इस युग में सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने अकाट्य युक्ति और प्रमाणों के आधार पर सृष्टि का समय लाखों नहीं अपितु अरबों वर्ष का बताया। स्व० पं० लेखराम जी ने बड़े परिश्रम से पाश्चात्य विद्वानों के अनेकानेक इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन कर, अद्भुत इतिहास-सामग्री जनता के समक्ष उपस्थित कर, ऋषि के उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

जो लोग प्रत्येक बात की प्रमाणिकता के लिए केवल पश्चिम की ओर ही देखते हैं, निश्चय ही उन लोगों के लिए भी यह पुस्तक एक प्रकाश-स्तम्भ का काम देगी। सुयोग्य पण्डित जी ने लगभग ३० पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाण देकर यह सुस्पष्ट कर दिया है कि स्वयं पाश्चात्य विद्वान् भी सृष्टि को बने एक अरब वर्ष मानते हैं। ये विद्वान् साधारण ऐतिहासिक न हो कर भूगर्भवेत्ता (ज्यालोजिस्ट) हैं और इनकी सम्मतियों को हँस कर नहीं टाला जा सकता।

पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त अन्य अनेक देशी, विदेशी प्रमाण भी पं० जी ने अपने पक्ष के समर्थन में उपस्थित किये हैं। मैं निःसंकोच यह कहता हूँ कि इस के पढ़ने से मुझे भी अनेकों नयी बातों और प्रमाणों का पता चला।

'सृष्टि-इतिहास' एक बहुत विस्तृत शब्द है अतः उसमें सभी देशों और सभी बातों का इतिहास समाविष्ट हो सकता है। अतः सृष्टि की उत्पत्ति और उसकी आयु के अतिरिक्त भारतीय प्राचीन साहित्य के समय के विषय में भी सुयोग्य लेखक ने पर्याप्त विश्लेषण किया है। कोई भी इतिहास का विद्यार्थी जब तक ऐसे इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करता तब तक उसका ऐतिहासिक ज्ञान अपूर्ण और एकांगी ही रहेगा। अतः प्रत्येक इतिहास-जिज्ञासु को इस पुस्तक का अवश्य पठन करना चाहिए। ऐसी मेरी विनम्र धारणा व प्रार्थना है।

पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार देहरादून

श्री गोविन्दराम हासानन्द ने साठ वर्ष पूर्व श्री पं० लेखराम जी द्वारा सृष्टि के इतिहास को उर्दू से हिन्दी में प्रकाशित करके हिन्दी साहित्य की और इसके साथ साथ पुरातत्व विभाग की भारी सेवा की है। पं० लेखराम जी ने भिन्न भिन्न सृष्टि संवतों पर बहुत ही गहराई में जाकर खोज की है और वर्तमान पुरातत्ववेत्ताओं को इस खोज से बहुत सहायता मिल सकती है। भारतीय ग्रन्थों में

सृष्टि संवत् वही दिया गया है जो आजकल के भूगर्भ शास्त्री अपनी भूगर्भ की खोजों से बतला रहे हैं। इस संबन्ध में यह आश्चर्य की बात है कि भूगर्भ शास्त्र का सहारा लिए बिना भारतीय विद्वान् सृष्टि के उसी संवत् पर कैसे पहुंचे थे जिस पर वतमान विज्ञान पहुंचा है। श्री पं० लेखराम जी का प्रस्तुत ग्रन्थ इन सब दिशाओं में विचार करने की प्रेरणा देता है। मुझे आशा है कि श्री गोविन्दराम हासानन्द के इस ग्रन्थ को हिन्दी में प्रकाशन के स्तुत्य कार्य की पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

आचार्य भद्रसेन जी अजमेर—

हुतात्मा प्रातः स्मरणीय पं० लेखराम जी द्वारा लिखा गया यह सृष्टि का इतिहास वास्तव में अत्यन्त खोजपूर्ण तथा उनकी गवेषणा बुद्धि का परिचायक है। पं० लेखराम ज़ी की रचनायें उर्दू में होने के कारण हिन्दी जगत उनकी अमूल्य कृतियों से वंचित रहा है। श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पूज्य पण्डित जी की इस अपूर्व रचना को प्रकाशित कर हिन्दी जगत का बड़ा उपकार किया है। आशा है आप इसी प्रकार पं० लेखराम जी की अन्य अमूल्य रचनाओं को भी हिन्दी में प्रकाशित कर "तहरीर का काम बन्द न हो" उनकी इस वसीयत को पूरा करेंगे। इतिहास प्रेमी पाठकों से हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि इसका अवश्य स्वाध्याय करें।

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय इलाहबाद—

पं० लेखराम जी की कृति को जनता के सामने लाने के लिए जो उद्योग किया है वह अच्छा है क्योंकि लोगों को हमारे नेताओं के ६० वर्ष पूर्व विचारों के जानने का अवसर मिलता है।

श्री पं० सत्यव्रत वेदालंकार, अहमदाबाद—

सृष्टि के इतिहास का उर्दू से हिन्दी अनुवाद किया यह अच्छा हुआ। विद्वानों के लिए तथा सर्व साधारण के लिए भी यह पुस्तक उपादेय है। संशोधन करने में प्रर्याप्त समय दिया गया है। तथा गूढ़ विषय को सरलता से समझाया गया है।

सहयोगी आर्य मित्र लिखता है--

'वेदप्रकाश' दिल्ली ने अपने अगस्त मास के अंक में 'सृष्टि का इतिहास' उपस्थित किया है जिसके प्रणेता पण्डित लेखराम पथिक हैं।

वेद मन्त्रों के आधार पर सृष्टि की आयु तथा संसार की अन्य व्यवस्था का प्रमाणिक वर्णन इसमें किया गया है। सृष्टि के इतिहास सम्बन्धी यह पुस्तक प्रमाणिक है और सम्प्रति प्रकाशकों के यहां यह उपलब्ध भी नहीं थी। अतः इसका प्रकाशन करके श्री गोविन्दराम हासानन्द ने एक सराहनीय कार्य किया है। सृष्टि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए।

श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड

(सम्पादक गुरुकुल पत्रिका हरिद्वार)

सृष्टि का इतिहास पुस्तक को मैंने बहुत ध्यान से पढ़ा। पुस्तक समस्त इतिहास प्रेमियों और सत्य जिज्ञासुओं के लिए बहुत उपयोगी है। इसके पढ़ने से आजकल के एतिहासिकों की अनेक भ्रांतियों का निवारण हो सकता है। महाभारत काल, आदि शंकराचार्य जी के काल आदि के सम्बन्धों में इसमें बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है मनुस्मृति के काल का निर्णय करते हुए पृ० ४८ पर जो प्रमाण दिया है इसके अनुसार मनुस्मृति का निर्माण काल १२०५२२६८०+६७ वर्ष ठहरता है। यह श्लोक आजकल किसी संस्करण में मुझे नहीं मिला। और न अन्य विद्वानों को ज्ञात प्रतीत होता है। मुझे एक मौलिक प्रमाण मिला है जो अन्यत्र कहीं नहीं पाया गया सूर्य सिद्धाँत के रचनाकाल पर भी सप्रमाण विवेचन करते हुए उसे २१६४६६०+६७ वर्ष सिद्ध किया गया है। इत्यादि अनेक आश्चर्यजनक अनुसंधानों से पूर्ण यह पुस्तक अत्यधिक उपयोगी है।

———

महात्मा बुद्ध मांसाहारी न थे

(श्री सत्यमित्र शास्त्री वेदतीर्थ महोपदेशक आ० प्र० सभा उत्तरप्रदेश)

आधुनिक मांस भोजी बौद्धाचार्यों एवं बौद्ध मतावलम्बियों का विचार है कि महात्मा बुद्ध मांसाहारी थे किन्तु जो महात्मा दया एवं अहिंसा का अवतार हो उसे इस प्रकार लांछन, बिना किसी आधार पर लगाना ठीक नहीं है। उनके जीवन क्षेत्र की आधार शिला ही दया से प्रारम्भ होती है। एकदिन राजकुमार सिद्धार्थ गौतम अपने उद्यान में, विचार निमग्न बैठे थे कि नभ में उड़तें हुए हंसों की पंक्ति में से एक हंस बाण से विद्ध होकर उनके सम्मुख गिरा और छटपटाने लगा। दया से द्रवित होकर राज कुमार ने उस हंस को उठा लिया और हौज के जल से उसके शरीर का रक्त धोकर वह उसके घावों में सावधानी से पट्टी बांधने लगा। इसी समय उनका चचेरा भाई देवदत्त जो उनसे ईर्षा रखता था वहां आया और बोला इस पक्षी को मैंने मारा है। मैं इसका स्वामी हूँ इसको मुझे दे दीजिये। सिद्धार्थ ने पक्षी देने से अस्वीकार किया। अतएव परस्पर विवाद होने लगा। जिसका निर्णय न्यायाधीश के निकट पहुंचा। न्यायाधीश ने ने निर्णय दिया कि जिसने उसकी रक्षा की है वही इस पक्षी का स्वामी है। अन्त में राजकुमार गौतम ने उसे प्राण दान दिया। वह उनके जीवन का उज्जवल उदाहरण है जिससें सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्ध में अपार दया थी। उन्होंने यज्ञादि में मांस छोड़ने वालों को तथा हिंसा करने वालों को अनार्य कहा है।

श्लोक—न तेन अरियो होति, येन प्राणान् हिंसाति। अहिंसा सव्वपाणानां आरियोतिप वुधति॥

किसी प्राणी की हिंसा करने वाला आर्य कभी नहीं हो सकता है। प्राणी हिंसा का उद्देश्य ही मांसाहार है। विशेषतः जो योगी होता है वह कभी मांसाहारी नहीं हो सकता है। वर्तमान बौद्धों का बिचार है वि महात्मा बुद्ध ने जीवन में एकवार मांसाहार किया था। वह समय उनका अन्तिम काल है। जब वे कुशीनगर पहुंचे तब चुन्द के यहां सूकर मद्दव अर्थात् सुअर का मांस खाये थे। साथ ही अन्य शिष्यों को मांस खाने से रोका था। यही एक प्रमाण बौद्धों के पास है। किन्तु सब से प्रथम यह सोचना चाहिए कि जो जन्म से ही मांसाहारी न हो वह एकायक एक बार मांसाहार कैसे कर सकता है। यह बात सत्य है कि शूकर मद्दव शकर कन्द को कहते हैं। चूंकि यह जमीन के अन्दर होता है इसे सूकर खाता है। महात्मा बुद्ध अन्तिम समय रुग्ण थे वे ईश्वर विश्वासी इतने थे कि उन्होंने अपनी औषधी कभी नहीं की। आनन्द के कहने पर इस बार औषधी तैयार की गई। जिसको बुद्ध ने चुन्द के देने पर ग्रहण किया था। उसके ग्रहण करते ही महात्मा बुद्ध को अतिसार हो गया था। यही उनके मौत का कारण हुआ। सूकर मद्दव सूअर के मांस को नहीं कहा जाता है। अपितु शकर कन्द जो गोरखपुर के पास कुशीनगर की ओर होता है उसे कहा जाता है। यह कलंक महात्मा बुद्ध पर मांसाहारी बौद्धों ने लगाया है। मांसाहारी लोगों ने केवल अपने मांस भक्षणार्थ वह प्रपंच रचा है। जैसे व्यभिचारी दुराचारी लोगों ने भगवान कृष्ण तथा राम पर लांछन लगाया है। मांसाहारी लोगों का कहना है कि भगवान राम शिकार क्यों करते थे। इससे सिद्ध है कि वे भी मांसाहारी थे। किंतु भगवान राम हिंसक पशुओं एवं दुष्ट राक्षसों का शिकार करते थे। वे मांसाहारी न थे उसी प्रकार महात्मा बुद्ध कभी मांसाहारी न थे। पाणाति पाता वेरमणि सिक्खा पदं समदियामी यह पचशील का सिद्धांत सिद्ध करता है कि महात्मा बुद्ध ने प्रत्येक

(शेष पृष्ठ २० पर)

समाचार संग्रह

—महाशय कृष्ण तथा उनके पुत्र श्रीवीरेन्द्र को निवारक नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत उनके देहली निवास स्थान से पंजाब पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। उनको धर्मशाला की जेल में रखा गया जहां उनसे पहले महात्मा आनन्द स्वामी जी को रखा हुआ था। अब उन तीनों को पटियाला जेल में लाया गया है।

महाशय जी बीमार है उन्हें पैरोल पर रिहा किया जा रहा था पर उन्होंने पैरोल पर रिहा होने से इन्कार कर दिया।

—इस समय सारे पंजाब में दफा १४४ लागू है तथा हिन्दी रक्षा समिति के कार्यकर्ताओं को रफ्तार के साथ गिरफ्तार किया जा रहा है। इस समय सारा पंजाब सत्याग्रह का केन्द्र बन गया है।

—प्रतिदिन सैकड़ों सत्याग्रही पंजाब में गिरफ्तारी के लिए अपने को पेश करते हैं। पंजाब की जेलों में केवल ६००० बन्दी रखे जा सकते हैं। इस समय सारी जेलें भरी हुई हैं। २५ सितम्बर के समाचारनुसार जालन्धर की जेल में सत्याग्रहियों के लिए तम्बु लगाने पड़े तथा कम्बलों चादरों की कमी पड़ गई।

—हिन्दी रक्षा समिति के प्रधान कार्यालय सहारनपुर ने एक आदेश जारी किया है जिसके अनुसार सभी जत्थों को समय नष्ट किये बिना सीधा लक्ष्य की ओर जाना चाहिये। साथ में मूल्यवान वस्तुएं ले कर न चलें। तथा जो जत्था जिस स्थान से गिरफ्तार हो तथा जिस जेल में रखा जाय उसकी सूचना प्रधान कार्यालय को अवश्य दें।

—भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्रीघनश्यामदास गुप्त ने पंजाब हिन्दी रक्षा आंदोलन में गिरफ्तार होने वाले सत्याग्रहियों की पैरवी करने के लिए डिफेंस कमेटी बना ली है। जिसके अध्यक्ष मेरठ के अवकाश प्राप्त सेशन जज श्रीरतनलाल नियुक्त हुए हैं। यह कमेटी उन सभी बन्दी सत्याग्रहियों और कार्यकर्ताओं की पैरवी करेगी जिनको पुलिस जबरदस्ती गिरफ्तार करके जेलों में बन्द कर रही हैं।

—रोहतक, चन्डीगढ़ तथा करनाल की पुलिस ने पुरी नाकाबन्दी कर दी है ताकि सत्याग्रही निर्दिष्ठ स्थान पर न पहुंच सके। किसी भी व्यक्ति को पुलिस सन्देह में गिरफ्तार कर लेती है फिर भी सत्याग्रही किसी न किसी प्रकार केन्द्रों में पहुंच जाते हैं।

—भाषा स्वातन्त्र्य समिति के सदस्य तथा पंजाब एवम् हिमाचल प्रदेश जनसंघ के मन्त्री श्री यज्ञदत्त जी को नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था। पंजाब सरकार ने नजरबन्दियों के केसों पर निर्णय देने के लिए एक समिति संगठित की थी उस समिति ने श्री यज्ञदत्त को मुक्त कर दिया।

—२१ सितम्बर को डा० भार्गव ने श्रीघनश्यामसिंह गुप्त को वार्ता के लिए चन्डीगढ़ निमन्त्रित किया था। गुप्त जी की तथा भार्गव की वार्ता का कोई परिणाम नहीं निकला।

—२७ सितम्बर। दो दिन से हिसार जेल में बंदी ४५० सत्याग्रहियों ने भूख हड़ताल कर रखी है उनकी मांग है अच्छा भोजन मिले।

—२७ सितम्बर को पंजाब के स्कूल कालेज खुलने के समय पंजाब भर के विद्यार्थियों ने अभूतपूर्व हड़ताल की। १०० के लगभग विद्यार्थी नेताओं को गिरफ्तार किया गया।

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र । डाक खर्च माफ ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां

महात्मा आनन्द स्वामी—श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है । और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है ।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुन कर मेरा अन्तकरण गद्-गद् हुआ ।

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यलंकार—आर्य जगत में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जायगी ।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य—श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिए कवि का धन्यवाद करता हूँ ।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो यह कामना है ।

"ऋषि गाथा महाकाव्य"—ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें । इसी उद्देश्य से हमने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य में देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है । आप आज ही ४) का मनीआर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली ।

मध्य प्रदेश ईसाई मिशनरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिशनरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए । इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिशनरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है । भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों को इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी । अतः इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करे एक प्रति का मूल्य ॥) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मँगाने पर ।=) अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खच माफ ।

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं । आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं" वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है । वैदिक सुक्तों के प्राय ३०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बंधी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है । नये पुराने सभी गृहस्थों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक हैं ।"

मिलने का पताः—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

ग्राम पंचायतों, स्कूल, लाइब्रेरियों, पुस्तकालयों बैसिक ट्रेनिंग सेन्टरों तथा अधिकांश सरकारी संस्थाओं में खरीदा जाने वाला

(कृषि सम्बन्धी तीस पुस्तकों का सैट)

कृषि सम्बन्धी तथा देहात सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है देहाती पुस्तक भंडार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वह देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिये कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें

गेहूं की बाल के प्रतीक वाले किसान विकासमाला सीरीज की पुस्तकें

१	आलू की खेती	।।।)
२	टमाटर की खेती	।।)
३	गोभी की खेती	।।)
४	जीरा, धनिया, अजवाइन	।।।)
५	तरकारियों की खेती	१।।)
६	अच्छे बीज	।।।)
७	अच्छी खाद	२।।)
८	कपास की खेती	१)
९	गन्ने की खेती	।।।)
१०	फूल फुलवारी	२।।)
११	धान की खेती	१।।)
१२	संतरे की बागवानी	२।।)
१३	आम की बागवानी	३)
१४	आधुनिक कृषि विज्ञान ७५२ पृष्ठ	६)
१५	तिलहन की खेती	।।।=)
१६	सोयाबीन की खेती	।)
१७	तम्बाकू की खेती	।।)
१८	खेत की तैयारी	२।)
१९	फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०	व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१	खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१।।)
३२	फलों की खेती	३।।)
२३	पशुओं का घरेलू तथा डाक्टरी इलाज	६)
२४	तरकारी सागभाजी-खेती	३।।)
२५	ट्यूब वैल गाइड	३।।।)
२६	ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७	पोल्ट्री फार्मिंग	४)
२८	उन्नत सिंचाई	२)
२९	खेती और ट्रैक्टर	६)
३०	फल संरक्षण	२।।)

नोटः— * कम-से-कम २५) की पुस्तकें एक साथ खरीदने पर =) दो आना फी रुपया कमीशन मिलेगा ।

** ३० पुस्तकों का पूरा सैट जिसकी छपी कीमत ६५।।।=) होती है एक साथ लेने पर ।) फी रुपया कमीशन काटकर ।।-)॥ पैकिंग खर्च जोड़कर ५०) में दिया जायगा । पूरा सैट मंगाने वाले सज्जन ५) एडवान्स भेज कर अपने निकट के रेलवे स्टेशन का नाम लिखें । क्यों कि पोस्ट आफिस से मंगाने पर खर्चा ज्यादह लगता है ।

*** डाक व्यय तथा बिल्टी का किराया हर हालत में ग्राहक को देना होगा । विशेष जानकारी के लिए पत्र-व्यवहार करें तथा सूचीपत्र मुफ्त मंगावें । केवल ।) के टिकट पोस्टेज के वास्ते भेज कर ५००० पुस्तकों का २४० पृष्ठों का बड़ा सूचीपत्र मँगायें ।

वी० पी० द्वारा हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता— **देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार दिल्ली ६**

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयदव प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्
अथर्व
साम

वेद प्रकाश

वर्ष ६ } कार्तिक शक सं. १८७६, नवम्बर १६५७, दयानन्दाब्द १३३ { वार्षिक २॥)
अंक ४ } सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द { विदेशों से ५ शिलिंग

दीवाली-ज्योति प्रदाता

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तमम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ऋ० १।५०।१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यों ! जैसे (ज्योतिः) ईश्वर ने उत्पन्नकिएप्रकाशमान सूर्य्य को (पश्यन्तः) देखते हुए (वयम्) हम लोग (तमसः) अज्ञानान्धकार से अलग हो के (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप (उत्तरम्) सबसे उत्तम प्रलय से ऊर्ध्व वर्त्तमान व प्रलय करने हारा (देवत्रा) देव मनुष्य पृथिव्यादिकों में व्यापक (देवम्) सुख देने (उत्तमम्) उत्कृष्ट गुण कर्म स्वभाव युक्त (सूर्यम्) सर्वात्मा ईश्वर को (पर्युदगन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें वैसे तुम भी उसको प्राप्त होओ ॥

इस अन्धकार से ऊपर ऊंचे उठ कर अधिक उच्च प्रकाश को देखते हुए उस सब देवों के देव प्रकाशकों के प्रकाश सब को प्रेरणा करने वाले सूर्य को सब से उत्तम ज्योति को प्राप्त करें ।

सन १९५८ की डायरी तथा कलैण्डर बिना मूल्य

निम्न पुस्तकों में से जो ग्राहक ५) से १०) तक की पुस्तकें मंगावेंगे उन्हें भेंट में मिलेगी
तथा १०) से अधिक की पुस्तकें मंगाने वालों को
डायरी कलैन्डर तथा साथ में एक सुन्दर फाउन्टेनपेन भी मिलेगी।

बाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह „	३॥)
सृष्टि का इतिहास	१॥)
उपनिषद आर्य मुनिभाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१।)
प्रभु दर्शन ...	२॥)
तत्व ज्ञान ...	३)
आनन्द गायत्री कथा	॥)
एक ही रास्ता	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)॥
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१॥)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाए)	१॥)
सचित्र योगासन	१॥)
बहनों की बातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	२॥)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय संस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	॥)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३॥)
कर्तव्ये दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
सन्ध्या, हवन प्रदीपिका	॥)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	॥)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	॥)

प्रार्थना प्रदीप	॥)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
बिवाह और विवाहित जीवन	२॥)
घर गृहस्थी	३॥)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द,	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमांसा	।।।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक	।=)
आत्म कथा ऋषि दयानन्द	।=)
आर्याभिविनय	।)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	।=)
भ्रान्ति निवारण	।=)
भ्रमोच्छेदन	।)
हुगली शास्त्रार्थ	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
ईश्वर विचार	=)
जीवात्मा	=)
वेदों की आवश्यकता	-)
वेद किसपर प्रकट हुए	-)
बाल शिक्षा, धर्म शिक्षा	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	-)
पितृ श्राद्धविचार	-)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	-)
„ „ लक्ष्य	-)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।-)

धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४॥×२२

सन्ध्या मंत्र	।-)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।-)
आर्य समाज के नियम	।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।-)
यम नियम व्याख्या सहित	।-)
संगठन सुक्त	।-)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	॥)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम	≡)
सामवेद का प्रथम	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मंचर, सत्यवद	≡)

मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५॥ मू०-)।
ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म आदि आदि।

आर्डर के साथ कम से कम ५) अग्रिम मनी आर्डर से अवश्य भेजे।
बिना अग्रिम आये पुस्तके नहीं भेज सकेंगे और न डायरी कलेन्डर आदि।

विनीत—**गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।**

जिस ग्राम में मैं जाता हूं वहाँ से पिशाच नष्ट

लेखक—स्वर्गीय वेदशास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

ओ३म् । न पिशाचैः संशक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥ अ० ४।३६।७

मैं (पिशाचैः) पिशाचों के साथ (न) नहीं (सं+शक्नोमि) एकता कर सकता, (न) ना ही (स्तेनैः) चोरों के साथ और (न) ना ही (वनर्गुभिः) वनैले डाकुओं या हिंसकों के साथ। (यम्) जिस (ग्रामम्) ग्राम में (अहम्) आविशे, प्रवेश करता हूँ, अथवा जोश भरता हूँ, (पिशाचाः) पिशाच (तस्मात्) उससे (नश्यन्ति) नष्ट हो जाते हैं।

'पिशाच' शब्द का अर्थ है मांसाहारी। जो लोग जनता को डरा, धमका कर उनका सवरव हरण कर लेते हैं, वे पिशाच हैं। मन्त्र में पिशाच, स्तेन तथा वनर्गु तीन का वर्णन है। स्तेन का अर्थ है चोर, वनर्गु का अर्थ है वन में रहने वाले, असभ्य, दस्यु डाकू। ये दोनों पतित मनुष्य हैं, दोनों ही जन धन का अपहरण करते रहते हैं, अतः पिशाच भी कोई इन जैसा होना चाहिए। मन्त्र के शब्द विन्यास से ऐसा प्रतीत होता है कि पिशाच वे लोग हैं, जो जनता के बीच रहते उनका लोहू पीते रहते हैं।

एक तेजस्वी नायक कहता है कि मैं इनके साथ एक स्थान पर अथवा एकमत होकर नहीं रह सकता। तो क्या वहां से वह भाग जाता है। नहीं, वरन् वह उत्साह से कहता है—

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे—

पिशाच वहाँ से भाग जाते हैं, जिस ग्राम को मैं जोश से भर देता हूँ।

अर्थात् यदि जनता में साहस और उत्साह हो, और उत्साह को तीव्र करने वाला कोई नेता मिल जावे तो ऐसे पिशाचों का सफाया हो जाता है।

पिशाच नाश का अर्थ है, पिशाचपन का त्याग। जैसे—

यं ग्राममाविशत् इदमुग्रो सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥अ० ।४।३७.८

जिस ग्राम या जनसमुदाय में मेरा यह तीव्र बल घुसता है, पिशाच उससे भाग जाते हैं, वे पाप को जानते भी नहीं।

पापी के प्राण लेने से उसका कल्याण नहीं जितना उससे पापवासना छुड़ाने से। पिशाचों के भागने के साथ 'न पापमुप जानते' [पाप को नहीं जानते, नहीं पहचानते] विशेष विचारने योग्य है। यही पिशाचों का नाश है कि जो उनका भाव बदल कर उन्हें पाप से अपरिचित=असंबद्ध कर देना है।

वीर सुधारक ही कह सकता है—

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दते न्यचनम् (अ० ४।३७।६)

जैसे गौओं वाले के लिये व्याघ्र=बाघ होता है, वैसे ही मैं पिशाचों को तपाने वाला हूँ। सिंह को देख कर कुत्तों की भांति वे भी गति ठिकाना प्राप्त नहीं करते।

कुत्ता गली में आते जाते को देख कर भूंकता रहता है किन्तु सिंह को देख कर वह ग्रामसिंह मौन होकर दुम हिलाने लगता है, ऐसे ही पिशाच जनता को सताता, डराता, धमकाता रहता है किन्तु किसी सिंहमान वीर सुधारक के आने पर वह सीधा हो जाता है। (स्वाध्याय सन्दोह से)

शत शत चरणों में है नमस्ते हमारी

रचि० विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगरा (म० प्र०)

१

जब इस जग में था घोर अज्ञान छाया,
निविड तम चहूँथा, व्याप्त अज्ञान का था।
मनुज भटकता था, खोजता मार्ग को था,
पर न वह कहीं भी, पा सका ज्योति को था।

२

विविध मत पथों का, जाल फैला हुआ था,
जगत कुपथगामी हो चुका था कभी का।
धरम करम खोए और राष्ट्रीयता भी,
हतप्रभ बनके हा, दीन से हो चुके थे।

३

तब इस धरणी ने, एक आलोक पाया,
यतिवर मुनि ज्ञानी, श्री दयानन्द रूपी।
अवतरित हुए थे, वेद वेदांग—पाणी,
जग कलमष धोए, सत्य की ज्योति पाई।

४

सुजन कमल फूले, ज्योति पा विश्व व्यापी,
दुरजन सब भागे, जा छिपे कोटरों में।
सकल अवनि पूरी, मोद आमोद में थी,
जब ऋषिवर आए मूढ़ पाखंड भागे।

५

उस समय जगा के, था दिया ज्ञान सारा,
तम हरण किया था औ' दिया था सहारा।
उस ऋषिवर का था, कार्य कल्याण कारी,
उन जलज पदों में, है नमस्ते हमारी।

—※※※—

जहां पूज्य हिन्दी का अपमान होगा

ले०—पं० ताराचन्द शर्मा, कविस्थल,
महेन्द्रगढ़

जहाँ पूज्य हिन्दी का अपमान होगा
वहाँ आर्यों का यह ही ऐलान होगा ॥टेक॥
मरेंगे मिटेंगे न पीछे हटेंगे
यों हर आर्य हिन्दू बलिदान होगा ॥१॥

गौ भूमि भाषा है माता हमारी
जहाँ इनको किञ्चत् भी नुकसान होगा ॥२॥
कटा देंगे सिर जब कि हम हंसते हंसते
तुम्हें आर्य शक्ति का तब ज्ञान होता ॥३॥

जो परवाना बन कर जलेगा धर्म पर
प्रभु भी उसी पर महरबान होगा ॥४॥
लगी होगी घर घर में तस्वीर उसकी
जमाने में उसका ही गुणगान होगा ॥५॥

चढ़ावेंगे सब फूल उसकी चिता पर
धर्म देश खातिर जो कुर्बान होगा ॥६॥
जो है हिन्दी द्रोही और कैरों का पिट्ठू
हमें देख करके वो हैरान होगा ॥७॥

वह निकलेगा मुंह को छिपा कर हमेशा
जहाँ ताराचन्द तेरा व्याख्यान होगा ॥८॥

—※※※—

वेदों की कुछ पहेलियां

श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार वेदोपाध्याय

किसी भी भाषा के साहित्य में पहेलिकात्मक वर्णन या पहेलियाँ चमत्कार को उत्पन्न करने वाली मानी जाती हैं। वेद में भी अनेक प्रसंगों में इस प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं। इस लेख में कुछ वर्णन प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

तीन भाई

ऋग्वेद प्रथम मण्डल का १६४ वां सूक्त प्रायः सारा ही पहेलियों का है, जिस में ५२ मन्त्र हैं। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में तीन भाइयों की चर्चा करते हुए कहा गया है—

> अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
> तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
> तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य-
> अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥

(तस्य अस्य) प्रसिद्ध इस (वामस्य पलितस्य होतुः) वाम, पलित और होता स्वरूप वाले जेष्ठ भाई का (मध्यम भ्राता) मंझला भाई (अश्नः अस्ति) अश्न है। (अस्य तृतीयः भ्राता) इसका तीसरा भाई (घृतपृष्ठः अस्ति) घृतपृष्ठ है। (अत्र) इन तीनों में से एक को (विश्पतिं) विश्पति (सप्तपुत्रम्) और सात पुत्रों वाला (अपम्यम्) मैंने देखा है।

तीन भाई हैं। उनमें से जेष्ठ भाई बहुत सुन्दर (वाम), सफेद बालों वाला बूढ़ा (पलित) है, जो कि नित्य हवन करता है (होता) इस का मंझला भाई 'अश्न' अर्थात बहुत अधिक खाने वाला है। तीसरा भाई ,घृतपृष्ठ' है अर्थात् उसकी पीठ पर घी की मालिश की जाती है। इन तीनों में से एक ऐसा है जिसके सात पुत्र हैं, उसे विश्पति भी कहते हैं।

आइए, इस पहेली को हल करने का यत्न करें यहाँ वाम, पलित, होता, अश्न, घृतपृष्ठ इन शब्दों में श्लेष है। सबसे बड़ा भाई, जिसे सफेद बालों वाला बूढ़ा कहा गया है, सूर्य है। सूर्य 'वम', 'पलित' और 'होता' है। वाम के तीन अर्थ हैं प्रशंसनीय, सुन्दर और सेवनीय। सूर्य के अन्दर ये तीनों गुण विद्यमान हैं। वह प्रशंसा योग्य भी है, सुन्दर भी है और स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति के लिए सब प्राणियों से सेवन करने योग्य भी है। फिर सूर्य को 'पलित' इस कारण कहा गया है कि वह अपनी चारों ओर बिखरी हुई शुभ्र रश्मियों से सफेद बालों वाले बूढ़े के तुल्य प्रतीत होता है। पालनकर्ता होने के कारण भी सूर्य को पलित कह सकते हैं (पलितस्य पालयितुः। निरुक्त ४. २६)। फिर सूर्य को 'होता' कहा है। होता शब्द हु धातु से बना है, जिस का अर्थ देना भक्षण करना और ग्रहण करना है (हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके) सूर्य प्रकाश, ताप स्वास्थ्य आदि देता है; अन्धकार-रोग आदि का भक्षण करता है तथा बादल बनाने के लिए भूमिष्ठ जलों को ग्रहण करता है।

इस सूर्य का मंझला भाई (मध्यम भ्राता) 'अश्न' है। यह अश्न मध्यम स्थानीय अग्नि अर्थात् विद्युत है। विद्युदग्नि अश्न इस कारण हुआ क्योंकि वह बहुत फैलने वाला या वृक्षवनस्पति आदि पर गिर कर उन्हें खा जाने वाला है (अशूङ् व्याप्तौ, अशु भोजने)। अथवा मध्यमस्थानीय वायु अश्न है, क्योंकि वह आकाश में सर्वत्र व्याप्त है।

तीसरा भाई घृतपृष्ठ है, घृतपृष्ठ यज्ञाग्नि को कहा गया है, क्योंकि उनके पृष्ठ पर याज्ञिक लोग घृताहुतियां डाला करते हैं, एवं ये तीनों भाई मिल कर सृष्टि को चला रहे हैं। इनमें से एक जिसे सप्तपुत्र कहा गया है वह सूर्य है, क्योंकि उसके लाल,

नारंगी, पीले, हरे, नीले, आसमानी, बैंगनी, किरण रूपी सात पुत्र हैं। उसे विश्पति भी कहते हैं, क्योंकि वही मुख्य रूप से प्रजाओं का पालक है। लीजिये पहेली बुझ गई।

इस पहेली का एक दूसरा हल भी है। परमेश्वर, जीव और जगत् ये तीनों भाई हैं। सबसे बड़ा भाई परमेश्वर है। वह वाम अर्थात् सर्वाधिक प्रशंसनीय, सुन्दरतम और सेवनीयतम है; पलित अर्थात् जगत् का पालक है, और होता अर्थात् सुखादि का दाता, दुःखादि का भक्षक तथा सज्जनों को अपनी शरण में ग्रहण करने वाला है। मंझला भाई जीवात्मा है जो कि अश्न अर्थात् कर्मफलों का भोक्ता है (अश्नः भोक्ता, अशु भोजने)। तीसरा भाई यह जगत् है जो कि घृतपृष्ठ है। वैदिक भाषा में घृत का एक अर्थ जल भी होता है। एवं जगत् को घृतपृष्ठ इस कारण कहा कि जल धाराएं उनके पृष्ठ पर बह रही हैं। इन तीनों भाइयों में से परमेश्वर सप्तपुत्र है, क्योंकि भूः, भुवः, स्वः, प्रभृति सात लोक उसके सात पुत्र हैं। परमेश्वर ही विश्वपति अर्थात् सब प्रजाओं का पालक भी है।

एक विशाल कौआ

आइये, अब एक दूसरी पहेली देखें। एक बहुत बड़े कौए का वर्णन सुनिये। इसी सूक्त का अन्तिम मन्त्र हैः—

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम्
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं
सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥
ऋग्० १।१६४।५१

वैदिक स्तोता कहता है कि मैं—(अवसे) अपनी रक्षा के लिए (वायसं जोहवीमि) कौए को पुकारता हूँ। वह कौआ (दिव्यम्) द्युलोक में वास करने वाला है, (सुपर्णम्) सुन्दर पंखों वाला है, (बृहन्तम्) बहुत बड़ा है, (अपांगर्भम्) जल को ग्रहण करने वाला अर्थात् खूब पानी पीने वाला है, (दर्शतम् ओषधीनाम्) ओषधियों का दर्शन कराने वाला है, (अभीपतो वृष्टिभिः तर्पयन्तम्) चारों ओर के जगत् को वर्षा से तृप्त करने वाला है, (सरस्वन्तम्) अपार जलों वाला है।

क्या आप समझे यह कौआ कौन सा है? यह कौआ सूर्य है। उपर्युक्त सब वर्णन सूर्य में घट जाता है। सूर्य द्युलोक में वास करता है, किरण रूपी सुन्दर पंखों वाला है, समुद्रों का पानी पीने वाला है, जगत् को वर्षा से तृप्त करने वाला और ओषधियों को उगाने वाला है; और बहुत बड़ा है— इतना बड़ा कि वैज्ञानिकों के अनुसार आठ लाख छियासठ हजार मील लम्बा इसका व्यास है। यह कौआ पर्जन्य भी हो सकता है, क्योंकि पर्जन्य भी आकाश में निवास करने वाला (दिव्य) है, वायु रूपी पंखों से उड़ने वाला, भूमि का पानी पीने वाला वर्षा करने वाला और बहुत बड़ा होता है।

औंधा बर्तन

अब अथर्ववेद के एक अद्भुत पात्र (बर्तन) का वर्णन सुनिये—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः
तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥
अथर्व० १०।८।६

(चमसः) एक पात्र है, (तिर्यग्बिलः) जिसका छिद्र नीचे की ओर है और (ऊर्ध्वबुध्नः) आधार ऊपर की ओर है; अर्थात् वह औंधा किया हुआ है। ऐसे पात्र में तो कोई भी वस्तु रखी नहीं रह सकती पर तो भी आश्चर्य है कि (तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्) उसके अन्दर सब प्रकार का यश भरा हुआ है। केवल यश ही नहीं, (तद् आसते ऋषयः सप्त साकम्) उसके अन्दर सात ऋषि इकट्ठे होकर बैठे हैं, (ये अस्य गोपा महतो बभूवुः) और वे इस बड़े पात्र की रक्षा कर रहे हैं।

यह भी अद्भुत पहेली है। पहले तो किसी बर्तन के अन्दर ऋषियों का बैठना ही समझ में नहीं आता, फिर वह बर्तन तो औंधे मुंह वाला है। औंधे मुंह वाले बर्तन में बैठे हुए ऋषियों की तो वही अवस्था हो जानी चाहिए जो तांगे के उलटने पर उसमें बैठी हुई सवारियों की होती है।

इस पहेली का भी हल सुनिये। निरुक्तकार ने इसका हल दो प्रकार से सुझाया है। अधि दैवत दृष्टि से यह औंधे मुंह वाला बर्तन सूर्य है। उस सूर्य के अन्दर अनेक प्रकार का यश निहित है, क्योंकि सूर्य की अनेक विध महिमा है अथवा प्रकाश रूपी यश भरा हुआ है। सूर्य के अन्दर बैठे हुए सात ऋषि हैं सात रंगों वाली किरणें। वे ही इस सूर्य की रक्षा कर रही हैं, क्योंकि यदि किरणें न रहें तो सूर्य का सूर्यत्व ही समाप्त हो जाये। अध्यात्म दृष्टि से यह औंधे मुंह वाला बर्तन सिर है, क्योंकि इसका तला अर्थात् खोपड़ी ऊपर की ओर तथा मुखछिद्र नीचे की ओर है। इसमें बैठे हुए सात ऋषि, सात इन्द्रियाँ इस सिर की रक्षा कर रही हैं, क्योंकि यदि ये न हों तो सिर किसी से भी टकरा कर फट जाय।

समुद्रशायी गरुड़

अब एक गरुड़ का वर्णन देखिये—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसाऽपश्यमन्तितः
तं माता रेढि स उ रेढि मातरम्॥
ऋग्० । १० । ११४ । ४

(एकः सुपर्णः) एक गरुड़ है, (स समुद्रम् आविवेश) वह समुद्र के अन्दर प्रविष्ट हुआ है, और (स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे) वह इस सारे भुवन को देख रहा है या प्रकाशित कर रहा है। (तं पाकेन मनसा अपश्यम् अन्तितः) उसके विषय में समीप होकर परिपक्व मन से मैंने यह बात देखी है कि (तं माता रेढि) उसे एक माता चाट रही है, (स उ रेढि मातरम्) और वह उस माता को चाट रहा है। बताइये यह कौन है?

इस पहेली के कई हल हो सकते हैं। प्रथम वह सुपर्ण परमात्मा है। विशाल ब्रह्माण्ड समुद्र है, जिसमें वह बैठा है। उसमें बैठा हुआ वह सब लोकलोकान्तरों को देख रहा है, माता प्रकृति है,* वह प्रकृति उस परमात्मा को चाट रही है अर्थात् उसी परमात्मा प्रकृति को चाट रहा है अर्थात उसे अपनी रक्षा में लिये हुए है।

दूसरे, वह सुपर्ण जीवात्मा है। वह शरीर रूपी समुद्र में बैठा हुआ है। वहाँ बैठा हुआ वह संसार को देखता-भालता है और उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करता है। यहाँ भी माता प्रकृति है; वह जीव प्रकृति माता को चाट रहा है अर्थात प्राकृतिक फलों का स्वाद ले रहा है और प्रकृति माता उसे चाट रही है अर्थात उससे स्नेह कर रही है। अथवा शरीरधारी जीव की अपनी माता जिसने उसे पैदा किया है वही यहाँ माता समझी जा सकती है। वह माता और पुत्र दोनों एक-दूसरे को चाटते हैं अर्थात परस्पर स्नेह करते हैं।

तीसरे, सुपर्ण सूर्य है, क्योंकि उसके किरण रूपी सुन्दर पंख हैं। वह द्युलोक रूपी समुद्र में स्थित है। सब ग्रहोपग्रहों को प्रकाशित कर रहा है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता पृथिवी है, वह सूर्य को चाट रही है अर्थात उसके समीप होकर उसकी परिक्रमा कर रही है, और सूर्य अपनी किरण रूपी जिह्वाओं से पृथिवी को चाट रहा है।

---

*यहाँ माता से अभिप्राय उस सुपर्ण की माता नहीं, किन्तु सामान्य महिला है; जैसे अपनी बोलचाल की भाषा में हम किसी भी महिला को माता कह देते हैं।

चौथे, सुपर्ण वायु है—क्योंकि वह पक्षी की तरह उड़ने वाला है। वह वायु आकाश रूपी समुद्र में निवास करता है। सब प्राणियों पर कृपादृष्टि रखता है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता वाणी है। वाणी उसे चाट रही है और वह वाणी को चाट रहा है, क्योंकि वाणी अर्थात शब्द वायु को सहायता से ही स्थानान्तर पर पहुंचता है।

पांचवें, शरीरस्थ प्राण सुपर्ण है, क्योंकि वह श्वासोच्छ्वास रूपी पंखों से उड़ता रहता है। वह हृदय रूपी समुद्र के अन्दर अवस्थित है। सारे शरीर को देखता-भालता और संचालित करता रहता है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता वाणी है; वह प्राण को चाट रही है और प्राण उसे चाट रहा है, क्योंकि प्राण की सहायता से ही वाणी उच्चरित होती है।

एक पैर से उड़ने वाला हंस

अच्छा, गरुड़ की झांकी लेने के पश्चात् अब एक हंस की भी चर्चा सुनिए।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेत् नैवाद्य न श्वः स्यात्,
न रात्रिनहिः स्यात्, न व्युच्छेत् कदाचन ॥
अथर्व० ११।४।२१

(हंसः) एक हंस है, जो कि मानसरोवर में बैठा हुआ है, (सलिलात् उच्चरन्) जब वह उस मानसरोवर से उड़ने लगता है तब भी (एक पादं नोत्खिदति) एक पैर को वहां से नहीं हटाता। (यदङ्ग स तमुत्खिदेत्) और हे भाई, यदि वह उस पैर को भी हटा ले तो क्या हो? (नैव अद्य न श्वः स्यात्) न आज हो, न कल हो, (न रात्री न अहः स्यात्) न रात्रि हो, न दिन हो, (न व्युच्छेत् कदाचन) नहीं कभी उषा खिले। बताइये वह हंस कौन है?

यह मन्त्र अथर्ववेद के प्राणसूक्त का है। प्राण ही वह हंस है। प्राण क्योंकि निरन्तर चलता रहता है इस कारण उसे हंस कहते हैं—(हन्ति सततं गच्छति इति हंसः। सन् हिंसागत्योः)। सलिल या मान सरोवर है दोनों फुफ्फुस (फेफड़े)। श्वास का बाहर निकलना ही उस प्राण रूपी हंस का उड़ना है। वह प्राण रूपी हंस उड़ते हुए एक पैर से तो उड़ जाता है, किन्तु दूसरा पैर वहीं टिकाये रहता है; क्योंकि श्वास के बाहर निकल जाने पर भी प्राण शरीर के अन्दर स्थित रहता है। यदि वह पूर्ण रूप से ही उड़ जाये तब क्या परिणाम हो? शरीर मर जाये और तब उस मृत शरीर के लिए आज क्या, कल क्या, रात क्या, उषा क्या? कुछ भी नहीं।

अथवा इस पहेली का दूसरा हल सूर्य परक भी हो सकता है। हंस सूर्य है, क्योंकि वह अन्धकार-रोगादि का विनाशक है—(हन्ति तमो रोगादिकं वा इति हंसः) सलिल या मान सरोवर आकाश है। जब सूर्य रूपी हंस आकाश रूपी मानसरोवर से उड़ने अर्थात् अस्त होने लगता है तब भी वह दोनों पैर नहीं उठाता। क्योंकि दोनों पैर उठा लेने का अभिप्राय है आकाश से बिल्कुल ही उड़ जाना। यदि बिल्कुल ही उड़ जाय तब तो अगले दिन भी उदित न हो।

अस्तु, दिग्दर्शन के रूप में इस लेख में वेदों की कुछ पहेलियां प्रस्तुत की गई हैं जो पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ अनेक शिक्षाओं को भी देने वाली है।

श्री स्वामी वेदानन्द जी

(लेखक—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक)

(गतांक से आगे)

आस्तिकता

स्वामी जी सच्चे आस्तिक और दृढ़ ईश्वर विश्वासी थे। जीवन पर्यन्त अपने लिये उन्होंने कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। वे कहा करते थे कि जिस प्रभुने शरीर दिया है पुरुषार्थ करने पर वह दयालु शरीर की साधन सामग्री भी अवश्य प्रदान करेगा।

सेवाभावना

स्वामी जी की सेवा भावना भी अनुपम थी। इस विषय की एक घटना यहां दी जाती है। विद्यालय का एक छात्र सहदेव रोगग्रस्त हुआ। उसे Typhied Fewer म्यादी बुखार होगया। बहुत चिकित्सा कराई। परन्तु "रोग बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की" वाली बात हुई। विद्यार्थी चलने फिरने की तो बात ही क्या उठने बैठने में भी असमर्थ हो गया। उस की सेवा का भार स्वामी जी ने अपने ऊपर लिया। स्वामी जी अपने हाथों से उसे दवा देते थे, उसके दांत और जिव्हा भी स्वयं साफ़ करते थे, इतना ही नहीं उसकी टट्टी भी स्वयं उठाते थे। दिन रात हर समय उस के पास बैठे रहते थे। विद्यार्थी सूख कर कांटा हो गया था उसका टेम्परेचर १०४ डिग्री तक पहुंच जाता था परन्तु स्वामी जी के विचार, उपचार और सेवा भावना से विद्यार्थी मृत्यु के मुख से लौट आया।

तपस्वी

स्वामी जी तपस्वी भी उच्च कोटि के थे। आप हर्ष शोक, मान अपमान, गर्मी सर्दी, हानि लाभ आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठे हुए थे। जब स्वामी जी ने गृह त्याग का निश्चय किया तो सब से पूर्व वस्त्रों पर शयन करना छोड़ा फिर छत के नीचे सोना भी त्याग दिया। वर्षा के अतिरिक्त आप छत के नीचे नहीं सोते थे। जिस समय आप काशी में अध्ययन करते थे तो कभी कभी चने चबा कर ही उदर पूर्ति कर लिया करते थे। योगाभ्यास अनुष्ठान के लिये जब आप ऋषिकेश में रहते थे तो शरदऋतु में जंगल में नंगे लेटे रह कर ही रात्रि व्यतीत कर देते थे।

योगिराज

स्वामी जी ने योग की क्रियायें स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज से हस्तगत की। शीत काल में योग साधन के लिये आप कई कई मास स्वामी विशुद्धानन्द जी के साथ राय साहब सुरजन दास जी के उद्यान में कुंजा (गुजरात) में व्यतीत करते थे। उन दिनों आप रात्रि के २ बजे से लेकर प्रातः काल ८ बजे तक ६-६ घण्टे ध्यानारूढ़ हुआ करते थे। आपने अनेक मन्त्रों के अर्थों का समाधि अवस्था में साक्षात्कार किया था। स्वाध्याय सन्दोह में दिये गये योग सम्बन्धी संकेत यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि आप पूर्ण योगी थे।

निरभिमानता

स्वामी जी महाराज अनेक विद्याओं के पारंगत विद्वान थे, अनेक शास्त्रों के पूर्ण पण्डित थे, वेद के अद्वितीय वक्ता, उपनिषदों के विशेषज्ञ और दर्शनों के मर्मज्ञ थे, परन्तु इतना होते हुये भी अभिमान आप को छू भी नही गया था। आप नम्रता के मूर्तिमान स्वरूप थे। जब भी कोई परिचित अथवा कोई उपदेशक आदि मिलता तो स्वामी जी पहले

और हाथ जोड़ कर नमस्ते करते थे। धन्य है। वेद में कहा है :—

उत्तानहस्तो नमसा विवासेन (ऋ० ६-१६-४६)

ऊपर हाथ उठाकर नमस्कार से सत्कार करें। स्वामी जी वेद के अनुयायी थे और वेद के अनुसार ही आचरण करते थे। क्यों नहीं? थे जो सच्चे वेद भक्त!

स्वामी जी उपदेशकों और भजनोपदेशकों से पत्र व्यवहार करते समय उन्हें श्रीमान मान्यवर आदि शब्दों से सम्बोधित किया करते थे। "विद्या ददाति विनयं" यह बात उनके जीवन में ओत प्रोत थी।

निर्लोभता

लोभ मनुष्य का महान् शत्रु है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य न करने योग्य कार्यों को कर बैठता है। इस लोभ के वशीभूत होकर योगिराज भर्तहरि ने पीक में हाथ डाला था और नर पिशाच जगन्नाथ ने महर्षि दयानन्द को विष दिया था। स्वामी जी महाराज लोभ वृत्ति से बहुत ऊपर उठे हुए थे। इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपने जीवन की एक घटना उस समय बताई, जब लेखक सन्यास की दीक्षा लेने के लिये ऋषिकेष जा रहा था। स्वामी जी ने ऋषिकेश जाने से पूर्व मुझे विदाई पार्टी दी, दीक्षा के पश्चात पहनने के लिये एक धोती तथा एक तौलिया भी प्रदान किया। स्वामी जी ने कुछ जीवनोपयोगी और अमूल्य उपदेश भी दिये। अपने अमूल्य उपदेश देते हुए स्वामी जी ने कहा कि लोभ में मत फंस जाना। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने अपनी घटना बताई जो स्वामी जी के शब्दों में निम्न प्रकार है:—

"जिस समय में दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर का आचार्य था उस समय एक बार स्वामी अच्युतानन्द जी ने मुझे बुलाया। स्वामी अच्युतानन्द जी बहुत ही धनाढय सन्यासी थे। लगभग २५-३० सहस रुपया तो हर समय उनके साथ ही रहता था और ५०-६० सहस्र का बैंक बैलेंस (Bank Balance) इसके अतिरिक्त था। जब मैं उनके पास पहुंचा तो स्वामी जी ने मुझ से कहा, "यदि तू इतना कहदे कि तू मेरा शिष्य हो जाएगा, तो मैं यह समस्त धन तेरे नाम कर दूं।" मैंने कहा "मैं कह तो देता परन्तु यह रुपया तो बहुत थोड़ा है" यह उत्तर सुन कर स्वामी जी बड़े अप्रसन्न हुए परन्तु जब उन्हें मेरी निर्लोभता का ध्यान आया तो प्रसन्न और प्रभावित भी खूब हुए।"

जब लेखक ऋषिकेश की गद्दी को ठोकर मार कर स्वामी जी के पास गया और उन्हें आदि से अन्त तक समस्त घटना कह सुनाई तो स्वामी जी ने बताया कि उन्हें भी शारदा पीठ की गद्दी मिल रही थी, जिस की आय लाखों रुपया वार्षिक थी। स्वामी जी से यह भी कहा गया कि आप पूजा पाठ कुछ मत करना, वह सारा कार्य तो सेवक कर लेंगे, आप केवल गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लीजिये। स्वामी जी ने कहा, "मेरा गद्दी पर बैठना भी मूर्ति पूजा को आश्रय देना है जो मुझे कदापि इष्ट नहीं" यह कह कर उन्होंने उस गद्दी को ठोकर मार दी। यह दोनों घटनायें यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि लोभ स्वामी जी को छू भी नहीं गया था।

विनोद प्रियता

विनोद महापुरुषों का एक गुण होता है। इसके बिना जीवन नीरस और भार बन जाता है। स्वामी जी भी अत्यन्त विनोद प्रिय थे। उपदेशों में तो स्वामी जी श्रोताओं को हंसाने के विरोधी थे परन्तु वार्तालाप आदि के समय स्वामी जी खूब हंसाया करते थे। उनके शिष्ट विनोद की एक घटना का अवलोकन कीजिये।

जब स्वामी जी वाराणसी में रहते हुए विद्याध्ययन करते थे घटना उस समय की है। स्वामी जी प्रतिदिन गंगा स्नान करने आया करते थे परन्तु गंगा में स्नान करने के पश्चात् वे नल पर नहाया करते थे। एक दिन एक पौराणिक ने स्वामी जी से पूछा कि आप गंगा में स्नान करने के पश्चात् नल पर क्यों न होते हैं? स्वामी जी ने

कहा, “लोग अपने पापों को गंगा जी में छोड़ देते हैं, नहाते समय वे पाप मेरे ऊपर चढ़ जाते हैं, नल पर स्नान करके मैं उन पापों को धोता हूँ।” “फिर आप गंगा में स्नान ही क्यों करते हैं, उस पौराणिक ने पूछा। “तैरने के लिये” स्वामी जी ने उत्तर दिया।

स्वामी जी हिन्दुस्तान समाचार पत्र को टोडी तथा गुरुकुल झझर को गुरुकुल सुराही कहा करते थे।

ब्रह्मचर्य

स्वामी जी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे तथा अपने सम्पर्क में आने वाले को ब्रह्मचर्य व्रत पालन का उपदेश दिया करते थे। वे कहा करते थे कि धन की तीन गतियां होती हैं, मनुष्य धन को भूमि में गाढ़ दे, वह सुरक्षित रहेगा, व्यापार में लगाये तो बढ़ जायेगा, और व्यसनों में लगाये तो नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की भी तीन स्थिति हैं, यदि संसार की स्त्रियों को मातृवत् परदारेषु माता की दृष्टि से देखा जाये तो वीर्य सुरक्षित रहेगा, योगाभ्यास और वेदाध्ययन में प्रवृत होकर मनुष्य ऊर्ध्व रेता बन जाता है, वीर्य ओज और तेज में परिणित हो जाता है और विषयों के सेवन से नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य पालन, वीर्य रक्षा का कैसा अनूठा, सरल और सुन्दर मार्ग है।

सार्वदेशिक गोरक्षा आन्दोलन के प्रचार मंत्री

आर्यों को यह विश्वास था कि स्वराज प्राप्त होने पर गोहत्या का कलंक भारत माता के मस्तिष्क से दूर हो जायेगा। परन्तु स्वराज प्राप्त होने पर गोहत्या बन्द होने के स्थान पर पहले से भी बढ़ गई. अतः आर्यों को यह बात अखरने लगी। सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों ने बहुत सोच विचार के पश्चात् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को सार्वदेशिक गो रक्षा आन्दोलन के प्रधान पद पर अभिषिक्त किया और स्वामी जी को प्रचार मंत्री पद पर प्रतिष्ठित किया गया। स्वामी जी महाराज कितनी व्यवस्था पूर्वक एवं उत्तमता से इस कार्य को निभाते रहे यह किसी से अज्ञात नहीं है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के महामन्त्री

स्वामी जी विरजानन्द वैदिक संस्थान के संचालकाध्यक्ष थे। वे अपना अधिकांश समय वैदिक संस्कृति तथा वैदिक सभ्यता के सम्बन्ध में शास्त्रीय शोध में व्यतीत करते थे। इसके अतिरिक्त वे विद्यार्थियों को पढ़ाते भी थे। परन्तु अब आर्य जगत् की सेवा करने के लिये आप को आर्य प्रतिनिधि सभा का महामंत्री चुना गया तो आपने इस उस्तरों के हार को पुष्प माला की भांति धारण करते हुए अपने अध्ययन अध्यापन, यज्ञमय और योगमय जीवन में बाधा स्वीकार करके आर्यों के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये स्वामी आत्मानन्द जी के समान अपने योगानन्द को छोड़ कर स्वामी ने अनुपम त्याग और उदम्य उत्साह का परिचय दिया था।

आर्य साप्ताहिक के सम्पादक बनते ही आपने आर्य जगत में एक नवीन क्रांति का श्री गणेश किया। आर्य को अपनाने के लिये अनुरोध किया वेद प्रचार निधि को बढ़ाने की अपील की तथा आर्यसमाज के उत्सवों पर पढ़े लिखे व्यक्तियों को विशेष तया आमन्त्रित करने पर बल दिया। पाठक स्वयं विचार कर सकते है कि ये तीनों बातें कितनी महत्वपूर्ण हैं।

स्वामी जी का हिन्दी प्रेम

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है स्वामी जी अनेक देशी और विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे परन्तु उनका जितना प्रेम आर्य भाषा (हिन्दी) से था उतना अन्य किसी भाषा से नहीं। उन्होंने अपनी सभी पुस्तकों का प्रणयन आर्य भाषा में ही किया। उनका हिन्दी प्रेम उस लेख से स्पष्ट प्रकट होता है जो उन्होंने अपनी मृत्यु से लगभग १२ घण्टे पूर्व लिखा था। उ के निम्न शब्द बड़े मार्मिक हैं:—

"पहले हमारी माताओं, बहनों एवं बेटियों का अपमान किया गया किन्तु पंजाब सरकार ने जांच कराना अनावश्यक समझा—तथा कथित जनतन्त्रीय सरकार ने अपराधियों को दण्ड न दिया। कांग्रेस सरकार ने देख लिया कि बहु संख्यक जनता मिट्टी की मूर्तियों के समान निर्जीव है, तभी तो निरीह पुरुषों पर निर्मम लाठी प्रहार को व्यवहारिक कहा गया। आश्चर्य तो यह है कि अविभक्त पंजाब में अंग्रेजी सरकार हिन्दी के साथ जिस दुर्व्यवहार की कल्पना भी न कर सकी, उस कुर्व्यवहार को अपनी सरकार के गृह मन्त्री पण्डित पन्त ने करके दिखा दिया। किस किये ? हिन्दुओं के हित के लिये ? कदापि नहीं वोटों के लिये। पंजाब के समस्त हिन्दी प्रेमियों की यह कड़ी परीक्षा का समय है। यदि हिन्दी प्रेमी चाहें तो कांग्रेस को वह शिक्षा दे सकते हैं, कि उसे छटी का दूध स्मरण हो आये। उसे वोट चाहिये। वोट आपके हाथ में है। संगठित हो जाओ और व्रत लो कि किसी हिन्दी द्रोही को वोट न देंगे।"

साहित्य सेवा

अमर शहीद पं० लेखराम जी मरते समय यह वसीयत की थी कि आर्य समाज का तहरीर (लेखन) का कार्य बन्द नहीं होना चाहिये। स्वामी जी जीवन पर्यन्त पण्डित जी के इस आदेश का पालन करते रहे। स्वामी जी ने स्वलिखित छोटी और बड़ी ६० पुस्तकें प्रकाशित कराई। स्वामी जी द्वारा लिखित अप्रकाशित पुस्तकों की संख्या जो पापिस्थान में रह गई लगभग १५० थी। स्वामी जी की प्रकाशित पुस्तकों में वेदामृत, स्वाध्याय सन्दोह, स्वाध्याय सुमन, स्वाध्याय संग्रह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सत्यार्थ प्रकाश पर टिप्पणियां लिख कर तो वे अपना नाम अजर और अमर कर गये हैं। अनेक ग्रन्थों के अनुसीलन, गम्भीर चिन्तन और मनन के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश में लिखे गये फुटनोट स्वामी जी की अगाध विद्या के परिचायक हैं। शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र जी देहलवी ने भी इन टिप्पणियों को पढ़ कर महती प्रसन्नता प्रकट की थी।

अनथक कार्यकर्ता

स्वामी जी का यह एक विशेष गुण था कि वे अनथक कार्यकर्ता थे। जिस कार्य को हाथ में ले लेते थे उसमें पूर्ण रूप से जुट जाते थे, अपना सारा ध्यान उधर ही केन्द्रित कर देते थे। आर्य प्रादेशिक सभा की स्वर्ण जयन्ती पर आपसे एक पुस्तक लिखने की प्रार्थना की गई। मांग यह थी कि पुस्तक लगभग ४०० पृष्ठ की हो और एक मास में तैयार हो जानी चाहिये। स्वामी जी ने दिन रात परिश्रम करके १५-२० दिन में ६०० पृष्ठ का अपूर्व ग्रन्थ लिख डाला। इसी प्रकार स्वामी जी ने ऋषि बोध कथा नामक १२८ पृष्ठ की पुस्तक ६-७ दिन में लिख डाली थी। एक बार ज्वर से पीड़ित होते हुए भी आपते १६ पृष्ठों का एक ट्रैक्ट लिखा था।

अध्यापन की विशेषता

स्वामी जी प्राचीन ऋषि महर्षियों के अनन्य भक्त थे अतः वे उन्हीं के पद चिन्हों पर चलते हुए आर्ष रीति से ही पढ़ाते थे। स्वामी जी अष्टाध्यायी 'अथ शब्दानुशासनम्" से आरम्भ करके 'अ अ' इस अन्तिम सूत्र तक पढ़ाते थे। कौमदी आदि की भांति क्रम भंग करके कदापि नहीं पढ़ते थे। अष्टाध्यायी आरम्भ करने से पूर्व वे थोड़ा सा संस्कृत का ज्ञान भी अवश्य कराते थे। लौकिक संस्कृत के साथ ही साथ वे वैदिक संस्कृत भी पढ़ाना आरम्भ कर देते थे। उच्चारण के ऊपर स्वामी जी विशेष बल देते थे। स्वामी जी जो ग्रन्थ पढ़ाते थे उसे मूल पर से ही पढ़ाते थे, टीकाओं का आश्राय न लेते थे।

वे विद्यार्थियों के सदाचार और व्यवहार का भी विशेष ध्यान रखते थे। उन्हें अपने प्रत्येक छात्र की गति विधियों का पूर्ण परिचय रहता था।

प्रत्येक छात्र की समझने की शक्ति और योग्यता एक सी नहीं होती, इसी लिये स्वामी जी श्रेणी बान्ध कर नहीं पढ़ाते थे। वे प्रत्येक छात्र को अलग अलग पढ़ाते थे और अष्टाध्यायी के सूत्रों के अर्थ और सिद्धि आदि सहित अपने हाथ से लिख कर देते थे।

रहन सहन दिन चर्या आदि

स्वामी जी एक आदर्श सन्यासी थे । एक सन्यासी के अनुरूप ही उनका रहन सहन बहुत सादा था । खेड़ा खुर्द में उनकी दिन चर्या इस प्रकार थी । प्रातः काल वे चार बजे से भी पूर्व उठ कर योगांरूढ़ होते थे और लगभग ६ बजे तक ध्यान-मग्न रहते थे । समाधि से उठने के पश्चात् वे नित्य कर्मों से निवृत्त होते थे और फिर वेद का स्वाध्याय करते थे वेद के स्वाध्याय के पश्चात् वे अन्य ग्रन्थों का अध्ययन किया करते थे । लगभग १२ बजे तक यह क्रम चलता था । १२ बजे भोजन करते थे ।

स्वामी जी का भोजन विचित्र होता था । कभी कभी तो वे कई-कई महीने फलाहार पर रह जाते थे, कभी अन्न से शरीर रक्षा कर लिया करते थे जैसा पूर्व लिखा जा चुका है स्वामी जी अनथक कार्यकर्ता थे । वे १२-१३ घण्टे तक लगातार कार्य करते रहते थे परन्तु चार फुल्कों से अधिक नहीं खाया करते थे । भोजन को वे चबाते खूब थे तथा अपने छात्रों को भी भोजन अच्छी प्रकार चबा कर खाने का आदेश दिया करते थे ।

स्वामी जी दिन में प्रायः नहीं सोया करते थे और अपने विद्यार्थियों को भी दिन में सोने से रोकते थे ।

भोजन करने के कुछ देर पश्चात् वे विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ करते थे और ५-६ बजे तक पढ़ाते रहते थे । सायंकाल फिर योगारूढ़ होते थे ।

रात्रि में वे बहुत कम सोते थे । निद्रा उनके बस में थी । कभी-कभी तो पढ़ाने लिखाने में ही रात्रि को १२-१ बज जाते थे परन्तु स्वामी जी चार बजे से पूर्व ही ध्यानारूढ़ हो जाया करते थे ।

स्वामी जी का स्वभाव नम्र था, अभिमान उन में बिल्कुल न था । दृढ़ आत्म विश्वासी थे । सच्चे साधु एवं विरक्त थे । स्वामी जी का स्वाध्याय बहुत गम्भीर था यदि उन्हें स्वाध्याय सागर कहा जाये तो कोई अत्योक्ति नहीं होगी । वे सदाचार की साक्षात् मूर्ति थे । विद्वानों का मान करते थे । सच्चे देश भक्त और ऋषि भक्त थे । देश और धर्म पर बलिदान होने के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते थे । स्वामी जी समय के मूल्य को समझते थे अतः समय को व्यर्थ नहीं गंवाते थे । हर समय किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहते थे ।

वेदानन्द नाम

स्वामी जी ने अपने वेदानन्द नाम को यथार्थ और चरितार्थ करके दिखाया । स्वामी जी वेदों के पठन और पाठन में ही आनन्द लिया करते थे । बिना वेद पाठ किये वे भोजन ग्रहण नहीं करते थे वेद मन्त्रों के रहस्योद्घाटन करने और मन्त्रों का अर्थ करने में आपने असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी । अन्य वेदों का तो कहना ही क्या आप ऋग्वेद का अर्थ भी बिना कोषादि की सहायता के मूल पर से ही किया करते थे जिससे उनके अगाध ज्ञान और महान् पाण्डित्य का परिचय सहज ही में उपलब्ध हो जाता है । यदि यह कहा जाये कि स्वामी जी जैसा वेदों का विद्वान् इस समय भारत वर्ष में नहीं है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

निधन

आर्य जगत् के महाधन, महाविद्वान्, लोह लेखनी के धनी प्रसिद्ध व्याख्याता, सच्चे कर्मयोगी २७-११-५६ को सायंकाल ५-३५ पर दयानन्द वाटिका दिल्ली में अकस्मात हृदय गति बन्द हो जाने से, इस असार संसार से चल बसे । स्वामी जी के निधन से आर्य जगत् को बड़ा भारी धक्का लगा है, समाज का एक महान् स्तम्भ गिर गया है । पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के शब्दों में विद्या का अगाध समुद्र सूख गया है ।

मरने से वर्षों पूर्व स्वामी जी ने यह बात प्रकट कर दी थी कि मृत्यु के समय न किसी को कष्ट दूंगा न किसी से कोई सेवा लूंगा । मेरी मृत्यु तो हंसते हुए होगी ।

परन्तु क्या स्वामी जी मर गये ?

कौन कहता है कि वेदानन्द अब जीवित नहीं ।
पा अमर पद विश्व में होता है क्या मरना कहीं ॥
होते रहेंगे रविशशि यावत् उदित आकाश में ।
आलोक वेदानन्द का चमकेगा उस प्रकाश में ॥

स्वामी जी का पञ्च भौतिक शरीर नहीं रहा तो क्या हुआ, जब तक वैदिक वाङ्मय है वेदानन्द का नाम और काम अमर रहेगा । ॥ इति ओ३म् ॥

सरकार के झूठे आरोप

बुरी है या भली, मैं नेहरू सरकार को अपनी सरकार मानता हूँ। मुझे कई बातों में उसकी नीति से मतभेद है। हिन्दी आन्दोलन के विषय में मेरा पंडित नेहरू से घोर मतभेद है फिर भी उनकी सरकार मेरी है। अब भारत पर कोई विदेशी शक्ति शासन नहीं कर सकती। न किसी अन्य पार्टी के कांग्रेसी की जगह लेने की कोई सम्भावना दिखाई देती है। इसलिए मैं प्रायः सोचता हूँ कि यह सरकार चलेगी कैसे ? क्योंकि यह बापू के बताए हुए सत्य और अहिंसा के मार्ग पर तो क्या चलेगी, यह झूठ, धोखे और हिंसा के मार्ग पर चल रही है।

मेरे सामने पंजाब सरकार है जिसे पण्डित नेहरू ईमानदारी का प्रमाण पत्र दे चुके हैं। कैरों सरकार को पण्डित नेहरू की आंखों से देखा जाए तो 'सब अच्छा' दिखाई देगा परन्तु दुर्भाग्य या सौभाग्य से सब को पण्डित नेहरू की दृष्टि नहीं मिली। इसलिए वे कैरों सरकार को उसके नंगे रूप में देख सकते हैं। पंजाब में चार मास से हिंदी आंदोलन जारी है। कैरों ने कांग्रेस हाईकमान को यह विश्वास दिलाया था कि मैं उसे चुटकियों में उड़ा दूंगा और मानना चाहिए कि उसने ऐसा करने का भरसक प्रयत्न किया है। वह प्रयत्न किया है। वह प्रयत्न क्या है ? हजारों को जेल में डाल दिया गया है। एक सौ के लगभग नजरबंद कर दिये गये हैं। गांवों में आतंक फैला दिया गया। फिरोजपुर सैण्ट्रल जेल में जहां सत्याग्रही सरकार के संरक्षण में थे, एक सत्याग्रही युवक सुमेरसिंह को पुलिस को लाठियां मार मार कर समाप्त कर दिया। पंजाब सरकार का यह दुर्भाग्य है कि उसने हिंदी रक्षा समिति को अवैध संस्था घोषित नहीं किया। इसलिए उसे इस आंदोलन में भाग लेने वालों के विरुद्ध हिंसा के झूठे आरोप गढ़ने पड़े हैं। मैं पटियाला जेल में रहा हूँ जहां ४५ सत्याग्रही नजरबंद हैं। उनकी दी गई आरोप सूचियां मैंने पढ़ी है और पूर्ण दायित्व के साथ कह सकता हूँ कि उनमें से ९९ प्रतिशत स्वयं गढ़े गये हैं। ज्यों ज्यों मैं उन्हें पढ़ता था त्यों त्यों अपने हृदय से पूछता था कि क्या यह बापू का शासन है ? इतने झूठ तो अंग्रेजी सरकार ने भी न गढ़े थे जितने कि कैरों सरकार गढ़ रही है। फिर यह आरोप शरारतपूर्ण हैं। इन अर्थों में कि पंजाब के दो बड़े वर्गों को एक दूसरे से लड़ाने का प्रयत्न किया गया है। एक वकील पर यह दोष लगाया गया है कि उसने एक गुप्त बैठक में कहा कि सिखों के मुकाबले के लिए हथियार जमा कर लो और अपने मकानों की छतों पर ईंटें इकट्ठी कर लो जब कि वह वकील किसी ऐसी बैठक में सम्मिलित नहीं हुआ और कह नहीं सकते कि कोई ऐसी बैठक हुई भी थी। इस प्रकार प्रायः सभी नजरबन्दों के विरुद्ध आरोप सूचियों में हिंसा का आरोप लगाने का प्रयत्न किया गया है ताकि कहीं परामर्शदातृ समिति उन्हें रिहा न कर दे।

मेरे विरुद्ध कैरों सरकार हिंसा का कोई दोष न गढ़ सकी। इसलिए मुझ पर उसका आरोप हास्यास्पदता की सीमा लांघ गया। मुझ पर सब से बड़ा दोष यह धरा गया कि मैं १७ जून १९५७ को जालंधर के सम्मेलन में सम्मिलित हुआ जिसके परिणामस्वरूप चण्डीगढ़, रोहतक फिरोजपुर जेल आदि स्थानों पर दंगे हुए। धर्मशाला जेल से मैंने श्री घनश्यामसिंह गुप्त के नाम अपने पत्र में लिखा कि सी० आई० डी० ने पंजाब सरकार से द्रोह किया किया है जिससे उसने मुझ पर ऐसे आरोप लगाए हैं जिनका मुझ से दूर का भी सम्बंध नहीं। मैं नहीं कह सकता कि पंजाब सरकार को कैसे होश आया कि कुछ दिन के बाद उसने मेरे विरुद्ध

आरोप सूची में स्वयं संशोधन कर दिया। संशोधति आरोप सूची में मुझ पर यह आरोप लगाया गय कि मैं १७ जून १९५७ को नहीं बल्कि १७ जून १९५६ के सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था। वास्तविकता यह है कि मैं उसमें भी सम्मिलित न हुआ था। लेकिन यदि हुआ था और उसमें सम्मिलित होना आपत्तिजनक था तो मुझे २९ अगस्त १९५७ से पहले क्यों गिरफ्तार न किया गया ?

कैरों सरकार ने मेरे विरुद्ध १७ जून १९५७ के सम्मेलन में सम्मिलित होने का आरोप तो वापस ले लिया परन्तु उसे यह याद न रहा कि उस सम्मेलन के साथ उसने कुछ दंगों का टांका लगाया है। अब उनका दायित्व मुझ पर कैसे डाला जा सकेगा ? मजे की बात यह है कि १७ जून १९५६ को हिंदी रक्षा समिति अभी अस्तित्व में न आई थी। पहले तो मेरे लिए प्रश्न यह था कि इस बेईमानी और हिंसा की स्थिति में पंजाब सरकार कैसे चलेगी ? संशोधित आरोप सूची पढ़ कर यह प्रश्न पैदा हो गया कि यह मूर्खों की सरकार कैसे चलेगी ? यह शासन देर तक चल नहीं सकता। इसीलिए आज जाये या कल क्योंकि अन्ततः विजय सत्य की होती है। हमारी सरकार ने अपना उद्घोष तो यह बना रखा है "सत्यमेव जयते" परन्तु अपने आचरण से यह बता रही है कि संसार में असत्य की जय होती है। मेरा यह दवा है कि यदि नजरबंद सत्याग्रहियों के विरुद्ध आरोपों की सुनवाई किसी विधिवत न्यायलय में हो तो उसमें से ९९ प्रतिशत मुक्त हो जाएं। कैरों सरकार को झूठ और धोखे का आश्रय लेना क्यों पड़ रहा है ? इसलिए कि वह किसी को पकड़ती है तो इसलिए नहीं कि वह दोषी है बल्कि वह गिरफ्तार किसी को पहले कर लेती है और उसके विरुद्ध आरोप बाद में गढ़ती है। यह तो वही बात हुई कि तुम कोई अपराध न करोगे तो हम भी दण्ड न देंगे ? मुझ पर एक आरोप निश्चिय ही लगाया जा सकता है कि "वीर अर्जुन" के द्वारा हिंदी आंदोलन का समथन करता हूँ। कैरों सरकार ने उसका दण्ड मुझे दे दिया कि "वीर अर्जुन" और "प्रताप" जालंधर पर दो मास के लिए सैंसर बिठा दिया, "वीर अर्जुन" तथा "प्रताप" दिल्ली का पंजाब में प्रवेश बंद कर दिया। कानून की दृष्टि से एक अपराध के दो दण्ड नहीं हो सकते इसलिए उसे मेरे विरुद्ध गढ़ने पड़े।

'वीरअर्जुन से उद्धृत"

वेद प्रकाश के मूल्य में वृद्धि

विदित हो कि कागज का मूल्य; छपाई, डाकखर्च बढ़ जाने से गत वर्ष वेद प्रकाश पत्र को प्रायः १२००) का घाटा हुआ है। अतः वाध्य होकर वार्षिक चन्दे में केवल आठ आने की वृद्धि करनी पड़ रही है जिससे कि घाटे में कुछ सहारा मिल सके।

१ नवम्बर से वार्षिक मूल्य २) से २॥) कर दिया है तदनुसार ही मूल्य भेजना चाहिये। सृष्टि का इतिहास विशेषांक लेने वालों को रियायती मूल्य १) मिला कर ३॥) भेजना चाहिये।

निवेदकः—गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, देहली।

दिव्य दयानन्द

१—डाक्टर दयानन्द

महर्षि दयानन्द हमारे बीच उस समय आये जब हिन्दु धर्म पर एक ओर तो आधुनिक विज्ञान का और दूसरी ओर ईसाईधर्म का जबर दस्त दबाव पड़ रहा था।

इस्लाम के पुराने हमले भी तब तक जारी थे।

रोग की अच्छी तरह से परख करने के बाद उन्होंने उसे ठीक करने के लिए एक डाक्टर की तरह बहादुरी के साथ चीर फाड की। —राजगोपालाचार्य

२—मार्ग दर्शक दयानन्द

मैं आधुनिक भारत के मार्ग दर्शक उस दयानन्द को आदर पूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूँ जिसने देश की पतितावस्था में भी हिन्दुओं को प्रभु की भक्ति और मानव समाज की सेवा के सीधे मार्ग का दिग्दर्शन कराया। —डा० रविन्द्रनाथ ठाकुर

३—धर्म पिता दयानन्द

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता हैं इन दोनों की गोद में मैं पला। —ला० लाजपतराय

४—कर्मयोगी दयानन्द

हिन्दु समाज का उद्धार करने में आर्य समाज का बहुत बड़ा हाथ रहा है रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया है उससे कहीं अधिक आर्य समाज ने पंजाब और संयुक्त प्रान्त में किया स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। —सुभाषचन्द्र बोस

५—चरित्रवान दयानन्द

भारत को आज स्वामी दयानन्द के जैसे साहसी चरित्रवान् और निष्ठावान् सुधारकों की आवश्यकता है। —सरदार पटेल

६—श्रेष्ठ सुधारक दयानन्द

महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में सुधारकों में और श्रेष्ठों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव भारत पर बहुत अधिक पडा है।

—महात्मा गांधी

७—दयानन्द का पौधा

आज हम जिस स्वतन्त्रता के फल चख रहे हैं उसका पौधा महर्षि दयानन्द ने ही लगाया था।

—डा० पट्टाभि सीता रमय्या

८—युग प्रवर्तक दयानन्द

हमारे युग के तीन प्रवर्तक थे कृष्ण दयानन्द और गांधी। स्वामी जी ने भारत की राजनीति में क्या किया? इसके सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त हैं कि इस जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिसमें उन्होंने परिवर्तन न किया हो। स्वामी दयानन्द ने हमे कीचड़ से बाहर निकाला।—एम० बी० गाडगिल

९—राष्ट्र निर्माता दयानन्द

ऋषि जीवन राष्ट्र निर्माण के लिए स्फूर्ति दायक बल दायक और माननीय है। दयानन्द उत्कट देश भक्त थे अतः मैं राष्ट्रवीर समझ कर उनकी वंदना करता हूँ। —साधु टी. एल. वास्वानी

१०—वेदों वाला दयानन्द

उन्नीसवीं सदी के पिछले आधे हिस्से में एक बड़ा सुधार आंदोलन शुरू किया गया। इसको शुरू करने वाले स्वामी दयानंद थे। यह सुधार आंदोलन था आय समाज का। और इसकी पुकार थी कि वेदों की ओर चलो। —जवाहरलाल नेहरू

आर्यसमाज कांग्रेस संघर्ष

स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध में, पंजाब के हिन्दुओं ने मुख्य भाग लिया है, आर्य समाज हिन्दुओं में स्वदेशी और स्वतत्रता की भावना अपने जन्म काल से ही भरता रहा है, अंग्रेजी हकूमत ने अपने शासन काल में हिन्दुओं को दबाने में खूब अत्याचार किये और हिन्दुओं ने सहन किये, काँग्रेस को ला० लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, आदि अनेक कार्यकर्त्ता आर्य समाज ने ही दिये, जलियां वाला बाग काण्ड के बाद किसी की हिम्मत नहीं थी कि अमृतसर में काँग्रेस का अधिवेशन का संचालन कर सकें, ऐसे समय में आर्य समाज के महान नेता स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के ही नेतृत्व में सफलता पूर्वक हो सका था। इतने पर भी आर्य समाज समष्टिरूप से राजनीति से अलग रहा, केवल मानव सांस्कृतिक शिक्षण और प्रचार में ही लगा हुआ है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्य समाज ने पृथक अपना अधिकार कुछ नहीं मांगा।

सिक्खों ने जिसमें विशेषकर अकाली सिक्खों ने स्वतन्त्रता युद्ध में कांग्रेस के साथ कोई विशेष भाग नहीं लिया। इसके विपरीति मुस्लिमलीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना से साठ गांठ करके खालीस्थान की मांग करते रहे यहां तक अकाली नेता के शब्द हैं कि सिक्खों की संस्कृति हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों के निकट है।

कांग्रेस के राज्यपुनर्गठन कमेटी के निर्णय पर सिक्खों की "पंजाबी सूबे" की पृथक मांग तथा हिन्दुओं की "महा पंजाब" की संयुक्त मांग का शोर गुल मचा, ऐसे समय अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, सिक्खों ने उसे नाकामयाब बनाने के लिये किरपाण और तलवारों के प्रदर्शन किये। श्री जवाहरलाल ने तो दोनों "महा पंजाब" और "अकाली" प्रदर्शन कारियों को ऊपर से फटकारा और कहा अब समय लाठी और किरपाणों का नहीं है अब तो अणु बमों का है। किन्तु भीतर ही भीतर सिक्खों से भयभीत हुए, कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होते ही अकाली नेता को आमन्त्रित कर साठ-गांठ कर एक समझौता कर लिया अल्प संख्यक सिक्खों को बहु संख्या में लाकर उसे विशेष अधिकारी बना दिया इस पर हिदुओं की ओर से एतराज हुए आन्दोलन हुए किन्तु आर्यसमाज राजनीतिक पहलू से चुप रहा केवल मात्र आर्य संस्कृति पर आघात शिक्षा समस्या को हाथ में लिया वह भी हिन्दी-देवनागरी और गुरमुखी लिपि में शिक्षण की स्वतंत्रता देने की दिशा में आवाज बुलन्द की, वर्षों से अधिकारियों के आगे विनय करके सदभावना मिशन ले गये किन्तु हठीं कांग्रेसी बड़े से बड़ा नेता टस से मस नहीं हुआ।

अन्त में महात्मा गांधी की अहिन्सा सत्याग्रह की देन काम में लाकर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा है। इस युद्ध में जो अत्याचार अंग्रेजों ने नहीं किये थे वह अहिंसावादी महात्मा गांधी की नाम लेवा पानी देवा सरकार ने निहत्थे सत्याग्रहियों पर होशियारपुर व हरियाना प्रान्त में किये तथा फिरोजपुर जेलों के बन्दीओं पर हुए अत्याचार की मिसाल अन्य किसी के राज्य में देखने को नहीं मिलेगा।

कांग्रेसी राज्यके अधिकारियों द्वारा जो आर्यसमाज जैसी सांस्कृतिक संस्था को जो उपहार मिल रहा है। यह कांग्रेस को भारी पड़ेगा अधिकारियो सोचलो ?

समझौता पक्ष-विपक्ष दोनों के समक्ष होता है एक की बात रख लेनी वह समझौता नहीं कांग्रेस उच्चाधिकारियों को चाहिए कि अकाली नेता को स्पष्ट शब्दों में कहे कि अल्प संख्या को दी गई रियायत बहु संख्यकों को मान्य नहीं उसे नहीं मना सकते तो दी रियायत वापस ले ली जायगी और राज्य

[शेष पृष्ठ १६ पर]

समाचार संग्रह

पंजाब सरकार ने शिक्षा विभाग तथा स्कूलों के सम्बन्धित अधिकारियों को एक परिपत्र भेजा है जिसमें कहा गया है कि १९५८ की मिडिल की परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों को सात विषयों में परीक्षा देनी होगी इसमें हिन्दी और पंजाबी भी है। वे विद्यार्थी सफल घोषित होंगे जो ५ विषयों में सफलता के अंक प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार मिडिल तक कोई भी भाषा या विषय अनिवार्य नहीं रहा। यह हिन्दी सत्याग्रह की आंशिक विजय है।

—विभिन्न दूरस्थ प्रांतों से धड़ा धड़ जत्थे आने आरम्भ हो गये हैं। अक्टूबर में बंगाल, हैदराबाद, बम्बई आदि के सत्याग्रही विशेष उल्लेखनीय है। १८ अक्टूबर को पं० रामचन्द्र देहलवी भी एक बड़ा जत्था लेकर चण्डीगढ़ की तरफ गये। उन्हें रास्ते में करनाल में गिरफ्तार कर लिया गया। इससे पूर्व गांधी मैदान में उनको विदाई दी गई। देहली आर्य समाजों ने उन्हें पन्द्रह हजार की थैली भेंट की गई।

—भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्याम सिंह गुप्त को बम्बई के दौरे में एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपयों ११११११) की थैली भेंट की गई।

—महात्मा आनंद भिक्षु व ब्रह्मचारी बालकराम को रिहा कर दिया गया है। महात्मा आनंद भिक्षु जी ने ५८ दिन तक अनशन रखा। इन दोनों को सरकार ने बिना शर्त रिहा किया है।

—पूज्य स्वामी आत्मानंद जी शनिवार को दिल्ली में जहां ठहरे थे। वहां से एकाएक लापता हो गये थे। उनकी चप्पल चारपाई के नीचे पड़ी थी। सेवक वहीं सो रहा था। दुशाला गायब था। आर्य समाजी क्षेत्र में काफी हलचल मच गई थी। बाद में वे एक बगीचे में ध्यानावस्थित बैठे पाये गये। उनका ब्लडप्रेशर बढ़ गया था और हालत खराब हो गई थी। अब उनका स्वास्थ कुछ सुधार पर है।

—श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने कहा है कि आज पंजाब में जो आग लगी है वह अन्याय को हटाकर बुझेगी। उन्होंने कहा यदि कांग्रेस के सिर पर से नेहरु के भय का डण्डा हट जाय तो ९९ प्रतिशत कांग्रेसी इस सत्याग्रह में भाग लेंगे। आपने कहा कि यह आन्दोलन १६ आने आर्य समाज का है श्री नेहरू इसे साम्प्रदायिक कह कर बदनाम कर रहे हैं। यह विशुद्ध सांस्कृतिक व राष्ट्रीय है।

[शेष पृष्ठ १५ का]

“पुनर्गठन” आयोग की सिफारिश के अनुसार पंजाब का शासन लागू किवा जावेगा।

अनेक कांग्रेसी नेताओं के निवेदन पर राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी पंजाब की भाषा समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्न शील हैं, भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त से आर्य समाज का दृष्टिकोण जानने को बुलाया, प्राय १ घण्टा वार्तालाप हुई, देखा जाय ऊँट किस करवट बैठता है।

श्री घनश्याम सिंह जी से आशा रखनी चाहिये कि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी को पंजाब में योग्य स्थान देकर ही आर्य समाज का आन्दोलन स्थगित करने को तैयार होंगे। —सम्पादक

वेद का विषय (गतांग से आगे)

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्व्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ मु० खं० १ । ५

अर्थ—'उन में से अपरा विद्या इन में है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष और परा विद्या वह है जिससे उस परमात्मा का ज्ञान होता है।'

इस उपनिषद् के वाक्य से स्पष्ट विदित होता है होता है कि अपरा विद्या अर्थात् प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा ज्ञान और इससे काम लेने की विद्या वेदों में है। इसके अतिरिक्त ऋषियों ने बतलाया है कि ऋक् का अर्थ स्तुति अर्थात् पदार्थों के गुणों का यथार्थ वर्णन करना है इसी कारण ऋग्वेद में पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव का वर्णन किया गया है। जैसा कि ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही, अग्नि का लक्षण बतलाया गया है। यजुर्वेद में यजुः शब्द का अर्थ है जिससे यजन किया जावे। यज् धातु का देवपूजा, संगति करण और दान के अर्थ में प्रयोग होता है। जिस वेद में अमिश्रित पदार्थों के मिश्रित करने और देवताओं की पूजा अर्थात् अग्निहोत्रादि यज्ञ और दान करने की विधि का वर्णन हो उसे यजुः कहते हैं और साम यज्ञों के फल का वर्णन तथा गायन का ज्ञान कराता है। और अथर्ववेद से उन यज्ञों में जिनका उस कार्य में प्रयोग होता है, रक्षा की जाती है। और वेदों के देखने से भी विदित होता है कि वेद में केवल यज्ञों की विधि ही नहीं किन्तु प्रत्येक विद्या का मूल विद्यमान है। यजुर्वेद का ४० वाँ अध्याय ब्रह्म विद्या सम्बन्धी माना ही जाता है। इसी कारण उनका नाम ईशोपनिषद् रख कर उपनिषदों में उसे मिला दिया गया है। पुरुष सूक्तमें विराट् और सृष्टि की उत्पत्ति की विद्या भरी हुई है। 'द्वे सृती' इत्यादि मन्त्रों में पुनर्जन्म का विचार स्पष्टतया पाया जाता है। 'संगच्छध्वम्' इत्यादि मन्त्रों में समाज से मिलकर रहने की विद्या पाई ही जाती है! ब्राह्मणोस्य०' इस मन्त्र में वर्णों का विभाग दिखलाई देता है। इसी प्रकार प्रायः सभी मन्त्र विद्याओं 'से भरे पड़े हैं। यज्ञ विद्या के सम्बन्ध में भी बहुत से मन्त्र हैं। पंडित भीमसेन जी का यह लिखना कि स्वामी दयानन्द जी ने अंग्रेजी पढ़े लिखों को खेंचने के निमित्त वेद में सब विद्याओं का होना लिख दिया है, उनके अपने हृदय के दुर्भाव को प्रकट करना है। जिस प्रकार वह अपने हृदय को सांसारिक इच्छाओं से भरपूर पाते हैं, जिसके कारण कि बहुधा अपने आत्मा के विरुद्ध करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। जैसा कि उनके लेख से प्रकट होता है। एक स्थान पर तो बल पूर्वक लिखते हैं कि यदि सब आर्यसमाजी प्रयत्न करें तो भी वह श्राद्ध क वेद विरुद्ध न कर सकेंगे। मानों उनके विचार में श्राद्ध एक अटल वैदिक सिद्धांत हैं। दूसरे स्थान पर वह यह लिखते हैं कि आर्य्यसमाजों की प्रतिनिधि सभायें यह लिख दें कि श्राद्ध में मेष, महिषो और पशु हिंसा को छोड़ कर शेष यज्ञ विधि जो ब्राह्मण और श्रौत सूत्रों में लिखी है उसको हम सत्य मानते हैं तो हम इन तीन विषयों को साध्यकोटि में छोड़ देंगे। क्या इस अटल सिद्धांत को साध्यकोटि का समझने में आप अपने आत्मा का हनन नहीं करेंगे? पंडित जी! यदि आप श्राद्ध आदि को अटल सिद्धांत समझते हैं तो उसे किसी के कहने से साध्यकोटि में डाल देना आपकी निर्बलता है जो कि बतला रही है कि आपको निश्चयात्मक ज्ञान नहीं। आज तक आपने जितने लेख लिखे हैं उनसे भी विदित होता है कि आपको किसी विषय का ज्ञान यथार्थ नहीं हुआ। यदि आपको आर्य सिद्धान्त का ज्ञान होता ता कदापि ऐसे गोल मोल लिखने को उत्तम न समझते, जैसा आप श्राद्ध के सम्बन्ध में बलपूर्वक लिखते हैं। क्या आपको शास्त्रों, वेदों और ब्राह्मणों

का ज्ञान है ? जिसके कारण आप स्वामी दयानन्द की भूलें ढूँढने चले हैं ? यह तो आपको भ्रांति है। आपको विद्वान होने का प्रमाण पत्र किसने दिया ? क्या आपने काशी में जाकर किसी गुरु से दर्शन पढ़े हैं ? क्या आपने काशी में किसी शास्त्र में शास्त्रार्थ करके विजय पाई है ? क्या आपने किसी गुरु से दर्शन के सिद्धान्तों पर विचार किया है ? इसका उत्तर सिवाय नकार के आपके पास है ही क्या ? आप केवल अष्टाध्यायी और कुछ भाग महाभाष्य व्याकरण का जानते हैं। आप महर्षि स्वामी दयानन्द की पुस्तकों के लिखने पर नौकर रहे; इस कारण आपकी लेख प्रणाली उत्तम हो गई और इसी से आपकी समाजों में प्रतिष्ठा होने लगी जिसे आप सम्भाल न सके। अब आपको गुरु और आचार्य बनने की सूझी। आपका यह दावा कि सिवाय आपके आर्य समाज में किसी ने वेद शास्त्रों को विचारा ही नहीं, सर्वथा निर्मूल है और यदि यथासम्भव हम इसे सत्य भी मान लें तो क्या वेद ऐसी गाथाओं की पुस्तक है कि जिसे बिना दर्शन आदि लौकिक शास्त्रों के अध्ययन किये ही केवल थोड़ा सा व्याकरण पढ़कर मनुष्य समझ लेवे महाशय जी। व्यारण से केवल शब्दार्थ का ज्ञान हो सकता है, आन्तरिक विद्या से तनिक भी विज्ञता नहीं होती, और यदि आपका कथन सत्य मान लिया जाये कि आप वेदों और ब्राह्मणों को भले प्रकार जानते हैं तो आपने उपनिषदों का भाष्य करने में छान्दोग्य और बृहदारण्यक का भाष्य क्यों छोड़ दिया ? पहिले आठों का भाष्य करके फिर श्वेताश्वतर का भाष्य किया और इसमें भी बहुत सी अशुद्धियां हैं। यदि आप यज्ञ विषय को भली प्रकार समझने वाले थे तो क्यों आपने काशी से रामकृष्ण भट्ट को, जो आपके सिद्धान्त के विरोधी थे, यज्ञ व्यवस्था और पद्धति बनाने के प्रयोजन से बुलाया। इसके अतिरिक्त यदि आपको ब्राह्मणों के जानने का दावा है तो एक बार स्वामी जी की भाँति घूमकर दिग्विजय तो कीजिये जिससे कि आप पर अपनी अनभिज्ञता शीघ्र ही प्रकट हो जाये। वेदों का मुख्य विषय यज्ञ ही को मानना यह आपकी अनभिज्ञता का पूरा प्रमाण है क्योंकि कणाद जी ने वैशेषिकदर्शन में स्पष्टतया माना है कि वेदों में धर्म का वर्णन है और धर्म का लक्षण उन्होंने यह किया है:—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म्मः। वै॥० द० १।१।२

अर्थ—"जिससे अभ्युदय अर्थात् तत्वविज्ञान और निःश्रेयस अर्थात् दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति रूपी मोक्ष की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते हैं।" यदि इस सूत्र का मध्यमपदलोपी अथवा पञ्चमी तत्पुरुष समास किया जावे तो वास्तविक अर्थ यह होता है कि जो तत्वज्ञान के द्वारा मोक्ष का कारण हो वही धर्म है। इससे आगे के सूत्र में बतलाया गया है कि "तत्वज्ञान के द्वारा मुक्ति का कथन करने अथवा ईश्वर का उपदेश होने से वेद का प्रमाण समझना उचित है।" जिसका आशय यह है कि "ईश्वर के उपदेश वेद से तत्वज्ञान मिलेगा।" महात्मा कणाद जी के विचार में तत्वज्ञान वेद का विषय है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि तत्वज्ञान किसका ? इसका उत्तर स्पष्ट मिलता है कि प्रकृति, पुरुष और जीवात्मा का। क्योंकि जीव अपने स्वरूप को जानकर ही अपने इष्ट परमात्मा और अनिष्ट प्रकृति को जानता है। जीवात्मा का मुख्य धर्म परमात्मा को जानना है, जिससे मोक्ष की प्राप्ती होती है जैसा कि वेद में कहा है:—

वेदाऽहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णतमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ यजुः।३१।१८।

अर्थ—हम उस सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को जानें जो परमात्मा सूर्य्य की भांति प्रकाश युक्त अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, जो अविद्या और अज्ञान से नितान्त पवित्र है, उसी एक परमात्मा के जानने से

मोक्ष होता है, दूसरा कोई मार्ग मुक्ति के लिये नहीं। इसी कारण महात्मा कणाद के लक्षण के अनुसार मुक्ति का हेतु जो ईश्वर का ज्ञान है वही मुख्य धर्म्म है क्योंकि उससे मुक्ति की प्राप्ति होगी क्योंकि परमात्मा का जानना अन्तःकरण के मल, विक्षेप, आवरण-दोष होने से बहुत कठिन है इसलिये वेद ने मलदोष के दूर करने के निमित्त कर्म्मकाण्ड और विक्षेपदोष हटाने के निमित्त उपासना और आवरण दोष के दूर करने के निमित्त ज्ञान काण्ड का उपदेश किया और मूल दोष का दूर होना सबसे प्रथम आवश्यक है। इसी कारण वेद ने कर्म्मकाण्ड को प्रथम सोपान बतलाया है और क्योंकि यज्ञादि कर्म्मकाण्ड में ही सम्मिलित हैं, इसलिये यह कहा है कि:—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि
प्रथमान्यासन् ॥ यजुः ३१ । १६ ॥

अर्थ—"यज्ञ जो विष्णु परमात्मा है उसको विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा पूजा, इसी कारण यज्ञ पहिला धर्म है।" यहां प्रथम का अर्थ मुख्य नहीं किन्तु पहिला है क्योंकि मुख्य धर्म त्याग के योग्य नहीं होता और कर्मकाण्ड को त्याज्य बताया है जो कि चतुर्थाश्रम में त्यागना ही पड़ता है। मुख्य धर्म ईश्वर का ज्ञान है और यज्ञादि उसके साधन हैं। साधनों को मुख्य धर्म्म मानना स्पष्ट भूल है। अब लीजिए मीमांसा के सूत्रों का अर्थ—

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म्मः ॥ मी० १।१।२

अर्थ—"जिसमें वेदों की प्रेरणा हो वही धर्म्म है।" धर्म का यह लक्षण मीमांसाकार महात्मा जैमिनि जी करते हैं। वेदों की प्रेरणा किस में ? कर्म्म, उपासना और ज्ञान में। यदि वेदों की प्रेरणा अकेले कर्म्मकाण्ड में होती तब तो यह सूत्र आपकी अर्थ—सिद्धि कर सकता। ऐसा कोई भी आर्य्य नहीं जो वेद को स्वतः प्रमाण न मानता हो। यदि कभी आर्य्य लोग सृष्टिक्रम आदि में मिलाते हैं तो वेदार्थ को मिलाते हैं। वेदार्थ में शंका करने वाले को आप वेद में शंका करने वाला नहीं कह सकते क्योंकि मूल वेद शब्द प्रमाण में स्वतः प्रमाण लिया जाता है, वेदार्थ स्वतः प्रमाण नहीं लिया जाता। सम्भव है कि अर्थ करने वाले ने भूल की हो। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ वा श्वेताश्वतर आदिक वेद नहीं। उनमें तर्क करने वाले नास्तिक नहीं हो सकते। जो वेद के स्वतः प्रमाण होने में शंका करे वह आस्तिक के स्थान से पतित हो सकता है। यदि ब्राह्मण वाक्यों में जो यज्ञ विधि आदिक लिखी है उसको न मानने में कोई नास्तिक हो सकता है तो ब्राह्मण में लिखे हुए पशुवध को न मानने से आपकी भी नास्तिक कोटि में गणना होगी। एक ओर तो आप शब्द प्रमाण में प्रत्यक्ष आदि के अड़ंगे लगाने वाले को आस्तिक नहीं मानते, दूसरी ओर आपने प्रत्यक्ष हिंसा दोष के होने से पशुवध को वेद विरुद्ध सिद्ध न होने पर भी छोड़ दिया। या यों कहिये कि ब्राह्मण वाक्य को वेद विरुद्ध सिद्ध न होने पर भी छोड़ दिया।

जब कि ब्राह्मण और कपिल आदिक के वाक्य में विरोध होने से आपने कपिल आदिक को पूर्ण वेदानुयायी माना, तो क्या ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ता पूर्ण वेदानुयायी नहीं थे ? जो उन्होंने वेद के विरुद्ध हिंसा इत्यादि लिख दी। वेद के विरुद्ध बातें जो ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखी गई है वह इन चार अवस्थाओं के अतिरिक्त नहीं हो सकतीं। (१) ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ता वेदों के मानने वाले न हों इस कारण उन्होंने वेदों के विरुद्ध लिख दिया, (२) वह वेदों के ज्ञाता ही न हों अतः मूल से वेद के अर्थ के विरुद्ध लिख दिया। अब यदि वह वेदों के मानने वाले न हों तब तो वह नास्तिक ठहरे और नास्तिक का अनुयायी भी नास्तिक होता है और यदि वह वेदों के जानने वाले नहीं तो वह स्वयं भ्रान्ति में थे और भ्रांत का अनुयायी भी भ्रांत होता है,। (३) ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ मिलावट हुई; ऐसी दशा में वेद के अनुसार वाक्यों की मिलावट करने वाले के विरुद्ध होना आपने सिद्ध नहीं किया और इसलिए मिलावटी कह ही नहीं सकते। (४) यह वाक्य वेदानुकूल न हों, ऐसी दशा में आपका पशु हिंसा को यज्ञमें छोड़ देना

क्या ब्राह्मणों की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं है ? किन्तु उनकी आज्ञा को प्रत्यक्ष हिंसा देखकर भंग करना है, जिसको कि आप नास्तिक का काम मानते हैं। जब आपने कपिल आदि की सम्मति को ब्राह्मण कर्त्ताओं की सम्मति से प्रबल माना अर्थात् यज्ञ में पशु हिंसा को कपिल आदि के मतानुसार प्रमाण माना और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार प्रमाण न माना, और इसमें अरनी बुद्धि को ही न्यायकर्ता ठहराया, क्या कोई ऐसा प्रमाण भी है कि जहां कपिल आदि के शास्त्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों में विरोध हो, वहां ब्राह्मण ग्रन्थ अप्रमाण है, और कपिल आदि के शास्त्र प्रमाण हैं। यदि आप कहें कि हमने अपनी बुद्धि से ऐसा किया तो आपकी बुद्धि ही स्वतः प्रमाण हुई। जिससे कि ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्य को वेद विरुद्ध सिद्ध न होने पर भी त्याज्य समझा, जिससे आपकी बुद्धि ने पशुहिंसा के अवसर पर ब्राह्मण को अप्रमाण ठहराया, उसी बुद्धि ने श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मण को प्रमाण ठहराया। जिस बुद्धि में ब्राह्मणों के सम्बन्ध में यह दो सम्मति हैं उसके प्रमाण होने का विश्वास किसी विद्वान् को तो हो नहीं सकता। कृपया अपने अनुभव को विचारिये तो आपको स्वयं ज्ञान हो जावेगा कि इस अनिश्चयात्मक बुद्धि के कारण आप नास्तिक कोटि में पहुँच गये हैं या नहीं ? यद्यपि आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वेद का विषय यज्ञ है तथापि उसके सिद्ध करने में जो प्रमाण आपने दिये हैं वह निर्बल हैं। यज्ञ धर्म्म के दश लक्षणों में से "शौच" के अन्तर्गत आ जाता है, क्योंकि इसका आशय मल दोष को दूर करना है। आप जो स्वर्ग सुख मानते हैं वह विषय भोग से रहित है अथवा विषय भोग की ही कोई अवस्था विशेष है ? क्योंकि यह तो आपने लिखा है कि स्वर्ग की इच्छा वाला यज्ञ करे, परन्तु पौराणिक लोग स्वर्ग एक देश विशेष को मानते हैं जिसकी राजधानी अमरपुरी है। यदि आरोग्यता सुख माना जावे तो भी वह दृष्ट सुख है। यदि स्वर्ग कोई देश माना जावे जिसमें पहुँचकर हमें सुख मिलेगा तो वह भी दृष्ट सुख है। जैसे लन्डन यद्यपि भारतवर्ष में रहने वालों को अदृष्ट प्रतीत होता है, परन्तु वहां चलकर देखने से इन्द्रियों का विषय होने के कारण दृष्ट है अर्थात् हम उसे देख सकते हैं। जहां तक शास्त्रों का अध्ययन करोगे मोक्ष सुख के अतिरिक्त और सब सुख दृष्ट ही हैं और उनका सुख भी अनित्य अर्थात् एक सम रहने वाला ही नहीं। इसी कारण कणाद जी ने धर्म्म उसको माना जिसमें मोक्ष हो जावे और कपिल के मतानुसार यज्ञ मुक्ति का दाता नहीं।

(देखो, सांख्यदर्शन विज्ञानभिक्षु कृत भाष्य अध्याय १ सू० ६)

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः (कारिका) 'गुरोरनुश्रूयत इत्यानुश्रवो वेदः, तद्विहितयगादिरानुश्रविकः' ।

अर्थ—"जो गुरु से परम्परा से ही सुना जावे वह वेद है, उसमें बतलाये हुए कर्म्म यज्ञादि हैं। इससे भी मनुष्य को दुःखों की अत्यन्त निवृति प्राप्त नहीं होती।"

'नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः, साध्यत्वेनाऽऽवृत्तियोगाद् पुरुषार्थत्वम् गुरोरनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तत्र विहितमानुश्रविकं यागादि कर्म ततोपि न पूर्वोक्तपुमर्थसिद्धिः ।"

विज्ञान भिक्षु अपने भाष्य में लिखते हैं: -

अपि शब्देन न दृष्टात् तत्सिद्धिरिति प्रागुक्तदृष्टसमुच्चयः, गुरोरनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तद्विहितो यागादिरानुश्रविकं कर्म तस्मादपि न पूर्वोक्तपुरुषार्थसिद्धिः ।'

जब कि कपिल जी के सिद्धान्त के अनुसार यज्ञ से मुक्ति नहीं होती और कणादि जी के सिद्धान्तानुसार

धर्म्म वह है जो मुक्ति का कारण हो ; इससे स्पष्ट विदित होता है कि यज्ञ धर्म नहीं किन्तु कार्य कर्म है। अर्थात् सांसारिक इच्छा जन्य, पुत्र, आरोग्यता आदि का कारण है। हम आपकी बात को मानें कि 'यज्ञ धर्म है', अथवा कणाद और कपिल की बात को मानें कि यज्ञ धर्म नहीं, किन्तु मल दोष दूर करने का एक साधन है। जैसा कि सांख्यकार महात्मा कपिल ने कहा है, देखो सांख्य दर्शन अध्याय ३ सूत्र ३५।

"स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्"।

अर्थः—अपने वर्ण और अपने आश्रम के अनुकूल कर्म करने में वृत्ति स्थिर होती है। विज्ञान भिक्षु तो यहां कर्म से 'यम नियम' को लेता है और यज्ञादि को नितान्त उड़ा देता है। परन्तु वर्ण अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और गृहस्थादि आश्रमों के लिये पञ्च यज्ञ का विधान है, अतः वर्णाश्रम के कर्म में यज्ञ ही समझना चाहिये। धर्म का जो लक्षण कणाद और जैमिनिने किया उसमें वह दोनों एक ही हैं। क्योंकि कणाद के मतानुसार जो मोक्ष का कारण हो वह धर्म्म है और वह तत्व ज्ञान रूप वेद में हैं, सुतराम् वेद के अनुसार जो मुक्ति का कारण हो वह धर्म्म है। और जैमिनि भी यही कहते हैं कि जिसमें वेदों की प्रेरणा हो वही धर्म्म है। वेदों की प्रेरणा मुक्ति के लिये ईश्वर को जानने में है, इस कारण ईश्वर का जानना ही मुख्य धर्म्म है और "धृति" आदि जो मनु ने वर्णन किये हैं यह दश लक्षण उप-धर्म्म के हैं, इनमें शौच एक लक्षण हैं, जिसके लिये महात्मा मनु कहते हैं—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

अर्थात् जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य बोलने तथा सत्याचरण करने से मन शुद्ध होता, परन्तु शुद्धि के लिए ही कर्मकाण्ड की विधि है, इस पर सम्पूर्ण विद्वान् सहमत हैं और यज्ञ कर्मकाण्ड में है अतः यज्ञ शौच के अन्तर्गत आ जाता है। और यह भी निष्काम भाव से किया जाना चाहिये यदि पुत्रादिक की कामना से किया जावे तो वह धर्म्म की गणना में भी नहीं आ सकता। क्योंकि जिस प्रकार प्यास के कारण जल पीना धर्म्म नहीं है। इसी प्रकार पुत्रादि की कामना से यज्ञ करना धर्म्म नहीं। अतः वेद का विषय कर्म, उपासना, ज्ञान या अपरा और परा विद्या है। इति।

:—:—

वैदिक धर्म सब मतों की उत्तमताओं का केन्द्र है।

आजकल आर्य समाज का सामना 'कुरानी, किरानी, पुराणी और जैनी इत्यादि सभी मतों से हो रहा है परन्तु ये लोग अपनी संख्या की अधिकता के रखते भी तथा जी तोड़ प्रयत्न करने पर भी प्रथक् प्रथक् और कभी कभी मिलकर भी सफलता को प्राप्त नहीं होते! क्या आर्यसमाज में विद्वान अधिक हैं? कदापि नहीं। क्या आर्य समाज के पास सांसारिक पदार्थों की सहायता विशेष है? कभी नहीं। क्या आर्यों में बुद्धि अधिक है? कभी नहीं। तब क्या कारण है कि आर्यों की मुट्ठी भर संख्या समस्त मतों के हौसले गिरा रही है, सबकी जड़ों को खोखला कर रही है। इसका उत्तर यह है कि संसार में जितने प्रकाश हैं वह दो प्रकार के हैं। एक तो परमात्मा के प्रदान किये हुए प्राकृतिक, दूसरे मनुष्यकृत। प्राकृतिक प्रकाश सूर्य्य है और मनुष्यकृत प्रकाश दीप लेन्टर्न, लैम्प, विद्युत तथा गैस आदि हैं। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि आपने चन्द्र तथा तारागणों के प्रकाश की गणना प्राकृतिक

प्रकाश में क्यों नहीं की ? इसका उत्तर यह है कि चन्द्रमा और तारा गण स्वयं प्रकाशमान नही, किन्तु सुर्य्य के प्रकाश में प्रकाशित हैं अब सूर्य्य तो किसी प्रकार से भी मनुष्यकृत प्रकाश की सहायता नहीं चाहता, और न ही किसी मनुष्य द्वारा रचा गया है। परन्तु मनुष्यकृत जितने भी प्रकाश के पदार्थ हैं उनमें पदार्थ वर्तन मनुष्य के बनाये हुए हैं, अर्थात् दीपक, लैन्टर्न तथा तेल बत्ती इत्यादि । परन्तु अन्य जो प्रकाश है वह मनुष्यकृत नहीं किन्तु सूर्य्य की किरणों से प्रकाश प्राप्त करते हैं। बहुधा मनुष्य यह समझते हैं कि अग्नि अथवा प्रकाश रगड़ने से उत्पन्न होता है, परन्तु वास्तव में कोई द्रव्य नहीं। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है । क्योंकि ऊष्णता तथा प्रकाश आदि गुण हैं जिनका गुणी अग्नि है। अग्नि के बिना उष्णता और प्रकाश किस गुणी के गुण होंगे ? और जो लोग अग्नि और उष्णता को एक समझते हैं वह और भी अधिक भूलते हैं। कोई २ मनुष्य कहते है कि 'अग्नि कभी दूसरे पदार्थ के प्रकट नहीं होती, अतः वह द्रव्य नहीं गुण है। परन्तु यह विचार सत्य नहीं। क्योंकि यदि जल बिना पात्र के न रहे तो उसके द्रव्य होने में कोई संदेह नही हो सकता। क्योंकि रहने के लिये किसी पात्र अथवा स्थान का होना द्रव्य के लिये भी आवश्यक है। यदि पृथ्वी को सूर्य्य की आकर्षण शक्ति न खीचे हुए हो तो पृथ्वी का ठहरना भी कठिन है, तो क्या ऐसी अवस्था में पृथ्वी द्रव्य न रहेगी, गुण हो जावेगी कदापि नही। अग्नि गुणी है और उष्णता तथा प्रकाश उसके गुण हैं, संसार में जितनी अग्नि है सब सूर्य्य के प्रकाश से फैली हैं। यह विचार बहुत लम्बा है और इस छोटी सी पुस्तक में इसका पूर्णतया वर्णन करना दुस्तर है। सुतराम थोड़ा सा ही निवेदन किया गया है। जैसे सांसारिक अथवा बाह्य प्रकाश दो प्रकार के होते हैं ऐसे ही आन्तरिक अथवा आत्मिक प्रकाश अर्थात् विद्या अथवा ज्ञान भी दो प्रकार का है। एक ईश्वरीय ज्ञान दूसरी मनुष्यकृत पुस्तकें। इनमें से बहुत सी तो ऐसी होती हैं कि उनमें सिद्धाँत तो ईश्वरीयज्ञान से लेते हैं और शेष अनावश्यक तथा देश की अवस्था के अनुसार कल्पना करके समाज के लिये नियम बन जाते हैं। बहुत सी ऐसी होती हैं कि केवल प्राचीन कथाओं का वर्णन करती हैं। बहुत सी ऐसी होती हैं कि ईश्वरीय ज्ञान को लक्ष्य वस्तु मानकर उसके किसी उत्तम सिद्धान्त की व्यवस्था तथा दर्शन के रूप में दिखाई देती हैं। बहुत सी ऐसी हैं कि जो कुछ सत्य बातें ईश्वरीय ज्ञान में से लेकर शेष अपनी वासनाओं की पूर्ति के साधन मिलाकर एक धार्मिक पुस्तक का रूप धारण कर लेते हैं। अधिक संख्या धार्मिक पुस्तकों की इसी प्रकार की बनी है । जब हम प्रत्येक मत को प्रचारपूर्वक देखते हैं तो उसके सिद्धान्त कुछ तो ऐसे मिलते हैं कि जो ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् वेद से लिये हुए हैं। जैनियों में अहिन्सा कहां से आई ? वैदिक धर्म से। यदि किसी को शंका हो तो वह "अहिंसाऽस्तेयादि" अथवा "यस्तु सर्वाणि भूतानि" यजुर्वेद अध्याय ४० के मन्त्र को देख कर अथवा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" को पढ़कर समझ सकता है जिस प्रकार कोई अपने पर दुःख का आना नहीं स्वीकार करता उसी प्रकार दूसरे को दुःख का देना भी अच्छा समझना उचित नहीं है। परन्तु जैनियों में जो झूंठी बातें हैं वह उनके आचार्यों की मिलाई हुई हैं। उदाहरणार्थ मुक्ति का आदि होना पर अन्त न होना, बन्धन का आदि न होकर अन्त होना, इत्तादि और भी बहुत सी ऐसी ही बातें हैं कि जिनके कारण विद्वानों की दृष्टि में जैन मत निर्बल सिद्ध होता है। मुसलमानों ने अद्वैतवाद तथा प्रारब्धवाद आदि बहुत सी बातें वेदों से ली हैं। परन्तु मुसलमान विद्वानों को इतना भी पता नहीं कि उसमें किस प्रकार की अद्वैतता आवश्यक है आया स्वाभाविक, गौणिक अथवा कार्मिक (गुणों की अद्वैतता की व्यवस्थानुसार) अथवा किसी अन्य प्रकार से। क्योंकि यदि ईश्वर को ही अपने रूप में एक माना जावे तो समस्त संसार का उपादान कारण भी ईश्वर ही होगा। परन्तु उपादान कारण के गुणों का उपादेय में होना आवश्यक है।

क्योंकि जो आभूषण स्वर्ण के बनते हैं उनमें स्वर्ण के गुण अवश्य पाए जाते हैं। पाकज गुणों (वह गुण जो क्रिया से उत्पन्न होते हैं) को छोड़कर कोई गुण ऐसा नहीं जो कारण में हो और कार्य्य में न हो। परमात्मा चेतन और ज्ञानी है, इसलिए सारा संसार स्वयं ज्ञानवान् होना चाहिए। परमात्मा आनन्दमय है अतः समस्त संसार आनन्दमय होना चाहिए। किसी को भी दुःख न होना चाहिए, परन्तु हम संसार के असंख्य पदार्थों को जिन्हें प्राकृतिक कहा जाता है ज्ञान रहित पाते हैं। करोड़ों ज्ञानवान् मनुष्य तथा पशु दुःखी पाए जाते हैं। कारण प्रत्येक बुद्धिमान् को मानना पड़ता है कि परमेश्वर उनका उपादान कारण नहीं है किन्तु ज्ञान रहित वस्तुओं का निर्मित्त कारण है।। अब क्योंकि ज्ञानवान् जीव दो ही दशाओं में आ सकते हैं, एक यह है कि उनको कार्य और ईश्वर का उपादान कारण माना जावे, परन्तु इस दशा में जीव का दुःखी होना असम्भव होगा। दूसरी दशा में जीव को अनादि माना जावे तथा सुख दुःख उसके नैमित्तिक गुण माने जावें। परन्तु इस बात को गौणिक अद्वैतता का सिद्धान्त रोकता है क्योंकि अनादि होने का गुण ईश्वर के साथ जीव में भी आ जाता है। परन्तु गौणिक अद्वैतता का यह अर्थ करना स्पष्ट जड़ता है किन्तु उसका यह अर्थ है कि जितने गुण परमात्मा में हैं उतने गुण किसी दूसरी वस्तु में नहीं बहुत से लोग प्रश्न करेंगे कि क्या कारण कि गौणिक अद्वैतता का ऐसा अर्थ करना मूर्खता है? परन्तु इसका उत्तर यह है कि ऐसे गुणों वाला अद्वैत ईश्वर है ही नहीं, क्योंकि इस समय ईश्वर है इससे किसी को नकार नहीं, जीव है इससे किसी को नकार नहीं और प्रकृति तथा प्राकृतिक शरीर है इसमें भी किसी को संशय नहीं। क्यों महाशय! अस्तित्व का गुण ईश्वर और मनुष्य में मिल गया फिर गुण से अद्वैतता कहां रही?

हमारे मुसलमान मित्र इस अवसर पर यह कहते हैं कि परमात्मा का अस्तित्व तो कर्ता की दशा में है और जीव और प्राकृतिक का कर्म्म की दशा में। इस कारण दोनों के अस्तित्व में अन्तर है। अब जबकि दोनों का अस्तित्व भिन्न २ प्रकार का है अर्थात् वह दोनों एक हैं ही नहीं, तब ऐसी दशा में उनका मिलना क्या अर्थ रखता है। परन्तु यह भिन्नता तो अनादि होने में भी है। क्योंकि ईश्वर का अनादि होना मालिक की अवस्था में है और जीव और प्रकृति का अनादि होना मिलकियत की अवस्था में है। मुल्क और मालिक हो सकते हैं। एक साथ होते हुए भी न तो साझी होते हैं और न ही एक पदार्थ हो सकते हैं। हाँ वास्तविक अद्वैतता रूपसे एक की ही उपासना है जो कि धर्म का जीवन है। परन्तु वेद में तो एक ईश्वर की उपासनो को ही कर्त्तव्य ठहराया है, पर मुसलमानों के यहाँ पैग़म्बर (दूत) को साझी किया गया और एक ईश्वर की उपासना करने वाले को 'शैतान' बताया गया है। शैतान कौन था? फरिश्तों का उस्ताद। एक सहस्र वर्ष तक इबादत (उपासना) करने वाला। वह किस अपराध में गिरोह से बाहर निकाला गया। आदम को सिजदा न करनेके कारण! बस जो पैग़म्बर को न माने वह काफिर और आदम को सिजदा न देवे वह शैतान है। अस्तु इस्लाम में जितनी टूटी फूटी शिक्षा है वह तो वेदों से ही ली गई है परन्तु जो कामेच्छा को पूर्ण करने की शिक्षा है सो हजरत मुहम्मद साहिब की मनघढन्त है। देखो कुरान शरीफ सिपारा २२ सूरतुल अखराब।

वअज्ज़तकूलुल्लजी अलम्द अल्वनियामते अलेइस्सकेज़ादेचकवतक्ल्लः वतखफीफिन्नफ़सके माअल्लोहमवद्लः वतख शीउलनासवल्लाहक्रअज तखशाफ़िलमाक जी जेदमिनहावमिह राजुभालकलायकूनअलीउलमोमनीन फ़िज्जफीहर्जादवाज अबूउल हमराज़क़ामनइनवतरे ऊ कानअमरअल्लां हमफूउल्लाहु।

अर्थ—और जिस समय कि कहता था तु वास्ते उस मनुष्य के कि नेमत की है अल्लाह (ईश्वर) ने ऊपर उसके, और नेमत की है तूने ऊपर उसके, थाम रख ऊपर अपने बीबी अपनी को और डर खुदा

से और छिपाता था बीच जी अपने के जो कुछ कि अल्लाह प्रकट करने वाला है और डरता था तू लोगों से अल्लाह बहुत लायक है इसके कि डरे तू उससे। पस जब अदा करली जैद ने उससे हाजत व्याह दिया हमने तुझसे ताकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तंगी बीच बीवियों लेपालकों उनके की, जब अदा करलें उनसे हाजत और है हुक्म खुदा का किया गया।

कहिये जनाब! इससे बढ़कर और कामेच्छा की पूर्ति की क्या शिक्षा होगी। लेपालकों अर्थात् मुतबन्ना (गोदका) की स्त्रियों में ईमान वालों की तंगी न रही परन्तु शोक! ईमान वालों की तंगी दूर न हुई। क्योंकि न तो मुहम्मद साहिब के पूर्व किसी मुतबन्ना (पोष्यपुत्र) की स्त्री से विवाह किया, और नहीं हजरत के पश्चात् इस प्रकार का कोई विवाह ही हुआ। यदि हुआ हो तो मुसलमान विद्वान इसको सिद्ध करें। क्या कोई मनुष्य मान सकता है कि जो एक मनुष्य की आवश्यकता के कारण लिखा गया हो वह न्याय की सीमा में आ सकता है? क्यों महाशय मुतन्बना (गोद के) पुत्र वधू से विवाह न करने से कौनसी हानि थी जिसके पूर्ण अथवा दूर करने के लिये ईश्वर को ऐसी आवश्यकता पड़ी। बुतबन्ना (गोद का) बेटा तो सहस्रों में एक के होता है। यदि ईश्वर बेटों की स्त्री से विवाह करना जाइज (प्रचलित) कर देता तब तो अवश्य ही कुछ तंगी दूर हो जाती। यदि बहिनों बेटियों और माताओं से जाइज करता तब भी ईमान वालों को कुछ लाभ होता; परन्तु यहाँ तो केवल अपनी गरज (इच्छा) से बिना निकाह काम करना था उसके लिये आयत घड़ दी क्यों घड़ दी? ताकि लोगों से भय न रहे इस आयत के पूर्व रसूल (पैगम्बर) भयभीत थे। आयत बना देने के पश्चात भय दूर हो गया। क्योंकि विवाह पर ईश्वर की मुद्रा लग गई। हमें विद्वान मुसलमानों की बुद्धि पर खेद है कि वह क्यों ऐसे मनुष्य को जो मनुष्यों से भय मानता हो परन्तु ईश्वर से भय न रखता हो, क्योंकि यदि ईश्वर से डर मानता हो तो खुदा (ईश्वर) को यह कहने की आवश्यकता न पड़ती कि "डर खुदा से, कि अल्लाह बहुत लायक है कि डरे तू। इसी प्रकार की समस्त बातों से कुरान भरा है। कहां तक लिखें ईसाइयों की क्षमा को तो प्रत्येक मनुष्य जानता है परन्तु वैदिक धर्म्मियों में धर्म्म का दूसरा लक्षण ही क्षमा को माना गया है और 'तसलीम' भी वैदिक धर्म्म से ली गई है, केवल प्रकृति को रूहुल कुदूस (पवित्रात्मा) बतलाने में भूल की है। नहीं तो बाप 'ईश्वर' और 'बेटा' जीव तो बना हुआ ही है। बौद्ध धर्म्म में जो उत्तम कर्मों की शिक्षा है वह यजुर्वेद के अध्याय ४० के दूसरे मन्त्र से स्पष्टतया प्रकट होती है। इसी प्रकार सिक्खों की ईश्वर भक्ति है और अन्य मत मतान्तर भी जो भारतवर्ष में प्रचलित हैं, वह तो मानते ही हैं कि वेद हमारा केन्द्र है। मजूसी मत की शिक्षा भी वेद से ली गई है। मूसा को अग्नि में ईश्वर का दिखाई देना तो स्पष्ट शब्दों में वैदिक यज्ञ वालों की उस बात का अनुकरण है कि जब यज्ञ करते थे तब अग्नि में से विष्णु प्रकट होते थे। इसी प्रकार बलिदान भी वाममार्गियों का अनुकरण है जिन्होंने कि वैदिक यज्ञ का उलटा अर्थ करके यज्ञों में हिंसा का प्रचार किया। तात्पर्य यह कि आजकल संसार के मतमतान्तों में कोई ऐसी उत्तमता नहीं जिसका केन्द्र वेद न हो। जितने सिद्धान्त किसी मत के वेदों के अनुसार हैं वह ऐसे अटल हैं कि उनका खन्डन असम्भव है। परन्तु जो सिद्धान्त मनघड़न्त है और जिस समय उन पर प्रश्न आता है, उन मतों के अनुयायी घबरा जाते हैं। मुसलमान तौहीद (अद्वैत वाद) पर शास्त्रार्थ करने को प्रस्तुत हैं परन्तु कुरान के ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने से ऐसे चकराते हैं कि देवरिया में ५६ मुसलमान विद्वानों के होते हुए भी वे ५ दिन में ईश्वरीय ज्ञान का लक्षण न कर सके। और न नगीना में इस्लाम ने कुरान को इलहामी (ईश्वरीय ज्ञान) सिद्ध कर पाया। किन्तु मौलवी सनाउल्ला साहिब यही कहते रहे कि जब मैं कुरान को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने के लिये खड़ा हूँगा तब ही कुरान पर के आक्षेपों का उत्तर दूंगा।

क्रमशः

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र । डाक खर्च माफ ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां

महात्मा आनन्द स्वामी—श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है । और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है ।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुन कर मेरा अन्तकरण गद्-गद् हुआ ।

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यलंकार—आर्य जगत में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जायगी ।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य—श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिए कवि का धन्यवाद करता हूँ ।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो यह कामना है ।

"ऋषि गाथा महाकाव्य"—ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें । इसी उद्देश्य से हमने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य में देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है । आप आज ही ४) का मनीआर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली ।

मध्य प्रदेश ईसाई मिश्नरी गति विधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

कहने को तो यह रिपोर्ट मध्य प्रदेश में ईसाई मिश्नरियों की गतिविधि की है, समस्त भारत में यही गतिविधि समझनी चाहिए । इस रिपोर्ट में साफ शब्दों में लिखा है कि मिश्नरियों का आध्यात्मिक ध्येय न होकर राजनैतिक ध्येय है । भारत विरोधी भावनाओं को रोकना प्रत्येक समाज व देश प्रेमी का कर्तव्य है अन्यथा विदेशियों की इन राजनैतिक गतिविधियों से देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जावेगी । अतः इस रिपोर्ट को अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर प्रचार करें एक प्रति का मूल्य ॥) मात्र २५ प्रतियां प्रचारार्थ मँगाने पर ।=) अग्रिम मनिआर्डर से सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त होने पर डाक खच माफ ।

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं । आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है । वैदिक सुक्तों के प्राय ३०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बंधी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है । नये पुराने सभी गृहस्थों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है ।"

मिलने का पता:—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीटयूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लाइब्रेरियों पुस्तकालयों वेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४४ पुस्तकों का सैट**

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है। देहाती पुस्तक भण्डार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वे देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

१. आलू की खेती	॥।)
२. टमाटर की खेती	॥)
३. गोभी की खेती	॥)
४. जीरा, धनियाँ, अजवायन	।।।)
५. तरकारियों की खेती	१॥)
६. अच्छे बीज	।।।)
७. अच्छी खाद	२॥)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	।।।)
१०. फूल फुलवाड़ी	२॥)
११. धान की खेती	१॥)
१२. सन्तरे की बागवानी	२॥)
१३. आम की बागवानी	३)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५. तिलहन की खेती	।।।=)
१६. सोयाबीन की खेती	।)
१७. तम्बाकू की खेती	॥)
१८, खेती की तैयारी	२।)
१९. फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०. व्याधियों की रोकथाम	१॥)
२१. खेतीबाड़ी (कि. गाइड)	१॥)
२२. फलों की खेती	३॥)
२३. पशुओं का इलाज	६)
२४. तरकारी सागभाजी खेती	३॥)
२५. ट्यूबवैल गाइड	३॥)
२६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७. पोल्ट्री फार्मिङ्ग	४)
२८. उन्नत सिंचाई	२)
२९. खेती और ट्रैक्टर	६)
३०. फल संरक्षण	२॥)
३१. गेहूं की खेती	३)
३२. मूंगफली की खेती	१)
३३. मिर्च की खेती	१।)
३४. बीज की तैयारी	१॥)
३.. मसालों की खेती	२)
३६. पपीते की खेती	१॥)
३७. आधुनिक कृषियन्त्र	१।)
३८. लाख की खेती	।।।=)
३९. प्याज की खेती	।।।)
४०. नीबू सन्तरा माल्टा	२।')
४१. भारतीय कृषि कहावतें	२॥)
४२. किचन गार्डन	१।।।)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)

देहाती पुस्तक भण्डार:— चावड़ी बाजार दिल्ली—

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, संतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं. मू० ३॥) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू: अदरक, अरबी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३॥) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती बाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ

(ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १॥) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

५००० पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

केवल बारह आने (पिछत्तर नये पैसे) के टिकट लिफाफे में भेज कर नये वर्ष की श्री बापू राष्ट्रीय मशहूर जन्त्री मंगायें।

देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाजार देहली।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जय्यद प्रेस, बल्लीमारान- देहली में छपवाकर

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्
ऋग् यजु साम अथर्व

वेद प्रकाश

वर्ष ९ अंक ५ } कार्तिक शक सं.१८७९, दिसम्बर १९५७, दयानन्दाब्द १३३ { वार्षिक २॥) विदेशों से ५ शिलिंग
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

ओ३म्

वेद तथा यज्ञ द्वारा सुख प्राप्ति

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥
ऋ ७।३५।७॥

अर्थ—(सोमः नः शम् भवतु) चन्द्र हमें सुख दायक हो (ब्रह्मशं नः) वेद ज्ञान हमें शांति दे (ग्रावाणः नः शं) पर्वत हमें सुख कर हो (स्वरुणां मितयो शंनः) यज्ञ सम्बन्धी सामान अथवा शब्दों का ज्ञान हमें सुखदायक हों (प्रस्वः शं नः) औषधियां अथवा सन्तान हमें शांतिदायक हों (वेदिः शमु अस्तु) यज्ञ, कुण्ड, भूमि, स्त्री हमें शांतिदायक हों।

चन्द्रमा हमें सुख दायक हो, वेद हमें सुखदायक हों, यज्ञ और वेदी सुखदायक हो। यज्ञस्तम्भ और औषधियां सुखदायक हों।

—: स्वामी आत्मानन्द जी :—

(रचयिता—भारतभूषण त्यागी, एम० ए०, साहित्यरत्न, सिद्धान्तशास्त्री,
प्रचारमन्त्री मध्यभारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश लश्कर)

[१]

हिन्दी का हित तुझको है, तू ऋषि का अनुयायी है;
तूफानों में बढ़ने की क्षमता तूने पाई है।
अंगारों से भी हंस कर, तू खेला बलिदानी,
जीवित शहीद होने की—तेरी है करुण कहानी ॥

[२]

सर्वोच्च शक्ति को तूने निर्भय हो ललकारा है,
सत्ता मदान्ध से टक्कर लेने का व्रत धारा है।
सद्भाव—यात्रा तेरी जो विन्दु रूप में आई,
जनता का महा सिन्धु बन, भारत भर में लहराई ॥

[३]

प्रतिकूल परिस्थितियों का ऐसा प्रवाह बहा है,
खुद नाविक ही घबरा कर नौका को डुबो रहा है।
चौरासी की आयु में तूने उसको समझाया,
लाचारी में चप्पू ले नौका को स्वयं चलाया ॥
ओ कर्णधार ! मत घबरा, सब ने सङ्कल्प किया है,
अब कोट-कोटि हाथों ने बल्ले को थाम लिया है ॥

[४]

बीमारी को पीछे कर तू आगे बढ़ता जाता,
हा रक्तचाप के क्रम में प्राणों को होम चढ़ाता।
कृशता से लड़कर-भिड़कर ऋषि-थाती तुझे बचानी,
कमजोरी क्या कर लेगी-आत्मिक बल के सेनानी ॥

नोटः—पुस्तकों के हर आर्डर के साथ स्वामी आत्मानन्द जी के चित्र का कलैन्डर भेजा जाता है।

ऋषि गाथा-महाकाव्य

(श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश)

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र मूल्य प्रचारार्थ ४) मात्र । डाक खर्च माफ ।

अनेक विद्वान नेताओं की सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां

महात्मा आनन्द स्वामी—श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है । और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है ।

पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर—"ऋषि गाथा" में जो उच्च विचार ग्रथित हुए हैं; उनको सुन कर मेरा अन्तकरण गद्-गद् हुआ ।

डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यलंकार—आर्य जगत में ऋषि दयानन्द के जीवन काव्य की जो कमी अनुभव की जा रही थी, वह इस काव्य द्वारा बहुत अंशों तक पूरी हो जायगी ।

श्री नरदेव शास्त्री संसद सदस्य—श्री विमल चन्द्र शर्मा विमलेश ने बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में कविता द्वारा भावों को व्यक्त किया है अलंकार और छन्दों का समावेश अच्छे ढंग से किया है मैं इस प्रयास के लिए कवि का धन्यवाद करता हूँ ।

श्री चौ० कुंभाराम आर्य (राजस्थान राज्य)—पुस्तक उत्तम है, आर्य घरों में इसका प्रसार हो यह कामना है ।

"ऋषि गाथा महाकाव्य"—ग्रन्थ का वास्तव में मूल्य ६) है, प्रत्येक ऋषि भक्त इस महाकाव्य का श्रवण कर रसास्वादन करें । इसी उद्देश्य से हमने प्रेस से सब पुस्तकें खरीद कर सस्ते मूल्य में देने का संकल्प किया है अतः मूल्य ६) से घटा कर ४) कर दिया है । आप आज ही ४) का मनीआर्डर करदें तो पुस्तक आप को घर बैठे रजिस्टरी से भेज देंगे ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली ।

मुरारी ब्रदर्स कमला नगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

वैदिक गृहस्थाश्रम

लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य ५)

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मतिः—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं । आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है । वैदिक सुक्तों के प्राय ३०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बंधी प्रायः सभी कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है । नये पुराने सभी गृहस्थों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है ।"

मिलने का पता:—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

दाता का महत्व

लेखकः—वेद शास्त्रज्ञ स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

ओ३म् । से त्राधतो नहुषो दंतजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति वाढसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ ऋ० १।१२२।१०

(सः) वह (त्राधतः) उपासक (नहुषः) मनुष्य के (दंसजूतः) तेज से प्रदीप्त हुआ हुआ (शर्धस्तरः) अतिशय बलवान् (नराम्) मनुष्यों में (गूर्त्तश्रवः) प्रसिद्ध यश वाला (विसृष्टरातिः) खुला दान देने वाला (शूरः) शूर (वाढसृत्वा) प्रबलवेगवान् होकर (विश्वासु) सभी (पृत्सु) युद्धों में (सदम्+इत्) सदा ही (याति) जाता है।

वैदिकधर्म में दान का बहुत माहात्म्य है । दान न देने वाले कंजूस को वेद में अराति कहते हैं। लौकिक संस्कृत में अराति का अर्थ शत्रु है । सचमुच जो दान नहीं देता, वह समाज का शत्रु है । दान यज्ञ का अंग है, धर्म्म का एक स्कन्ध है। जो धर्म्म का=सामाजिक नियम का उल्लंघन करता है, वह सचमुच सामाजिक समता में आघात पहुंचाने के कारण समाज का शत्रु है ।

दान के कई सोपान हैं । एक मन्त्र में आया हैं कि धन-दान, तन-दान, वाणी दान करने से यज्ञ की सफलता होती है। दान का अर्थ जैसे कि बता चुके हैं—अपनी अधिकृत वस्तु पर से अपना अधिकार हटा कर दूसरे का अधिकार स्वीकार करना दान है। मनुष्य सब कुछ दे सकता है, शरीर तक दूसरों के लिये उत्सर्ग कर सकता है, किंतु अहंकार ममकार त्यागना बहुत कठिन है अहंकार ममकार त्याग कर जब भक्त अपने आप को भगवान् के अर्पण करता है, तब भगवान् उस अपने उपासक को अपने तेज से तेजस्वी कर देता है । शास्त्र में उस तेज का नाम ब्रह्मवर्चस है । वेद कहता है, दानी मनुष्य

त्राधतो नहुषस्य दंसजूतः

उपासक मनुष्य के तेज से तेजस्वी होता है ।

अर्थात् निष्काम भाव से दान करने वाला; आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के समान तेजस्वी होता है । अतएव वह शर्धस्यरः बलवत्तर=अत्यन्त बलवान् होता है और नरां गूर्तश्रवा=मनुष्यों में उसकी कीर्ति की चर्चा होती है ।

ऐसे दानी के लिये वेद में आदेश है - कि वह

उतापरिषु कृणुते सखायम् (ऋ० १०।११७।३)

विपत्तियों समय के लिये मित्र बना लेते है ।

दाता को मित्रों की कमी नहीं रहती और अतएव वह

विसृष्टरातिर्याति वाढसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ।

यह दानी शूरमहावेगवान् होकर सभी युद्धों में सदा जाता है ।

अकेला वह ही नहीं, उसके साथी, मित्र, सहायक पर्य्याप्त हैं। अतः वह पूर्ण वेग से संग्रामों में घुस जाता है ।

जिसने अपना दान दे दिया, उसे तो सब से महान् सखा मिल गया है, उसे तो भय रहा ही नहीं । इस महत्व को समझ कर दान करो ।

(स्वाध्याय सन्दोह से)

—: स्वामी आत्मानन्द जी :—

(रचयिता—भारतभूषण त्यागी, एम० ए०, साहित्यरत्न, सिद्धान्तशास्त्री,
प्रचारमन्त्री मध्यभारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश लश्कर)

[१]

हिन्दी का हित तुझको है, तू ऋषि का अनुयायी है;
तूफानों में बढ़ने की क्षमता तूने पाई है।
अंगारों से भी हंस कर, तू खेला बलिदानी,
जीवित शहीद होने की—तेरी है करुण कहानी ॥

[२]

सर्वोच्च शक्ति को तूने निर्भय हो ललकारा है,
सत्ता मदान्ध से टक्कर लेने का व्रत धारा है।
सद्भाव—यात्रा तेरी जो विन्दु रूप में आई,
जनता का महा सिन्धु बन, भारत भर में लहराई ॥

[३]

प्रतिकूल परिस्थितियों का ऐसा प्रवाह बहा है,
खुद नाविक ही घबरा कर नौका को डुबो रहा है।
चौरासी की आयु में तूने उसको समझाया,
लाचारी में चप्पू ले नौका को स्वयं चलाया ॥
ओ कर्णधार! मत घबरा, सब ने सङ्कल्प किया है,
अब कोट-कोटि हाथों ने बल्ले को थाम लिया है ॥

[४]

बीमारी को पीछे कर तू आगे बढ़ता जाता,
हा रक्तचाप के क्रम में प्राणों को होम चढ़ाता।
कृशता से लड़कर-भिड़कर ऋषि-थाती तुझे बचानी,
कमजोरी क्या कर लेगी-आत्मिक बल के सेनानी ॥

नोटः—पुस्तकों के हर आर्डर के साथ स्वामी आत्मानन्द जी के चित्र का कलैन्डर भेजा जाता है।

ब्रह्मवर्चस्वी, वीतराग, तपोमूर्ति, पूज्यपाद श्री स्वा० आत्मानन्द जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

(श्रीयुत पं० शिवकुमार शास्त्री)

जन्म तथा विद्याध्ययन

पंजाब के ऐतिहासिक हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार, आ० प्र० सभा पंजाब के प्रधान तथा सा० दे० धर्मार्य सभा के प्रधान श्री स्वा० आत्मानन्द जी महाराज का जन्म अब से ८४ वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के अन्तर्गत एक ग्राम में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। चतुर्थाश्रम के नाम से पूर्व श्री स्वामी जी महाराज का नाम पं० मुक्तिराम था। आपने प्रारम्भ में खुर्जा में महामहोपाध्याय श्री पं० परमानन्द जी के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त की और उसके पश्चात् शास्त्रों के गम्भीर मन्थन के लिये आप काशी चले गये। आपने काशी में विशेषकर दर्शन शास्त्रों में परम कौशल प्राप्त किया।

कार्यक्षेत्र में

विद्याध्ययन के पश्चात श्री स्वामी जी महाराज पं० मुक्तिराम उपाध्याय के नाम से विख्यात हुए। आपका दर्शन शास्त्र पर तो ऐकाधिपत्य था ही— साथ ही व्याकरण और साहित्य में भी आपकी बहुत रुचि थी। श्री स्वामी जी की संस्कृत काव्य की रचना का अनुमान उनके निम्न पद्य से लगाइये। स्वातन्त्र्य से पूर्व भारत की निर्धनता को देखकर श्री स्वा० जी के हृदय हिमगिरि से एक करुण-काव्य गंगा बह निकली थी। जिसकी एक तरंग यह है। यां भारतीय धरणीं बहुधान्य युक्तां सर्वोऽपि काञ्चनमयीं मनुतेस्म लोकः। तत्राद्य मुष्टि चणकानपि नामुवन्तो दारिद्रय पीडितजनाः शतशो म्रियन्ते॥

श्री स्वामीजी महाराज का अब तक का कार्यक्षेत्र पंजाब ही रहा है। आप बीसियों वर्ष श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज द्वारा संस्थापित गु० कु० पोठोहार के आचार्य रहे। पाकिस्तान बनने के कुछ समय पूर्व आप गु० कु० पोठोहार को रावलपिंडी ले आये। रावल ग्राम के पास ही रावल गु० कु० के नाम से संस्था स्थापित की। यह विद्यालय भवन की दृष्टि से भी कितना विशाल बन गया था, इससे सहज ही श्री स्वा० जी के अद्भुत प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। श्री स्वा० जी महाराज के सैंकड़ों शिष्य शास्त्री और आचार्य भारत के प्रत्येक क्षेत्र में बड़े-बड़े उत्तरदायी पदों पर कार्य कर रहे हैं।

आर्य समाज के प्रचार की धुन

श्री स्वा० जी महाराज शिक्षण क्षेत्र में रहते हुए, भी वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में सदा सजग रहे। आपने रावलपिण्डी के अन्दर एक उपदेशक विद्यालय की भी स्थापना की थी जिसमें श्री स्वा० वेदानन्द जी महाराज भी आपके साथ काम करते रहे और उसमें अर्थात् अनेक व्यक्ति सम्प्रति वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार बड़ी लग्न से कर रहे हैं। वैदिक धर्म पर जब भी संकट आया पूज्य स्वा० जी सदा उसके निवारण के लिये अग्रसर रहे। हैदराबाद के सत्याग्रह में आप एक विशाल जत्था लेकर जेल गये

ग्रन्थों का प्रणयन

श्री स्वा० जी महाराज ने व्यस्त जीवन में से भी कुछ समय निकाल कर बहुत ही मूल्यवान ग्रन्थ रत्न लिखे हैं। पू० स्वामी जी के लिखित ग्रंथों में से मनोविज्ञान और शिव संकल्प, वैदिक गीता और संध्या अष्टांग योग मुख्य हैं।

संन्यास

श्री स्वा० जी महाराज सदा ही प्रकृत्या विरक्त रहे हैं, आप गृहस्थी नहीं बने। किन्तु विधिवत् संन्यास आपने पाकिस्तान बनने से कुछ समय पूर्व ग्रहण किया और मुक्तिराम से आत्मानन्द बने।

भारत विभाजन

परिस्थितियां परिवर्तित होती गईं और पाकिस्तान के रूप में हमारा एक चिर शत्रु सांप बनकर

घर में बैठ गया। इस आपत्ति के समय श्री स्वा० जी महाराज ने रावलपिण्डी में हिन्दुओं की जो सेवा की वह अमर रहेगी। आपने न केवल पीड़ित हिन्दू जनता को रावलपिण्डी में रहन-सहन और भोजनादि की व्यवस्था करके सुखी बनाया—अपितु एक-एक हिन्दू बालक को पाकिस्तान से से भारत भेजा। रावलपिण्डी में आप अन्तिम व्यक्ति थे जो महीनों पश्चात् भारत में आये।

वैदिक साधनाश्रम

वर्तमान भारत में आप रावल पिंडी से चलकर जगाधरी पहुंचे। वहां के निवासियों पर आपकी योग्यता, साधुता और महत्ता का अद्भुत प्रभाव हुआ। वहां के रईस स्व० श्री ला० मिश्रीलाल जी ने पूज्य स्वामी जी के आश्रम के लिये यमुनानगर स्टेशन के पास ही अपनी भूमि का एक बहुत बड़ा भाग दान दिया और भक्त मण्डली ने एक सुन्दर आश्रम बनाकर खड़ा कर दिया। श्री० स्वा० जी महाराज के आश्रम का नाम वैदिक साधनाश्रम है। इसी आश्रम में आजकल सभा का उपदेशक विद्यालय भी चल रहा है।

आ० प्र० सभा पंजाब की प्रधानता

पाकिस्तान बनने के कारण सभा की आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर विगड़ रही थी। श्री स्वा० जी के प्रभाव को देखकर भक्तों ने उनसे प्रार्थना की और उनको सभा के प्रधान पद पर सुशोभित कर दिया। श्री स्वा० जी महाराज ने प्रधान बनते ही वेद प्र० फण्ड के लिये १०००००) की राशि एकत्र की और सभा के आर्थिक ढांचे को जमाया। सभा के दूसरे चुनाव में भी आपको सर्वसम्मति से प्रधान चुना गया।

हिन्दी रक्षा आन्दोलन

साम्प्रदायिकता के सामने कांग्रेस की घुटने टेक नीति के कारण पंजाब में हिन्दुओं के साथ घोर अन्याय हुआ, राष्ट्रभाषा हिन्दी को पंजाब के एक वर्ग की धार्मिक और अर्धविकसित भाषा दबोच कर बैठ गई। पूज्य स्वा० जी से यह अन्याय न देखा गया और उन्होंने उसे मिटाने के लिये सर धड़ की बाजी लगा दी। प्रारम्भ में उन्होंने वार्ता और सद्भावना के द्वारा इस गुत्थी को सुलझाना चाहा किन्तु शासकों के निष्ठुर हृदयों में जब उसका कोई प्रभाव न हुआ तो उन्होंने सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। यह ऐतिहासिक सत्याग्रह कितना शीघ्र महान् महत्तर और महत्तम होता चला गया यह आश्चर्य की बात है। पंचशील का ढोल पीटने वाले हमारे नेताओं के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत पर पंजाब की शिष्ट और सभ्य समझी जाने वाली सरकार ने जो अत्याचार किये उनकी किसी को कल्पना भी नहीं थी। रोहतक के बहु अकबरपुर ग्राम के निरपराध स्त्री, पुरुष, बूढ़ों और बच्चों को किस निर्दयता से सताया गया—पेट के बल रेंगवाया गया। इस क्रूर कृत्य के सामने तैमूर और नादिर के भयंकर अत्याचार भी हलके रह गये। बात बात में "सत्यमेव जयते" की दुहाई देने वाली सरकार ने धार्मिक नेता विद्वान् और संन्यासियों को सड़क पर घसीटवाया, चोरी डाके और आत्महत्या के आरोप लगाये, सारे पंजाब में पुलिस-राज्य स्थापित कर दिया। वहां न कोई कानून रहा न विधान। दयानन्द मठ का घेरा डाल कर अन्दर वालों को टट्टी और पेशाब तक के लिये बाहर नहीं आने दिया गया और कोई पूछने वाला नहीं। इन सबसे बढ़कर फीरोजपुर जेल का लाठी-काण्ड तो स्वतन्त्र भारत के मस्तक पर वह कलंक का टीका है जिसे लाख मन साबुन लेकर लाख नेहरू भी धोने के लिये बैठें तो वह कलंक उभर तो जावेगा किन्तु मिट न सकेगा। फीरोजपुर जेल के घायल सत्याग्रहियों की आहें स्वा० जी के कानों में गूंज रही है होनहार युवक सुमेरसिंह की जीवन कली अकाल में ही निर्दयतापूर्वक कुचल दी गई। इन सब अत्याचारों की बाढ़ से पू० स्वा० जी के हृदय में वर्णनातीत वेदना है। पर हमारे शासकों के पाषण हृदय अभी नहीं पिघले।

इस विकट परिस्थिति में गुरु तेगबहादुर के समान पूज्य स्वामी जी समझते हैं कि एक महान् बलिदान की आवश्यकता है और इस यज्ञ में पवित्र आहुति के लिये अब वे अस्वस्थ होते हुए भी सत्याग्रही के रूप में अपना जीवन भेंट कर रहे हैं। लो, विश्व वंद्य बापू के नाम को उज्जवल करने वाले अहिंसा के पुजारियों! महात्मा की इस जीवन निधि को सँम्भालो।

पंजाब की भाषा समस्या पर एक दृष्टि

—प्रो० शेरसिंह, भूतपूर्व मन्त्री पञ्जाब—

पंजाब में भाषा के सम्बन्ध में सच्चर फार्मूला, क्षेत्रीय योजना और अकालियों की नीति को लेकर काफी गड़बड़ है। मन्त्री और विधायक के रूप में मेरा राज्य की कई बातों से सम्बन्ध रहा है। अतः इस प्रसंग में कुछ तथ्यों पर प्रकाश डालना महत्वपूर्ण होगा।

सच्चर फार्मूला

सच्चर फारमूले के अनुसार पंजाब के हिन्दी क्षेत्रों में बसने वाले पैंसठ लाख हिन्दी भाषियों के लिए प्राइमरी से लेकर मैट्रिक तक गुरुमुखी लिपि में पठन पाठन अनिवार्य कर दिया गया है। इस फार्मूले का जब विरोध किया जाता है तब विरोध करने वालों को यह कह कर चुप कर दिया जाता है कि सच्चर फार्मूले को पंजाब के विधेयकों ने स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार इसे कानूनी बल मिल गया है। परन्तु यह कहना गलत है क्यों कि इस फार्मूले को कानूनी बल प्राप्त नहीं। वास्तविकता यह रही कि जिन दिनों डा० भार्गव और श्री सच्चर ज्ञानी करतार सिंह का समर्थन प्राप्त करने को उत्सुक थे, उन दिनों यह उन पर थोपा गया। डा० भार्गव और श्री सच्चर ने अपने-अपने समर्थकों से तीन-चार पंक्तियों वाले एक प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कराये थे, ताकि ज्ञानी करतार सिंह के साथ सफलता पूर्वक समझौता कर सकें। इसके बाद एक फार्मूला तैयार किया गया, जो सच्चर फार्मूले के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर श्री भीमसेन सच्चर, डा० गोपी चन्म भार्गव ज्ञानी करतार सिंह और सरदार उज्वलसिंह ने दस्तखत किए थे। पंजाब के बहुसंख्यक विधायकों को तब यह पता नहीं था कि इसका क्या फलितार्थ होगा।

सरकारी नीति की अस्पष्टता

उल्लेखनीय बात यह है कि सरकार ने भी यह कभी स्वीकार नहीं किया कि सच्चर फार्मूले को कोई कानूनी बल प्राप्त है। १९५० के प्रारम्भ में जब पंजाबी को थोपने पर हरियाणा में विरोध हुआ था तब सरकार ने फार्मूले को लागू करना स्थगित कर देने का फैसला किया था। १९५५ के अगस्त मास तक सरकार को स्वयं यह पता नहीं था कि फार्मूले के प्रति उसका रुख क्या है। जालन्धर में जब पंजाब के जन-निर्देश विभाग के डायरेक्टर ने सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति पर एक बयान दिया था तब उसका विरोध हुआ और तब तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री भीमसेन सच्चर ने २९ अगस्त को एक प्रेस कांफ्रेंस में कहा था कि भाषा सम्बन्धी फार्मूले को स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सरकार विभिन्न क्षेत्रों से जानकारी प्राप्त कर रही है। पूरी जानकारी प्राप्त हो जाने पर विधान मंडल में एक विधेयक रखा जायगा। इस कथन से स्पष्ट है कि पंजाब सरकार स्वयं राज्य विधानसभा में भाषा के सम्बन्ध में एक विधेयक लाने वाली थी, इससे यह भी स्पष्ट है कि सच्चर फार्मूले को कभी कानूनी बल प्राप्त नहीं था।

संसदीय पुष्टि की बात

क्षेत्रीय फार्मूले के बारे में एक दूसरी गड़बड़ यह है और जैसा कहा जाता है कि उसे संसद ने स्वीकार कर लिया है। अतः अब इस से हटने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि गत ६ सितम्बर १९५६ को लोकसभा में क्षेत्रीय फार्मूले पर विचार हुआ था पंजाब विधान मंडल के तेंतीस सदस्यों ने पं० ठाकुरदास भार्गव के पास एक स्मरण पत्र भेजकर यह मांग की थी कि यह क्षेत्रीय फार्मूले से भाषा सम्बन्धी अनुच्छेदों को हटाकर उसके स्थान पर एक नया फार्मूला उपस्थित करें। जिसमें हिन्दी भाषी क्षेत्रों की विशेष सुरक्षा की व्यवस्था हो पं० ठाकुरदास भार्गव ने लोकसभा

में इस आशय का फार्मूला पेश किया। जिस पर सरदार बहादुरसिंह ने एक संशोधन पेश किया। इन दोनों पर मत लिए गए और दोनों गिर गए। अतः क्षेत्रीय फार्मूले में राष्ट्रपति अब भी ऐसी फेर बदल करने को स्वतन्त्र है जिससे क्षेत्रीय समितियाँ विधितत् काम कर सकें।

अकालियों का रुख

हमारे कुछ नेताओं को यह भय है कि क्षेत्रीय फार्मूले में यदि अब कोई परिवर्तन किया गया तो अकाली नया आन्दोलन छेड़ देंगे। लेकिन यह कहना होगा कि जनता को पूरी बातों की जानकारी नहीं कराई जा रही है। ६ दिसम्बर १९५६ को जब लोकसभा में क्षेत्रीय फार्मूले पर विचार हो रहा था, तब शिरोमणि अकाली दल के भूतपूर्व अध्यक्ष और पंजाब के एक प्रमुख अकाली नेता सरदार हुकम सिंह ने श्री एन० सी० चटर्जी और पं० ठाकुरदास भार्गव के ऐतराजों का जवाब देते हुए कहा था "इस फार्मूले का यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक हिन्दू हिन्दी भाषी और प्रत्येक सिख गुरुमुखी बोलने वाला है। पं० ठाकुर दास भार्गव का कहना है कि उन्हें पंजाबी पढ़ने को क्यों कहा जाय। मैंने यह कभी नहीं कहा कि यह पंजाबी पढ़े। मैंने हरियाणा वासियों से भी यह कभी नहीं कहा कि वे पंजाबी पढ़ें यदि वह चाहें पढ़ें, न चाहें तो न पढ़ें।" सरदार हुकमसिंह के इस कथन से स्पष्ट है कि यदि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में पंजाबी का अनिवार्य पठन-पाठन समाप्त कर दिया जाय तो अकालियों को कोई आपत्ति न होगी।

सरकारी संस्थाओं की रिपोर्ट

इस सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये गए विभिन्न आयोगों और शिक्षा सम्बन्धी केन्द्रीय परामर्शदात्री बोर्ड की रिपोर्ट के कुछ उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा। बोर्ड का मत है :

"प्रादेशिक अथवा राज्यभाषा का पठन-पाठन जहां वह मातृभाषा से भिन्न है तीसरी कक्षा से पूर्व और जूनियर बेसिक स्तर के बाद नहीं शुरू किया जाना चाहिए।" इन आयोगों और बोर्डों ने उन छात्रों को जिनकी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा एक ही हो, जबरन कोई अन्य भाषा पढ़ाने की बात नहीं कही।

राजभाषा आयोग के एक सदस्य सरदार बहादुर तेजसिंह का मत भी यही है कि हिन्दी क्षेत्रों में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के पढ़ने की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए उसकी प्रेरणा दी जानी चाहिए। किन्तु छात्रों पर जबरन कोई चीज नहीं थोपी जानी चाहिए, हां राजभाषा आयोग ने सबके लिए माध्यमिक स्तर पर हिन्दी पढ़ना अनिवार्य कर देने की बात अवश्य कही है।

उपर्युक्त तथ्य प्रस्तुत कर देने के बाद मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि हिन्दी भाषी क्षेत्र में पंजाबी का अध्ययन अनिवार्य क्यों किया जा रहा है?

सुधारक के सौजन्य से

पं० नेहरू का चंडीगढ़ का दौरा

बधाई

मैं पंजाब के, जिसमें पेप्सू शामिल है, हिन्दू मात्र को ६ नवम्बर की हड़ताल पर बधाई देता हूँ। इस बधाई में वह विद्यार्थी भी शामिल हैं जो ६ नवम्बर को अपने स्कूलों, कालेजों से निकल आये। उनके सहयोग के बिना यह हड़ताल सफल न होती। इस में शामिल होना 'खाला जी का घर' न था। पराधीनता काल तथा स्वतन्त्रता के इन वर्षों में बीसियों हड़तालें हुई परन्तु यह अपनी तरह की पहली हड़ताल थी क्यों कि यह एक ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध रोष प्रदर्शन करने के लिए की गई जो न केवल भारत का प्रधान मन्त्री है अपितु देश का सब से बड़ा नेता भी है। पं० नेहरू वह नेता है जिनके रास्ते में लोग अपनी आंखें बिछाया करते थे। उनके जीवन में भी यह प्रथम घटना है कि लोगों ने हड़ताल करके एक प्रकार से उन्हें 'बैक' (वापस जाओ) कहा। यह हड़ताल इसलिए भी कठिन थी कि पंजाब सरकार की तमाम हिंसात्मक शक्तियां इस बात पर लग रही थी कि हड़ताल न हो और यदि हो तो सफल न हो। यही नहीं

अपितु उन लोगों ने जो सरकार का पुर्जा है अथवा उनके प्रिय बनना चाहते हैं, जनता से कहा कि पण्डित नेहरू का पूरी गर्मी से स्वागत करें और कि व्यापारी इस हड़ताल में शामिल न हों।

खुश फहमी

यह भी खुश फहमो की चरम सीमा है कि जनता को पं० नेहरू के स्वागत के लिए तैयार करने के लिए कामरेड रामकिशन की अपील की आवश्यकता है। और कि व्यापारी हड़ताल का बहिष्कार कर सकते हैं तो ला० कुन्दनलाल लाम्बा के आदेश पर। यह लोग अपनी अपील पण्डित-नेहरू की व्यक्तित्व की अपील से अधिक शक्तिशाली समझते हैं। उन्हें अपनी इस 'खुश फहमी' का परित्याग कर देना चाहिये। यदि लोग श्री नेहरू का स्वागत करेंगे तो उनके लिए और इसलिए नहीं कि किसी ने उन्हें ऐसा करने को कहा है। न ही व्यापारी किसी के कहने पर हिन्दी रक्षा समिति की अपील को रद्दी की टोकरी में डाल देंगे। जिन लोगों ने पण्डित नेहरू की सिफारिश की उन्हें विदित हो गया होगा कि हिंदू जनता की दृष्टि में हिन्दी रक्षा समिति का आदर उनसे कहीं अधिक है। यह हड़ताल विशेषरूप से महत्वपूर्ण है इसलिए कि यह वर्तमान सरकार के सब से बड़े खम्बे के विरुद्ध थी।

जिम्मेवारी

जनता ने ६ नवम्बर की हड़ताल को सफल बना कर हिन्दी रक्षा समिति पर भारी जिम्मेवारी डाल दी है। समिति को अनुभव करना चाहिए कि सरकार से समझौता करते हुए उसे किस प्रकार सावधानी से काम लेना पड़ेगा। हिन्दू जनता ने अपने कदम से सिद्ध कर दिया कि वह नेहरू सरकार से तंग है और वह वर्तमान आंदोलन को अपने को एक पिछड़ेपन की स्थिति से निकालने का एक साधन समझते हैं। अब हिंदी रक्षा समिति को सरकार से समझौता करते समय यह देखना होगा कि पंजाब के हिंदुओं की आशाओं पर कहीं पानी न फिर जाये। समिति की परीक्षा होने को है, आशा करनी चाहिए कि वह इसमें पूरी उतरेगी।

सिद्धांत

प० नेहरू ने अपने चन्डीगढ़ के भाषण में एक सिद्धांत का उल्लेख किया है जो हिंदी रक्षा समिति के लिये निर्देशक का काम दे सकता है। उन्होंने कहा कि मैं दब कर कोई बात मानना अपने सिद्धांत के विरुद्ध समझता हूँ। इस पर हिंदी रक्षा समिति पण्डित जी के इस सिद्धांत पर विश्वास करके कह सकते हैं। कि वह भी दब कर अपना आंदोलन वापस न लेगी। लेगी तो उस समय जब पण्डित जी या तो उसकी मांगों को स्वीकार कर लेंगे अथवा यह समझा देंगे कि इसका आंदोलन गलत और हानिकारक बतलाना होगा परन्तु एक बार भी अपने इस दावे के लिए कभी तर्क पेश नहीं किया। उन्होंने एक बार भी आंदोलन के संचालकों को अपने दृष्टिकोण से प्रभावित करने का प्रयास नहीं किया। समिति यह भी नहीं मानती कि पंडित जी दबाव में कुछ स्वीकार नहीं करते। उन्होंने अकाली पार्टी के दबाव के कारण एक गलत और एकपक्षीय निर्णय कर दिया जो वर्तमान आंदोलन के लिए जिम्मेवार है। उन्होंने सशस्त्र नागाओं के विद्रोह के सामने हथियार डाले और आज उनकी वह मांग स्वीकार की है जो दस वर्ष पहले ठुकरा चुके हैं। इसलिये उनके इन शब्दों में संशोधन की आवश्यकता है। उन्हें कहना चाहिये था कि हिंदुओं से दब कर कोई बात मानना मेरे सिद्धांत के विरुद्ध है।

प्रार्थना

पण्डित जी ने अपने चण्डीगढ़ के भाषण में हिंदी रक्षा समिति से "प्रार्थना" की कि वह आंदोलन वापस ले लें। वह जानते हैं कि इसका क्या हाल होने वाला है। यह "प्रार्थना" भी उसी प्रकार रद्दी की टोकरी में डाल दी जायेगी जिस प्रकार कि पहली डाली गई थी। कारण यह कि उन्होंने अपने कर्मों से अपने को इस योग्य नहीं छोड़ा कि समिति उन्हें निष्पक्ष समझ कर उनकी इस प्रार्थना पर विचार एवं अभ्यास करे। यह उन्हें अपना विरोधी समझती है और विरोधी भी अत्यन्त बुरा जो गालियां देने पर भी उतर सकता है। क्या वह भूल गये कि उन्होंने लखनऊ विश्व-

विद्यालय के विद्यार्थियों के सामने इस आंदोलन के बारे में क्या कहा था। फिर उनकी इस प्रार्थना की स्वीकृति का क्या प्रश्न है जब कि वह लठ के बल से समिति को झुकाना चाहते हैं। उन्होंने आज तक एक बार भी नहीं कहा कि मैं हिंदी आंदोलन के नेताओं के साथ बैठ कर झगड़े की बातों पर वार्ता करने को तैयार हूँ। अपने चण्डीगढ़ के भाषण में उन्होंने हिन्दी आंदोलन को कोसा और दिल्ली वापस आकर कांग्रेस के संसदीय दल के सम्मेलन में भी। इस हालात में उनकी प्रार्थना स्वीकार करना उनके सामने हथियार डालना है। वास्तविकता यह है कि अभी तक वह सत्ता के नशे में अन्धे हैं। जब तक वह नशा न उतरे तब तक आंदोलन का वापस लिया जाना बहस से बाहर है। उन्होंने पंजाब में एक नशे में चूर सांड छोड़ रखा है जिसे जनता की जान व माल और प्रतिष्ठा व सम्मान की रत्ती भर परवाह नहीं और पण्डित जी ने उसे शक्ति के प्रयोग की खुली छुट्टी दे रखी है।

हिन्दी का शत्रु कौन

पंडित नेहरू ने चण्डीगढ़ में किये अपने भाषण में बड़े भोलेपन से पूछा कि हिन्दी का शत्रु कौन है? और किससे हिन्दी की रक्षा के लिए यह सब कुछ क्या किया जा रहा है? मालूम होता है इन लोगों ने कोई भयंकर स्वप्न देखा है और हिन्दी को उससे बचाना चाहते हैं।

मेरे भोले बादशाह! यदि आप नहीं जानते कि हिन्दी का शत्रु कौन है तो सुन लो कि हिन्दी का शत्रु वह है जिसने क्षेत्रीय फार्मूला बनाया जिसका सच्चर फार्मूला एक आवश्यक अंग है। जिसने पंजाब के हिन्दुओं को प्रांत के बहुभाग में बहुसंख्यक से अल्पसंख्यक बनाया और फिर उसपर अल्पसंख्यक की भाषा ठोंस दी। सच्चर फार्मूला क्या है? यह कि भाषा के आधार पर पंजाब को दो भागों में बांट दिया गया है। पंजाबी क्षेत्र की सरकारी भाषा गुरमुखी लिपि में पंजाबी होगी। न केवल शिक्षा का माध्यम बल्कि जिला स्तर तक शासन की भाषा भी यही होगी। इस प्रकार ९० प्रतिशत बल्कि इससे भी अधिक कार्य पंजाबी में हो गया। इसका अर्थ यह है कि इस क्षेत्र में हिन्दी केवल नाम मात्र को रह जायेगी।

कहा जाता है कि हिन्दी देश की राजभाषा है। इसकी कौन उपेक्षा कर सकता है? परन्तु यह आंखों में धूल डालने का प्रयत्न है। सन् १९६५ में देखा जायेगा कि निश्चय स्थिर रहता है या नहीं। परन्तु स्थिर रहे तब भी प्रांतीय भाषाओं का प्रभुत्व होगा। इसलिये यदि पंजाबी क्षेत्र की भाषा गुरमुखी लिपि में पंजाबी ही रहती है तो इस क्षेत्र में हिन्दी के पनपने की कोई स्थिति नहीं। और हिन्दू जो उसे अंग्रेज के शासनकाल में भी अपनाए रहे हैं और जो एक प्रकार से उनकी धार्मिक भाषा है, उसके प्रयोग से वंचित हो जायेंगे। पंडित नेहरू द्वारा लोगों की गलत धारणा बनाने के बावजूद हिन्दुओं की यह मांग बनी है कि देवनागरी लिपि में हिन्दी को पंजाबी क्षेत्र की दूसरी राजभाषा बनाया जाये। उन की यह मांग उचित है। राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश है और भारत का गृहमंत्रालय उसे स्वीकार कर चुका है कि जहाँ कहीं भी ३० प्रतिशत जनसंख्या यह माँग करे कि उसकी क्षेत्रीय भाषा बनाई जाए उसे स्वीकार करना चाहिए। पंजाब क्षेत्र के ४५ प्रतिशत हिन्दू यह मांग कर रहे हैं कि हिन्दी को पंजाबी क्षेत्र की दूसरी क्षेत्रिय भाषा बनाया जाये। पंडित नेहरू बतायें कि उनकी यह मांग अविचारणीय क्यों है? फिर क्या यह पूर्णतया धक्केशाही नहीं कि हिन्दी क्षेत्र पर भी पंजाबी ठोंसी जा रही है? वहाँ भी चतुर्थ श्रेणी से दशम श्रेणी तक इसका पठन अनिवार्य किया गया है, हालांकि वहाँ पंजाबी भाषा-भाषी केवल ४ प्रतिशत हैं। औचित्य और न्याय हिन्दी प्रेमियों की ओर है तथा हठ धर्मी पंडित जी के साथ। वे समझते हैं कि वे डण्डे के जोर से अपने आदेश का पालन करवा सकते हैं और कराने में लगे हुए हैं, परन्तु वे कान खोल कर सुनलें कि पंजाब का हिन्दू उनके हाथ से निकल जाएगा। बल्कि निकल चुका है। पंडित जी चण्डीगढ़ पधारे परन्तु क्या अब उनकी प्रतिष्ठा यही रह गई है कि उनके आगमन पर अधिकांश जनता हड़ताल करे? दूसरे शब्दों में उनके आगमन का शोक मनायें और पुलिस उनके इर्द-गिर्द छाई रहे। आर्य समाज मंदिर को घेरे में ले लिया जाए। कोई न अन्दर जा सके, न बाहर आ सके। बसों और रेलगाड़ियों की तलाशी ली जाए कि कोई हिन्दी प्रेमी सत्याग्रह करने चण्डीगढ़ तो नहीं जा रहा "नेहरू की जय" बुलाने वालों को लाने के लिए मुफ्त सरकारी बसें दौड़ाई जायें। —महाशय कृष्ण

सच्चर फार्मूले का जन्म पाप से हुआ

दिल्ली १७ नवम्बर। पंजाब के भूतपूर्व सिंचाई मंत्री और हरयाना के प्रसिद्ध नेता प्रो० शेरसिंह आज रात्रि दीवान हाल में उनके कल २५० सत्याग्रहियों सहित सत्याग्रह करने जाने के उपलक्ष्य में विदाई के निमित्त आयोजित विशाल सार्वजनिक सभा की समाप्ति के पश्चात् वे गिरफ्तार कर लिये गये। सभा की अध्यक्षता श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने की।

सभा में भाषण करते हुए प्रो० शेरसिंह ने कहा—पंजाब में जो बड़ी गलती हुई वह भारत सरकार और दिल्ली में रहने वाले बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं से हो रही है और उसे ठीक करने के लिए और भी बड़ी-बड़ी गलतियां कर रहे हैं।

प्रो० शेरसिंह ने कहा कि कहा जाता है कि सरदार कैरों को मुख्य मंत्री बनाने का पाप मैंने किया था परन्तु मैं इसे पाप नहीं समझता। वास्तव में सच्चर फार्मूले का जन्म पाप में हुआ था। अकालियों की साम्प्रदायिकता का मुकाबला करने के लिये ही सरदार प्रतापसिंह कैरों को आगे लाया गया था परन्तु आज वही कैरों अकालियों के आगे झुक कर हमारे सामने आ गया है। इसकी सब जुम्मेवारी कांग्रेस उच्च सत्ता पर है।

क्षेत्रीय फार्मूले की कड़ी आलोचना करते हुए प्रो० शेरसिंह ने कहा—कि इसमें हमारे कांग्रेसी नेताओं ने सारी शक्ति मास्टर तारासिंह के हाथ में दे दी और यही हमारे नेताओं की सबसे बड़ी भूल थी। यह कहने वाले कौन होते हैं कि मैं क्षेत्रीय फार्मूले को बलात् प्रांत की ६८ प्रतिशत जनता पर थोपा जा रहा है।

हरयाना के देहातों में कैरों की पुलिस की सख्तियों का उल्लेख करते हुए प्रो० साहब ने कहा कि पंजाब पुलिस के ६०० जवान हरयाना के देहात में लोगों को आतंकित कर रहे हैं ताकि वे हिन्दी आंदोलन में भाग न लें। श्री शेरसिंह ने कहा कि पंजाब की स्थिति सुधारने का एकमात्र उपाय यह है कि इसमें भी बम्बई प्रांत की भांति भाषा फार्मूला लागू किया जाये।

प्रो० शेरसिंह ने रहस्योद्घाटन किया कि कैरों ने मुझे कहा था कि यदि मैं हिन्दी आंदोलन के विरुद्ध वक्तव्य दे तो भार्गव की बजाये वे मुझे मंत्री बनाने को तैयार हैं। ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर ने मुझे कहा था कि आंदोलन का विरोध करने पर मुझे प्रदेश कांग्रेस का प्रधान बना दिया जाएगा। यह संदेश लेकर उन्होंने श्री यश को मेरे पास भेजा था। मुझे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाने की पेशकश भी की गई थी। परन्तु इसमें भी हिंदी आंदोलन का विरोध करने की शर्त थी। मेरे माता-पिता बैठे हैं। इन्होंने मुझे कह दिया था कि यदि आंदोलन का विरोध किया तो हमारे घर न आना। मेरे परिवार के सब सज्जन जेल जा चुके हैं और आज मैं भी सत्याग्रह करने जा रहा हूँ।

अन्त में उन्होंने हाल के बाहर खड़ी पंजाब पुलिस की ओर संकेत करते हुए कहा मेरे लेने वाले यहीं आ गये हैं, मैं तो जा रहा हूँ परन्तु इस यज्ञ में आहुति पड़नी बन्द न हों। हरियाना का एक २ बच्चा मरना पसन्द करेगा पर इस अन्याय को सहन नहीं किया जा सकता।

प्रोफेसर शेरसिंह जी की गिरफ्तारी के लिये पुलिस बाहर बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी। जनता के जोश और उत्साह का पारावार नहीं था। यही सोचकर कोतवाली पर प्रोफेसर जी का गिरफ्तारी के लिये पेश करने की सूचना जनता को दी। प्रोफेसर जी अपने ढाई सौ सत्याग्रहियों के साथ ज्यों ही कोतवाली की ओर बढ़े उस बीस-तीस हजार के भारी जनसमूह ने एक जलूस की सी शक्ल बना ली। प्रोफेसर जी को लोगों ने कोतवाली तक अपने कन्धों पर बिठाये रखा। चांदनी चौक के सारे बाजार ठसाठस भर गये। जयघोषों और हारों की चारों ओर से वर्षा होने लगी।

कोतवाली पर पहुंचते ही प्रोफेसर साहब ने अपने को पजाब पुलिस के हवाले कर दिया। पर स्त्री-पुरुषों की वह भारी भीड़ घण्टों खड़ी हुई उनकी जयजयकार करती रही।

आर्य समाज के तृतीय भाग की तैयारी

आर्य समाज के इतिहास का दूसरा भाग भी लगभग छपकर तैयार है। तीसरे भाग के लेखन का कार्य पं० इन्द्र जी छ महीने में समाप्त करना चाहते हैं। उसके लिए सामग्री आर्य जनता से एकत्र करनी है। जिन लोगों को निम्न विषयों में प्रामाणिक जानकारी हो वे "आर्य समाज का इतिहास" कार्यालय २६ मल्कागंज रोड, जवाहर-नगर देहली के पते से सूचनाएं भेजे।

१. विभाजन के कारण आर्य समाज का प्रबलतम गढ़ पश्चिमी पंजाब हमसे छिन गया। उससे जो विभिन्न समाजों व अन्य संस्थाओं को जो हानि पहुंची।

२. जिन समाजों ने अब तक सूचना न दी हो वे सूचित करे कि उनकी संस्था की स्थापना कब हुई? स्थापना के समय मुख्य कार्यकर्ता कौन थे। विशिष्ट कार्य और कार्यकर्ता। तथा वर्तमान परिस्थिति तथा अधिकारी।

३. विशिष्ट सन्यासियों, विद्वानों, लेखकों, सम्पादकों कवियों, पत्रकारों और कार्यकर्ताओं का संक्षिप्त परिचय यथा, जन्म तिथि शिक्षा समाज से सम्बन्ध तथा विशेष कार्य अब जीवित है या नहीं, आदि शीघ्र भेज दें।

४. अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची भी दी जावेगी। जो प्रकाशक उस सूचि से लाभ उठाना चाहें वे निम्न जानकारी प्रत्येक पुस्तक के साथ भेजें। १. लेखक का नाम, २. प्रथम संस्करण की तिथि, ३. आकार तथा पृष्ठ संख्या ४. कितने संस्करण हुए ५. पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ विशेष घटनाएं।

५. हुतात्मा आर्य जनों का परिचय। पहले दो भागों में १६४७ से पहले का विवरण लगभग है और फिर भी अपनी २ सूचनाएं भेजे ताकि कोई नवीन सामग्री मिले।

आर्य जगत के प्रसिद्ध नेता महात्मा आनन्द स्वामी जी का पं० नेहरू के नाम खुला पत्र!

प्रिय नेहरू जी, आनन्दित रहो,

जब मैं ४ मई को अपने साथियों के साथ आपको मिला था तो आपने कहा था कि आपकी सरकार किसी भी भाषा में पढ़ाने में किसी प्रकार का जोर जबर तो क्या कोई दबाव से काम लेना नहीं चाहती। उसके लिए आपने दक्षिण का उदाहरण भी दिया था। इसीलिए मैंने अपने साथियों पर बल दिया कि वे प्रसन्नता के साथ किसी स्तर पर गुरुमुखी पढ़ना स्वीकार कर लें तथा स्तर के निश्चय शिक्षानिपुणों पर छोड़ दें, पर शीघ्र ही मुझे अज्ञातवास से जाने पर पता चला कि पंजाब सरकार ने गुरुमुखी पढ़ाने के लिए जोर जबर का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया हैं तथा जनता पर कई प्रकार के दबाव डाले जा रहे हैं। यही नहीं, पंजाब सरकार के कर्मचारियों ने आर्य समाज मन्दिर के अन्दर बैठे हुए भाइयों तथा देवियों का अपमान भी किया और कुछ भाइयों को पकड़ कर भी ले गए। यह सब कुछ इसलिए हुआ प्रतीत होता है ताकि आर्य-समाज के सेवकों को भयभीत किया जावे और सरकार को समय मिल जाए ताकि वह भाषा में जबर कर सके। आप तो यह कहते हैं कि भाषा के सम्बन्ध में कहीं भी जबर ठीक नहीं। तब पंजाब में आपकी आज्ञा क्यों नहीं मानी जाती? और आपकी आज्ञा को क्रियात्मक रूप में क्यों नहीं लाया जाता? आपके शुभ जन्म दिवस पर आपको हार्दिक आशीर्वाद देता हुआ मैं सानुरोध प्रार्थना करता हूँ कि आप पंजाब में भाषा के सम्बन्ध में चल रहे जोर जबर को बन्द कराने की ओर अवश्य ध्यान दें तथा शान्ति के देवता के रूप में शान्ति से हमारी बात सुनें। पंचशील के नियम ठीक वेदानुसार है, और उनका प्रयोग देश के बाहर ही नहीं देश के अन्दर भी होना चाहिए। आपको ६ नवम्बर को किए गए उन अत्याचारों का पता चल गया होगा जो पंजाब के सरकारी कर्मचारियों ने इसलिए किए ताकि हम आपको अपने हृदय की व्यथा दिखा न सकें। भवदीय—आनन्द स्वामी सरस्वती

सृष्टि का इतिहास

[लेखकः--पं० लेखराम आर्य पथिक]

पुस्तक का रियायती मूल्य १॥)

कुछ सम्मतियां

श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति विद्यामार्तण्ड

इस पुस्तक को मैंने बहुत ध्यान से पढ़ा पुस्तक समस्त इतिहास प्रेमियों तथा सत्य जिज्ञासुओं के लिए बहुत उपयोगी है। इसके पढ़ने से आज कल के एतिहासिकों की अनेक भ्रान्तियों का निवारण हो सकता है । महाभारत काल शंकराचार्य जी आदि काल के सम्बन्ध में इस में बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। मनुस्मृति के काल के सम्बन्ध में मुझे एक मौलिक प्रमाण मिला है जो अन्यत्र कहीं नहीं पाया गया। इत्यादि अनेक आश्चर्य जनक अनुसंधानों से पूर्ण यह पुस्तक अध्यधिक उपयोगी है।

सहयोगी "आर्य" लिखता है:—

वेद प्रकाश मासिक पत्रिका ने अपना अगस्त का "सृष्टि का इतिहास" अंक पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करके एक अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। इसमें सृष्टि की आयु का विवरण तथा जगत की व्यवस्था का वर्णन जिस अनुपम ढंग से वेद मन्त्रों द्वारा किया है उससे श्री पथिक ज़ी के गहरे अध्ययन का परिचय मिलता है। सृष्टि के सम्बन्ध में जिसे कुछ भी ज्ञान न हो यह पुस्तक ऐसे सरल ढंग से लिखी गई है कि इस के पढ़ने से ही पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकती है। पाठक इस से अवश्य लाभ उठाने का यत्न करें।

सहायोगी "विश्वज्योति" लिखता है:—

यह पुस्तक श्री लेखराम जी आर्य मुसाफिर का लिखित 'कुल्लियात आय मुसाफिर' का एक अंश है। मूल पुस्तक उर्दू में है। प्रकाशक महोदय ने इसे प्रकाशित कर एक बड़ा सराहनीय कार्य किया है। आशा है हिन्दी पाठक इससे लाभ उठावेगें।

जिन पाठकों ने सृष्टि का इतिहास न मंगाया हो वे शीघ्र मंगालें। तथा अपनी मित्र मण्डली में इसका अधिकाधिक प्रचार करें।

साहित्य परिचय

अणुव्रत पाक्षिक का निर्माण अंक

वार्षिक मूल्य ६) प्रकाशकः—अणुव्रत कार्यालय, ३, पार्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१

प्रस्तुत निर्माण अंक में राष्ट्रोन्नति के लिए राष्ट्रनायकों तथा प्रसिद्ध सभी साहित्यकारों के लेखों का ३०० पृष्ठों में संकलन है। सारी ही सामग्री देश के नैतिक उत्थान के लिए उपयोगी है। देश की उन्नति चारित्रिक निर्माण के बिना नहीं हो सकती। चरित्र निर्माण के लिए इस प्रकार का प्रयत्न सराहनीय है। इस के लिए सम्पादक महोदय धन्यवाद के पात्र है।

राजस्थान केसरी वीर आर्य नेता श्री महात्मा चन्द्रानन्द जी (कुंवर चान्दकरण जी शारदा) का देहावसान

कांग्रेस के लिए वकालत का त्याग और देश तथा धर्म के लिये हर समय काम करने वाले महात्मा चन्द्रानन्द जी वैदिक परिव्राजक का ६९ वर्ष की आयु में गत ४ नवम्बर १९५७ को लम्बी बीमारी के बाद अजमेर नगर में विक्टोरिया अस्पताल में देहान्त हो गया, सुन पढ कर किस देश प्रेमी व्यक्ति को चाहे वह आर्य समाजी हो हिन्दूसभाई हो चाहे जन संघी व कांग्रेसी हो सब को एक समान दुःख हुआ है, देशहित के सभी कार्यों में वे सबको सहयोग देते रहे। उनका जीवन ही 'सर्व जनहिताय' था। आर्य जगत व 'वेद प्रकाश' परिवार की ओर से शारदा जी के कुटुम्बीजनों के धैर्य तथा दिवंगत आत्मा की शांति के लिए परमपिता से प्रार्थना करते हैं।

स्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती का देहान्त

९५ वर्षीय स्वामी ज्ञानानन्द जी (महता जैमिनी जी) का अमृतसर में ता० १८ रात्रि को देहान्त हो गया मेहता जी के जीवन का बहुत बड़ा भाग देश विदेश में आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार में ही व्यतीत हुआ था।

गीता सार

[लेखक—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति आर्योपदेशक]

भूमिका

"गीयते इति गीता," जो गाई जाये उसे गीता कहते हैं। गीता युद्धगीत (War Song) है। लग भग ५००० वर्ष पूर्व योगी राज कृष्ण ने अपने प्रिय मित्र अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये इसे गया था।

श्रीमद्भगवद्गीता एक पवित्र ग्रन्थ रत्न है। भारत वर्ष ही नहीं अपितु संसार इस पर मोहित है। इङ्गलैंड, अमेरीका, चीन, जापान, फ्रांस आदि देशों में भी इसकी मान्यता है। संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है अंग्रेजी जर्मन, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक, स्पेनिश, पार्चुगीज आदि भाषाओं में इसके विविध अनुवाद हुए हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक स्वर्गीय इमर्सन (Emerson) इसका नित्य पाठ किया करते थे। इंगलैण्ड के प्रख्यात लेखक कार्लाइल (Carlyle) अपने ज्ञान पिपासु मित्रों की शान्ति के लिए उन्हें गीता भेट किया करते थे।

परन्तु गीता रत्न पर साम्प्रदायिक मल की तह जम गई है। वाम मार्गियों ने अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने के लिए वेदों के उल्टे भाष्य किये तथा अन्य ग्रन्थों में मिलावट की। गीतारत्न भी उस मिलावट से अछूता न रह सका। महर्षि व्यास और उनके शिष्यों ने महा भारत के केवल १० हजार श्लोक बनाये थे, जिसका नाम था 'जय'। वे महाराजा विक्रमादित्य के समय में २० सहस्र और भोज के समय में ३० हज़ार हो गये और अब बढ़ते बढ़ते एक लाख हो गये हैं। गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक अङ्ग है। जब दश सहस्र श्लोकों का महाभारत आज एक लाख श्लोकों का हो गया है तो गीता में कितना प्रक्षेप हुआ होगा इसका अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं। वर्तमान गीता में ७०० श्लोक हैं यदि उपरोक्त अनुपात से देखा जाये तो आरम्भ में गीता में ७० श्लोक ही रहे होंगे। जावा के निकट वाली द्वीप से ७० श्लोकों की गीता प्राप्त होने से इस बात की और अधिक पुष्टि हो जाती है।

दोनों सेनायें युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं। युद्धारम्भ के समय स्वल्पकाल में ७०० श्लोकों का ज्ञान सुनाना असम्भव है, साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि गीता का ज्ञान अर्जुन को युद्ध में लगाने के लिए दिया था, वहां यज्ञ दान तथा योग आदि की व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं थी, इस दृष्टि से देखा जाये तो योगेश्वर कृष्ण ने अर्जुन का मोह दूर करने के लिये कुछ युक्तियाँ दी होंगी, उन्हीं को महर्षि व्यास ने पद्य में लिख दिया।

कुछ विद्वानों का मत है कि महर्षि व्यास ने योगेश्वर कृष्ण जी की समस्त शिक्षाओं को एकत्र कर दिया है, जो आज गीता के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु कसौटी पर कसने से यह पक्ष भी सत्य सिद्ध नहीं ठहरता, क्योंकि गीता के श्लोक परस्पर विरुद्ध हैं। गीता ३।८,२०;५।२;६।४६ में कर्म को श्रेष्ठ बताया गया है तथा ज्ञान का तिरस्कार किया गया है। गीता ६।४७;९।३०;११।४८,५३;१२।२;१८।६; में भक्ति की प्रशंसा करते हुए ज्ञान और कर्म का तिरस्कार किया गया है। गीता २।४२ से ४६,४९,५३;४।३३,३६,३८ में ज्ञान योग की श्रेष्ठता बताते हुए भक्ति कर्म तथा वेदों को छोटा बताया गया है। गीता ३।८;५।२;६।४६; में कर्म त्याग से कर्म करना श्रेष्ठ बताया गया है। गीता ५।४,५ में कहा है:—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकं साख्यं च योगं च य पश्यति स पश्यति॥

सांख्य और योग को बालकगण ही प्रथक कहते हैं, विद्वान् नहीं, जो सांख्य और योग को एक देखता है, वही ठीक ठीक देखता है। कदाचित् ये तथा ऐसे ही अनेक परस्पर विरुद्ध स्थलों को देख कर महर्षि दयानन्द सरस्वती भगवद्गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे और कहते थे कि उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित किया गया है और कहीं उनका पृथकत्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष का पृथक्त्व माना गया है।

(महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन पृष्ठ २०४)

इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के जीवन की एक घटना का वर्णन करना भी अप्रासंगिक न होगा। पं० भूमित्र जी शर्मा के शब्दों में घटना इस प्रकार है, "सम्वत् १९२४ में जब कि स्वामी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कर्णवास में वैदिक धर्म का उपदेश किया था तदानुसार वहां के बड़े बड़े रियासत वाले क्षत्रियों ने महर्षि के उपदेश को सादर ग्रहण कर यज्ञोपवीत कराये और सन्ध्या अग्निहोत्र के मन्त्रों का अध्ययन किया। उसी अवसर पर मेरा भी उपनयन संस्कार हुआ था। मैं नित्य स्वामी जी की सेवा में गंगा तीर पक्के घाट पर जा कर संध्या पढ़ा करता था। एक दिन मध्याह्नोत्तर ४ बजे स्वामी जी के पास सब क्षत्रिय आदि श्रोता बैठे हुए थे, उसी समय ठा० गोपालसिंह जी के कारिन्दा लाला केसरी लाल कायस्थ ने प्रश्न किया कि महाराज मैं गीता का पाठ किया करता हूं, यह कैसी है? तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि साम्प्रदायी लोगों ने बहुत श्लोक मिला दिये हैं। इसमें ७, ९, १०, ११, १२ अध्याय तो समग्र प्रक्षिप्त हैं और अन्य अध्यायों में किसी में दो किसी में दस किसी में ५ श्लोक अवतारवाद के प्रक्षिप्त हैं, उनको छोड़ कर शेष गीता शुद्ध है।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ले० पं० भूमित्र शर्मा पृष्ठ १)

धिक्कार है उस बुद्धि को, जो महर्षि दयानन्द के इतने स्पष्ट वचनों के होते हुए यह कहते हैं कि स्वामी जी सारी गीता को शुद्ध मानते थे।

जैसा कि आरम्भ में लिखा जा चुका है, गीता युद्ध गीत है, यह उपदेश अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त कराने के लिए दिया गया था, अतः यहां यज्ञ, दान, योग, भक्ति आदि की व्याख्या की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, इसलिए इस गीता भाष्य में केवल ७० श्लोक रक्खे गये हैं।

गीता का उपदेश है आत्मा अमर है। कर्म करो परन्तु उसके फल की आकांक्षा मत करो। कायरता को त्याग कर अर्जुन की भांति विजेता बनो।

धृतराष्ट्रो उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे संजय! (धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे) पुण्यभूमि कुरुक्षेत्रे में (समवेता युयुत्सवः) युद्ध की इच्छा से इकट्ठे हुए (मामकाः च एव पाण्डवाः) मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने (किम् अकुर्वत) क्या किया।

संचय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजय ने कहा—(राजा) दुर्योधन (तदा पाण्डव अनीकम्) उस समय पाण्डव सेना को (दृष्ट्व) देख कर (आचार्यं उदसंगम्य) आचार्य के पास जाकर (वचनम् अब्रवीत्) यह वचन कहने लगा।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपद पुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

हे आचार्य! (धीमता) बुद्धिमान् (तव शिष्येण) तेरे शिष्ये (द्रुपद पुत्रेण) द्रुपद के पुत्र=धृष्टद्युम्न द्वारा (व्यूढाम्) व्यूहाकार खड़ी की हुई (पाण्डु पुत्राणाम्) पाण्डु पुत्रों की (एताम्) इस (महतीम् चमूम्) बड़ी भारी सेना को (पश्य) देख।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्चमहारथः ॥४॥

(अत्र युधि) इस संग्राम में (भीम अर्जुन समाः) भीम और अर्जुन जैसे (महा इष्वासाः) बड़े बड़े धनुर्धर (युयुधानः च विराटः) युयुधान और विराट (च महारथः द्रुपदः) और महारथी राजा द्रुपद।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नर पुङ्गव ॥५॥

(धृष्टकेतुः चेकितानः) धृष्टकेतु, चेकितान (वीर्यन् काशिराजः) बलवान् काशी का राजा (पुरुजित् कुन्तिभोजः) पुरुजित्, कुन्तिभोज (च नर पुङ्गवः शैव्यः) और नर श्रेष्ठ शिवी देश का राजा।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रोपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

(विक्रान्तः युधामन्युः) पराक्रमी युधामन्यु (वीर्यवान् उत्तमौजाः) शक्तिशाली उत्तमौजा (सौभद्रः) सुभद्रा का पुत्र=अभिमन्यु (च द्रोपदेयाः) और द्रोपदी के पुत्र ये (सर्व एव) सब ही (महारथाः) महारथी हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रविमि ते ॥७॥

(द्विजोत्तम) हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! (ये तु अस्माकं विशिष्टाः) जो हमारे विशेष पुरुष हैं (तान् निबोध) उनको भी सुनो, (तान् ते संज्ञार्थम् ब्रवीमि) उन्हें आपके परिचय के लिये कहता हूं।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

(भवान् च भीष्मः) आप और भीष्म (कर्ण- च समितिजयः कृपः) कर्ण और संग्राम विजेता कृपाचार्य (अश्वत्थामा च विकर्णः) अश्वत्थामा और विकर्ण (च तथा एव) और वैसे ही (सोमदत्तिः) सोमदत्त का पुत्र=भूरिश्रवा।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्त जीविताः ।
नाना शस्त्र प्रहरणः सर्वे युद्ध विशारदाः ॥९॥

तथा (मत् अर्थे) मेरे लिये (त्यक्त जीविताः प्राण त्यागने वाले (अन्य च बहवः शूराः) और भी बहुत से वीर हैं जो (सर्वे युद्ध विशारदाः) सब युद्ध में निपुण हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बल भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तंत्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

(तत् अस्माकंम् भीष्म अभि रक्षितम बलम्) वह हमारी भीष्म द्वारा रक्षित सेना (अपर्याप्तं) असंख्य है, और (एतेषाम् भीम अभि रक्षितम् बलम् तु) इनकी भीम से रक्षित सेना तो (पर्याप्तंम् परिमित है।

अयनेषु च सर्वेषु यथा भागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभि रक्षन्तु भवन्तः सर्व एवहि ॥११॥

(हि) इसलिये (सर्वेषु अयनेषु) सब मोर्चों पर (यथा भागम्) अपने अपने अपने स्थान पर (अवस्थिताः) खड़े हुए (भवन्तः सर्व एव) आप सब ही भीष्म एव अभिरक्षन्तु) भीष्म की ही सब ओर से रक्षा करें।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपि ध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्र संम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥१२॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥१३॥

(महीपते हे पृथिवी पति! (अथ कपिध्वजः) इसके उपरान्त वानर की ध्वजा वाला अर्जुन (धार्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा) धर्तराष्ट्र के पुत्रों को नियम में खड़े देख कर (शस्त्र सम्पाते प्रवृत्ते) शस्त्रों का चलना आरम्भ होने के समय (धनुः उद्यम्य) धनुष उठा कर हृषीकेशंम् इदम् वाक्यम् आह) श्री कृष्ण को यह वाक्य कहने लगा।

अर्जुन बोला—(अच्युत) हे निश्चल कृष्ण! (उभयोः सेनयोः मध्ये) दोनों सेनाओं के बीच में (मे रथम् स्थापये) मेरे रथ को खड़ा करो।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥१४॥

(यावत्) जिस से कि (योद्धकामान् एतान् अवस्थितान्) युद्ध की कामना से खड़े हुओं को (अहम् निरीक्षे) मैं देखूँ, कि (अस्मिन् रण समुद्यमे) इस युद्ध के उद्योग में (मया कै सह योद्धव्यम्) मुझे किन के साथ लड़ना है।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥१५॥

संजय ने कहा—(भारत) हे धृतराष्ट्र! (हृषीक ईश) इन्द्रियों के स्वामी=कृष्ण (गुडाका ईशेन) निन्द्रा के विजेता=अर्जुन के (एवम् उक्ताः) इस प्रकार कहने पर (उभयोः सेनयोः मध्ये) दोनों सेनाओं के बीच में (रथ उत्तमम्) श्रेष्ठ रथ को (स्थापयित्वा) खड़ा करके।

भीष्म द्रोण प्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥१६॥

(भीष्म द्रोण प्रमुखतः) भीष्म और द्रोण के सामने (च सर्वेषांम् महीक्षिताम्) और सब राजाओं के सामने (उवाच) कहने लगे (पार्थ) हे पृथा पुत्र! (एतान समवेतान् कुरून्) इन इकट्ठे हुए कुरुओं को (पश्य) देखो।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन् पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा
॥१७॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तयः सर्वान्बन्धूनव-
विस्थान् ॥१८॥

(तत्र) वहां (पार्थः) अर्जुन ने (पितृन अथ पिता महान्) पिताओं और दादाओं (आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् तथा सखीन्) आचार्यों, मामाओं, पुत्रों पोतों तथा साथियों (श्वशुरान् च एव सुहृदः) श्वसुरों और मित्रों को (उभयोः अपि सेनयोः) दोनों ही सेनाओं में (स्थितान् अपश्यत) खड़े हुए देखा। (स कौन्तयः वह कुन्ती पुत्र (तान् सर्वान् अविस्थतान् बन्धून समीक्ष्य) उन सब खड़े हुए परिवार के लोगों को देख कर,

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्
॥ १९ ॥

(परमा कृपया) अत्यन्त कृपा से (आविष्टः) पूर्ण हुआ (विषीदन् इदम् अब्रवीत्) दुःखी होता हुआ यह बोला—हे कृष्ण! (यूयुत्सुम्) युद्ध की इच्छा वाले (इमम्) इस (समुपस्थितम्) आये हुए (स्वजनम) अपने बन्धु वर्ग को (दृष्टा) देखकर,

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्ज जायते ॥२०॥

(मम गात्राणि सीदन्ति) मेरे अंग शिशिल हो रहे हैं (च मुखम् परि शुष्यति) और मुंह सूख रहा है (च मे शरीरे) और मेरे शरीर में (वेपथुः च रोम हर्षः) कम्प तथा रोमांच (जायते) हो रहा है।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थाथतुं भ्रमतीव च मे मनः ।२१

(हस्तात् गाण्डीवम् स्रंसते) हाथ से गाण्डीब धनुष गिर रहा है (च एव त्वक् परिदह्यते) और त्वचा जल रही है (च अवस्थातुम् न शक्नोमि) खड़ा होने के लिये समथ नहीं हूँ (च मे मनः भ्रमती इव) और मेरा मन घूम सा रहा है।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।२२।

(च केशव) और हे कृष्ण (निमित्तानि विपरीतानि पश्यामि) लक्षण उल्टे देख रहा हूँ, (च आहवे स्वजनम् हत्वा) और संग्राम में अपने बन्धुओं को मार कर श्रेयः न अनु पश्यामि) कल्याण नहीं देखता।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि
च किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगै जीवितेन
वा ।। २३ ।।

हे कृष्ण ! (विजयम् राज्यम् च सुखानि न काङ्क्षे) मैं जय, और राज्य सुख नहीं चाहता। (गोविन्द) हे गोविन्द (नः राज्येन भोगैः वा जीवतेन् किम्) हमारे राज्य से, भोगों से या जीवन से भी क्या लाभ।

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगा सुखानि च
त इयेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च
।। २४ ।।

(नः) हमें (येषाम् अर्थे) जिनके लिये (राज्यम् भोगाः च सुखानि कांक्षितं) राज्य भोगा और सुख चाहिये (ते इमे) वे ही ये सब लोग (प्राणान् च धनानि त्यक्त्वा) धन और जीवन की आशा को त्याग कर (युद्धे अवस्थितः) संग्राम में खड़े हैं।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते
।। २५ ।।

(मधुसूदन) हे मधु के मारने वाले (एतान् घ्नतः अपि) इन्हें मारते हुओं को भी (त्रैलोक्य राजस्य हेतोः अपि) तीनों लोकों के राज्य के लिये भी (न हन्तुम् इच्छामि) नहीं मारना चाहता (महीकृते न किम्) पृथ्वी के लिये तो कहना ही क्या।

अहोबत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।।२६।।

(अहो) अहो (बत) शोक है (वयम् महत् पापम्) हम बड़ा पाप (कर्तुम् व्यवसिताः) करने लगे हैं (यत् राज्य सुख लोभेन) जो कि राज्य और सुखके लोभ से (स्वजनम् हन्तुं उद्यताः) अपने कुल वालों को मारने को उद्यत हुए हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत ।।२७।।

यदि (शस्त्र पाणयः) शस्त्र हाथ में लिये (धार्तराष्ट्राः) धृतराष्ट्र के पुत्र (माम् अप्रतीकारम् अशास्त्रम्) मुझ शस्त्र रहित को (रणे हन्युः) रण में मार दें (तत् में) तो मेरा (क्षेमतरम् भवेत्) परम कल्याण हो।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्न मानसः ।।२८।।

संजय ने कहा कि (शोक संविग्न मानसः) शोक से खिन्नचित वाला (अर्जुनः) अर्जुन (एवम् उक्त्वा) ऐसा कह कर (सशरम् चापम् विसृज्य) बाण सहित धनुष को छोड़ कर (रथ उपस्थे) रथ के पिछले भाग में (उप आ विशत्) बैठ गया।

तं तथा कृपया विष्टमश्रु पूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।२९।।

(तथा कृपया आविष्टम्) उस प्रकार करुणा से पूर्ण (अश्रु पूर्णआकुल ईक्षणम्) आँसुओं से भरे व्याकुल नेत्रों वालों (विषीदन्तम् तम्) उदास हुए अर्जुन को (मधु सूदनः) श्री कृष्ण (इदम् वाक्यम् उवाच) यह वचन कहने लगे।

कृष्ण उवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।३०।।

हे अर्जुन ! (त्वा विषमे) तुझ को इस विषम स्थल में (इदम् अनार्य जुष्टम्) यह अनार्यों का प्रिय (अस्वर्ग्यम्) सुख को न देने वाला (अकीकरम कश्मलम) अपयश का देने वाला मोह (कुतः समुपस्थितम्) कहां से आगया।

(क्रमशः)

वैदिक धर्म सब मतों का केन्द्र है (गतांग से आगे)

कभी कहा कि आप मुद्दई (पूर्वपक्षी) हैं आप ही ईश्वरीय ज्ञान का लक्षण कीजिये ! क्या इस्लाम कुरान के ईश्वरीम ज्ञान होने का मुद्दई नहीं !! परन्तु कुरान को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करना उतना ही कठिन है कि जितना सूर्य का पश्चिम में उदय होना। इसी बदाऊं के मुसलमान विद्वानों ने प्रथम कह देने पर भी कुरान को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने से आना कानी की, किन्तु इलहाम की परिभाषा भी यही की कि 'वही' (आकाशवाणी) के द्वारा नाजिल (उतरने) होने वाला हो। परन्तु यह बात भी सिद्ध करनी है कि मुसलमान विद्वानों को प्रथम तो 'वही' का लक्षण करना होगा तत्पश्चात् उसका अस्तित्व सिद्ध करना होगा यावत् वही का अस्तित्व सिद्ध न हो तावत् इस्लाम का पक्ष गिरा हुआ है। प्रिय सुहृद्गण ! वह समय निकट है जबकि सम्पूर्ण संसार के मत मतान्तर शरण लेते हुये प्रत्येक आपको वेदों की शिक्षा के निकट लाशेंगे और इस बात को मानने लपेंगे कि वैदिक धर्म्म ही समस्त धार्मिक उत्तमताओं का केन्द्र है।

॥ इति ॥

⁂

क्या वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको नहीं ?

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः
ब्रह्मराजन्यभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय
॥ यजु० अ० २६ मं० २

इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को इस बात का उपदेश देते हैं कि जिस प्रकार सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये कल्याण के देने वाली अर्थात् मुक्ति सुख के देने वाली ऋग्वेदादि चारों वेदों की शिक्षा का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। इस वेद मन्त्र से तो स्पष्ट शब्दों में प्रकट है कि मनुष्योंको वेद पढ़ाओ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और स्त्री आदि सर्व प्रकार के मनुष्यों के लिये वेद हैं। अस्तु, मन्त्र तो सर्व मनुष्यों को वैसा ही अधिकार बतलाता है जैसा कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा के दिये हुए सूर्य के देखने का अधिकार रखता है। परन्तु प्रायः मनुष्य यहां कहते हैं कि केवल द्विजों को ही वेदों के पढ़ने का अधिकार है, शूद्रों को नहीं ? क्योंकि शूद्र के वास्ते यज्ञोपवीत की आज्ञा नहीं है और बिना यज्ञोपवीत के मन्त्र के पढ़ने का अधिकार नहीं। जैसा कि स्वामी दयानन्द ने भी गृह्य सूत्रों के प्रमाण से लिखा है:—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत ॥ १ ॥ गर्भाष्टमें वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥३ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद् ब्राह्मणस्य नातीतः कालः आद्विंशात् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत उर्ध्वं पतितसावित्रीकाः भवन्ति।

अर्थ—जिस दिन जन्म हुआ अथवा जिस दिवस गर्भ रहा हो उससे आठवें वर्ष में ब्राह्मण के और जन्म वा गर्भ से एकादशवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म अथवा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के पुत्र का यज्ञोपवीत करें और ब्राह्मण के सोलह, क्षत्रिय के बाईस और वैश्य के पुत्र का चौबीस वर्ष पर्यन्त यज्ञोपवीत चाहिये। यदि पूर्वोक्त समय के आभ्यन्तर यज्ञोपवीत

नहीं लेवे तो इनको गायत्री और वेदों के पढ़ने का अधिकारी नहीं समझा जावे।

(उत्तर) यहां तो स्पष्ट है कि जो ब्राह्मण बनने का अधिकारी लड़का हो उसका संस्कार आठवें वर्ष में होना चाहिये। क्योंकि इसदशामें उसको पढ़नेके वास्ते अठारह वर्ष मिल जायेंगे। अष्टा दश वर्ष का शिक्षा के बिना ब्राह्मण होना कठिन है। यदि कोई अधिक बुद्धिमान् भी हो तो वह सोलह वर्ष की आयु से पढ़ना आरम्भ करके प्रत्येक वर्ष में दो २ वर्ष की शिक्षा पाकर अर्थात् दो २ कक्षा पास करके नव वर्ष में भी हो सकता है। परन्तु इससे कम समय में ब्राह्मण होना असम्भव है और क्षत्रिय बालक को ग्यारह वर्ष से पच्चीस वर्ष पर्यन्त चौदह वर्ष शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। इसके बिना क्षत्रिय बनना कठिन है। परन्तु बहुतबलमान् बालक जन्मसे जिसके अच्छे संस्कारहों' तो तीन वर्ष तक शिक्षा पाकर भी क्षत्रिय बन सकता है क्योंकि क्षत्रिय के कार्य में विद्या की अपेक्षा बल की भी आवश्यकता है। और वैश्य पद के अधिकारी को बारह वर्ष से पच्चीस वर्ष पर्यन्त तेरह वर्ष शिक्षा पानी चाहिये। क्योंकि वैश्य का काम परोक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष के अधिक आश्रय है। बुद्धिमान् मनुष्य एक वर्ष में वैश्य की शिक्षा प्राप्त कर सकता है। क्योंकि इसके पश्चात् ब्रह्मचर्य अवस्था समाप्त हो जाती है। निदान जो विद्यार्थी इस अवस्था तक विद्या पढ़नी आरम्भ नहीं करे, वह शूद्र रह जाता है।

(प्रश्न) स्वामी जी ने तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का बालक लिखा है। तुम ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पद का अधिकारी बालक कहां से निकालते हो?

(उत्तर सूत्र के पदोंका अर्थ तो यह है कि आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन होवे, परन्तु उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार से पूर्व किसी की द्विज संज्ञा ही नहीं होती। क्योंकि जिसके दो जन्म हों उसको द्विज कहते हैं। पहला जन्म तो माता पिता के यहां और दूसरा गुरु पिता और विद्या माता के कारण से होता है। परन्तु जो विद्या रूपी माता के गर्भमें नहीं गया, वह द्विज किस प्रकार कहला सकता है और जो हद्विज जो नहीं बना तो वह ब्राह्मण ही किस प्रकार होसकता है। स्वामी जी को यह अर्थ करना पड़ा कि ब्राह्मण का बालक परन्तु जोदोष उस दशा में रहता है वह इस दशा में भी रहता है। निदान ब्राह्मण के बालक से ब्राह्मण पद का अधिकारी बालक है, स्वामी जी के अभिप्राय को प्रकट करता है। और स्वामी जी ने जो मनु का प्रमाण दिया है, वह इसको स्पष्ट कर देता है:-

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ मनु० २। ३७॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शिष्ट विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हो तो ब्राह्मण के बालक का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय का षष्ठे और वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करे। यह बात तब ही हो सकती है जबकि उनके माता पिताका ब्रह्मचर्य पूर्ण होने पर विवाह हुआ हो, उन्हीं के लड़के इस प्रकार की इच्छा प्रकट करके शीघ्र विद्या को प्राप्त करने वाले हो सकते हैं। परन्तु हमारे बहुत से मित्र यह प्रश्न करेंगे कि श्लोक के शब्दों से भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का ही उपनयन प्रकट होता है। शूद्रकी सन्तानके लिये कोई समय नियत नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के अधिकारी को उपनयन संस्कार की आवश्यकता होती है शूद्र के लिए उपनयन की आवश्यकता नहीं। अर्थात जो मनुष्य पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य न रख कर और वैदिक शिक्षा न पाकर उपनयन से खाली रहते हैं वही शूद्र हैं और उपनयन संस्कार से पूर्व सब ही शूद्र होते हैं। क्योंकि द्विज बनाने वाला वेदारम्भ संस्कार है। जो उपनयनके पश्चा होता है। यह तो सबको ही ज्ञात है कि वर्ण गुण कर्म स्वभाव से होता है न कि जन्म से। जैसा कि गीता में लिखा है कि तीनों वर्णों की उत्पत्ति गुण कर्म से होती है। यदि उत्पत्ति से वर्ण होवे, आह्निक सूत्रावली जहां ब्राह्मणादि वर्णों के नित्य कर्म लिखे हैं, उनको इस बात की आवश्यकता नहीं होती कि उनके लक्षण लिखते,

जो प्रत्येक वर्ण के पृथक्‌कर दिखलाये हैं। जैसे ब्राह्मणों के यह लक्षण लिखे हैं—

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम्। प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम्॥

(अर्थ) शौच अर्थात् शुद्ध रहना, (आस्तिक) ईश्वर का पूर्ण विश्वासी हो, वेदों का अभ्यासनित्य करता हो, गुरु का पूजन करना, सर्वदा सबसे प्रीति पूर्वक बोलना। अतिथि का सत्कार करना, अग्नि होत्र करना, जिसका यह स्वभाव हो अर्थात वह किसी दिखावे वा बनावट के बिना इनका अभ्यासी हो तो वह ब्राह्मण है। आगे पुनः लिखते हैं कि—

शान्ता सन्तः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः। क्रोधं कर्तुं न जानन्ति एतद् ब्राह्मण लक्षणम्॥

(अर्थ) शान्त होने से जिसकी आशा दमन हो गई है, इसी लिए उसको किसी से राग द्वेष न रहा, और जिसका चाल चलन वेदानुसार है, जिसने अपने शरीर को सुशीलता से शुद्ध किया है और सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम करना, किसी समय भी स्वार्थ जिनके मन में नहीं आवे, क्रोध करना जानता ही न हो, ये ब्राह्मण के चिन्ह हैं। आगे चलकर और भी कहते हैं—

संध्योपासनशीलश्च सौम्यचितो दृढ़व्रतः
सम: स्वेषु परेषु च एतद् ब्राह्मण लक्षणम्॥

(अर्थ) जो संध्या अर्थात परमात्मा की उपासना और ध्यान के करने वाला और जिसका हृदय नर्म होने के कारण दूसरे का दुःख सहन न कर सके, दृढव्रत अर्थात् जो कुछ काम करना चाहे उसके करने में चाहे जितने क्लेश क्यों न हों परन्तु करने से न रुकना, और जो अपने और पराये के साथ एकसा प्रेम करता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं। इस ही प्रकार से और भी लक्षण बतलाए हैं, जिनके लिए इस लघु ट्रैक्ट में अवकाश नहीं यदि शास्त्रकार उत्पत्ति से वर्ण मानते तो लिख देते कि जो ब्राह्मण के रजवीर्य से उत्पन्न हो वह ब्राह्मण है।

(प्रश्न) जबकि मनु ने लिखा है कि जो ब्रह्म तेज की इच्छा रखने वाला हो उसका पांचवे वर्ष में उपनयन किया जावे तो शूद्र का उपनयन किस प्रकार हो सकता है?

(उत्तर) क्योंकि पांचवें वर्ष की आयु में कोई ब्राह्मण हो नहीं सकता अतः यह शब्द अनर्थक है कि ब्राह्मण का पांचवे वर्ष में उपनयन किया जावे। क्योंकि उपनयनसे पूर्व द्विज संज्ञा ही नहीं और ब्राह्मण सबसे उत्तम द्विज को कहते हैं। द्वितीय उसमें यह अन्योन्याश्रय दोष भी है कि द्विज हो तो उसका उपनयन संस्कार और वेदारम्भ संस्कार हो और संस्कार ठीक न हो तो द्विज न बने, निदान ऐसा विचार दूषित है।

(प्रश्न) जबकि स्वामी जी ने ब्राह्मण के बालक का उपनयन पाँचवें वर्ष में लिखा है, पुनः आप इसके विरुद्ध किस प्रकार कहते हो?

(उत्तर) ब्राह्मण के बालक का यह अभिप्रायः किस प्रकार निकाल लिया कि ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न हुआ बालक। किन्तु उसका अर्थ यही वेदानुकूल है कि ब्राह्मण पद का अधिकारी बालक। वरन् वेद मन्त्र के विरुद्ध होने से सारे सूत्र अप्रमाण हो जावेंगे।

(प्रश्न) जिस प्रकार पूर्व आश्रम अर्थात् विद्यार्थीपने में जो पिता की जीविका (पेशा) है वही जीविका विद्यार्थी की भी मानी जाती है। जिस प्रकार एक किसान का बालक स्कूल में पढ़ने के वास्ते जाता है, जब उसकी जीविका पूछते हैं जमींदारी ही बतलाता है। यदि पूर्व आश्रम के वर्ण को न कर संस्कार करा दिया जावे तो क्या दोष होगा?

(उत्तर) उस दशा में प्रथम तो यह ही दोष होगा कि गुरू के यहां दश ब्रह्मचारी जिनके माता पिता मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं और अनाथ होकर पहुँचे, उनके जानने वाला वहाँ कोई नहीं है, और वह दशों बालक द्विजों के हैं। अब जो गुरु उनसे पूछता है तो वह बतला नहीं सकते।

अब यदि न बतलाने के कारण उनका संस्कार न किया जावे, तो द्विजों की सन्तान को पतित करने का दोष गुरु को लगेगा। यदि संस्कार किया जावे तो किस प्रकार ? क्यों किं वह जानते नहीं कि कौन किस वर्ण का लड़का है। यदि किया जावे तो बुद्धि का अनुमान करके ही। निदान स्वमी जी का ब्राह्मण के बालक से अभिप्राय यही जानना चाहिये कि ब्राह्मण पद का अधिकारी बालक।

(प्रश्न) जब कि स्वामीजी ने स्पष्ट लिखा है कि जो शूद्र कुल और गुणयुक्त हो उसको मन्त्र संहिता छोड़कर बिना उपनयन किये पढ़ाए, ऐसा कई एक आचार्य मानते हैं। तो इससे शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार न होना तो सिद्ध ही है ?

(उत्तर) यहाँ शूद्र का बालक तो लिखा नहीं, जिससे आपका अभिप्राय सिद्ध हो। किन्तु दिखलाया यह है कि जिसका चौबीस वर्ष तक संस्कार तो हुआ नहीं कि जिससे वह द्विजों में मिल सके और वह पढ़ना चाहता है तो आयु के व्यतीत हो जाने से वह उपनयन का अधिकारी नहीं रहा और बिना उपनयन के मन्त्र पढ़ नहीं सकता, निदान शास्त्र पढ़ाए।

(प्रश्न) जिस प्रकार सूर्य का अधिकार सब का है ऐसे ही वेद का अधिकार सबका था, परन्तु अब चौबीस वर्ष तक जिसका संस्कार न हो उसको अधिकार नहीं दिया। अतः वेद का अधिकार सब को नहीं ?

(उत्तर) क्या सूर्य का अधिकार सब को है ? इसका यह अभिप्राय है कि अन्धे का सूर्य का अधिकार है, अन्धा भी सूर्य से देख सकता है, अथवा चक्षु बन्द करके चलने वालों को सूर्य दिखा सकता है ? नहीं इसका अभिप्राय यह है कि देश काल और जाति भेद किए बिना जिसकी बुद्धि वेद के पढ़ने योग्य है, जिसके संस्कार यथायोग्य किए गए हों, जिसको वेदों की इच्छा हो उन सबको वेद के पढ़ने का अधिकार है। अन्धा सूर्य के प्रकाश में देख नहीं सकता परन्तु यह कोई नहीं कहता कि सूर्य का अधिकार उस को नहीं, निदान जो मनुष्य अपनी सन्तान को वेद पढ़ाना चाहे तो उसका धर्म है, वह उनके नियमानुसार संस्कार कराए। ताकि वह वेदों के पढ़ने योग्य हो। जिसके संस्कार न हों वह संस्कार शून्य, शूद्र है अर्थात् वह चक्षु बन्द करके सूर्य के सामने जाता है। ऐसे मनुष्य को सूर्य किसी प्रकार भी नहीं दीख सकता ऐसे मनुष्य को सूर्य का दोष नहीं, दोष उसी आंख बन्द करके चलने वाले का है। ऐसे ही वेद का अधिकार तो सबको है, परन्तु जिनके माता पिता संस्कार न करायें उस में दोष उनके माता पिता का है न कि वेद का।

(प्रश्न) क्या यह अन्याय नहीं कि संस्कार तो पिता ने नहीं कराया और वेदों की शिक्षा से पुत्र को रोका जावे। क्योंकि इस दशा में दूसरे के कर्म का फल दूसरे को मिलता है, जिससे न्याय दूर हो जाता है ?

(उत्तर) यह प्रत्यक्ष बात है कि यदि किसी के माता पिता उसकी आंख फोड़ दें तो वह सूर्य के प्रकाश से रुक जाता है। सूर्य से तो वही देखेगा जिसकी आंखें ठीक हों, चाहे उसने नेत्रों को स्वयं फोड़ दिया हो, वा माता पिता ने, दोनों दशाओं में देखने से रुक जाता है।

निदान वेदोंकी शिक्षा का समय बाल्यावस्था से ही आरम्भ होता है। यदि उसी समय संस्कार करा कर वेदों की शिक्षा आरम्भ कर दी जावे तो उस मनुष्य को वेदों का अधिकार है।

यदि माता पिता उस काल को अपनी मूर्खता के कारण खो बैठें और बालकका संस्कार न कराकर उसके शिक्षा के काल को मुफ्त खोयें तो यह दोष उन माता पिता की है।

इससे यह अभिप्राय निकालना ठीक नहीं कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को नहीं, किन्तु वेद के पढ़ने का अधिकार सब को है । परन्तु नियम यह है कि यथा काल संस्कार हुए हों। अतः वेदों ने तो शूद्रादि सभी को अधिकार दिया है। परन्तु शिक्षा के समय को टालने वाले पितर यदि अयोग्य बनायें, यह उसका दोष है, ऋषियों के किसी नियम में दोष नहीं है।

(प्रश्न) यदि वाल्यवस्था में संस्कार न होवे तो बड़ी आयु में संस्कार कराकर पढ़ लेने में क्या दोष है।

उत्तर—जिस प्रकार बिना ऋतु के कृषि बोने पर कृषि ठीक उत्पन्न नहीं होती, इसी प्रकार शिक्षा समय को खो देने से बड़ी आयु में इस योग्य नहीं रहता कि वेदों की गूढ़ बातों को समझ सके।

निदान शिक्षा समय में ठीक प्रकार से पढ़ सकता है। नियम के टूट जाने से मनुष्यों ने डर कर शिक्षा को प्राप्त नहीं किया।

निदान जब कि वेद मन्त्र ने सबको वेद पढ़ने का अधिकार दिया है और वेद सब स्मृतिपूर्ण शास्त्र से अधिक माना है, और वेद के विरुद्ध होने से कोई पुस्तक भी प्रमाण नहीं रहती। अब यह सिद्ध हुआ कि वेद पढ़ने का अधिकार सबको है, जो अपनी मूर्खता से समय खो बैठे तो उसका अपना दोष है।

॥ इति ॥

* * *

सृष्टि प्रवाह से अनादि है

आर्य समाज का सिद्धांत यह है कि जीव ब्रह्म और प्रकृति स्वरूप से अनादि हैं अर्थात् इनका कोई कारण नहीं है। परन्तु सृष्टि प्रवाह से अनादि है! जिसका उत्पन्न करने वाला ईश्वर है। अनादि शब्द का अर्थ है जिसका आदि न हो; अर्थात् जिसका कारण कुछ न हो, और सृष्टि का अर्थ है जो पैदा करी गई हो। इस स्थान पर वादी तर्क करता है कि आर्य समाज का यह सिद्धान्त ठीक नहीं, क्योंकि इसमें नीचे लिखे दोष प्रतीत होते हैं। प्रथम तो प्रत्येक कार्य के पूर्व क्रिया का होना आवश्यक है, और प्रत्येक क्रिया से पूर्व इच्छा का होना आवश्यक है, और इच्छा से पूर्व कर्ता में उस गुण का होना आवश्यक है, जिससे स्पष्ट प्रकट है कि कार्य से क्रिया पूर्व होगी और कार्य पश्चात् होंगा। क्रिया और कार्य का एक साथ होना असम्भव है, और क्रिया से इच्छा पहले होगी और क्रिया पीछे। क्रिया और इच्छा का एक समय में होना भी असम्भव है। इच्छा से इस पूर्वोक्त गुण का होना भी आवश्यक है क्योंकि असम्भव पदार्थों की इच्छा नहीं होती। अतः सृष्टि का अनादि होना और ईश्वर का अनादि होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता, और सृष्टि को प्रवाह से अनादि कहना भी कोई आशय नहीं रखता क्योंकि यह सम्बन्ध सगुण है, क्योंकि प्रवाह सृष्टि का सगुण है, किसी दशा में द्रव्य के बिना नहीं रह सकता अतः प्रवाह से सृष्टिअनादि है इसका अभिप्राय यही लेना होगा किसृष्टि अनादि है जिसका आशय यह है कि उसका कोई कारण नहीं। जब सृष्टि का कोई कारण नहीं तो ईश्वर की सत्ता के लिये जो सृष्टि का कारण होना हेतु दिया गया है अथवा आर्यसमाज के प्रथम नियम में जो ईश्वर को आदि मूल बतलाना है, वह मिथ्या सिद्ध होता है। जिससे आर्य धर्म (दयानन्दीमत) नास्तिक सिद्ध होता है। क्योंकि प्रथम तो उसका प्रथम नियम ही गिर जाता है, द्वितीय ईश्वर की सत्ता में कोई हेतु नहीं रहता।

उत्तर--वादी का यह तर्क अनभिज्ञता के कारण है। क्योंकि संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं (१) अज्ञ जिनको तीनों काल में ज्ञान हो ही नहीं सकता (२) अल्पज्ञ, जिनको कुछ ज्ञान तो स्वाभाविक होता है और विशेष ज्ञान पदार्थ और सामान के द्वारा उत्पन्न होता है। (३) सर्वज्ञ, जिसका ज्ञान नित्य और निर्भ्रान्त होने से उसमें किसी प्रकार का बाह्य ज्ञान आता नहीं। अब अज्ञ तो कर्म करने की शक्ति ही नहीं रखता और अल्पज्ञ स्वेच्छा से कर्म करता है, और सर्वज्ञ स्वभाव से कर्म करता है न कि इच्छा से। अब वादी ने अपनी अज्ञानता से अल्पज्ञ के लिये जिन साधनों की आवश्यकता है उनको सर्वज्ञ के गले में भी मढ़ना चाहा है, परन्तु उसे सोचना चाहिये था कि जहां हम क्रिया से पहले इच्छा को देखते हैं, वहां हम उसके कारण को भी देखते हैं,। क्योंकि इच्छा अप्राप्त इष्ट की होती है यदि वह लाभकारक भी हो तो न तो किसी प्राप्त हुई वस्तु की इच्छा होती है, और न ही अलाभकारक वस्तु की इच्छा होती है। इस इच्छा का कारण उस अप्राप्त और इष्ट अर्थात् अप्राप्त लाभकारक है जिसके प्राप्त करने की वह इच्छा करता है। प्रथम तो आप कोई ऐसी वस्तु बता ही नहीं सकते जो ईश्वर की इच्छा का कारण हो क्योंकि उसका ईश्वर की इच्छा से पूर्ण होना जरूरी है। यदि अभ्युपगम सिद्धांतानुसार ऐसा मान भी लेवें तो वह वस्तु जो ईश्वर की इच्छा का कारण होती है, नित्य है अथवा अनित्य? यदि नित्य मानोगे तो ईश्वर के साथ इच्छा का कारण भी नित्य मानना पड़ेगा, पुनः कारण कार्य-भाव का झगड़ा पड़ जावेगा और अन्त में एक ही नित्य मानना पड़ेगा।

यदि अनित्य मानें तो उसके जन्यत्व में इच्छा का होना आवश्यक होगा, जिसके लिये पुनः किसी कारण की आवश्यकता होगी और पुनः उस कारण की अपेक्षा भी यह प्रश्न होगा, जिससे अनवस्था दोष आ जावेगा। और इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से उसका कर्ता होना मिथ्या सिद्ध होगा। द्वितीय, आपने यह जो कहा कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है और सम्बन्ध सगुण है- यह भी मिथ्या है। क्योंकि प्रवाह सृष्टि के अनादि होने का कारण है न कि सृष्टि का गुण। बहुत से मनुष्य यह कहेंगे कि प्रवाह का अर्थ क्या है इसका उत्तर यह है कि ईश्वर के सम्पूर्ण गुण अनादि होने से और उसका इच्छा रहित कर्त्ता होने से और सृष्टि की बार बार रचना करने का नाम प्रवाह है। क्योंकि ईश्वर सर्वदा सृष्टि की रचना करता रहता है, अतः उसका कार्य सृष्टि भी अनादि है। वादी इस स्थान पर यह प्रश्न कर सकता है कि जब ईश्वर इच्छा रहित कर्ता है, और उसका सृष्टि उत्पन्न करना स्वभाव है, तो प्रलय के समय वह क्या करता है! क्योंकि उस समय सृष्टि तो उत्पन्न करता नहीं? इसका उत्तर यह है कि ईश्वर की दी हुई शक्ति से प्रकृति के परमाणुओं में क्रिया बराबर जारी रहती है जिस प्रकार रात्री के दो पहर पर्यन्त अंधेरा बढ़ता जाता है और दोपहर के पश्चात् घटना आरम्भ हो जाता है। इधर दिन के बारह बजे तक धूप बढ़ती जाती है और दिन के बारह बजते ही घटना आरम्भ हो जाती है। कोई पल भी ऐसा नहीं जो घटने से रहित हो। ऐसे ही २५ दिसम्बर से दिवस बढ़ना आरम्भ हो जाता है और २५ जून से घटना। काई दिन नहीं जिसमें वृद्धिक्षय न हो। यही दशा सृष्टि और प्रलय की है। अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष सृष्टि और इतना ही समय प्रलय में व्यतीत होता है परन्तु जिसको ब्राह्म दिन अर्थात सृष्टि कहते हैं उसका आदि वेदरूपी सूर्य्य के उदय होने से होता है। अर्थात् जबतक मनुष्य जाती उत्पन्न होती है और जब तक मनुष्य जाती रहती जाती है इसके आभ्यन्तर का यह नियत समय है। पशु कीट पतंग स्थावर पर्वतादिक उस समय से पूर्व उत्पन्न हो जाते हैं और उसके बाद भी रहते हैं। और जिस तरह प्रत्येक रात्री के पूर्व दिवस होता है और प्रत्येक दिन के पूर्व रात्री होती है कोई दिन नहीं जिसके पूर्व दिन न हो, इसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि से पूर्व प्रलय और प्रलय से पहले सृष्टि होती है। यद्यपि प्रत्येक

सृष्टि और प्रलय का आदि और अन्त होता है परन्तु इस चक्र का आदि और अन्त नहीं हो सकता।

(प्रश्न) जिस अवयवी के अवयव अनित्य हों वह अवयवी भी अनित्य होता है यदि सृष्टि का उत्पन्न होना मानते हो तो चक्र (प्रवाह) भी अनित्य मानना पड़ेगा। जिस प्रकार रात्रि से पहिले दिन और दिवस से पूर्व रात्रि होती है, तो उसका आदि भी पाया जाता है क्योंकि रात्रि और दिन सूर्य के उत्पन्न होने के पश्चात् हो सकती है और सूर्य का अनित्य होना सर्व तन्त्र सिद्धान्त है। जबसे सूर्य उत्पन्न हुआ तब ही से रात दिन का चक्र आरम्भ हुआ। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि जिस जंजीर या चक्र की कड़ी का आदि हो वह चक्र भी अनित्य होता है।

उत्तर-जिस प्रकार एक दिनमें घड़ी अथवा घण्टे होते हैं उसी प्रकार एक सृष्टि में युगादिक होते हैं। वर्तमान सूर्य के प्रकट होने से दिन और लोप हो जाने से रात्रि कहलाता है। परन्तु सृष्टि और लय के चक्र का कारण क्या है। जिससे सृष्टि और लय होता है तो मानना पड़ेगा कि उसका कारण ब्रह्म है। परन्तु ईश्वर नित्य है, सूर्य की तरह उसका होना असम्भव है। अतः सारांश यही है कि जिस चक्र का कारण अनित्य है वह नित्य और जिसका कारण अनित्य है वह अनित्य। अत; इस चक्र को जिसको दूसरे शब्दों में उत्पन्न करने का स्वभाव कह सकते हैं, नित्य कहना पड़ेगा।

(प्रश्न) यदि इस ही तरह पर ईश्वर को स्वभाव से जगत् बनाने वाला अथवा इच्छा रहित कर्त्ता कहेंगे तो वह कर्मों का जानकर फल देने वाला नहीं हो सकता जिससे आर्यों के सिद्धान्त की तो समाप्ति हो गई।

(उत्तर) जो लोग यह मानते हैं कि परमात्मा जो चाहे सो कर सकता है उनके सिद्धान्त की तो अवश्य समाप्ति हो गई, परन्तु जिस को यह ज्ञात है कि सर्वज्ञ परमात्मा का कोई कार्य्य नियम के विरुद्ध नहीं होता उसका प्रत्येक कार्य्य ज्ञान के सत्ता होने से नियम के आभ्यन्तर होता है। उनके सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता है। जैसे सूर्य्य का प्रकाश प्रत्येक पदार्थ पर एकसा पड़ता है। वह न तो किसी का शत्रु और न किसी का मित्र है। यदि उसका प्रकाश है तो सब के लिए यदि गर्मी है तो सब के लिए, परन्तु उस सूर्य्य से भी प्रकृत्यानुसार पृथक् २ असर पड़ता है। जसे एक मनुष्य की प्रकृति शील है, और द्वितीय मनुष्य की प्रकृति मध्यम दर्जे की, और एक की बहुत ऊष्ण है। यदि वह तीनों सूर्य्य के समीप जावें तो, यद्यपि सूर्य्य स्वाभाविक कर्म करता है परन्तु उनको पृथक् २ ही फल मिलेगा जिसमें गर्मी अधिक है उसको दुःख और जो मध्यम है उसको मध्यम दुःख सुख मिलता है इस ही प्रकार परमात्मा तो स्वभाव से न्याय और दया करते हैं, परन्तु प्रत्येक जीव अपने कर्मानुसार उनके फल पाता है।

प्रश्न—यदि परमात्मा को स्वभाव से कर्त्ता मानोगे तो उसमें एक ही प्रकार का कर्म होगा, उसे बिना किसी कारण के दो प्रकार का प्रभाव अर्थात् उत्पन्न करना और नाश करना ही हो सकता। क्योंकि दोनों कर्म संसार में देखे जाते हैं। इससे मानना पड़ता है कि वह स्वेच्छा से करता है, जब चाहता है उत्पन्न करता है, जब चाहता है नाश करता हैं।

उत्तर—यह तो बिलकुल मिथ्या हैं, क्योंकि जहाँ स्वभाव से सृष्टि कर्त्ता मानने में उससे दो प्रकार की सृष्टि का बिना किसी कारण के सम्भव नहीं, वहाँ स्वेच्छा से कर्त्ता मानने में भी दो प्रकार की इच्छा के लिये किसी कारण का होना आवश्यक है। परन्तु स्वभाव से कर्त्ता मानने वालों के पास तो जीव के कर्म इस सृष्टि और प्रलय का कारण है। उनके सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आ सकता। परन्तु इच्छा से सृष्टि कर्त्ता मानने वालों में दोष आता है, क्योंकि उनके पास कोई कारण इच्छा के बदलने का नहीं है। अतः

प्रश्न—तुम्हारी यह बात अपनी मनघड़न्त है, अथवा इसमें किसी प्रामाणिक पुस्तक भी प्रमाण है?

उत्तर—श्वेताश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है:—

न तस्य कार्य्य करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव)श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

अर्थ—उस परमात्मा का शरीर नहीं है और न ही उसके इन्द्रियां हैं और न ही कोई उसके बराबर और न कोई अधिक है। उस ईश्वर की शक्ति अनेक प्रकार की वेदों में बतलाई है, उस का ज्ञान; बल, क्रिया सब स्वाभाविक है। परमात्मा के सम्पूर्ण गुण स्वाभाविक हैं। उसमें कोई नैमित्तिक गुण नहीं है।

निदान जबकि परमात्मा का क्रिया करना स्वभाव है तो उससे जो काम होगा वह प्रत्येक समय होता रहेगा क्योंकि परमात्मा को अपने कार्य के लिए किसी साधन को आवश्यकता नहीं। अतः उसके काम में कोई विघ्न नहीं होता। निदान परमात्मा के अनादि होने से उसका काम भी अनादि है, क्योंकि उस काम से दो प्रकार का प्रभाव होता है जिसको सृष्टि और प्रलय कहते हैं। क्योंकि दोनों में पहिले और पीछे किसी को नहीं कह सकते, अतः स्पष्ट प्रकट है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है॥ इति शम्॥

आत्मशिक्षा

(१)

यह चिह्न संसार में उन्नति की इच्छा प्रकट करता है और अवनति से अरुचि। परन्तु बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो उन्नति के मार्ग पर पहुँचे हों। परन्तु इस दशा में बहुत से मनुष्य आनन्द में दीखते हैं। क्या उन्होंने उन्नति के मार्ग को जान लिया है? अथवा वह वहां पर पहुँच गए? उनके उत्तर में शोक से कहना पड़ता है कि कदापि नहीं। किन्तु बहुत अधोगति की दशा में आनन्द हो रहे हैं। आप आश्चर्य से प्रश्न करेंगे कि यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है कि किसी मनुष्य को असिद्धि अथवा अधोगति में आनन्द हो? परन्तु अविद्या महारानी का ऐसा बलवान् प्रताप है कि मनुष्य अलाभ को लाभ जानकर प्रसन्न होते हैं। आप पुनः प्रश्न करेंगे कि मनुष्य अलाभ को लाभ किस प्रकार समझ लेते हैं? इसका उत्तर यह है कि मूल [असली पूंजी] अर्थात् आत्मा के गुण को न जानने के कारण मनुष्य अपनी हानि और लाभ को समझने में ज्ञान की कमी से दुःख को सुख समझते हैं।

[प्रश्न] आत्मा शब्द सेक्या अर्थले सकते हैं?

[उत्तर] आत्मा शब्द का अर्थ व्यापक अथवा प्रत्येक अंग में रहने वाला है। परन्तु जीवात्मा और परमात्मा दोनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। आत्मा शब्द का संकेत कहीं ब्रह्म और कहीं जीव का होता है, अतः जीवात्मा और परमात्मा भी कहते हैं।

प्र०—परमात्मा कैसा है?

उत्तर—सत् स्वरूप, अर्थात नित्य जो संसार से पृथक हो, उसको सत् स्वरूप कहते हैं। चित्त स्वरूप, अर्थात ज्ञान स्वरूप है। जिसके ज्ञान में किसी प्रकार की न्यूनना हो ही नहीं सकती। आनन्द स्वरूप अर्थात् प्रत्येक क्लेश से पृथक है और आनन्द गति से पूर्ण है। वह सत् है अर्थात् उसका नाश कोई नहीं कर सकता, वह नित्य है, कष्ट अर्थात् सम्पूर्ण खराबियों से पृथक है, और जड़ जगत् से पृथक विचारने योग्य है, इत्यादि।

प्र०-जीवात्मा किसे कहते हैं?

उ०—प्रत्येक शरीर में व्यापक सत् चित् स्वरूप और निराकार है। परन्तु स्वरूप से सर्व व्यापक नहीं किन्तु जाति से व्यापक और स्वरूप से परिच्छिन्न और नाना हैं। अतः एकदेशी होने से उसका ज्ञान भी एकदेशी और घटने बढ़ने वाला है। क्रमशः

सन १९५८ का कलैण्डर

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार सर्व श्री महात्मा आत्मानन्द जी, आनन्द स्वामी तथा आनन्द भि क जी के चित्रों सहित प्रत्येक ग्राहक को बिना मूल्य भेजा जायगा।

वाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	९)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ,,	३।।)
सृष्टि का इतिहास	१।।)
उपनिषद आर्य मुनिभाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१।)
प्रभु दर्शन ...	२।।)
तत्व ज्ञान ...	३)
आनन्द गायत्री कथा	।।)
एक ही रास्ता	।।=)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)।।
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१।।)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाए)	१।।)
सचित्र योगासन	१।।)
वहनों की वातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ सग्रह	२।।)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय सँस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	।।)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३।।)
कर्तव्य दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
सन्ध्या, हवन प्रदीपिका	।।)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	।।)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	।।)

प्रार्थना प्रदीप	।।)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
विवाह और विवाहित जीवन	२।।)
घर गृहस्थी	३।।)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमाँसा	।।।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	।।=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	।।=)
वाल शिक्षक	।=)
आत्म कथा ऋषि दयानन्द	।=)
आर्याभिविनय	।।)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	।=)
भ्रान्ति निवारण	।=)
भ्रमोच्छेदन	।)
हुगली शास्त्रार्थ	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
ईश्वर विचार	=)
जीवात्मा	=)
वेदों की आवश्यकता	−)
वेद किसपर प्रकट हुए	−)
वाल शिक्षा, धर्म शिक्षा	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	−)
पितृ श्रद्ध विचार	−)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	−)
,, ,, लक्ष्य	−)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।−)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	।।)
माँस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	।।)
स्वास्थ्य विज्ञान	।−)
धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४।।×२२	
सन्ध्या मंत्र	।−)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।−)
आर्य समाज के नियम	।−)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।−)
यम नियम व्याख्या सहित	।−)
संगठन सूक्त	।−)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	।।)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम	≡)
सामवेद का प्रथम	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मंचर, सत्यवद	≡)

मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५।। मू०−)।।

ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म आदि आदि।

महाभारतम् संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री उपाध्यक्ष दयानन्द वेदविद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य सजिल्द का ३) रु०

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लाइब्रेरियों पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४४ पुस्तकों का सैट**

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है। देहाती पुस्तक भण्डार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वे देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

१. आलू की खेती	।।।)
२. टमाटर की खेती	।।)
३. गोभी की खेती	।।)
४. जीरा, धनियाँ, अजवायन	।।।)
५. तरकारियों की खेती	१।।)
६. अच्छे बीज	।।)
७. अच्छी खाद	२।।)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	।।।)
१०. फूल फुलवाड़ी	२।।)
११. धान की खेती	१।।)
१२. सन्तरे की बागवानी	२।।)
१३. आम की बागवानी	३)
१४ आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५. तिलहन की खेती	।।=)
१६. सोयाबीन की खेती	।)
१७. तम्बाक की खेती	।।)
१८, खेती की तैयारी	२।)
१९. फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०. व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१. खेतीबाड़ी (कि. गाइड)	१।।)
२२. फलों की खेती	३।।)
२३. पशुओं का इलाज	६)
२४. तरकारी सागभाजी खेती	३।।)
२५. ट्यूबवैल गाइड	३।।)
२६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७. पोल्ट्री फार्मिङ्ग	४)
२८. उन्नत सिंचाई	२)
२९. खेती और ट्रैक्टर	६)
३०. फल संरक्षण	२।।)
३१. गेहूं की खेती	३)
३२. मूंगफली की खेती	१।
३३. मिर्च की खेती	१।)
३४. बीज की तैयारी	१।।)
३.. मसालों की खेती	२)
३६. पपीते की खेती	१।।)
३७. आधुनिक कृषियन्त्र	१।)
३८. लाख की खेती	।।।=)
३९ प्याज की खेती	।।।)
४०. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
४१. भारतीय कृषि कहावतें	२।।)
४२. किचन गार्डन	१।।।)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)

देहाती पुस्तक भण्डार:——चावड़ी बाजार दिल्ली—

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, सतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं म० ३।।) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू, अदरक, अरवी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेभ शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३।।) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही हैं

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती बाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ

(ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १।।) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

५००० पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

केवल बारह आने (पिछत्तर नये पैसे) के टिकट लिफाफ में भेज कर नये वर्ष की श्री बापू राष्ट्रीय मशहूर जन्त्री मंगायें।

देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाजार देहली।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयदेव प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर
वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

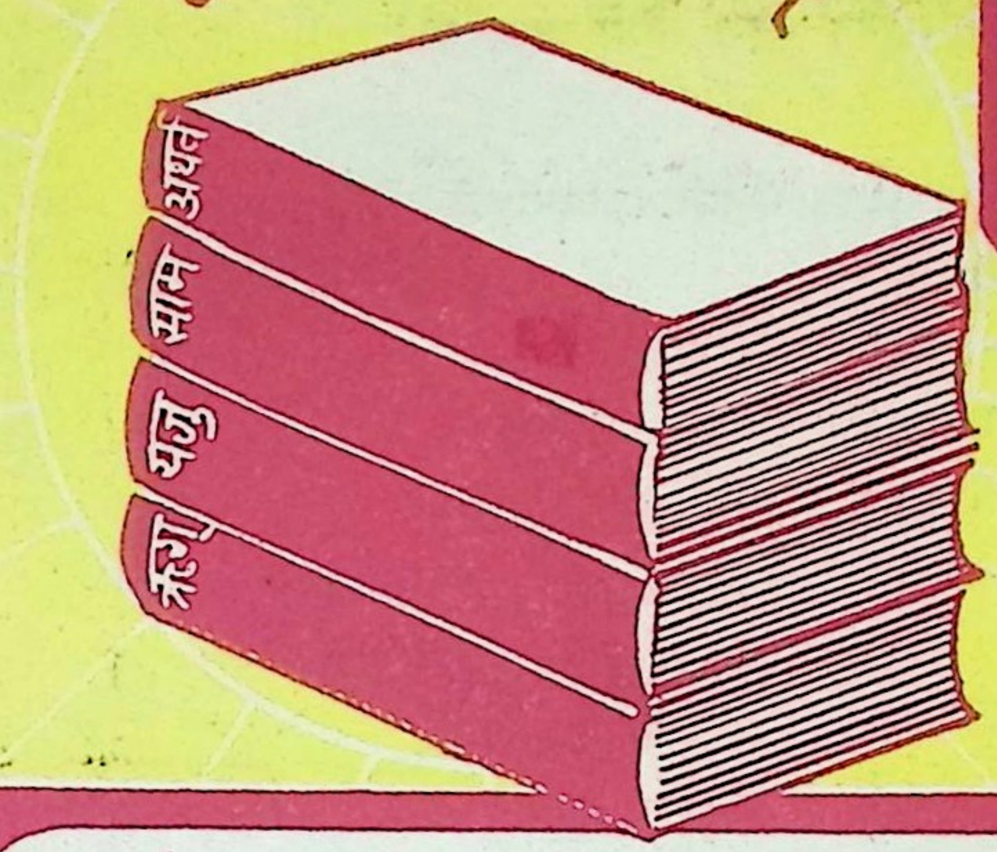

वेद प्रकाश

वर्ष ६ अंक ६ } पौष शक सं. १८७९, जनवरी १९५८, दयानन्दाब्द १३३ { वार्षिक २॥)
विदेशों से ५ शिलिंग
सम्पादक :—गोविन्दराम हासानन्द

ओ३म्

शान्ति प्रार्थना—

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥

[illegible]

अथ—(उरुचक्षा सूर्यः नः शम् उद्‌एतु) अत्यन्त तेजस्वी सूर्य अथवा विद्वान् हमारे लिये शांतिदायक होकर उदय को प्राप्त हो । (प्रदिशः चतस्रः नः शं भवन्तु) सब दिशाएं हमें सुख कर हों (ध्रुवयः पर्वताः शंनः) स्थिर पर्वत हमारे लिए कल्याणकारक हों (सिन्धवः आपः नः शं) समुद्र का जल शांति देने वाला हो ।

तेजस्वी सूर्य हमें सुखदायक हो, वह उदय होकर चारों दिशायें हमें सुखदायक करे व पहाड़ हमें स्थिरता से सुखदायक हों, समुद्र हमें सुखदायक हो और जल सुखदायक हो ।

सन १९५८ का कलैण्डर

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार सर्व श्री महात्मा आत्मानन्द जी, आनन्द स्वामी तथा आनन्द भिक्षु जी के चित्रों सहित पत्येक ग्राहक को बिना मूल्य भेजा जायगा।

वाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ,,	३॥)
सृष्टि का इतिहास	१॥)
उपनिषद आर्य मुनिभाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१॥)
प्रभु दर्शन ...	२॥)
तत्व ज्ञान ...	३)
आनन्द गायत्री कथा	॥)
एक ही रास्ता	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)॥
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१॥)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाए)	१॥)
सचित्र योगासन	१॥)
बहनों की बातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	२॥)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय संस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	॥)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३॥)
कर्तव्य दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
सन्ध्या हवन प्रदीपिका	॥)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	॥)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	॥)

प्रार्थना प्रदीप	॥)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
घर गृहस्थी	३॥)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द)	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमांसा	॥।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक	।=)
आत्म कथा ऋषि दयानन्द	।=)
आर्याभिविनय	॥)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	।=)
भ्रान्ति निवारण	।=)
भ्रमोच्छेदन	।)
हुगली शास्त्रार्थ	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
ईश्वर विचार	=)
जीवात्मा	=)
वेदों की आवश्यकता	-)
वेद किसपर प्रकट हुए	-)
बाल शिक्षा, धर्म शिक्षा	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	-)
पितृ श्राद्धविचार	-)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	-)
,, ,, लक्ष्य	-)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।-)

धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४॥×२२

सन्ध्या मंत्र	।-)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।-)
आर्य समाज के नियम	।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।-)
यम नियम व्याख्या सहित	।-)
संगठन सुक्त	।-)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	॥)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम	≡)
सामवेद का प्रथम	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मंचर, सत्यवद	≡)
मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५॥ मू०	-)॥

ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म आदि आदि।

महाभारतम् संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री उपाध्यक्ष दयानन्द वेदविद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य सजिल्द का ३) रु०

अकेला जाना होता है

[लेखक—पूज्यपाद वेदशास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज]

ओ३म् । यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्रयुनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान् स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ ऋ० १९।५६।१ ॥

हे ज्ञानिन् । (यमस्य) नियन्त्रणकर्त्ता न्यायकारी भगवान् के (लोकात्+अधि) लोक से प्रकाश से (आ+बभूबिथ तू समर्थ हुआ है, तू (धीरः) धीरे होकर (मर्त्यान्) मनुष्यों को, मरणधर्म्माओं को (प्रमदा) मस्ती से (प्र+युनक्षि) युक्त करता है । तू (विद्वान्) विद्वान् (असुरस्य) असुर=प्राणप्रद के (योनौ) ठिकाने में (स्वप्नम्+मिमानः) सपने लेता हुआ (सरथम् । रमणसाधनों=कृतकर्मों की वासनाओं के साथ (एकाकिना) अकेला ही (यासि) जाता है ।

इस मन्त्र में मार्मिक बातें कही गई हैं—

१. मनुष्य को बताया गया है तू कहां से आया है ? **यमस्य लोकादध्या बभूविथ**=तू तो न्यायकारी भगवान् के लोक से आया है । अर्थात् इस जन्म-मरण के प्रवाह में पड़ने से पूर्व तू ब्रह्मलोक=मुक्ति में था ।

२. **प्रमदा मर्त्यान् प्रयुनक्षि धीरः**=यदि तू धीर हो जाये तो मनुष्यों को आनन्द सम्पन्न कर सके ! अर्थात् मनुष्य का एक कार्य यह भी है कि वह दूसरों को सुखी करे । दूसरों को सुखी करने के लिए बहुत बड़ा धैर्य्य चाहिए । अधीर, चंचल, चपल मनुष्यों में दूसरों को शान्त करने का साहस कहां ?

३ मनुष्य का यह जीवन एक विशाल स्वप्न है । स्वप्न लेता लेता तू यहां से अकेला चला जायेगा । भले मनुष्य ! कुछ करेगा भी, अथवा केवल स्वप्न लेता रहेगा, कल्पनायें करता रहेगा । स्वप्न की दशा थका देती है, अतः इससे ऊपर उठ । स्वप्न हटने पर स्वप्नदृष्ट कोई भी पदार्थ दीखता नहीं । कार्य्य में परिणित न हुई कल्पना स्वप्न समान मिथ्या है ।

ये तेरी कल्पनायें यहीं रह जायेंगी, तू अकेला जायेगा, साथ होंगी तेरी वासनायें ।

एकाकिना सरथ यासि विद्वान्

मनु महाराज ने इसी का भाव लेकर कहा है—

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥४।२४०॥

प्राणी अकेला उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है । अकेला ही सत्कर्मों का फल भोगता है । और अकेला ही बुरे कर्मों का ।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवल ॥२ २४१॥

परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न कलत्र और न कोई सम्बन्धी सहायता दे सकते हैं । केवल धर्म्म साथ जाता है ।

वेद ने जिसे रथ=रमणसाधन कहा है, मनु ने उसे धर्म्म कहा है ।

सावधान ! मनुष्य ! सावधान । यह सब सामान यहीं धरा रह जायगा । (स्वाध्यायसन्दोह से)

किसने किया उद्धार (रे कह)

(रचयिता—गोपीचन्द शर्मा, कविस्थल, महेन्द्रगढ़)

किसने किया उद्धार ?—(रे, कह)
ब्रह्मचर्य-व्रत रत, हो कटिबद्ध,
प्रचार धूँआधार—(रे, कह)

जगती से जाती थी जाति,
घात में बैठे थे घाती
पर आया एक योगी करामाती
लिया उबार (रे, कह)

घाती सब घर को घुमोड़े
युक्तियों के मार कोड़े।
मुल्लावों के मुँह को तोड़े
पादरी बेजार—(रे, कह)

इञ्जील कुरान पुराण के तम
में, धंसे तज वेद अनुपम
उल्टी बहा दी गंगा एकदम
मोड़ करके धार—(रे कह)

कुतरे कान कुरान रो रही
बाईबिल बिल में घुसोड़ी
पुराण की खूँटी मरोड़ी
वेदों की गुंजार—(रे, कह)

काशी की कांपी थी काया
एक बवण्डर सा था आया
निराकार ईश्वर जब बताया
मूर्तिपूजा निस्सार—(रे, कह)

विधवाओं की आहें निकलती
भारत धरणी थी जलती
पुनर्विवाह प्रथा की चलती
किया शोक संहार—(रे, कह)

गार्गी कुन्ती की सन्तति
मूढ़ बन पिछड़ी ही रहती
पर वेद से सिद्ध कर जाति
स्त्री शिक्षा प्रसार—(रे, कह)

अन्तिम समय में जा दहाड़े
जोधपुर महाराज द्वारे
सिंह तुम शुनी के दुलारे ?
अमृत पिला विष प्यार (रे, कह)

आज उसके ही सिपाही
कैरों की कर रहे तबाही
हिन्दी की वन्शी बजाई
गुरुमुखी की ख्वार—(रे, कह)

हिन्दी-रक्षा-सत्याग्रह

(गाना)

(रच०—पं० ताराचन्द 'आर्योपदेशक')

————

है प्रजातन्त्र राज, देश में आज।
सुनो वीरो जो कर बर्बाद रहे हो॥

ईंग्लिस की जगह राष्ट्रभाषा हिन्दी बन कर आई।
बीस करोड़ मनुष्यों की मातृभाषा यह कहलाई॥
किया इसके संग में वैर, बन क्यों कर गैर।
सुनो वीरो गुरुमुखी लाद रहे हो॥१॥

पूर्ण भाषा हिन्दी है यह सब दुनिया बतलाती।
एक अक्षर में दो अक्षर से गुरुमुखी बोली जाती॥
आड़ा ऊड़ा ज्ञान, दो दो पहचान।
सुनो वीरो क्यों कर यह फिसाद रहे हो॥३॥

मजहबी भाषा है यह गुरुमुखी और प्रान्तीय भाषा।
हमें पढ़ा रहे हो जबरन करने क्या लगे तमाशा॥
ये हिन्दू और सिख एक, समझ कर देख।
सुनो वीरों भुला ऐतकाद रहे हो॥३॥

मातृभाषा हित गुरुओं ने लाखों कष्ट उठाये।
शीश कटे और दूधमुंहे बच्चे भीतों में चिनवाये॥
आज निज भाइयों के संग, करने को जंग।
सुनो वीरो यह कर सिंहनाद रहे हो॥४॥

हम चाहते हैं जिस भाषा को जो भी पढ़ना चाहें।
किसी के ऊपर जबरन भाषा कोई न लादी जाये॥
सरकार करे इन्साफ, समझ कर आप।
सुनो वीरो फैला उन्माद रहे हो॥५॥

जो हिन्दी को नष्ट करेगा यूं आंतक जमा कर।
आर्यवीर करेंगे रक्षा सिर की भेंट चढ़ा कर॥
यह आर्यों का ऐलान, 'शर्मा' का गान।
सुनो वीरो क्यों बन सैयाद रहे हो॥६॥

पंजाब का प्रश्न !

आन्दोलन के लिए उत्तरदायी कौन ?

भारत जब से स्वतन्त्र हुआ है विचारों की यहाँ उलटी गंगा चल रही है। काँग्रेस को निर्माण किया अधिकांश हिन्दुओं ने उसके ही प्रयत्न और बलिदानों से भारत स्वतन्त्र हुआ।

स्वतन्त्र होने पर कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई, सत्तारूढ़ होते ही प्रचार कार्य आरम्भ हुआ कि, जेल गये कांग्रेसी, सत्ता भोगे दूसरे ! यह नहीं होगा। यद्यपि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का विचार था कि कांग्रेस का उद्देश्य अंग्रेजों को निकाल कर स्वराज्य प्राप्त करना था, वह उद्देश्य पूरा हुआ, अब कांग्रेस को तोड़ देना चाहिये देशके अच्छे विचारों वाले व्यक्ति एकत्रित होकर विधान बनावें तथा राज्यभार संभालें।

महात्मा गांधी के इस आदेश को पं० जवाहर लाल नेहरू मानते तो देश में आज जितनी पार्टियें बनी है वह सब समाप्त हो जाती केवल कांग्रेस में से ही, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, किसान पार्टी न जाने कितनी पार्टीयें थोड़े थोड़े से मतभेद के कारण बनगई, हिन्दू विचारों में से भी जनसंघ आदि पार्टियें निकली, देश में एक संघ व एक विचारधारा नहीं रही अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग रहा, नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस में से अच्छे अच्छे नेता पृथक हुए।

अवसर वादी और स्वार्थी खुशामद प्रिय लोग कांग्रेस में रह गये, नतीजा भ्रष्टाचार बढ़ा। रिश्वत, घूस खोरी के बल पर कांग्रेसी वोट प्राप्त करके सत्तारूढ़ बनते आरहे हैं हिन्दुओं के विचार कांग्रेस की अभारतीय नीति से खिन्न हो गई है, अब तो कांग्रेस अहिन्दू तत्वों के वोटों से सत्तारूढ़ है !

पंजाब की वर्तमान भाषा समस्या को लेकर सत्याग्रह तथा आन्दोलन आज ७ मास से चल रहा है, जिसमें करीब ३० हजार व्यक्ति सत्याग्रह कर चुके हैं तथा करीब ८ हजार व्यक्ति जेलों में बन्द हैं करीब ३००० व्यक्ति कांग्रेसी विचारों के हैं तथा अनेक कांग्रेसी अधिकारी जिन्होंने पंजाब में सब तरह का कष्ट सहकर कांग्रेस को निर्माण करने का श्रेय प्राप्त है उन्हें भी विचार भेद के कारण नजर बन्द कर दिया है और कर रहे हैं।

देश के साथ द्रोह करने वाले मुस्लिम लीगी भरपूर प्रयत्न करने पर भी राष्ट्रवादी न हो सके अन्त मेंउसी के कारण राष्ट्रपिता का बलिदान हुआ फिर भी मुस्लिमलीगियों का देश के साथ विद्रोह बना ही रहा।

पंजाब में सिख सम्प्रदाय वाले जिन्होंने किसी समय अपने बलिदानों से हिन्दू धर्म, जातिऔर देश की रक्षा की, उनमें से कुछ स्वार्थी व्यक्यिों ने साम्प्रदायिकता का विष फैला कर अपने को हिन्दुओं से अलग होकर "सिक्खस्थान" का स्वप्न देखना आरम्भ किया।

पाकिस्तान के साथ साथ सिक्खस्थान प्राप्त करने का आज से १५ वर्ष पूर्व से ही सिख प्रयत्नशील रहे। यह प्रयत्न सिक्खों में से ही "अकाली" दल बना और देश के नेताओं तथा हिन्दू प्रजा को डराने धमकाने लगे, प्रथम तो देश के नेता लोह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल अकाली नेता मास्टर ताराचन्द की चालों को भांप गये, उन्हें सुना और समझाया ये नहीं समझे उन्हें पकड़ कर कारागार में बन्द किया सरदार जी के जीवित रहते अकालियों की आवाज बन्द रही उनके मरने पर, प्रधान मंत्री जवाहरलाल जी ने मास्टर ताराचन्द को कारागार से मुक्त किया।

मास्टर ताराचन्द जी मुक्त होते ही फिर अपना पंजाबी सूबा बनाम सिखस्थान प्राप्त करने का आन्दोलन आरम्भ किया, सिक्खों के दलों को इकट्ठा करते रहे, देहातों के रहने वाले अपढ़ नासमझ जाहिल लोग उनके झण्डे के नीचे एकत्र होते रहे।

अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर अकाली दल का अधिवेशन रखा, लाखों की तादात में सिक्ख किरपाण और तलवारों के प्रदर्शन के साथ नगर में जुलूस निकाल कर कांग्रेसियों को आंतकित निकले किया। कांग्रेस असफल न रहे इस कारण कांग्रेस उच्चसता अधिकारियोंने मास्टर तारासिंह को आश्वासन दिया कि आपकी माँगों पर सहानुभूति पूर्ण विचार किया जायेगा। आप शान्त रहें। वे शान्त हो गये। येनकेन प्रकरेण कांग्रेस अधिवेशन समाप्त हुआ।

दूसरी तरफ हिन्दुओं के (जो पंजाब में सिक्खों से बहुत अधिक प्रायः ७० प्रतिशत संख्या में हैं) महा पंजाब के आन्दोलन को सुना अनसुना करके तथा राज्य पुनर्गठन आयोग की सम्मतियों पर कुछ भी ध्यान न देकर (जिसे स्वयं सरकार ने ही संगठित कर रिपोर्ट देने की व्यवस्था की थी जिस में कई विचारवान न्यायाधीश भी थे उन्होंने सर्वथा योग्य व्यवस्था दी थी उसे भी ठुकरा कर) सिक्खों को संतुष्ट करने की ठानी।

देहली में कांग्रेस के उच्चाधिकारियों के समक्ष अकाली नेताओं को बुलाकर जो एक तरफी समझौता किया, उसीका यह परिणाम है जो हिन्दू जनता पंजाब में भुगत रही है।

अकाली नेताओं के साथ साथ यदि हिन्दु नेताओं को भी उस समझौते के समय बुला कर दोनों की सुन कर समझौता करते कराते तो यह अशान्ति जो आज पजाब में है नहीं फैलती, कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दुओं को मुर्दा असंगठित समझ रखा था इस लिये केवल सिक्खों को ही संतुष्ट कर दिया गया।

और राजनैतिक दृष्टिकोण को छोड़ देने पर भी, शिक्षा के क्षेत्र में जो समझौता हुआ उससे राष्ट्र भाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि का घोर अपमान हुआ है। जिसे आर्य समाज अपनी संस्कृति का घोर अपमान समझ रहा है, जिसने अपने जन्म काल से ही पंजाब में हिन्दी का प्रचार किया उस पर इस समझौते से सिक्खों ने नाराजी प्रदर्शित की।

मंत्री, गृहमन्त्री सबके दरवाजे खटखटाए, कोई सुनने को तैयार नहीं। अन्त में, पंजाब के मुख्य मंत्री स० प्रतापसिंह कैरों के समक्ष सदभावना मिशन लेकर आर्य समाज ५ प्रमुख सन्यासी नेता चन्ढ़ीगढ़ गये, उनके समक्ष निम्न न्यायोचित सात मांगे प्रस्तुत की उस पर कोई ध्यान नहीं दिया, धरना दिया उनका अपमान किया गया। बाद इसके सत्याग्रह के रूप में जिसे भारत के प्रधान मंत्री ने शीत युद्ध का नाम दिया है आरंभ कर दी गई। उसका परिणाम सब के समक्ष है युद्धजारी है जारी रहेगा जब तक आर्य समाज की न्यायोचित निम्न सात मांगे स्वीकार नहीं की जाती। परमात्मा एक तरफी समझौता करने वाली दोनों पार्टियों (अकाली और कांग्रेस) को सदबुद्धि प्रदान करे यही प्रार्थना है।

—गोविन्दराम हासानन्द

आर्य समाज की सात मांगें

१—सम्पूर्ण नए पंजाब राज्य में एक ही भाषा योजना लागू होनी चाहिये।

२—शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम का चुनाव पूरी तरह माता पिता की इच्छा पर छोड़ देना चाहिये।

३—किसी भी विशेष स्तर पर दोनों भाषाओं में से किसी भी एक भाषा का द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाना अनिवार्य नहीं होना चाहिए।

४—शासन के प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का स्थान हिन्दी को दिया जाना चाहिये।

५—जिले के स्तर या उससे नीचे की सरकार की सब सूचनाएं और निर्देशदोनों भाषाओं में होने चाहिये।

६—किसी भी भाषा में प्रार्थना पत्र देने की आज्ञा होनी चाहिये। इनके उत्तर भी उसी भाषा में होने चाहिये।

७—जिले स्तर तथा उसके नीचे के सरकारी कागजात दोनों लिपियों में होने चाहिये।

नया मोड़ : जीवन की पुकार

संसार की समस्याओं की ओर से यदि हम थोड़ी देर के लिए आंख मूंदना भी चाहें तो भी अपने घर भारत में लगी आग की लपटों से हम बच सकें, यह तो किसी भी अवस्था में संभव रहा नहीं। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के १० वर्ष बीत जाने के बाद भी हमें उन्हीं विषाक्त बेलों को सहारा देने में लगे हैं जिनके फलों ने हमारे देश का अंग भंग किया था।

कौन नहीं जानता कि आज सारा पंजाब एक भयंकर ज्वाला में जल रहा है। हमारी सैक्यूलर कही जाने वाली सरकार के महान प्रधार मंत्री नेहरू अपनी हठधर्मी और दब्बू नीति के कारण मास्टर तारासिंह के संतुष्टीकरण के लिए पंजाब के १ करोड़ २२ लाख हिन्दुओं की बलि देने को तत्पर हैं। यह सब क्या है, क्यों है, कौन समझे, कैसे समझे, कुछ समझ नहीं आता?

हमारे देश का यह अत्यन्त दुर्भाग्य है कि हमारे राष्ट्रनायक इतिहास से शिक्षा लेने के स्थान पर पुरानी ऐतिहासिक भूलों को दुहराने के लिए सदा तत्पर रहते हैं मि० जिन्ना के साथ के रवैये ने जो परिणाम निकाले, क्या उनसे कुछ भी शिक्षा पं० नेहरू ने ग्रहण की? क्या मास्टर तारासिंह जैसे कट्टर साम्प्रदायिक और अकालियों जैसे देशद्रोही वर्ग के आगे घुटने टेकना भारत की राष्ट्रीयता का, गौरव का अपमान नहीं है?

किन्तु इन प्रश्नों पर विचार करने की उन्हें क्या आवश्यकता है? वे राज्य मद में अंधे हो चुके हैं। किन्तु राष्ट्र के जीवन-मरण के प्रश्न पर आर्य समाज कैसे मौन रह सकता था—उसने पंजाब में सत्य, न्याय और संविधान की रक्षा के लिए सर्वस्व की बाजी लगा दी है। और आज सात माह से पंजाब में धर्मयुद्ध चल रहा है।

एक ओर साम्प्रदायिकता, दानवता अपने निर्मम हथियारों से सज्जित होकर खड़ी है, सत्य को न्याय को और मानवता को मिटाने किन्तु, क्या कभी अन्याय ने न्याय पर विजय पायी है? इतिहास साक्षी है कि नहीं। और अब इतिहास की परम्परा टूट जाए यह संभव नहीं।

इसलिए हमारा कहना है कि हम जीवन के मोड़ पर खड़े हैं। एक ऐसा युद्ध आर्य समाज आज लड़ रहा है जो न केवल पंजाब का अपितु सारे भारत का भाग्य निर्णय करेगा! पं० नेहरू ने आज उन समस्त शक्तियों को चुनौती दी है जो सम्प्रदायवाद की समाप्ति चाहती है। इसलिए भारत के प्रत्येक नागरिक को यह निर्णय करना है कि वह भावी भारत का निर्माण साम्प्रदायिकता, देशद्रोहिता के ऊपर करना चाहता है या राष्ट्रीयता के? जो राष्ट्रीयता को संविधान को श्रेय देकर साम्प्रदायिकताओं को समाप्त करना चाहें उन्हें हमारा निमंत्रण है कि वे इस धर्म युद्ध में चूकें नहीं, जीवन और मरण के इस प्रश्न पर सब कुछ जो भी वे कर सकते हों, वे करें।

क्या शहीद वीर सुमेरसिंह के ऊपर पड़ी हुयी एक-एक चोट हमें साम्प्रदायिकता की समाप्ति का संकल्प लेने की प्रेरणा नहीं कर सकती?

क्या हम भी पं० नेहरू की भांति अकालियों की नंगी तलवारों के आगे सत्य की बलि होते देख मौन रह सकते हैं? नहीं कदापि नहीं। यह जीवन की पुकार है, जलते पंजाब की भारत के भावी निर्माण की पुकार है...... यह पुकार बहरे कानों से न टकराए यह हमारी चाह है।

संप्रति पंजाब सरकार ने केन्द्र के इशारे पर सत्याग्रहियों को रिहा किया है और हिन्दी रक्षा समिति ने भी कुछ काल के लिये सत्याग्रह स्थगित किया है। इस पर हम केवल यह कहना चाहते हैं एक यह स्थगन शुभ हो, किन्तु भय है कि कहीं हम विरोधी की चालों के चंगुल में न फंस जाएं? और सारे बलिदान और लाखों रुपया व्यर्थ ही न हो जाए?

सत्याग्रह स्थगित

सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति दिल्ली के माननीय प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त का वक्तव्य जो उन्होंने दिनांक २७-१२-५७ को प्रेस को प्रसारित किया निम्न प्रकार है।

“कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाई और भारत सरकार के गृह मन्त्री श्रीयुत पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त के साथ मेरा जो वार्तालाप हुआ उससे और सरकार द्वारा हमारे सत्याग्रहियों की बिना शर्त आम रिहाई के जारी रहने से मुझ पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि इन सबके पीछे सद्भावना काम कर रही है जैसा कि सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति की २२-१२-५७ की बैठक के प्रस्ताव का अभिप्राय था इसी भावना के अनुसार आर्य समाज सद्भावना का प्रत्युत्तर सद्भावना के द्वारा ही देने में पीछे नहीं रह सकता अतः उस अधिकार के अनुसार जो सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति ने मुझे दिया है मैं पंजाब के भाषा विषयक आन्दोलन से सम्बन्ध सत्याग्रह को स्थगित करता हूँ। मुझे विश्वास है कि इसके पश्चात् सद्भावना और हृदय परिवर्तन का वातावरण व्याप्त होकर सब बातों का अन्तिम समाधान हो जायेगा। मुझे आशा और विश्वास है कि हम सब शान्ति और सद्भावना का युग लाने की स्थिति में हो जायेंगे और सबके सम्मिलित प्रयत्नों से हृदयों की उस एकता का प्रादुर्भाव होगा जो न केवल सीमावर्ती पंजाब प्रान्त की अपितु समस्त भारत की शक्ति का स्रोत सिद्ध होगी।

मैं आर्य जगत् की ओर से उन सबका धन्यवाद देता हुआ जिन्होंने हमारा साथ दिया या हमें सहयोग और सहायता प्रदान की उनके प्रति कृतज्ञता का प्रकाश करता हूँ मुझे पूर्ण आशा है कि आर्य समाज को आगे भी उसके समस्त न्याय पूर्ण प्रयत्नों, गतिविधियों और आन्दोलनों में उनका सद्भाव एवं पूर्ण सहयोग प्राप्त रहेगा।

आर्य जगत् से मैं अपील करूँगा कि आर्यजन अपनी उच्च और गौरवपूर्ण परम्पराओं का अनुसरण करते हुए दृढ़ और संगठित रहें। इसके बिना कोई भी संगठन चिरकाल पर्यन्त सच्चे अर्थ में महान् नहीं रह सकता। हमें शक्तिशाली और दृढ़ बने रहना है। परन्तु इन सब में हमें परम पिता परमात्मा के प्रति निष्ठा से उत्पन्न होने वाली विनम्रता का परिचय देते रहना चाहिये। एक मात्र इसी मार्ग का अवलम्बन करने से हम अपनी संस्कृति, परम्परा और धर्म की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों को मानव जाति की सेवा में अर्पित कर सके हैं और आगे भी करते रहेंगे।”

घनश्यामसिंह गुप्त

मुरारी ब्रदर्स कमला नगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

वेदप्रकाश का अगला अंक शिवरात्री के उपलक्ष में उपासना अंक के रूप में पाठकों को मिलेगा। यह अंक विशेष सज धज के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। प्रचारार्थ अधिक से अधिक संख्या में मंगावें। आदेश १५ ता० से पहले आ जाने चाहिए। ऐसा न हो कि बाद में निराश होना पड़े। १० प्रति १॥।) में, २५ प्रति ३॥।=), ५० प्रति ७) में तथा १०० प्रति १२॥) में दी जावेंगीं। मूल्य अग्रिम आने पर डाक खर्च हम देंगे।

हिन्दी रक्षा आन्दोलन क्यों चलाना पड़ा ?

७ माह हिन्दी आन्दोलन चला, वह क्यों चलाना पड़ा आर्य समाज क्या चाहता था और पंजाब सरकार ने क्या किया यह सब जानने के लिये लेख पढ़ें।

१—अपने को असाम्प्रदायिक कहने वाली पंजाब की कांग्रेस सरकार ने, प्रसिद्ध एवं पुराने कट्टर साम्प्रदायिक नेता मास्टर तारासिंह की हठ-धर्मी, एवं राष्ट्र घातक विषाक्त दूषित नीति के आगे घुटने टेक कर पंजाब को साम्प्रदायिक विद्वेष की भट्टी में झोंक दिया। बर्बर अकालियों के प्रदर्शनों से भयभीत हो कर एवं अपनी गलतियों की रक्षा के लिये साम्प्रदायिकता की विष बेल को भारत की पुण्य भूमि पर फैलाने का अपने हाथों अवसर प्रदान किया।

किन्तु सम्प्रदायिकता का कट्टर विरोधी राष्ट्रीय भावनाओं का सच्चा पोषक आय समाज भारत के किसी भी भाग में साम्प्रदायिकता के विष को फैलने देने को तैयार नहीं। वह नहीं चाहता कि जिस जहर ने भारत-मां के टुकड़े कराकर पाकिस्तान को जन्म दिया, उसी जहर को फिर भारत में अपना प्रभाव प्रसारित करने का अवसर मिले! अतः पंजाब सरकार द्वारा घोषित अकाली साम्प्रदायिकता से देश की रक्षा की पवित्र भावना से प्रेरित होकर पंजाब में हिन्दी रक्षा आन्दोलन चलाया जा रहा था!

२—भारतीय संविधान ने प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्रदान किया है कि वे अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा दिला सकें। किन्तु पंजाब सरकार ने संविधान द्वारा इस मौलिक अधिकार को पंजाब के हिन्दू से छीन लिया। आप के बच्चे हिन्दी नहीं पढ़ सकते। उन्हें गुरुमुखी पढ़नी ही पड़ेगी। यह है पंजाब सरकार का आदेश! परिणाम स्वरूप आप के बच्चे गीता, रामायण, पुराण वेद और आपके धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने से वंचित रह जायेगें। जिस भाषा को सिक्खों के सारे गुरुओं ने पोषित किया। जिस भाषा ने भारत की जनता को जीवन का पाठ पढ़ाया, जिस भाषा का इतिहास भारत की स्वतंत्रता का इतिहास है। उस भारत की राष्ट्र भाषा को, हिन्दुओं की धर्म भाषा को पंजाब के हिन्दू नहीं पढ़ सकते! उन्हें विज्ञान, व्याकरण विकृत भाषा गुरुमुखी पढ़नी ही पड़ेगी यह है साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम।

अतः पंजाब सरकार की इस अवैधानिक, अनैतिक और अराष्ट्रीय आज्ञा का प्रतिरोध करते हुए, आर्य समाज चाहता है कि प्रत्येक माता पिता को यह अधिकार प्राप्त हो कि वह स्वेच्छया अपने बालक को अपनी मातृभाषा में शिक्षा दिला सके। आर्य समाज की यह मांग संविधान द्वारा पोषित है। और पंजाव के हिन्दू के इस जीवन मरण के प्रश्न पर वह सर्वस्व की बाजी लगा चुका है। आर्य समाज किसी भी मूल्य पर, इस प्रश्न पर झुकने के लिए तैयार नहीं। वह यह सहन नहीं कर सकता कि हमारी संस्कृति और धर्म की भाषा के पढ़ने पर पाबन्दी लगायी जाय और वह कायरों की भांति मौन बैठा रहे। अतः संविधान द्वारा प्राप्त अपने मौलिक अधिकार की रक्षा आन्दोलन चलाया जा रहा था।

३—भारतीय संसद ने सर्वसम्मति से हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा घोषित किया है। अतः राष्ट्र भाषा होने के नाते प्रत्येक भारतीय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह भारत के किसी भी भाग में राजकीय कार्यों में हिन्दी का प्रयोग कर सके। किन्तु पंजाब सरकार ने मास्टर तारासिंह की धमकियों से डर कर भारत की राष्ट्र भाषा को पंजाब में बंदी बना दिया है। आप पंजाब में हिन्दी का प्रयोग नहीं कर सकते ! अपने इस कृत्य द्वारा पंजाब सरकार ने सर्वोच्च सत्ता संसद के निर्णय को ठुकराया, राष्ट्र भाषा का अपमान कर राष्ट्र द्रोह का जघन्य तम भीषण अपराध किया है। प्रजातंत्र के इस युग में प्रजा के सर्व सम्पन्न निर्णय को ठुकराने का साहस पंजाब सरकार ने किया किन्तु यह भूल कर कि भारत की जनता अब जाग उठी है। वह अपनी राष्ट्र भाषा का अपमान किसी भी मूल्य पर नहीं सहेगी ! अतः आर्य समाज की यह मांग है कि राज्य के प्रत्येक भाग में हिन्दी के प्रयोग की स्वतंत्रता होनी चाहिए ! इस प्रकार भारतीय संसद के निर्णय को मूर्त रूप देने, राष्ट्र भाषा हिन्दी को पंजाब सरकार के बन्दी गृह से मुक्त करा उस के गौरवपूर्ण पद प्रतिष्ठित कराने का लक्ष्य लेकर पंजाब में हिन्दी आन्दोलन चलाया जा रहा था।

४—मास्टर तारासिंह और उनके अकाली दल को प्रसन्न करने की भावना से और अपनी गद्दियों को बनाये रखने के लिए, भाषा के आधार पर पंजाब को हिन्दी क्षेत्र और पंजाबी क्षेत्र के नाम से बांट दिया गया है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना पर करारी चोट की गयी है। आर्य समाज की मांग है कि संपूर्ण नए पंजाब में एक ही भाषा योजना लागू की जाए। बंटवारे की, अलगाव की भावना को सहारा देना आर्य समाज राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से अत्यन्त घातक समझता था।

इसलिये किसी भी मूल्य पर साम्प्रदायिकता के आगे घुटने टेक कर पंजाब को विभाजित न होने देने की भावना से हिन्दी रक्षा आन्दोल चलाया जा रहा है।

इस प्रकार, संविधान की, राष्ट्र भाषा एवं राष्ट्रीय एकता की रक्षा के पवित्र उद्देश्य को सामने रखते हुए आर्य समाज ने हिन्दी रक्षा आन्दोलन, सद्भावना यात्रा द्वारा परम पूज्य वयोवृद्ध स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के नेतृत्व में आरम्भ किया। किन्तु पंजाब सरकार ने राज्य मद में अंधे होकर सद्भावना को ठोकरों से ठुकरा दिया।

पंजाब सरकार पं० नेहरू के इशारे पर देशद्रोही अकालियों को प्रसन्न रखने के लिये देशभक्त जनता को कुचलने का, मिटाने का संकल्प लेकर दमन में लगी हुयी है। बर्बरता का नंगा नाच वह फिरोजपुर जेल में नाच चुकी। जुल्म के सब हथियार वह बहु अकबरपुर (रोहतक) में प्रयोग कर चुकी। बदनाम करने के प्रत्येक घृणित शब्द वह कह चुकी ! किन्तु सत्य, न्याय एवं राष्ट्रीयता से प्रेरणा प्राप्त हिन्दी रक्षा आन्दोलन निरंतर बल पकड़ता गया। भारत के प्रत्येक भाग से सहस्त्रों वीरों ने इस यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने का संकल्प लेकर प्रयाण किया।

साम्प्रदायिकता ने भारत की राष्ट्रीयता को ललकारा था। सत्य, न्याय को असत्य अन्याय ने चुनौती दी है। पाप ने पुण्य को मिटाने की ठानी। पंजाब सरकार हिंसा के बल से आज गाँधी के मार्ग को भारत की परम्परा को, सभ्यता और संस्कृति को मिटाना चाहती थी किन्तु क्या यह हो सका ? इसका उत्तर तो भविष्य देगा।

* * *

शुभ सूचना

वेद प्रकाश के पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि "आर्य" तथा "आर्य मित्र" साप्ताहिक के यशस्वी सम्पादक श्री भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने वेद प्रकाश को अपना सहयोग देना स्वीकार कर लिया है। इस अंक को देखने से ही आपको उनके सम्पादक का आभास मिलेगा। अगले अंक से वे अपना पूरा सहयोग देंगे।

कथा कहानी

आदर्श-पुरुष

लेखिका—सुश्री शान्ताबहिन रांची (स्नातिका कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा)

कौन ऐसा होगा जिसने (इन्दौर के) आर्य नगर का नाम न सुना हो? दस वर्ष पूर्व उसकी स्थापना श्री बालकृष्ण जी गोयनका ने की थी। मारवाड़ी प्रायः मूर्तिपूजक होते हैं। गोयनका जी भी मूर्तिपूजक ही हैं, पर दोनों की मूर्तियों में बहुत अन्तर है।

पहले वर्ग के मारवाड़ियों की मूर्ति पाषाण की या सोने-चांदी की होती हैं जिन्हें किसी के सुख-दुःख से कोई वास्ता नहीं होता। मन्दिर में आकर कोई क्षुधातुर व्यक्ति अपना दम तोड़ दे तो भी उन्हें किसी प्रकार असर नहीं होता। भूल से कोई हरिजन उनके दर्शन कर ले तो उसे पवित्र करना तो दूर रहा वे स्वयं अपवित्र हो जाती हैं। अब गोयनका जी का मन्दिर देखिये, उसमें कोई मूर्ति नहीं है। उपासना के लिये आने वाला व्यक्ति ही भगवान हैं। वे ऐसे भगवान की सेवा में ही आनन्द अनुभव करते हैं।

सेठ गोयनका जी धनी मानी सज्जन हैं। उज्जैन में उनकी कपड़े की दो मिल हैं। वे एक नई मील इन्दौर में तोपखाने के पास विशाल जमीन लेकर बनवा रहे हैं। एक दिन एक आर्य प्रचारक उनसे आर्थिक सहायता लेने आये। उन्होंने आर्य साहित्य की बहुत सी पुस्तकें उन्हें उपहार में दीं। सेठ जी ने १०१) रु० देकर उन्हें विदा किया। पुस्तकें उनकी मेज पर पड़ी हुई थी। जब कभी उन्हें अवकाश मिलता, वे उनमें से एक पुस्तक ले कर पढ़ने लगते दूसरे दिन अन्य पुस्तक उठा लेते। इसी प्रकार बहुत दिनों तक यह क्रम चलता रहा। धीरे-धीरे उन पुस्तकों को आद्योपान्त पढ़ने की उत्कण्ठा पैदा हो गई।

उन्हें आर्य सिद्धान्त बड़े रुचिकर प्रतीत हुए। वे सोचने लगे कि ऐसे सुन्दर सिद्धान्त पुस्तकों तक ही सीमित क्यों हैं? विशाल जन समूह के हृदयों में उन्होंने स्थान क्यों नहीं पाया? प्रचार करने से गलत बातों को भी लोग सच मान कर स्वीकार कर लेते हैं। प्रचारक अपने सिद्धान्तों के प्रति प्रमाणिक हों तो अवश्य ऐसे सुन्दर सिद्धान्त जन साधारण को अपनी ओर आकर्षित कर लें यदि वे ही इन सिद्धान्तों को नहीं अपना सके तो लाख प्रयत्न करने पर भी वे आर्य धर्म को फैला नहीं सकेंगे।

ईसाई धर्म का प्रचार कैसे हो रहा है। क्या ऐसे प्रचारक आर्य धर्मावलम्बियों को नहीं मिले? उन आर्य प्रचारकों ने चाहे जो भी मार्ग अपनाया हो पर मैं नये तरीके से इन सिद्धान्तों को फैलाने की कोशिश करूँगा। मैं देखता हूँ कि मुझे इसमें कहां तक सफलता मिलती है।

उनकी नई मिल की इमारत पूरी होने आयी थी। उन्होंने समाचार पत्रों में ऐसा विज्ञापन छपाया—"इन्दौर की आर्य फैक्टरी के लिये कारीगरों की जरूरत है। इसमें हरिजनों, समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों तथा पुनः अपना धर्म अपना लेने वाले लोगों को लिया जायेगा। जो गरीब हों, उपेक्षित हों, बेकार हों, उन सबका यहाँ स्वागत होगा।" यह विज्ञापन पढ़ते ही लोगों में आश्चर्य और कौतूहल की भावना फैल गई। सेठ जी के सामने प्रार्थना पत्रों का ढेर बन गया। वे अपने मैनेजर से सब चिट्ठियां सुनते और योग्य लोगों को बुलाने के लिए उससे पत्र लिखवा देते। कुछ उच्च पदों के सिवा उन्हें पूरे कारीगर मिल गये। और उन्होंने एक हरिजनबाला से अपनी मिल का उद्घाटन करवा लिया।

आर्य फैक्टरी के आस पास की सारी जमीन को आर्य नगर से सम्बोधित किया जाने लगा। फैक्टरी के पास मजदूरों के लिए घर बने हुए थे। एक ओर उनके बच्चों की शिक्षा देने के लिए उन्होंने पाठशाला बनवा दी थी। अध्यापकों का चुनाव बड़ी सतर्कता से किया गया था। उन्हें बच्चों में संस्कार डालने की प्रबल आकांक्षा थी अतः अध्यापकों की योग्यता पर विशेष ध्यान दिया गया था। संस्कार के के लिये खर्च करने में उन्हें आपत्ति न थी। बच्चों के खेल-कूद के लिये थोड़ी जमीन अलग रख दी गई थी। उसी के पास प्रार्थना के लिये एक विशाल भव्य अग्र भाग में निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हुई थीं।

शुद्ध तन हो, शुद्ध मन हों, शुद्ध सारे वस्त्र हों,
एकाग्र हो चिन्तन करो, क्यों न ईश समक्ष हों।
मानव हैं हम, नेह से मिल जुल कर रहेंगे हम,
सबको सुखी बनाने में कष्ट तक सहेंगे हम।
आओ मानव, स्वागत है मन्दिर में तुम्हारा,
कृष्ण-श्वेत, रंक-भूप का भेद न मुझको प्यारा।

इस भव्य भवन का नाम 'मानव मन्दिर' रखा गया। क्योंकि गोयनका जी को गरीबों में ही भगवान के दर्शन होते थे। उपासना के लिए आने वाला व्यक्ति ही परमात्मा का रूप है, ऐसा उनका विश्वास उसमें सभी मनुष्यों को आने की स्वतन्त्रता थी। धर्म का भेद, जाति भेद अथवा वर्ण भेद मन्दिर प्रवेश में बाधक नहीं बनता था। एक उच्च कोटि के विद्वान को उसकी व्यवस्था सौंप दी गई थी। वे किसी धर्म की निन्दा न करके मधुर शब्दों में धर्म की तुलनात्मक समीक्षा कर दिया करते। कभी-कभी लोग प्रश्न करके शंका समाधान भी कर लेते। जब जनता उस मन्दिर से लौटती तब उनके मुस्कराते चेहरों को देखकर सहज ही अनुमान हो जाता है कि ये आत्मा को तृप्त करके जा रहे हैं। सेठ जी उसी मन्दिर में उपासना के लिये आते थे। उन्होंने अपने बंगले में पूजा घर नहीं बनवाया था।

कभी-कभी वे स्कूल में चले जाते। बच्चों से बातचीत करते, कोई छोटी कहानी सुना देते। उनकी तकलीफों के विषय में पूछते और उनके कष्टों को जल्दी दूर करने का वायदा भी कर जाते। बीमारी के कारण कभी किसी मजदूर को ज्यादा खर्च हो जाता और कर्ज से वह परेशान हो जाता तो वह निःसंकोच होकर सेठ जी के पास चला जाता, उनसे अपनी तकलीफ कहता, जब वह वहाँ से लौटता तो उसके प्रसन्न मुख से पता लग जाता कि जरूर उसे आर्थिक सहायता मिली है। फैक्टरी के मजदूरों ने मालिक के रूप में अपने पति को ही पाया था। ऐसा सब महसूस कर रहे थे।

सेठ जी ने निश्चय कर लिया था कि जिन मजदूरों के बच्चे पढ़ने में होशियार होंगे उन्हें वे अपने खर्चे से उच्च शिक्षा के लिए अन्यत्र भेज देगें। वहाँ जिन्हें असाधारण सफलता प्राप्त होगी उन्हें विदेश भेजने की व्यवस्था भी उन्होंने की थी। जिससे रिक्त स्थान की पूर्ति उन्हीं लोगों से हो जावे। वे इस फैक्टरी में उच्च कुलीन व्यक्तियों को रखना नहीं चाहते थे। उनका ध्येय था जो अछूत हैं, तिरस्कृत हैं और समाज से बहिष्कृत हैं वही मेरे हैं। मेरी सहानुभूति के पात्र हैं। इस सिद्धान्त का पालन उन्होंने अक्षरशः कर दिखाया।

कुछ ही दिनों में सेठ जी की प्रसिद्धि भारत भर में फैल गई। विदेशों से भी अनेक महानुभाव उनकी फैक्टरी का निरीक्षण करने आने लगे। भारत के कई प्रान्तों के लोग इस अभूतपूर्व प्रयोग को अपनी आंखों से देखने की उत्सुकता रोक न सकते और इन्दौर चले आते। कोई अमीर आदमी गरीबों का इतना हितैषी हो सकता है यह बात उनकी कल्पना से परे थी। पर जब वे आर्य नगर का निरीक्षण कर लेते तो दोनों तले उंगली दबाये बिना न रहते। उन में से कोई कहता—हो न हो यह मनुष्य के रूप में भगवान का अवतार है। कोई कहता दयानन्द के आदर्शों का प्रचार ऐसे निःस्पृह व्यक्ति ही कर सकते हैं। महर्षि का प्रयत्न कभी विफल नहीं हो सकता। किसी के मुख से यह वचन सुने जाते—''यदि हिन्दू जाति को आगे बढ़ना है, उन्नत होना है, कृण्वन्तो विश्वमार्यम वाक्य को सार्थक कर दिखाना है तो उसे एक नहीं पर अनेक गोयनका जैसे आदर्श व्यक्तियों की जरूरत है। संकुचित होती हुइ हिन्दू जाति का यही जीवन मन्त्र है।''

विश्व एकता के लिए

संस्कृत भाषा का अध्ययन आवश्यक

(श्री पाद् पं० दामोदर जी सातवलेकर)

दासता की जंजीरों से मुक्त होने के बाद "भारत" एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहां से वह कहां और किधर का मार्ग खोज रहा है। धरती का मानव आज उसकी ओर आकुल नयनों से शांति की आशा से निहार रहा है। विद्वान लेखक ने उसे बढ़ने को एक प्रेरणा दी है, काश, कि हम इन भावनाओं का मूल्यांकन कर सकते ?

—सम्पादक

हमारे वेद विश्व में माननीय ग्रंथ हैं। यह वेद-विद्या ईश्वरीय ज्ञान है, ऐसा हमारा गर्व है। पर क्या वेद-विद्या में हम आज प्रवीण हैं ? वेद-विद्या में जर्मन लोग गत २०० वर्षों से जो अध्ययन कर रहे हैं, उसका शतांश भी हमारा अध्ययन नहीं है। वेद का कोष जर्मनों ने प्रथम बनाया, अभी तक दूसरा कोश वैसा या उससे अधिक उत्तम किसी ने नहीं बनाया। उन्होंने प्रथम देवनागरी अक्षरों में और रोमन अक्षरों में शुद्ध वेद छापा था। यह मुद्रण संशोधन पूर्वक हुआ था। जहां तक हो सके वहां तक उसमें अशुद्धि न रह सके इस विषय में बहुत परिश्रम उन्होंने किया था। एक-एक देवता के मन्त्रों का सूक्ष्म अभ्यास उन्होंने किया और वैसे ग्रन्थ भी लिखें। अमरीका की हारवर्ड युनिवर्सिटी में कई पंडितों ने मिल कर चारों वेदों की पदानुक्रमणिका बनाई है। इन की रचित पुनरुक्त मन्त्र सूची तथा तैतरीय सहिंता का अनुवाद आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जो वेद की खोज करने वालों के सहायक हो रहे हैं। रूस का लक्ष्य भी वेद के विषय में लगा है। इंगलैंड, फ्रांस आदि देशों में विद्वान् लोग न्यूनाधिक वेद संशोधन कर रहे हैं।

जिस समय यूरोप में बैलून थे, उस समय जर्मनी ने वेद में पक्षी हवाई जहाजों का वर्णन पढ़ा। ऐसे अनेक लाभ वेद के अध्ययन से यूरोपियों को हुए। जर्मनी में गत् ४० वर्षों से वेद में जो आयुर्वेद है उसका अध्ययन कर रहा है। उनका कहना है कि वेद में आयुर्वेद पद्धति अधिक शास्त्रीय है।

हमारे पास जकोस्लावाकिया जैसे यूरोप के एक छोटे-से देश के कालेज के विद्यार्थियों के पत्र संस्कृत में आये, हिन्दी में भी आये, जिन से ज्ञात हुआ कि ये वहां के कालेज के विद्यार्थी संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद एक भाषा में कर रहे हैं। क्या हमारे भारत के कालेज के विद्यार्थी संस्कृत में पत्र लिख सकते हैं और संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद अपनी मातृभाषा में कर सकते हैं ? संस्कृत भाषा का अध्ययन अफगानिस्तान के पठान कर रहे हैं। वे अपने आपको आर्य कहते हैं। संस्कृत भाषा से पश्तो भाषा समृद्ध होती है, ऐसा वे मानते हैं यदि पठान संस्कृत भाषा सीखते हैं तो भारतीय आर्य युवकों को संस्कृत भाषा सीखनी चाहिए। अमरीका से हमें पत्र आते हैं उनमें हमारे भारतीय भाई लिखते हैं कि वहां के यूनिवर्सिटी के युवकों में संस्कत के विषय में प्रेम बढ़ रहा है और संस्कृत जानने वाले का वे सम्मान करते हैं। यदि अमरीका जैसे विज्ञानपूर्ण देश में संस्कृत में विषय में प्रेम है तो भारतीय आर्यों में संस्कृत का प्रेम बढ़ाना चाहिए राज्य, न्याय और सेना के विषय में वेदों और अन्य ग्रन्थों में बहुत ज्ञान भरा है। प्राचीन काल में सारा राज्य कार्य ऋषियों के नेतृत्व में चलता था।

संस्कृत भाषा विश्व भाषा है और आज भी विश्व के सब देशों की भाषाओं का सम्बन्ध संस्कृत भाषा से है। भारतीय भाषाओं में यदि एकता लानी है तो वह एकता संस्कृत से ही सम्पादित हो सकती है। संस्कृत भाषा सुबोध है, सब भाषाओं से आसान है। किन्तु आज हम अपनी प्राचीन विधि को विस्मृत कर न जाने क्यों और कहां जा रहे हैं ? हमारा निवेदन है कि यदि उत्थान और कल्याण इष्ट है तो हमें विश्व एकता के लिए संस्कृत भाषा के प्रचार और अध्ययन का संकल्प लेना ही होगा।

गीता सार

[लेखक—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति आर्योपदेशक]

(गतांक से आगे)

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३१॥

(पार्थ) हे अर्जुन ! (क्लैव्यं मा स्म गमः) नपुंसकता को प्राप्त मत हों (एतत् त्वयि उपपद्यते न) यह तेरे लिये योग्य नहीं। (परंतप) हे शत्रुओं के तपाने वाले ! (क्षुद्रम् हृदय दौर्बल्यम्) तुच्छ हृदय की दुर्बलता को (त्यक्त्वा उत्तिष्ठ) छोड़ कर युद्ध के लिये खड़ा हो।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥३२॥

तब अर्जुन बोला (अरिसूदन मधुसूदन) हे शत्रु नाशक एवं मधु नाशक=कृष्ण ! (अहम् सँख्ये) मैं संग्राम में (पूजा अर्हौ) पूजा के योग्य (भीष्मम् च द्रोणम्) भीष्म और द्रोण के साथ (इषुभिः कथम् प्रति योत्स्थामि) बाणों से कैसे लड़ूंगा।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके॥
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव,
भुञ्जीयभोगान्रुधिर प्रदिग्धान् ॥३३॥

(हि महानुभावान् गुरुन् अहत्वा) क्यों कि महाशय गुरुओं को न मार कर (इह लोके भैक्ष्यम् अपि भोक्तुम् श्रेयः) इस लोक में भिक्षा का अन्न खा लेना भी अच्छा है। (अथ कामान् गुरुन् हत्वा तु) धन की कामना से गुरुओं को मार कर तो (इह एव रुधिर प्रदिग्धान भागान भुञ्जीय) यहां ही खून से भरे हुए भोगों को खायेंगे।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम
स्ताऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥३४॥

हम लोग यह भी नहीं जानते (कतरात् नः गरीयः) हमारे लिये क्या श्रेष्ठ है। (एतत् न च विद्मा) हम यह भी नहीं जानते (यद्वा जयेम) हम जीतेंगे (यदि वा नः जयेयुः) या हमें वे जीतेंगे और (यान् हत्वा न एव जिजीविषामः) जिन्हें मार कर हम जीना भी नहीं चाहते (ते धार्तराष्ट्राः) वे धृतराष्ट्र के पुत्र (सम्मुखे अवस्थिताः) सामने खड़े हुए हैं।

कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्म संमूढ्चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रुहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥३५॥

(कार्पन्य दोष अपहत स्वभावः) कायरता के दोष से दबे हुए 'क्षात्र' स्वभाव वाला (धर्म सम्मूढ़ चेताः) कर्तव्य और अकर्तव्य के विषय में भ्रांत चित्त वाला (त्वां प्रच्छामि) मैं तुम से पूछता हूँ (यत् निश्चितम् श्रेयः स्यात्) जो निश्चित् किया हुआ श्रेष्ठमार्ग हो (तत् में ब्रुहि) वह मुझे बताओ। (अंहम् ते शिष्यम्) मैं आप का शिष्य हूँ (माम् त्वाम् प्रपन्नम् शाधि) आप की शरण में आये हुए मुझ को उपदेश दीजिये।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह ॥३६॥

संजय बोला—(परतंप-गुडाकेशः) शत्रुओं को तपाने वाला और निद्रा को जीतने वाला अर्जुन (हृषीक ईश गोविन्दम्) इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण को (न योत्स्ये) नहीं लडूंगा (एवं उक्त्वा) ऐसा कह कर (तूष्णीम् बभूव ह) चुप हो गया ।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सनयोरूभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥३७॥

(भारत) हे धृतराष्ट्र ! (हृषीकेशः) कृष्ण (प्रहसन इव) मुस्कराते हुए (उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदन्तम) दोनों सेनाओं के बीच में शोकयुक्त (तम्) उस अर्जुन को (उवाच) कहने लगे ।

कृष्णउवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥३८॥

श्री कृष्ण बोले-(त्वम् अशोच्यान् अनु अशोचः) तू जो शोक करने के योग्य नहीं उनका शोक करता है (च प्रज्ञा वादान् भाषसे) और पण्डितों के से वचन बोलता है (पण्डिताः गतअसून् च अगत असून्) विद्वान् लोग जिनके प्राण चले गये हैं और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये (न अनु शोचन्ति) शोक नहीं करते ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥३६॥

(न तु अहम् जातु न आसम्) न तो ऐसा है कि मैं किसी काल में नहीं था और (न त्वम् न इमे जनाधिपाः) न यह कि तू या ये राजा लोग कभी नहीं थे । (वयम् सर्वे अतः परम न भविष्यामः इति न एव) हम सब इसके पश्चात् नहीं होंगे ऐसी बात भी नहीं है ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥४०॥

(देहिनः अस्मिन् देहे) आत्मा के इस शरीर में में (यथा कौमारम्, यौवनम् जरा) जैसे कुमार, युवा और वृद्धावस्था होती है (तथा देहान्तर प्राप्ति) उसी प्रकार अन्य देह की प्राप्ति होती हैं । (तत्र) इस विषय में (धीरः न मुह्यति) बुद्धिमान मोह नहीं करता ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुख दुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।४१।

(कौन्तय) हे कुन्ती पुत्र ! (शीत उष्ण सुख दुःखदाः) सर्दी गर्मी सुख दुःख देने वाले (मात्रा स्पर्शाः तु) तत्वों के सम्बन्ध तो (आगम आपायिनः) आने जाने वाले हैं—क्षण भंगुर हैं (भारत) हे अर्जुन ! (तान् तितिक्षस्व) उनको सहन कर ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥४२॥

(पुरुष ऋषभ) हे पुरुष श्रेष्ठ ! (ऐते) ये (सम दुःख सुखम्) दुःख और सुख में समान (यं धीरं पुरुषं) जिस बुद्धिमान् पुरुष को (न व्यथयन्ति) कष्ट नहीं देते (स अमृतत्वाय कल्पते) वह मोक्ष के लिये योग्य होता है ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥४३॥

(असतः) जो नहीं है उसकी (भावः) उत्पत्ति (न विपते) नहीं होती (सतः) जो है उसका (अभावः नाश नहीं होता (तत्व दर्शिभिः तत्व ज्ञानियों ने (अनयोः अभयोः अपि) इन दोनों का ही (अन्तः दृष्टः) तत्व देखा हैं ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।४४।

(येन) जिस में (इदं सर्वम् ततम्) यह सब

विस्तार किया है (तम् तु अविनाशि विद्धि) उसे नाश रहित ज्ञान। (अस्य अव्ययस्य विनाशम्) इस अविनाशी का नाश (कश्चित् न कर्तुम अर्हति) कोई नहीं कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।४५।।

(अनाशिनः) नष्ट न होने वाले (अप्रमेयस्य) इन्द्रियों के ज्ञान से दूर (नित्यस्य) नित्य (शरीरिणः) आत्मा के (इमे देहाः) ये शरीर (अन्तवन्तः) नाशवान् (उक्ताः) कहे गये हैं। (तस्मात्) इस लिये (भारत) हे अर्जुन! (युद्ध्यस्व) युद्ध कर।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। ४६ ।।

(अयम् कदाचित् जायते वा न म्रियते) यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न मरता है (वा न भूत्वा भूयः भविता) और न होकर फिर होगा (अयम् अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः) यह अजन्मा, नित्य, स्थिर और अनादि है। (शरीरे हन्यमाने न हन्यते) शरीर के नाश होने पर भी नहीं मरता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।४७।।

(यथा नरः जीर्णानि वासांसि विहाय) जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर (अपराणि नवानि गृह्णाति) दूसरे नये धारण करता है (तथा देही जीर्णानि शरीरानि विहाय) वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़ कर (अन्यानि नवानि संयाति) और नयों में प्रवेश करता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।४८।

(एनम् शस्त्राणि न छिन्दन्ति) इसे शस्त्र नहीं काटते (एनम् पावकः न दहति) इसे अग्नि नहीं जलाती, (एनम् आपः न क्लेदयन्ति) इसे जल नहीं गलाता, (च मारूतः एनम् न शोषयति) और वायु इसे नहीं सुखाता। अतः तुझे शोक करने की आवश्यकता नहीं; और यदि तू इसे मरण धर्मा मान ले तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।४९।।

(हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः) क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है (च मृतस्य जन्म ध्रुवम् और मरे हुए का जन्म निश्चित है। (तस्मात् अपरिहार्ये अर्थे त्वम् शोचितुम् न अर्हसि) इसलिये न टलने वाले विषय में तुझे शोक नहीं करना चाहिये।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।५०।

(भारत) हे अर्जुन (अयम् देही सर्वस्य देहे नित्यम् अवध्यः) यह आत्मा सबके शरीर में सदा अमर है (तस्मात् त्वम् सर्वाणिभूतानि शोचितुम् न अहसि) इसलिये तुझे सब प्राणियों का शोक नहीं करना चाहिये।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।५१।

(च स्वधर्मम् अपि अवेक्ष्य) और अपने धर्म को देख कर (विकम्पितुम् न अर्हसि) भय नहीं करना चाहिये, (हि क्षत्रियस्य) क्योंकि क्षत्रिय के लिये (धर्म्यात् युद्धात् अन्यत) धर्म युक्त युद्ध से अन्य (श्रेयः) श्रेष्ठ कर्म (न विद्यते) नहीं है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्ध मीदृशम्
।।५२।।

(पार्थ) हे पार्थ! (यदृच्छया उपन्नम्) अपने आप ही प्राप्त हुए और (अपावृतम् स्वर्ग द्वारम्) खुले हुए स्वग के द्वार रूप (ईदृशम् युद्धम्) इस

प्रकार के युद्ध को (सुखानि पार्थिवा) सौभाग्य वाले राजा (लभन्ते) पाते हैं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥५३॥

(अथ चेत् त्वम्) अब यदि तु (इमम् धम्थम् संग्रामम्) इस धर्मयुक्त युद्ध को (न करिष्यसि) नहीं करेगा (ततः) तो (स्वधर्मम् च कीर्तिम् हित्वा) अपने धर्म और यश को छोड़ कर (पापम् अवास्यसि) पाप को प्राप्त होगा।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां चत्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥५४॥

(महारथाः त्वाम्) महारथी तुझे (रणात् भयात् उपरतम् मंस्यन्ते) भय से युद्ध से हटा हुआ मानेंगे (च त्वम् येषाम् वहुमतः) और जिनकी दृष्टि में तु बड़ा है (भूत्वा लाघवम् यास्यसि) उन्हीं की दृष्टि में तुच्छता को प्राप्त होगा।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥५५॥

(वा हतः स्वर्गम् प्राप्स्यसि) यदि मर गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा। (वा जित्वा महीम् भोक्ष्यसे) और यदि जीत गया तो पृथिवी का भोग करेगा; (तस्मात् कौन्तेय) इस लिये हे अर्जुन! (युद्धाय कृत निश्चयः उत्तिष्ठ) युद्ध के लिए निश्चय करके उठ।

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥५६॥

(सुखः दुःखे लाभ अलाभौ जय अजयौ समे कृत्वा) दुःख सुख, हानि लाभ तथा जय पराजय को समान समझ कर (ततः युद्धाय युज्यस्व) फिर युद्ध के लिये तैयार हो (एवम् पापम् न अवाप्स्यसि) इस प्रकार तू पाप का भागी न बनेगा!

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥५७॥

(ते कर्मणि एव अधिकारः) तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, (फलेषु कदाचन न) फल में कभी भी नहीं, अतः (कर्म फल हेतु मा भूः) फल के कारण कर्म मत कर और न ही (ते संगः अकर्मणि मा अस्तु) तू कर्म रहित हो।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः।
लोक संग्रहमेवापि सं पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥५८॥

(जनकादयः हि) जनकादि भी (कर्मणा एव संसिद्धिम् आस्थिताः) कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये (लोक संग्रहम्) लोगों को साथ लेने को (सम्पश्यत्) दृष्टि में रखते हुए भी (कर्तुम् अर्हसि) कर्म करना चाहिये।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥५९॥

(श्रेष्ठः यत् यत् आ चरति) श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है (इतरः जनः तत् तत् एव) और लोग भी वैसा ही करते हैं, (स यत् प्रमाणम् कुरुते) वह जो कुछ प्रमाण कर देता है (लोकः तत् अनु वर्तते) संसार उस का अनुकरण करता है।

न मे पार्थस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥६०॥

(पार्थ) हे अर्जुन! (मे त्रिषु लोकेषु) मेरा तीनों लोकों में (किंचन कर्तव्यम्) कुछ कर्तव्य (न अस्ति) नहीं है। (अन् अवाप्तम्) न प्राप्त हुआ (अवाप्तव्यं) प्राप्त करने योग्य भी कुछ नहीं है (च कर्मणि) फिर भी कम में (वर्त एव) लगा हुआ हूँ।

सक्ता कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथा सक्तश्चिकीर्षलोकसंग्रहम् ॥६१॥

(भारत) हे अर्जुन! (यथा कर्मणि सक्ताः) जैसे कर्म में आसक्त हुए (अविद्वांसः) अज्ञानी लोग (कुर्वन्ति) कर्म करते हैं, (विद्वान्) ज्ञानी (तथा असक्तः) उसी प्रकार अनासक्त होकर (लोक संग्रहम् चिकीर्षुः) लोक संग्रह की इच्छा से (कुर्यात) कम करे।

तस्मादज्ञानसंभूतंहृत्स्थं ज्ञानसिनात्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥६२॥

(तस्मात्) अतः (अज्ञान सम्भूतं) अज्ञान से उत्पन्न हुए (हृत्स्तम्) हृदय में विद्यमान (एनं संशयम्) इस संशय को (ज्ञान असिताछित्त्वा) ज्ञान की तलवार से काट कर (योगम् आतिष्ठ) योग का आश्रय लो (उत्तिष्ठ) और युद्ध के लिये उठो ।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे,
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधा ।
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व,
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥६३॥

(ये प्रत्यनीकेपु अवस्थिताः योधाः) जो प्रतिपक्षियों की सेना में खड़े हुए योधा लोग हैं (सर्वे) वे सब (ऋतेऽपि त्वम्) तेरे बिना भी (न भविष्यन्ति) नहीं रहेंगे, (तस्मात् त्वम्) उत्तिष्ठ) इसलिये तू उठ और (शत्रून् जित्वा) शत्रुओं को जीत कर (यशो लभस्व) यश प्राप्त कर तथा (समृद्धम् राज्यं भुङ्क्ष्व) धन धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग ।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥६४॥

(यत् अहंकारम् आश्रित्य) यदि तू अहंकार का सहारा लेकर (न योत्स्ये) नहीं लड़ूंगा (इति मन्यसे) ऐसा मानता है (ते व्यवसायः मिथ्या एव) तो तेरा यह व्यापार झूठा है (त्वाम् प्रकृतिः नियोक्ष्यति) क्योंकि क्षत्रिय पन का स्वभाव तुझे युद्ध में लगा देगा ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥६५॥

क्योंकि हे अर्जुन ! (यन्त्रारूढ़ानि) नियम की कला पर चढ़े हुए (सर्व भूतानि) सम्पूर्ण तत्त्वों को (मायया) अपनी शक्ति से (भ्रामयन्) घुमाता हुआ (ईश्वरः) भगवान् (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियों के (हृत् देशे) हृदय स्थान में (तिष्ठति) रहता है ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६६॥

(भारत) हे अर्जुन ! (सर्व भावेन) सब प्रकार से (तम एव शरणम् गच्छ) उसी की शरण में जा (तत् प्रसादत्) उसी की कृपा से (पराम् शान्तिम्) परम शान्ति को (शाश्वतम् स्थानम्) नित्य परान्त काल तक स्थाई स्थान को (प्राप्स्यसि) प्राप्त करेगा ।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू ॥६७॥

(मया ते) मैंने तुझे (इति गुह्यात् गुह्यतरम्) यह गूढ़ से गूढ़ (ज्ञानम्) ज्ञान (आख्यातम्) बतलाया (एतत् अशेपेण विमृश्य) इसे पूर्ण रूप से विचार कर (यथा इच्छसि तथा कुरू) फिर जैसा चाहता है वैसा कर ।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥६८॥

(पार्थ) हे अर्जुन ! (कच्चित् त्वया एतत्) क्या तुमने यह (एकाग्रेण चेतसा श्रुतम्) एकाग्र चित्त से सुना, (धनंजय) हे धन के विजेता ! (कच्चित् ते अज्ञान सम्मोहः प्रनष्टः) क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ ?

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥६९॥

अर्जुन ने कहा (अच्युत) हे कृष्ण (त्वत् प्रसादात् मोहः नष्टः) आप की कृपा से मेरी भ्रान्ति दूर हुई (स्मृति लब्धा) अपने धर्म की याद आई (गत सन्देहः स्थितः अस्मि) अब संशय रहित होकर खड़ा हुआ हूँ (तव वचनम् करिष्ये और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।

संजय उवाच

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७०॥

इसके उपरान्त संजय बोला—(यत्र योगेश्वरः कृष्णः) जहां योगेश्वर कृष्ण है (यत्र धनुर्धरः पार्थः) और जहां धनुषधारी अर्जुन है (तत्र श्रीः विजय भूतिः) वहां ही लक्ष्मी विजय और ऐश्वर्य है, (मम मतिः ध्रुवा नीतिः) यह मेरा विचार निश्चल नीति है। ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता समाप्त ॥

आत्मशिक्षा (गतांक से आगे)

ज्ञानोन्नतिसे जीवात्मा की उन्नति होती है और ज्ञान की अवनतिसे जीवात्मा की अवनति होती है। जीव बाह्य ज्ञान और कर्म के वास्ते इन्द्रिय और शरीर के आधीन है, बिना इन्द्रिय और शरीर के जीवात्मा बाह्य ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्र०-जीवात्मा के ज्ञान की उन्नति का क्या कारण है और अवनति का क्या कारण?

उत्तर-सद्विद्या से जीवात्मा का ज्ञान उन्नति प्राप्त करता है और अविद्या से अवनति।

प्र०-सविद्या गुण है अथवा द्रव्य?

उ०-सद्विद्या गुण है।

प्र०-किसका गुण है?

उत्तर-सद्विद्या परमात्मा के ठीक ज्ञानरूपी गुण का नाम है।

प्र०-जीवात्मा के ज्ञान का नाम सद्विद्या क्यों नहीं कहा जावे? क्योंकि जीवात्मा का ज्ञान भी अनादि हैं

उत्तर-जीवात्मा का ज्ञान दो प्रकार का है। एक स्वाभाविक दूसरा नैमित्तिक। इन दोनों को बुद्धि और अविद्या के नाम से पुकारते हैं। क्योंकि जीवात्मा का ज्ञान अल्प होने से सत्य अर्थात् सर्वदा रहने वाला नहीं, इसलिए उसे सद्विद्या नहीं कह सकते और न जीवात्मा बिना सद्विद्या अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की सहायता के सत्पदार्थों को जान सकता है। अतः उस का ज्ञान सत् नहीं कहला सकता। क्योंकि जितने तीनों काल में रहने वाले पदार्थ हैं वह कारण रूप अर्थात् सूक्ष्म हैं जिनका ज्ञान पंचेन्द्रिय से नहीं हो सकता है, और मन सद्विद्या के आधीन है।

प्रश्न-अविद्या जिससे जीवात्मा के ज्ञान को हानि पहुँचती है, वह द्रव्य है अथवा गुण?

उत्तर-अविद्या गुण है।

प्रश्न-अविद्या किसका गुण है?

उत्तर-अविद्या जीवात्मा की अल्पज्ञता और प्रकृतिजन्य अनेक विकारों से उत्पन्न होती है। यह जीवात्मा का नैमित्तिक गुण प्रकृति से बने हुए पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है।

प्रश्न-अविद्या यदि उत्पन्न होती है तो कार्य है? परन्तु बहुत से महात्माओं जैसे शङ्कराचार्यादि ने अविद्या को अनादि माना है। जन्य पदार्थ कैसे अनादि हो सकते हैं?

उत्तर-आदि और अन्त दो प्रकार से होता है। एक प्रवाह से द्वितीय स्वरूप से। निदान अविद्या प्रवाह से अनादि हैं और स्वरूप से आदि है। द्वितीय महात्मा शङ्कराचार्य ने जो अविद्या को जन्य न मान कर अनादि माना है उसका अभिप्राय अविद्या के अधिकरण से है अर्थात् जीवब्रह्म और प्रकृति यह अनादि है, ब्रह्म सर्वज्ञ, जीव अल्पज्ञ और प्रकृति अज्ञ है। ब्रह्म के जब जीव समीप जाता है अर्थात् उसकी उपासना करता है तो उससे जीव अल्पज्ञ से तत्वज्ञ हो जाता है और जब प्रकृति की उपासना करता है तब मिथ्या ज्ञान के उत्पन्न होते ही मिथ्याज्ञानी बन जाता है। यह जीव की हानि और लाभ है। अल्पज्ञ जीव का तत्वज्ञ हो जाना उसकी उन्नति है और मिथ्या ज्ञानवाला होना उसकी अवनति है।

प्रश्न-बहुत से लोग जीव को अणु मानते हैं और बहुत से विभु मानते हैं, इनमें ठीक कौनसा है!

उत्तर-अणु तो नहीं किन्तु शरीर में व्यापक है और स्वरूप से विभु नहीं किन्तु जाति से विभु है।

प्रश्न-जीव के अणु होने में बहुत से प्रमाण हैं जैसा कि उपनिषद् में लिखा है:-

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥
श्वेताश्व०।

अर्थ-यदि बाल के नोंक के सौवें भाग को सौ पर भाग देव तो वह बाल का दस हजारवां भाग जीव

होगा अर्थात् जीव इतना छोटा होगा कि जिससे स्पष्ट जीव का अणु होना ज्ञात होता है।

उत्तर—यह श्रुति जीव के अणु परिमाण होने का प्रमाण नहीं, किन्तु उसके सूक्ष्म होने में प्रमाण है। यदि जीव का अणु परिमाण माना जावे तो इस श्रुति के और सब शास्त्रों के कि जिन्होंने जीव को पुरुष और आत्मा कहा है, उनके विरुद्ध होगा। जैसे ब्रह्म को कहा था, कि वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और बड़े से भी बड़ा है, जो अणु का अर्थ उस जगह है वही जीव के बारे में समझना चाहिए, क्योंकि इस श्रुति ने जीव को शरीर में व्यापक माना है। देखो छान्दोग्य उपनिषद् छापा काशी पृष्ठ १७७॥

अस्य यदेकां शाखां जीवो जहाति अथ सा शुष्यति।

जीव जब इस शरीर के भाग को त्याग देता है तब वह भाग शुष्क हो जाता है, और जब दूसरे को त्यागता है तो दूसरा भी सूख जाता है जब कुल को त्याग देता है तब कुल शुष्क हो जाता है। जीव के किसी भाग को छोड़ देने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह पहले व्यापक था। अणु जीव शरीर के एक भाग में रहेगा दूसरे भाग में रह नहीं सकता, अतः जीव को सारे शरीर में व्यापक मानना चाहिये।

प्रश्न—यदि जीव को शरीर में व्यापक माना जावे तो मध्य परिमाण वाला मानना पड़ेगा, जिससे जीव अनित्य माना जावेगा? अतः द्वितीय जीव में संकोच और विकास मानना पड़ेगा, अतः जीव को अणु अथवा विभु ही मान सकते हैं, परन्तु जीव को विभु मानने में एक मानना पड़ेगा न कि बहुत और जीव नाना अर्थात् बहुत से हैं, अतः जीव स्वरूप से तो विभु हो नहीं सकता अतः अणु मानना ही ठीक है। जिन श्रुतियों में जीव को शरीर में व्यापक बतलाया है वहां जाति से व्यापक नहीं किन्तु स्वरूप शक्ति से व्यापक माना है।

उत्तर—मध्यम परिमाण वाला होना अनित्य होने का कारण नहीं किन्तु सावयव और साकार होना अनित्य का कारण है। क्योंकि जीव निराकार है अतः अनित्य हो नहीं सकता और संकोच पृथिवी का धर्म होने से पथिक-द्रव्यों में होता है। निराकार जीव पृथिवी बना हुआ नहीं, इसलिये उसमें संकोच नहीं और विकास आकाशका धर्म है क्योंकि जीव के सूक्ष्म और निराकार होने से उसके अन्दर आकाश नहीं अतः विकास नहीं। यदि तुम संकोच विकास को अपनी भूल से जीव में मान कर अनित्य कहोगे तो यह दोष शक्ति के व्यापक होने पर भी रहेगा क्योंकि शक्ति में संकोच विकास मानना ही पड़ेगा। यदि शक्ति संकोचादि वाली है तो गुण के साथ गुणी का सर्वदा सम्बन्ध रहता है। गुण के नाश से गुणी का भी नाश होता है। ऐसी शक्ति के संकोच विकास से जीव में भी संकोच विकास आ जायेगा।

प्रश्न—यदि आत्मा को अणु माना जावे और शक्ति को शरीर में व्यापक समझा जावे, तो क्या दोष है!

उत्तर—तो ऐसे परमात्मा को एकदेशी मान कर भी उसकी शक्ति को जगत् में व्यापक कह सकते हैं। परन्तु उसमें दोष है क्योंकि शक्ति का प्रभाव समीप में अधिक होता है, दूरी पर कम होता है। जैसे जहां अग्नि जलती है उसका प्रभाव समीप वालों पर अधिक होता है और दूर वालों पर कम। जिस देश में जीवात्मा की क्रिया मानोगे उस देश में ज्ञान और क्रिया अधिक होगी और द्वितीय भाग में कम। कृमि आदि के शरीर में ज्यादा और मनुष्य के शरीर में बहुत कम, और कृमि, जूं और चींटी इत्यादिक जीवों के शरीर में अधिक ज्ञान होना चाहिए क्योंकि हम एकदेशी वस्तु की शक्ति का नियम पाते हैं। जितनी अधिक देशमें फैली उतना उतना ही प्रकाश भी अधिक कमजोर प्रतीत होता है इसके अतिरिक्त जीव और पदार्थ दोनों के लिये शरीर और जगत् में कोई स्थान स्थापित करना पड़ेगा और उस शक्ति को रोकना भी सम्भव होगा। और व्यावधान भी हो सकता है ऐसे अनेक दोष आजावेंगे, जिनका समाधान करना कठिन होगा। इसके अतिरिक्त वेद उपनिषद् और दर्शनों का खण्डन होगा।

प्रश्न—जिस प्रकार ईश्वर को सूक्ष्म समझ कर उसको सर्वव्यापक माना जाता है यदि उसके गुणों को सर्वव्यापक माना जावे और उसको एकदेशी माना जावे तो दोष नहीं आता क्योंकि जिस ज्ञान और क्रियाशक्ति को काम करना है वह दोनों दशाओं में बराबर है अर्थात् ब्रह्म के सर्वव्यापक न होने पर भी वह शक्ति सर्वव्यापक है और ब्रह्म की शक्ति को सर्वव्यापक मानने पर भी यह शक्ति सब जगह पर है।

उत्तर—किसी एकदेशी वस्तु की शक्ति सर्वव्यापक नहीं हो सकती, क्योंकि ब्रह्म की शक्ति का विभु होना प्रत्यक्ष प्रमाण से तो जाना ही नहीं जाता, अनुमान ही करना पड़ेगा। अनुमान व्याप्तिज्ञान से होता है, व्याप्ति प्रत्यक्ष से होती है, जबकि प्रत्यक्ष में कोई एकदेशी वस्तु अनन्त गुण धारण नहीं कर सकती, इस लिये ब्रह्म को एकदेशी मान कर उसकी शक्ति को अनन्त मानना ठीक नहीं।

प्रश्न—अनुमानादि प्रमाणों को ब्रह्म की शक्ति पर लगाना ठीक नहीं? क्योंकि ब्रह्म प्रत्यक्ष नहीं तो उसकी शक्ति किस प्रकार प्रत्यक्ष हो सकती है? परन्तु ब्रह्म को प्रमेय अर्थात् प्रमाणों की शक्ति से बाहिर बतलाया गया है अतः उसकी शक्ति का प्रमाण से खोज करना ठीक नहीं।

उत्तर—प्रथम तो ब्रह्म सत्ता में शस्त्र प्रमाण हैं और उसमें उसकी शक्ति का एक विचार भी पाया जाता है तो ब्रह्म को प्रमाणों से रहित बतलाना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। और योगियों को ब्रह्म का मानसिक प्रत्यक्ष भी होता है जिसका विचार सांख्य शास्त्र ने किया है। और न्याय शास्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति में उसका अनुमान भी किया गया है। अतः शब्द अनुमान और प्रत्यक्ष का विषय है परन्तु उसको ज्ञात करने के लिये अधिकारी की आवश्यकता है, जो उसके जानने का अधिकारी है उसी को उसका ज्ञान होता है।

प्रश्न—यदि प्रमाणों से जानने योग्य होता तो इसको जितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति से बाह्य क्यों कहा जाता? अब रहा शब्द प्रमाण, सो ब्रह्म के गुणों को बहुत ही कम प्रकट करता है किन्तु नेति नेति वाक्यों से दूसरों को हटाकर बतलाता है कि वह ब्रह्म से अलग है। परन्तु यह ब्रह्म है और यह उसका गुण और स्वरूप है ऐसा वेद से भी स्पष्ट प्रकट नहीं होता। रहा मानसिक प्रत्यक्ष, उसके प्रमाण होने में ही झगड़ा है।

उत्तर—अतीतेन्द्रिय कहने का यह अर्थ है कि वह इन पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जाना जाता, न कि उनके होने में कोई प्रमाण नहीं? और शब्द प्रमाण ही से तो ब्रह्म के स्वरूप और लक्षणों का ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है। ब्रह्मको सच्चिदानन्द स्वरूप वेद ने बतलाया है और वेदान्त दर्शन में आरम्भ ही से ब्रह्म के लक्षणों का विचार किया है। जैसा कि लिखा है कि जिससे सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होता है, उसको ब्रह्म कहते हैं। इसमें ब्रह्म की शक्ति को सिद्ध किया है। पुनः तीसरे सूत्र में कहा है कि ऋग्वेदादिकों के उत्पन्न करने से ब्रह्म की सर्वज्ञता सिद्ध है। इस ही प्रकार वेदान्त शास्त्र में ईश्वर की सिद्धि प्रमाण के साथ साथ की है और ब्रह्म को सर्वव्यापक ही सिद्ध किया है। रहा मानसिक प्रत्यक्ष, उसके बारे में उपनिषदों का प्रमाण जहाँ पर लिखा है कि यह आत्मा ब्रह्म है इस बात का प्रमाण है कि योगी जब समाधि की दशा में ब्रह्म का साक्षात होता है, तब वह कहता है कि मेरे अन्दर जो व्यापक आत्मा है यही ब्रह्म है। अतः मानसिक प्रत्यक्ष का होना सिद्ध है।

अतः ब्रह्म ज्ञान का जो अधिकारी होता है उसको ब्रह्म ज्ञान होता है और जो मल विक्षेप आवरण दोष से युक्त लोभी और आलस्यादिक बीमारियों से ग्रसित होता है उसको ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता जब तक कि वह इन रोगों को दूर करके आरोग्य नहीं हो जावे। इन रोगों के दूर करने का साधन वेदों में लिखा है। अतः जो लोग वेद को पढ़कर उसके अनुसार चलते हैं वह रोगों से रहित हो जाते हैं, उन्हीं को ब्रह्मज्ञान का अधिकारी समझना चाहिये। और जो लोग लोभी आलसी और अत्याचारी होते हैं वह धर्मोपदेश के अधिकारी नहीं। जैसा कि भगवान् मनुने लिखा है:-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥
मनुः

अर्थ—जो अर्थ और काम की इच्छा नहीं रखता हो उनको धर्म के जानने का अधिकार है और जो धर्म के जानने की इच्छा रखते हों उनके लिये श्रुति अर्थात् वेद ही सबसे बढ़कर प्रमाण है ॥

आत्म शिक्षा

(२)

प्रश्न—ब्रह्म के जानने में जो मल विक्षेप और आवरण आदि दोष बतलाये गये हैं उनके दूर का क्या उपाय है और उनका लक्षण क्या है ?

उत्तर—मल दोष को अथवा दुर्वासना को कहते हैं। जब मन में दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार होता है तो मनुष्य चोरी हिंसा आदि मलिन कामों में रातदिन लगा रहता है ! ऐसी दशा में उसे ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि मन का यह स्वभाव है कि यह एक समय में दो ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। और जिसके संस्कार मन में अधिक विद्यमान होते हैं अथवा जो संस्कार उद्भूत रूप होते हैं मन का विचार उसी ओर चलता है । इस कारण मल दोष वाले का मन ईश्वर की ओर लग ही नहीं सकता। मन को ईश्वर की ओर लगाने के लिये सबसे पूर्व परोपकारादि की ओर लगा कर उत्तम संस्कार उद्भूत करना उचित है क्योंकि यावत् संस्कार उद्भूत न होंगे, उपदेश से पूर्ण लाभ न हो सकेगा।

प्रश्न—हम किस प्रकार जान सकते हैं कि मन में उत्तम संस्कार उद्भूत हो गये, क्योंकि मन की दशाओं को हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते ?

उत्तर—जब तीन प्रकार की एषणा निवृत हो जावें उस समय समझ लेना चाहिये कि मन के उत्तम संस्कार उद्भूत हो गये और दुःसंस्कार दब गये।

प्र०—तीन प्रकार की एषणा कौनसी हैं ?

उ०—पुत्रैषणा अर्थात् पुत्र की इच्छा, वित्तैषणा अर्थात धन की इच्छा और लोकैषणा अर्थात् अपनी कीर्ति की इच्छा। जब तन मन में बुरे संस्कार रहते हैं तब तक यह इच्छायें रहती हैं और जब मन के दुःसंस्कार दब जाते हैं तब उनके साथ इच्छायें भी दब जाती हैं।

प्र०—इन तीन प्रकार की एषणा के निवृत करने एवं दुःसंस्कारों के दब जाने का क्या उपाय है ?

उ०—वेदोक्त कर्मकाण्ड को निष्काम भाव से अपना धर्म्म समझ कर करना ही इस रोग की चिकित्सा है। जब वेदोक्त कर्म निष्काम भाव से किये जावेंगे तब यह वासनादिक भी स्वयं निवृत हो जायेगी अतः प्रथम वेद पढ़ना तत्पश्चात् उसके अनुसार निष्काम कर्म करना प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है।

प्र०—जबकि यह नियमहै कि कोई मूर्ख से मूर्ख मनुष्य बिना फल की इच्छा के काम नहीं करता और जहाँ से काम निकलता दिखाई देता है वही काम किया जाता है, तो ऐसी दशा में निष्काम कर्म करना मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है और जो प्रकृति के विरुद्ध हो उसका होना ही असम्भव है।

उ०—यहां काम का आशय भोग के बदलने की इच्छा है और वहां वह पूजन का अर्थ कर्त्तव्य पालन है। अर्थात् वर्त्तमान भोग की ईच्छा न रख कर केवल आत्म-सुधार के निमित्त जो कर्म किया जाता है वह निष्काम ही कहलाता है। क्योंकि वस्तुतः उससे कोई लाभ नहीं केवल आस्तिक भाव से आगामी के लिये अपना कर्त्तव्य समझ कर किया गया है ! कामना अथवा इच्छा लाभ को प्राप्त करने में होती है और जो सुधार के निमित्त काम करता है वह लाभ को प्राप्त करना नहीं चाहता, किन्तु बुराइयां जो आत्मा में हैं उनसे द्वेष करता है। अतः जो कर्म शारीरिक सम्बन्ध और कीर्ति आदि की इच्छा से परे

हों वह निष्काम ही कहलाते है। जब निष्काम कर्म करने से अन्त करण शुद्ध हो जावे तत्पश्चात् विक्षेप दोष दूर करने का प्रयत्न करना उचित है।

प्र०—जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया तो फिर क्या कर्त्तव्य होगा ?

उ०—अन्तःकरण के शुद्ध होने से नित्य और अनित्य वस्तु के विचारने की शक्ति हो जायेगी, उससे प्रत्येक समय विवेक करना उचित है । अर्थात् इस बात का विचार करना उचित है कि आत्मा के लिये सुखप्रद और नित्य वस्तु क्या है और अनित्य तथा दुःखद कौन है ।

प्र०—क्या अन्तःकरण के शुद्ध हुए बिना विवेक नहीं हो सकता ?

उ०—जिस प्रकार शुद्ध दर्पण में प्रतिविम्ब दिखाई देता है और मलिन में नही, इसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण में विवेक उत्पन्न होता है, मलिन में नहीं ।

प्रश्न-अनित्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसकी उत्पत्ति और नाश हो, उसे अनित्य कहते हैं, जैसे घड़ा ।

प्र०—नित्य किसे कहते हैं ?

उ०—जो इसके प्रतिकूल हों अर्थात् जिसकी उत्पत्ति और नाश सम्भव न हो वह नित्य है। इस कारण शरीर, अन्तःकरण इन्द्रिय और जीवात्मा तथा संसार की वस्तुओं में नित्य अनित्य का विचार करना ही विवेक कहलाता है ।

प्र०—विवेक होने के पश्चात क्या फल होगा ?

उ०—विवेक होने से वैराग्य होता है ।

प्र०--वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके मन में संसार के बड़े से बड़े राज्य सुख की इच्छा वमन द्वारा निकले हुए अन्न की भांति न हो । जिस प्रकार वमन द्वारा बाहर निकले हुए भोजन को कोई नहीं चाहता, इसी प्रकार वैराग्य होने पर संसार के राज्य और विषयों की इच्छा नितान्त जाती रहती है ।

प्र०—बराग्य से होता क्या है ?

उ०—शम, दमादिक छः साधन प्राप्त होते हैं ।

प्र०—छः साधनों का पृथक २ लक्षण क्या है ?

उ०-जिससे अन्तःकरण के विषयों से पूर्ण घृणा हो जाने के कारण एकान्त हो उसे शम अथवा शान्त कहते हैं ।

प्र०—दम किसे कहते हैं ?

उ०--जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से सर्वदा पृथक रहें उसे दान्त अर्थात् दमयुक्त कहते हैं ।

प्र०-उपरत किसे कहते हैं ?

उ०--जिसके वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की इन्द्रियां विषयों से पूर्णतया पृथक रहें, उसे उपरत कहते हैं ।

प्र०— तितिक्षु अथवा सहनशील किसे कहते है ।

उ०-सुख, दुःख, भय, निर्भयता, लाभ, हानि, जय, पराजय, निन्दा और स्तुति से रहित अर्थात उनमें न फसने वाला हो उसे तितिक्षु कहते हैं ।

प्र०-मुमुक्षु किसे कहते हैं ?

उ०—इस प्रकार का अधिकारी, जिसकी दृष्टि में मुक्ति के अतिरिक्तप्रत्येक वस्तु तुच्छ हो उसे मुमुक्षु कहते हैं ।

प्र०—मोक्ष का अधिकार किस प्रकार होता है ।

उ०-जब कर्मकाण्ड से मन को शुद्ध करके ब्रह्मोपासना द्वारा चित्त को स्थिर करके, नित्य अनित्य का विचार करता है तब वह ब्रह्म के जानने का अधिकारी अर्थात् मुक्ति के योग्य होता है । जब तक अधिकारी न हो उसे ब्रह्म का ज्ञान हो ही नहीं सकता । यही कारण है कि आज कल लाखों करोड़ों मनुष्य अपने चित्त के बिगड़ने से ईश्वर के अस्तित्व तथा उसकी कृपा और शक्ति को नही मानते । यदि उलूक को सूर्य नही दीखता तो इसमें उलूक के नेत्रों का दोष है या सूर्य का ? प्रत्येक मनुष्य यही कहेगा कि सूर्य के कारण तो सब मनुष्य देखते हैं, ऐसी दशा में उसका दोष कैसे हो सकता है । निःसंदेह सूर्य के उदय में जब कि सब देखते हैं उलूक ही नहीं देखता, अतः उसी का दोष है ।

प्र०-जब इन साधनों में मनुष्य पार हो जावे तो क्या होगा ?

उ०—मल विक्षेप दो दोष जो मनुष्य को ब्रह्मज्ञानी होकर मुक्त होने से रोकते थे, वह दूर हो जावेंगे। केवल एक आवरण दोष शेष रह गया। अब जीवात्मा इस योग्य हो गया कि आवरण दोष को निवृत करके ब्रह्म को जानले। अब उसे ब्रह्म के जानने की योग्यता होने के कारण उसके जानने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है क्योंकि उसने वेदों का पठन करते समय यह सुन लिया था कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है। अब ज्ञान के लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासन की आवश्यकता होती है।

प्र०—श्रवण किसे कहते हैं ?

उ०—ब्रह्म श्रोत्री और ब्रह्म निष्ठ गुरु से ब्रह्म के गुणों का श्रवण करना, जैसा कि श्रुतियों में है और स्वयं ब्रह्मज्ञान से युक्त होकर संसार को तुच्छ समझ कर कोई कामना नहीं रखता वही गुरु हो सकता है। टकापंथी अज्ञानी स्वार्थी गुरु कहलाने के योग्य नहीं और न उसका उपदेश श्रवण के अन्तर्गत आ सकता है।

प्र०—जबकि कर्मकाण्ड से प्रथम ही वेद पढ़ लिये, तथा उपदेश जिससे ब्रह्म ज्ञान होता है, वेदों के अन्तर्गत होने के कारण, पूर्व ही शिष्य ने सुन लिया, फिर दुबारा उपदेश की क्या आवश्यकता है ?

उ०—जब प्रथम वेद पढ़ा था इस समय कर्म और उपासना के न होने के कारण मल विक्षेप का रोग, जो सैकड़ों जन्म के संस्कारों से उत्पन्न हो चुका है, निवृत नहीं हुआ था, अतः ब्रह्मज्ञान का अधिकारी न होने से उस समय के उपदेश से ज्ञान भी नही हुआ था। और जब ज्ञान न हुआ तो दुबारा सुनने की आवश्यकता बनी ही रही।

प्र०—क्या दुबारा श्रवण से ज्ञान हो जावेगा ?

उ०—जब छः प्रकार के लिङ्गों के साथ वेदों के वाक्यों का अर्थ विचारा जावेगा, तब अवश्य ही ज्ञान हो जायेगा।

प्र०—वह छः लिङ्ग जो अर्थ जानने के लिए हैं कौन से हैं ?

उपक्रमोसंपहारौ अभ्यासोऽपूर्णता फलम्,
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्य्यनिर्णयेय

अर्थ-उपक्रम, उपसंहार अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति अर्थात् युक्तियों से आवेषण करना यह किसी श्रुति अर्थात् वेद मन्त्र के जानने के लिङ्ग हैं।

प्र०—उपक्रम किसे कहते है ?

उ०—किसी विषय सम्बन्धी में जिसमें वाह्य साधनों की आवश्यकतायें हो उनको मिला कर उसका वर्णन करना उपक्रम कहाता है जो बहुधा भूमिका के रूप में होता है।

प्र०-उपसंहार किसे कहते हैं।

उ०-अन्तिम परिणाम जिनसे निकाला जाता है उसे उपसंहार कहते हैं। जैसे कि कहा जाता है, यह आशय है।

प्र०-अभ्यास किसे कहते हैं ?

उ०—विषय को वारम्बार विचारना तथा उसकी सूक्ष्मता को जानने का प्रयत्न करना, इसका नाम अभ्यास है।

प्र०-अपूर्वता फल किसको कहते हैं।

उ०—जो फल पहले अप्राप्त हो, अर्थात् प्रत्यक्ष फल पर ही दृष्टि न हो, वरन् उसके सूक्ष्म तथा अपरोक्ष फलों का भी विचार करना अपूर्वता फल कहाता है।

प्र०—अर्थवाद किसे कहते हैं।

उ०—उसके गुणों का यथार्थतः वर्णन करना, किन्तु जो गुण औरों से अधिक हो उसका भी वर्णन करना अर्थवाद कहाता है, इसे अत्युक्ति भी कहते हैं।

प्र०—उपपत्ति अर्थात् युक्तियों से देखने का क्या अर्थ है।

उ०…अनुमान बहुत से साधनों द्वारा करना पड़ता है। अतः अतिव्याप्ति आदिक दोष का और उसके पांचों लिङ्गों के सम्बन्ध से विचार करना आवश्यक है।

प्र०—जब श्रवण से ज्ञान होकर मुक्ति हो जावेगी तब।

उत्तर—यद्यपि श्रवण से आत्मज्ञान हो जायेगा, जो मुक्ति का कारण है तथापि यदि मनुष्य बुद्धिहीन होगा, उसको ज्ञान नहीं होगा। वरन् असम्भावना तथा विपरीत भावना दो प्रकार के संशय उत्पन्न हो जावेंगे जिनके कारण मनन की आवश्यकता है।

प्र०—असम्भावना किसे कहते हैं ?

उ०—यद्यपि सहस्रों श्रुतियों से विदित होता है तथापि शरीर और इन्द्रियों से पृथक आत्मा को बुद्धि नहीं मानता। इस प्रकार का विचार असम्भावना है।

प्र०—विपरीत भावना किसे कहते हैं ?

उ०—'बहुधा सुनने और विचारने पर भी अनात्म पदार्थों को आत्म तथा आत्मा को अनात्म समझना' इस प्रकार का ज्ञान विपरीत भावना है। इनमें से असम्भावना को दूर करने के निमित्त श्रवण के पश्चात् मनन होना आवश्यक है।

प्रश्न—मनन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कुछ वेदार्थ गुरुओं की वाणी द्वारा सुना है उसको युक्तियों द्वारापूर्णतया सिद्ध करके हृदय पर अंकित करने से असम्भावना को दूर करना है जिस प्रकार कोई गंवार मनुष्य चन्दन नहीं मानता तो उसकोघिसकर अन्य किसी उपायसे दिखा देते हैं। इसी प्रकार बुद्धिहीन आत्मा की सत्ता को नहीं मानता उसे युक्तियों द्वारा विश्वास करा देते हैं।

प्र०—विपरीत भावना के निवृत्त करने का क्या उपाय है ?

उ०—निदिध्यासन से विपरीत भावना दूर हो सकती है। बिना निदिध्यासन के इसका दूर होना सम्भव नहीं।

प्र०—निदिध्यासन किसे कहते हैं ?

उ०—जो आत्मा बहुत सी श्रुतियों और युक्तियों से सिद्ध हुआ है, बस यही आत्मा है इस प्रकार का अटल विचार निदिध्यासन है।

प्रश्न—क्या आत्म ज्ञान हो जाने पर संसारी कामों में मनुष्य फंसा रहेगा अथवा नहीं ?

उत्तर—जिसको आत्मा का साक्षात् अर्थात् मानसिक प्रत्यक्ष न होगा वह तो श्रवणादि द्वारा ज्ञान होने पर भी संसार में फंसा हुआ दिखलाई देगा।

प्रश्न—हम आत्माके साक्षात होने पर भी संसार में फंसा रहना देखते हैं ?

उत्तर—यदि ज्ञान होने पर भी प्रारब्ध कर्म शेष रहे तो उनके भोगने के लिये ज्ञानी को भी उतने दिन तक शरीर में रहना पड़ेगा। क्योंकि और प्रकार के शेष कर्म तो ज्ञान से नाश हो जाते हैं परन्तु प्रारब्ध कर्म भोगने ही से नाश होते हैं।

प्रश्न—जब कर्मों का कारण मिथ्याज्ञान नाश हो गया तो उसके कार्य्य प्रारब्ध आदि का अवश्य नाश हो जाना चाहिए, नहीं तो कर्मों का तनिक भी नाश न होना चाहिये क्योंकि यह नियम है कि कारण के नाश होने से कार्य का भी नाश हो जाता है!

प्रश्न—क्या उपादान कारण के नाश होने से कार्य का नाश हो जाता है ?

उत्तर—प्रत्येक कारण के नाश होने से कार्य का नाश होने का नियम नहीं। जैसे रज्जू में सर्प का ज्ञान होने से कोई मनुष्य डर कर भागा और उसे चोट लग गई। अब प्रकाश आ जाने के कारण सर्प का ज्ञान तो दूर हो गया परन्तु उसके दूर होने से वह चोट दूर नहीं हो सकती।

॥ इति ॥

⁂

आत्मिक बल

प्रिय पाठकगण ! आजकल हमारे अधिक भाई कार्य को आरम्भ करके मध्य में ही छोड़ देते दिखलाई देते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनको उस काम के करने की शक्ति न थी। आप कहेंगे कि जब कि वह शिक्षित, चिन्ता रहित और बलवान हैं तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि उस कार्य के करने की शक्ति न थी। हमने जहां तक परिक्षा की है उससे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक कार्य का होना आत्मिक बल के आधीन है। यद्यपि शारीरिक बल और धन का बल भी सांसारिक कार्यों के करने के लिए एक आवश्यकीय पदार्थ है परन्तु आत्मिक बल के होने पर ये सब वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं और न ही इनसे आत्मिक बल उत्पन्न हो सकता है। अब प्रश्न यह होता है कि आत्मिक बल क्या पदार्थ है जिसके होने से समस्त कार्य पूर्णरूप से हो सकते हैं और जिसके न होने से बहुधा धनों की विद्यमानता में भी कार्य नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि ज्ञान और प्रयत्न वाली शक्ति को आत्मा कहते हैं और ज्ञान और प्रयत्न उसके गुण कहलाते हैं। और गुणों के बढ़ने का नाम बल का बढ़ना कहलाता है। इसलिये आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की निर्बलता आत्मिक बल है। हमारे बहुत से मित्र कह देंगे कि "न्यायशास्त्र" में जीवात्मा के ये लक्षण लिखे हैं—सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। तुमने पहले चार क्यों छोड़ दिये, और अन्त के दो क्यों रख लिये ? इसका उत्तर यह है कि पहले चार तो शरीरस्थ आत्मा के गुण हैं। उदाहरण—कोई मनुष्य हाथ से लकड़ी कुल्हाड़ी की शक्ति से काटता है। अब लकड़ी काटना कुल्हाड़ी से मिले हुए हाथ का कार्य है केवल हाथ का नहीं। क्योंकि न तो बिना कुल्हाड़ी के हाथ काट सकता है और न ही बिना हाथ की सहायता के कुल्हाड़ी काट सकती है। जबकि दोनों से पृथक २ कोई भी काटने की शक्ति नहीं रखता और मिलकर बराबर काट सकते हैं तो वह मिले हुओं के धर्म्म हैं एक का नहीं। इसी प्रकार सुख दुःख और इच्छा, द्वेष सूक्ष्म शरीर के साथ आत्मा को प्रतीत होते हैं न कि एकाकी (अकेले) आत्मा को प्रतीत होते हैं और न अकेले शरीर को। यदि अकेले आत्मा के गुण मान लिये जावें तो सुषुप्ति की दशा में भी इनका अनुभव होना चाहिये। परन्तु सुषुप्ति की दशा में किसी को भी सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष विदित नहीं होते। इससे निश्चय होता है कि यह आत्मा के धर्म नहीं। यदि अकेले शरीर के मान लें तो मृतक में भी होने चाहिए, परन्तु मृतक में वह गुण नहीं। जिसके प्रकट होता है कि ये गुण आत्मा और शरीर के मेल से उत्पन्न होते हैं।

प्रिय पाठक महाशयों ! हमारे अनेक मित्र कहेंगे कि सुषुप्ति काल में आत्मा को ज्ञान नहीं रहता, इसी कारण उसी समय सुख, दुःख आदि विदित नहीं होते नहीं तो, आत्मा में यह गुण सदैव रहते हैं। परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा किसी काल में भी ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकते और किसी द्रव्य के गुण उसकी विद्यमानता में उसे छोड़कर जा ही नहीं सकते। फिर किस प्रकार माना जा सकता है कि चैतन्य आत्मा के गुण ज्ञान और प्रयत्न पृथक हो जावें। जब कि वह विद्यमान हो और प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है तो द्रव्य के होने के लिये गुणों का होना आवश्यक है। परन्तु अधिकांश मित्र यह कहेंगे कि क्या कारण है कि जो सुषुप्ति की दशा का ज्ञान प्रतीत नहीं होता ? इसका उत्तर यह है, कि ज्ञान दो प्रकार का है एक स्वाभाविक दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान तो वह है कि जो बिना किसी इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध के बना रहता है जैसे अपने होने का ज्ञान। दूसरा ज्ञान पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, जैसे—रूपज्ञान के लिये रूपवाली वस्तु और रूप के ग्रहण करने वाली इन्द्रिय अर्थात् चक्षु और रूप के प्रकाश करने की शक्ति जैसे सूर्य दीपक इत्यादि का होना आवश्यक है। आत्मा ज्ञानी होनेपर भी बिना इन तीन पदार्थों के रूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और शब्द ज्ञान के लिए कान, आकाश और शब्द का होना आवश्यक है। क्रमशः

प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रेक्ट प्रत्येक का मूल्य -] सैकड़ा ४)

१ मनुष्यवन—ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती।
२ गायत्रीमाता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
४ आस्तिक नास्तिक संवाद—महर्षि दयानन्द ।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द ।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी ।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
८ कल्याणी बन—पं० गणेशदत्त 'इन्द्र' ।
९ आर्यों का आदि देश—काशीनाथ जी शास्त्री ।
१० धर्म और अधर्म—पं० रामचन्द्र देहलवी ।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी ।
१३ पं लेखराम—रामगोपाल जी विद्यालंकार ।
१४ सीता माता—सरस्वती देवी 'प्रभाकर' ।
१५ गौ माता—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न ।
१७ चोटी का महत्व—पं धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस ।
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम—प्रहलाद 'प्रभाकर' ।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य ।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द ।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य प्रियव्रत ।
२४ आर्य समाज के उद्देश्य—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
२५ वेदमाता ।
२६ श्रद्धामाता ।
२७ धरती माता ।
२८ धर्म की रक्षा करो—ब्र० प्रभुदत्त जी ।
२९ मनुष्य के कर्तव्य—म० नारायण स्वामी ।
३० सत्संग भजन ।
३१ ऋषिदयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व ।
३२ गोपाल दयानन्द ।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा ।
३४ वैदिक भक्तिवाद ।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि ।
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द ।
३७ आर्य समाज की उन्नति का साधन लालचन्द जी
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द ।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक-शिवपूजन सिंह ।
४० पति व्रत धर्म—एक विदूषी महिला ।
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा—राजेन्द्र जी ।
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द—भगवत शरण बी० ए०
४३ ईश्वरावतार—स्वामी नित्यानन्द जी
४४ कर्मयोगी श्री कृष्ण—श्री प्रेमचन्द
४५ ईसाइयों का भयंकर षड़यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार—श्री लालचन्द जी
४७ शिक्षा का उद्देश्य—श्री पूर्णचन्द जी
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी
४९ वर्ण व्यवस्था—स्वामी दर्शनानन्द ।
५० कर्म व्यवस्था ,, ,,
५१ वेदज्ञान—विष्णु दयाल जी ।
५२ तुलसी रामायण और आर्यसमाज ।
५३ सत्य की खोज—काशीनाथ शास्त्री ।
५४ मुर्दा क्यों जलावें—प्रेम शरण जी ।
५५ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य—स्वामी दर्शनानन्द ।
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य— ,,
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध—पं० राजेन्द्र जी ।
५८ श्रेय और प्रेय—प्रि० नित्यानन्द जी एम० ए० ।
५९ सच्ची पूजा—स्वामी सर्वदानन्द जी ।
६० झांसी वाली रानी ।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त—रविवर्मा सि० शास्त्री ।
६२ जीवन की समस्यायें—पं० रामचन्द देहलवी ।
६३ देवताओं की कहानी—कैलाश बिहारी ।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६५ धूम्रपान— ,, ,,
६६ सिनेमा और हम— ,, ,,
६७ दयानन्द कौन—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ।
६८ कृण्वन्तोस्वयमार्यम—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६९ चाय भयंकर विष—जगदीश चन्द्र ।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है—,,
७१ ईश्वर सब जगह है—विष्णु दयाल जी ।
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों—पं० रामचन्द देहलवी ।
७३ चरित्र निर्माण—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी
७४ यज्ञोपवीत महत्व— ,, ,,
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण—हरिदेव शास्त्री
७६ नास्तिक को सन्देश—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी
७७ वैदिक धर्म ही क्यों—हरिदेव शास्त्री
७८ विद्यार्थी और सदाचार—पं० रामचन्द्र देहलवी ।

गोविन्द राम हासानन्द नई सड़क, देहली ।

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीटूयूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लाइब्रेरियों। पुस्तकालयों वेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४४ पुस्तकों का सैट**

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है। देहाती पुस्तक भण्डार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वे देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

१. आलू की खेती	।।।)
२. टमाटर की खेती	।।)
३. गोभी की खेती	।।)
४. जीरा, धनियाँ, अजवायन	।।।)
५. तरकारियों की खेती	१।।)
६. अच्छे बीज	।।।)
७. अच्छी खाद	२।।)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	।।।)
१०. फूल फुलवाड़ी	२।।)
११. धान की खेती	१।।)
१२. सन्तरे की बागवानी	२।।)
१३. ग्राम की बागवानी	३)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५. तिलहन की खेती	।।।=)
१६. सोयाबीन की खेती	।)
१७. तम्बाकू की खेती	।।)
१८, खेती की तैयारी	२।)
१९. फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०. व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१. खेतीबाड़ी (कि. गाइड)	१।।)
२२. फलों की खेती	३।।)
२३. पशुओं का इलाज	६)
२४. तरकारी सागभाजी खेती	३।।)
२५. ट्यूबवैल गाइड	३।।)
२६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७. पोल्ट्री फार्मिङ्ग	४)
२८. उन्नत सिंचाई	२)
२९. खेती और ट्रैक्टर	६)
३०. फल संरक्षण	२।।)
३१. गेहूं की खेती	३)
३२. मूंगफली की खेती	१)
३३. मिर्च की खेती	१।)
३४. बीज की तैयारी	१।।)
३ .. मसालों की खेती	२)
३६. पपीते की खेती	१।।)
३७. आधुनिक कृषियन्त्र	१।)
३८. लाख की खेती	।।।=)
३९. प्याज की खेती	।।।)
४०. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
४१. भारतीय कृषि कहावतें	२।।)
४२. किचन गार्डन	१।।।)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)

देहाती पुस्तक भण्डारः— चावड़ी बाजार
दिल्ली—

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, संतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं, मू० ३।।) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू, अदरक, अरबी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३।।) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती बाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ

(ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १।।) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

५००० पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

केवल बारह आने (पिछत्तर नये पैसे) के टिकट लिफाफे में भेज कर नये वर्ष की श्री बापू राष्ट्रीय मशहूर जन्त्री मंगायें।

देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाजार देहली।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जय्यद प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया।

ओ३म्

वेद प्रकाश

वर्ष—६ : बोधरात्रि २०१४
अंक—७ : दयानन्दाब्द १३४

सम्पादक
गोविन्दराम हासानन्द

माघ १८७९ शाके :
फरवरी १९५८ :

वार्षिक मूल्य ३॥)
इस अंक का ।)

उपासना—अंक

तुम

तुम विराट तुम जीवन धन हो,
तुम सबंल प्राणों के प्राण।
अणु अणु की गति साधन सबंल,
तुम ज्योतित जय, सत्य ललाम।

ओ मेरे प्रभु तुम्ही चलाते,
धरती का सारा व्यापार।
रक्षक, सविता, उन्नायक हे,
तुम अन्तर वीणा के तार।

जन जन की प्रतिभा के प्रहरी,
सत्य—अर्थ सुख के दातार।
तुम से मिल कर तुम में खोकर,
सुन लूं प्रियतम प्राण पुकार।

चलें सभी प्रिय पास तुम्हारे,
करें तुम्हारा ही गुणगान।
तुम से लेकर ज्योति सुधाबल,
धरती पाए शान्ति विराम।

तुम ही लक्ष्य हो, ओ मेरे प्रभु,
तुम छावो अन्तर में प्राण।
दूर करो अज्ञान तिमिर तुम,
भर दो जीवन में जय ज्ञान।

प्रभु की प्यास !

—★—

ओ३म् यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापोन तृष्यते बभूथ !
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् !!!
(ऋ० १।१७५।६)

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मदेव ! (यथा पूर्वेभ्यः जरितृभ्यः) जैसे पूर्व स्तुति कर्ताओं—अपने उपासक जनों के लिए तू (तृष्यते मयः इव आपः बभूथ) प्यासे के लिए जल की भांति सुखरूप हुवा है (तां निविदम्—अनु) उसी वाणी निवेदन या प्रार्थना के अनुसार (त्वा जोहवीमि) मैं तेरा आह्वान करता हूं (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) तब अन्न, बल, और अमर जीवन को प्राप्त कर सकता हूँ ॥

प्रभु की प्यास मानव अन्तर की चिर पिपासा है ! हम जन्म लेते हैं किस लिए, प्रभु से मिलने के लिये, हमारी आत्मा की भूख—प्यास की तृप्ति यदि संभव है, शान्ति यदि मानव पा सकता है तो वह प्रभु दर्शन द्वारा ही। जैसे ग्रीष्म में व्याकुल प्यासा पथिक जल पाकर शांति अनुभव करता है वैसे ही आत्मा परमात्मा से मिल कर अपनी आकुलता को समाप्त कर सकता है। हम चलें, बढ़ें प्रभु से मिलने को, पाएं, जिसे पाकर हमें कुछ भी पाने की चाह नहीं रहती। पहचाने जीवन लक्ष्य को और मिटाएं अपनी तपन…… तभी धरती का मानव शान्ति अनुभव कर सकता है।

आर्ष योग प्रदीपिका

व्यास भाष्य सहित पातञ्जल योग दर्शन का सरल सारगर्भित भाषानुवाद

लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं व्यास ऋषि भाष्य का भाषानुवाद किया गया है। योग के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर लेख होने से इसका नाम "आर्ष योग प्रदीपिका रखा गया है। यहां पातञ्जलि के सूत्रों का प्रथम अर्थ और किसी किसी क्लिष्ट सूत्र पर विवरण दिया गया है। पुनः व्यास भाष्य का अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं उस पर आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण भी दिया गया है। आशा है स्वाध्यायी और योग विषयक वर्णन के जिज्ञासु जन इसका स्वागत करेंगे। लगभग २७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३॥)

मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क देहली।

विवाह और विवाहित जीवन

लेखक—गंगाप्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटकता रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू हैं उन सब का ही इस पुस्तक में समावेश है आधुनिकता तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पोर्वात्य ग्रन्थ कारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। मूल्य २॥)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

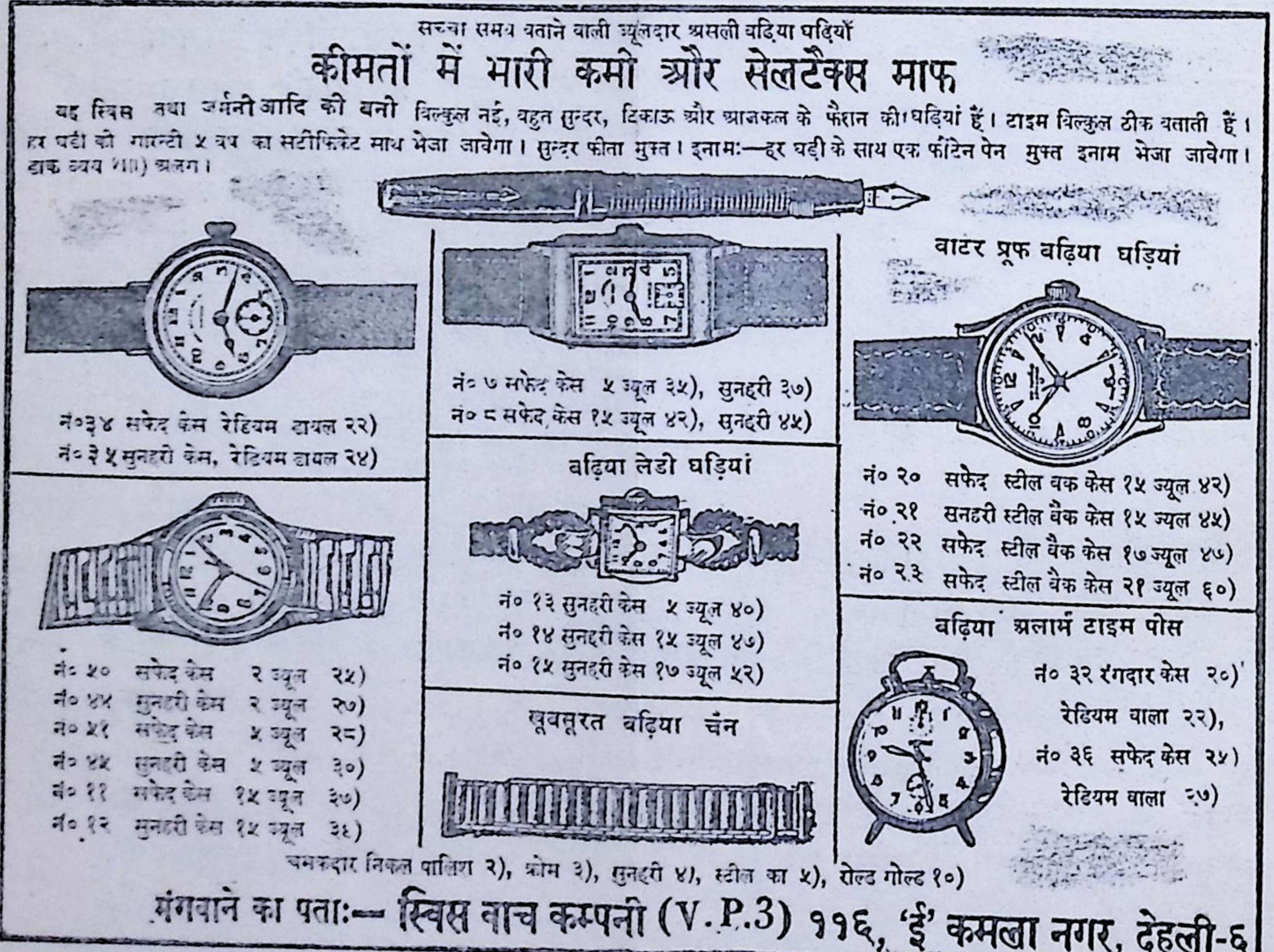

सच्चा समय बताने वाली ज्यूलदार असली बढ़िया घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी और सेलटैक्स माफ

यह स्विस तथा जर्मनी आदि की बनी बिल्कुल नई, बहुत सुन्दर, टिकाऊ और आजकल के फैशन की घड़ियां हैं। टाइम बिल्कुल ठीक बताती हैं। हर घड़ी की गारन्टी ५ वर्ष का सर्टीफिकेट साथ भेजा जावेगा। सुन्दर फीता मुफ्त। इनामः—हर घड़ी के साथ एक फॉंटेन पेन मुफ्त इनाम भेजा जावेगा। डाक व्यय १॥) अलग।

नं०३४ सफेद केस रेडियम डायल २२)
नं० ३५ सुनहरी केस, रेडियम डायल २४)

नं० ७ सफेद केस ५ ज्यूल ३५), सुनहरी ३७)
नं० ८ सफेद केस १५ ज्यूल ४२), सुनहरी ४५)

वाटर प्रूफ बढ़िया घड़ियां

नं० २० सफेद स्टील वक केस १५ ज्यूल ४२)
नं० २१ सनहरी स्टील वैक केस १५ ज्यल ४५)
नं० २२ सफेद स्टील वैक केस १७ ज्यूल ४७)
नं० २३ सफेद स्टील वैक केस २१ ज्यूल ६०)

नं० ५० सफेद केस २ ज्यूल २५)
नं० ४५ सुनहरी केस २ ज्यूल २७)
नं० ५१ सफेद केस ५ ज्यूल २८)
नं० ४५ सुनहरी केस ५ ज्यूल ३०)
नं० ११ सफेद केस १५ ज्यूल ३७)
नं० १२ सुनहरी केस १५ ज्यूल ३९)

बढ़िया लेडी घड़ियां

नं० १३ सुनहरी केस ५ ज्यूल ४०)
नं० १४ सुनहरी केस १५ ज्यूल ४७)
नं० १५ सुनहरी केस १७ ज्यूल ५२)

खूबसूरत बढ़िया चैन

बढ़िया अलार्म टाइम पीस

नं० ३२ रंगदार केस २०)
रेडियम वाला २२),
नं० ३६ सफेद केस २५)
रेडियम वाला २७)

चमकदार निकल पालिश २), क्रोम ३), सुनहरी ४), स्टील का ५), रोल्ड गोल्ड १०)

मंगवाने का पताः— स्विस वाच कम्पनी (V.P.3) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६

उपासना के पाँच लाभ

(श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल कांगड़ी)

ईश्वर मे विश्वास रखना धर्म का आवश्यक अंग है। ईश्वर मे विश्वास रखना जीवम में परिवर्तन ला देता है। ईश्वर-विश्वास हमें सच्चे अर्थों में धार्मिक बना देता है और उससे हमे जीवन में अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। ईश्वर से मिलने वाले ये लाभ हमें ईश्वरोपासना द्वारा प्राप्त होते है। परन्तु वह उपासना, परमात्मा को रिश्वत चढ़ाने की नियत से सौदे और व्यापार की मनोवृति से नहीं की जानी चाहिए ऐसी उपासना निरा ढोंग और पाखण्ड है। उस से कुछ भी लाभ नहीं मिलता। परमात्मा के दरबार में ऐसी उपासना प्रार्थना स्वीकार नहीं होती। उपासना तो प्रभु की सगंति में बैठ कर प्रेम में भरकर उसके गुणोंका चिन्तम करने उसके द्वारा अपने चरित्र को ऊंचा उठाने की नीयत से की जानी चहिए। ऐसी मनोवृत्ति से की जाने वाली ईश्वरोपासना लाभ पहुंचाती है। इस प्रकार ईश्वर की भक्ति करने से हमें निम्न पांच लाभ प्राप्त होगे

१—प्रतिदिन प्रात:सांय दोनों समय घण्टा आधा घण्टा जितनी देर तक हम चाहें, इस प्रकार प्रेम में भरकर प्रभु की भक्ति करने से हमारे में पैदा हुई यह प्रभु के प्रति प्रेम की वृति उतने समय के लिए हमें संसार की चिन्ताओं और कष्ट क्लेशों से दूर करके आनन्द की हालत में डाल देती है। उतनी देर के लिए हम आनन्द मय मस्ती और प्रसन्नता की अवस्था में रहते हैं। उतनी देर के लिए हम सुख ही सुख में रहते हैं और दुख हमारे पास नहीं फटकते। भक्ति द्वारा हम दोनों समय अपनी इच्छा से जितने समय के लिए चाहें उतने समय आनन्द की अवस्था पैदा कर लेते हैं। यह भक्ति का भारी लाभ है जब हम भक्ति से उठते है तो हमारे मन और शरीर में निराला उत्साह फुर्तीलापन और चैतन्य होता है जिसके फल स्वरुप अपने दैनिक कार्यों में हमारा चित खुब लगता है। यह सब उपासकों का अनुभव है।

उपासना जीवन कों जीवन देती है। उठाती है मानव को, भाती है। प्रकाश और देतीहै साधना की प्रेरणा कैसे चले उपासना की ओर, यह सब जानने के लिए विद्वान लेखक का यह अमूल्य लेख पढ़ डालिए और कीजिए इस पर आचरण।

सम्पादक

२—भक्ति के समय प्रेम में भरकर प्रभु के गुणों का चिन्तन करने से हमारे अन्दर प्रभु के गुणों का चिंतन करने से हमारे अन्दर प्रभु जैसी बनने की इच्छा जाग उठती है। हम प्रभु के सत्य, न्याय, ज्ञान, वल, नियम-परायणता और दया आदि गुणों को अपने भीतर धारण करने लगते हैं। उनके विरोधी अपने असत्य, अन्याय आदि दुर्गुणों को छोड़ने लगते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे हम प्रभु जैसे पुण्य पवित्र बन जाते हैं। इस पवित्रता का फल यह होता है कि भविष्य में हम से बुरे कर्म होने बन्द हो जाते हैं। इसी लिए हमें भविष्य में पापकर्मों का फल दुख भी नहीं मिलेगा। यह स्मरण रहे कि भक्ति से पाप करते हैं अर्थात भविष्य मे हम पवित्र रहेंगे, पाप नहीं करेंगे। परन्तु पहले किये जा चुके पाप कर्मों का फल दुख भक्ति से नहीं कटता है। वह तो भोगना ही पड़ता है।

हम भक्ति के समय अपने मन-द्वारा प्रभु के गुणों का चिन्तन कर के मानसिक रुप में उनके पास जा बैठते है। हम एक ऐसी सत्ताको अनुभव करने लगते है जो हमारे बाहर भीतर सब ओर है और जिस में सत्य न्याय ज्ञान, बल, समय, नियम, परायणता और दयालुता आदि गुण इतनी पूर्ण मात्रा में हैं कि उनकी पराकाष्टा हो गई है, हद हो गई है। इस परम पवित्र प्रभु की प्रेम-पूर्वक की हुई संगति हमें भी पवित्र बना देती है। संसार में कोई संगति इतनी पवित्र नहीं है। इस लिए हमें प्रभु की उपासना का फल यह होता है कि प्रभु के गुण धारण कर के पवित्र बन जाते है और इसीलिए भविष्य के लिए हमारे पाप से पैदा होने वाले दुख भी कट जाते हैं।

३—भक्ति का तीसरा लाभ यह होता है कि हमारा संसार अधिक अच्छी तरह चलता है जो लोग प्रभु की भक्ति में बैठ कर प्रभु के सत्य, न्याय, दया, ज्ञान, बल, और नियम परायणता आदि गुणों को अपने भीतर धारण

कर लेगें उनके सभी प्रकार के साँसारिक व्यवहार वहुत सुन्दर रीति से चलेंगे । उनके राज्य-प्रवन्ध अधिक वढ़िया हो जायेंगे उनके व्यापार अधिक अच्छी तरह चलेंगे । उनके विद्यालय और विश्वविद्यालय अधिक उन्नति करेंगे । एक शब्द में, उनके सभी व्यवहार उत्तम रीति से चलेंगे । क्योंकि सव व्यवहार का उत्तम रीति से चलना सत्य न्याय आदि गुण पर ही आश्रित है ।

४—चौथा लाभ भक्ति का यह होता है कि जो लोग इस प्रकार प्रभु की संगति में वैठ कर उनके गुणों को धारण कर के अपने आप को पवित्र वना लेते हैं उनके निर्मल आत्माओं में प्रभु ज्ञान, वल आनन्द आदि गुण संक्रांत कर देते हैं। उनकी वुद्धि पैनी होती है। वे मानसिक और शारीरिक रुप में पूर्वापेक्ष या वहुत अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं और हरेक अवस्था में आनन्द प्रसन्न रहते हैं। जैसे चुम्वक के पास पड़े हुए कच्चे लोहे में चुम्वक के गुण संक्रान्त हो जाते हैं उसी प्रकार प्रभु भक्ति द्वारा पवित्र वन गये व्यक्ति में प्रभु के गुण प्राप्त करके ऐसे लोगों का अपना जीवन भी दूसरे लोगों के लिये चुम्वकीय वन जाता है।

५—भक्ति का पाँचवाँ लाभ यह होता है कि इस प्रकार प्रभु-भक्ति द्वारा पूर्ण पवित्र वना हुआ व्यक्ति जव इस शरीर को छोड़ता है तो वह इस पवित्रता के फल स्वरुप सीधा मुक्तावस्था में चला जाता है। उस अवस्था में वह प्रकृति के वन्धन से सर्वथा मुक्त हो कर प्रभू का प्रत्यक्ष अनुभव करता है।भगवान आनन्दमय है, वेद के शब्दों में "रस से तृप्त है मुक्तावस्था के साक्षात्कार में भगवान का यह आनन्द यह अमृत-मुक्तात्मा में वहुत अधिक मात्रा में संक्रान्त हो जाता है। मुक्तात्मा एक वहुत लम्वे. समय के लिये इस आनन्द का-इस अमृत का-उपभोग करतारहता है प्रभु-साक्षात्कार से जो आनन्द प्राप्त होता है वह इतना अधिक है कि उस का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। उपनिषदों के ऋषियों ने कहा है कि वह आनन्द तो अन्तःकरण से अनुभव करने की वस्तु है, उस का वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता ।,, सभी अनुभूतियों के साथ यह वात लगती है। नमक और खाण्ड का स्वाद कैसा होता है उन्हें चखकर अनुभव से ही जाना जा सकता है। जिस ने नमक और खाण्ड कभी चखे नहीं हैं उसे शब्दों द्वारा इन का स्वाद कैसा होता है यह नहीं यह नहीं समझया जा सकता. । उसे नमक और खाण्ड खिला कर ही उन का स्वाद अनुभव कराया जा सकता है यही वात भगवान के साक्षात्कार से मिलने वाले आनन्द के सम्वन्ध में है। फिर भी उस आनन्द का हलका सा अनुमान कराने के लिए उपनिषदों के ऋषियों ने कहा है एक पुरुष पूर्ण युवा हो, पूर्ण स्वस्थ हो, पूर्ण विद्वान हो, सुन्दर हो, उसकी पत्नी भी ऐसी ही हो और वह सारी धरती का चक्रवर्ती सम्राट हो जिस का कोई भी शत्रु न हो, ऐसे पुरुष के मन में जो प्रसन्नता और सुख होगा उसे एक पुरुष सुख समझना चाहिये । ऐसे २ सौ पुरुष सुखों को एक पितृ सुख समझना चाहिये । एक सौ पितृ-सुखों को एक देव-सुख समझना चाहिये ।

और ऐसे सौ देव-सुखों को एक प्रजापति-सुख समझना चाहिए ऐसे सौ प्रजापति-सुखों से भी अधिक सुख व्रह्म-साक्षात्कार की अवस्था में पहुंचे हुए व्रह्मज्ञानी को होता है ईश्वरोपासना से हम इस अद्भुत आनन्द को प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं । ईश्वर के साक्षात्कार का अदभुत आनन्द होता है यह सभी साधनों का अनुभव है ऋषि दयानन्द जव अठारह २ घण्टे की समाधि लगाकर वैठा करते थे तो उस समय के ईश्वर-साक्षात्कार के कारण वे आनन्द विभोर हो जाते थे। आनंद से उनका सारा शरीर रोमांचित हो जाया करता था और उनकी आँखों से आँसू झरने लगते थे। सभी पहुँचे हुए ईश्वर भक्तों का ऐसा अनुभव है ईश्वरोपासना हमें इस आनन्द की ओर ले जाती है।

भक्ति से ये पांच लाभ प्राप्त होते हैं। इस लिए हम सवको भगवान की भक्ति करनी चाहिये । पर भक्ति से ये पाँच लाभ तभी प्राप्त होंगे जव हम उसके द्वारा भगवान के सत्य, न्याय आदि गुणों को धारण करके पवित्र वन जायेगे । क्लेश घटाने की नीयत से सौदे के रुप में की हुई भगवान की खुशामद-रुप भक्ति से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है । भक्ति का वास्तविक मनोवृति हमारे भीतर पैदाहोनी चाहिये । तभी उससे लाभहोताहै ।

——

उपासना क्यों करें ?

(लेखक—प्रो० रत्नसिंह एम० ए०)

उपासना क्यों करें ? यह जलता प्रश्न आज के शिक्षित मस्तिष्कों को आंँदोलित करता रहता है। विद्वान विचारक लेखक ने नास्तिक विचार-धाराओं कों चुनौती देते हुए प्रस्तुत लेख में जों तर्क उपस्थित किए हैं वे हमारे सुप्त आत्माओं को प्रबुद्ध करने की सामर्थ्य रखते है ऐसा हमारा विश्वास है। —सम्पादक

ईश्वर-उपासना की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक शङ्काएं की जाती रही हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

(२)—ईश्वर उपासना में जितना समय व्यतीत किया जाता है, वह यदि लोकोपकारी कार्यों में लगाया जाय तो मानव सुख योग में वृद्धि हो सकती है। मोटे तौर पर एक व्यक्ति यदि उपासना में प्रतिदिन २० मिनट का समय व्यय करता है तो वह एक वर्ष में इस कार्य में १२० घण्टे व्यर्थ ही नष्ट कर देगा है। इतना समय वह यदि श्रमदानादि उपयोगी कार्यों में लगावे तो राष्ट्र को सम्पत्ति में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है।

( )—उपासक लोग कहते हैं कि उपासना से उपासक उपास्य देव के निकट पहुँच जाता है और उसके सन्निकर्ष से उसके समस्त पाप दूर होकर वह सर्वथा निर्मल, सच्चरित्र, सदाचारी एवं धर्म श्रेष्ठ हो जाता है। परन्तु व्यवहार में तो विपरीत ही देखने में आता है। बड़े बड़े ईश्वर भक्त अत्यन्त घृणितएवं निन्दनीय पाप, अत्याचार बलात्कार, दुराचार, भ्रष्टाचार, चोरी, बदमाशी, छल, कपट, हत्या सभी कुछ करते देखे गये हैं। ईश्वर उपासकों की इन काली करतूतों को देखते हुए भी हम उपासना की रट लगावें तो इस से अधिक विडम्बना और मूर्खता क्या होगी ?

( )—कर्म सिद्धान्त बतलाता है कि हमें अपने कर्मानुसार शुभाशुभ फल अवश्य प्राप्त होता है। जैसा बोओगे वैसा काटोगे।" "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभ्।" अग्नि में हाथ डाल कर आप कितना ही मन्त्र जाप करलें, हाथ जले बिना न रहेगा। फिर उपासना द्वारा ईश्वर की खुशामद किए ?

इन आक्षेपों के औचित्य एवं अनौचित्य पर थोड़ा विचार करतेहैं। प्रथम आक्षेप सर्वथा निराधार एवं निर्मूल है। अन्य अनेक उपयोगी कार्यों की भांति ईश्वर उपासना भी एक अनिवार्य उपयोगी कार्य है। उपयोगीएवं आवश्यक कार्यों में समय देना ही पड़ता है। फिर उपासना के पीछे लट्ठ क्यों ? व्यायाम, स्नान, भोजन, स्वाध्याय, व्यापार आदि सभी कार्यों में समय लगाया जाता है। यदि कोई अज्ञानी ऐसा कुतर्क करने लगे कि भोजन बनाने में जो प्रतिदिन लगभग एक घण्टा समय दिया जाता है उसे वहां से हटाकर लोकोपयोगी कार्यों में लगा दिया जाय तो उत्तम रहेगा, तो क्या आप उसकी बुद्धि पर तरस न खायेंगे ? वस्तुत: यह सिद्ध होने पर ही कि उपासना एक अनावश्यक, अनुपयोगी तथा अवांछनीय कार्य है, यह विचार किया जा सकता है कि उसमें व्यय किये समय को अन्य उपयोगी कार्यों में लगाया जाय। परन्तु जब तक इस मान्यता की सत्यता असिद्ध है इस पर ऐसी शङ्का करना अनुचित है।

दूसरी शङ्का के करने वाले भाई अज्ञानवश यह समझ

लेते हैं कि उपासना और अनाचार में कोई कारण कार्य सम्बन्ध स्थित है ? अर्थात् उपासना अनाचार की एक नियत, पूर्ववर्ती, निरुपाधिक तथा अव्यवहित घटना है। जगत् में सभी पाप उपासना के परिणाम स्वरूप होते हैं, ऐसी बात तो नहीं है। अनेक पापी ऐसे हैं जिनका उपासना से दूरस्थ-सम्बन्ध भी नहीं है। हाँ यह सत्य अवश्य है कि कई भक्त उपासक पाप कर डालते हैं। परन्तु उनका यह पाप उपासना का फल नहीं वरन् उनके पाखण्ड का परिणाम है। सदैव शुद्ध खादी से निर्मित कुर्त्ता धोती पहिनने वाला व्यक्ति यदि चोरी करले तो आप यह तो नहीं कहेंगे कि इसे चोरी इस लिए की है क्योंकि यह खादी का यह कुर्ता धोती पहिनता है। चोरी का कारण तो उसका चारित्रिक दोष है। उसी प्रकार ईश्वर का उपासक अपने किसी पूर्व अर्जित चारित्रिक दोष के कारण कोई पाप कर सकता है। हम भूल से यह समझ लेते हैं कि उपासना कोई जादू की लकड़ी है जिस के फेरते ही क्षण में सब कुछ ठीक हो जाता है। उपासना के भी शिक्षा की भाँति कई स्तर हैं। प्राइमरी कक्षा तथा एम-ए कक्षा दोनों में पढ़ने वालों को आप विद्यार्थी संज्ञा से सम्बोधित करेंगे। प्राइमरी कक्षा का विद्यार्थी यदि गणित के एक साधारण तथा सरल प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे पाता तो उस से यह परिणाम निकालना कि एम. ए का विद्यार्थी भी वैसे प्रश्नों के उत्तर देने में भूल अवश्य करेगा, न्यायसंगत न होगा। उपासना की प्रारम्भिक अवस्था में उपासक अपने अन्य दोषों के कारण प्रलोभनों का शिकार होकर कोई पाप कर सकता है। परन्तु उसका कारण उपासना नहीं वरन् उसके पूर्व दोष हैं। यदि वह उपासना न करता तो सम्भव है वह और अधिक संख्या में पाप कर डालता। उपासना से अर्जित सद्गुणों (Virtues) का भी शनैः शनैः क्रमिक विकास होता है। एक ही दिन में प्रातः सायं आंख मूंद कर (भूर्भुवः स्वः ' का पाठ करने तथा हवन करने से कोई 'दयानन्द' या 'गौतम' 'कणाद बन नहीं जाता। उसके लिए अपेक्षित है वैराग्य और सतत् अभ्यास। इसी प्रसंग में यह भी तथ्य ध्यान देने योग्य है कि अधकचरा उपासक भी पाप तभी करता है जब वह अपने उपास्य देव को विस्मृत कर देता है। उपास्य देव सामने रहें और साधक से पाप हो जाय, यह हो नहीं सकता।

अब तीसरी शंका की ओर आते हैं। यह सत्य है कि हमें अपने कर्मानुसार फल मिलता है और ईश्वर की उपसना न करने पर भी हमारे कर्मों का फल हमें प्राप्त होता रहेगा। परन्तु इस बात से उपासना की उपयोगिता पर तो कोई आक्षेप नहीं आता। उपासना भी एक कर्म है। यदि आप उसे न करेंगे तो उससे प्राप्त फल से वंचित अवश्य रहेंगे। शेष सब कर्मों के फल मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे। परन्तु हानि तो यह रही कि उपासना का जो मृदु फल मिलना था, वह न मिल सकेगा। वह कौन सा फल है ? बस उसे मत पूछो। उसका वर्णन वाणी व लेखनी नहीं कर सकती। वह तो अनुभव का विषय है। उपासना का अर्थ है समीपस्थ होना। किसके समीपस्थ होगा ? ईश्वर के। उसके समीपस्थ होने से क्या प्राप्त होगा ? वही जो उसी के पास है, अन्यत्र नहीं। वह क्या है ? वह है "आनन्द" क्योंकि सत् व चित् तो जीवात्मा भी है परन्तु सत् चित् तथा आनन्द तो केवल परमेश्वर ही है।

रही खुशामद की बात। उपासना खुशामद नहीं है और न ईश्वर किसी की खुशामद में आता है। उपासना के साथ स्तुति करने को खुशामद नहीं कहा जा सकता। किसी वस्तु के गुणों का वर्णन करना, उनका चिन्तन करना, जिन्हें जानकर हमें लाभ पहुँचे, खुशामद नहीं कहलाता है। अग्नि के गुणों का ज्ञान प्राप्त कर उससे उचित लाभ उठाना क्या खुशामद कहा जा सकता है ? खुशामद तो उसे कहते हैं जहां हम किसी व्यक्ति से अनुचित लाभ उठाने के लिए (जिसके हम पात्र नहीं हैं) उसकी झूठी प्रशंसा कर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। स्पष्ट है उपासना में ऐसा नहीं होता। और यदि कोई इसी भावना से उपासना करता है तो वह उपासना नहीं वरन् ढोंग व पाखण्ड है और सर्वथा निन्दनीय है।

* * *

प्रश्न जो आज भी उलझा है ?

(सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर)

अशांत विश्व आज शांति की खोज में भटक रहा है किन्तु कहीं विनाश प्राप्त नहीं हो रहा। कहां जाए, क्या करें, उलझन कैसे सुलझे इस समस्या का हल शाँति का निमन्त्रण है विद्वान लेखक का यह लेख हम सभी के मानस को झकझोंरनें की सामर्थ्य रखता।

—सम्पादक

बहुत प्राचीन समयमें,एक दिन महर्षि आरुणि ने आचार्य अलर्क के आश्रम से विद्याध्ययन कर लौटे हुए अपने तेजस्वी पुत्र श्वेतकेतु से मुस्कराते हुए एक प्रश्न किया था-"वह क्या है, जिसे जान लेने पर और कुछ जानने को नहीं रह जाता ? वह क्या है, जिसका अनुभव होने पर और कुछ अनुभव करने को नहीं रह जाता? वह क्या है, जिसे साध लेने पर और कोई साधना बाकी नहीं रह जाती ? ,

प्रश्न परमार्थिक थे और पढ़े-लिखे, किन्तु अनुभवहीन श्वेतकेतु के पास तत्काल देने के लिए कोई उत्तर नहीं था । विद्याव्यसनी, परमब्रह्मचारी और प्रतिभा की सजीव मूर्ति श्वेतकेतु चुप रह गये। आरुणि का वह प्रश्न और श्वेतकेतु का वह मौन मानव-जाति के इतिहास में अब तक अविचल-अखंड चला आ रहा है ।आज जब हम ध्वंस, परिवर्तन और पुनर्निर्माण के क्राँतियुगमें भटक रहे हैं,हमारे विस्तृत विशाल श्मशान-से भयावह इस भूमंडल में फिर छाया हुआ है वही प्रश्न चारों ओर गूंज रहा है-अनेक प्रकार से, अनेक रुप 'युद्ध क्यों ? 'आदर्श क्यों ? उद्देश्य है, तो क्यों ? समाज क्यों ?' 'शिक्षा और धर्म क्यों ? आदि-आदि।

'यही क्यों ?' 'वही क्यों नहीं आदि सैकड़ों शाखाएं हैं, इस प्रश्न की। स्पष्ट है कि, हमारे विचारक और राजनेता इस प्रश्न को अभी ठेलते ही आये हैं इसका उत्तर उनसे बन नहीं पड़ा है। हो सकता है कि, दो-चार मनीषी-महापुरुषों ने इस प्रश्न का सही-सही उत्तर सोचा हो, किन्तु सारा जीवन खपा देने पर भी उनकी वाणी हमारे कान तक नहीं पहुंच सकी है-हमने कानों को कहीं अन्यत्र एकाग्र कर रखा है। मनुष्यसमाज के निरंतर विकृत बने रहने का सबसे बड़ा कारण यही है रोग को टालना बुद्धिमानी कैसे कही जायेगी ? किन्तु आज तो स्थिति ऐसी हो गयी है कि, इस सनातन प्रश्न को हल किये बिना- इसे सदैव के लिए अंतर्धान किये बिना-हमारे लिए जीना भूकम्प पर बैठ कर जीना है और फिर यह भूकम्प ऐसा होगा कि, मनुष्य नाम के जीव का नामोनिशान भी शायद ही बचे। अतः आज हमारे अपने ही अस्तित्व का तकाजा है कि, हम महर्षि आरुणि के इस युग-युग-पुरातन, गम्भीर प्रश्न को अपने हाथ में लें, पूरी हार्दिकता के साथ उसका उत्तर खोजें ।

हमारी शोचनीय स्थिति असह्यता की सीमा लांघ चुकी है। आज कलाकार, शास्त्री शिक्षाविद तथा वागीश की व्यावहारिक क्षेत्र में क्या स्थिति है ? कलाकर पहले भी मनोरंजन का साधन था और आज भी वह वही है। वह अपने अभावों को रोता रहता है। वह दीन है,आश्रित है, विवश है । और वैज्ञानिक ? अपने भगीरथ प्रयत्न और सम्पदा की वृद्धि होने पर भी उसके सिर पर तो बेशुमार हत्याओं का बोझ लदता ही जा रहा है। उसकी तपस्या, उसकी साधना का उपयोग आज नरमेध में किया जा रहा है । राजनीति ? वह तो आज लक्ष्मी के रूप में ढल कर जीवन की सबसे बड़ी छलना सिद्ध हुई है ।और ज्ञानियों को जो भोगना पड़ा है, उसने भी हमें कम अनुताप नहीं दिया है। ज्ञानियों को या तो उपेक्षा मिली है, या मृत्यु-शूलियाँ और गोलियाँ। ऐसी स्थिति में गुजरनेवाले जगत् को, हम मानवों का जगत कैसे कहें दरअसल, हमारी स्थिति तो पशुओं की सी भी नहीं रही, क्योंकि पाशविक जीवन का दशाँश नियमन भी तो हममें नहीं है। हां, उसकी उद्दाम लालसाएं अवश्य है। हमारी दार्शनिक पृष्ठभूमि को हमारे ही मन के दावानल ने झुलसा रखा है।

ऐसी परिस्थिति में क्या हमारी जीवनगति का यह प्रवाह ठीक है-क्या केवल गतिमयता ही इस सनातन जीवन का लक्ष्य होना चाहिए ! क्या चलना ही पहुंचना है ? नहीं,यह सब अंध प्रवाह है, आंख मूंद कर अतल में गिरने की मरीचिका है। इस तरह जीवन की समस्या कभी हल न हो सकेगी इसीलिए तो चौदह विद्याओं और

चौंसठ कलाओं में निष्णात श्वेतकेतु से पुण्यात्मा आरुणि ने पूछा था कि, बताओ, तुम जीवन के बारे में क्या जानते हो ? हम भी आज यही पूछना चाहते हैं। हम मानते हैं कि, मानव-प्रयत्नों का अंत शायद श्वेतकेतु का मौन ही है। पर श्वेतकेतु का मौन प्रारम्भ का था, अंत का नहीं। उस मेधावी ने प्रयत्न किया, मंथन किया और आखिर उत्तर भी खोज निकाला। उस मन-पूत का जीवनाचरण ही इस प्रश्न का एक उत्तर है।

यह कहना गलत है कि, हमारा अस्तित्व उद्देश्यहीन और आधाररहित है। केवल दर्शक की आँखों से देखना बंद कर, जब हम कर्मिष्ठ की दृष्टि से अपने आदि और अंत को देखेंगे, तब हमें जीवन का जो रसमय 'प्रदान' प्राप्त होगा, वह स्पष्ट कर देगा कि, हमारी देखने की दृष्टि गलत है। और, अगर हम यह मान भी लें कि, आरुणि का उत्तर आरुणि तक ही है-वह सर्वग्राह्य नहीं हो सकता-तब भी हमें श्वेतकेतु के समान उस प्रश्न को हृदय में धारण करना ही पड़ेगा। प्रश्न की धारणा उत्तर का निर्माण अपने आप करती जायेगी यदि हमारी विह्वल बुद्धि स्पष्ट और निश्चित उत्तर न दे, तो भी हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि जीवन प्रमाण की वस्तु नहीं है वह स्वयं प्रमाणों का प्रमाण है। उसी से सभी प्रमाण प्रमाणत्व प्राप्त करते है। जिसे हम, पहेले समझ कर टाल रहे हैं, वह हमारी कर्मशाला में एक आकुल प्रश्न होकर जीवन प्रद चिंता में बदल लायेगा माना कि, चार्वाक के अनुसार जानने के समान,न-जानने का भी एक संतोष है पर जाननेका आतुर-आतप्त संतोष न जान सकने की असहाय तृप्ति से कहींश्रेष्ठ है, इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः हमारी एकमात्र चिंता इसी सनातन प्रश्नमाला को कर्मार्पण करने की ही होनी चाहिए। नचिकेता ने उसी की चिन्ता की थी और उसकी वह चिंता तीन वरों के त्याग से हमारी संस्कृति के इतिहास में अमर है। यम ने नचिकेता की इसी अमर चिंता को प्रत्येक गृहस्थ के घर में स्थापित किया था। हम बता नहीं सकते कि, श्वेतकेतु और नचिकेता को कौन-सा साध्य मिला, पर यम-स्वंयमृत्यु-के मुख से दियागया अमरता का ज्ञानोपदेश क्या इस सनातन प्रश्न का कम महत्वपूर्ण उतर है ? क्या जीवन की कई ग्रंथियों को उसने छिन्न-भिन्न नहीं कर दिया ? क्या हमारी प्रज्ञा तिमिर के सहस्त्र-सहस्त्र द्वारा खोल निःसीम प्रकाश की अधिकारिणि नहीं बन गयी ?

अतः हम आज फिर शांति-सौहार्द के उपासक, इस मानव-मानस के सामने महर्षि आरुणि का सनातन प्रश्न रखने का साहस करते हैं। जीवन के सत्य की खोज करनेवाले उस प्रश्न से न डरेंगे, न झुंझलायेंगे, न उसकी उपेक्षा ही करेंगे। स्थूल आंखों के थकने पर मन के नयन देखते हैं, और मन के नयन जब थक जाते हैं, तब आत्मा की पलकें खुलती हैं। गृहस्थ थकेगा, सब शास्त्रीं और अध्यापक देखेगा दिखावेगा और जब ये सब थक जायेंगे, तब महर्षि आरुणि के समान किसी का जल्द गम्भीर स्वर हम श्वेतकेतुओं को पुकार कर कहेगा "उसे जानो, जिसे जान कर, जिसका स्वाद पाकर, जिसकी साधना कर, सब-कुछ पा लिया जाता है।"

मुरारी ब्रदर्स कमलानगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

उपासना की ओर

(ले० श्री हरिदत्त शास्त्री नवतीर्थ)

कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है यदि कोई व्यक्ति आलस्य वश या हठात् शरीर के कर्म को रोक भी ले तो भी उसकी मानसिक क्रिया कदापि अवरुद्ध नहीं हो सकती अतएव गीता में यह वाक्य आता है कि—

नहिं कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत् ।
कार्य ते ह्यवशः कर्मं सर्वः प्रकृति जैं गुणैः ॥

अर्थात् कोई व्यक्ति एक क्षण के भी लिये शान्त नहीं रहता, शरीर यदि कार्य न भी करे तो उसका मन ही काम किया करता है। अब विचारणीय यह है कि काम तो होगा ही पर वह काम यदि ज्ञान पूर्वक न हुआ तो वह 'अकर्म' या 'विकर्म' कहलायगा तथा बुरा हुआ तो 'कुकर्म' कहा जायगा। इसलिये इस कर्म को किसी बन्धन में बाँधना चाहिये इस दृष्टि से ज्ञान और उपासना के दो बन्धन दिये गये हैं। मनुष्य अल्पज्ञ है अतः कर्म अपनी समझ से ज्ञान पूर्वक भी करे तो भी भूल हो सकती है ऐसी अवस्था में उसे परिणाम देखकर कर्म के भविष्य में करने या न करने का निश्चय करना चाहिए यह परिणाम देखकर निवृत्ति या प्रवृत्ति 'उपासन' द्वारा होती है। इसी लिए 'कर्म' उपासना को अन्त में रक्खा है। 'निदिध्यासन' और 'उपासन' में शब्दतः भेद हैं पर अर्थतः एकत्र है। 'नि' उपसर्ग पूर्व का सन्नत्तध्या धातु से निदिध्यासन कहाता है। जो कि अद्वितीय वस्तु विषयक तदाकाराकारित चित्तवृत्ति है। जब किसी वस्तु को मन में जमा लिया जाता है तो तदन्तर उस वस्तु का विचार करना निदिध्यासन होता है। 'उपासना' में भी जिस का 'ज्ञान' हो गया या कर लिया गया उसके समीप हम बैठ कर कुछ आत्मनिरीक्षण करने का ही अभ्यास करते हैं। इस लिए 'कर्म' को उचित मार्ग से प्रवृत्त करने के लिए 'ज्ञान' और 'उपासना' का सम्पुट दिया गया है अतएव सारी दुनिया ज्ञान, कर्म, उपासना यही क्रम स्वीकार करती है। गीता में भी छः छः अध्यायों का यही कर्म रक्खा गया है। अतएव "ॐ तत्सत" इति निर्देशो ब्रह्मण स्त्रिविधः स्मृतः" इस गीता वाक्य द्वारा सब के अन्त में १८ वें अध्याय में उपासना का प्रकार निर्दिष्ट किया है।

जीवन की राह पर हम घबराएँ नहीं, बढ़ें चलें और विजय हमारे चरण चूमे यह प्रयत्न सभी को होना चाहिए। किन्तु कैसेबढ़ें हम यहजानने के लिए विद्वान् लेखक का हम सभी को प्रेरणा दे सकेगा।

वेद तीन हैं क्योंकि उक्त कर्म या कार्य तीन हैं तीनों वेदों ने एक एक विषय बाँट लिया है, ऋग्वेद ने स्तुति लेली, यजुर्वेद ने कर्म ले लिया तथा साम वेद ने उपासना लेली, इसीलिए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ऋषि ने साम वेद का विषय निरूपण करते हुए स्पष्ट ही लिखा है कि—

"सामवेदे ज्ञान क्रिया विभयोदीर्घ विचारेण फलावधि पर्यन्तं विचारः" इस वाक्य का यह अर्थ है कि ऋग्वेद से स्तुति द्वारा परमात्मा के या कर्म के रूप का ज्ञान हुआ तथा उस ही ज्ञान वस्तु की प्रप्ति के लिऐ यजुर्वेद द्वारा क्रिया की गई, एवं ज्ञान काण्ड का परिज्ञान ऋग्वेद ने कराया क्रिया विद्या, क्रिया विद्या या क्रिया काण्ड का परिचय यजुर्वेद ने कराया तो अब उसका फल लेने के लिए दीर्घ अवधि तक यहाँ तक फल न मिले तब तक उस ज्ञान एवंअनुष्ठित कर्म उपासना प्रतीक्षा या विचार आदि में किया जाता है ये ही उपसना है इस लिए धीरे मन्त्र बोलते हुए जो अर्थानुसन्धान पूर्वक मन्त्र का रस चूसा जाता है वही उपासना है। इसी लिये 'साम' पद 'सा' (पोडन्तकर्मणि) धातु से या 'साम सान्त्व प्रयोग से व्युत्पन्न होता है यह ऋषि ने स्वीकार किया है। गान के द्वारा शान्ति मिलती है तथा दुःखों का विचार पूर्वक अन्त भी हो जाता है अतएव "ज्ञानाग्निः" सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते ऽर्जुन" यह वाक्य गीता में आता है। इसीलिए साम वेद में इन्द्र, अग्नि आदि पद एक मात्र परमात्मा के लिये प्रयुक्त होते हैं यह मानने में तो अर्थ सुसंगत बैठ जाता है अन्यथा नहीं।

वेदप्रकाश

का और एक विशेषांक

अप्रैल में प्रकाशित होगा।

वेदप्रकाश का लक्ष्य स्वाध्याय योग्य साहित्य प्रकाशित करना और वेद प्रकाश के पाठकों को सुलभ मूल्य में पहुँचाना है। तदनुसार आर्यसमाज स्थापना दिवस पर प्रकाशित हो रहा है।

बृहदारण्यक—उपनिषद्—कथामाला

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज की उपरोक्त कथा जो कि उन्हों ने ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में श्रोताओं के आगे कही जिसे सुनकर सब मुग्ध हो गए तथा स्वामी जी से उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना की।

बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी, जनक तथा गार्गी संवाद बड़े ही रोचक और शिक्षा प्रद हैं अहं ब्रह्मास्मी इत्यादि अनेक विचार ग्रस्त स्थलों का भी यथार्थ समाधान किया है, अनेक आलंकारिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है जो अपने ढंग का नया ही दृष्टिकोण प्रतीत होगा। सर्वसाधारण सांसारिक जनों के लिये बहुत ही उपयोगी है, समाजों और सत्संगों में कथा करने योग्य कथायें हैं। बढ़िया कागज़, अच्छी छपाई तथा सुन्दर आवरण सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) मात्र। वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में तथा डाक रजिस्ट्री के ।।) मिलाकर शीघ्र २।।) भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

आनन्द गायत्री कथा	।)
एक ही रास्ता	।।=)
शंकर और दयानन्द	।=)।।
प्रभुभक्ति	१।)
प्रभु दर्शन	२।।)
तत्व ज्ञान	३)

पुस्तकें पढ़िए—

गोविन्दराम हासानन्द

नई सड़क दिल्ली।

सृष्टि का इतिहास

स्वनामधन्य आर्य पैथिक स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी लिखित "त्वारिखेदूनियां" उर्दू पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो गया। आर्य समाज के विद्वानों का मत है कि 'सृष्टि के इतिहास" को उर्दू से हिन्दी में प्रकाशित करके हिन्दी साहित्य की और साथ-साथ पुरातत्व विभाग की भारी सेवा की है। पं० लेखराम जी ने भिन्न-भिन्न सृष्टि संवतों पर तथा वेद, मनु ज्योतिषशास्त्र की रचना काल पर बहुत ही गहराई में जाकर खोज की है और वर्तमान पुरातत्व वेत्ताओं को इस खोज से बहुत सहायता मिल सकती है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है रियायती मूल्य १।।) है।

ऋषि दयानन्द का शिव-दर्शन

[श्री प० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसा तीर्थ विद्या मार्तण्ड, वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान]

शिव का नाम शंकर जगत्प्रसिद्ध है। क्या शंकर वही है जिसका विकराल, बीभत्स रूप पौराणिक भाई बतलाया करते हैं? वह रूप वस्तुतः ऋषि दयानन्द को अभिमत नही है।

ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि और पंचमहायज्ञ विधि में, संन्ध्या के मन्त्रों में शिव, शंकर दोनों नामों से नमस्कार करने का विधान किया है। और यजुर्वेद के भाष्य मे नमः शम्भवाय च (यजु० १६।मन्त्र ४१) के मन्त्रार्थ में ऋषि दयानन्द ने परमेश्वर और सेनापति के पक्ष मे अर्थ दर्शाए हैं। स्पष्टता के लिये वह मन्त्र इस प्रकार है

नमः शंभवाय च मयो भवाय च,
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च॥
(यजु० १६।४३)

इसका देवता रुद्र है। तब स्पष्ट है कि दुष्टों के रुलाने वाले के ही शम्भव आदि नाम है। परमेश्वर सब से बड़ा 'रुद्र'होने से ये विशेषण सब परमेश्वर के हैं ही। परन्तु 'रुद्र' दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति आदि राज्याधिकारी भी होते है,उनके भीविशेषण होने चाहियें।

ऋषि दयानन्द की प्रबोध रात्रि शिवरात्रि है ११ वर्ष के बालक मूलशंकर मे शिव रात्रि के जागरण में शिव का साक्षात् किया कि वह पत्थर की शिवलिंगी पिण्डी शिव नहीं शिव कुछ अन्य वस्तु है। उसी को पाने की उत्सुकता में बालक मूलशंकर ने अपने जीवन मार्ग को बदला गृहस्थ न होकर परिव्रज्या का मार्ग लिया।

आखिर,ऋषि दयानन्द नें शिव का क्या स्वरूप जाना उसके किस स्वरूप का उपदेश किया इसका दिग्-दर्शन इस लेख में विद्वान लेखक नें किया है संपादक

इन विशेषणों में शंकराय' का अर्थ ब्रह्म लिखते हैं—

(शंकराय) यः सर्वेषां सुखं करोति।

शंकर वह है जो सबको सुख उत्पन्न करता है। इसी मन्त्र में 'शिवाय' का अर्थ भी है।

(शिवाय) मंगल कारिणे।

शिव वह है जो सबका मंगल अर्थात् कल्याण करता है उस का सत्कार करना चाहिये।

इसी प्रकार वेद भाष्य में ऋषि ने उन अनेक नामों को स्पष्ट किया है जिनको महादेव शंकर के पर्याय नाम माना जाता है। जैसे शंकर को 'पशुपति' कहते है, अर्जुन ने इन्द्र कील पर्वत पर पाशु पतास्त्र लेने के लिये शिव की अराधना की थी। यह 'पशुपति' कौन है?

यजुर्वेद का मन्त्र (१६।४०) है—

नमः शं गवे च, पशुपतये च नम उग्राय, भीमायच।

यहां 'पशुपतये' का अर्थ किया है—

(पशुपतये) गवादिपशूनां पालकाय।

अर्थात्—गौ आदि पशुओं का पालन करने वाला 'पशुपति' है। पौराणिक शिव के पास तो केवल क नांदिया बैल पशु है। परन्तु परमेश्वर मात्र जीवों वा पशुओं का पालक तो है ही, परन्तु हमारे पशुओं का पालन करने वाले वे व्यक्ति जिन्होंने पशु पालन में ही अपना जीवन अर्पित कर रखा है, वे सब पशु पालक पशुपतिही हैं।

शिव 'उग्र"

शिव का एक पर्याय नाम 'उग्र' है। ऋषि ने 'उग्र' का अर्थ लिखा है—

(उग्राय) तेजस्विने।

उग्र तेजस्वी को कहते हैं।

शिव 'रुद्र'

शिव का एक पर्यायनाम 'रुद्र' है। ऋषि लिखते हैं--

नमः सोमाय च रुद्राय च० (यजु० १६।३९)

रुद्राय दुष्टानां रोदकाय।

रुद्र वह है जो दुष्ट पुरुषों को रुलाता है ईश्वर तो है ही रुद्र। साथ ही राज्य के वे अधिकारी भी जो दुष्ट अपराधी लोगों को पकड़ते और उनको दण्ड देते हैं 'रुद्र' हैं।

शिव 'कपर्दी'

शिव का एक नाम पर्याय 'कपर्दी' है। लोकभाषा में कपर्द' का अर्थ है जटा जूट। शिव ने जटा जूट में गंगा को

धारण किया ऐसा लोकवाद है। परन्तु पंजाब के उत्तरभाग में पर्वत मालाएं 'शिवालक' नाम से प्रसिद्ध हैं। वे पर्वत मालाएं शिव के अलक अर्थात् मस्तक के ऊपर के बाल हैं। उसको 'शिखालिक भी कहते हैं। अलिक का अर्थ है ललाट, मस्तक।

वह शिव क्या है? जिसके ये गिरि मालाएं बाल, जटा जूट या मस्तक है। वस्तुत: यह शिव का एक आलंकारिक स्वरूप है। समस्त पृथिवी स्वत: यह शिव का एक आलंकारिक स्वरूप है। समस्त पृथिवी स्वत: शिवकी प्रत्यक्ष मूर्ति है।

शिव आदि अनेकनाम्

ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में प्रथम समुल्लास में ईश्वर के १०० नाम दर्शाते हुए कुछ वेद मन्त्र और उपनिषद् वचन उदृत किये हैं । एक उद्धरण कैवल्य उपनषित् का इस प्रकार है—

स ब्रह्मा स विष्णु: सरुद्र: स शिव: सोऽक्षर:
परम: स्वराट्। सइन्द्र: सकालाग्नि: स चन्द्रमा:।

इस उद्धरण मेंरुद्र और शिवयेदो नाम शंकरके पर्याय नाम है। और चंद्रमा : शंकर के आठ तनुओं में एक है इस उद्धरण से प्रतीत होता है कि रुद्र, शिव और चंद्रमा: उसी परमेश्वर को ही बतलाते हैं जिसे वेद ने ब्रह्म, विष्णु परम अक्षर इन्द्र, अग्नि, स्वराट आदि कहा है। इस उद्धरण के अन्तर्गत इन नामों पर ऋषि की व्याख्या दर्शनीय है। जैसे—

दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने से वह परमेश्वर 'रुद्र' है। मंगलमय, सबका कल्याण कर्ता होने से वह 'शिव' शिव कल्याणे। इस से शिव शब्द सिद्ध होता है। जो स्वयं कल्याणस्वरूप और सबका कल्याण करने वाला है इसलिये उस पर परमेश्वर का नाम शिव है।

समय की सब से बड़ी आवश्यकता आज यह है कि हम पत्थर के शिव की पूजा छोड़ सच्चे शिव की उपासना का संकल्प लें। यही सच्चा पथ है मानव कल्याण का।

दाँतों के समस्त रोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ
आयुर्वेदिक] दन्त-कल्प-मन्जन [महौषधि

अकरकरा, लौंग, माजूफल, जायफल, बज्रदन्ती, कपूर आदि मूल्यवान २७ जड़ी-बूटियों द्वारा निर्मित दन्त-कल्प-मंजन' प्राय: समस्त दन्त रोगों को समाप्त करने की शक्ति रखता है।

पानी लगना, चीस रहना, रक्त या पीप का आना मसूड़े सूजना, पायोरिया जैसे भयंकर रोग इसके निरंतर सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

सेवन विधि—किसी भी रोग में दिन में ४ बार (उठते ही सुबह, भोजन के बाद, रात कोसोते समय) सरसों का ४-५ बूँद तेल मिलाकर ५ मिनट तक लगाएं लगाने के ५ मिनट बाद गरम पानी से कुल्ला करें। रोग के न होनेपर साधारण मंजनकी भांति प्रयोग करें।=), ॥=), १=) और २) के लाल डिब्बों में

समस्त नेत्र रोगों के लिये
शीतल एवं] ज्योति-दा सुरमा [ज्योति वर्धक

सच्चे मोती, भीमसेनी कपूर, रतनजोत, समुद्रझाक जस्त, शंखभस्म, सफेद सुरमा आदि आयुर्वैदिक औषधियों द्वारा निर्मित 'ज्योति-दा सुरमा' का निरंतर प्रयोग प्राय: समस्त नेत्र रोगों को समाप्त करके ज्योति-बल बढ़ाता है।

ज्योति हीनता, कुकरे, परबाल, लाली आदि समस्त नेत्र रोगों के लिये यह अत्यन्त लाभप्रद है। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि इसका प्रभाव ऐनक तक उतरवाने की क्षमता रखता है।

सेवन विधि—सुबह उठते ही और रात को सोते समय सलाई से लगायें। दुखती आंखों में मक्खन मिलाकर लगायें। ध्यान रहे कि सुरमा धूप में न लगायें। खटाई, मिर्च तेल व मीठे का परहेज रक्खें।

मूल्य —।=), ।=, और १=) के तीन साईजों में हर जगह मिलता है।

अध्यक्ष भारनेन्द्र नाथ उत्तराखंड आयुर्वेदिक
रसायन शाला गाजियाबाद

उपासना का फल

(ले० मुनीश्वरदेव जी सिद्धान्त शिरोमणि, महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब)

सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास के निम्न लिखित प्रश्न और उत्तर सदा ध्यान में रखने योग्य है। (प्र.) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं? (उ.) करनी चाहिए (प्र.) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा? (उ.) नहीं, (प्र.) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना? (उ.) स्तुति से ईश्वर में प्रीति उस के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासनासे परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना।''

संसृति की छाया में सुख सौरभ का दान करने की चाह किसे न होगी? कौन न चाहेगा मन्द मन्द समीर सी मधुर शान्ति की कामना करना, किन्तु चाह कर भी कितनों ने पाया है उसे, यह एक समस्या है। कैसे कर सकेंगे हल इस प्रश्न को यह जानने के लिए विद्वान् मनीषि लेखक का लेख पढ़ डालिए।

—सम्पादक

इन प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की दिव्य दृष्टि में (उपासना) का फल परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना ही है। उस के सम्पादन के लिए आगे चलकर महर्षि लिखते हैं कि 'उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उस को सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिए। अर्थात्······ जो उपासना का आरंभ करना चाहे उसके लिए यही आरंभ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वथा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो, और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे।·········राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहिर पवित्र रहे, धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे, प्रसन्न हो कर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े पढ़ावे, सत्पुरुषों का संग करे। और ओ३म् इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्य प्रति जप किया करे, अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे।······जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देश में जा कर आसन लगा, प्राणायाम कर कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे। जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र हो कर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्य प्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ा कर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।··········इसका फल— जैसे शीत से आतुर पुरुष को अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं इस लिए परमेश्वरको स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इस से उस का फल पृथक् होगा। परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा। और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिए दे रखे हैं, उस का गुण भूल जाना, ईश्वर को ही न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।''

इस उद्धरण में सुविज्ञ, विचारक, पाठक देखेंगे और अनुभव करेंगे कि उपासना द्वारा ही मनुष्य उस विलक्षण

विभूति-मुक्ति को प्राप्त कर सकता है जिस के लाभार्थ वह जगत् में विचर रहा है। ईश्वर भक्त महा महिम महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सच्चे अर्थों में परमेश्वर की वेदोक्त विधि से उपासना करके ही इसके उस अद्भुत फल का साक्षात्कारक आस्वादन किया था जिसका कि वह निर्देश अपनी कुशल लेखनी द्वारा ऊपर कर रहे हैं। इस के अतिरिक्त ऋग्वेद ८।१३।१६ में आता है: —

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्मृतुथा दधे।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः।

अर्थात् वह सचवा स्तोता-उपासक हो सकता है, जो अनुव्रत — परमेश्वर के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार अपने गुण कर्म स्वभावों को बनाने की चेष्टा करता है, और उसी परमेश्वर के उक्थानि-–आज्ञा, आदेश व निर्देशों को ऋतुथा —नियमानुसार, दधे—धारण कर लेता है। फिर इस प्रकार के आचरण का फल यह होता है कि वह शुचिः—पवित्र, अपने स्वरूप में शुद्ध हो कर अन्य जनों को भी जो उस के सम्पर्क में आने वाले हैं उन्हें पावकः—पवित्र करने में समर्थ हो जाता है, इतना ही नहीं वह तो विवेकी जनों कीदृष्टि में भी अद्भुत— विचित्र गुण कर्म वाला भक्त गिना जाता है।

इस पवित्र ऋचा के अनुसार वही मानव सच्चे स्तोता उपासक कीं पवित्र पदवी प्राप्त कर सकता है जो परमेश्वर की आज्ञाओं का, यथावत् पालन करता हुआ उसी के अनुकूल मनसा, वाचा, कर्मणा आचरण करता है। और इसी आचरण के फल स्वरूप वह उन सब गुणों को धारण कर लेता है जो उसकी जीवन लक्ष्य सिद्धि में साधक होते हैं।

मेरे भगवान्!

(गुरूदेव टैगोर)

मेरे भगवान, मेरे इस शुष्क हृदय मे बहुत दिन से बरसा नहीं हुई, दिन पर दिन बीत रहे हैं : क्षितिज भयावने रूप में नंगा पड़ा है – हलकी पतली से पतली रेखा भी नहीं दिखाई देती सुदूर प्रान्त में भी कहीं दो चार ठंडी बौछारें नहीं पड रही। कोई भी नव नीर वर्षा का हरियाला संदेशा नहीं सुनाता है।

यदि तेरी यही इच्छा है तो मृत्यु से अन्धकारमय क्रुद्ध झंझावात को भेज दे और विजली के चाबुक से मार मार कर सारे आकाश को कंपादे (थर्रादे)।

किन्तु वापिस बुला लें, मेरे प्रभु इस सर्व व्यापी मौन गर्मी को वापिस बुला ले – यह बड़ी ही स्थिर तेज और क्रूर है। और दिल को दारूण नैराश्य से जलाये दे रही है।

पिता के क्रोध से पीड़ित बालक पर जिस प्रकार माता की आंसू भरी आँखें झुक जाती हैं, उसी प्रकार ऊपर से अपनी करूणा और प्रसाद के बादलों को नीचे जमीन पर झुकने दे।

इस भगवान् की उपासना संसार के सभी ऋषि, महर्षि देवजन इसी लिए करते हैं कि उसकी उपासना आश्रय (अमृतम्) अमृत मोक्ष सुख दायक है और जिस की उपासना न करने से मृत्यु आदि दुःखों की प्राप्ति होती है। ईश्वर हमारा पूज्य पिता, माता व भ्राता है, हम उसके पुत्र हैं, पुत्र, पिता की गोद का आश्रय ले कर ही सब संकटों व भयों में बचा रह सकता है। (तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः) वह हमारा सच्चा मित्र है वही हमें सब दोषों और आपत्तियों से सुरक्षित करता है : वही अन्तर्यामी रूप से हमें पापों से रोक कर पुण्य कर्मों में प्रवृत्त करता है। (इन्द्रस्य पूज्यः सखा) इस लिए सभी उसी एक देव की उपासना करें, और अपने जीवन को पाप-कालिमा के पंक में निमग्न होने से बचावें। और फिर देखें कि उपासना का फल कितना मीठा मिलता है।

वैदिक प्रार्थना (प्रवर्तना लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

वैदिक ऋचाओं का अर्थ और भाव काव्य मय भाषा में लेखक ने इस सुन्दरता से अंकित किया है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय प्रभु चरणों में लीन हो जाता है। अन्तस की कालिमा धोने के लिए वेद मन्त्रों के आधार पर लिखी हुई ये प्रार्थनाएँ प्रत्येक आस्तिक को ऊँचा उठा सकती हैं और नास्तिक को भी आस्तिक बना सकती हैं। एक महीने के लिए ३० मन्त्रों की प्रार्थना बहुत सरल भाषा में लिखी गई है। सुन्दर छपाई बढ़िया कागज आकर्षक कवर। मूल्य १।।)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली

उपासना और कर्म

(ले० श्री काली चरण जी आर्य मेरठ)

जिस प्रकार पृथ्वी का आकर्षण वस्तुओं को अपनी ओर खींचता है उसी प्रकार चैतन्य जगत में सदाचार आत्मा को अपनी ओर खींचता है । सत्य विचार सत्य बोलना और सत्य कर्म करने का प्रभाव केवल कर्ता पर ही नहीं होता किन्तु दृष्टा पर भी होता है और इस ही आकर्षण के कारण संसार के प्रत्येक मनुष्य में अपने से बड़े के प्रति आदर और मान की भावना सदा से बनी हुई है मनुष्य को उसके अपने सदगुणों के कारण ही किसी देश और जाति का नेतृत्व प्राप्त होता है जितना अधिक गुण सम्पन्न नेता होगा उतना ही अधिक मान जनता के हृदय में उस के प्रति उपस्थित होगा और यहाँ तक कि जनता अपने नेता के सामने जाकर नतमस्तक हो कर चरण स्पर्श को ही अपनी परम भक्ति समझने लगती है और अनेकों के हृदयों में तो उस जैसा नेता बनने की इच्छा भी जाग्रत हो उठती है यह भावना मनुष्य में स्वभाविक है और इस ही स्वभाविक इच्छा का नाम धार्मिक जगत में ऋषियों ने उपासना रखा है—यह उपासना हमें अकेली नजर नहीं आती एक स्थल पर यदि ज्ञान और कर्म के साथ है तो दूसरे स्थल परस्तुति और प्रार्थना के साथ है ।

कर्मों का जीवन पर क्या प्रभाव है और उपासना द्वारा जीवन को क्या लाभ प्राप्त होता है यह सब समझने के लिए विद्वान विचारक का यह लेख सभी को प्रेरणा देने की सामर्थ्य रखता है । — सम्पादक

ज्ञान, कर्म और उपासना

स्तुति, प्रार्थना और उपासना में उपासना समान स्थान रखती है—स्तुति का सम्बन्ध ज्ञान के साथ है और प्रार्थना का सम्बन्ध कर्म के साथ है यदि उपासक ने इस मेल के साथ उपासना करना चाहा है तो उपासना प्राप्त हुई है होती है और होगी भी यदि यह साथ छूट गया तो उपासना भी छूट जाती है ।

जिस प्रकार नेता की ओर जनता का झुकाव स्वभाविक है उसी प्रकार यह भी स्वभाविक है कि मनुष्य अपने नेता की स्तुति करे स्तुति का सम्बन्ध ज्ञान के साथ ज्ञान पूर्वक स्तुति ही स्तुति है जितना जितना अधिक ज्ञान मनुष्य का बढता जायगा वह अपने उपास्य देव के निकट होता जायगा जितना अधिक गुण वाला उपास्य देव होगा उतने ही अधिक दिन तक उपासक उसकी उपासना में तल्लीम रह सकेगा सीमित उपास्य देव की स्तुति की भी सीमा होगी और एक दिन होगा जब कि उपासक उपास्य देव के गुणों को धारण कर उसकी सीमा का उल्लंघन कर जायगा और तब उसकी आवश्यकता होगी कि किसी असीम उपास्य देवता की तलाश करे यदि उपासना ज्ञान रहित स्तुति द्वारा है तो मनुष्य किसी मनुष्य और मनुष्य ही क्यों पक्षी पशु वृक्ष आदि की उपासना में पड़कर अपनी आयु उसी में समाप्त कर सकता है न स्वयं उन्नत होगा न अन्यों को कोई अवसर देगा अतः स्तुति का साथ ज्ञान के साथ ही होना आवश्यक है तब ही उपासना हो सकी है और उपास्य देव भी ठीक मिल सके है इसी प्रकार ज्ञान के साथ उसके अनुकूल काम करना अत्यन्त आवश्यक है । जिस प्रकार ज्ञान का और स्तुति का साथ है इसी प्रकार कर्म और प्रार्थना का साथ है कर्म ज्ञान प्राप्त कर के अवश्य करना चाहिये केवल ज्ञान मनुष्य को लाभ नहीं पहुंचाता जैसा जानना वैसा करना आवश्यक है ।

तभी मनुष्य अभीष्ट फल की प्राप्ति कर सका है । उपास्य देव की उपासना प्राप्त करने के लिए देव बनना आवश्यक है जो बिना कर्म के नहीं बनता ।

हे मेरे प्रभु !

(महात्मा हरिराम जी वानप्रस्थी)

हे सदगुणों के भंडार ! गुरुओं के आदि परम गुरु ! देव भगवान् ! मनुष्य जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म उलझनों का सुलझाने वाले परमदेव परमात्मन् । मुझे इस अपने जीवन की समस्या का समाधान पूर्ण रूप से आपके बिना कौन सुझाएगा ? करुणासिन्धु ! इस समस्या को सुलझा कर मेरी अशांति और भ्रांति को दूर करा दो, और मेरे स्वामी ! मेरा यह मन सांसारिक भोगों से सुखों की मांग मांगता और उलझता है, मगर उसके विपरीत दुःखों और अशांति का मुँह देखता है। फिर भी भ्रांति में पड़ कर बार बार अन्दर से सुखों की आशा में बंधा हुआ हार पर हार खाता है, और वास्तविकता की खोज में जाने से हिचकिचाता है। मेरे प्यारे प्रभो ! बहुत अशांत होकर जब कभी आपकी भक्ति की तरफ खिंचता हूँ तो सांसारिक भाग कामनाओं की चीखो पुकार से पछाड़ खाकर पुनः उन्हीं कामनाओं का साथ देता हूं। जब उनसे मार खाता हूँ, तो पुनः आपकी भवित की स्मृति जगती है। मेरे प्रभो रात दिन कामनाओं और भक्ति का यह विरोध, यह युद्ध, मेरी अशांति और भ्रांति का कारण बन रहा है। मेरे जन्म दाता भगवान् ! इस चित्त में कभी आपकी भक्ति और अपनी कामनाओं का समझौता कराने की सूझती है। मगर आपकी भवित मेरी कामनाओं से किंचित मात्र भी सहमत नहीं होती उनकी (कामनाओं) किसी भी बात को सहन नहीं करती। जरा नहीं झुकती। बनाओ मेरे प्रभो ऐसा अवस्था में कैसे शांति का श्वास लूंगा ? इधर मेरी कामनाओं का यह हाल है कि यह भी भौतिक हार खाने के वास्ते तैय्यार नहीं हैं। आपकी भवित भौतिक पर अपना पूरा शासन जमाना माँगती है, और मेरी कामनाएं आपकी भक्ति के शासन को स्वीकार करना अपनी सदा के लिए मृत्यु समझती हैं। भगवान् अजीब उलझन में यह जीवन उलझ रहा है। एक का साथ देता हूँ तो दूसरी पछाड़ती है, इसी उखाड़ पिछाड़ में यह जीवन व्यर्थ जा रहा है, मेरी कामनाओं को दुनिया के रस भोबों की चाह है, आपकी भवित को इन से जन्म २ का डाह है, यह कामनाएं लालच का साथ देना जानती हैं, और आपकी भवित इस लालच और लालच वाले की जड़ पर कुठाराघात चलाती है। इतना ही नहीं परन्तु कामनाओं से उत्पन्न द्वेष आदि नाम पाने वाली उन की संतति मुझे आपके पुत्रों से दूर रहने का परामर्श देती है। मगर आपकी यह भक्ति उनको धिक्कार करती है, फटकार करती है, और आपके पुत्रों से सहानुभूति और प्रेम का संदेश देती है। मेरे प्रभु ! अन्दर में छुपी हुई यह वासनाएं, कामनाएं, मुझे स्वार्थों की सेना के साथ सम्मिलित होकर "तुझको पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू" का पाठ पढ़ने के लिये पुकारती हैं। मगर दूसरे पक्ष वाली शवित, आपकी भवित, इस सेना के अस्तित्व को मूल स उखाड़ कर इनका नामोकाम मिटा देने के लिये ललकारती है। मेरी बढ़ी हुई अनावश्यक इच्छाएं, दूसरों के अधिकारों को छीना झपटी से, धोका और कुटिल नीति से सूक्ष्म चालों से, और घृणित उपायों से, मीठी २ बातों के चक्कर में लाकर अपना अधिकार बनानी जानती हैं। पर आप की भक्ति इन सब को अति नीच दुष्ट और भ्रष्टों की चंडाल चौकड़ी, नाम देकर उनके परछाएं से भी दूर

हे प्राणेश्वर !

दिन रात मेरे अंग-अंग को तुम छू रहे हो, यह बात सदा ध्यान में रखकर मैं अपने शरीर को सदा पवित्र रखूंगा।

हे परम-ज्ञान,

मेरे मन में तुम बसे हुये हो, यह बात हमेशा याद रखते हुए मैं अपने सारे ध्यान और सारी चिन्ताओं से सारी झूठों को सारी कोशिशें कर दूर हटा दूंगा।

मेरे हृदय पर तेरा अटल आसन बिछा है, यही मन मे रख कर, मैं सारे कुटिल द्वेषों और सारे अमंगलों को नियन्त्रित करूंगा और अपने प्रेम को पूरी तरह विकसित और दोषहीन बना दूंगा।

सम्पूर्ण कर्मो में तेरी ही शक्ति से सिद्धि होती है, इसी को सार सभझ कर सारे कर्मो में तेरा ही प्रचार (अभिव्यक्ति) करूंगा।

भगाना चाहती हैं। तब मुझे बतलाओ। भगवान् ! कि इस विरोधी युद्ध में संसार समुद्र में पड़ी डाँवाडोल इस नैय्या को, किस ओर चप्पू लगाऊं। मेरे प्रभो ! कामनाओं की दुनिया में बाहर अंदर कांटे हैं। भक्ति की दुनिया सामने त्रिशूल पेट में फूल हैं। बाहर के फूलों का ललचावा बहलावा अपने सौन्दर्य की झाँकी देख कर भय में डालता है, घायल करवाता है, और त्रिशूलों का डरावा अंदर से मिलने वाले सुख शांति से छुड़वाता है। धन्य प्रभो ! आप का प्रेम पात्र बनने की अनोखी क्रियाएँ, अनोखे ढंग हैं। कैसी २ उलझनों में उलझा कर क्या २ सुलझाते हो। कभी तलवारों से डरवाते हो, तो कभी कंकर मरवाते हो, और अपने बड़े प्रेम करने वाले प्रेमी को शूली के मार्ग से आने की शर्त लगाते हो। इस देह और इसके लोगों से प्रेम छुड़वाते हो। वाह मेरे प्रभो ! आपका मिलन का कितना निराला ढ़ंग है। आपकी तलवार के नीचे से सिर बचाने वाला, आप की शूली और कंकरों से घबराने वाला, आपके काम का नहीं बनता। जब यही बात है, तब मुझे वैसा ही बलवान बना दो, निर्भय बना दो, ऐसे सब कष्टों के सहन करने के योग्य बना कर, उलझनों से उलझवा कर, सब परीक्षाओं में जो आपके सम्मुख उत्तीर्ण होने के लिए आवश्यक हैं, मुझे तैयार करके अपना ज्ञान करवा दो। जब आप की भक्ति उलझन से उलझवा कर ही भक्त को तैयार कर के जगत से पार करती है, तो बस ऐसा ही करवा दो, और अपना सच्चा भक्त बनने का गुर सुझवा दो। मेरे प्रभो !

स्वाध्याय के लिये उपयोगी पुस्तकें

भक्ति दर्पण [नया संस्करण] म. राजपाल १)
ईश्वर भक्ति श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज १॥)
स्वाध्याय सुमन श्रीस्वामीवेदानन्दजी महाराज ३)
स्वाध्याय संग्रह ,, ,, ,, २)
अमृत वर्षा श्री नारायण स्वामीजी महाराज २)
गृहस्थ जीवन रहस्य ,, ,, ,, २॥)
प्रार्थना सुमन श्री विश्वनाथ एम, ए. ॥)
बाल सत्यार्थ प्रकाश विश्वनाथ विद्यालंकार १)
अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द
पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति १)
वैदिक धर्म आर्य समाज प्रश्नोत्तरी ,, ॥=)
आर्य कुमार निबन्ध माला ,, १)

पुष्पाञ्जलि [भजन पुस्तक] १)
हारमोनियम पुष्पाञ्जलि २)
ओंकार स्तोत्र म० ताराचन्द ।-)
हमारे स्वामी पं० चमूपति ॥=)
आत्म विकास आनन्द कुमार ५)
चरित्र निर्माण सत्यकाम विद्यालंकार २॥)
मानसिक शक्ति के चमत्कार ,, २।)
सफल जीवन ,, २।)
क्रियात्मक मनोविज्ञान स्वामी ब्रह्ममुनि २)
मांस मदिरा निषेध स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ≡)
संस्कृत स्वंय शिक्षक तीन भाग
पं० दामोदर सातवलेकर ५)

आर्य समाज की सदस्यता के प्रवेश पत्र आर्य समाज के नियम सहित १)

इसके अतिरिक्त आर्य सामाजिक सभी पुस्तकें हमारे यहां से मिलती हैं।

वैदिक साहित्य का सूचीपत्र पत्र लिखकर मंगालें

राजपाल एन्ड सन्स [पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता] काश्मीरी गेट, देहली-६

जीवन निर्माण का उपाय उपासना

(ले० —श्री मदनजीत जी आर्य वैदिक धर्म विशारद
फिरोजपुर शहर

प्रत्येक मनुष्य की यह नैसर्गिक इच्छा है कि मैं आनन्द मुक्ति प्राप्त करुं, मेरा जीवन उन्नत हो, परन्तु जब तक उन साधनों को स्व आचरण में न लावे तब तक सिद्धि हानी असम्भव है। सिद्धान्त चाहे कितने भी उच्च हो, जब तक उसके अनुसार आचरण न हो वह निर्जिव ही होते है। दृष्अन्त के लिए वेद के उच्च सिद्धान्तों की ही ले लेवें। जब तक वह जीवन का अंग सँग नहीं बनाये जाते तब तक वह उपयोगी नहीं हो सकते। वेद स्वयं इस विषय में कहता है "यस्तन्नवेद कि ऋचा करिष्यति" जिसने वेदों का स्वाध्याय तो कर लिया प्रञ्च उसके अनुसार जीवन को न बनाया प्रभु काग जाना उसके गुणों को ना अपनाया तो वेद भी उसका कोई सुधार नहीं कर सकता उपासना का तत्व भी यही है। जब हम किसी की उपासना करते हैं उसके गुण अपने अन्दर धारण करें। उपासना के वास्तविक अर्थ भी यही है उप-आसना-निकट बैठना। दृष्टान्त के लिए एक मनुष्य अग्नि के समीप बैठता है तो उसके गुण उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं। इसी प्रकार यदि हम प्रभु की उपासना करते हैं और उसके गुण हमारे भीतर यदि आ जाते हैं और हमारा आचरण उस प्रभु के गुणों के अनूकूल हो जावे तो जीवन निर्माण का सुन्दर बीज हम अपने भीतर वपन कर लेंगे और उसका फल एक ऐसा सुन्दर वृक्ष का रूप उपस्थित करेगा जिसकी छाया मात्रमें शतशः व्यक्ति आराम पा सकेंगे और यह जीवन अदभुत दृश्य सैकड़ों व्याखानों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होगा। और उस व्यक्ति का जीवन भी चमक उठेगा। उपासना का वास्त्विक फल प्राप्त होगा।

उपासना का मर्म जानने के लिए स्वाध्यायशील लेखक का यह सेख आपको प्रेरणा दे सकेगा। —सम्पादक

उपासना के साथ स्तुति प्रार्थना, भक्ति, सेवा भी आवश्यक हैं जो कि जीवन निर्माण में सहायक हो सकते हैं। है तो यह बड़ा ही कठिन कार्य प्रञ्च सब से आनन्दप्रद भी यही है। बाह्य आडम्बरों से जीवन पर एक प्रकार की छाया पड़ जाती है जो जीवन निर्माण मेंएक बाधा का कारण बन जाती है। निर्माण के लिये तो प्रभु की ज्योति की आवश्यकता है और वह उस ज्योतिस्वरूप की उपासना से ही प्राप्तव्य है। एक उपासक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका उपास्य देव सदा उसके सामने खड़ा रहे। उसके सन्मुख ही रहे, सच्चा उपासक पाप कर ही नहीं सकता, क्योंकि पाप की वृत्ति मन में यदि आती है तो उस समय प्रभु की उपस्थिति होजाती है और उसने तो अपना सर्वस्व ही उस जगदम्बा माता के ही अर्पण कर दिया है। उसका तो खान पान सब कार्य व्यवहार रहन सहन, जप, तप, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति सब कुछ ईश्वर परायण ही हो जाता है।

"ब्रह्मर्पण ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना" अर्थात् ब्रह्म ही हवि है वही अग्नि है वही हुत है और वह सब उसी में जाता है समाधिवालों का यही ब्रह्म कर्म है। भगवति श्रुति में भी इसी भावका एक सुन्दर मंत्र आया है देखो अथर्ववेद ओउम् यज्ञ गच्छ यज्ञ पति गच्छ स्वाहा योनि गच्छ स्वाहा। हे यज्ञात्मा तू उपासना द्वारा

ईश्वर को प्राप्त हो वही तुम्हारा उत्पत्ति कर्त्ता है। अन्यत्र भी वेद भगवान उपदेश करते है कि स्वजीवन को शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाला याज्ञिक भक्त उपासना यज्ञ में स्थित होता हुआ उत्तम लोकों को प्राप्त होता है। जीवात्मा अपनी कर्मेंद्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, चित्त, और बुद्धि रूपी कार्य क्षेत्र में सदैव ब्रह्म को ही स्मरण करता रहे यही उसका पञ्चोदन भोजन है अर्थात् हर समय अपने आप को प्रभु के ही समर्पण कर दे। सच्चे उपासक का जीवन तो सदैव स्वजीवन निर्माण के साथ २ स्वदोषों का परित्याग भी होता रहता है। उपनिषदों के शब्द में उसके हृदय स्थित सब संशय अनायास ही नष्ट ही जाते हैं

भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परोवरे ’’

प्रभु की उपासना करते हुये उसको साक्षात्कार हो जाता है उस समय हृदय की गांठे खुल जाती है । सब संशय नष्ट हो जाते हैं और सब कर्मों का भीक्षय हो जाता है यह उपासना फल सब में श्रेष्ट है। मनुष्य जीवन निर्माण का वास्तविक यदि कोई उपाय है तो यही उपासना यज्ञ है। इसी एक यज्ञ के साध लेने से लोक और परलोक दोनों में ही सुखी हो जाता है। और आत्मा को निर्भिक निर्दोष बना कर अक्षय पद और अनुपमेय आनन्द की प्राप्ति करा देता है। जिससे वह कृत कृत्य हो जाता है। शेष उसके लिये संसार में कुछ नहीं रहता। क्योंकि उसके तो जीवन का एक २ पल बहुत ही मूल्यवान है वह व्यर्थ के ईर्षा, द्वेष, मत्सरादि में क्यों लगावे। वह तो निष्काम कर्म ही करेगा। अतः जीवन निर्माण का एक मात्र यही रहस्य है कि अपनी इन्द्रियों को सधे हुये अश्वों की भांति सद मार्ग पर चलाते हुऐ अपनी भक्ति, पूजा, सेवा उपासना द्वारा उस उपास्य देव के गुणों की अपने भीतर ग्रहण करलो, यदि अग्नि देव के समीप एक मनुष्य भी शीतलता का अनुभव करे तो समझो उसकी अपनी प्रकृति में ही दोष है। इसी भांति उपासक के जीवन में यदि स्व उपास्य देव की विभूति का अंकुर नहीं उपजता तो जीवन निर्माण कदापि नहीं होगा

उपासना तत्व

(ले०—श्री विश्वनाथ जी आर्योपदेशक घुघली)

ओ३म्। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूः स्वाम्। कठ उपनिषद्।

अर्थ—यह पारब्रह्म परमात्मा प्रवचन मेधा वा बहुश्रुत होने से प्राप्त नहीं होता। जिस उपासक का वह वरण करता है वही उसे प्राप्त करता है। उसी के अन्तरात्मा में वह अपने स्वरूप को प्रकट करता है।

शास्त्रों ने ईश्वर की उपासना उसकी प्राप्ति के तीन साधन वर्णन किये हैं। प्रथम श्रवण अर्थात् वेद शास्त्र और तत्वों ज्ञानियों से अपने आत्मा परमात्मा दोनों के सम्बन्ध, ईश्वर प्राप्ति से आत्मा का परम कल्याण, उस की प्राप्ति के साधन, उन से मोक्ष की प्राप्ति इत्यादि आध्यात्मिक तत्वों का पठन वा श्रवण करके यथार्थ ज्ञान का लाभ, पुनः मेधा विवेक बुद्धि से तत्व ज्ञान का मनन। फिर उस याथार्थ ज्ञान के अनुसार उपासना के साधनों जप तप आदि से अपने जीवन में उस का प्रवेश निधिध्यासन है। इस प्रकार साधन सम्पन्न होकर प्रभु का साक्षात्कार करना।

वेद उपनिषद आदि सच्छास्त्रों ने उपासना का तत्व यही बतलाया कि उस से मानव जीवन प्रतिदिन स्वच्छ और पवित्र होता जावे मानव वस्त्र को धोता हुआ देखता जाता है कि वह पहले से स्वच्छ होता जाता है वा नहीं परन्तु उपासक अपने जीवन की ओर ध्यान ही नहीं देते। मनु जी कहते हैं।

पूर्वा सन्ध्याँ जपंस्तिष्ठन् नैश मेनो व्यपोहति।
पश्चिमांस्तु समासीनो मलं हन्ति दिवा कृतम्।

प्रातःकाल की सन्ध्या के समय अपने रात के पापों पर विचार करें और सायंकाल की सन्ध्या में दिन के पापों को जान कर उन को त्याग करें। इस प्रकार उपासना तो एक डायरी है। जिस में मानव अपने प्रतिदिन के कामों का हिसाब रखता है। पाप रूपी घाटे के सौदे को छोड़ कर पुण्य का व्योपार करता है। फिर यह क्यों न आध्यात्मिक बल प्राप्त करता हुआ प्रभु का साक्षात्कार करके कृत कृत्य हो जावे।

आर्यन फार्मेसी अजमेर की तरफ से आप के लिये अनमोल रत्न "विकास प्रभाकर"

क्या आप जानते हैं कि "विकास प्रभाकर" में हर बीमारी को दूर करके तेज व शक्ति बढ़ाने की क्षमता है ? आर्यन फार्मेसी अजमेर के ३० वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार औषधि के विषय में क्या आपको निम्न लिखित जानकारी है ?

१. "विकास प्रभाकर" यूनानी, आयुर्वेदिक और होम्योपैथी दवाइयां का निचोड़ है।

२. "विकास प्रभाकर" में कम से कम ६ दवाइयां रहती हैं।

३. "विकास प्रभाकर" की ६ दवाइयों में सुबह को १ पुड़िया रहती है जो मक्खन या दूध के साथ ली जाती है। इस पुड़िया में मृगांग भस्म मरजान भस्म, शिंगरफ भस्म, चाँदी भस्म, सीमाब भस्म, सीप भस्म हैं, जिन में से तबियत के मुवाबिक ३ या ४ दवाइयाँ रहती हैं।

नं० २ दवा एक होम्योपैथी या आयुर्वेदिक गोलियाँ जैसे गोली शिलाजीत या कोई और है जो कि पानी के साथ दुपहर को ली जाती है।

नं० ३ दवा एक चूर्ण है जिसमें मूसली, सालम मिश्री, कौंच, तालब खाना जैसी कई जड़ी बूटियाँ और उसके साथ गोलियों भी रहती है। ज्योति या और कोई खास गोलियाँ तबियत के अनुसार होती हैं। यह गोलियाँ रात को दूध के साथ ली जाती हैं।

२ दवाइयां मालिश की होती हैं। इनके अलावा दमा, बवासीर, भगंदर, खांसी, पेट दर्द, पेचिस कमर का दर्द, मीठा पेशाब, पुराना बुखार, हाथ पाँव की जलन, कब्जियत के लिए इस कोर्स में दवाइयां बदल के दीं जाती है। विकास प्रभाकर कोर्स की कीमत २५) है। ४० दिन की पूरी दवा और पूरा फायदा याने कि प्रतिदिन की दवा का मूल्य १० आना रहा। जिसमें ६ दवाइयां अर्थात् १ दवा की कीमत ६ पैसा प्रतिदिन हुई। और फिर हमारा अनुभव है कि हमारा बना हुआ—

विकास प्रभाकर

४० दिन में हर बीमारी को दूर करके बल, शक्ति, तेज व नया जीवन देता है। किन्तु यदि कोई भाई कभी फायदा कुछ कम समझे तो बिल न० भेजने पर २० दिन की मुफ्त दवाइयां भेज दी जायेगी। परन्तु उनको १।) रुपया डाक खर्चा भेजना पड़ेगा।

मां बहनों के लिए "विकास प्रभाकर" का अलग कोर्स है। जिसमें ४-५ दवाइयां रहती हैं। जो कि प्रत्येक पुराने पेचीदे रोग दूर करके जीवन भर शरीर को आरोग्य रखती है।

एक और सफाई हम हर एक मरीज को बिल्कुल अच्छी तरह देखते हैं। और ईश्वर को साक्षी जान कर सत्य कह देते हैं कि रोग हम से दूर हो सकता है या नहीं। ऐसे कई भाइयों को हम साफ इन्कार कर देते हैं।

हमारा उद्देश्य है "हर एक को बनाना बल्कि किसी को न बिगाड़ना।" देखने की कोई फीस नहीं। "विकास प्रभाकर" के कई प्रमाण पत्र भी हमारे कर्यालय में मौजूद हैं। लेकिन किसी का नाम प्रकट करना अपनी शान नहीं समझते। एक बार अवश्य ही सेवा का अवसर दीजिये।

हकीम बीरुमल आर्य प्रेमी, आर्यन फार्मेसी, पो० बक्स २७ (फोन ४७२) अजमेर

उपासना और मन

(श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, ज्वालापुर)

(मन की साधना, जीवन की साधना है। आनन्द और शाँति हेतु कल्याण की राह पर बढ़ने की प्रेरणा करते हुए विद्वान लेखक नें मन की एकाग्रता के लिए प्राणीमात्र का महत्व बताते हुए साधना की राह पर चलने का आमन्त्रण दिया है। लेखक के भावों की गहरायी यें हम पहुंच सकें, यही चाह है।] —सम्पादक

उपासना कोई कठिन प्रकार नहीं है उप (समीप) आसना (बैठना) ही उपासना है। प्रश्न है किसकी उपासना ? उपासना उसकी—उस ईश्वर की, जो समस्त जगत् का कर्ता, धर्ता, हर्ता संहर्ता है। सन्ध्योपासना सन्ध्या के लिए बैठना, ईश्वरोपासना ईश्वर के पास बैठना क्या सन्ध्या में उपासना नहीं आ जाती ? क्या उपासना का पृथक् प्रकार है ये प्रश्न मन में उठ सकते हैं। मेरी समझ में सन्ध्या यदि केवल सन्ध्या के मन्त्रों के उच्चारण मात्र तक सीमित न रहे और यथार्थ रूप में प्राणायाम पूर्वक, अर्थज्ञान पूर्वक, मननपूर्वक सन्ध्या रहे तो वह उपासना ही है। प्रथम प्राणायाम किया, तीन बार, सातबार, इक्कीसबार. फिर अर्थ पूर्वक सन्ध्या के मन्त्रों का उच्चारण, फिर अथवा साथ-साथ ही मन्त्रों के अर्थों पर दृष्टि अथवा मन्त्रोच्चारण के पश्चात् अर्थ पर दृष्टि तथा मनन यह सब उपासना ही है। अर्थात् बाहर से मन को अन्तर्मुखकरके आत्माभिमुक होकर परमात्मा के अभिमुख होने का प्रकार उपासना ही है। इस तरह यह उपासना बढ़ते बढ़ते योग मार्ग तक पहुँचती है।

कठिनता यह है कि

जिसकी उपासना करने बैठते हैं वह तो इन चर्मचक्षुओं से दीखता ही नहीं, वह इन्द्रियों का विषय नहीं, वह वाणी का विषय नहीं, वह मनन का विषय नहीं, तब किस बात की उपासना, किसके लिए उपासना अथवा उपासना ही क्यों ?

कठिनता यह है कि

अन्तर्मुख हुए बिना उस परमात्मा का आभास नहीं मिल सकता। उस मन को अन्तर्मुख किए बिना काम नहीं चल सकता। उस को अतर्न्मुख करने के लिए ही प्राणायामादि का विधान है।

एक साधारण गृहस्थी के लिए

संसार का दिन भर का काम काज प्रारम्भ करने के पूर्व शुचि होकर मन को स्थिर करने का प्रकार जो सन्ध्योपासना कहलाता है।

एक योगिजनों के लिए

जिनको संसार का कामकाज कुछ नहीं, जो संसार से विमुख हो चुके हैं, जो केवल परमात्मतत्व के साक्षात् दर्शन करना चाहते हैं, उनके लिए योग दर्शन में यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के रूप में वर्णित विधि है।

बड़ी सीढ़िया पार करनी पड़ती हैं, अनेक बार अन्धकार और प्रकाश में से निकलना पड़ता है, पचासों व्यग्रताओं और उदासीसता में से निकलना पड़ता है, निराशा आशा के चक्र में पड़ना पड़ता है। जब चित्त निरोध का श्रद्धापूर्गक निरन्तर अभ्यास करो और वह अभ्यास दृढ़ भूमि तक पहुँचे तब समझिये कि गाड़ी चल निकली। फिर मार्ग में विघ्न आते ही रहते हैं जिनको दृढ़ता से पार करना पड़ता है। मार्ग में अनेक साधारण सिद्धियाँ अपना अपना सुन्दर स्वरूप दिखलाकर पुरुष को मार्गच्युत करने के लिए तैयार रहती हैं। यदि इन्हीं सिद्धियों में फंस गये तो किया कराया सब चौपट समझो असली सिद्धि दूर जा पड़ती है। अस्तु वह तो हुआ योगिजनों का मार्ग। साधारण पुरुष, संसारी पुरुष सायं प्रातः कुछ काल के लिए एकान्त में बैठ कर, कुछ समय के लिए ईश्वर के आभास को प्राप्त करने के लिए यत्नशील रहे तो यह भी उसके लिए बहुत है।

सबसे बड़ी समस्या है मन की

यह इतना चंचल है कि पूछिए नहीं। न के अर्थ

नहीं **म** के अर्थ वाला, न मानने वाला, काबू में न आने वाला ही मन है।

मन की तीन वृत्तिएं

सात्विक, राजस, तामस

जब मन को तामस से राजस की ओर ले जाते हैं तब वह घबराता है, जब राजस से सात्विक की ओर ले जाते हैं तब तो और अधिक घबराता है।

जैसा अन्न वैसा मन

मनुष्य के आहार भी तीन प्रकार के होते हैं—

१—सात्विक आहार।
२—राजस आहार।
३—तामस आहार।

आहार शुद्धि रखोगे तो मन का तमोमिश्रित, रजोमिश्रित सत्व गुण शुद्ध होता जायगा, जब मन सत्व-शुद्ध हो जायगा तब उपासना में अच्छी तरह जोता जायगा— इसीलिए शिवसंकल्पसूक्त में मन को शिव संकल्प करने की प्रार्थना की गई।

प्रथम सीढ़ी – आहार शुद्धि
द्वितीय सीढ़ी – शिवसंकल्प
तृतीय सीढ़ी—शुभकर्म

सीढ़ियाँ ये मनुष्य को अच्छी उपासना की ओर ले जा सकतीं हैं। तामस आहार, अशिव संकल्प अशुभ कर्म उपासना में बाधक हो जाते है। मन जिस प्रकार का आहार करेगा, जिस प्रकार का संकल्प करेगा, जिस प्रकार का कर्म करेगा मन पर उसी प्रकार के संस्कार पड़ेंगे। जिस प्रकार के संस्कार प्रबल होंगे उन्हीं के अभ्यासानुसार मन इधर उधर नाचता-कूदता फिरेगा, वह फिर आपके वश में क्यों कर आयगा। चौबीस घण्टों में २३ घण्टे अथवा २३॥ घण्टे तो सच झूठ शुभ-अशुभ चलाते रहोगे तो १५ मिनट के लिए उपासना के लिए बैठोगे तो मन क्यों मानने लगा। वह उपासना करेगा—हां वह थोड़ी देर के उपासना का नाटक करके, ढोंग दिखाकर फिर अपने जन्जाल कार्यों में संलग्न हो जायगा, वह न तो स्वयं आराम हो बैठेगा न तुम्हें ही बैठने देगा। आप समझेंगे हमने सन्ध्या करली, उपासना कर ली और मनीं राम कहेंगे कि हमने मालिक को अच्छा छकाया।

फूल

देखता हूं,
लोग खिले फूल को तोड़कर उन्हें प्रभु के चरणो में समर्पित करते हैं।
पर सोचता हूं,
क्या वह खिला पुष्प वहां है वहीं डाली पर भगवान् को समर्पित नहीं हो चुका है ? प्रभु के विराट शरीर पर वह आभूषण बनकर पहले से ही सुशोभित नहीं है क्या ?

—रामकृष्ण परमहँस

आश्चर्य है कि

जब हम सन्ध्योपासना के लिए बैठते हैं तभी न जाने मन इतनाचन्चल क्यों हो उठता है। सैकड़ों बातें एक एक साथ याद आजाती है—मन बन्धन में नहीं आना चाहता—वह तो प्राणायाम से ही सीधा होता है, वह तो प्राणायाम से ही वश में आता है, इसी लिए उपासनेच्छुक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह किसी ज्ञानी व्यक्ति से प्राणायाम की यथार्थ विधि सीखे। वैसे ही बैठ कर उलटे-सीधे साँस खेंचने से अनेक बीमारियां लग जाती हैं—तत्व यह है कि मन को वश में करलो फिर जितनी चाहे उपासना करलो—पहिले पहिले असफल रहोगे, पहिले पहिले निराश रहोगे पर जिस प्रकार मन अन्तर्मुख होता जायगा, जिस जिस प्रकार मन आत्माभिमुख होता जायगा उसको एक प्रकार का प्रकाश मिलता जायगा उसको एक, प्रकार का आनन्द मिलता जायगा। जहाँ उस प्रकाश का आनन्द का चस्का लगा कि समझिए कल्याण के दिन आये-यह बातें केवल कहने सुनने, लिखने की नही। ये हैं बातें अभ्यास की, दृढ़ता पूर्वक अभ्यास की अतः एक बार निश्चय कर आरम्भ कीजिए फिर तो कहने की आवश्यकता न पडेगी।

हमारे यहाँ

संस्कृत साहित्य सम्बन्धी सभी विषयों की पुस्तकों का
अपूर्व भण्डार है

जैसे कि—

वेद, कर्मकाण्ड, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र,
वेदान्त, न्याय, योग, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा
व्याकरण, कोष, निरुक्त, काव्य, गद्य
छन्द, नाटक, चम्पु, भाषा अलंकार
नाट्य, वैद्यक (चिकित्सा) ज्योतिष
स्तोत्र, प्रकीर्ण (फुटकर) जैनग्रंथ
संस्कृत-इंगलिश नोट्स, हिन्दी संस्कृत
परीक्षाओं की पुस्तकें रामायण, महाभारत, गीता

इत्यादि

सभी प्रकार की पुस्तकों के लिए हमें लिखें।
सर्व प्रकार की सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत हैं।

मुन्शीराम मनोहरलाल

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

पोस्ट बाक्स ११६५, नई सड़क, दिल्ली-६

टेलीफोन २७१५३ टेलीग्राम LITERATURE

उपासना क्यों

(ले० श्री पूर्णचन्द्रजी एडवोकेट आगरा)

ओ३म् । विश्वानि देव सवितदु रितानि परासुव । यद भद्र' तन्न आसुव ॥

प्रत्येक मनुष्य अपनी भलाई चाहता है, सुखी रहना चाहता है, स्वरक्षा और सम्पति का इच्छुक, सब प्रकार के सुखों से वचा रखना चाहता है। वह यह नहीं चाहता कि जो उसके विचारों को आघात पहुँचाये उसके शरीर को किसी प्रकार का कष्ट दे और वह यह भी नहीं चाहता कि कोई उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक हो। प्रश्न यह है कि मानव की यह इच्छा किस प्रकार पूरी हो। सुखी रहने के अन्तर्गत सारा कार्य क्रम जीवन निर्वाह के नियम और उप नियम आजाते हैं। सारी जीवन मर्यादा भी उसके लिए ही है। भला मन दो भावनायें रखता है। जब भला कर्म के साथ जुड़ जाता है। तो उसका अर्थ पुनःधार्मिक कार्य होजाता है जब भला शब्द कर्म के फल के साथ जुड़ जाता है तो उसका परिणाम दुख हो जाता है। एक ही शब्द दो अर्थ रखता है और दोनों को एक साथ मिलाकर विचारकर लेने से सारी समस्या स्पष्ट होजाती है हम अपना भला चाहते हैं तो हमें भला, सज्जन, चरित्रवान बनना पड़ेगा, वेद मन्त्र में यह उपदेश है कि यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता है तो उस को यह आवश्यक है कि वह ईश्वर से यह प्रार्थना करे कि उस की सारी बुराईयाँ दूर हो जाये। जब तक बुराईयाँ दूर न होंगी उस समय तक उसका कल्याण नहीं हो सकता, वेद मन्त्र के पहले हिस्से में यह प्रार्थना है कि विश्वानि देव सवि ततानि परासुवा अर्थात् पहली शर्त यह है कि कोई दुर्गुण बुराई, पाप, त्रुटि चरित्र दोष, अनुचित व्यवहार दोष न रह जाये। बुराईयों के छोड़ने में कोई संकोच नहीं हो सकता। यह धारणा नहीं हो सकती कि कुछ बुराईयां छोड़ दें और कुछ चरित्र का अंग बनी रहे और यह आशा की जाये कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है परंतु फल प्राप्त करने में दैनिक मर्यादा से बंधा हुआ है। क्योंकि यदि वर्तमान परिस्थिति में कोई पाप न किया जा रहा हो फिर भी पूर्ण किये हुए पापों के आधार पर किसी न किसी रूप में कष्ट अपूर्व प्राप्त हो ही जाता है। पूर्ण रूप से सुखी रहने की आशा करने के लिये कर्म व्यवस्था की मर्यादा पर विचार करना अति आवश्यक है और कर्म की व्यवस्था को ठीक रखने के लिये ईश्वर की उपासना अचूक उपाय है और ईश्वर की उपासना को क्रियात्मक रूप से लाभदायक समझने के लिये यह आवश्यक है कि ईश्वर सर्व व्यापक है, रचयिता है और उसका न्याय अटल जब कभी चरित्र दोष का प्रश्न आता है तो वह रचित पदार्थों के प्रयोग के समय रचयिता का ध्यान और उसकी न्याय व्यवस्था अपने सन्मुख रखे तो रचना का दुरुपयोग नहीं होगा और न प्राणी जगतके साथ दुर्व्यवहार होगा। ईश्वर उपासनाके इसमंत्रमें सबसेअधिक धिचायरणीऔर माननीयदो शब्द है अर्थातदेव सविता। सविता का सम्बन्ध रचना से है और देव की व्यापकता से और न्याय व्यवस्था से, इन दोनो शब्दों को मिलाकर अथवा साथ साथ विचार करने से यह परिणाम निकलता है कि ईश्वर न केवल रचयिता और स्वामी है परंतु इतना परिपूर्ण परिपक्क और अटल रूप से स्वामी है कि उस व्यवस्था का कोई उलंघन नहीं कर सकता। यदि ईश्वर की उपासना करने वाला क्रियान्वित रूप से इस बात का अभ्यासी हो जाये कि वह जीवन भर संसार के रचित पदार्थों को प्रयोग में लाते समय रचयिता का और रचना की व्यवस्था को ध्यान में रखें तो वह दुरुपयोग से पाप की वासना से सब प्रकार की दुरितानी से बचा रहेगा।

बुराई जीवन को कलुषित न कर सके, हम चल सकें भलाई की ओर इस के लिए विद्वान विचारक लेंखक ने हम सभी को भलाई की ओर बढ़ने का निमंत्रण भी दिया है काश कि हम स्वीकार कर सक ……सँपादक

* * *

महर्षि के तीन रत्न

(ले० श्री वीरेश विद्यालङ्कार)

महापुरुषों के जीवन में कुछ विशेषता होती है जो कि उन्हें साधारण जनों से ऊपर उठाकर उनका पथप्रदर्शक बना देती है। आचार्य शङ्कर की प्रखर प्रतिभा, तीव्र तथा गंभीर पाण्डित्य ने उन्हें अपने समकालीन विद्वन्मडली की विचार-धारा को बदलने में समर्थ किया, हमारा दार्शनिक साहित्य इस बात की साक्षी है। श्री गौतम बुद्ध ने अपने समयमें प्रचलित हिंसामय यज्ञोंतथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में मैत्री, करुणा मुदिता तथा निर्वैरता (अहिंसा) आदि भावनाओं का सहारा लेकर जनता को बुद्धिवाद, समता तथा अहिंसा के मार्ग की ओर अग्रसर किया यह सब जानते हैं। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने भी अपने समय में प्रचलित नाना दार्शनिकवादों का निराकरण करने के लिये धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कुरीतियों को जड़ से मिटा देने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया। उनके जीवन में समष्टि रूप से हमने तीन बातें देखीं जिनका प्रचार करना ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा। यह तीनों बातें उनके जीवन में अच्छी तरह समाई हुई थीं, कठोर साधना के द्वारा उन्होंने इन तीन रत्नों को प्राप्त किया था। यह रत्न उन्होंने अपने लिए नहीं अपितु संसार की भलाई के लिये प्राप्त किये थे।

> जलते विश्व को विनाश से बचाने के लिए प्रभु प्रेरणा से बोध रात्रि को बालक मूल के नन्हें हृदय ने संकल्प लिया था इस संकल्प ने जहाँ "मूल" को महर्षि बनाया वहाँ तीन अमूल्य रत्न भी दिए। यह रत्न धरती को स्वर्ग बनाने की क्षमता रखते हैं ऐसा हमारा विश्वास है·· आप भी इन रत्नों को परखिए ·· पसन्द आएं तो बचाइए विश्व को··· ज्वालाओं से
>
> ········· संपादक

पहला रत्न जो कि उन्हें बोध-रात्रि में मिला था 'ईश्वर का स्वरुप, conception of God अपने जीवन काल में (सम्यग्दर्शन के उपरान्त) उन्होंने इस सचाई का प्रचार किया कि ईश्वर का ऐश्वर का ऐश्वर्य ही यह है कि वह देश, काल और परिवर्तनशील नाम रुपादि के बन्धनों से रहित हुआ सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्तादि गुण वाला है। वह उपाधि और मायादि के आवरण में न आनेवाले सदा मुक्त ईश्वर की अनादि अनन्त सत्ता में विश्वास करते थे और सबको उसी नित्य, शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले सच्चिदानन्द स्वरुप ब्रह्म की उपासना करने के लिये प्रेरित करते थे। वह मत- मतान्तरों द्वारा प्रतिपादित इष्टदेवों में वेदोक्त ईश्वर के गुणकर्म-स्वभाव न घटने के कारण उन्हें परमेश्वर का स्थान देने को तय्यार न थे। उनकी ईश्वरविषयक धारणा कि वह सबसे पूज्यतम् और सत्यधर्मस्वरुप-धर्म का स्त्रोत है- सर्व संसार के लिये समान थी । अपने वेद प्रचार में वह सदा इस वेदोक्त वेदान्त की पुष्टि करते कि विश्व का ईश्वर एक ही है, वह संसार में सर्वोपरि है, पूज्यतम है तथा उत्पन्न जगत का सर्वाधिराज है उसकी स्तुति प्रार्थना-उपासना सबको करनी चाहिये। उससे भिन्न किसी की नहीं।

इस कसौटी पर उन्होंने संसार के सारे मतों कोकसा और उनकी समीक्षा की। जो खरे न उतरे उन्हें छोड़ देने लायक कहा और जो उनमें धर्मानुकूल बातें मिली उन्हें ग्रहण करने को कहा। यही उनकी आध्यात्मिक देन थी जिनको पाकर नाना मज़हबों के दुःखों से दबा हुआ संसार एक ही ईश्वर की शरण में आकर अपने इहलोक तथा परलोक के सुखों को प्राप्त करे।

दूसरा रत्न जो कि उन्होंने लोक के सन्मुख उपस्थित किया वह था 'मानवीय स्वतन्त्रता' (Human Liberty) इस स्वतन्त्र सिद्धान्त के अन्तर्गत ही जीवन की कर्म करने की स्वतन्त्रता तथा फल भोगने में परतन्त्रता का नियम आजाता है। मानवीय स्वतन्त्रता का मूल्य घट और बढ़ जाता है। ऋषि ने इस जन्मसिद्ध स्वतंत्रता का ठीक अर्थों में प्रयोग होने के लिए मानवीय शिक्षा-दीक्षा के कुछ मूलभूत सिद्धान्त हमारे सन्मुख रखे हैं जोकि

मनुष्य को मनुष्य बनाने अर्थात विद्या, सुशिक्षा, सभ्यता सिखाने के लिये आवश्यक हैं। जिनका विवरण सत्यार्थ प्रकाश और वेदभाष्य में देखा जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य को बालपने में राज्य व प्रजा (जाति) की ओर से शिक्षा का अवसर दिया जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में प्रारम्भिक शिक्षा देश के बालकों के लिये अनिवार्य होनी चाहिये जिसका सहज परिणाम यह होगा कि जहां देश में शिक्षितों की वृद्धि होगी वहां जातीय, मन, बुद्धि का विकास होकर एक स्वस्थ्य सुसंगठित जाति का निर्माण होगा। मनुष्य की उन्नति शिक्षा पर निर्भर है, शिक्षा कैसी हो यह हमें हमारी संस्कृति, परम्परा, परिस्थिति, आवश्यकतायें तथा अनुभव निश्चय करायेंगे परन्तु शिक्षा प्राण, पानी और प्रकाश की तरह मानव के जीवन और विकास के लिये आवश्यक है, इसमें किसी को ननुनच नहीं। आज दिन शिक्षा-जैसी सुलभ वस्तु का जिसका मोल न होना चाहिये, मँहगापन तथा दुर्लभता देखकर अपनी बेवसी प्रत्यक्ष हो जाती है। इस समय देश में लगभग ८ प्रतिशत शिक्षित है जिनमें से बहुसंख्या की शिक्षा का देश और जाति के विकास के लिये कुछ उपयोग नहीं। इसके साथ ही दूसरी ओर दलित भाइयों की दर्दनाक हालत है जिन्हें ऊँच कहे जाने वर्ण ने यगों से अपने स्पर्श-वृत्त से बाहर रक्खा हुआ है। इस स्पृश्यास्पृश्य के वृत्त ने देश और जाति में धर्म के नाम पर एक ऐसी मनोवृत्ति पैदा कर दी है जोकि मानवीय स्वतंत्रता के सिद्धांत को स्वीकार करने के लिये तय्यार नहीं। परन्तु अब परिवर्तन आ रहा है। मुगलकालीन पर्दे की तरह यह मध्यकालीन स्पर्श-वृत्त भी बहुत कुछ ढीला हो चुका है। भविष्य में इस शिक्षा में बहुत अच्छे सुधार होते रहेंगे। आज दिन मनोवृति में परिवर्तन दीखता है-इस परिवर्तन को अग्रसर करने के लिये सहकारी सामग्री और साधनों के अभाव में परिवर्तन यत्किंचित ही है। परिवर्तन को विस्तारी बनाना जाति और समुदाय कां काम है–परिवर्तन की शान इसी में है कि मनुष्य की समानता तथा विकास के लिये समान अवसर दिये जाने का सिद्धांत स्वीकृत हो। यही बात जाति व देश पर लागू हो सकती है कि उन्हें उनके जन्मसिद्ध अधिकार—स्वाभाग्य-निर्णय तथा सुशासन और स्वाराज्य की योग्यता और प्रभुत्व प्राप्त होना चाहिये इनके बिना मानवीय स्वतन्त्रता का आधार-भूत सिद्धान्त कागजों पर लिखे हुए के समान है।

तीसरा रत्न श्री स्वामी जी द्वारा हमें प्राप्त हुआ वह है हमारी 'साँस्कृतिक एकता, (cultural unity) आज पूर्ण रुप से 'आर्य संस्कृति, हमारे देश मं देखने को नहीं मिलती परन्तु फिर भी उसको लौटा कर उसकी झांकी दिखाने तथा उसका पूरा ढांचा हमारे सन्मुख उपस्थित करने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त है तो वह स्वामी जी को है। वस्तुतः संस्कृति क्या है इसे संक्षेप में कहा जाय तो यही है कि वह हमारी व्यक्ति-जाति की सामूहिक चेतना है, विद्या-धर्म का रस सार है जिसके द्वारा देशीय और जातीय जीवन रूपी वृक्ष निरन्तर फलता-फूलता रहता है। बीजाकुंर भाव की तरह यह अनादिता और अनन्तता के प्रभाव में ही अपने अस्तित्व को लीन करना चाहता है। हमारी 'विद्या धर्म की नित्य पुस्तक वेद है. जिसे हमारी जाति ने अपने आत्मा और मन-प्राण द्वारा पाला पोसा है। आर्य-जाति की इस परिश्रम पूर्ण ज्ञान-आराधना ने इस संस्कृत रूपी संस्कृति को जन्म दिया है जो कि न केवल भारत के लिए है अपितु विश्ववारा होने के कारण संसार के लिये मुक्तांचल समर्पित है। जिस देश और जाति ने इस सँस्कृति में आस्था रक्खी वह इस सांस्कृतिक एकता के दायरे में आगया। स्वामी जी ने हमारे वर्तमान साँप्रदायिक व राजनैतिक अनेकत्व में इस सांस्कृतिक एकता को अपनी आध्यात्मिक कर्तत्व शक्ति द्वारा अनुस्यूत कर समन्वित करने में प्रथम पग उठाया जिससे कि आज भारतवासी क्या हिन्दू, मुसलमान सिक्ख पारसी, जैन, बौद्ध, ईसाई तथा यहूदी सबके सब मानवीय समानता, देशिक स्वतन्त्रता और जातीय एकता के भावों को शीघ्रता से अपनाते दीखते हैं। यही ऋषि का ऋषित्व है कि वह अनेकता में एकता दर्शा दे, वैषम्य में समता स्थापित कर दे भेद में अभेद भावना जगा दे अपने पराये की संकीर्ण मनोवृत्ति को भुलवा देजिससे राष्ट्रीय क्षेत्र में मनुष्य ग्रामीण से नागरिक फिर देशिक से सार्वदेशिक और सार्वभौमिक लक्ष्य की ओर बढ़े अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक संयम द्वारा चैतन्य प्राप्त कर चिरशान्ति के लक्ष्य तक पहुँच सके।

अतः आज की बोध रात्रि को हम भी प्रण करें कि हम विश्व निर्माण के लिए महर्षि के इन तीन अमूल्य रत्नों को जग में प्रसिद्ध करें

सन १९५८ का कलैण्डर

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार सर्व श्री महात्मा आत्मानन्द जी, आनन्द स्वामी तथा आनन्द भिक्षु जी के चित्रों सहित प्रत्येक ग्राहक को बिना मूल्य भेजा जायगा।

बाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ,,	३॥)
सृष्टि का इतिहास	१॥)
उपनिषद आर्य मुनिभाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१।)
प्रभु दर्शन ...	२।)
तत्व ज्ञान ...	३)
आनन्द गायत्री कथा	॥)
एक ही रास्ता	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)॥
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१॥)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाए)	१॥)
सचित्र योगासन	१॥)
बहनों की बातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ सग्रह	२॥)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय सँस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	॥)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३॥)
कर्तव्य दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
सन्ध्या, हवन प्रदीपिका	॥)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	॥)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	॥)

प्रार्थना प्रदीप	॥)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
बिवाह और विवाहित जीवन	२॥)
घर गृहस्थी	३॥)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द)	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमांसा	॥।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक	।=)
आत्म कथा ऋषि दयानन्द	।=)
आर्याभिविनय	॥)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	।=)
भ्रान्ति निवारण	।=)
भ्रमोच्छेदन	।)
हुगली शास्त्रार्थ	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
ईश्वर विचार	=)
जीवात्मा	=)
वेदों की आवश्यकता	–)
वेद किसपर प्रकट हुए	–)
बाल शिक्षा, धर्म शिक्षा	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	–)
पितृ श्राद्धविचार	–)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	–)
,, ,, लक्ष्य	–)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।–)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।–)

धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४॥×२२

सन्ध्या मंत्र	।–)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।–)
आर्य समाज के नियम	।–)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।–)
यम नियम व्याख्या सहित	।–)
संगठन सूक्त	।–)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	॥)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम	≡)
सामवेद का प्रथम	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मंचर, सत्यवद	≡)
मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५॥ मू०	–)॥

ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म आदि आदि।

महाभारतम् संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री उपाध्यक्ष दयानन्द वेदविद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य सजिल्द का ३) रु०

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लाइब्रेरियों। पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४४ पुस्तकों का सैट**

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है। देहाती पुस्तक भण्डार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वे देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

१. आलू की खेती	॥:)	२३. पशुओं का इलाज	६)
२. टमाटर की खेती	॥)	२४. तरकारी सागभाजी खेती	३॥)
३. गोभी की खेती	॥)	२५. ट्यूबवैल गाइड	३॥)
४. जीरा, धनियाँ, अजवायन	॥)	२६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
५. तरकारियों की खेती	१॥)	२७. पोल्ट्री फार्मिङ्ग	४)
६. अच्छे बीज	॥:)	२८. उन्नत सिंचाई	२)
७. अच्छी खाद	२॥)	२९. खेती और ट्रैक्टर	६)
८. कपास की खेती	१)	३०. फल संरक्षण	२॥)
९. गन्ने की खेती	।॥)	३१. गेहूं की खेती	३)
१०. फूल फुलवाड़ी	२॥)	३२. मूंगफली की खेती	१।)
११. धान की खेती	१॥)	३३. मिर्च की खेती	१।)
१२. सन्तरे की बागवानी	२॥)	३४. बीज की तैयारी	१॥)
१३. आम की बागवानी	३)	३ .. मसालों की खेती	२)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)	३६. पपीते की खेती	१॥)
१५. तिलहन की खेती	।॥=)	३७. आधुनिक कृषियन्त्र	१।)
१६. सोयाबीन की खेती	।)	३८. लाख की खेती	।॥=)
१७. तम्बाकू की खेती	॥)	३९. प्याज की खेती	।॥)
१८, खेती की तैयारी	२।)	४०. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
१९. फसल रक्षक औषधियां	२।)	४१. भारतीय कृषि कहावतें	२॥)
२०. व्याधियों की रोकथाम	१॥)	४२. किचन गार्डन	१।॥)
२१. खेतीबाड़ी (कि. गाइड)	१॥)	४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
२२. फलों की खेती	३॥)	४४. पोल्ट्री सर्जन	४)

देहाती पुस्तक भण्डारः— चावड़ी बाजार
दिल्ली—

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, सतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं. मू० ३॥) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू, अदरक, अरवी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिंघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३॥) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती वाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ

(ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १॥) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

५००० पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

केवल बारह आने (पिछत्तर नये पैसे) के टिकट लिफाफे में भेज कर नये वर्ष की श्री बापू राष्ट्रीय मशहूर जन्त्री मंगायें।

देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाजार देहली।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जय्यद प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर
वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क देहली से प्रकाशित किया

वेद प्रकाश

आर्य कौन ?

आर्य उसे कहते हैं जो जगत् के नियन्ता ईश्वर में विश्वास रखता है, सत्य को अपना पथदर्शक मानता है, न केवल मनुष्य मात्र से अपितु प्राणिमात्र से स्नेहभाव रखता है चरित्रवान् है और भय या लोभ के कारण अपने धर्म से च्युत नहीं हो सकता। वेदों का, महर्षि दयानन्द का और आर्यसमाज का मनुष्यों को मुख्य सन्देश यही है कि स्वयं आर्य बनो और मनुष्य मात्र को आर्य बनाओ। संसार में भ्रष्टाचार और असमानता का दौरदौरा है। आज मनुष्य मनुष्य का, सम्प्रदाय सम्प्रदाय का, और राष्ट्र राष्ट्र का शत्रु बन रहा है उसका कारण यही है कि मनुष्य जाति पर घोर नास्तिकता और असत्य का राज्य हो रहा है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपना सदृश भाई न मान कर स्वार्थ सिद्धि का साधन मान रहा है और अपने को उत्कृष्ट मान कर अन्यों को अपने से हीन सिद्ध करना चाहता है। यह अनार्यपन है। आर्य समाज का उद्देश्य है मनुष्य मात्र को आर्य बनाना। उसका एक मात्र उपाय है हम स्वयं आर्य बने और अन्यों को आर्य बनायें। इस समय हमारे देश को ऐसे सेवकों की आवश्यकता है जो सच्चे आस्तिक हों, दृढ़ चरित्र रखते हों, परस्पर द्वेष और ऊंचनीच की भावनाओं से शून्य हों और दूसरों की भलाई में अपना भला समझें। ऐसे सेवक ही विद्यमान तथा आने वाली मुसीबतों और शत्रुओं से जाति की रक्षा कर सकते हैं। आर्य जाति के लिये आर्य समाज का यही सन्देश है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

'हर्ष सूचना'

आर्य जगत के समस्त यज्ञ-प्रेमी भाई बन्धुओं को सहर्ष सूचित किया जाता है कि हमारी निर्माण शाला में शुद्ध सुगन्धित रोगनाशक ऋतु अनुकूल हवन सामग्री का निर्माण किया जाता है।

समस्त आर्य समाजों को तथा अन्य यज्ञ प्रेमी जनता को इस सामग्री का नित्य प्रयोग करके सर्व-रोगों से बचकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का अधिकारी बनना चाहिये।

आर्य जगत के सभी प्रमुख महात्माओं व विख्यात विद्वानों ने मुक्त कंठ से हमारी हवन सामग्री की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

१. मेवा हवन सामग्री का भाव ८०) मन है।
२. शुद्ध हवन सामग्री नं० २ का भाव ५०) मन है।

विशेष रियायत—पूरा १ मन मंगाने वाले को ७०) व ४५) रु० में क्रमशः दिया जायेगा। अध्यक्ष

धर्मवीर आर्य झण्डाधारी

आर्य हवन सामग्री निर्माणशाला
अहाता ठाकरदास सराय रुहेला देहली ५

वेद प्रकाश

(फार्म नं० ४ (प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट के अन्तर्गत)

१—प्रकाशन का स्थान	दिल्ली
२—प्रकाशित होने का समय	मासिक
३—मुद्रक का नाम	गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	नई सड़क दिल्ली
४—प्रकाशक का नाम	गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	नई सड़क दिल्ली
५—सम्पादक का नाम	गोविन्दराम हासानन्द
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	नई सड़क दिल्ली
६—पत्र के मालिक का नाम	गोविन्दराम हासानन्द
व पता	नई सड़क दिल्ली

मैं गोविन्दराम हासानन्द घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त व्यौरा बिल्कुल ठीक है।

गोविन्दराम हासानन्द

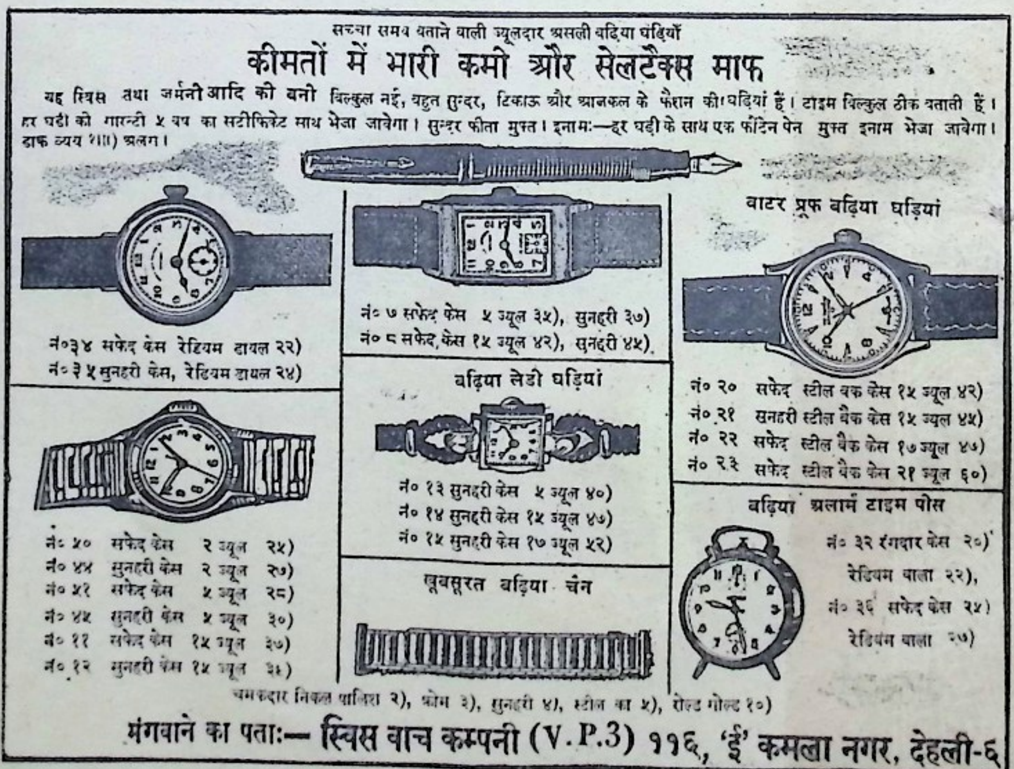

सच्चा समय बताने वाली ज्यूलदार असली बढ़िया घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी और सेलटैक्स माफ

यह स्विस तथा जर्मनी आदि की बनी बिल्कुल नई, बहुत सुन्दर, टिकाऊ और आजकल के फैशन की घड़ियां हैं। टाइम बिल्कुल ठीक बताती हैं। हर घड़ी की गारन्टी ५ वर्ष का सर्टीफिकेट साथ भेजा जावेगा। सुन्दर फीता मुफ्त। इनामः—हर घड़ी के साथ एक फौंटेन पेन मुफ्त इनाम भेजा जावेगा। डाक व्यय १॥) अलग।

नं०३४ सफेद केस रेडियम डायल २२)
नं० ३५ सुनहरी केस, रेडियम डायल २४)

नं० ७ सफेद केस ५ ज्यूल ३५), सुनहरी ३७)
नं० ८ सफेद केस १५ ज्यूल ४२), सुनहरी ४५)

वाटर प्रूफ बढ़िया घड़ियां

नं० २० सफेद स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४२)
नं० २१ सुनहरी स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४५)
नं० २२ सफेद स्टील बैक केस १७ ज्यूल ४७)
नं० २३ सफेद स्टील बैक केस २१ ज्यूल ६०)

नं० ४० सफेद केस २ ज्यूल २५)
नं० ४४ सुनहरी केस २ ज्यूल २७)
नं० ४१ सफेद केस ५ ज्यूल २८)
नं० ४५ सुनहरी केस ५ ज्यूल ३०)
नं० ११ सफेद केस १५ ज्यूल ३७)
नं० १२ सुनहरी केस १५ ज्यूल ३१)

बढ़िया लेडी घड़ियां

नं० १३ सुनहरी केस ५ ज्यूल ४०)
नं० १४ सुनहरी केस १५ ज्यूल ४७)
नं० १५ सुनहरी केस १७ ज्यूल ५२)

खूबसूरत बढ़िया चैन

बढ़िया अलार्म टाइम पीस

नं० ३२ रंगदार केस २०)
रेडियम वाला २२),
नं० ३६ सफेद केस २५)
रेडियम वाला २७)

चमकदार निकल पालिश २), क्रोम ३), सुनहरी ४), स्टील का ५), रोल्ड गोल्ड १०)

मंगवाने का पताः— स्विस वाच कम्पनी (V.P.3) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६

वेद प्रकाश

सम्पादक—गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—६ : चैत्र २०१५ मार्च १९५८ वार्षिक मूल्य २॥)
अंक—८ : दयानन्दाब्द १३४ फालगुन १८७९ शाके विदेशों से ५ शि०

हे वेदपते !

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ य० ३४।५८

हे (ब्रह्मणः+पते) वेदपते ! वेदरक्षक परमात्मन् ! (त्वम्) तू ही (अस्य) इस (सूक्तस्य) उत्तमता से उपदिष्ट वेद का (यन्ता) नियामक=नियमपूर्वक प्रदाता है। तू ही इस वेद को (वोधि) जानता और वोध कराता है (च) और इस वेद-बोध के द्वारा (तनयम्) सन्तानसमान मनुष्यवर्ग को (जिन्व) प्रसन्न और तृप्त करता है। (देवाः) विद्वान्, परमज्ञानी, तेरे गुणों को धारण करने वाला महात्मा (यत) जिस को (अवन्ति) पसन्द करते हैं, रक्षा करते हैं (यत्) उस (विश्वम्) संपूर्ण (भद्रम्) को (सुवीराः) हम उत्तम वीर, अथवा उत्तम श्रेष्ठ पुत्रपौत्रादि सन्तान से युक्त हम लोग (विदथे) ज्ञानयज्ञ में, अध्ययनाध्यापन व्यवहार में (बृहत्) बड़ा (वदेम) कहें।

ज्ञान, यज्ञ, उत्थान, और स्वाध्याय की प्रेरणा पूर्ण वेला में, हम सभी वेदरक्षक, परमात्मा के दिव्य ज्योतित प्रकाश की आभा से अपनी आत्मा को आलोकित करने का सकल्प कर, कामना करें, कि हे देव हमारे मानस में वेद-ज्ञान की अमृत किरणें छितरा दो, जिस से हम निरंतर लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़ने की शक्ति प्राप्त करते रहें, हमारा जीवन, जीवन का अन्त, कल्याणमय हो बिना रुके हम तेरी राह पर चलते चलें,''' तब तक,'''जब तक तुझे न पा लें !

—*—

॥ ओ३म् ॥

सत्यार्थप्रकाश

बड़े अक्षर व बड़ी साइज का टिप्पणियों सहित संस्करण

टिप्पणियों के लेखक—आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् 'आर्य–सिद्धान्त--सागर' के यशस्वी लेखक

शास्त्रार्थ महारथी श्री ठा० अमरसिंह जी आर्य मुसाफिर

स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द जी ने जो टिप्पणियों सहित मोटे अक्षर और बड़ी साइज का सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किया था, वह प्रकाशित होते ही जो उसके ग्राहक बने थे उनको प्राप्त हो गये जिन को प्राप्त नहीं हुए वे निराश हुए १५) की पुस्तक के २०) तक देने को तैयार हैं। इसपर भी मिलता नहीं।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने उससे भी कहीं अधिक टिप्पणियों सहित प्रकाशित करने का आयोजन किया है। टिप्पणियों के लिये उपरोक्त प्रशंसित पण्डित जी का सहयोग प्राप्त कर लिया है।

कैसा होगा, क्या साइज व कैसे अक्षर होंगे, कैसी उपयोगी टिप्पणियां होंगी, इसके लिये नमूना बिना मूल्य मंगाकर अथवा लेजाकर देख सकते हैं।

निम्न प्रकार की विशेषताएं होंगी

१. अजमेर वैदिक यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित वर्तमान संस्करण के अनुकूल कुछ भी परिवर्तन किये बिना मोटे अक्षरों में मूल पाठ छापा जायगा।

२. पाद टिप्पणियों में वेदादि सत् शास्त्र, पुराण, जैन ग्रन्थ इंजील (बाइबिल) और कुरान के प्रमाणों से ऋषि दयानन्द के दिये वाक्य तथा सिद्धान्तों की पुष्टि की जायेगी। जिससे अनेक शंकाओं का सामाधान हो जायेगा।

३. सत्यार्थप्रकाश में दिये प्रमाणों के पते जो ऋषि ने नहीं दिये वह भी यथाशक्ति इस संस्करण में दिये जायेंगे।

४. प्रत्येक विषय का पैराग्राफ़ अलग-अलग होगा।

५. प्रत्येक पृष्ठ पर विषय का निर्देश दिया जायेगा।

६. प्रत्येक समुल्लासों के विषयों के पैराग्राफ़ के नम्बर दिये जायेंगे जैसा कि ऋषि दयानन्द ने १३ वें और १४ वें समुल्लासों में दिये हैं जिस से उद्धरण देने में लेखकों तथा व्याख्याताओं को विशेष सहूलियत होगी, क्यों कि जितने भी संस्करण निकले हैं उन सब की पृष्ठ संख्या एक नहीं। इन नम्बरों से विशेष सहूलियत होगी जैसा कि वेद, शास्त्र, मनु० गीता आदि में नम्बर होते हैं।

७. पुस्तक के अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण सूची तथा विषय शब्दानुक्रमणिका दी जायेगी।

८. ऋषि की आत्म-कथा दी जायेगी जो कि उन्होंने पूना में अपने व्याख्यानों में तथा थियासोफिस्ट पत्र में लेखबद्ध करदी थी।

९. ऋषि के असली फोटो की प्रतिलिपियाँ भी इसमें विवरण वार जहाँ-जहाँ ऋषि भक्तों ने ऋषि के फोटो लिये थे, देंगे।

१०. मूल्य सर्वसाधारण के सहूलियत के लिये सुगम रहेगा। अर्थात् सुनहरी पूरे कपड़े की पक्की जिल्द का मूल्य १०) रु० प्रति पुस्तक होगा, डाक खर्च व पैकिंग खर्च पृथक होगा।

५ प्रतियों के खरीदारों को रेल से भेजा जावेगा जो कि कम भाड़े में पहुँचेगा। पांच पुस्तकों पर पैकिंग खर्च २) अलग होगा। दस प्रतियां और उससे अधिक पर पैकिंग खर्च तथा रेल भाड़ा सब हम देगें ग्राहकों के जिम्मे कुछ नहीं होगा।

अपनी प्रति १०) भेज कर शीघ्र सुरक्षित करालें

प्रत्येक समाज के मंत्री एवं अधिकारी वर्ग से प्रार्थना है कि अपने सदस्यों को इस संस्करण की सूचना देकर ग्राहक बना कर सहयोग प्रदान करें।

भवदीय

गोविन्दराम हासानन्द

वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, दिल्ली।

स्थापना स्मृति

[लेखक—श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० इलाहाबाद]

'वेद प्रकाश' के सम्पादक महोदय का आग्रह है कि में आर्य समाज के स्थापना दिवस के अंक के लिये आर्य सिद्धान्तों और अन्य मतमतान्तरों के विषय में एक लेख लिखूं वह यह भी लिखते हैं कि चाहे कैसी ही अवस्था क्यों न हो लेख अवश्य आना चाहिये ।

पहले में अपनी अवस्था का कुछ दिग्दर्शन करा दूं, में स्वस्थ भी हूँ और रुग्ण भी । बाकार भी हूँ और बेकार भी । १९५३ ई० की जनवरी के अन्त में में बीमार हो कर ६ मई तक हस्पताल में पड़ा रहा । अच्छा होने पर उर्दू का एक पद्य मेरे मुंह से निकल पड़ा :—

ताज़ा पैग़ामे ज़ीस्त लाया हूँ ।
मौत के मुंह से बचके आया हूँ ।

मुझे चिन्ता हुई कि ईश्वर ने जीवन को लम्बा कर दिया तो इस को किस काम में लाया जावे । तुरन्त ही मैंने एक पुस्तिका लिखी 'धर्मसुधासार ।' सस्ती, छोटी और सरल ! श्रावणी के वैदिक सप्ताह तक यह तैयार हो गई और १२००० प्रतियां वितरित हो गईं । उसी वर्ष 'जीवन चक्र' एक बड़ी पुस्तक लिखी जिस में आर्य समाज की नैतिक गुत्थियों और भारतीय अन्य कई बातों की विस्तृत मीमांसा की गई । १९५५ ई० में अंग्रेजी में फिलासफ़ी आफ़ दयानन्द (Philosophy of Dayanand) नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा और १९५६ ई० के मई मास में बौद्ध जयन्ती के अवसर पर वितरण करने के लिये अंग्रेजी की एक दूसरी पुस्तक लिखी—सोशल रिकांस्ट्रक्शन बाई बुद्ध एण्ड दयानन्द (Social Reconstruction by Budha& Dayananda इसकी ४००० प्रतियाँ भारत में और भारत के बाहर वितरित हो गईं । इसी बीच में चार वर्ष से मैं एक दूसरे अति गंभीर कार्यों में लग गया था । मैं अपने जेष्ठ पुत्र डा० सत्यप्रकाश डी० एस० सी० के साथ ऋग्वेद के कुछ सिद्धान्तों और मंतव्यों के विषय में बातचीत कर रहा था । उन्होंने कहा, कि वैदिक विषयों की वैज्ञानिक रूप से खोजने की आवश्यकता है । इधर उधर से कुछ वाक्य लेकर वर्तमान अनुसंधान करने वालों के समान कुछ धारणायें बनाना ठीक नहीं । मेरी समझ में यह बात आ गई और मैंने पूना से सायण भाष्य का नया सुन्दर संस्करण १३५) में खरीदा । स्वामी दयानन्द जी का भाष्य पहले से ही मेरे पास था । था तो सायण भाष्य भी । परन्तु पुराना और पुराने ढंग का छपा हुआ । मुझे नया सायण भाष्य देख कर विचार हुआ कि स्वामी दयानन्द का भाष्य ऐसी दीन हीन दशा में क्यों है ? क्या कोई स्वामी दयानन्द का नाम लेवा नहीं रहा । नाम लेवा तो हैं परन्तु केवल जय ध्वनि से आसमान गुंजाने वाले । अस्तु मैं दोनों भाष्यों को लेकर बैठा । अग्निमीड़े से लेकर 'सुसहासति' तक लगभग १०४०० मुख्य शब्द अलग अलग पर्चियों पर छांटे जिन में सायणार्थ और दयानन्दार्थ को तुलनार्थ लिखा गया । गत चार वर्षों में अन्य उपर्युक्त ग्रन्थ-निर्माण के साथ इतने कार्य के करने में कितना समय और कितना परिश्रम करना पड़ा इसका हिसाब आसानी से लगाया नहीं जा सकता । मैं चाहता था कि एक बड़ा ग्रन्थ तैयार किया जाय । परन्तु मेरी निर्बलताओं ने आ घेरा । गत मई से फिर रुग्ण होने लगा । यद्यपि थोड़ा-थोड़ा इसी बीच में मैंने सोचा कि बड़ा ग्रन्थ कौन पढ़ेगा, कौन छापेगा और कैसे बिकेगा । अतः मैंने सायण और दयानन्द नामक एक छोटा सा ग्रन्थ हिन्दी में लिखना आरम्भ किया । परन्तु स्वास्थ्य नें एकदम जबाव दे दिया । पहली सितम्बर १९५७ की रात मेरे घर के लोगों के लिए चिन्ता की रात थी । दूसरे दिन से एक अनुभवी होमियोपैथिक मित्र ने चिकिका काम अपने हाथ में लिया । पहले १० दिन तो कुछ आशा हुई परन्तु फिर औषध-वर्ग ने जबाब दे दिया । रोग में कुछ उतार चढ़ाव होता रहा । पहली अक्तूबर की रात को तो फिर रोग पहले से भी बढ़ चढ़ कर आक्रमण करने में सफल हो गया । यह प्रतीत हुआ कि प्रातः काल कठिनाई से होगा । प्रातः काल ही एक और डाक्टर बुलाये गये । उन्होंने रोग की गम्भीरता पर विचार करते हुये—"मालिक के नाम" पर इलाज शुरू किया । चार पांच दिन के बाद मुझे जान पड़ा कि अभी अन्तिम घड़ी जो पहली अक्तूबर को निकट प्रतीत होती थी अब दूर हो गई है । तब से मैं स्वस्थ हूँ परन्तु स्वस्थ

सा। क्षणे सुस्थः क्षणे रुग्ण। हां में इस बीच में इस योग्य हो गया कि "सायण दयानन्द" ग्रन्थ छप कर तैयार हो गया। ग्रन्थ छोटा है। लगभग ढाई सौ पृष्ठ का। परन्तु है तुलनात्मक। यह सब मैंने इसलिये लिखा कि कुछ मित्र मेरे काम के विषय में पूछते रहते हैं।

में कई मासों से लेख नहीं लिख रहा। मातायें जब पुत्रियों को खाना पकाना सिखाती हैं तो मैंने यह उपदेश देते हुये सुना है कि जब दाल में उबाल आ रहा हो तो मसाला नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उफान के साथ उसके बाहर निकल जाने का भय है। आर्य समाज की पतीली में भी बहुत दिनों से उबाल आ रहा है। अतः मुझे ज्ञात नहीं होता कि क्या लिखा जाय। उबाल क्या है? पांच तत्व हैं। आकाश तो निष्क्रिय है। पृथ्वी पार्थिव होने के कारण ढेला मात्र है। वायु अवश्य जीवष्ठ अर्थात् बहुत तेज समझा जाता है परन्तु है यह जल और अग्नि के हाथ में, जल इस को ठंडा कर देता है और अग्नि गर्म, रह गये दो अति बलवान तत्व जल और आग। इन दोनों के संघर्ष का नाम उबाल है। जल कहता है हम आग को बुझा देंगे। आग कहती है कि मैं तुमको न केवल अपनी तरह गर्म करके छोड़ूंगी अपितु बस चला तो भाप बना कर उड़ा दूंगी। इन दोनों प्रबल तत्वों के संघर्ष में किसकी शक्ति है कि मसाला डाल सके? आजकल वह युग नहीं है जब मतमतान्तर के मौलिक सिद्धान्तों पर तुलनात्मक विचार हो सकते। यह उस युग की बात है जब लोगों के आचरणों पर धर्म ग्रन्थों का प्रभाव पड़ता था। अब तो सभी धर्म ग्रन्थ केवल निचली श्रेणीं के लोगों की भावनाओं के आश्रय बन रहे हैं। उच्च श्रेणी के लोग इन को कभी कभी सर्व साधारण का अपने चुंगल में फांसे रखने का साधन निकाल लेते हैं। अन्यथा इनको कोई नहीं पूछता। आर्य समाज को भी स्वयं अपने सिद्धान्तों और अन्य मत के सिद्धान्तों की चिन्ता नहीं है, कुछ शास्त्रार्थ के प्रेमी अपने पुराने संस्कारों के वशीभूत होकर लकीर पीटते जा रहे हैं। वही पुरानी ढपली वही पुराना राग। ऊंची श्रेणी के लोगों की चिन्तायें तो दूसरे मार्गों का अवलम्बन कर चुकी है।

हमारी भावनायें राजनैतिक हैं, राजनैतिक भी आधुनिक अर्थ में, उस अर्थ में नहीं जिसमें राष्ट्र शब्द वेदों में प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः हमने यह शब्द वेदों से लिया नहीं, हमने इसको उधार लिया है। वर्तमान नैतिक क्षेत्रों से। उन्ही का अर्थ और उन्हीं की भावनायें। हमारे उद्देश्य और उद्देश्यों की पूर्ति के साधन भी बाहर से ही लिये गए हैं। हां अपने आन्दोलनों की पुष्टि के लिये कभी-कभी कहीं-कहीं मन माने ढंग से हम सत्यार्थप्रकाश और वेदों के भी कुछ वचनों को उदृत कर बैठते हैं, यही हाल दूसरे धर्मों का है, इस युग का कौन मुसलमान कुरान से प्रेरणायें लेता है और कौन सिख बाबा नानक के वचनों से? आज वेदों और गुरु ग्रन्थों की तुलना के दिन नहीं रहे। आज तो आर्य समाजियों की भावनाओं और आचरणों की सिखों की भावनाओं और आचरणों से तुलना करना लोग पसन्द करते हैं। इसी प्रकार कुरान और वेद की तुलना का भी हाल है, आज तो धर्म ग्रन्थ और धर्म मन्दिर हमारे हाथ के खिलौने हैं, इनको हम मनमाने ढंग से अपनी नैतिक भावनाओं के लिये प्रयोग में लाते हैं। उनसे सीधी प्रेरणा नहीं लेते। अन्यथा क्या हमारे आयुध भी वही हैं जो ऋषि दयानन्द के थे? हाँ! कभी-कभी हम दिखलाने के लिये कह बैठते हैं कि हम को यह नहीं चाहिये, वह नहीं चाहिये। वस्तुतः हम शिकार हैं उन सब लौकिक भावनाओं के जिन की दुनियां है। उनके भी मत हैं और हमारे भी मत! हम जिन उच्च आदर्शों को उपनिषदों, शास्त्रों, वेदों या ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों से उदृत करते हैं वह हमारे विचारों और आचारों को सुरक्षित नहीं रख सकते उनका आर्य समाज की साधारण जनता से बाहर कोई मूल्य नहीं। यही कारण है कि उन दलों को छोड़कर जो आर्य समाज को अपनी भावनाओं का साधन बनाना चाहते हैं और किसी खण्ड में आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार नहीं हो रहा। मैं जब संसार के वर्तमान युग के साहित्य पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है कि संसार का मस्तिष्क आर्य समाज के विरुद्ध जा रहा है, और आर्य समाज की गाड़ी दूसरे उन दलों के पट्टियों के पीछे घसिट रही है जो प्रगतिशील होने के बजाय प्रतिक्रियाशील है।

आप पूछोगे कि जब आर्य समाज की हांडी इस प्रकार उबल रही हैं तो तुम दार्शनिक या सांस्कृतिक ग्रन्थ लिखने में क्यों समय नष्ट कर रहे हो? इससे तुम को क्या मिलता है? धन या यश या कोई और सूक्ष्म चीज? यह प्रश्न स्वाभाविक है। न्याय संगत है। मैं सोच रहा हूँ कि शायद कभी यह उबाल बन्द हो जाय और यदि आर्य समाज को नहीं तो शायद आने वाले संसार को कुछ लाभ हो सके। यदि कभी ऐसा समय आया कि सुनने और कहने वाले शान्ति से गंभीर सिद्धान्तों पर विचार कर सके तब तो तुलनात्मक विचारों के अध्ययन का लाभ होगा।

वेदप्रकाश

का और एक विशेषांक

अप्रैल में प्रकाशित होगा।

वेद प्रकाश का लक्ष्य स्वध्याय योग्य साहित्य प्रकाशित करना और वेदप्रकाश के पाठकों को सुलभ मूल्य में पहुँचाना है। तदनुसार आर्य समाज स्थापना दिवस पर प्रकाशित हो रहा है।

बृहदारण्यक—उपनिषद—कथामाला

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज की उपरोक्त कथा जो कि उन्होंने ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में श्रोताओं के आगे कही जिसे सुनकर सब मुग्ध हो गए तथा स्वामी जी से उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना की।

बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी, जनक तथा गार्गी संवाद बड़े ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं अहं ब्रह्मास्मी इत्यादि अनेक विचार ग्रस्त स्थलों का भी यथार्थ समाधान किया हैं, अनेक अलंकारिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है जो अपने ढंग का नया ही दृष्टिकोण प्रतीत होगा। सर्वसाधारण सांसारिक जनों के लिये बहुत ही उपयोगी है, समाजों और सत्संगों में कथा करने योग्य कथायें हैं। बढ़िया कागज़, अच्छी छपाई तथा सुन्दर आवरण सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) मात्र। वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में तथा डाक रजिस्ट्री के ।।) मिलाकर शीघ्र २।।) भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली।

आर्य समाज गोरक्षा आंदोलन का नेतृत्व संभाले

श्री लाला हरदेव सहाय जी की प्रेरणात्मक पुकार

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेदों को ही प्रमाणित मानते हुए वेदों में लिखी हुई आज्ञाओं पर चलने का उपदेश दिया। आर्य समाज ने वेद प्रचार पर लाखों रुपया खर्च किया। वेदों में स्थान-स्थान पर गो रक्षा और गो महिमा के मंत्र मिलते हैं।

वैदिक वागंमय में १३७ बार गऊ के लिये 'अध्न्या' पद का प्रयोग हुआ है। गऊ अध्न्या यानी जिस का कभी भी वध न हो सके, बतलाकर जो लोग वेदों में गोहत्या और गो मांस का वर्णन बतलाते हैं, उसका प्रमाणित उत्तर दिया है।

वेद ने गऊ को साधारण प्राणी नहीं, देवता नहीं, देवताओं की भी माता बतलाया है। गो हत्यारे को गोली से मार देने तक की आज्ञा दी। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वेद मंत्र प्रमाण हैं।

माता रुद्राणां वसूनां स्वसाऽऽदित्यानामम्रृतस्य नाभिः
प्रनु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं
वधिष्ट ॥ (ऋग्वेद ८।१०१।१५)

अर्थात—गौ शत्रुओं को रुलाने वाले वीर मरुतों की माता, वसुओं की कन्या, अदिति पुत्रों की बहिन और अमृत का तो मानो केन्द्र ही है। इसलिये में विवेकी मनुष्यों से घोषणा पूर्वक कहता हूँ कि निरपराध तथा अवध्य गौ का वध न करो।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥
(अथर्व० १।१६।४)

अर्थात—यदि तू हमारी गौ, घोड़े तथा पुरुष की हत्या करता है तो हम सीसे की गोली से तुझे बींध देंगे, जिससे तू हमारे वीरों का वध न कर सके।

....क्षायत वीर ते गोध्नम् पुरुषध्नम् आरे....
(ऋग्वेद १।१६।११४।१०)

अर्थात—हे वीर पुरुषों को अपने आश्रय में बसाने हारे। तेरे राष्ट्र में रहने वाले गाय आदि पशु के हत्यारे और पुरुषों के हत्यारे पुरुष को दूर कर।

'श्रेष्ठतमाय कर्मणे आप्यायध्वमध्न्या इन्द्राय भागम्'
(यजुर्वेद १।१।)

अर्थात—हे कभी न मारने योग्य गोओं। तुम सर्व श्रेष्ठ, सर्वोत्तम कर्म यज्ञ, देव पूजा के लिए इन्द्र के भाग को बढ़ाओ और स्वय बढ़ो और।

"प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा:"

गौएं खूब उत्तम सन्तानों वाली, रोग रहित और राज यक्ष्मा से रहित रहें।

मृत्यवे गोव्यच्छम् अन्तकाय गोघातम्।
क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति ॥
(यजुर्वेद अ० ३०।१८॥)

अर्थात—गौ को दुःख देने वाले को मृत्यु दंड दिया जाय। गो की हत्या करने वाले को भी अन्तक अर्थात मृत्यु का ही दंड हो। और जो अपनी भूख को मिटाने के लिए गौ को काटने वाले कसाई व्यक्ति के पास मांस लेने जावे वह और इस प्रकार गोहत्या के व्यवसाय को प्रेरित करे, उनको भूखा रखा रहने का दंड दिया जाय।

गो भोज इत् किलासथ यत् सनवथ पुरुषम्।
(यजुर्वेद ३५।४)

अर्थात—तुम लोग गौओं की सेवा करने और उन को प्राप्त करने वाले रहो। क्योंकि तुम भोजन आदि अनेक उपकारों से पुरुष मात्र की सेवा करने वाले हो।

'अनुवीरेरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टै'
(यजुर्वेद अ० २६।१६)

अर्थात—हम हृष्ट पुष्ट वीरों और अश्वों से निरन्तर बराबर पुष्ट होते रहें।

"भग प्रणो जनय गोपिरश्वैः"
(ऋग्वेद ७।४१।३)

अर्थातः हे ऐश्वर्य वाले राजन्। हमें गौओं और अश्वों से खूब सम्पन्न करो।

आर्य समाज ने संस्कारों और यज्ञों को बहुत महत्व दिया। यज्ञ के दो भाग हैं मंत्री और हवी। दूध घी

आदि हवी के पदार्थ गऊ से ही प्राप्त होते हैं। अतः गऊ के बिना आर्य समाज का कोई संस्कार और यज्ञ पूरा नहीं हो सकता।

हर एक आर्य समाजी के लिये यह आवश्यक है कि वह गोरक्षण और गोपालन पर विशेष ध्यान दें। आर्य समाज के निर्माता महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने गऊ का महत्व और आवश्यकता बतलाने के लिये "गौ करुणा निधि" नामक पुस्तक लिखी। गो हत्या बन्द कराने के लिये आन्दोलन जारी किया। स्वामी जी ने गोरक्षा का महत्व प्रगट करने के लिये एक गाय से १५४४४० मनुष्यों का पालन होना सिद्ध किया है। गौ कृषि आदि रक्षणी संस्थायें बना कर रचनात्मक कार्य पर भी ध्यान देने के लिये योजना रखी।

स्वामी जी ने गोहत्या निषेध के विषय में कहा है कि "गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है।"

इस आदेश से निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करें

२८, २९, ३० मई १९५४ को हैदराबाद में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का बहुत बड़ा अधिवेशन ईसाईयों और गो रक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिये हुआ इस सम्मेलन में गो रक्षा आन्दोलन को चलाने का सर्वाधिकारी परम पुज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को दिया गया। स्वामी जी ने स्थान-स्थान पर दौरा करके जनमत संगठित करने की कोशिश की, पर बीमारी के कारण वह अधिक कार्य नहीं कर सके और उनके स्वर्गवास होने के साथ साथ एक प्रकार से सार्वदेशिक सभा का गोरक्षा आन्दोलन का कार्य बन्द सा ही हो गया। आर्य समाज के हजारों कार्यकर्ता एक दिन भी गो हत्या को सहन नहीं करना चाहते। उनके हृदय में गौ रक्षा की सच्ची भावना है पर कुछ कांग्रेस से दुष्प्रभावित आर्य समाजियों की पक्षपात पूर्ण नीति और स्थिति से बाध्य होकर आन्दोलन नहीं चल सका। हिन्दी रक्षा का आन्दोलन का नेतृत्व करके आर्य समाज ने देश भर के हिन्दुओं के हृदय में जागृति उत्पन्न की। सैंकड़ों प्रतिष्ठित आर्य समाजी नेताओं ने कांग्रेसी शासन की उपेक्षा करके भी हिन्दी रक्षा आन्दोलन का साथ देकर आर्य समाज की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। जागृति और शक्ति उत्पन्न की है। हजारों आर्य समाजियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि न्याय के मार्ग पर चलने के लिये वह कांग्रेस शासन की उपेक्षा करके भी आर्य समाज की प्रतिष्ठा को ठेस नहीं पहुंचने दी।

गौरक्षा का प्रश्न साधारण नहीं वेद से प्रतिपादित और महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा समर्थित है। महर्षि ने गो हत्या निषेध के जिस आन्दोलन को चलाया उसे सफल बनाना हर एक सच्चे आर्य समाजी का परम कर्तव्य है जिस प्रकार आर्य समाज ने पटियाले, हैदराबाद और सिन्ध के आन्दोलनों को सफल बनाया। हिन्दी रक्षा के लिए बड़े बड़े बलिदान दिये। गो रक्षा का प्रश्न इन सब प्रश्नों से कम महत्व नहीं रखता।

आशा है आर्य समाज गोरक्षा के प्रश्न पर ध्यान देकर देश में होने वाले भयंकर गोवध को बन्द करायेगा।

प्राच्यविधा-प्रतिष्ठान का नया महत्वपूर्ण प्रकाशन

वैदिक-स्वर-मीमांसा-लेखक-युधिष्ठर मीमांसक

मूल्य सजिल्द ३)

यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के "वेदार्थ में उपयोगी होन से संक्षेप से स्वरों की व्यवस्था लिखते हैं" वाक्य की विशद व्याख्या रूप है। स्वर क्या हैं, कितने हैं, उनका उच्चारण प्रकार क्या है? स्वरों का लोप कैसे और कब हुआ है? वेदार्थ में स्वरों की उपयोगिता को और स्वरों की उपेक्षा से वेदार्थ में कैसे भयङ्कर भूलें होती हैं इत्यादि अनेक विषयों की इस ग्रन्थ में सप्रमाण विशद मीमांसा की है। स्वर के विषय में इतनी विस्तृत और विशद मीमांसा आज तक किसी ने नहीं की। अन्त में वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त स्वरों के विविध प्रकार के चिन्हों की विस्तार से व्याख्या की है। एम० ए० और शास्त्री के परिक्षार्थियों की सुगमता के लिए मन्त्र पाठ से पदपाठ बनाने के नियम भी दे दिए हैं। इसलिए यह वेद के प्रत्येक जिज्ञासु और वि[illegible]र्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ग्रन्थ केवल ५०[illegible] छप रहा है। अपनी कापी सुरक्षित करालें। १५ अप्रेल तक पेशगी भेजने वालों को डाक व्यय समेत ३) रु० में प्राप्त होगा।

अन्य प्रकाशनों के लिए सूचीपत्र मंगा कर देखें--

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठन, ४९४३ रेगरपुरा गली नं० ४०
करोल बाग, देहली।

आदि हवी के पदार्थ गऊ से ही प्राप्त होते हैं। अतः गऊ के बिना आर्य समाज का कोई संस्कार और यज्ञ पूरा नहीं हो सकता।

हर एक आर्य समाजी के लिये यह आवश्यक है कि वह गोरक्षण और गोपालन पर विशेष ध्यान दें। आर्य समाज के निर्माता महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने गऊ का महत्व और आवश्यकता बतलाने के लिये "गौ करुणा निधि" नामक पुस्तक लिखी। गो हत्या बन्द कराने के लिये आन्दोलन जारी किया। स्वामी जी ने गोरक्षा का महत्व प्रगट करने के लिये एक गाय से १५४४४० मनुष्यों का पालन होना सिद्ध किया है। गौ कृषि आदि रक्षणी संस्थायें बना कर रचनात्मक कार्य पर भी ध्यान देने के लिये योजना रखी।

स्वामी जी ने गोहत्या निषेध के विषय में कहा है कि "गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है।"

इस आदेश से निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करें

२८, २९, ३० मई १९५४ को हैदराबाद में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का बहुत बड़ा अधिवेशन ईसाईयों और गो रक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिये हुआ इस सम्मेलन में गो रक्षा आन्दोलन को चलाने का सर्वाधिकारी परम पुज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को दिया गया। स्वामी जी ने स्थान-स्थान पर दौरा करके जनमत संगठित करने की कोशिश की, पर बीमारी के कारण वह अधिक कार्य नहीं कर सके और उनके स्वर्गवास होने के साथ साथ एक प्रकार से सार्वदेशिक सभा का गोरक्षा आन्दोलन का कार्य बन्द सा ही हो गया। आर्य समाज के हजारों कार्यकर्ता एक दिन भी गो हत्या को सहन नहीं करना चाहते। उनके हृदय में गौ रक्षा की सच्ची भावना है पर कुछ कांग्रेस से दुष्प्रभावित आर्य समाजियों की पक्षपात पूर्ण नीति और स्थिति से बाध्य होकर आन्दोलन नहीं चल सका। हिन्दी रक्षा का आन्दोलन का नेतृत्व करके आर्य समाज ने देश भर के हिन्दुओं के हृदय में जागृति उत्पन्न की। सैंकड़ों प्रतिष्ठित आर्य समाजी नेताओं ने कांग्रेसी शासन की उपेक्षा करके भी हिन्दी रक्षा आन्दोलन का साथ देकर आर्य समाज की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। जागृति और शक्ति उत्पन्न की है। हजारों आर्य समाजियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि न्याय के मार्ग पर चलने के लिये वह कांग्रेस शासन की उपेक्षा करके भी आर्य समाज की प्रतिष्ठा को ठेस नहीं पहुंचने दी।

गौरक्षा का प्रश्न साधारण नहीं वेद से प्रतिपादित और महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा समर्थित है। महर्षि ने गो हत्या निषेध के जिस आन्दोलन को चलाया उसे सफल बनाना हर एक सच्चे आर्य समाजी का परम कर्तव्य है जिस प्रकार आर्य समाज ने पटियाले, हैदराबाद और सिन्ध के आन्दोलनों को सफल बनाया। हिन्दी रक्षा के लिए बड़े बड़े बलिदान दिये। गो रक्षा का प्रश्न इन सब प्रश्नों से कम महत्व नहीं रखता।

आशा है आर्य समाज गोरक्षा के प्रश्न पर ध्यान देकर देश में होने वाले भयंकर गोवध को बन्द करायेगा।

प्राच्यविधा-प्रतिष्ठान का नया महत्वपूर्ण प्रकाशन

वैदिक-स्वर-मीमांसा-लेखक-युधिष्ठर मीमांसक

मूल्य सजिल्द ३)

यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के "वेदार्थ में उपयोगी होन से संक्षेप से स्वरों की व्यवस्था लिखते हैं" वाक्य की विशद व्याख्या रूप है। स्वर क्या हैं, कितने हैं, उनका उच्चारण प्रकार क्या है? स्वरों का लोप कैसे और कब हुआ है? वेदार्थ में स्वरों की उपयोगिता को और स्वरों की उपेक्षा से वेदार्थ में कैसे भयङ्कर भूलें होती हैं इत्यादि अनेक विषयों की इस ग्रन्थ में सप्रमाण विशद मीमांसा की है। स्वर के विषय में इतनी विस्तृत और विशद मीमांसा आज तक किसी ने नहीं की। अन्त में वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त स्वरों के विविध प्रकार के चिन्हों की विस्तार से व्याख्या की है। एम० ए० और शास्त्री के परिक्षार्थियों की सुगमता के लिए मन्त्र पाठ से पदपाठ बनाने के नियम भी दे दिए हैं। इसलिए यह वेद के प्रत्येक जिज्ञासु और विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ग्रन्थ केवल ५०० छप रहा है। अपनी कापी सुरक्षित करालें। १५ अप्रेल तक पेशगी भेजने वालों को डाक व्यय समेत ३) रु० में प्राप्त होगा।

अन्य प्रकाशनों के लिए सूचीपत्र मंगा कर देखें--

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठन, ४९४३ रेगरपुरा गली नं० ४०
करोल बाग, देहली।

आर्य समाज स्थापना-दिवस

(लेखक—श्री पं० युधिष्ठर जी मीमांसक, देहली)

आर्य समाज की स्थापना भारत के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस घटना का महत्व रामनवमी कृष्ण जन्माष्टमी दीपावली और शिवरात्रि से किसी प्रकार न्यून नहीं है। इसलिए इस तिथि को वास्तविक रूप में सुरक्षित रखना अत्यन्त आवश्यक है।

ऋषि दयानन्द के जीवन के साथ सम्बन्ध रखने वाली दो महत्वपूर्ण एतिहासिक घटनाएं हैं। वे हैं—

आर्य समाज की स्थापना

परोपकारिणी सभा की स्थापना

दुःख से लिखना पड़ता है कि इनमें से प्रथम आर्य समाज की स्थापना तिथि के सम्बन्ध में भ्रान्ति पैदा कर दी गई और उस भ्रान्ति ने इतना पैर फैलाए कि उसके नीचे वास्तविक तिथि दब गई। परोपकारिणी सभा की तिथि में सम्भवतः स्वीकार पत्र लिखते समय भूल हो गई वह भूल आज तक चली आ रही है।

सन् १९३९ तक आर्य समाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला पंचमी मानी जाती थी। उसके पश्चात आर्य समाज बम्बई में लगे शिला लेख को देखकर बिना विशेष विचारे सार्वदेशिक सभा ने घोषणा कर दी कि स्थापना की वास्तविक तिथि चैत्र शुक्ल १ है। सार्वदेशिक सभा के इस विपरीत निर्णय का विरोध लगभग उसी समय से होना आरम्भ हो गया और आज तक हो रहा है परन्तु सभा की ओर से आज तक इसके निर्णय के लिए प्रयत्न नहीं किया गया।

चैत्र सुदी १ प्रतिपद के विषय में तीन ही प्रमाण हैं। १. बम्बई के समाज भवन पर लगा शिला लेख, २. आर्य समाज की रजिस्ट्री, ३. सन् १८८८ में प्रकाशित रिपोर्ट।

इनमें से बम्बई समाज का शिला लेख सन् १८९४ जब कि श्री स्वर्गीय पं० लेखराम जी स्वामी जी महाराज के जीवन चरित्र के लिए सामग्री लेने बम्बई गए थे समाज भवन पर नहीं लगा था। यदि वह शिला लेख लगा होता तो निश्चय ही पं० लेखराम जी चैत्र शु० १ ही स्थापना दिवस लिखते चैत्र शु० ५ नहीं लिखते। न्यूनाति न्यून सन् १८८८ से पूर्ववर्ती तो वह शिला लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता संख्या २ और ३ के प्रमाणों में इतना भारी परस्पर विरोध कि उस विरोध उनकी प्रमाणिकता स्वयं नष्ट हो जाती है। इतना ही नहीं इनमें लिखे तिथि तारीख और वार (दिन) भी उस समय के पंचाङ्ग के विपरीत हैं। इससे उनकी प्रामाणिकता स्वयं समाप्त है।

इनके विपरीत चैत्र शुक्ला पंचमी को ही आर्य समाज की स्थापना हुई इसमें निम्न प्रमाण हैं—

१—ऋषि दयानन्द का चैत्र शुक्ला ६ (अगले ही दिन) का पत्र।
२—उस समय के मंत्रों के उद्धरण।
३—श्री पं० लेखराम जी और श्री पं० देवेन्द्र नाथ जी का अनुसंधान।
४—आर्य समाज बम्बई के प्रारम्भिक ११ मासों की रिपोर्ट जो सं० १९३३ (गुजराती १९३२) में ही छप गई थी।

चैत्र शुक्ला १ के प्रमाण अपने पारस्परिक विरोध तथा अन्तः साक्षियों से विपरीत होने से हेय हैं और चैत्र शु० ५ के पक्ष में ऊपर स्थापित प्रमाणों के विषय आज तक किसी ने अप्रामाणिकता प्रकट करने का साहस नहीं किया (करता भी कैसे, कहीं भूल दिखाई पड़े, तब तो लिखे) इतना होने पर भी आज तक स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला १ को मनाने का आदेश देते रहना कहां तक उचित है इस पर आर्य मात्र को विचार करना चाहिए। श्री पं० इन्द्र जी लिखते हैं।

"प्रतीत होता है स्थान निश्चत हो जाने पर आर्य समाज मन्दिर के उस स्थान पर बनाए जाने का निश्चय महर्षि ने चैत्र शुक्ला १ को कर दिया था। इस प्रकार आर्य समाज की तथा आर्य समाज मन्दिर की **मानसिक स्थापना** का वही दिन है जो आर्य समाज मन्दिर के शिला लेख में दिया गया है....भेद केवल इतना है कि यह तिथि आर्य समाज के विधिपूर्वक आरम्भ की न होकर योजना रूप में आरम्भ होने की है....।"

इतिहास कार का कार्य है कि जिस विषय में मत-भेद उत्पन्न हो गया हो उस पर निष्पक्षता से विचार करके सत्य का स्पष्ट शब्दों में अनुमोदन करे। इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं। इतिहास का अर्थ है—इतिहआस—ऐसा निश्चय से था।

यदि पण्डित जी की कल्पना के अनुसार मान भी लिया जाए कि 'चैत्र शुक्ला १ आर्य समाज की **मानसिक स्थापना** का दिन है? तब भी प्रश्न होता है कि पूर्व के रूप में आर्य समाज स्थापनाके मानसिक स्थापना दिवस को माना जाए अथवा क्रियात्मक स्थापना दिवस को।

संसार में कोई भी रामकृष्ण जन्म को उस दिन नहीं मनाता जब भगवती कौशल्या तथा देवकी ने गर्भ धारण किया था। इसी प्रकार सोसाइटियों की स्थापना दिवस मनाने का नियम ही यही है कि विधिवत जिस दिन उद्घाटन या स्थापना होती है वही मनाया जाता है। मानसिक स्थापनाएं तो ऋषि के मन में न जाने कितने वर्ष पूर्व हो चुकी होगी।

आर्य समाज की आवश्यकता

लेखक—डा० सूर्यदेव शर्मा सहित्यालंकर, एम० ए०, डी-लिट् अजमेर

कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्यसमाज नहीं ?
क्या ऋषि का ध्येय हुआ पूरा, अवशेष रहा कुछ काज नहीं ?

अज्ञान अंधेरे में गुम्फित गह्वर से क्या ये देश कढ़ा ?
पाकर स्वतन्त्रता भी भारत क्या गौरव-गिरि के शिखर चढ़ा ?
वैदिक विधान के वर्तन का क्या कुछ भी पावन पाठ पढ़ा ?
क्या नैतिकता, नय, न्याय-नीति के लिये नया खोदा न गढ़ा ?
क्या धर्म-ध्येय-निरपेक्ष निपट-निरुपाय हमारा राज नहीं ?
कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्य समाज नहीं ?

इतिहास-परक पाश्चात्य-प्रणाली से क्या श्रुति-उद्धार हुआ ?
संस्कृत-साहित्य-समीरण में क्या सौम्य-सवन-संचार हुआ ?
पृथ्वीतल पर पावन वैदिक वादों का क्या विस्तार हुआ ?
विज्ञान-विमंडित विधियों पर, निधियों पर विविध विचार हुआ ?
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का अब तलक सजा कुछ साज कहीं ?
कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्य समाज नहीं ?

पाखंड हुआ क्या खंड-खंड, क्या दम्भ दुर्ग चकनाचूर हुआ ?
मिथ्या विश्वास बढ़ा न कहीं क्या,."कुम्भ-कांड" कम क्रूर हुआ ?
क्या राजनीति में भी प्रवेश पाखंड का न है भरपूर हुआ ?
क्या राजघाट पर ढोंग-ढंग कीर्तन-अर्चन का दूर हुआ ?
क्या अनाचार अंग्रेजपना भारत भूमि में आज नहीं ?
कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्य समाज नहीं ?

क्या ईसाई मिशनों का अब, यवनों का काम नहीं होता ?
हिन्दू समाज क्या अपने लाखों लाल ललाम नहीं खोता ?
क्या राष्ट्र विरोधी बीज "द्रविड़ कज़गम' दिन रात नहीं बोता ?
क्या आज हमारा यह समाज आलस की नींद नहीं सोता ?
दिन रात हमारे गौरव के गढ़ पर क्या गिरती गाज नहीं ?
कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्यसमाज नहीं ?

इसलिये आज फिर एक बार, ऐ सोते सिंहों ! जाग उठो ।
गर्जना करो भीषण जिससे सब अरिदल जाये भाग, उठो ॥
हे आर्य वीर ! वैदिक प्रचार की लेकर उर में आग उठो ।
भारत जननी श्रुति माता का लेकर अनुपम अनुराग उठो ॥
क्या ऋषि मुनियों के गौरव की कुछ पुण्य प्रतिष्ठा लाज नहीं ?
कहता है कौन कि दुनियाँ में आवश्यक आर्य समाज नहीं ?

मैं आर्य समाजी कैसे बना ?

(राज्यरत्न श्री मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी (स्वर्गवासी)

जब मैं अमृतसर के राजकीय हाई स्कूल में मैट्रिक में शिक्षा प्राप्त करता था, उन दिनों आंग्ल-भाषा में लीथर ब्रज साहब का इतिहास कण्ठ करना पड़ता था। उसमें जब मैं महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों का वर्णन याद किया करता था, उस समय हृदय में यह बात आती कि यदि सोमनाथ के शिवजी महाराज में बदला लेने की शक्ति होती तो वह अवश्य दुष्ट महमूद को अन्धा करके अपना चमत्कार दिखा सकते थे, पर उन्होंने कुछ न किया। अतः वह केवल पत्थर ही प्रमाणित हुआ, दिव्य शक्ति सम्पन्न नहीं। जैसा कि हम सब हिन्दु भक्त उनको मानते थे।

सन् १८८६ में हमारी मैट्रिक कक्षा का एक घन्टा प्रति दिन श्रीमान पूज्य स्वर्गवासी पिता समान देवता-स्वरूप श्री बाबू मुरलीधर साहब ड्राइंग मास्टर के पास होता था। मैं ईश्वर की कृपा से उनके विषय अर्थात् ड्राइन्ग, चित्रकारी आदि में अन्य सब मुसलमान और हिन्दु विद्यार्थियों से प्रथम रहा करता था। इसलिये जब वे मेरी कापी या चित्रकारी का कोई कागज देखकर नम्बर देते, या प्रशंसा करते, तब साथ ही आहिस्ता से कह देते कि:—

"आत्माराम तुम बड़े प्रसिद्ध रईस परिवार से संबन्ध रखते हो। तुम्हारे पिता स्वर्गवासी लाला राधा किशन साहब तहसीलदार लुधियाना की प्रशंसा हम अमृतसर और लाहौर में श्रीमान लाला जीवन दास जी जो लाहौर समाज के विख्यात संचालक हैं—से सुना करते हैं, कारण कि उस विभाग से सम्बन्वित हैं। तुम ऐसे योग्य और प्रसिद्ध पिता के सुपुत्र होने पर जब कक्षा में अन्य सब विषयों में और मेरे विषय में प्रथम रहते हो, तो तुम को धर्म पिता समान में यह उपदेश देना चाहता हूँ कि तुम अमृतसर में जो भाई सालू के कटड़ा में रविवार को आर्य समाज का सत्संग हुआ करता है उसमें अवश्य आया करो" और परसों तो अवश्य आना, "वहां हमारे एक सुप्रसिद्ध विद्वान उपदेशक पं० लेखराम जी का उपदेश होगा। उसे सुनने के लिये अवश्य ही आना।"

जब तक श्री बाबू मुरलीधर जी जीवित रहे, मैं उनको धर्म-पिता समझकर उनसे व्यवहार आदि करना अपना सौभाग्य मानता था, यद्यपि वे कालिज पार्टी की प्रतिनिधि सभा के महा मन्त्री थे पर जब कभी मैं गुरुदास पुर में, जहाँ वे बाद में बदल कर चले गये थे, उपदेश देने जाता तो उनके गृह पर ही भोजन करता और आशीर्वाद लेता। मरते समय तक उनको अपना धर्म पिता ही मानता रहा।

महमूद के आक्रमणों का वर्णन याद करके मन सदा मूर्ति पूजा और हिन्दु धर्म की इस कमजोरी के कारण अति दुखित रहा करता था। स्वर्गवासी पूज्य श्री बाबू मुरलीधर जी की कृपा से श्रीमान पूज्य धर्मवीर पं० लेखराम जी का अमर भाषण अमृतसर आर्य समाज में सुनकर कि मूर्ति-पूजा आर्य धर्म या हिन्दु धर्म के विरुद्ध है, उस दिन से समाज का सदस्य बन गया।

जब अमर शहीद पं० लेखराम जी का उपदेश हुआ तब उन्होंने अन्य विद्यार्थियों के साथ मुझ से भी वर्तालाप किया। मैं कक्षा में कभी-कभी अंग्रेजी में कुछ मिनट लेक्चर देने का चाव रखता था अतः मैंने प्रार्थना की कि क्या हमें भी आप के समान उर्दू में लेक्चर देने के लिये समय मिल सकेगा ? उन्होंने कहा—"अवश्य, निश्चित रूप से।"

उन्होंने आश्वासन ही नहीं दिया अपितु अपने कर कमलों से एक "आर्य डिबेटिंग क्लब" अमृतसर में प्रारम्भ करदी, जिसके संचालक पूज्य श्री पं० लेखराम जी स्वयं बने और मुझे उसका मन्त्री बनाया गया। उसके पश्चात् दूसरी बार श्री पं० लेखराम जी से यज्ञोपवीत लेकर अपने आप को उनका शिष्य सेवक बनाने का सौभाग्य प्राप्त किया।

आर्य समाज और ईश्वर-विचार

यूयं हि ष्ठा सुदानवः, इन्द्र ज्येष्ठा अभिद्युवः ।
कर्ता वो अध्वन्नासुगं गोपा अमा ॥ ऋ०६।५१।१५) ।

इस ऋचा में उपदेश है कि मनुष्यो ! तुम दानशील और इन्द्रज्येठ बनो । अर्थात् जो पुरुष इन्द्र अर्थात् ईश्वर को अपने जीवन में ज्येष्ठ स्थान देता है वह 'इन्द्रज्येष्ठ' है । ऐसे ही लोग स्वयं सीधे रास्ते पर चलते हुये दूसरों को मार्ग दिखा सकते हैं ।

ऋषि दयानन्द उसी प्रकार के 'इन्द्र-ज्येष्ठ' थे और आर्य समाजियों के लिये भी वह 'इन्द्र-ज्येष्ठ' होने का उपदेश कर गये हैं, जैसा कि आर्य समाज के प्रथम नियम से प्रकाशित होता है ।

परन्तु ईश्वर के विषय में ऋषि दयानन्द और दूसरे आस्तिकों में बहुत बड़ा भेद है । संसार के सवा तीन अरब लोगों में ९९ प्रतिशत आस्तिक या ईश्वरवादी हैं । परन्तु स्वामी दयानन्द इस ईश्वरवाद को सफल जीवन के लिये सर्वथा अपर्याप्त समझते हैं और किसी-किसी अंश में तो लोगों की ईश्वर वादिता ही द्रोह और अशान्ति का कारण रही है । विचार-शून्य लोगों की मांग है कि प्रत्येक राष्ट्र को धर्म-प्रधान होना चाहिये । धर्म-प्रधानता का अर्थ है कि ईश्वर-वाद के जो अनेक सम्प्रदाय हैं उनमें से किसी एक का अवलम्बन करना चाहिये । उदाहरण के लिये कहा जाता है कि पाकिस्तान एक धर्म-प्रधान (थेयोक्रेटिक) राष्ट्र है । भारत भी क्यों नहीं ऐसा ही हो जाता । ऋषि दयानन्द के विचार से यदि किसी देश की जनता में यथार्थ इन्द्रज्येष्ठत्व आ जायगा तो वह किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध न रखते हुये भी ईश्वर-वादी और धार्मिक होंगे ।

साम्प्रदायिक ईश्वर-वाद का प्राचीन पाश्चात्य विद्वानों ने भी विरोध किया है । उदाहरण के लिये यूनानी दार्शनिक जेनो फेनीज (Xeno phanes) जो स्वयं आस्तिक था लिखता है:—

"Homer and Hesiod have ascribed to the gods all things that are a shame and a disgrace among mortals, stealings and adulteries and deceiving of one another. Mortals deem that gods are begotten as they are, and have clothes like theirs, and voice and form—yes, and if oxen and horses or lions had hands, and could paint with their hands, and produce works of art as men do, horses would paint the form of gods like horses, and oxen like oxen, and make their bodies in their image of their several kinds... the Ethes pious make their gods black and snab nosed, the Thracians say theirs have blue eyes and red hair" (The History of Western Philosophy by Berts and Russell page 59)

भावार्थ:—होमर और हीसियड नाम के यूनानी दो बड़े कवियों ने देवों का जो चित्र खींचा है उसमें बहुत सी ऐसी बातें बताई गई हैं जो मानव जाति में भी लज्जाजनक समझी जाती हैं । जैसे चोरियां, व्यभिचार और धोखा देना···वह समझते है कि जैसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं वैसे ही देव भी । वे भी हमारे समान कपड़े पहनते, शरीर रखते और बोली बोलते हैं···यदि घोड़े, बैल या सिंह कलाकार होते तो घोड़े अपने ईश्वर को घोड़े और बैल के रूप में दर्शाते···यूथोपिया के लोगों ने अपने देवों को काले रंग और चपटी नाक को चित्रित किया है । ग्रीस वालों के देवता नीली आंखों और लाल बालों वाले होते हैं ।

भारत में हिन्दू देवी देवता पर भी यही आक्षेप लागू होता है। यहां तो मानव-कलाकारों ने अपने देवताओं के निर्माण में अद्भुत कल्पना शक्ति का प्रयोग किया है, इसके देव न केवल इनकी निज आकृति के हैं अपितु हाथी, सिंह, वाराह, कच्छ, मच्छ सभी का प्रतिनिधित्व करते हैं, तुलसीदास जी ने भी तो कह ही डाला कि—

'हर्ष मनावें देव कुचाली'

स्वर्ग में कौन सा काम है लज्जा का या घृणा का जो नहीं होता। अवध के नवाबों ने इन्द्र सभा स्थापित की थी, परन्तु वह क्या इन्द्र-ज्येष्ठ थे? स्वामी दयानन्द कहते हैं कि ईश्वर की खोज करो, ईश्वर को प्राप्त करने के साधन तलाश करो। ईश्वर को अपने मन का न बनालो, ऐसा ईश्वर तुम्हारा बनाने वाला और उपास्य नहीं, अपितु तुम्हारे खेलने के लिये खिलौना मात्र होगा।

इस प्रकार के पौराणिक देववाद को पुनर्जीवित करने की बड़े बड़े लोग कोशिश कर रहे हैं। उनको यह नहीं मालूम कि यद्यपि राम और कृष्ण के मानवोचित आदर्श जीवन ने आर्य जाति को उच्च बनाया परन्तु अवतारवाद ने निकृष्ट से निकृष्ट और घृणित से घृणित बातों का भी तो प्रचार किया जैसा मन्दिरों के जीवन से प्रमाणित होता है। यह सब झूठे और कल्पित ईश्वर-वाद का ही परिणाम है। अंग्रेजी शब्द डीफाई (Defy) का अर्थ है किसी पुरुष को ईश्वर बनाना या उसमें ईश्वर की भावना उत्पन्न करना। यह वही है जिसका उल्लेख ज़ेनोफेनीज़ ने किया है अर्थात ईश्वर में वह गुण बताना जो मनुष्य में हैं—अर्थात भूख, प्यास जाड़ा, गर्मी आदि। और उनको खाना पानी कपड़ा आदि देना।

जैसा नाट्य मन्दिरों में प्रतिदिन होता है, बहुत दिन हुए मैं मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर को देखने गया। वहां मुझे एक कोठरी बताई गई जिसमें रात्रि के समय देव दम्पति शयन करते हैं। यह है ईश्वर-निर्माण की पराकाष्ठा। इससे संस्कृति दूषित होती है। उत्कृष्ट नहीं होती।

ईश्वरीकरण के दो पक्ष हैं। जहाँ हम किसी पुरुष को बढ़ाकर ईश्वर के दर्जे तक पहुँचाते हैं वहां ईश्वर को उस पुरुष के दर्जे तक घसीट भी डालते हैं। यदि किसी सुन्दरी के मुख की चांद से उपमा की जाय तो जहां उस मुख को वहां तक चढ़ाया गया है वहां चांद को उसके मुख के स्तर को घटाया भी तो जाता है। उपमा का दोष तो इसलिये प्रतीत नहीं होता कि उपमा अपना उपमापन स्थिर रखती है। कोई पुरुष किसी सुन्दर स्त्री के चांद के समान मुखड़े से चांदनी का काम नहीं लेता। परन्तु अवतारवाद में तो ईश्वर को सर्वथा भुलाकर मनुष्य-विशेष को ही ईश्वर समझ लिया जाता है। खेद है कि पुरानी रूढ़ियों में फसे हुए विद्वान लोग भी वास्तविकता पर विचार नहीं करते। स्वामी दयानन्द ने कल्पित ईश्वर-वाद का खण्डन करके बड़ा उपकार किया है। सच्ची आस्तिकता का प्रचार हो नहीं सकता जब रूढ़िवाद का खण्डन न हो। हम को सच्चे अर्थ में 'इन्द्र-ज्येष्ठ' बनना है।

न पन्थ में थकें चरण

श्री रामप्रताप खरे

न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।
अगार का शृङ्गार कर,
स्व-रक्त फाग खेलते;
बढ़ें सदैव, वक्ष में—
प्रचण्ड वज्र झेलते,
प्रचण्ड बाहु में किया सहर्ष मृत्यु को वरण।
न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।

कि, रुद्ध द्वार खोल कर,
उतर पड़ी स्वतन्त्रता,
नवीन-चेतना लिये,
हमें मिली स्वतन्त्रता;
मगर अशेष राह है, अभी झुकें नहीं चरण।
न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।

न भय, तिमिर स्वयं सिमिट,
विलुप्त-मार्ग जो करे;
प्रचण्ड-वायु वेग जो,
प्रकम्प, प्राण में भरे।
अनन्त-पन्थ के पथी, कभी न मांगते शरण।
न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।

अकम्प-दीप की शिखा,
नवीन-स्नेह माँगती;
नवीन-रक्त से शिरा
शिरा-उफान मांगती;
नवीन शक्ति मांगती, नवीन राष्ट्र की धरणि।
न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।

प्रफुल्ल इन्द्र-चाप सी
ध्वजा रही लहर-लहर;
विभोर-वायु काँपती
स्वतन्त्रता-भाव भर अमर;
नया उछाह दे रही, प्रकाश की नई किरण।
न पन्थ में थकें चरण, न पन्थ में रुकें चरण।

आर्य समाज का कार्य क्षेत्र

(ले० श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)

१. किसी धार्मिक समाज के जीवित रहने के लिये आवश्यक है कि उसके सदस्य अपनी कथनी और करनी में एक हों। अपने अतीत से शिक्षा ग्रहण करते हुए तर्कवद से दूर रह श्रद्धा एंव सत्य के साथ अपने सिद्धान्त-पालन में किसी दल से समझौता न कर सर्वदा तत्पर रहें अन्यथा उस समाज का स्वरूप मत सम्प्रदाय का रह जाता है।

उक्त सब लेखक के इस एंक संदर्भ से ही कितना स्पष्ट है—'अपनी लेखनी और वाणी में प्रेरणा और बल लाने के निमित्त हमें एक महान त्रुटि से अपने को मुक्त रखना होगा और वह हैं आत्मप्रवंचना।'

इस सबके लिये लेखक के लेख की आद्योपान्त पढ़ें। —सम्पादक

आर्य समाज का स्थापना-दिवस प्रत्येक आर्य के लिये बड़े महत्व का दिवस है जो पवित्र प्रेरणाओं के साथ आता है। इस वर्ष यह दिवस २५–३–५८ को मनाया जायगा। इस दिवस की मुख्यतम प्रेरणा यह है कि हम सब आर्य समाज के उद्देश्य को पूरा करते हुए उसके यश और विस्तार का कारण बने। महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म्म के चहुँ ओर छाये हुए मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास, अनार्य्य साहित्य अवैदिक मन्तव्यों एवं आचरणों के गहरे बादलों को छिन्न भिन्न करके उसके विशुद्ध स्वरूप को दर्शाने और प्रसारित करने के महान उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्य समाज को इस कार्य में प्राण पण से जुटे रहना है।

१९ वीं शती में सत्य की खोज में महर्षि दयानन्द का स्थान सर्वोपरि रहा। इस २० वीं शती में आर्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह इस श्रेय की न केवल रक्षा ही करे अपितु इसमें शानदार अभिवृद्धि भी करे। इसका एक उपाय उच्च से उच्च कोटि के साहित्य की सृजना है मुख्यता जो देश और विदेश के बुद्धि जीवी वर्ग को अधिक प्रभावित कर सके।

भोगवाद और उसके विविध अभिपापों से संतप्त जगत में नैतिकता और आस्तिकता का जो स्थान इस समय खाली होता जा रहा है। उसकी पूर्ति की आर्य समाज की बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। आर्य समाज के पास उसके लिये प्रचुर साधन हैं और साथ ही योग्यता भी है। आर्य समाज की प्रवृत्ति त्याग प्रधान है। अपने सिद्धान्तों की मृदु सरल एवं स्पष्ट व्याख्या से, समाज सुधार से, धार्मिक शिक्षा के प्रसार से साथ २ अध्यात्म पिपासा की सन्तुष्टि पर अधिकाधिक ध्यान और बल देने से यह कार्य सहज ही सम्पन्न हो सकता है। अपनी खेलनी और वाणी में प्रेरणा और बल लाने के निमित्त हमें एक महान त्रुटि से अपने को मुक्त रखना होगा, और वह है आत्मप्रवंचना। अपने अतीत का और अपनी परम्पराओं का गुणगान करना और अपने आचरण से उसका परिचय न देना वह अभिशाप है जिससे बड़े २ कुल और जातियां नष्ट हो जातीं और हास्य का पात्र बन जाती हैं। आर्य समाज का इतिहास बड़ा विशद है उसकी परम्पराएं बड़ी स्फूर्तिदायिनी हैं। उसकी सफलताएँ स्पर्धा योग्य हैं। आर्य समाज के इस पुनीत अवसर पर उसपर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना उपयोगी होगा।

महर्षि दयानन्द ने घोर संघर्ष पर विजय प्राप्त करके आर्य समाज को जन्म दिया था। यह संघर्ष स्वार्थपरता, मतान्धता, अंध विश्वास, रूढ़ियों, कुरीतियों और मिथ्या ज्ञान के विरुद्ध हुआ था जिनसे भारत का धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण कुंठित था। लोगों में मानसिक, सामाजिक और शारीरिक दासता इतनी अधिक व्याप्त हो गई थी कि वे न स्वतन्त्रता पूर्वक सोच सकते थे और न आचरण कर सकते थे। उनका व्यक्तित्व नष्ट प्रायः हो गया था। श्रीयुत टैने ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा था

'मनुष्यों ने पहली बार अपनी आंखें खोलीं और उन्होंने वेद रूपी प्रकाश के दर्शन कियें। उन्होंने विशुद्ध धर्म का मर्म समझा, अपना खोया हुआ व्यक्तित्व प्राप्त किया। अपना शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उत्थान किया, और वे सर्वतोमुखी उन्नति के राज पथ पर अग्रसर होगये उनकी दृष्टि वेदों की ओर और आर्य संस्कृति की ओर मुड़ी। उन्हें अपनी पैतृक सम्पदा और विभूति का ज्ञान हुआ। उनमें यह भाव नष्ट होकर उच्च भाव आया। आचार विचार परिष्कृत हुए। बुद्धि और शरीर के बन्धन ढीले हुए। लोगों में अपने सुधार की और दूसरों के हित की प्रवृत्ति जाग्रत हुई।

महर्षि दयानन्द के बलिदान के पश्चात जबकि आर्य समाज के काम ठप्प करने और उसका अस्तित्व तक मिटा देने के लिये विरोध की भयंकर आँधी चल रही थी, मुट्ठी भर आर्य जनों ने न केवल काम को संभाला हीं अपितु इस योग्यता से चलाया कि आज हम उसे एक विशाल वृक्ष और महान शक्ति के रूप में देखते हैं। उस विरोध और बवंडर के समय उन्हें कितना त्याग और परिश्रम करना पड़ा होगा, कितनी आपत्तियों और मुसीबतें झेलनी पड़ी होंगी, इसकी सहज ही कल्पना कीं जा सकती। उन लोगों का सामाजिक बहिष्कार हुआ, पानी भरने वालों ने पानी भरना तथा महतरों ने सफाई करना बंद किया। बाप ने बेटे से मुंह मोड़ा। उनके बच्चों की शिक्षा और शादियों में बाधा पहुँचाई, मालिकों ने काम से अलग किया। संक्षेप में कौनसा अत्याचार और अपमान था जिनका सामान्य से सामान्य आर्य लक्ष्य न बनाया गया हो। धर्मवीर, लेखराम, अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी, म० रामचन्द्र, श्री तुलसीराम प्रभृति अमर शहीदों ने उस त्याग और बलिदान की श्रृंखला को स्थूल रूप में प्रस्तुत किया। विरोध की यह आंधी पंडों पुजारियों, पादरियों, मौलवियों आदि २ धर्म के ठेकेदारों और यहाँ तक कि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के स्वार्थ, भय और अज्ञान ने चलाई थी। सरकार आर्य जनों को राजद्रोही मानने लगी थी। आर्य समाज के गोवधनिषेध आन्दोलन, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और आर्य समाज के संगठन की पूर्णतया और दृढ़ता ने इस प्रकार की झूठी मान्यता बना दी थी। सरकारी धार्मिक अत्याचार का चक्र भी बड़ी प्रचण्डता से घूमा।

तत्पश्चात् आर्यों के उज्जवल एवं सत्य व्यवहार आदि गुणों का सर्व सामान्य जनता और सरकारी क्षेत्रों में भी बड़ा प्रभाव रहा है। उनका परिचय अनेक घटनाओं से प्राप्त होता है। जिस मुकदमे में आर्य जन गवाही के लिए उपस्थित हुए उनकी गवाही की प्रामाणिकता के लिये उनका आर्य होना ही पर्याप्त समझा गया। उनका तर्क, उनकी युक्तियाँ और स्पष्टवादिता उदाहरण की वस्तु बनीं।

आर्य समाज की सत्य शिक्षाओं और आर्य जनों की कार्य कुशलता सद् गुणों, तप, त्याग और बलिदान से विरोध की काली घटाएँ छिन्न भिन्न हुई और वह समय आया जब कि पौराणिकों ने आर्य समाज का हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के मार्ग दर्शक एवं रक्षक के रूप में अभिनन्दन किया। ईसाइयों और मुसलमानों को अनुभव हुआ कि आर्य समाज से टक्कर लेना सरल काम नहीं है। आर्य समाज के सिद्धान्तों पर विजय प्राप्त करना उनके लिए असम्भव है। इसके दो सुफल हुए। एक तो ईसाई मुसलमानों का शिक्षित वर्ग पर से प्रभाव कम हुआ दूसरे उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों की बुद्धि संगत व्याख्याएँ करने के लिए विवश हो जाना पड़ा। क्या धार्मिक जगत में और विचार जगत में यह विजय अपूर्व नहीं है?

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट पर भी यह सत्य स्पष्ट हुआ कि आर्य समाज राजनैतिक संस्था नहीं है और सत्यार्थ प्रकाश जिसके छठे समुल्लास से उसे भय लग गया था मनुष्य की बुद्धि को मुक्त करने वाला उच्चकोटि का धार्मिक ग्रन्थ है। उत्तर प्रदेश के जन गणना अधिकारी श्रीयुत बर्न ने १८९१ की जन गणना रिपोर्ट के पृष्ठ ९१ पर लिखा:—

'यह सत्य है कि आर्य जन भावी राजनीतिज्ञ होंगे परन्तु वे आर्य समाज का सदस्य होने के नाते देश प्रेमी है और राजनीति में दिलचस्पी रखते हैं यह मान्यता संदिग्ध है। अवश्य आर्य समाज की शिक्षाएँ देश प्रेम का पाठ पढ़ाती हैं।'

पंजाब की जन गणना के अध्यक्ष मि० मैकलेगन ने रिपोर्ट के पृष्ठ १७४ पर लिखा:—

'यह सत्य है कि आर्य जन मुख्यतया एक विशेष वर्ग से सम्बद्ध हैं और उनका संगठन पूर्ण और शक्तिशाली है इसलिए उन पर (दसवें नियम के कारण) यह आरोप लगाया जाता है कि आर्य समाज सामूहिक रूप से अपने सदस्यों की राजनैतिक भावनाओं को प्रोत्साहन देता है परन्तु यह होते हुए भी आर्य समाज राजनैतिक संस्था नहीं है अपितु विशुद्ध धार्मिक संस्था है।"

मि० नेविनसन ने लिखा:—

'राजनीतिक संस्था होना बुरी वस्तु नहीं है परन्तु किसी धार्मिक सोसाइटी को कुचलने के लिए उसे राजनीतिक उद्घोषित करना बड़ी बुरी और घातक चीज है।"

आर्य समाज की सफलताओं का विवरण बड़ा विस्तृत है संक्षेप में वह इस प्रकार है:—

(१) धर्म को बुद्धि और आचरण का विषय बनाया जिसके फलस्वरूप धर्म का रूप उज्जवल हुआ और लोगों का कल्याण हुआ। सत्ज्ञान और सत्कर्म की प्रेरणा प्राप्त हुई। न्याय और सत्य प्रतिष्ठित हुए। धर्म के नाम पर होने वाले अनाचारों और पाखंडों का ह्रास हुआ।

(२) एक ईश्वर की पूजा का महत्व स्थापित हुआ। जड़ पूजा और मूर्ति पूजा की निस्सारता स्पष्ट हुई। मूर्ति पूजा तथा अवतारवाद के नाम पर होने वाली प्रजा तथा ईश्वर की दुर्गति रुकी। मौजिज़ों और चमत्कारों की पोल खुली। पैग़म्बरों आदि के अंध विश्वास समाप्त हुए।

(३) वेदों की प्रतिष्ठा स्थापित हुई और उनको पढ़ने पढ़ाने का मनुष्य मात्र को अधिकार दिया गया।

(४) ईश्वर की सर्वज्ञता और जीव की अल्पज्ञता का सिद्धान्त ग्राह्य हुआ और जीव ब्रह्म एक हैं इस मान्यता की कलई खुली।

(५) मुक्ति ज्ञान से प्राप्त हो सकती है धर्म और मुक्ति के नाम पर होने वाली अनर्गलताओं से नहीं।

(६) कर्म फल अवश्य मिलता है। फलित ज्योतिष की करामातों, गंगा आदि में नहाने, जप, तप आदि के कराने से कर्म फल का क्षय नहीं होता। अच्छे कर्मों की प्रेरणा दी गई।

(७) संसार को मिथ्या मानना छुड़ाया गया और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया। अर्थ शुचिता और उसके सदुपयोग पर बल दिया गया।

(८) दान प्रणाली परिष्कृत की गई। सच्चे और झूटे साधुओं महन्तों और महात्माओं में भेद करना सिखाया गया।

(९) स्वर्ग और नर्क का वास्तविक मर्म बताकर लोगों को उनकी भूल भुलैयों से निकाला गया।

(१०) यज्ञों का सच्चा स्वरूप बताकर पशुबलि और नरबलि आदि वीभत्सताएं रोकी गईं और सच्चे यज्ञों का प्रचार बढ़ा।

(११) ब्रह्मचर्य एवं परिपक्व आयु के विवाहों को प्रोत्साहित किया गया। बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह बहु विवाह आदि का बल पूर्वक खंडन किया गया। वैदिक संस्कारों का प्रचलन बढ़ाकर जाति का अमित उपकार किया गया।

(१२) अनाथों और विधवाओं की रक्षा की गई। विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया गया। अनेक अनाथालयों में विधवा आश्रम खोले गये।

(१३) स्त्रियों की दुर्दशा पर प्रबल आघात कर उनका उद्धार किया गया। उनकी शिक्षा का मार्ग खोजा गया। पर्दा आदि की दुष्प्रथाएं समाप्त की गई।

(१४) जन्म की जात पात को मिटाते हुए लोक परलोक के उत्थान की वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट किया।

(१५) जन्म पर आश्रित ऊंचनीच के भाव को मिटाने और दलितों को ऊपर उठाने का भरसक प्रयत्न किया गया।

(१६) शिक्षा प्रचार के लिए स्कूल, कालेज गुरुकुल खोले गए।

(१७) जीवित माता पिता की सेवा पतिव्रत और एक पत्निव्रत की परिपाटी डाली गई।

(१८) निष्काम भाव से जन सेवा का पाठ पढ़ाया गया।

(१९) शराब, नशे, मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन और भक्षण छुड़ाया गया।

(२०) शुद्धि, दलितोद्धार और अन्तर्जातीय विवाहों आदि के द्वारा हिन्दू जाति को दृढ़ किया।

(२१) लोगों को देश से प्रेम करना सिखाया गया ! स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा की गई । स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग में पहल की गई ।

(२२) सुराज्य स्वराज्य का विकल्प नहीं है सर्व प्रथम यह घोषणा आर्य समाज की वेदी से की गई ।

(२३) हिन्दी को अपना कर उसके राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किये जाने के अधिकार को स्वीकार कराया गया ।

आर्य समाज प्रारम्भ से ही सामूहिक रूप से प्रचलित राजनीति से पृथक रहा है। आर्य समाज की यह नीति विवाद का विषय रही है। इस नीति के निर्णायकों की मुख्यतम मान्यता यह है कि जिस उन्नति का आधार धार्मिक और नैतिक अवस्था का सुधार न हो वह अस्थायी है। वर्तमान काल में कौन सा राजनीतिज्ञ है जो इस सच्चाई को स्वीकार न करेगा ? आर्य समाज को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने देश को बड़े २ योग्य नेता और कार्य कर्ता दिए ।

आर्य समाज स्थापना दिवस के पुनीत अवसर पर हम सब को अपने सिद्धान्तों अपनी अनुपम संगठित शक्ति और नेतृत्व की उदात्त परम्पराओं के प्रति सच्चा रहने और उनमें वृद्धि करने का व्रत लेना चाहिए। इस समय संसार बन्धनों को तोड़कर उस धर्म की ओर आने के लिये छटपटा रहा है जो बुद्धि, ज्ञान और तर्क की भयंकर चपेटों में स्थिर रह कर बुद्धि को प्रकाश और हृदय को शान्ति दे सकता हो। वह धर्म सिवाय वैदिक धर्म के अन्य कोई दूसरा धर्म नहीं हो सकता जिसमें बुद्धि, तर्क, दर्शन, विज्ञान लोक और परलोक सभी प्रकार की समस्याओं का सुन्दर हल विद्यमान है और जो बुद्धि की सन्तुष्टि और हृदय की शान्ति का अजस्र स्रोत है।

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या
(लेखक—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती)
विस्तृत व्याख्या: पृष्ठ सख्या १००
आज ही मंगाकर पढ़ें मूल्य ॥)
एक प्रति के लिए ।।=) के टिकट भेजें ।
गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, देहली ।

दांतों के समस्त रोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ

आयुर्वेदिक]**दन्त-कल्प-मन्जन**[महौषधि

अकरकरा, लोंग, माजूफल, जायफल, वज्रदन्ती, कर्पूर आदि मूल्यवान २७ जड़ी बूटियों द्वारा निर्मित दन्त-कल्प मंजन' प्राय: समस्त दन्त रोगों को समाप्त करने की शक्ति रखता है ।

पानी लगना, चीस रहना, रक्त या पीप का आना ममूड़े सूजना, पायोरिया जैसे भयंकर रोग इसके निरंतर सेवन से नष्ट हो जाते हैं ।

सेवन विधि—किसी भी रोग में दिन में ४ बार (उठते ही सुबह, भोजन के बाद, रात को सोते समय) सरसों का ४-५ बूंद तेल मिलाकर ५ मिनट तक लगाएं लगाने के ५ मिनट बाद गरम पानी से कुल्ला करें ।=), ॥=), १=) और २) के लाल डिब्बों में

समस्त नेत्र रोगों के लिए

शीतल एवं]**ज्योति-दा-सुरमा**[ज्योति वर्धक

सच्चे मोती, भीमसेनी कपूर, रतनजोत, समुद्रझाक जस्त, शंखभस्म, सफेद सुरमा आदि आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा निर्मित 'ज्योति-दा-सुरमा' का निरंतर प्रयोग प्राय: समस्त नेत्र रोगों को समाप्त करके ज्योति-बल बढ़ाता है ।

ज्योति हीनता, कुकरे, परवाल, लाली आदि समस्त नेत्र रोगों के लियें यह अत्यन्त लाभप्रद है । अनुभव से सिद्ध हुआ है कि इसका प्रभाव ऐनक तक उतरवाने तक उतरवाने की क्षमता रखता है ।

सेवन विधि—सुबह उठते ही और रात को सोते समय सलाई से लगायें । दुखती आंखों में मक्खन मिलाकर लगायें । ध्यान रहे कि सुरमा धूप में न लगायें । खटाई, मिर्च तेल व मीठे का परहेज रक्खें ।

मूल्य ।=), ॥=) और १=) के तीन साइजों में हर जगह मिलता है ।

अध्यक्ष भारतेन्द्रनाथ उत्तराखंड आयुर्वेदिक रसायनशाला—गाजियाबाद

आत्मिक बल (गतांग से आगे)

इसी प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान बिना साधनों के हो नहीं सकता परन्तु अपने ज्ञान अथवा आन्तरिक पदार्थों के जानने के लिये किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं।

प्यारे पाठकों ! ऊपरके दृष्टान्तों से आपने समझ लिया होगा कि जिन पदार्थों के लिये साधनों की आवश्यकता है वे बाह्य पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान बिना साधना के होता है वह उसका अपना गुण है। अब सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष का होना बिना मन की वृत्ति संयोग के हो ही नहीं सकता। जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं तो इच्छा उत्पन्न होती है। जब बुरा समझते हैं तो उसमें द्वेष हो जाता है और जिस पदार्थ का संयोग आत्मा के अनुकूल प्रतीत होता है उसे सुख मानते हैं, और जब आत्मा के प्रतिकूल होता है, उसे दुःख कहते हैं। इसलिये यह गुण मन के कारण से उत्पन्न होते हैं और सुषुप्ति काल में जब कि इन्द्रिय मन और बुद्धि अपना २ काम छोड़ देते हैं तब सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष सर्वथा नहीं रहते, केवल ज्ञान और प्रयत्न जो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं वे शेष रह जाते हैं। अब यह शङ्का होगी कि सुषुप्ति समय में आत्मा को किस वस्तु का ज्ञान रहता है और वह किस के लिये प्रयत्न करता है ? इसका उत्तर यह है कि सुषुप्ति काल में आत्मा को अपने होने का ज्ञान होता है और वह शरीर उस न्यूनता को जो जागृत अवस्था के दुःखों से उत्पन्न होगई है, पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है।

अब यह शङ्का हो सकती है कि जब महात्मा गौतम ऋषि ने अपने दर्शन में जीवात्मा के छः गुण माने हैं और महर्षि कणाद ने इससे भी अधिक, तो तुम्हारा कहना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। इसका समाधान यह है कि विचार पूर्वक महात्मा गौतम का दूसरा सूत्र तो पढ़ो। जिसमें महात्मा गौतम ने इन गुणोंको मिथ्या ज्ञानकी सन्तान में बतलाया है। इसलिए ये चार जीवात्मा गुण नहीं हो सकते। प्रिय पाठको ! महात्मा कणाद जी ने अपने वैशेषिक शास्त्र में आत्म संयोग से ही कर्म्म माना है और विना आत्मा के कर्म्म हो ही नहीं सकता जैसा कि लिखा है:—

आत्म संयोग प्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ।वै० १।१।

जब आत्मा का हाथ के साथ सम्बन्ध होता है तब ही आत्मा में कर्म्म अर्थात् कार्य करने की शक्ति होती है बिना आत्मा के संयोग के नहीं होती।

तथा हस्त सँयोगाच्च मुसले कर्म ।वै०५। १ । १

और जब आत्मा से युक्त हाथ मूसल से सम्बन्ध उत्पन्न करता है तो मूसल में कार्य करने की शक्ति आ जाती है। यहां हाथ से सारे शरीर अङ्ग प्रयोजन हैं और मूसल से सर्व प्रकार के बाहरी शस्त्र अर्थात् साधन जिनसे मनुष्य कार्य्य लेते हैं। इसी प्रकार अन्य भी समझ लेना चाहिये।

मित्रवर्गो ! जब यह निश्चय होगया कि आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न दोगुण हैं और इन दोनोंका नाम आत्मिक बल और घटने कानाम आत्मिक बल की हानि है तब यह प्रश्न हुआ कि इनके बढ़ने और घटने का कारण क्या है ? इसका उत्तर यह है कि संसार में हमें एक नियम विदित होता है कि जहाँ जिसके सदृश पदार्थ मिलते हैं वहाँ उसकी उन्नति होती है, जहाँ विरुद्ध मिलते हैं वहाँ हानि। जैसे वर्षा ऋतु में जब कि चारों ओर पानी बरस रहा हो और ठण्डे पवन के झोंके चल रहे हों, उस समय यदि आप एक दियासलाई को गीली जलायेंगे तो कठिनता से जलेगी, परन्तु उसको ग्रीष्म ऋतु में जब कि लू अर्थात् गर्म वायु बह रही हो, जलाना चाहो तो बड़ी आसानी से जल जायेगी। दूसरे यदि रोगी को जिस को गर्मी के

कारण ज्वर आता है, गर्म औषध देते चले जावें तो गर्मी के बढ़ने से रोग बढ़ता जायेगा यदि ठण्डी औषधियां दी जावें तो रोग निवृत हो जायेगा। इससे प्रकट है कि सदृश पदार्थों के संयोग से हानि होती है।

अब जानना चाहिये कि कौन कौन से पदार्थ हैं, जो आत्मा को मिलते हैं। उनसे कौन कौन अनुकूल और कौन प्रतिकूल हैं ? इसका विचार करने सेजहां तक होता है वे दो ही पदार्थ हैं। एक प्रकृति दूसरा परमेश्वर जिनसे आत्मा का सम्बन्ध उत्पन्न होता है। जीव चैतन्य और शरीर के सम्बन्ध से गति वाला, प्रकृति परिवर्तन वाली और ज्ञान शून्य है। परमेश्वर ज्ञान स्वरूप और स्वाभाविक क्रियावान् और आनन्द स्वरूप हैं। प्रिय पाठक ! जब कि प्रकृति ज्ञान शून्य और क्रियारहित है और जीव ज्ञान सहित और क्रियावान तो जो प्रकृति से अपना सम्बन्ध करेंगे तो उनसे ज्ञान और क्रिया की उन्नति तो होगी नहीं। हां प्रकृति के गुण उसमें प्रतीत होने लगेंगे। यद्यपि प्रकृति में जीव के सम्बन्ध से क्रिया उत्पन्न हो जायेगी तथापि कुछ अंश ज्ञान का भी संयोग से प्रतीत होगा। परन्तु जीव के यह दोनों गुण न्यून होते चले जायेंगे। जितनी प्राकृतिक शक्तियां घटेंगी तो उसके ज्ञान और क्रिया की शक्ति अधिक होती जायेगी। जैसे जितने समय तक दीपशलाका धूप में पड़ी रहेगी उतनी ही तीव्र होती चली जायेगी।

भ्रातृवर्ग ! अब यह तो सिद्ध हो गया कि आत्मा का बल ईश्वरोपासना है।

अनेक पाठक कहेंगे कि यह केवल कथन मात्र ही है, परन्तु यदि वे विचारपूर्वक लौकिक इतिहासों को अवलोकन करें तो उन पर विदित हो जायेगा कि आत्मिक बल ईश्वर भक्तों का ही भाग है।

अर्थात् अनुसंधान तो कीजिये कि क्या कारण था कि राजा हरिश्चन्द्र इतनी आपत्तियों के उपस्थित होने पर भी अपने सत्य पर दृढ़ स्थिर रहा है ? क्या कारण था कि महात्मा रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा पाते राज्य को तुच्छ समझकर त्याग दिया और बनको चले गए ?क्या कारणथाकि लक्ष्मण जीने सब प्रकारके सुखों का परित्याग कर भाई के साथ बन को जाना स्वीकार किया ? क्या कारण था कि सीता जी जैसी सुकुमार रानी ने वनों में भ्रमण करना स्वीकार किया और राज्यादि आनन्दों को कुछ भी इच्छा न की ? क्या कारण था कि राजा मोरध्वज का शरीर चीरा गया तो भी आनंद पूर्वक चीरे जाने से प्रसन्न चित्त रहा ? क्या कारण था कि महात्मा भर्तृहरि जी ने अपने सारे राज्य को तुच्छ जान जङ्गल जाना स्वीकार किया ? क्या कारण था कि गुरु तेग बहादुर यवनों के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होने से भयभीत न हुए ? क्या कारण था कि गुरु गोविन्द सिंह के दोनों लड़के दीवार में चुने जाने पर मृत्यु से न डरे ? क्या कारण था कि महात्मा पूर्णभक्त ने सहस्त्र आपत्तियों को सहन किया परन्तु उसका आत्मा पाप की ओर आकर्षित न हुआ ? क्या कारण था कि महात्मा हकीकतराय ने १६ वर्ष की अवस्था में यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया परन्तु धर्म को न त्यागा ? क्या कारण था कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराजने सारे भारतवर्ष का शत्रु बनना ईंट पत्थर खाना, उत्तम समझा परन्तु धर्मअधर्म का मूलोच्छेद किया और धर्म्म के विरुद्धचलना महापाप समझा? आप विचारोगेतो प्रत्यक्ष ज्ञात होगा कि यह आत्मिक बल का ही कारण था कि जिसने इन महात्माओं को संसार के सन्मुख विजयी किया।

प्रिय पाठकवृन्द ! क्या आपने कभी विचार नहीं किया कि वह कौनसे कारण हैं जिन्होंने रानी पद्मिनी कोप्रचण्ड अग्नि में भस्म होकर मरना स्वीकार कराया, परन्तु यवन बादशाह की बेगम बनना अस्वीकार किया क्या कारण था कि जिसने राजा दाहर की रानी को चिता में जलकर मरने पर कटिबद्ध किया ? वह कौनसी शक्ति थी कि जिसने कृष्णा कुमारी को जलती हुई चिता पर बैठा दिया ? कहां तक गिनावें इस भारतभूमि में असख्यों दृष्टान्त हैं जिनके नाम सूर्य

के समान इस संसार में प्रकाशित है आप इसका उत्तर यही देंगे कि धर्म भाव इनमें था। जिसमें इन सुकुमार सतियों को प्रसन्नता पूर्वक इन आपत्तियों के सहने पर सन्नद्ध कर दिया। यह धर्म्म क्या वस्तु है ? केवल ईश्वरोपासना ! बस आप समझ गये होंगे तो संसार में धर्म्म और अधर्म या पाप और पुण्य जो दो शब्द हैं इनका आशय केवल ईश्वरोपासना और प्रकृति की उपासना है। ईश्वर उपासना धर्म्म है जिससे आत्मिक बल मिलता है और वह ऐसे उन्नति के कार्य्य करता है जिससे संसार में सुखों की प्राप्ति होती है। दूसरे ईश्वरोपासना से ईश्वरीय शक्ति अथात् वैदिकज्ञान कीप्राप्ति होकर जीवकी ज्ञान शक्ति बढ़ जाती है। संसार में जितने योगी हुए हैं जिन्हों ने अपनी आत्मा को प्रकृति से अलग करके ज्ञान की ओर लगाया है वे सब संसार में ज्ञानी और विद्वान् कहलाये और अद्य पर्य्यन्त उनका नाम-कार्य्य संसार में विख्यात है। परन्तु जितने प्रकृति के उपासक हुए जिन्होंने आत्मिक हानि को प्राप्त किया वे दास होकर चले गये, उन्हें जीवन में मूर्खता और दुःख ने आक्रमण किये रखा, मरने के पश्चात् भी कष्ट के अतिरिक्त कुछ न मिला और आज कोई जानता भी नहीं।

प्रियवरो ! आत्मा एक राजा है, जिसकी राजधानी यह शरीर है। इन्द्रिय, बुद्धि, मन इत्यादि इसके कर्म्मचारी हैं। यदि यह राजा बलवान होता है तो अपने कर्मचारियों पर शासन करता हैं और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। उस समय उसके कर्मचारी उसके दास होकर उसको प्रत्येक प्रकार का सुख देते हैं। परन्तु जिस समय निर्बल हो जाता है उस समय उसको कर्म्मचारी दबा लेते हैं और वह प्रत्येक से विनय करता है और वह उनके लिये भोजन का यत्न करता है। यद्यपि वह कार्य इन कर्म्मचारियों का था कि अपना भोजन प्राप्त करते अर्थात् अपने विषयों को भोगते हुए भोजन अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त नहीं करते, परन्तु आत्मा को निर्बल देखकर ऐसे आलसी और अहंकारी हो जाते हैं कि राजा को स्वयं इसके भोजन का संदेह लगा रहता है। उसकी सारी स्वतन्त्रता और प्रधानता बिक जाती है वह अपने आप को राजा के स्थान में दास अनुभव करने लगता है। अब उसका कार्य्य यह होता है कि सईस की भांति घोड़ों के पालन पोषण में लगा रहे, उसे अपने उस मार्ग का ध्यान तक नहीं रहता कि जहाँ जाना है और यह जिन कार्यों को प्रबलता की दशा में तुच्छ समझता था, उस निर्बलता की दशा में उसको एक आवश्यकीय कार्य समझ लेता है, और पदार्थों का ज्ञान उसे प्रबलता की दशा में सुगमता से हो सकता था अब वह उसके विचारमें अधिक गुरु दृष्टि आतेहैं। भ्रातृवर्गों ! यह तो आप जानते हैं कि जिस प्रजा का राजा अयोग्य है, वह प्रजा सदैव अकृत कार्य रहती है इसी प्रकार जिस जाति का मुखिया अयोग्य है उसकी भी यही दशा होती है। राजा का कार्य राजा से होता है दास से नहीं। इसी प्रकार प्रबल आत्मा के कार्य्य निर्बल आत्मा से हो नहीं सकते और संसार में भी देखा जाता है कि जिस मनुष्य की इन्द्रिय उसके वश में नहीं उसका कुटुम्ब उसके वश में नहीं रहता और जो अपने कुटुम्ब पर शासन न कर सके, वह अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता और जो अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता, वह अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता और जो ग्राम पर शासन नहीं कर सकता वह प्रांत पर शासन प्राप्त नहीं कर सकती और जो प्रांतके योग्य नहीं वहदेशपर क्योंकर शासन कर सकता है और जो एक देश पर भी शासन नहीं कर सकता हैं वह संसार पर किस प्रकार हुकूमत कर सकता है ? यहां से पता मिलता है कि संसार में सबसे बड़ी उत्तीर्णता का सोपान आत्मा का है इन्द्रिय और मन पर शासन के लिये आत्मा को अत्यन्त भारी शक्ति की आवश्यकता है क्योंकि वे इन्द्रिय संसार के सहस्रों पदार्थों को मन के द्वारा सन्मुख करके आत्मा को धोखा देना चाहती है। परन्तु प्रबल आत्मा जिसका ज्ञान गुण परमात्मा की प्रबल शक्ति से सहायता पाकर उन्नति कर चुका है, जिसको प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है वह इन इन्द्रिय और मन के वशीभूत नहीं हो सकता। जो इन्द्रिय और मन को वश में करने योग्य बल आत्मा में रखता है वह कृतकार्य हो सकता है।

षट्शास्त्रों की उत्पत्ति का क्रम

प्रिय पाठक! आजकल भारतवर्ष क्या प्रत्युत सारे संसार में शास्त्रों के प्रचार के न्यून होने से हमारे शास्त्रों के विरुद्ध बहुत से विषय प्रकाशित हो रहे हैं, कुछ महाशय तो यह कह रहे हैं कि शास्त्रों के विषय एक दूसरे के विरुद्ध हैं, कुछ लोग यह कहते हैं कि यह सांख्य सूत्र नहीं प्रत्युत यह तो विज्ञान भिक्षु का बनाया हुआ है, अनेक गौतम और कणादादि को नास्तिक और वेद विरोधी बतलाते हैं। बहुत महाशय कपिल जी को अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक कहते हैं, अनेक मनुष्यों को इन दर्शनों के विषय और क्रम में भ्रम है, प्रयोजन यह है कि शास्त्रों के विषय में बहुत से संशय उन लोगों ने फैलाए हैं, जिनको शास्त्रों के मुख्य अभिप्राय से सर्वथा अनभिज्ञता है और उन्होंने विषयों के क्रम को न समझ कर केवल शब्दों से अपने मन माने विचार को पुष्ट किया है। बहुत लोगों ने शास्त्रों के विषय में नवीन ग्रन्थों को जो शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों से अनेक स्थलों पर दूर निकल गए उनको शास्त्र मान कर उनके विरोध से शास्त्रों में विरोध मान लिया है। अतएव हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि शास्त्रों के बारे में विचार आरम्भ करके मनुष्यों के चित्त से इस अयुक्त विचार को पृथक करने का प्रयत्न करें कि जिससे शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त संसार में प्रचलित हो जावें जिससे मनुष्यों के इन अमूल्य रत्नों से जो मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य को जतलाने वाले हैं प्रीति हो जावे और वह इससे लाभ उठावें। यद्यपि हम अपने आप को इस योग्य नहीं समझते कि इस महान् विषय को भली भांति विचार सकें और न यह कि सामाजिक कामों से इतना अवकाश है कि जिससे इस गम्भीर विषय को पूर्णतया विचार सकें परन्तु तो भी परमात्मा का आश्रय लें, जहां तक साध्य होगा हम अपने ट्रैक्टों के क्रम से इस कर्त्तव्य को पूरा करने का यत्न करेंगे।

प्यारे मित्रों! सबसे प्रथम जब कोई मनुष्य किसी वस्तु को ग्रहण करें, अथवा उसको निकृष्ट जान त्यागने का प्रयत्न करे इस बात की आवश्यकता है कि वह उस वस्तु से अभिन्न हो जावे कि जिससे भले, बुरे, सत्य और असत्य का ज्ञान हो जावे। जब तक मनुष्यों को इस कसौटी का ज्ञान नहीं होता तब तक उसका सब काम अधूरा रहता है और जब मनुष्य इस कसौटी को प्राप्त कर लेता है उस समय वह उन वस्तुओं को परखना आरम्भ करता है जो उसके सामने आती हैं और वह उनको प्रत्येक दशा में कार्य और कारण से अनुभव करता है और जिस समय उसको यथार्थ रीति से जान जाता है तो वह उसको दुःख सुखानुसार आत्मा के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने का ज्ञान कर दो भागों में विभाजित करता है जब भाग हो गये तो अनुकूल से मेल करना प्रारम्भ करता है और प्रतिकूल से बचता है। जब यह अनुकूल भाग से प्रीति करता है तो उसके स्वभाव से जो अनुकूल भाग के मेल से उत्पन्न हो गयी थी उसे प्रतिकूल शक्तियों से मिलने नहीं देती अतएव उसे प्रतिकूल स्वभाव के दबाने के हेतु अनुकूल शक्तियों को पैदा करना पड़ता है। जब अनुकूल स्वभाव से प्रतिकूल को दबा लेता है तब वह अनुकूल शक्तियों की खोज आरम्भ करता है जहां जहां से वह मिलती है ग्रहण करता चला जाता है और उससे पूर्ण सुख प्राप्त करता है।

प्यारे पाठकों! इसी सृष्टि क्रम के अनुसार बराबर हमारे ऋषि चले हैं, और उन्होंने छः दर्शनों में इन्हीं छः प्रयोजनों को जो मनुष्यों के मुख्य उद्देश्य के निमित्त आवश्यक हैं सिद्ध कर दिया है। प्रथम दर्शन न्याय दर्शन है जिसको महात्मा गौतम ऋषि ने बनाया है इस में प्रमाणवाद पर ही विचार किया गया है और प्रमेय के सिद्ध करने के वास्ते जो जो प्रमाण आवश्यकीय हैं, और जिन साधनों से विचार करने की आवश्यकता होती है और जिन कारणों से विचारों में त्रुटि आ जाती है, और जिन कारणों से ज्ञात हो जाता है कि विचार पूरा हो गया उनकी व्याख्या की गई है, और यह भी सूचित कर दिया

है कि मनुष्य जीवन का उसके मुख्य उद्देश्य पर पहुँचना बिना इन वस्तुओं के ज्ञान के असम्भव है। और इसके निमित्त महात्मा गौतम ने १६ पदार्थों का ज्ञान आवश्यकीय समझा है १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टान्त, ६ सिद्धान्त, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वेद, ११ जल्प, १२ वितंडा १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान,

पाठक गण ! जब इस प्रकार से महात्मा गौतम जी ने प्रमाणवाद को स्पष्ट कर दिया तो महात्मा कणाद जी ने प्रमेय वस्तुओं का साधर्म्य और वैधर्म्य जतलाने के निमित्त वैशेषिक दर्शन बनाया। इस दर्शन को महात्मा कणाद जी ने छः भागों में बांट दिया १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म ४ सामान्य, ५ विशेष ६ समवाय । अब उन्होने द्रव्यमें ९ पदार्थ लिए अर्थात् १पृथिवी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिशा, ८ मन, ९ आत्मा अर्थात् जीवात्मा व परमात्मा। इसी प्रकार २४ गुण बतलाये १ रूप, २ रस, ३ गंध, ४ स्पर्श, ५ संख्या, ६ परिमाण, ७ पृथक्त्व, ८ संयोग, ९ विभाग, १० परत्व, ११ अपरत्व, १२ बुद्धि, १३ सुख, १४ दुःख १५ इच्छा, १६ द्वेष, १७ प्रयत्न, १८ गुरुत्व, १९ द्रवत्व, ० स्नेह, २१ संस्कार, २२ धर्म, २३ अधर्म और २४ शब्द।

इसी प्रकार पांच तरह के कर्म हैं। १—उत्क्षेपण अर्थात् ऊपर उठना, २—अवक्षेपण अर्थात् नीचे गिरना, ३—आकुँचन अर्थात सुकड़ना, ४—प्रसारण अर्थात् फैलना, ५—गमन अर्थात जाना और सामान्य विशेषादि बतलाकर बड़ी योग्यता से प्रमेयवाद की व्याख्या करदी। प्यारे पाठकों ! जब इस प्रकार महात्मा गौतम और कणादादि अपने न्यायदर्शन और वैशेषिक को लिखकर चले गये तब महात्मा कपिल जी आये। उन्होंने कहा कि प्रमाण और प्रमेय का ज्ञान तो हो गया परन्तु गम्भीर विचारों में प्रत्येक पुरुष कृतार्थ नहीं हो सकता अतः दुःख और सुख जो दो गुण हैं उनके आधार की खोज करनी चाहिए जिससे तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति हो जावे। अब उन्होंने देखा कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक जड़ दूसरे चेतन अतएव उन्होंने प्रकृति पुरुष का पृथक् २ जानना मुक्ति का कारण बतलाया। कारण यह कि वैशेषिक में बतला चुके थे कि अधर्म से दुःख की प्राप्ति होती है इसी कारण चेतन जीवात्मा को चेतन और अचेतन का ज्ञान आवश्यक है उन्होंने सिद्ध किया कि जितना जगत है उसका उपादान कारण प्रकृति है परन्तु प्रकृति जड़ और दुःख देने वाली है अतएव उसके कार्य जगत् से जितनी प्रार्थना की जावेगी उससे कुछ भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिये प्रकृति पुरुष का विवेक करने वाला सांख्य शास्त्र बतलाया और अच्छी प्रकार से अपने विषय को सिद्ध किया।

पाठक वृन्द ! जब महात्मा कपिल इस प्रकार जड़ और चेतन को अलग अलग बतला कर चले गये तब महात्मा पतंजलि ऋषि आये और उन्होंने कहा कि संसार में जिस प्रकार दुःख है सब चित्त की वृत्तियों के विक्षेप से अर्थात् मन के विचारों के स्थिर न होने से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति के पदार्थों को मन जानकर आगे चला देता है जिससे चित्त वृत्ति एकान्त नहीं होती और चित्त के एकान्त न होने से सुख की प्राप्ति नहीं होती अतएव उन्होंने कहा कि योग करके चित्त की वृत्तियों को रोकना चाहिये क्योंकि संसार के समीप के पदार्थों से चित्त की वृत्ति का अनुरोध नहीं हो सकता। अतः अनन्त परमेश्वर के साथ अथवा चैतन्य जीवात्मा के साथ योग होना चाहिये इसके लिये उन्होंने अंग नियत किये हैं।

१—यम २—नियम ३—आसन ४—प्राणायाम ५—प्रत्याहार ६—धारणा ७—ध्यान ८—समाधि।

इस प्रकार महात्मा पतंजलि ने अविद्या को दूर करके जड़ से प्रीतिं हटा कर चैतन्य परमात्मा से योग करके सुख की प्राप्ति का निश्चय करा दिया।

महाशयगण ! जब इस प्रकार महात्मा पतंजलि योग से चित्त की वृत्तियों के रोकने की आज्ञा देकर चले गये तो महात्मा जैमिनी जी महाराज आये उन्होंने कहा कि योग से चित्त के रोकने में जो बुरे कर्मों के संस्कार पैदा हुए, अविद्या के संस्कार विघ्न नकारक होंगे

उनसे कभी भी मनकी वृत्तियाँ रुक न सकेंगी। अतएव पहिले मन के मल रूपी दोष दूर करने के लिये शुभ-नैमित्तिक कर्मों को करना चाहिये जिससे चित्त में दोष का लेश न रहे और मन का प्रवाह जो दुष्कर्मों की तरफ लग रहा है हट कर अच्छे कर्मों की तरफ लग जावे फिर उस मल दोषके दूर होने के बाद विक्षेप केदूर करनेके साधन उपासनायोगसे कामचल जायगा उन्होंने वृत्ति दान इत्यादि बहुतसे कर्म मल दोष के दूर करनेके लिये बतलाये और उनकी विधि अपने मीमांसा शास्त्र में अच्छे प्रकार से प्रकाशित कर दी।

प्रिय पाठकों ! जब महात्मा जैमिनिजी महारजने अपने कोइस भांति पर बयान कर दिया तब महात्मा व्यासजी ने कहा कि प्रमाण का भी ज्ञान हो चुका है और प्रमेय भी जान लिया और जड़ चैतन्य अर्थात प्रकृति पुरुष को भी पृथक २ समझ लिया योग करने का विचार भी ठीक है और योग में जो विघ्न पड़ेगा उनके रोकने के लियेमीमांसा शास्त्र के कर्म भी ज्ञात हो गये, परन्तु जिस चेतन के साथ योग करना है अभी तक उसको तो नितान्त जाना ही नहीं। अतः। ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये। अतएव उन्होने वेदान्त शास्त्र बनाया जिसमें केवल ब्रह्म के यथार्थ रूप का ज्ञान हो जावे। उन्होने उसको इस प्रकार आरम्भ किया।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। वे० ।१।१।१

अर्थ—प्रमाण ,प्रमेय, पुरुष और धर्मादि के पश्चात् ब्रह्म की इच्छा करते हैं जब उन से प्रश्न हुआ कि ब्रह्म क्या है ? तो उन्होंने उत्तर दिया।

जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त दर्शन

अर्थ—जिससे इस सृष्टिकी स्थिति और उत्पत्ति और नाश होता है। इस कारण सम्पूर्ण शास्त्र में ब्रह्मज्ञान बताया।

प्रिय पाठक ! आप कहेंगे कि इन शास्त्रों के यह नाम किस प्रयोजन से हुए और तुम जो कहते हो कि शास्त्रों का यह प्रयोजन है, इस में क्या प्रमाणहै ? इसका उत्तर यह है कि शास्त्रों के नाम यौगिक हैं और वह अपने २ विषय को प्रतिपादित करते हैं। (१) न्याय का लक्षण यह है—

प्रमाणैरर्थपरिक्षणं न्यायः

अर्थ—जिसने प्रमाणों के द्वारा अर्थ अर्थात सुख दुःख के कारण की परीक्षा करना बतलाया हो उसे न्याय कहते हैं। वैशेषिक जिसमें विशेष तौर पर साधर्म्य को बतला कर पदार्थों के यथार्थ ज्ञान को मुक्ति का सच्चा साधन बतलाया हो, जिसमें संख्या की गई हो उसे सांख्य कहते हैं और योग के तो अर्थ चित्तवृत्ति के रोकने और मिलने के हैं और मीमांसा में मन के दोषों को दूर करनेके लिये कर्म काण्ड है। अब रहा वेदान्त, इसका नाम इस प्रयोजन से रक्खा है कि वेद नाम है ज्ञान का और अन्त नाम है सीमा का अर्थात् ज्ञान की सीमा क्योंकि ब्रह्मज्ञान से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं इस कारण ब्रह्म ज्ञान बतलाने वाले शास्त्र को वेदान्त कहा। दूसरे यजुर्वेद के अन्त के अध्याय में वेदान्त का मूल है जिसे ईश उपनिषद कहते हैं, शेष उसका व्याख्यान है वह ईश उपनिषद् वेद के अन्त में है इस वास्ते भी वेदान्त कहा।

पाठक वृन्द ! हमारे बहुत से मित्र यह समझ रहे हैं कि सबसे पहला शास्त्र सांख्य है परन्तु यह कथन सर्वथा अयुक्त है क्योंकि सांख्य दर्शन में न्याय और वैशेषिक का प्रयोग किया है जैसा कि लेख है।

न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्

स० १॥२५॥

अर्थ—अविद्यावादी जो सांख्य शास्त्र में पूर्व पक्ष करता है वह कहता है हम वैशेषिक की तरह छः पदार्थों के मानने वाले नहीं और यह भी कहा है कि सोलह और छः पदार्थों केज्ञान से मुक्ति होती है इसी प्रकार सांख्य दर्शनमें बहुतसे ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे प्रत्यक्ष विदित हो जाता है कि सांख्य शास्त्र न्याय और विशेषिक के पश्चात बना

साँख्य दर्शन के आरम्भ में रखने से क्रम में सर्वथा भ्रम पड़ जाता है। अनेक महाशय उन शास्त्रों को विरोधी जानते हैं परन्तु यह मिथ्या है, वेद जो तत्व ज्ञान का मुख्य पुस्तक है प्रत्येक शास्त्र उसका एक अंग है। जिस प्रकार प्रथम सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी तो ठीक मालूम होती है परन्तु तीसरी के बाद पहिली और दूसरी बेढंग कहलाती है योरोपियन ग्रन्थ रचियताओं ने जिनको वास्तव में दर्शनों की फिलासफी का यथार्थ ज्ञान नही उन्होंने सांख्य को प्रथम और कपिल को नास्तिक माना है। परन्तु कपिल नास्तिक है या नहीं इसका उत्तर तो हम दूसरे स्थान पर देंगे परन्तु सांख्य तीसरा शास्त्र है इसके लिए हम विज्ञान भिक्षु का भाष्य जो सांख्य दर्शन पर है प्रमाण में देते हैं देखो भूमिका सांख्य भाष्यपृष्ठ २

तत्रश्रुतिभ्यः श्रुतेषु पुरुषार्थ तद्धेतु ज्ञान तद्विषयात्मस्वरुपादिषु श्रुत्यविरोधिनी रुपपत्तीः षडध्यायीरूपेण विवेकशास्त्रेण कपिलमूर्त्तिर्भगवानुपदिदेश। ननु न्यायवैशेषिकाभ्यामप्येतेष्वर्थेषु न्यायः प्रदर्शित इति ताभ्यामस्य गतार्थत्वं सगुणनिर्गुणत्वादि विरुद्धरूपैरात्मसाधकतया तद्युक्तिभिरत्रत्ययुक्तीनां विरोधे उभयोरपि दुर्घटं च प्रमाण्यमिति। मैवम्। व्यावहारिक पारमार्थिक रूपविषय भेदेन गतार्थत्वविरोधयोरभावात्॥ २॥

अर्थ—श्रुति में जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य तीन प्रकार के दुःख की निवृत्ति बतलाई है और उस का कारण आत्मा का यथार्थ ज्ञान बतलाया है उसके लिये महात्मा कपिल ने छः अध्याय रूप वेदनानुकूल युक्तियों की एकत्रता अपने शास्त्रों में लिखी अब वादी शंका करता है कि यह युक्तियों से तत्वज्ञान न्याय व वैशेषिक में कहा गया है इस कारण यह उस में आ चुका है यदि किसी भाग में यह उनसे विरुद्ध है तो युक्तियों के आपस में विरुद्ध होने से दोनों का ही प्रमाण मुश्किल होगा। विज्ञान भिक्षु उत्तर देता है कि ऐसा मत कहो कारण यह कि व्यावहारिक और पारमार्थिक रूप विषय का भेद है अतएव न तो सांख्य का विषय न्याय और वैशेषिक में आ गया है और न उनका विरोध ही है।

प्रिय पाठक! आपने समझ लिया होगा कि विज्ञान भिक्षु जिसने कई दर्शनों की टीका की है और वर्तमान काल के पण्डित उसको प्रमाणिक मानते हैं वह भी इस पक्ष की पुष्टि करता है कि न्याय वैशेषिक प्रथम के हैं जैसा कि सांख्य दर्शन के मूल में न्याय वैशेषिक का कथन किया गया है और टीकाकार विज्ञान भिक्षु भी उनको सांख्य से प्रथम मानता है फिर कुछेक महाशयों का कथन है कि जो दर्शनों के मत से अनभिज्ञ है किस प्रकार प्रमाणिक हो सकता है।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि यहां सांख्य दर्शन कपिल का बनाया हुआ नहीं प्रत्युत तमाम सांख्य सूत्रजो कि कपिल जी ने केवल तत्व की व्याख्या के निमित्त बनाये हैं यह सांख्य सूत्र हैं और यह विज्ञान भिक्षु के बनाये हुये हैं परन्तु उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि इसी सांख्य के सूत्रों को पेश करके बहुत से लोगों ने सांख्य को नास्तिक वा अनीश्वरवादी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है अगर यह सूत्र न हों तो कपिल जी को कोई नास्तिक कह नहीं सकता था केवल इन सूत्रों को देख कर लोगों को भ्रम हो गया।

ईश्वरासिद्धेः। सां० १। ९२

अर्थ—ईश्वर की सिद्धि नहीं होती क्योंकि ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो ही नहीं सकता क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं और प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य होता है जिसका तीन काल प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी हो नहीं सकता क्योंकि अनुमान ज्ञान व्याप्ति यानी सम्बन्ध से होता है और जिसका तीन काल में प्रत्यक्ष नहीं उसकी व्याप्ति हो ही नहीं सकती

रहा शब्द सो वह आप्त के होने से प्रमाण होता है और आप्त कहते हैं जो धर्म से धर्म्मी ज्ञान प्राप्त कर के उपदेश करे ईश्वर के परोक्ष न होने से उसके धर्म के प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होते अतएव ईश्वर में कोई प्रमाण नहीं और प्रमाण के न होने से उसकी सिद्धि सांख्य के माने हुए प्रमाणों से नहीं हो सकती।

प्रिय पाठकों! अब आप समझ गये होंगे कि दर्शनों का यह क्रम है गौतम का न्याय दर्शन १, कणाद का वैशेषिक दर्शन २, कपिल का सांख्य दर्शन ३, पतञ्जलि का योग दर्शन ४, जैमिनि का मीमांसा दर्शन ५, व्यास का वेदान्त दर्शन ६, यह सिद्धान्त तो आज तक के विद्वानों का चला आया है।

आर्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट मगावें

–) प्रति, तथा ४) रु० सैंकड़ा, ३५) रुपया हजार

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना०संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तमराम
२१ देश सुधार-होत्री
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाजके उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक संध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षासे हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक कालमें बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्ति पूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानंद
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षडयंत्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आस.
५३ सप्त की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानंद का उद्देश्य
५६ दयानंद का लक्ष
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानीं
६१ महर्षि दयानंद के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानंद कौन
६८ कृण्वंतो स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

आर्य समाज की शरण में आइए !

देश के समस्त वर्गों से, राजनीतिज्ञों से, नेताओं से, विचारकों से आज हमारा निवेदन है कि वे सभी मिल कर राष्ट्र की समस्त समस्याओं को सुलझाने के लिये आर्य समाज की शरण में आयें। जो उत्थान और निर्माण चाहते हों, राष्ट्र का कल्याण जिन्हें इष्ट हो, जो गरीबी और अज्ञान को, साम्प्रदायिकता और ईर्ष्या को समाप्त करना चाहते हो, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे मानवता के भाव संस्थापन में आर्य समाज का हाथ बटायें।

कहा नहीं जा सकता कि सभी लोग हमारे इस निमन्त्रण पर विचार करेंगे या नही पर हम इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि एक न एक दिन इन सभी को आर्य समाज द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलना ही होगा। वह दिन कब आयेगा यह नहीं बताया जा सकता, पर यह बिना संकोच कहा जा सकता है कि बिना उस दिन के आये संसार में सुख और शान्ति की स्थापना केवल कल्पना ही रहेगी।

हमसे पूछा जा सकता कि अभी पं० नेहरू, जयप्रकाशनारायण, टंडन जी, मास्टर तारासिंह जी, लोहिया, प्रेमनाथ डोगरा, कम्युनिस्ट नेता अजयकुमार व श्री के० गोपालन, विनोबा व अन्य भारतीय विचारक डा० राधाकृष्णन सरीखे दार्शनिक सभी ठीक मार्ग पर नहीं चल रहे ? इस प्रश्न के उत्तर में हमारा निवेदन है कि नहीं ! इनका मार्ग इसलिये ठीक नहीं है, क्योंकि इन्हें समस्या का ज्ञान नहीं है। ये सभी ऊपरी भाग को सजाना चाहते हैं पर मनुष्य के मनुष्यत्व को और उसके सत्य को न ये जानते हैं न जानना चाहते हैं।

संस्कृत, सभ्यता और राष्ट्रीयता के कल्याण की बातें सभी कहते हैं, पर क्या है संस्कृति, किसे कहते हैं सभ्यता, और क्या है राष्ट्रीयता की भावना, इसका किसी को लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। पाश्चात्य दर्शन और भोगवादी विचारधारा ने सभी के मन और मस्तिष्क पर आधिपत्य जमा कर मार्ग से दूर भटका रखा है और परिणाम स्वरूप ये जीवन चाहते हैं पर मृत्यु मार्ग पर चलकर, शांति चाहते हैं पर अशान्ति के बीज को बोकर, और कल्याण-निर्माण की अभिलाषा रखते हैं ध्वंस और सर्वनाश की ओर बढ़ कर। हमारी बात का जीता जागता स्वरूप है आज देश की अवस्था।

हमारा कहना है कि यदि स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्र की आधार शिला पवित्र वैदिक सिद्धान्तों पर रखी जाती तो आज लगभग ११ वर्षों के बाद देश की काया पलट हो चुकी होती। गरीबी, बेकारी, हाहाकार, भ्रष्टाचार का चिन्ह कहीं खोजने से भी न मिलता। जिन अभावों से ग्रस्त होकर आज देश के ८० प्रतिशत नागरिक सिसक रहे हैं वे यहाँ से विदा ले चुके होते और नये युग के के स्वार्णिम विहान की भांति स्वतन्त्रता सभी के अंतर में होती और मुस्कान छितरा देती। पर यह न होना था और न हुआ।

दुर्भाग्य से ७०० वर्षों की पराधीनता ने हमारे मन और मस्तिष्क पर लघुता के ऐसे भाव अंकित कर दिये हैं कि हम "स्व" पर अभिमान न करके चरण चूमने में गौरव अनुभव करते हैं। सत्य से दूर न्याय, ज्ञान को ठुकरा कर हम संसार के साथ चलाना चाहते हैं। हमारी इच्छा भारत को अमरीका, रूस और इन्गलैंड सा बनाने की होती है। भारत को भारत बनाने की कामना का सर्वथा लोप हो चुका है। आर्य समाज एकाकी इस भावना को हृदय में सजाए सभी को अपना सा बना लेनें के लिये निरन्तर यत्न कर रहा है।

हम कहते हैं कि आज वह समय आ गया है जब जब भारत के नेता, विचारक, सुधारक अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का हल आर्य समाज द्वारा बताये मार्ग पर चलकर करें। हम यह भी विस्मृत कर चुके हैं कि आर्य समाज की स्थापना ऐसे काल में हुई थी जब सन ५७ के गदर में भारत की राष्ट्रीय चेतना को पूरे बल से कुचल दिया गया था। अंग्रेजी शासन का काल चक्र पूरी तरह छाया हुआ था, एक पत्ता भी हिलाना

जब अत्यन्त साहस का काम था महर्षि दयानन्द ने ऐसे समय जागृति स्वतन्त्रता और क्रान्ति का वह शंखनाद किया था।

इतिहास के पृष्ठ बोल रहे हैं कि आज के राष्ट्र पिता गांधी जब अफ्रीका से भारत आये तब हरिद्वार के पार, गंगा के किनारे महात्मा मुन्शीराम के चरण पकड़ उन्होंनें अपनी चिर पिपासा शांत की थी ! कौन थे मुन्शीराम—आर्य समाज के ही एक सेनापति महर्षि के चरणानुगामी ! आप महर्षि के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ जाइये, आर्याभिविनय की प्रार्थनाओं को देखिये, और फिर विचार कीजिये कि सन ५७ के संग्राम के बाद स्वराज्य के लिए ऐसी प्रबल मांग उठाने वाला आर्य समाज परतंत्रता की बेड़ियां काटने में कितना महत्वपूर्ण भाग रखता है।

और भी आगे चलकर देखिये और गम्भीरता से स्वतन्त्रता संग्राम का विश्लेषण कीजिये तो आप को ज्ञात होगा कि कांग्रेस में भी भाग लेने वाले ५० प्रतिशत से अधिक आर्य समाज की विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त व्यक्ति थे। जो स्वराज्य स्थापना को प्रथम लक्ष्य मान सीधे कांग्रेस में आ मिले थे। सभी के सम्मिलित प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता मिल गई और हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया। आगे बढ़ने के लिये या पतन के गहरे गर्त में गिरने के लिये यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि हमने आगे बढ़ने के स्थान पर गर्त में गिरना ही श्रेयस्कर समझा।

यदि अनुचित न समझा जाये तो हम कहना चाहते हैं कि रक्त और वलिदान का मूल्य देकर पायी हुई यह स्वतन्त्रा मिटने के लिये नहीं है। इसी से हमें यह कहना आवश्यक जान पड़ रहा है कि उठने के एक मात्र मार्ग, आर्य समाज के पथ पर चलने का निर्णय कीजिये। आंखें खोल कर देखिये आज देश की हालत, कहीं मास्टर तारासिह गीदड़ भबकियां दिखाकर साम्प्रदायिक का विष वमन कर रहे हैं। और कहीं पंजाब में कैरों सरकार अत्याचार और गुंडागर्दी का नंगा नाच नचा रही है तो कहीं हैदराबाद में स्वतन्त्रता दिवस पर पाकिस्ताती झण्डा लहराया जाता है। कहीं बिहार में गोलियां चलती हैं और विद्यार्थी भूने जाते हैं तो कहीं विद्यार्थी राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक झण्डे का अपमान करने में नहीं संकुचाते। क्या तमाशा है यह, एक ओर ईसाई पादरी नागा प्रदेशों में सशस्त्र विद्रोह कराते हैं दूसरी ओर हमारी उत्तर प्रदेशीय सरकार इन्हीं मिश्नरियों को सहायता देती है। एक ओर राज्य की नीति धर्म निरपेक्ष घोषित की जाती है दूसरी ओर राज्य द्वारा बौद्ध जयन्ती मनाने के लिए लाखों रुपया राज्य कोष से दिया जाता है। कहा जाता है कि वह जनतन्त्र है पर जनता का रक्त, धन दोनों हाथों से जी भर लुटाया जा रहा है और कोई सुनने वाला नहीं, राष्ट्रीय चरित्र का दीवाला निकल चुका है अनैतिकता खुल कर खेल रही है। प्रत्येक मानस पर स्वार्थ का आधिपत्य है। ऐसी जर्जर स्थिति में हम कहते हैं, कि रक्षा का केवल एक मार्ग है "आर्य समाज द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलने का संकल्प लिया जाये।"

छूत-छात, साम्प्रदायिकता अन्ध विश्वास, व्यक्ति-पूजा-वर्ग और जाति-भेद, असमानता छोटे बड़े की भावनाएं, बताइये आर्य समाज के अतिरिक्त और कौन समाप्त कर सकता है, पत्थर की पूजा और रूढ़ियों की मान्यता का खंडन करने का साहस बताइये किस में है ? कौन ऐसा मार्ग है जो गरीब और अमीर में संघर्ष न कर सभी का कल्याण चाहता है इन सभी का उत्तर है केवल एक, "आर्य समाज" ! हमें खेद है कि आज हम दूर २ अंधकार से प्रकाश चाहते हैं, हम रूस, इंगलैंड अमरीका से प्रकाश चाहते हैं कल्पना के लोक में विचर कर हम धरती के प्रश्न सुलझाने की आशा करते हैं। सत्य को छोड़ असत्य की आराधना कर हम अपनी-अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देना चाहते हैं पर यह भ्रांत मार्ग अब समाप्त ही कर दिया जाना चाहिए यदि जीवन इष्ट है तो हमारा सभी से निवेदन है कि आर्य समाज के दस नियमों को पढ़िये, उन पर विचार कीजिये। यदि उनमें तत्व ज्ञान हो तो वैदिक पथ को जानने का यत्न कीजिये। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि बुद्धि रखने वाला व्यक्ति एक बार भी वेद ज्ञान की झलक देख लेगा तो वह सदा के लिये इसी मार्ग का पथिक बन जायेगा।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

आर्य समाज और गुरुकुल

(लेखक—श्री आनन्द प्रिय जी पण्डित बड़ौदा)

मुस्लिम शासकों ने अपना राज्य और धर्म के प्रचार का आधार तलवार को बनाया था। शिवाजी ने तलवार का मुकाबला तलवार से लेकर मुगल साम्राज्य को ध्वंस कर दिया।

अंग्रेजों ने अपने शासन को शाश्वत बनाने के लिये मेकाले के शब्दों में इस देश के वासियों को विचारों से अंग्रेज वना देने का बीड़ा उठाया था।

एक ओर ईसाइयों ने अपना जाल विछाया और अपनी शैक्षणिक संस्थाओं से भावी प्रजा को इसामसीह के शरण में लाने का आयोजन किया। दूसरी ओर देश का शिक्षण क्रम ऐसा वनाया गया, जिसका उद्देश्य भारतीयों को अपनी संस्कृति, भाषा और वेशभूषा से तिरस्कार की भावना उत्पन्न हो।

इस उद्देश्य से अंग्रेज सरकार अवश्य सफल हुई। आज भाषा आन्दोलन इसी मेकाले की जय का द्योतक है। वर्तमान में भी अंग्रेजी का मोह और अपने वालकों को कोनवेन्टों में पढ़ाने का मोह पूर्ववत् जैसा बना हुआ है।

पहाड़ की एक कोनवेन्ट स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् खाली हो गई। पादरी लोग चिन्तित हुये। झट बम्बई में आये। विज्ञप्ति की, कि हम अंग्रेजी द्वारा शिक्षण देते हैं और पश्चिमी संस्कृति,के अनुरूप वालकों को तैयार करते हैं। उनके पास तीन सौ रिक्त स्थान थे। शुल्क अत्यधिक था। तिस पर भी पांच सौ आवेदन आये और उनका संकट टल ही न गया अपितु वम्बई के धनाढ्य कुटुम्ब उसके पृष्ठ पोषक बन गये।

सांस्कृतिक गुलामी ही मेकाले शिक्षण की आधार शिला थी। इसका प्रतिकार यदि किसी ने किया तो यह श्रेय एक मात्र युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी को था।

जिस समय अंग्रेजी राज्य का प्रभाव चरम सीमा पर था। उस समय महर्षि ने कहा वेदों की तरफ लौटो और अपने वालकों को प्राचीन ऋषि मुनियों की संस्कृति का शिक्षण फिर से गुरुकुलों की स्थापना कर प्रचार करो।

महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने क्रियात्मक रूप से इस आदेश को ग्रहण कर सर्व प्रथम गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की।

आर्य समाज के प्रचार युग में गुरुकुल एक महत्वपूर्ण प्रेरणा स्थान रहा। वैदिक ऋषियुग का पुनः दर्शन इन गुरुकुलों द्वारा होगा। इसकी प्रतीती सबको होने लगी।

ब्रिटिश सरकार ने इसका प्रतिकार कालेज विभाग के करवाया था और आर्य समाज की शक्ति गुरुकुल और कालेज इन दो दलों में विभक्त हो गई।

गुरुकुलों की स्थापना से आर्य समाज ने एक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। इससे देशका मानस परिवर्तन हो गया और मेकाले शिक्षण पद्धति का भंडा फूट गया। देश का विचारक वर्ग प्रचलित शिक्षण पद्धति का विरोध करने लगा और स्वयं महात्मा गांधी जी को भी अपने स्वराज्य प्राप्ति के सूत्रों में स्कूल कालेजों का वहिष्कार का सूत्र रखना पड़ा। कारण उन्होंने कहा कि यह स्कूल और कालेज गुलाम पैदा करने के कारखाने हैं।

गुरुकुलों ने सांस्कृतिक भाषा संस्कृत, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा हमारे धर्म के विशिष्ट तत्वों को व्यापक बना देश के आगे एक उज्जवल आदर्श उपस्थित किया। शिक्षण में चरित्र निर्माण पर वल दे केवल नौकरियों के लिये दिये जाने वाले शिक्षण की पोल हमारे सामने रख दी।

जिस प्रकार शिवाजी ने तलवार का मुकाबला तलवार से देकर मुगल साम्राज्य को ध्वंस कर दिया वैसे ही महर्षि दयानन्द जी ने अंग्रेजी शिक्षण का प्रभाव और महत्व मिटा कर सच्ची राष्ट्रीयता के लिये गुरुकुलीय शिक्षण का आदर्श महत्वपूर्ण है यह स्थापना कर मेकाले संस्कृति को विदीर्ण कर दिया।

आज स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात भी जब काँग्रेस सरकार शिक्षण क्षेत्र में कुछ भी सुधार न कर पाई। उस समय आर्य समाज के गुरुकुल एक निश्चित

विचार धारा पर देश की स्वतंत्रता जिन सिद्धान्तों पर अक्षुण्ण रह सकती है उसका दिग्दर्शन करवा रहा है।

गुरुकुल में संस्कृत को मुख्य स्थान देकर, वैदिक संस्कृति का केन्द्र बना कर देश की आत्मा का जाज्वल्ययान रूप सब को दर्शा दिया।

राष्ट्र भाषा हिन्दी माध्यम बना। देश की सच्ची राष्ट्रीयता एक भाषा द्वारा ही हो सकती हे। इस तथ्य का प्रचार किया।

गुरुकुलों में जाति पाँति तथा प्रान्तों के भेद भाव मिटा कर देश में सच्ची राष्ट्रीयता कैसे उत्पन्न हो सकती है, उसका प्रयोगात्मक पाठ पढ़ाया। गुरुकुलों ने देश के भावी नागरिकों के स्वास्थ्य और चरित्र निर्माण किस प्रकार हो सकता। देश के युवक और युवती किस प्रकार स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति प्रेमी बन, हृष्ट पुष्ट, चरित्र शील बन देशोपयोगी किस प्रकार हो सकते हैं यह बतलाया।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमारी सरकार को चाहिये था कि गुरुकुलों के परीक्षण को राष्ट्रहित के लिये स्वीकार कर देश का सच्चा कल्याण करते। पक्षापक्षी के कारण देश शिक्षण क्षेत्र में अब भी पश्चिमी संस्कृति का भक्त बन रहा है। इसके साथ सिनेमा संस्कृति का शिक्षण हो गया है और जब सरकार शिक्षण क्षेत्र में अंधकार युग में ही है।

राष्ट्र की भाषा यूनिवर्सिटियों की भाषा क्यों हो इस पर विवाद खड़ा हो गया है और देश दुःखद परिस्थित में पड़ गया है। युवकों का चरित्र बिगड़ रहा है। शरीर पूर्ववत् दुर्बल ही है। और स्वयं गुरुकुलों के वर्तमान संचालक अपनी राष्ट्रीय सरकार की मान्यता प्राप्त करने की दौड़ में अपनी विशिष्ठता खो रहे हैं।

आर्य समाज का वर्तमान में हमारी दृष्टि से यदि कोई सबल कार्यक्रम है जिस से देश पर सर्वस्व बना रहे। वह है गुरुकुल शिक्षण पद्धति को व्यापक रूप दे। बिनोबा भावे के समान महान आन्दोलन कर देश का सच्ची रीति से उपकार करे।

महर्षि की राष्ट्र को उत्तम से उत्तम देन गुरुकुल शिक्षण पद्धति है। क्या ही अच्छा हो हम प्रान्त प्रान्त में गुरुकुल विश्वविद्यालयों को व्यापक रूप दे देश में सच्ची राष्ट्रीयता उत्पन्न करने में सफल हों।

(शेष २६ पृष्ट का)

प्रकाश सभी चाहते हैं, प्रकाश है भी, प्रकाश और इच्छा के वीच अज्ञान की एक बड़ी दीवार खड़ी हे। समय कहता है कि इस दीवार को गिरा दिया जाय और प्रकाश के इच्छुक व्यक्तियों को प्रकाश मिल जाय। धर्म एक है, मार्ग एक है, ज्ञान एक है, सत्य एक है, यदि यह मान्यता सत्य है तो निश्चित है कि, 'धर्म मार्ग सत्य ज्ञान आर्य समाज द्वारा निर्दिष्ट ही है। आर्य समाज सत्य, शाश्वत, बुद्धि, तर्क, युक्ति संगत "विचारों" का प्रसार चाहता है। वह सभों का सर्वविधि कल्याण चाहता है। वह मनुष्य बनाकर उसे लक्ष्य तक पहुँचाना कर्तव्य समझता है, हम पूछते हैं कि क्या यह उचित नहीं यदि हैं तो क्यों नहीं आप सभी समय रहते सावधान हो पवित्र ज्ञान वेद की शरण में आ जाते हैं।

क़ुरान, बाईबिल और अन्य सभी मत ग्रन्थ व्यक्ति के आधार पर हैं, आर्य समाज का मान्य ग्रन्थ (वेद) ज्ञान का आधार है व्यक्ति का नहीं। ज्ञान-सत्य न्याय की साधन मान्यता आर्य समाज का इष्ट है, कौन है ऐसा संसार में, जो इस मान्यता को ठुकरा सके।

अतः सभी मतमतांतर के मानने वालों, राजनैतिक विचारधाराओं के व्यक्तियों और राष्ट्रवादियों से हम उन्नति और निर्माण के लिये जीवन के सभी अंगों में वेद दर्शन अपनाने का आग्रह करते हैं। इसे जान सत्य प्रसार के अभिमान के लिये महर्षि दयानन्द द्वारा आरम्भ किये आर्य समाज आँदोलन में पूरे बल से भाग लेने का आमन्त्रण भी हम दे रहे हैं। जो भी हमारे इस निवेदन को पढ़े, उनसे हमारा आग्रह है कि या तो हमारी बात को असत्य सिद्ध करें, यदि सत्य समझें तो अपनी पूरी शक्ति से सिसकती मानवता के कल्याण और भारतीय दानवता के दमन के लिये हमारे इस सन्देश को प्रसारित करने में हमारा हाथ बटायें।

सत्य प्रकाश के बिना शन्ति नहीं, शाँति बिना आनंद कहाँ ? और आनंद बिना मुक्ति कैसी ?

जीवन की निराशामयी पगडंडियों में आशा का दीप तक ले जाने। हमारे स्वागत और निमंत्रण को बुद्धिमान ठुकरायेंगे नहीं यह अटल विश्वास है।

सन १९५८ का कलैण्डर

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार सर्व श्री महात्मा आत्मानन्द जी, आनन्द स्वामी तथा आनन्द भिक्षु जी के चित्रों सहित प्रत्येक को बिना मूल्य भेजा जायगा।

वाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ,,	३॥)
सृष्टि का इतिहास	१॥)
उपनिषद आर्य मुनिभाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१॥)
प्रभु दर्शन ...	२॥)
तत्व ज्ञान ...	३)
आनन्द गायत्री कथा	॥)
एक ही रास्ता	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)॥
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१॥)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाए)	१॥)
सचित्र योगासन	१॥)
बहनों की बातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	२॥)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय सँस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	॥)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३॥)
कर्तव्य दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
सन्ध्या, हवन प्रदीपिका	॥)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	॥)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	॥)

प्रार्थना प्रदीप	॥)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
घर गृहस्थी	३॥)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द)	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमाँसा	॥।)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक	।=)
आत्म कथा ऋषि दयानन्द	।=)
आर्याभिविनय	॥)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	।=)
भ्रान्ति निवारण	।=)
भ्रमोच्छेदन	।)
हुगली शास्त्रार्थ	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति	≡)
ईश्वर विचार	=)
जीवात्मा	=)
वेदों की आवश्यकता	-)
वेद किसपर प्रकट हुए	-)
बाल शिक्षा, धर्म शिक्षा	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	-)
पितृ श्राद्धविचार	-)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	-)
,, ,, लक्ष्य	-)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
माँस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।-)

धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४॥×२२

सन्ध्या मंत्र	।-)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।-)
आर्य समाज के नियम	।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।-)
यम नियम व्याख्या सहित	।-)
संगठन सुक्त	।-)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	॥)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम	≡)
सामवेद का प्रथम	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मंचर, सत्यवद	≡)

मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५॥ मू०-)॥

ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म आदि आदि।

महाभारतम् संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री उपाध्यक्ष दयानन्द वेदविद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य सजिल्द का ३) रु०

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीटूयूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूल लाइब्रेरियों। पुस्तकालयों वेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४४ पुस्तकों का सैट**

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

कृषि की उन्नति पर ही भारत की उन्नति निर्भर है। देहाती पुस्तक भण्डार का भारत के ८० प्रतिशत देहाती किसान भाइयों से यह निवेदन है कि वे देश में उपज बढ़ाने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कृषि सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करें।

१. आलू की खेती	।।।)
२. टमाटर की खेती	।।)
३. गोभी की खेती	।।)
४. जीरा, धनियाँ, अजवायन	।।।)
५. तरकारियों की खेती	१।।)
६. अच्छे बीज	।।।)
७. अच्छी खाद	२।।)
८. कपास की खेती	१)
९. गन्ने की खेती	।।।)
१०. फूल फुलवाड़ी	२।।)
११. धान की खेती	१।।)
१२. सन्तरे की बागवानी	२।।)
१३. आम की बागवानी	३)
१४. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
१५. तिलहन की खेती	।।।=)
१६. सोयाबीन की खेती	।)
१७. तम्बाकू की खेती	।।)
१८, खेती की तैयारी	२।)
१९. फसल रक्षक औषधियां	२।)
२०. व्याधियों की रोकथाम	१।।)
२१. खेतीबाड़ी (कि. गाइड)	१।।)
२२. फलों की खेती	३।।)
२३. पशुओं का इलाज	६)
२४. तरकारी सागभाजी खेती	३।।)
२५. ट्यूबवैल गाइड	३।।)
२६. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
२७. पोल्ट्री फार्मिङ्ग	४)
२८. उन्नत सिंचाई	२)
२९. खेती और ट्रैक्टर	६)
३०. फल संरक्षण	२।।)
३१. गेहूं की खेती	३)
३२. मूंगफली की खेती	१)
३३. मिर्च की खेती	१।)
३४. बीज की तैयारी	१।।)
३५. मसालों की खेती	२)
३६. पपीते की खेती	१।।)
३७. आधुनिक कृषियन्त्र	१।)
३८. लाख की खेती	।।।=)
३९. प्याज की खेती	।।।)
४०. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
४१. भारतीय कृषि कहावतें	२।।)
४२. किचन गार्डन	१।।।)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)

देहाती पुस्तक भण्डारः—चावड़ी बाजार दिल्ली—

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, संतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं, मू० ३।।) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू: अदरक, अरवी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३।।) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती·बाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ

(ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १।।) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

५००० पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगायें

केवल बारह आने (पिछत्तर नये पैसे) के टिकट लिफाफे में भेज कर नये वर्ष की श्री बापू राष्ट्रीय मशहूर जन्त्री मंगायें।

देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाजार देहली।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयद प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर

ओ३म्

वेद प्रकाश

कौन ?

१

नील-नभ के मृदु आंगन में,
ये अगणित दीप जलाता कौन ?
चारु चन्द्र में बन प्रकाश,
पृथवी पर छिटका जाता कौन ?

२

जगमग जगमग इस जुगनू की,
बाती में आन चमकता कौन ?
रजनी-गन्धा मे मधुर गन्ध,
चुपके से नित भर जाता कौन ?

३

अरुण सारथि के रथ में चढ़-
कर सदा सवेरे आता कौन ?
मेघकन्या की चुनरी को,
सुवर्ण-वर्णी कर जाता कौन ?

४

गुलाब की मृदु पंखुड़ियों में,
ये रंग गुलाबी भरता कौन ?
सुमन से मन हर लेने को,
आ आकर मुसका जाता कौन ?

५

अनन्त जल के अन्तस्तल में,
असंख्य रत्न. भर जाता कौन ?
सागर-लहरी के नर्तन में,
संगीत मधुर गा जाता कौन ?

६

खेल यह आंख मिचौनी का,
भोली दुनिया में करता कौन ?
मेरे मन की चंचलता में,
आश्चर्य नये भर जाता कौन ?

७

इस जगती के प्रति कण कण में,
ना जाने वह प्रियतम है कौन ?
मेरे जीवन के लघु क्षण में,
आनन्द नित्य भर जाता कौन ?

प्रो० सुभद्रा पटेल एम० ए०

आर्ष योग प्रदीपिका

व्यास भाष्य सहित पातञ्जल योग दर्शन का सरल सारगर्भित भाषानुवाद

लेखक श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं व्यास ऋषि भाष्य का भाषानुवाद किया गया है। योग के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर लेख होने से इसका नाम "आर्ष योग प्रदीपिका रखा गया है। यहां पातञ्जलि के सूत्रों का प्रथम अर्थ और किसी किसी क्लिष्ट सूत्र पर विवरण दिया गया है। पुनः व्यास भाष्य का अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं उस पर आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण भी दिया गया है। आशा है स्वाध्यायी और योग विषयक वर्णन के जिज्ञासु जन इसका स्वागत करेंगे। लगभग २७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३॥)

मिलने का पता – गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क देहली।

कर्ण रोग नाशक

कान की सभी बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये "कर्ण रोग नाशक तेल" प्रयोग करें। इससे कान बहना शब्द होना, कम सुनना, दर्द होना, खाज आना, साँय-साँय होना, मवाद आना, सीटी सी बजना, आदि शीघ्र आराम हो जाते हैं। एक बार परीक्षा करके देखिये। मूल्य शीशी १।), पैकिंग पोस्टेज १॥), १ दर्जन पर खर्चा फ्री और ३ शीशी कमीशन में अधिक देकर एजेंट बनाते हैं। बरेली का प्रसिद्ध रजिस्टर्ड शीतल सुरमा' भी मंगावें १ शीशी १।), पत्र साफ लिखने की कृपा करें।

पता कार्यालय, 'कर्ण रोग नाशक तैल'
२६३ संतो मालन मार्ग
नजीबाबाद (उ० प्र०) NAJIBABAD
U. P.

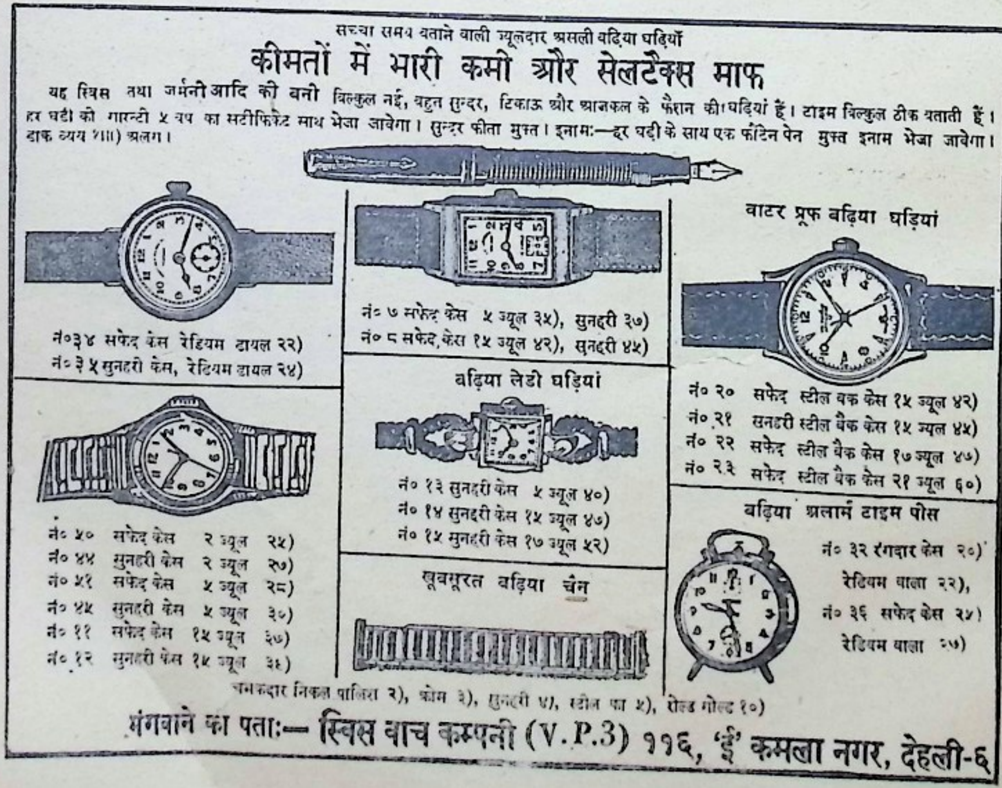

सच्चा समय बताने वाली ज्यूलदार असली बढ़िया घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी और सेलटैक्स माफ

यह स्विस तथा जर्मनी आदि की बनी बिल्कुल नई, बहुत सुन्दर, टिकाऊ और आजकल के फैशन की घड़ियां हैं। टाइम बिल्कुल ठीक बताती हैं। हर घड़ी की गारन्टी ५ वर्ष का सर्टीफिकेट साथ भेजा जावेगा। सुन्दर फीता मुफ्त। इनामः—हर घड़ी के साथ एक फॉंटेन पेन मुफ्त इनाम भेजा जावेगा। डाक व्यय १॥) अलग।

नं०३४ सफेद केस रेडियम डायल २२)
नं० ३५ सुनहरी केस, रेडियम डायल २४)

नं० ७ सफेद केस ५ ज्यूल ३५), सुनहरी ३७)
नं० ८ सफेद केस १५ ज्यूल ४२), सुनहरी ४५)

वाटर प्रूफ बढ़िया घड़ियां

नं० २० सफेद स्टील बक केस १५ ज्यूल ४२)
नं० २१ सुनहरी स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४५)
नं० २२ सफेद स्टील बैक केस १७ ज्यूल ४७)
नं० २३ सफेद स्टील बैक केस २१ ज्यूल ६०)

बढ़िया लेडी घड़ियां

नं० १३ सुनहरी केस ५ ज्यूल ४०)
नं० १४ सुनहरी केस १५ ज्यूल ४७)
नं० १५ सुनहरी केस १७ ज्यूल ५२)

नं० ५० सफेद केस २ ज्यूल २५)
नं० ४४ सुनहरी केस २ ज्यूल २७)
नं० ५१ सफेद केस ५ ज्यूल २८)
नं० ४५ सुनहरी केस ५ ज्यूल ३०)
नं० ११ सफेद केस १५ ज्यूल ३७)
नं० १२ सुनहरी केस १५ ज्यूल ३९)

खूबसूरत बढ़िया चैन

चमकदार निकल पालिश २), क्रोम ३), सुनहरी ४), स्टील का ५), रोल्ड गोल्ड १०)

बढ़िया अलार्म टाइम पीस

नं० ३२ रंगदार केस २०)
रेडियम वाला २२),
नं० ३६ सफेद केस २५)
रेडियम वाला २७)

मंगवाने का पताः— स्विस वाच कम्पनी (V.P.3) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादक—गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—६ : चैत्र २०१५ अप्रैल १९५८ : वार्षिक मूल्य २॥)
अंक—६ : दयानन्दाब्द १३४ चैत्र १८८० शाके : विदेशों से ५ शि०

प्रार्थना सामग्री का अभाव

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ॥
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ऋ० ॥१।७६।१।

अर्थ—(अग्ने) हे तेजोमय देव ! (ते) तुम्हारे (मनसः) मन को (वराय) आवर्जित करने के लिए हम लोगों में (का+उपेतिः+भुवत) कौनसा उपाय है। अर्थात् तुम्हें प्रसन्न करने के लिए हम में कोई उपाय नहीं। (का+मनीषा) हम लोगों की कौन सी बुद्धि है, कोई नहीं। अथवा स्तुति प्रार्थना (शंतमा+भुवत्) हमें सुखकारी हो अर्थात् आपकी योग्य स्तुति करना भी हम नहीं जानते। (वा+कः) अथवा कौन मनुष्य (यज्ञैः) विविध शुभ कर्मों से (ते+दक्षम्) आपकी प्रसन्नता (परि+आप) प्राप्त कर सकता है, अर्थात् आप के उचित यज्ञानुष्ठान भी हम नहीं कर सकते, क्योंकि सब का साधनभूत हम लोगों का मन ही अत्यन्त दुर्बल है। तब (केन+वा+मनसा) किस मनसे (ते+दाशेम) आप की सेवा करें।

आशय—भक्त प्रभु से अपने अज्ञान, अपनी दुर्बलता का खुले दिल से बखान कर रहा है। और मानो प्रभु से प्रार्थना करता है, कि मुझे अपना स्तुति प्रार्थना उपासना की पद्धति सिखाए। वेद की यह महत्ता है, कि मानव मन के चित्रण में सबसे अधिक कुशल है। हो भी क्यों न, जब यह मनुष्य को बनाने वाले प्रभु की अपनी वाणी है।

—*—

॥ ओ३म् ॥

सत्यार्थप्रकाश

बड़े अक्षर व बड़ी साइज का टिप्पणियों सहित संस्करण

टिप्पणियों के लेखक—आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् 'आर्य–सिद्धान्त--सागर' के यशस्वी लेखक

शास्त्रार्थ महारथी श्री ठा० अमरसिंह जी आर्य मुसाफिर

स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द जी ने जो टिप्पणियों सहित मोटे अक्षर और बड़ी साइज का सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किया था, वह प्रकाशित होते ही जो उसके ग्राहक बने थे उनको प्राप्त हो गये जिन को प्राप्त नहीं हुए वे निराश हुए १५) की पुस्तक के २०) तक देने को तैयार हैं। इसपर भी मिलता नहीं।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने उससे भी कहीं अधिक टिप्पणियों सहित प्रकाशित करने का आयोजन किया है। टिप्पणियों के लिये उपरोक्त प्रशंसित पण्डित जी का सहयोग प्राप्त कर लिया है।

कैसा होगा, क्या साइज व कैसे अक्षर होंगे, कैसी उपयोगी टिप्पणियां होंगी, इसके लिये नमूना बिना मूल्य मंगाकर अथवा लेजाकर देख सकते हैं।

निम्न प्रकार की विशेषताएं होंगी

१. अजमेर वैदिक यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित वर्तमान संस्करण के अनुकूल कुछ भी परिवर्तन किये बिना मोटे अक्षरों में मूल पाठ छापा जायगा।

२. पाद टिप्पणियों में वेदादि सत् शास्त्र, पुराण, जैन ग्रन्थ इंजील (बाइबिल) और क़ुरान के प्रमाणों से ऋषि दयानन्द के दिये वाक्य तथा सिद्धान्तों की पुष्टि की जायेगी। जिससे अनेक शंकाओं का सामाधान हो जायेगा।

३. सत्यार्थप्रकाश में दिये प्रमाणों के पते जो ऋषि ने नहीं दिये वह भी यथाशक्ति इस संस्करण में दिये जायेंगे।

४. प्रत्येक विषय का पैराग्राफ़ अलग-अलग होगा।

५. प्रत्येक पृष्ठ पर विषय का निर्देश दिया जायेगा।

६. प्रत्येक समुल्लासों के विषयों के पैराग्राफ़ के नम्बर दिये जायेंगे जैसा कि ऋषि दयानन्द ने १३ वें और १४ वें समुल्लासों में दिये हैं जिस से उद्धरण देने में लेखकों तथा व्याख्याताओं को विशेष सहूलियत होगी, क्यों कि जितने भी संस्करण निकले हैं उन सब की पृष्ठ संख्या एक नहीं। इन नम्बरों से विशेष सहूलियत होगी जैसा कि वेद, शास्त्र मनु० गीता आदि में नम्बर होते हैं।

७. पुस्तक के अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण सूची तथा विषय शब्दानुक्रमणिका दी जायेगी।

८. ऋषि की आत्म-कथा दी जायेगी जो कि उन्होंने पूना में अपने व्याख्यानों में तथा थियासोफिस्ट पत्र में लेखबद्ध करदी थी।

९. ऋषि के असली फोटो की प्रतिलिपियाँ भी इसमें विवरण वार जहाँ-जहाँ ऋषि भक्तों ने ऋषि के फोटो लिये थे, देंगे।

१०. मूल्य सर्वसाधारण के सहूलियत के लिये सुगम रहेगा। अर्थात् सुनहरी पूरे कपड़े की पक्की जिल्द का मूल्य १०) रु० प्रति पुस्तक होगा, डाक खर्च व पैकिंग खर्च पृथक होगा।

५ प्रतियों के खरीदारों को रेल से भेजा जावेगा जो कि कम भाड़े में पहुँचेगा। पांच पुस्तकों पर पैकिंग खर्च २) अलग होगा। दस प्रतियां और उससे अधिक पर पैकिंग खर्च तथा रेल भाड़ा सब हम देगें ग्राहकों के जिम्मे कुछ नहीं होगा।

अपनी प्रति १०) भेज कर शीघ्र सुरक्षित करालें

प्रत्येक समाज के मंत्री एवं अधिकारी वर्ग से प्रार्थना है कि अपने सदस्यों को इस संस्करण की सूचना देकर ग्राहक बना कर सहयोग प्रदान करें।

भवदीय

गोविन्दराम हासानन्द

वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क, दिल्ली।

जीवात्मा-परमात्मा का पारस्परिक सम्बन्ध।

[आचार्य शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए० साहित्यालंकार, विद्यावाचस्पति, कानपुर]

वैदिक सिद्धान्त में ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों प्रवाह से ग्रनादि हैं ग्रौर ससार चक्र-संचालन के लिए इन तीनों की सत्ता ग्रनिवार्य है। इन तीनों में से किसी एक की कमी होने से सृष्टि की व्यवस्था सुसंगत नहीं हो सकती। इसी तत्व की ग्रोर यजुर्वेद में संकेत है—

"ईशावास्यमिद ँ्‌ सर्वं यात्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्येक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्"
(यजुर्वेद ४०।१)

इसमें तीनों पदार्थों की सत्ता ग्रलग २ ज्ञात होती है।

(क) इदं सर्वं........ईशा ग्रावस्य ।

(ख) यात्किञ्च....... जगत्।

(ग) तेनत्यक्तेन भुज्जीथाः।

ग्रर्थात्—(क) परमात्मा से यह निखिल व्याप्त एवं ग्राच्छादित है, इससे परमात्मा की सत्ता (ख) जो कुछ यह जगत् है इससे जड़ प्रकृति सत्ता (ग) 'भुज्जीथाः' ग्रर्थात् भोग करो, इससे भोक्ता जीव का ज्ञान होता है।

इस प्रकार परमात्मा की व्यापकता, जीवात्मा की भोक्तृत्व तथा प्रकृति का भोग्यत्व स्पष्ट रूप से इस मंत्र में प्रतिपादित किया गया है।

परमात्मा नियन्ता है, जीव नियम्म है ग्रौर उसका नियमन प्रकृति के द्वारा किया जाता है।

'को ददर्श प्रथनं जायमानमस्थन्वन्तमनस्था बिभर्ति। भूम्या असुर सृगात्मा क्वस्वित् को विद्वांसमुपग्राव्प्रस्टुम्॥"
(ऋ० १।१६४।४)

जब हड्डी वाले देह को हड्डी रहित जीवात्मा धारण करता है उस प्रथम ग्रादिरूप सम्बन्ध को कौन जानता है ग्रर्थात कोई नहीं जानता। जीवात्मा ने प्रथम शरीर धारण कब किया यह बात जानने वाला कोई नहीं, सृष्टि पुनः २ होती है यह प्रवाह से ग्रनादि है। ग्रतः जीवात्मा का शरीर धारण करना भी प्रवाह रूप है, ग्रनादि है।

"आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुपे पुरूणि।"
(अथर्व० ५।१।२)

जो जीवात्मा प्रथम धर्मों व कर्मों को प्राप्त होता है—कर्मों को करता है, पुनः हे भगवान! ग्रनेक प्रकार के शरीरों को तू करता है—देता है।

इससे प्रकट होता है कि वह परमात्मा शरीर भी पूर्व क्रमानुसार देता है।

"तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति॥"
(ऋ० १।१६४।२०)

जीवात्मा फल भोगता है परमात्मा साक्षीमात्र है।

ग्रतः जीवात्मा से परमात्मा स्वरूप ग्रौर गुणों से महान् है।

जीवात्मा शरीर से भिन्न है:—

"वायुरनिलममृतमथेद ँ्‌ भस्मान्तं ँ्‌ शरीरम्।"
(यजु० ४०।१५)

वह जीवात्मा वायु ग्रौर ग्रग्नि के समान ग्रमर है ग्रौर शरीर भस्म होने वाला है।

"इयं कल्याण्य जरामर्त्यस्यामृत गृहे।"
(अथर्व० १०।८।२६)

यह जीवात्मा देवता शरीर रूप गृह में पवित्र ग्रजर ग्रमर है।

"जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येन सयोनिः।"
(ऋ० १।१६४।३०)

मृत देह का ग्रमर्त्य जीवात्मा स्वधारणाग्रों द्वारा पूर्व शरीर से निकल कर ग्रगले शरीर में चला जाता है वह न मरने वाला पुनः मर्त्य देहादि के साथ समानाश्रय हो जाता है।

"शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्।"
(सांख्य दर्शन १।१३७)

शरीर, इन्द्रियों ग्रौर ग्रन्तः करण से भिन्न ग्रात्मा है।

जीवात्मा ग्रनेक हैं:—

"ये समानाः समनसस्ते जीवा जीवेषु मामकाः।"
(यजु० १७।४६)

जो समान एक मन वाले जीवों में जीव हैं।

"रेतोधा आसन् महिमान आसन्"
(ऋ० १०।१२७।५)

उस अंधकार रात्रि=प्रलयावस्था में अपनें कर्मों के फल को धारण किये हुए तथा मुक्त हुए नाना जीव विद्यमान थे।

"जन्मादि व्यवस्थातः पुरुष बहुत्वम्।"
(सांख्य दर्शन १।१४७)

जन्म, मरण, जीवन, बाल्य, यौवन, जरा आदि व्यवस्था से अर्थात् कोई जन्मता है, कोई मरता है, कोई जीवित रहता है, कोई बालक, कोई युवा, कोई वृद्ध है इस प्रकार व्यवस्था से पुरुष (शरीर वर्ती आत्माएँ) बहुत-(असंख्य) है।

जीवात्मा अणु है:—

"बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।"
(अथर्व० १०।८।२५)

यह जीवात्मा वाले से भी अत्यन्त अणु है।

जीवात्मा अल्पज्ञ है:—

"न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।" (ऋ० १।१६४।३७)

जो वह वस्तु में हूँ इसको मैं नहीं जानता क्योंकि मैं अल्पज्ञ हूँ।

जीव परिच्छिन्न है:—

"अव्यसश्च व्यचसश्च बिलंविस्यामि मायया।"
(अथर्व० १७।६८।१)

अव्यापक=परिच्छिन्न और व्यापक के भेद को बुद्धि द्वारा मैं खोलता हूं।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र:—

"मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुतत्रिषु। बधीर्मा शूर भूरिषु।" (ऋ० ८।४५।३४)

(जीवात्मा कहता है)—हे प्रभु! हमें एक अपराध पर दण्ड मत दे। दो अपराधों पर दंड मत दे और तीन अपराधों पर दंड मत दे। हे शूर! अनेक अपराधों पर दण्ड न दे।

"फलमतः उपमत्ते।" (वेदान्त दर्शन ३।२।३८)

शुभाशुभ कर्मों का फल दाता परमात्मा है क्योंकि ऐसा युक्ति से ही पाया जाता है।

जीवात्मा—परमात्मा का साधर्म्य और वैधर्म्य इस प्रकार है—

साधर्म्य

परमात्मा निराकार है—जीवात्मा भी निराकार है
,, सत्चित्त है— ,, ,, सत्चित्त है
,, अनादि है— ,, ,, अनादि है
,, ज्ञानी है— ,, ,, ज्ञानी है
,, अमर है— ,, ,, अमर है

वैधर्म्य

परमात्मा सर्वज्ञ है—जीवात्मा अल्पज्ञ है
,, सेव्य है— ,, सेवक है
,, सर्वदेशी है— ,, एक देशी है
,, कर्मबन्ध से रहित है ,, कर्मबन्ध से युक्त है
,, निखिल भमण्डल में एक है प्रति शरीर में भिन्न है।

इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा में जीवात्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ। जीवात्मा भोक्ता है और ब्रह्म भोक्ता नहीं। जीवात्मा और परमात्मा में एक एक विचित्र आकर्षण शक्ति है। परमात्मा जीवात्मा पर दया करता है और जीवात्मा बिना परमात्मा के आनन्दित नहीं हो सकता है। अतएव जीवात्मा में आन्तरिक प्रवृति होती है कि वह परमात्मा की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित हो। इसकी प्रेरणा से जीवात्मा-परमात्मा की ओर दौड़ता है और इसी दौड़ में उसे हर्ष होता है। उपनिषद में कहा है—

"यो बै भूमा तत् नाल्पेसुखमस्ति।"
(छान्दोग्योपतिषद् ७।२३।१)

अर्थात् अनन्त में सुख है अल्प में सुख नहीं।

जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को वेदों में अनेक उपमाओं से प्रदर्शित किया गया है। यथा:—

"त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता।"
(ऋ० ८।७८।११)

हे परमात्मा! तुम ही हमारे पिता भी हो और माता भी।

"सनः पितेव सूनवे।" (ऋ० १।१।७)

वह हमारे लिए उसी प्रकार दयालु है जैसे पुत्र के लिए पिता।

"सनो बन्धुः।" (यजु० ३२।१०)
वह हमारा सम्बन्धी है।

"एक इत राजा।" (यजु० २३।३)
वही हमारा राजा है।
ये सभी उपमाएँ एकांगी हैं।

"तत्वमस्मांक तवस्मसि। (ऋ० ८।७२।३२)
तू हमारा है और हम तेरे हैं।

यह अन्तिम मंत्र जीवात्मा परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध की पराकाष्ठा है। यहाँ सभी उपमाएं समाप्त हो जाती हैं।

दर्शन विज्ञान का जीवन से सम्बन्ध

श्री वद्यनाथ जी शास्त्री, पोरबन्दर

हमारी उच्चस्तरीय एवं विश्वविद्यालयीय शिक्षा में दर्शन भी एक मुख्य स्थान रखता है। पाश्चात्य और पौरस्त्य भेद से इस विषय के दो भेद कर दिये जाते हैं परन्तु हैं दोनों ही उपादेय। जिस शाश्वत सत्य की खोज दर्शन का उद्देश्य है वह प्राच्य और प्रतीच्य के भेदभाव से रहित है। कभी शिक्षक और शिक्षार्थी इस विषय में यह धारणा बना लेते हैं कि इस दर्शन-विज्ञान का सम्बन्ध केवल मानसिक व्यायाम एवं दूसरे शब्दों में मनोविलासिता अथवा बुद्धि विलासिता है। लेकिन तथ्य की खोज की जावे तो पता चलेगा कि इस विषय का जीवन से गहरा सम्बन्ध है संसार के प्रत्येक क्षेत्र में वास्तविक रूप में दर्शन की आवश्यकता है। शिक्षा पर, व्यवहार पर, विज्ञान एवं धर्म पर-- सभी पर दर्शन का प्रभाव है। ब्रह्माण्ड और हमारी अपनी सत्ता एवं विश्वात्मा दार्शनिक विचारों के केन्द्र हैं।

कभी-कभी आज कल के दर्शन-विषयक विचारक अपनी दार्शनिक विचारधारा में उतरने से पूर्व यह धारणा बना लेते हैं कि दर्शन केवल भौतिक (Positivistic) और व्यवहारिक (Pragmatic) बिन्दुओं पर ही केन्द्रित है। कुछ लोग इन दृष्टियों पर चलते हुये प्रत्यक्ष-दृश्य जगत को केवल दुःखात्मक मानकर निराशावादी विचार (Pessimistic attitude) प्रदर्शित करते हैं। परन्तु ये सभी एकान्ततः सिद्धांतभूत विचार नहीं हैं। ये एकांगी कौर अर्धसत्य सच्चाई का रूप धारण कर लेते हैं जब तक इन में दर्शन के मूल तत्व आत्मसम्बंधी दृष्टिकोण को सम्मिलित नहीं कर लिया जाता। इस आत्मतत्व के सामाजिक पार्श्व को लेकर भी दो बाद खड़े कर लिये जाते हैं। ये दो विचारधारायें हैं—व्यक्तिवाद और समष्टिवाद या समूहवाद (Individualism and collectivism)। इस व्यक्तिवाद का अंतिम परिणाम जहां वेदान्त के रूप में पहुँचकर मानव के अस्तित्व को विश्वात्मा से मिला देता है और जगत को मिथ्या बताता है वहाँ समष्टिवाद, वर्गवाद और प्रकृतिवाद को ही मानव का चरमोद्देश्य घोषित करता है। वस्तुतः देखा जावे तो ये दोनों ही वाद एकांगी हैं। तथ्य दोनों के समन्वय की ओर संकेत करता है दोनों ही नदी के दो कूल के समान हैं। एक पर बल देना एक कूल की नदी स्वीकार करना है। समाज में और शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति और समष्टि दोनों के मूल्य को आंक कर बर्तना चाहिये।

एक फारसी के कवि की तुलना में ब्रह्माण्ड एक पुराना हस्तलेख है जिसका प्रथम और अन्तिम पृष्ठ गायब है। यह कहना कठिन है कि किस प्रकार से पुस्तक का प्रारंभ हुआ और न यही जाना जाता है कि किस प्रकार इसका अन्त हुआ। मानव की चेतना के उन्मेषकाल से मानवमस्तिष्क इन गायब हुए पृष्ठों के खोजने का प्रयत्न कर रहा है। उसकी इस खोज और इसके परिणाम का नाम ही दर्शन है। परन्तु जब हम संसार और जीवन की व्यापक दृष्टि से मीमांसा करते हैं तो पता चलता है कि जगत वस्तुतः ऐसा नहीं है। जीनन को शाश्वत और विश्व को पूर्ण की कृति एवं पूर्ण रचना समझने पर वह उस हस्तलेख के समान नहीं ठहरता जिसके दो पृष्ठ गायब हैं। यह जगत पूर्ण है, इसका कर्त्ता पूर्ण है और पूर्णता ही अन्त में भी रहती है—इस विचारधारा से पूर्वोक्त विचारधारा की तुलना का समन्वय भी नहीं बनता।

वास्तविक बात तो यह है कि मानव की खोज का उद्देश्य जीवन और सत्ता के तात्पर्य को खोलना एवं प्रकट करना है। वह किसी उल्टी-पुल्टी या गायब वस्तु को न मिलाता ही है और न इसकी शृंखला ही जोड़ता है। जीवन और सत्ता दोनों ही अपना शाश्वत अचल रखते हैं। इनके रहस्यों को उद्घाटित करने के लिये मानवी-चेतना प्रयत्नशील है, और रही रहेगी। क्योंकि मानवी चेतना के समक्ष ये दो विकट प्रश्न सदा रहे हैं

कि जीवन का अर्थ क्या है ? और उसको दिखाई पड़ने वाला विश्व क्या है ? इन दोनों प्रश्नों का समाधान ढूंढने में मानव-मस्तिष्क सदा व्यस्त रहा है। जहाँ उसने जीवन के अर्थ को खोलने में अपनी शाश्वत सत्ता को देखने का प्रयत्न किया है, वहां विश्व के रहस्य को खोलने में उसने विश्वम्भर को भी ढूँढने का उद्योग किया है। मानव की चेतना न जीवन सत्ता को बनाती है या परिवर्तित करती है, न विश्व को ही रचती है अथवा स्थानान्तरित करके देखती है और न विश्वम्भर का ही अपने प्रयत्न से निर्माण करती है। वह केवल इनकी खोज करती है। ये सत्तायें तो स्वयं अपने अस्तित्व के साथ हैं। मानवीय चेतना जहाँ अनादि शाश्वत है वहां विश्वात्मा भी अनादि शाश्वत ही है। इस विश्व म कुछ ऐसे शाश्वत आंतरिक नियम हैं कि जिनका सीधा सम्बन्ध इन सत्ताओं से किसी न किसी तरह अचल रूप में पाया जाता है। इन नियमों का अध्ययन इन सत्ताओं के रहस्य तक ले जाता है। ससार में जिसको सत्य' नाम दिया जाता है उसका अर्थ और स्वरूप इन तीनों शाश्वत सत्ताओं और शाश्वत नियमों की परिधि ही में घूमता है। यह महती परिधि पूर्ण है जिसकी ये विन्दुभूत सत्तायें विन्दुस्थानी हैं। इन विन्दुओं की बनी परिधि भी पूर्ण है और में बिन्दु तो पूर्ण हैं ही। वस्तुतः इस सत्य की खोज ही दर्शन है। यही कारण है कि दर्शन सदा सत्यभूत सत्ता की अथवा सत्ताओं की खोज में रहता है, जो दृश्य की सीमा से बाहर अथवा उनके अन्तः पट में कार्य कर रही है।

दर्शन का क्षेत्र विस्तृत होते हुए भी उसे स्थूलतया चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है। वर्तमान में वे चार विभाग—नीतिविज्ञान; मनोविज्ञान; तर्कविज्ञान और तत्वविज्ञान हैं। सौन्दर्यविज्ञान को कभी इनके अन्तर्गत और कभी पृथक भी मान लिया जाता है। इनमें से नीतिविज्ञान कर्तव्य की मीमांसा अथवा आचार एवं नैतिक व्यवहारों के विचार से सम्बन्ध रखता है। मानव की चेतना में ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा सन्निहित हैं। उस प्रयत्न में अथवा इच्छा की पूर्ति में जो प्रयत्न होता है उसे देखते हुए मानव के कर्म में किसके साथ "चाहिये" लगया जावे और किसके साथ "न चाहिये" लगाया जावे, तथा किसको "अच्छा" और किसको कहा जावे, क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है—इत्यादि बातों का विचार नीतिविज्ञान करता है। संसार में साधारणतया यही माना जाता है कि जो भला हो वह करना चाहिये, बुरा नहीं करना चाहिये। परन्तु भला क्या होता है ? इस पर यही साधारण धारणा है कि जो "अच्छा" हो। परन्तु दार्शनिक इस 'अच्छा' का भी तीन दृष्टियों से विचार करता है। उसके अच्छा में 'सत्यम्', 'शिवम्' और 'सुन्दरम्' का त्रिक सन्निविष्ट है। आँग्लभाषा में अच्छा' के लिये (Good) शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु इसमें भी Right, Pleasant और Beautiful तीनों ही अर्थ छिपे हैं। अच्छा वह है जो न्याय एवं उचित है। अच्छा वह है जो सुखावह और सुन्दर हो। परन्तु ये 'चाहिये', 'न चाहिये', 'अच्छा' और 'बुरा' इतने पेचीदे हैं कि विद्वान भी इसमें चक्कर में पड़ जाते हैं। एक विद्वान से विद्वान के सामने अनेक कार्यों की एक तालिका बना कर रख दी जावे कि वह इसमें प्रत्येक कार्य में उसके मूल्य के अनुसार चाहिये, न चाहिये अथवा अच्छा, बुरा लगा देवे तो उसके सामने भी एक विकट समस्या खड़ी हो जावेगी। ऐसी परिस्थिति में इसका विचार कर्ममीमांसा एवं नीतिविज्ञान से किया जाता है। परन्तु यह विचार मानव चेतना के द्वारा इच्छा पूर्वक किये कर्मों से ही सम्बन्ध रखता है। इस विज्ञान का सम्बन्ध सीधा मानव जीवन और मानव कर्म से है, क्योंकि पशुओं के कर्म और अनिच्छापूर्वक क्रियाओं का इसमें विचार नहीं किया जाता है।

मनोविज्ञान मन की क्रियाओं का विज्ञान है और इसमें सदा मन की विविध क्रियाओं पर विचार किया जाता है। मन किस प्रकार की क्रियायें किस समय करता है और उनका उद्गम कैसे होता है इत्यादि बातों का इसमें विवेचन होता है। इस विज्ञान में विशेषता मन की और Perception, Retention, Discernment, Comparison, Composition, Abstraction और Ideation आदि क्रियाओं पर विचार को केंद्रित किया जाता है। इनमें छठी और सातवीं क्रियाओं में मनुष्य को ही केवल अधिकार है, अन्य को नहीं।

तीसरा विभाग तर्क-विज्ञान का है। यह विचार के आवश्यक नियमों का विज्ञान है अथवा यों कहना चाहिये कि यह विशुद्ध विचारों का विज्ञान है। विचारों को परिमार्जित रूप में कैसे प्रकट किया जावे, यह इससे परिज्ञात होता है। इस विज्ञान के जानने से मानव अपने विचारों के प्रकटीकरण में गलती करने से बच सकता है और दूसरे के विचारों की गल्तियों को पकड़ सकता है। इसके नियम संशय, भ्रम और आभासजन्य त्रुटियों से बचाते हैं और विचार को सक्षिप्त एवं परिमार्जित करते हैं। सत्य के निर्णय पर पहुंचने में यह एक महान साधन है। विचार में सक्षेप इसका महान गुण है। बहस, वाद-विवाद में यह अत्यन्त सहायक है। यह विज्ञान मन की उन्हीं पूर्ण क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है जो विचार का रूप धारण कर चुकी है, अन्य का नहीं। क्योंकि यह विचारों के नियम से सम्बद्ध है मन की प्रत्येक क्रिया से नहीं।

चतुर्थ विभाग तत्वविज्ञान का है। इसको सत्ता का विज्ञान अथवा सत्तात्मक तत्वों का विज्ञान कहा जाता है। ज्ञान सम्बन्धी विचार इसके विषय नहीं। ये ज्ञानविज्ञान (Epistemology) के विषय हैं। उसका विषय केवल अस्तित्व एवं सत्ता है। उसे Ontology कहा जा सकता है। सत्ता का विचार करते समय सत्-असत्, भाव-अभाव, नित्य-अनित्य, आत्म-अनात्म और युष्मद्-अस्मद् पर ही केन्द्रित होना पड़ता है। सत्ता हो भी आत्म-अनात्म रूप में ही सकती है। जगत् का मूलकारण, उसका कर्त्ता तथा उसकी उत्पत्ति आदि का विचार हमें इस ज्ञान से ही मिलता है। साधारणतया लोग इस विज्ञान का अर्थ केवल आत्मविज्ञान ही समझते हैं। परन्तु वर्तमान में सत्ता सम्बन्धी सभी विषय चाहे वे आत्म हों या अनात्म इसकी सीमा में ही माने जाते हैं। ये विभाग बहुधा पाश्चात्य दर्शन के दृष्टिकोण से किये जाते हैं। पौरस्त्य दर्शन में ये सभी विभाग मिश्रित है।

सौन्दर्यविज्ञान को भी पर्याप्त महत्व दिया जाता है परन्तु वह बहुत सीमा तक अनुभूति से ही सम्बद्ध है और अनुभूति मनोविज्ञान आदि में समाविष्ट हो जाती है। ललित कलाओं का उदगम और तत्सम्बन्धी विचार इसके क्षेत्र में आते हैं। परन्तु यह सौन्दर्यानुभूति भी मानव को ही होती है। मानव चेतना बाहर के प्राकृतिक दृश्य को जिस रूप में देखती है, उसे अभिव्यक्त भी करना चाहती है। उसकी अनेक मनोवृत्तियों अभिव्यंजन भी एक वृत्ति है। यही कलाओं की सजनकर्त्री है। इस प्रकार दर्शन का विषय परम सत्य की खोज है। परम सत्य के खोजने में सदा ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना होता है तथा सबको सबसे ज्ञात सत्य अपना "स्व" अथवा "अहम्" है। इसके विषय में किसी कोई संदेह नहीं। सबके प्रत्येक अनुभव के साथ इसका अस्तित्व सिद्ध के रूप में लगा हुआ है। यह कोई नहीं कहता कि मैं नहीं हूं। दर्शन और विज्ञान आदि के क्षेत्र में किसी वस्तु का विचार उठाया जावे परन्तु यह "मैं" सब में लगा रहता है। अन्य वस्तुओं को प्रमाणों की जरूरत पड़ती है, इस स्वयं के लिये नहीं। क्योंकि समस्त प्रमाण व्यवहार से पूर्व ही इसका अस्तित्व सिद्ध है। इस "मैं" को भी हम "अहम्" और "माम्" में विभक्त कर देते हैं। शुद्ध अहम् में 'अस्मद' का भाव है क्योंकि वह सब्जेक्ट है। जब वह माम् के रूप में प्रयोग किया जाता है तब इसका अर्थ यह है कि हमारे विचारों का विषय यह हमारा "मैं" स्वयं बन जाता है। यद्यपि हम कर्त्ता (Subject) है परन्तु जब इस अपने "मैं" का हम विचार करते हैं तब यह "मै" माम् (Object) के रूप में आ जाता है। इस अवस्था में "माम्" के तीन भेद हो जाते है। वे हैं—भौतिक 'माम्' (Material me), सामाजिक 'माम्' (Social me) तथा आध्यात्मिक 'माम्' (Spiritual me)। इन में प्रथम में शरीर, वस्त्र आदि सम्मिलित हैं, और द्वितीय में पुत्र, कलत्र, मित्र आदि हैं। तीसरे आध्यात्मिक 'माम्' में हमारे ज्ञान संतति का समूह और मन की शक्तियां और वृत्तियां पायी जाती है। परन्तु अपना शुद्ध "मैं" इन अवस्थाओं से मीमांसा की दृष्टि से कहीं अधिक सूक्ष्म है। सोचने वाला ज्ञाता "मैं" है जो प्रत्येक ज्ञानधारा में अप्रतिहत है। यह विषयी है परन्तु जब 'माम्" के विचार की दृष्टि से सम्बन्ध होता है तब यह विषय बन जाता है। जो भी हो, यह "मै" एक शाश्वत ज्ञानमयी सत्ता है, इसमें सन्देह नहीं। यहां यह भी समझना चाहिये कि इस "मै" के विचार में मनोविज्ञान और अध्यात्मविज्ञान

दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है। इस आत्मा के द्वारा जब विश्व का निरीक्षण होता है तो इसका संसार से केवल ज्ञान का ही सम्बन्ध रहता है। परन्तु गभीर विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इसमें भी उसके स्पष्टतया भिन्न-भिन्न रूप हैं जिसमें वह अपने विषयों से सम्बद्ध है। उसकी यह वृत्ति ज्ञान, भोग और क्रिया तीनों से सम्बद्ध है। इस दृष्टि से उसकी विषयनिरीक्षण सम्बन्धी वृत्तियां, ज्ञानवृत्ति, भोगवृत्ति और क्रियावृत्ति भेद से तीन प्रकार की हो जाती हैं। वह केवल जगत के निरीक्षण में ज्ञान ही नहीं प्राप्त करता है बल्कि उससे प्रभावित भी होता है और उसमें उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देना चाहता है। इसी लिए आत्मा को ज्ञाता, भोक्ता और कर्त्ता कहा जाता है।

मनोविज्ञान, तर्कविज्ञान और तत्वविज्ञान तीनों से जब इस "मैं" का विचार किया जाता है तो पता चलता है कि यह वह शाश्वत तथ्य है जो सामाजिक प्राणी है, विचारवान है और शाश्वत नित्य है। यही अपने गुणों से समाज का निर्माण करता है, विचारों से अनेक विज्ञान का सर्जन करता है और अपने स्वरूप को सदा शाश्वत रूप में रखता है यह एक सत्य वस्तु हुई। इसके अतिरिक्त जगत का विचार करने पर उसमें जगत का उपादान कारण और उसका नियन्ता पृथक शाश्वत तथ्य के रूप में प्रतीत होते हैं। जगत के पीछे कारणरूप में ये तत्व अपना कार्य कर रहे हैं। इन कारणों के विचार से ही जगत की पहेली का समाधान होता है।

सुतराम फलित यह होता है कि दर्शन दृश्य के ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। "दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्" इस व्युत्पत्ति से भी यही भाव निकलता है। दर्शन केवल बौद्धिक सन्तोष एवं मनोविलास के लिये नहीं। इसके द्वारा जिन तथ्यों अथवा सत्यों की खोज होती है उनको जीवन में प्रमाणित और अनुभूत किया जाना चाहिये। अगर जीवन में इसका कोई तात्पर्य न हो तो दर्शन रहेगा ही किस काम का? वस्तुतः बात तो यह है कि समस्त दार्शनिक तत्व जीवन पर आजमाये जाने चाहिये। जीवन में उनका घटाना ही सार्थकता द्योतक है। दर्शन के भिन्न-भिन्न विभागों का सम्बन्ध ही जब मानवचेतना से है तो फिर दर्शन का जीवन से सम्बन्ध क्यों न हो? दर्शन का सम्बन्ध सदा विशुद्ध धर्मतत्व से रहा और धर्म मानव आत्मा का साथी है। दर्शन की खोज से प्राप्त तथ्य जब जीवन के माध्यम से प्रकट किये जाते हैं तब वही धर्म कहलाता है। जीवन की धारा शाश्वत है अतः उसको दार्शनिक सत्य का माध्यम बनाकर सतत चलाते रहना मानव का कर्त्तव्य है। समस्त ज्ञान, विज्ञान और दर्शन आदि इस चेतना के लिये हैं। यदि जीवन कोई वस्तु न हो तो फिर इनका भी कोई उपयोग नहीं। परन्तु जीवन शाश्वत तथ्य है, अतः इनकी भी सार्थकता है। जीवन-शक्ति में विविध बीजशक्ति निहित हैं। इनका विकास और परिमार्जन ही संस्कृति है। जीवन में होने वाले बीजशक्ति के विकास के—भाषा, कला, विज्ञान उद्योग, दर्शन, कृषि, धर्म, साहित्य और नीति विज्ञान आदि नवपरिणाम हैं। इन सब में दर्शन का एक प्रधान स्तर है। सभी में दार्शनिक विचारधारा की ओतप्रोतता है।

राष्ट्रिय नव वर्ष कामना

(राजकुमार रणंजयसिंह एम० एल० सी०, प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा उ० प्र०)

ईश दया आनन्द प्रदायक नया वर्ष हो,
पंचशील का सर्वोदय हित समुत्कर्ष हो।
प्राणि-मात्र में प्रेम भाव हो, विश्वशान्ति हो,
भारत उन्नति करे पूर्ण विधि, दिव्य कान्ति हो॥

* देव दयानन्द *

[—प्रिन्सिपल नित्यानन्द जी पटेल, एम० ए०]

उन्नत-भाल, वक्षस्थल विशाल,
प्रचंड-काय, विस्तृत भुजदंड !
तपः-पूत, वज्र–कठोर, ब्रह्मचर्य अखंड,
ओ ! दीप्तिमंत ब्रह्मतेज मूर्तिमंत !!

प्रखर–वाग्–वैदग्ध्य, प्रतिभा–विलक्षण,
व्यंग्य–विनोद–विशारद, बुद्धि–विचक्षण !
मनो मुग्धकर — सर्व—ग्रंथानुशीलन,
मेरु–महान्, स्नेह–संचित, संयम–धन !!

सागर सा गंभीर, गुण अनंत, हृदय विशाल,
कुसुम–कोमल, सत्य–समुज्वल, विजित–काल !
कर्म–गहन, फल–निरपेक्ष, साधना–निमग्न,
अचल हिमाचल सम उन्नत, सिद्धि महान् !!

युग–पुरुष, प्रेरणा–स्रोत, शून्य–अभिमान,
निर्भय–नितान्त, सेवा–निरत, तुल्य मानापमान !
साहस अपार, ओजस् अनंत, वीरत्व मूर्तिमन्त,
वासना–विमुक्त, प्रकाश–स्तम्भ, ज्योतिर्मन्त !!

नवयुग के ओ अमर प्रवर्तक !
मातृशक्ति के परमोद्धारक !!
आर्य–संस्कृति के दिव्य उपासक !
जय जय जय हे देव दयानन्द !!

वेदप्रकाश

का और एक विशेषांक

अगले महीने में प्रकाशित होगा ।

[प्रेस की कठिनाईयों के कारण देर हो रही है]

बृहदारण्यक उपनिषद् अन्य सब उपनिषदों से बड़ी है। इनमें कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से नहीं है और कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका विषय रूखा है जो कथा के रूप में पुनरुक्त भी हैं ऐसे रूखे प्रकरणों को छोड़ कर इस उपनिषद् में से १६ कथायें पुस्तक में दी गई हैं, जिनका आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है, और रोचक भी हैं।

बृहदारण्यक—उपनिषद—कथामाला

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज की उपरोक्त कथा जो कि उन्होंने ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में श्रोताओं के आगे कही जिसे सुनकर सब मुग्ध हो गए तथा स्वामी जी से उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना की।

बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी, जनक तथा गार्गी संवाद बड़े ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं अहं ब्रह्मास्मी इत्यादि अनेक विचार ग्रस्त स्थलों का भी यथार्थ समाधान किया हैं, अनेक अलंकारिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है जो अपने ढंग का नया ही दृष्टिकोण प्रतीत होगा। सर्वसाधारण सांसारिक जनों के लिये बहुत ही उपयोगी है, समाजों और सत्संगों में कथा करने योग्य कथायें हैं। बढ़िया कागज़, अच्छी छपाई तथा सुन्दर आवरण सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) मात्र। वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में तथा डाक रजिस्ट्री के ।।) मिलाकर शीघ्र २।।) भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली।

वेदप्रकाश

का और एक विशेषांक
अगले महीने में प्रकाशित होगा।

[प्रेस की कठिनाईयों के कारण देर हो रही है]

बृहदारण्यक उपनिषद् अन्य सब उपनिषदों से बड़ी है। इनमें कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से नहीं है और कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका विषय रूखा है जो कथा के रूप में पुनरुक्त भी हैं ऐसे रूखे प्रकरणों को छोड़ कर इस उपनिषद् में से १६ कथायें पुस्तक में दी गई हैं, जिनका आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है, और रोचक भी हैं।

बृहदारण्यक—उपनिषद—कथामाला

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज की उपरोक्त कथा जो कि उन्होंने ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में श्रोताओं के आगे कही जिसे सुनकर सब मुग्ध हो गए तथा स्वामी जी से उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना की।

बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी, जनक तथा गार्गी संवाद बड़े ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं अहं ब्रह्मास्मी इत्यादि अनेक विचार ग्रस्त स्थलों का भी यथार्थ समाधान किया हैं, अनेक अलंकारिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है जो अपने ढंग का नया ही दृष्टिकोण प्रतीत होगा। सर्वसाधारण सांसारिक जनों के लिये बहुत ही उपयोगी है, समाजों और सत्संगों में कथा करने योग्य कथायें हैं। बढ़िया कागज़, अच्छी छपाई तथा सुन्दर आवरण सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) मात्र। वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में तथा डाक रजिस्ट्री के ।।) मिलाकर शीघ्र २।।) भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली।

आर्य समाज विशुद्ध धार्मिक समाज है अथवा संप्रदाय

(ले०—"सत्यभूषण" वेदालंकार एम० ए० नई दिल्ली)

आधुनिक—युग के क्रान्तिकारी समाज-सुधारक, राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के अग्रदूत, वेदों के धुरन्धर विद्वान, आर्य-संस्कृति के पुनरुद्धारक स्व० महर्षि दयानन्द ने अपनी गुरु गवेषणा तथा दूरदर्शिता के परिणाम स्वरूप प्राचीन वैदिक सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देने के लिये सन् १८७५ ई० में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। तब से लेकर आज तक आर्यसमाज ने देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक अवस्था को उन्नत करने के लिये जो योग-दान दिया है, वह किसी से छिपा नहीं। स्व० पं० चमूपति जी ने इस विषय में स्पष्ट शब्दों में लिखा है—"आर्य समाज के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसिया जीव था। उसके मेरुदण्ड की हड्डी थी ही नहीं। चाहे कोई उसे गाली दे, हंसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे, या उसके धर्म पर कीचड़ उछाले, जिसे वह सदियों से मानता आ रहा है, फिर भी इन सारे अपमानों के सामने वह दांत निचोड़ कर रह जाता था।"

१९ वीं शदी के भारतीय धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज का आन्दोलन विशुद्ध धार्मिक तथा सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन था। इस आन्दोलन से देश की सुप्त चेतना प्रवुद्ध हुई, शताब्दियों की मोह-निन्द्रा का परित्याग कर देश जागृत चैतन्य और उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ। महर्षि दयानन्द ने स्वतत्रता, समानता, बन्धुत्व का शंख फूंक कर म्रियभाण आर्य-जाति की नसों में नव-रक्त का संचार किया। महर्षि द्वारा स्थापित आर्य समाज ने हिन्दू जाति को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को वैदिक धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों तथा आर्य-संस्कृति का जो स्वर्णिम पाठ पढ़ाया है रूढ़िवाद, अन्ध विश्वासों के गहन-अन्धकार को वेद-सूर्य की प्रखर किरणों से छिन्न-भिन्न करके ग्रस्त मानवता को जो संदेश प्रदान किया है, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि आर्य-समाज एक विशुद्ध धार्मिक समाज है, संप्रदाय नहीं। संसार में विविध सप्रदाय हैं और उनमें छोटी-छोटी बातों पर पारस्परिक वैमनस्य ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्भाव घर कर लेते हैं। जाति-भेद, संकीर्णता आदि दोष संप्रदायों की उपज हैं, परन्तु आर्य समाज न कोई सम्प्रदाय है, न मज़हब। यह तो विश्व भर के श्रेष्ठ, सदाचारी, कर्त्तव्य-परायण, बुद्धिमान, तपस्वी एवं परोपकारी मनुष्यों का एक संगठित समाज है। इसमें संप्रदायवाद की गन्ध ही नहीं। आर्य तो ईश्वर पुत्र है, "आर्य ईश्वरः पुत्रः" यह यास्काचार्य का कथन है। ईश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाला व्यक्ति ही आर्य है। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों का संगठन सप्रदाय नाम से सम्बोधित किया ही नहीं जा सकता। अतः वर्तमान-काल में भारत के कुछ विचारकों तथा राष्ट्रीय नेताओं की यह धारणा है कि "आर्य समाज एक सांप्रदायिक संस्था है" सर्वथा निराधार है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि हमारे देश के नैतिक एवं सामाजिक अधःपतन का कारण सामाजिक बुराइयां थीं। जाति-भेद छुआछूत, स्त्रियों की अशिक्षा, और आत्म-हीनता आदि महाभयंकर रोगों के घातक कीटाणुओं ने हिन्दू-जाति को इतना निर्बल कर दिया था, कि वह विदेशी सभ्यता के आक्रमण को किसी भी प्रकार सहन न कर सकती थी। उसी समय महर्षि दयानन्द ने समाज सुधार का बीड़ा उठाया, वेदों की ओर लौटो का उच्च घोष किया, बाल विवाह की कुप्रथा को समाप्त करने का उपक्रम विधवा-विवाह को मान्यता प्रदान की, अछूतों को हिन्दू-धर्म मे पुनः लाने का भगीरथ प्रयास प्रारम्भ किया, स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार प्रदान किया। क्या ये सब कार्य सांप्रदायिकता के द्योतक हैं।

इसके अतिरिक्त आर्यसमाज ने हिन्दू-जाति तथा हिन्दू-धर्म के संकटापन्न काल में जो अनुपम सेवाएं की हैं वे भी चिरस्मरणीय बनी रहेंगी।

भारत की पुण्यभूमि पर ईसाइयत के बढ़ते हुए प्रबल प्रवाह को रोकने का श्रेय सर्वाधिक आर्य समाज को ही

है। बेटीकान का पोप जो सम्पूर्ण भारत को ईसा के चरणों पर झुकाने का स्वप्न देख रहा था, आर्य समाज के व्यापक प्रचार तथा अकाट्य तर्कों के सम्मुख न ठहर सका, उसकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। चार सौ वर्ष तक अपार धन-राशि व्यय करने पर भी एक करोड़ हिन्दू-जनता ने ईसाइयत को स्वीकार नहीं किया। अब भी ईसाई मत के प्रचारार्थ प्रति वर्ष तीस करोड़ रुपये व्यय किये जा रहे हैं और बहुसंख्या में हिन्दू-जाति को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र किया जा रहा है, पर इसका मुकाबला आर्य समाज ही कर रहा है, जिससे स्वतत्र भारत में अपनी पूरी शक्ति लगा देने पर भी ईसाई मिश्नरियां इस देश के वासियों को ईसाई बना लेने के कार्य-क्रम में कृतकार्य नहीं हो पा रहीं।

सन् १९२१ में मालाबार में जो मोपला विद्रोह हुआ उसमें आर्य समाज ने ढाई हज़ार भ्रष्ट हिन्दुओं को पुनः शुद्ध किया, इसी प्रकार राजस्थान मलकाना राजपूतों की शुद्धि का श्रेय भी आर्य समाज को है।

भारतवर्ष पर जब भी दुर्भिक्ष, महामारी, भूकम्प आदि के भीषण संकट आये हैं, आर्य समाज ने उन सब में अन्य संस्थाओं से बढ़ कर कर कार्य किया है। इससे भी विदित होता है कि आर्य समाज एक संप्रदाय न होकर विशुद्ध धार्मिक संस्था है। मानवता की भावना से प्रेरित परोपकार के महान् कार्य में ऊँच नीच, जाति-भेद आदि संकीर्ण भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। आर्य समाज ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को कार्यान्वित कर दिखाया है। सन् १८९६-९७ ई० में सारे देश में जो दुर्भिक्ष पड़ा और बंगाल मध्यप्रान्त तथा राजपूताने में जिसने अतीव उग्र रूप धारण कर लिया, उसने लाखों मनुष्यों को भूख से मरते हुए बचा कर आर्य समाज के प्रतिष्ठित नेता ला० लाजपतराय ने दिन रात एक करके सहस्रों हिन्दू भाइयों को भूख व दरिद्रता के कारणों से विधर्मी होने से बचाया। मेरठ, पंजाब व अन्य प्रांतों में स्थान-स्थान पर अनाथालय खोले, राजपूताने के रेगिस्तानों में घूम-घूम कर ईसाई धर्म दीक्षित बालकों को ढूंढ-ढूंढ कर पुनः हिन्दू धर्म में परिवर्तित किया। १९०५ में जब पंजाब में विशेष रूप से कांगड़ा में भयंकर भूकम्प होने के कारण सहस्रों मनुष्य अनाथ हो गये, बेघरबार होकर भटकने लगे, तब लाला जी ने लाहौर आर्य समाज की ओर से एक समिति बना कर कांगड़ा में पहुँच कर असहाय लोगों की अमूल्य सेवा की। इसी प्रकार १९०७-८ में जब दुर्भिक्ष का प्रकोप उड़ीसा, मध्य भारत और युक्त प्रान्त पर पड़ा, लाला जी ने दिन रात घूम घूमकर चन्दा एकत्रित करके अकाल पीड़ित लोगों की अनथक सेवा की। यही नहीं १९१३ ई० में जब द० अफ्रिका में गांधी जी ने प्रवासी भारतीयों की हित रक्षा के लिये सत्याग्रह आन्दोसन का सूत्रपात किया, तो लाला जी ने श्रीयुत गोखले को उनके पंजाब पधारने पर बीस हजार रुपयों के स्थान पर चालीस हजार रुपये प्रदान किये। सारांश यह कि जब भी हिन्दू धर्म व जाति पर संकट आये, आर्य समाज ने सब संस्थाओं से आगे बढ़कर कार्य किया।

अज्ञान अन्याय और अभाव को भूतल से सर्वथा मिटा कर सबका कल्याण करना ही आर्य समाज का चरम लक्ष्य है। आर्य समाज का छटा नियम इसी की घोषणा करता है। "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

अभी कुछ मास पूर्व पंजाब की पुण्य भूमि पर हिन्दी भाषा के साथ अन्याय किया गया। इस भीषण अन्याय को आर्य समाज न सह सका। लाखों की संख्या में लोग जेल गये। निर्मम अत्याचारों को सहा, पर सत्य पर दृढ़ रहे।

आज हमें आर्य समाज की इन अमूल्य सेवाओं का स्मरण कर आत्म निरीक्षण कर वेदों का प्रचार एवं आर्य संस्कृति का प्रसार करने के लिये आगे बढ़ना चाहिये। "कृण्वन्तो विश्व मार्यम्" के वैदिक सन्देश को पूर्ण करने के लिये तन मन धन से प्रत्येक आर्य को जुट जाना चाहिये। भगवान करे कि महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदीप्त यह अमर ज्योति जलती रहे, सर्वत्र प्रकाश देती रहें।

"उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत॥"

* * *

धर्म नगरी] (सत्य के अर्थों का प्रकाश)

(श्री महाशय मदनजित जी आर्य वैदिक धर्म विशारद)

कुछ समय की बात है कि एक जिज्ञासु के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यहां से कुछ दूर पूर्व दिशा में एक धर्म नगरी जो है और जहां का राजा भी धर्म देव जी महाराज हैं उनका दर्शन किया जावे। एतदर्थ यात्रा का आवश्यक सामान लेकर वह चल पड़ा, मार्ग की कठिनाइयां उसको विचलित न कर सकी और अब उसकी मंजिल निकटतर आ गई। दूर से ही क्या देखता है एक बड़ा ही सुन्दर आकर्षक बोर्ड लगा हुआ है जिस पर स्थूलाक्षरों में 'धर्म नगरी' लिखा है। यात्री के मन में उल्लास भर गया और वह हर्षित होकर शीघ्र २ पग भरने लगा। निकट. जाकर ज्ञात हुआ कि इस नगरी के बाहर की सड़कें जब इतनी सुन्दर, साफ सुथरी और दोनों ओर मुष्पों की लम्बी २ कतारों से सुशोभित है तो भीतर क्या क्या आनन्द होगा, सुरभि सुगन्ध युक्त वायु ने उसका स्वागत किया तो क्या देखता है कि एक और सुन्दर आर्य संस्कृति के चिन्हों से विभूषित नवयुवक अपने दोनों हाथों में सामान पकड़े हुए अति प्रसन्नता से आ रहा है। यात्री ने युवक से प्रश्न किया कि क्या महाराज आप इसी नगरी के वासी है उत्तर में 'हां जी' सुनाई दिया। यात्री ने पुनः प्रश्न किया कि मैं ने इस धर्म नगरी की बडी ही ख्याति सुनी है तो क्या आप मुझे इस नगरी में भ्रमण करा सकोगे नवयुवक बोला, चूंकि मैं दूर देश से अभी २ स्वगृह को आ रहा हूं इस नगरी के १४ सुन्दर भव्य भवन तथा भाग हैं मैं ने तो चौथे मौहल्ले के भीतर चले जाना है अतः यदि आप चाहें तो मेरे साथ चार भागों की सैर कर लेवें यात्री 'तथाअस्तु' कहकर उनके संग हो लिया। सब से प्रथम जो दरवाजा दृष्टि गोचर हुआ वह 'ओ३म् द्वार" था कितनी सुन्दरता से चित्रों से वह द्वार सुसज्जित था। अनेक प्रकार की कारीगरी से यह सुशोभित हो रहा था। बड़े सुन्दर स्थूल अक्षरों में ओ३म् का चित्र का एक ओर ब्रह्मा दूसरी ओर विष्णु तीसरी ओर शिव चित्रित था। द्वारों के दायें बायें परमात्मा इन्द्र, वरुण, यम, नारायण, कुबेर, गणेश इत्यादि शतश, प्रभु के अंकित क्षेत्र प्रत्येक द्वार का भाग अति आकर्षित सुन्दर दृश्यों के चित्रों से विभूषित था यात्री चकित होकर पूछने लगा कि हे नवयुवक जी महाराज। इसके भीतर रहने वाले व्यक्तियों के विषय में भी कुछ परिचय मिल जावे तो अति कृपा होगी। नवयुवक ने मुस्कराते हुए कहा कि हमारे धर्म देव जी महाराज ने सब से प्रथम इस द्वार को इसलिये रखा है कि प्रत्येक कार्य प्रभु के शुभ नाम से ही आरम्भ किये जाते हैं। अतः इस मौहल्ला के भीतर रहने वाले व्यक्ति भी प्रायः सब सन्त महात्मा ईश्वर भगत योगी लोग ही हैं। जो दिन रात प्रभु नाम स्मरण के अतिरिक्त कुछ कार्य नहीं करते। राजा जी की ओर से इनको सब कुछ मिलता रहता है। यात्री ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज यहां मूर्ति किस की है नवयुवक यह सुनकर हंस पड़ा और कहा कि यात्री तुम बड़े ही भोले हो। अरे भाई जब मैंने कह ही दिया कि यह सब ईश्वर भजन करते रहते हैं तो ईश्वर जब निराकार है तो मूर्ति उसकी कौन बना सकता है। मूर्ति तो साकार पदार्थ की बन सकती है हां वैसे तो हम सब संसार के चेतन जीव और यह नाना प्रकार की वनस्पतियां प्रभु की साक्षात मूर्तियां हैं यह प्रभु के बनाये हुए पहाड़, नदी, जंगल इत्यादि उसका दिग दर्शन करा रही है। यात्री इस उत्तर से अति प्रसन्न होकर कहने लगेगा कि इस द्वार को देखकर मुझे अति प्रसन्नता हुई है अब चलो दूसरे द्वार की ओर चलें। थोड़ी दूर ही चलने पर दूसरे द्वार पर जब दृष्टि डाली तो वहां पर 'मातृमान पितृमान आचार्यमान द्वार' बड़े स्थूल अक्षरों में अंकित था। यात्री ने प्रश्न किया कि महाराज इस द्वार के भीतर

क्या है और यह वाहर के चिन्ह क्या २ निर्देश कर रहे हैं। नवयुवक ने अति गम्भीरता से कहा कि मित्रवर जब शिशु उत्पन्न होता है तो उसका सब से प्रथम गुरु माता ही होती है यदि माता सुशिक्षित होगी तो बालक के ऊपर भी अच्छे संस्कार पड़ेंगे और वह बालक सभ्य बनेगा। आदर्श माता की सन्तान भी आदर्श ही होगी इसलियें इस द्वार के भीतर मातृ शिक्षा केन्द्र है जहां पर योग्य माताओं को शिक्षा दी जाती है। उसके उपरान्त पिता का स्थान आता है। यदि पिता जी सुशिक्षित हो और बालक की माता को सहायता देने वाला हो तो वह सन्तान बड़ी ही भाग्यवान समझी जानी चाहिये। तदुपरान्त आचार्य गुरु का दर्जा आता है योग्य गुरु से ही सन्तान योग्य वन सकती है। धन्य है वह बालक जिनकी योग्य माता पिता तथा गुरु मिल गये हैं। यह बालक के तीनों गुरु यदि अपना यह कर्तव्य समझ लें कि हमने बालकों को एक आदर्श नागरिक बनाना है तो निःसंदेह वह बालक सुशिक्षित विद्वान तथा धार्मिक बनेगा। हमारे महाराज जी ने इस पर बड़ा ही प्रयत्न करके ऐंसी व्यवस्था कर दी है कि प्रत्येक माता पिता तथा गुरु अपना अपना कर्तव्य समझते हुए कार्य करें जिससे धर्म राज्य की स्थापना हो सके। चलो अब तीसरे द्वार पर भी आप को ले चलें क्योंकि मुझे शीघ्र ही अपने घर पहुंचना है।

तीसरे द्वार पर पहुंच कर यात्री चकित हो जाता है लिखा था 'शिक्षा द्वार' हैरान होकर पूछ ही बैठता है कि इसका क्या तात्पर्य है। नवयुवक ने कहा कि तनिक अच्छी प्रकार से द्वार पर अंकित तथा चित्रित लेखों की ओर देखो। यात्री पुनः ध्यान से देखता है तो सबसे प्रथम ऊपर चार वेद, अर्थात ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा चार महर्षि अग्नि, वायु आदित्य अंगिरा के चित्र देखता है। कौतूहल वश द्वार के दूसरी ओर भी जब दृष्टि डालता है तो वहाँ चार उपवेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्व वेद तथा अर्थवेद लिखे हुए पाता है दूसरी ओर शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त, पूर्व मीमांसा उत्तर मीमांसा का उल्लेख भी मिलता है। युवक पूछता पूछता है कि महाराज इस द्वार के भीतर क्या कार्य हो रहे हैं तो वह कहता है कि हमारे महाराज ने यह पाठशाला, गुरुकुल, कन्या पाठशाला इत्यादि शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये हैं यहां पर महाराज के आदेशानुसार बिना शुल्क प्रत्येक नर नारि की उच्च से उच्च शिक्षा देने का प्रबन्ध है। अच्छा जी तो यह ऊपर जो वेद शास्त्रों के नाम लिखे हैं क्या मनुष्य मात्र को इनके पढ़ने का अधिकार है। स्त्रियां और शूद्रों को तो हमारे यहां नहीं पढ़ाया जाता युवक ने अति गम्भीरता से कहा कि आपके यहां अन्याय हो रहा है हमारे महाराज जी तो न्याय के अवतार हैं भला तुम सोचो कि यदि स्त्रियों को न पढ़ाया गया तो यह मातायें श्रेष्ठ संतान कैसे उत्पन्न करेंगी। यात्री बोला युवक जी मेरा तात्पर्य यह नहीं कि इनको बिलकुल न पढ़ाया जावे और वेदों को छोड़कर अन्य शिक्षा रामायण महाभारत गीता आदि तक ही पढ़ाया जावे। युवक ने कहा भाई यह भी एक प्रकार का अन्याय ही है। यदि देवियों को वेद न पढ़ाया गया तो यह संध्या हवन यज्ञादि कैसे कर लेंगी जब तक इनका वेद मंत्रों का पठन पाठन न होगा। गृहस्थियों के यज्ञ बिना स्त्री के कैसे पूर्ण होंगे। और स्त्रियों को ही पढ़ाने के लिये अध्यापिकायें भी कहां से आवेंगी। वेद तो प्रभु का ज्ञान है चूंकि प्रभु पक्षपाती नहीं है अतः उसके ज्ञान का अधिकार भी मनुष्य मात्र को है। जब तक वेद के ज्ञान धान सार घर घर में न होगी संसार के अन्दर शान्ति नहीं हो सकेगी। देखो सामने ही कितना सुन्दर वेद का मंत्र अंकित किया गया है।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातु रिह भूयासमयं मेकामः संमृध्यतामुप मादो नमतु॥ यजु २६।२॥

अब आपको अच्छी प्रकार से ज्ञात हो गया होगा कि हमारे महाराज जी कितने दूर दर्शी तथा न्यायशील हैं। आवो हम अगले द्वार पर चले यह चौथा "गृहस्थ द्वार" हैं। मेरा गृह उसी द्वार के सामने वाले मौहल्ले में चौथा 'शान्ति सदन' के नाम से है यदि आपकी इच्छा हो तो कृपया मेरे यहां ही अतिथि होकर रहो। मैं परदेश से आज ही आया हूं अतः यदि मेरे गृह पर दो चार दिन आप निवास करें तो मैं समय निकालकर शेष द्वारों का भी भ्रमण करा दूंगा और अपने इस मौहल्लों का साक्षात् चित्र आप के सन्मुख आ जावेगा यात्री ने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर उसके पीछे २ चलना आरम्भ कर दिया।

वहां जाकर क्या देखा यह आगामी मास के वेद प्रकाश की प्रतीक्षा में रहें। ओ३म

बाल संसार

नीबू निचोड़

किसी सराय में एक नीबू निचोड़ रहता था काम उसका इतना ही था कि हाथ में एक नीबू और छुरी लिये फिरता । जहां किसी मुसाफिर को खिचड़ी या दाल रोटी थाली में परोसे देखता तुरत अपना नीबू लिये उसके पास पहुंच जाता और कहता 'बिना नीबू के खिचड़ी का क्या मजा है, और बिना नीबू के दाल तो खाई ही कैसे जा सकती है ? यह कह कर झट उसकी खिचड़ी या दाल में अपना नीबू निचोड़ देता । मुसाफिर को मजबूर होकर कहना पड़ता "अच्छा तो फिर कुछ आप भी नोश फरमाइए (खाइए) ।

वह कहता "मुझे भूख तो नहीं थी, लेकिन आपका कहना टाल भी कैसे सकता हूं ? में खाऊंगा तो थोड़ा ही, लेकिन आपका जी चाहे जितना दे दीजिये । बेचारा मुसाफिर मुसीबत में आधे से कुछ जादा ही देकर पूछता 'और ?" तो नीबू निचोड़ कहता मुझे तो आपको खुश रखना है । मेरी क्या है, थोड़ा जादा कम भी खा सकता हूं ।" धीरे २ इस नीबू निचोड़ को सब जान गये और लोग इसे दूर से देखते बोल उठते वह देखो नीबू निचोड़ आया । और उसे अपनी दाल या खिचड़ी में नीबू डालने से रोक देते । लेकिन दिन भर में एकाध नया मुसाफिर धोखे में आ ही जाता और नीबू निचोड़, अपना काम बना लेता, किसी ने कहा है :—

"दिखावें परमारथ सिद्ध करें स्वारथ ।
ऐसे ये नीबू निचोड़ हैं ।

हंसिये

एक लड़का जिसके कि बायां हाथ नहीं था वह दांये तरफ चल रहा था ।

सिपाही ने कहा—ओ लड़के ! बांये हाथ की तरफ क्यों नहीं चलता ।

लड़का—तुमको दिखता नहीं है मेरे बांया हाथ ही नहीं है ।

— — — —

मास्टर—(लड़के से) आज तुम स्कूल देरी से क्यों आए ?

लड़का—मास्टर जी आपने ही तो बताया था कि गरमी से धातुएँ फैल जाती है । इसी कारण सड़क फैल गई, और मुझे स्कूल आने में देरी हो गई ।

अनमोल बोल

धूल से नीच कौन होगा ? मगर वह भी तिरस्कार सहन नहीं करती, लात मारे तो सिर पर चढ़ती है ।

'रामायण'

ईश्वर आपदाओं का भला करे, क्योंकि इन्हीं के द्वारा हमने अपने शत्रुओं और मित्रों को परख लिया है ।

'अज्ञात'

उल्लू को दिन को नहीं दीखता—कौए को रात को नहीं दीखता । मगर कामान्ध अजीब अन्धा है जिसे न दिन को सूझता है न रात को । 'अज्ञात'

सिर्फ आदमी ही रोता हुआ जन्मता है, शिकायतें करता हुआ जीता है और निराश मरता है ।

'सर वाल्टर टैम्पिल'

अज्ञान मन की रात है, लेकिन ऐसी रात जिस में न चांद है न तारे ।

'कन्फ्यूशियस'

अज्ञान ईश्वर का शाप है, ज्ञान वह पंख है जिससे हम स्वर्ग को उड़ते हैं ।

'शेक्सपियर'

मेरे पास वह दीपक है जो मुझे मार्ग दिखाता है और वह है मेरा अनुभव ।

'मैट्रिक हैनरी'

अपमान भरी जिन्दगी से मौत अच्छी ।

'अज्ञात'

शिक्षित मनुष्य के लक्षण

(श्री अम्बिका प्रसाद "दिव्य")

मैंने कई वर्ष पूर्व अमेरिका के एक सुप्रसिद्ध विद्वान श्री एडवर्ड विग्गम की एक पुस्तक पढ़ी थी। उसका नाम था "The Marks Of An Educated Man" अर्थात् "शिक्षित मनुष्य के लक्षण"। इस पुस्तक ने मुझे बहुत प्रभावित किया था और मैंने उसके कुछ नोट्स अपने पथ-प्रपर्शन के लिये लिख छोड़े थे। उन्हें यहाँ आज दे रहा हूं।

श्री विग्गम महोदय लिखते हैं कि पूर्ण शिक्षित होना असम्भव है लेकिन शिक्षित होने के लिये प्रयत्न करना ही शिक्षा है, और पूर्ण शिक्षित होने के इतने समीप है जितना मनुष्य हो सकता है।

दुनिया के सौन्दर्य तथा आश्चर्य को समझना और इस आश्चर्य तथा सौन्दर्य को अपने व्यक्तित्व की वृद्धि विकास तथा उत्साह से और अधिक सम्पन्न बनाने के लिये जो आन्तरिक प्रेरणा होती है उसी को मनुष्य ने चमत्कार पूर्ण नाम "शिक्षा" दे रखा है।

शिक्षा सारे जीवन के लिये है और काम जीवन का एक अंग मात्र है।

जीवन एक मात्र काम ही नहीं, वरन् खेलना-कूदना हँसना रोना, मान-अपमान सहना, सुख-दुख भोगना सभी जीवन है।

काम और शिक्षा जीवन के लिये बनाये गये हैं न कि जीवन काम और शिक्षा के लिये।

शिक्षित व्यक्ति प्रत्येक प्रश्न पर जब तक कि सारा प्रमाण नहीं आ जाता, अपना मस्तिष्क खुला रखता है।

अंकिल नोआ कहा करते थे:—

"मनुष्य क्या जानता है और कितना जानता है कोई महत्व की बात नहीं, महत्व की बात तो, जो एक शिक्षित व्यक्ति को अशिक्षित व्यक्ति से प्रथक करती है वह है कि जो कुछ वह जानता है उसने कैसे सीखा।"

यह बात सही है कि जो कुछ स्कूलों और कालेजों में सिखाया जाता है उसमें से आधा बिल्कुल बेकार होता है और आधे में से आधा प्रायः मनुष्य भूल जाता है। तिसपर भी यदि वह सीखने की सही आदत प्राप्त कर लेता है तो बहुत है।

विज्ञान में अभी तक जो उन्नति हुई है वह मस्तिष्क की आकस्मिक योग्यता का परिणाम नहीं है वरन आदतों के ही परिवर्तन का परिणाम है, जिससे सारा विज्ञान सम्भव हुआ है। उनमें भी केवल एक ही आदत का। वह आदत है—प्रमाण पर ही किसी बात का निर्णय करना।

हमारे सामने जीवन के तीन महान् दृष्टिकोण हैं:—

१. ग्रीक लोगों ने सत्य और सौन्दर्य पर जोर दिया है।

२. रोमन लोगों ने शारीकिर शक्ति और उपयोगिता को ही अधिक श्रेष्ठ माना है।

३. क्रिश्चियन लोगों ने प्रेम को श्रेष्ठतम स्वीकार किया है।

लेकिन जो मनुष्य पूर्णरूप से शिक्षित होना चाहता है उसे इन तीनों का अपने अन्दर समावेश करना होगा।

मनुष्य जो कुछ सोचता है वही उसके विषय में सब से अधिक महत्व की चीज है। मनुष्य प्रायः धर्म, राजनीति मृत्यु, कर, स्त्री, धन, विवाह तथा अन्य ऐसी ही चीजों के विषय में सोचता है।

जिन्होंने अपने मस्तिष्क को बन्द कर रखा है वे सभ्यता के विकास के लिये अशिक्षित तथा अज्ञानियों से भी अधिक खतरनाक हैं।

यदि तुम शिक्षित बनना चाहते हो तो अपने से तीन प्रश्न पूछो:—

(१) क्या तुम वास्तव में राजनीति, रोजगार, विज्ञान,

धर्म, नैतिकता, तथा जीवन के विषय में सत्य बात जानना चाहते हो या उनके विषय में तुम्हारे पहले ही से जो विचार बने हुए हैं उनको ही सत्य सिद्ध करना चाहते हो ?

(२) क्या तुम नया सत्य सामने आते ही अपने सारे जीवन के अन्धविश्वास, ऐतिहासिक रूढ़ियाँ व परम्परायें तथा सामाजिक रीति-रिवाज सभी को त्यागने को तैयार हो ?

(३) क्या तुमने कभी बिना किसी मानसिक रुकावट के अपने मस्तिष्क व हृदय को, अपनी प्रिय धारणाओं को तर्क की कसौटी पर कसने में लगाया है ?

वह विद्या, विद्या नहीं जो मनुष्य को एक नई दुनियाँ रहने को न दे ।

अच्छा मनुष्य वह है जो यह चिन्ता न करके कि मैं इस समय कहां हूं, उत्तरोत्तर अच्छे बनने की चेष्टा करता है । बुरा मनुष्य वह है जो यह चिन्ता न करके कि इस समय मैं कितना अच्छा हूं उत्तरोत्तर बुरा बनता जाता है ।

शिक्षा के चार बड़े लक्ष्य हैं—पद, शक्ति, शान्ति तथा स्वतंत्रता ।

पागलपन हमारा दिन का वह स्वप्न है जिसे हमने कभी तर्क की कसौटी पर नहीं कसा । इस परिभाषा से हम सब थोड़े या अधिक पागल हैं । हम बहुत से ऐसे पागलपन के काम कर डालते हैं जिनकी कभी पूर्व तार्किक परीक्षा नहीं की ।

मनुष्य के जीवन में वह सब से बड़ा दिन होगा जब वह यह सीख लेगा कि सोचना किस समय न चाहिये ।

शिक्षित मनुष्य नये विचारों पर कभी हँसता नहीं ।

मस्तिष्क में तथ्यों का संग्रह ही शिक्षा नहीं । मानसिक आचरण के उस विकास को शिक्षा कहते हैं जो मनुष्य को भौतिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये समर्थ बनाता है । शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो जीवन की उपस्थित की हुई समस्यायों को हल करने के योग्य बनावे । समस्यायें भी इस प्रकार हल हों जिससे व्यक्ति तथा समाज दोनों को लाभ हो ।

शिक्षित मनुष्य जानता है कि दूसरे मनुष्य के साथ कैसे निर्वाह करना चाहिये । यदि तुम दूसरे मनुष्य के साथ आनन्द-पुर्वक नहीं चल सकते तो तुम्हारे सारे सार्टीफिकेट और डिग्रीयाँ किस काम की हैं । मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध ही सब कुछ है ।

दूसरों के साथ चलने के कुछ नियम भी हैं । मनुष्य के स्वभाव के विषय में भविष्य वाणी भी की जा सकती है । यदि तुम एक मनुष्य को झूठा कहो, दूसरे को विद्वान, तीसरे को सज्जन तो तुम देख लोगे कि तुमको क्या उत्तर मिलता है । सोलोमन ने कहा है:—

"विनम्र उत्तर क्रोध को शान्त कर देता ।

ठीक-ठीक देखो, तुम्हारे व्यवहार से दूसरों में क्या प्रतिक्रिया होती है । मनुष्य को कष्ट अधिकतर इसी कारण से घेरे रहते हैं कि वह यह नहीं देख सकता कि वह जो काम करता है उससे दूसरे अप्रसन्न होते हैं । दूसरे की बात का जान-बूझ कर अधिक सम्मान करो और उसे महत्व दो । अपनी बात को अधिक मत बढ़ाओ । तुम वास्तव में जो हो वही अपने को प्रदर्शित करो । नाटकीय चरित्र करना ठीक नहीं । झूठा रूप बनाने में लाभ नहीं । मिथ्याभिमान तथा अपने को अतिशय महत्व देना भय के ही रूप हैं । यदि तुम वास्तव में जो कुछ हो नहीं, वह बनने का प्रयत्न करते हो या अपने को अनुचित महत्व देते हो तो तुम्हारी दूसरे लोगों से नहीं पट सकती । यदि तुम्हारे मन में पुराना बैर-भाव भरा है तो भी दूसरों से नहीं पट सकती । पुराने बैर भाव से बचने का एक अच्छा उपाय यह है कि जो कुछ तुमने कहा हो और जो कुछ तुम्हारे विपक्षी ने कहा हो उसे साफ साफ लिख डालो और फिर निष्पक्ष भाव से उसकी परीक्षा करो ।

यदि तुम किसी न की आदत में हस्तक्षेप करते हो तो तुम उसे अप्रसन्न कर लोगे । मनुष्य की आदत के अनुकूल काम करो, न कि उसके विपरीत ।

प्रतिभा सम्पन्न लोगों को अपने से मन्द लोगों के प्रति सहिष्णु होना चाहिये । मन्द लोगों को तेज चलाना मूर्खता है. इससे वे दुखी और अप्रसन्न हो जाते हैं । दूसरे लोगों से तुम्हें अपनी निष्पक्ष तुलना करना सीखना चाहिये । दूसरे लोगों से पटाने के लिये एक विशेष उपाय

यह है कि अपनी योग्यता तथा अपनी असमर्थता का ठीक ठीक ज्ञान रखो। यदि तुम दूसरे में सच्ची सहानुभूति रखते हो तो अधिक मित्र बना सकोगे अपेक्षा इसके कि लोग तुम में सहानुभूति रखें।

इन सारी नसीहतों को एक चतुरता के नाम से अभिव्यक्त किया जा सकता है। तुम सारे विश्व को ही क्यों न मस्तिष्क में भरे हो परन्तु तुम्हें 'टैक्ट' नहीं आ सकता। बहुत से अनपढ़ ग्रामीण लोगों में भी 'टैक्ट' मिलता है।

टैक्ट का एक छोटा सा उदाहरण है :—

एक छोटी आठ वर्ष की लड़की को चुम्बन लिवाना पसन्द नहीं था। परन्तु एक बार उसकी बुढ़िया दादी ने उसका चुम्बन ले लिया। लड़की बुरी तरह से अपना गाल मलने लगी। बुढ़िया बोली—"क्या तुझे मेरा चुम्बन लेना अच्छा नहीं लगा, गाल क्यों मल रही है ?" लड़की ने उत्तर दिया—"मैं चुम्बन को मल कर शरीर के अन्दर कर लेना चाहती हूँ ताकि आँधी-पानी से बचा रहे।"

अधिकांश मनुष्य अपना जीवन प्रायः अच्छे-अच्छे प्रस्ताव बनाने तथा अच्छे-अच्छे स्वप्न देखने में ही व्यतीत कर देते हैं। उन्हें पूरा करने के लिये कुछ नहीं करते। वे अपने जीवन को प्रायः इन्जिन के समान भाप उगलते ही व्यतीत कर देते हैं।

मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बनता है।

तुम उसी विचार का अनुकरण करते हो जो तुम्हारे मष्तिस्क में सबसे प्रमुख है। हर एक विचार जो तुम्हारे मस्तिष्क में उठता है कार्य रूप में परिणत होने की प्रवृत्ति रखता है।

चरित्र क्या है ?

जो तुम अवकाश के समय करते हो वही तुम्हारा चरित्र है। कभी-कभी हमें दुर्भाग्य की भी आवश्यकता पड़ती है जिससे वह हमारे जीवन में नई आशाओं की विद्युत संचारित कर दे, नये स्वप्न हमारे सामने प्रकट कर दें, हम में नई लालच पैदा कर दे जो हमारी अकर्मण्य नैतिक शक्तियों के भंडार को खोल देती है।

दुनिया में नैतिक शक्ति ही सब से बड़ी शक्ति है।

प्रचलित लोक-विश्वास प्रायः असत्य होते हैं। हम बहुत से सार्वभौम विश्वासों की परीक्षा करके देख सकते हैं।

अतः शिक्षित पुरुष के लिये विवेचना प्रमुख कर्तव्य है तथा अन्ध-विश्वास अक्षम्य पाप है।

जन-समूह दुनिया में कभी कोई अच्छा काम अपने आप नहीं करता। उसे आप चाहें तो सर्व-संहार के लिए भी ले जा सकते हैं। और मन्दिरों में प्रार्थना के लिए भी। किसी चीज को अविश्वसनीय बनाना ही एक उपाय है जिससे बहुत से लोग उसमें विश्वास करने लगते हैं। मनुष्य जिस चीज के रहस्य को समझ नहीं सकते उसमें विश्वास करने लगते हैं। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य किसी चीज के गूढ़-तत्व को समझ सकता है।

शिक्षित व्यक्ति अपने को किसी महान् ध्येय से एकाकार कर लेता है।

अंग्रेज राजनीतिज्ञ श्री ब्राइट ने कहा है :—

"तुम अपने को किसी महान ध्येय से एकाकार कर लो। सम्भव है तुम उस ध्येय को कोई विशेष लाभ न पहुँचा सको लेकिन वह ध्येय तुम्हें बहुत लाभ पहुँचा देगा।"

शिक्षित मनुष्य अपनी महत्वाकांक्षा के अनुरूप अपना एक चित्र बना लेता है।

तुम जीवन में क्या होना, क्या करना चाहते हो इसी को मैं तुम्हारा वाँछित-चित्र कहता हूँ ! इस चित्र को बनाने के पूर्व तीन बातें करनी चाहिये।

१—पहले तुम्हें अपनी योग्यता की सम्यक् परीक्षा कर लेनी चाहिये।

२—दूसरे, जिस व्यवसाय को तुम करना चाहते हो उसके प्रति अपनी रुचि और अरुचि की भी परीक्षा कर लेनी चाहिये।

३—तीसरे, जिस व्यवसाय के प्रति तुम्हारा झुकाव हो उसका भी सावधानी के साथ अध्ययन कर लेना चाहिये।

किन्हीं अच्छे विचारों को कार्यान्वित न करना अथवा

किसी संकल्प को यों ही निकल जाने देना उतना ही बुरा है जितना एक अवसर खो देना। ऐसा करने से हम दूसरे अवसर के लिये भी असक्त हो जाते हैं। कठिनाई तो यह है कि हम सब के आंखें हैं जो देखते नहीं और कान हैं जो सुनते नहीं। इसका कारण यह है कि हमने अपनी आंखों और कानों को उन चीजों को देखने-सुनने के लिए अभ्यस्त ही नहीं किया जो स्थायी आनन्द और सन्तोष लाती हैं।

एक बार एक अमेरिकन पूजींपति पैरिस के महान कला-भवन में घूम चुकने पर अपनी पत्नी से बोला—"अच्छा अमन्दा, मेरा ख्याल है कि यहाँ हमारे देखने के के लिए अधिक कुछ नहीं।" यह सुनकर गैलरी के नौकर ने व्ययपूर्वक कहा—"महाशय जी ! इन चित्रों की परीक्षा नहीं, परीक्षा आपकी है।"

मनुष्य उसी चीज को पसन्द करता है जो वह समझ सकता है। लोक-प्रियता गुणों की प्रमाण नहीं। आनन्द को खो देना सब कुछ खो देना है।

शिक्षित व्यक्ति समयानुसार काम में व्यस्त रहता है ताकि वह प्रसन्न रह सके, उपयोगी बन सके।

ईश्वर हर एक मनुष्य को समान बनाने में असफल हुआ है; यह स्कूलों का काम है कि उन्हें समान बनावे। हर एक विद्यार्थी को काम में व्यस्त रखना चाहिये ताकि वह प्रसन्न हो सके, उपयोगी और अच्छा बन सके।

शिक्षित व्यक्ति जानता है कि कुछ सीखने के लिये देर किसी प्रकार की बाधा नहीं।

मनोविज्ञान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि बचपन शिक्षा के लिये सर्वोत्तम समय नहीं जैसा कि प्रायः माना जाता है ! सीखने के लिये सब से अच्छा समय वही है जब तुम सीखना चाहते हो चाहे तुम ७ वर्ष के हो, चाहे १७ या ४७ के। लोग प्रायः पश्चात्ताप करते मिलते हैं कि वे अपने बचपन में कुछ न सीख सके। यह फिर भी कुछ न सीखने के लिये बहाना मात्र है। प्रौढ़ता को प्राप्त हुए पुरुष भी जो चाहें सीख सकते हैं। सीखने के लिये आयु बाधक नहीं है। मन कभी बुड्ढा नहीं होता। जीवन सीखने का ही पर्याय है। जिस दिन हम कुछ सीखना बन्द करते हैं उसी दिन हमारी मृत्यु हो जाती है।

शिक्षित पुरुष अपना विश्वास उस पुरुष में कभी नहीं खोता जो वह आगे बनेगा।

वह प्रश्न जिस पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है, यह है—तुम अपने किस चित्र के प्रति सच्चे होने जा रहे हो।" जो मनुष्य हर एक के लिये हर एक चीज बनना चाहता है वह अन्त में किसी के लिये कुछ नहीं बन पाता। शेक्सपियर ने कहा है:—

"स्वयं अपने प्रति सच्चे बनो और फिर जैसा रात के बाद दिन आना निश्चय है तुम भी किसी के प्रति झूट न हो सकोगे।"

शिक्षित पुरुष का सब से श्रेष्ठ लक्षण यह है कि वह अपने लिये ऐसा आदर्श चित्र चुन लेता है जो स्वस्थ, पवित्र, शक्तिशाली, परिश्रम, सहिष्णु है तथा जिसका मस्तिष्क खुला है।

शिक्षित पुरुष को उस पुरुष में श्रद्धा रखनी चाहिये जो वह होना चाहता है।

मिस्टर स्मेडले एक करोड़पति था। पहले उसे कला साहित्य से प्रेम था परन्तु उसके करोड़पति होते ही वह कला प्रेम नष्ट हो गया। वह रात दिन लेन-देन में लगा रहता था। एक दिन एक अतिथि उसके घर आया। उसने कला और साहित्य पर बात छेड़ी। स्मेडले उससे बहुत प्रभावित हुआ। जब वह जाने लगा, स्मेडले ने पूछा "तुम कौन हो ?" उसने उत्तर दिया—"मैं वही हूँ जो तुम बने होते।" ऐसा कह कर वह चला गया।

यदि शिक्षा का कुछ भी लक्ष्य है तो आत्मा का समृद्ध और सजीव बनाना है।

शिक्षित पुरुष उन गुणों को प्राप्त करता है जो उसे संसार का नागरिक बनाते हैं। वे गुण निम्नलिखत हैं:--

(१) उसे दुनिया के इतिहास का साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

(२) उसे मानवी विचारों का इतिहास जानना चाहिये।

(३) विज्ञान के किसी विषय का ज्ञान उसके लिये आवश्यक है।

(४) उसे कोई एक भाषा अवश्य जाननी चाहिये। अपनी भाषा श्रेयस्कर है।

कोई चीज जो काम नहीं लाई जाती वह शिक्षाप्रद नहीं होती।

जीवन के ६ मुख्य लक्षण हैं जो युवकों को अवश्य जाना चाहियें—

(१) जीवन कर्म चाहता है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो काम में लाई जा सके।

(२) जीवन शक्ति चाहता है। शिक्षा को सजीव, क्रियाशील तथा शक्ति-प्रद होना चाहिये।

(३) जीवन आनन्द चाहता है। मनुष्य को खेल तथा काम दोनों के लिये शिक्षित होना चाहिये।

(४) जीवन सहयोग चाहता है। शिक्षा से मनुष्य को यह सिखाया जाना चाहिये कि उसका समाज में क्या स्थान है और उसके प्रति उसका क्या कर्तव्य है।

(५) जीवन मित्रता चाहता है। शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य को हर एक जाति के हर एक धर्म के तथा हर एक रंग के मनुष्यों से मित्रता करना सिखाये।

(६) जीवन आदर्शवादी है। शिक्षा ऐसी हो जिससे मनुष्य अपनी जीविका कमा सके क्योंकि उसे जीवित रहना है और अपने आदर्शों को भी पा सके क्योंकि उसे अपना जीवन बनाना है।

शिक्षित व्यक्ति सौन्दर्य के प्रति अपना प्रेम बढ़ता है।

सौन्दर्य हमें साहस देता है। ऐसे बहुत ही कम पुरुष हैं जो वास्तव में प्राकृतिक दृश्यों को समझते हैं। सौन्दर्य अन्दर से आविर्भुत होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सौन्दर्य की दुनिया का पृथक ही निर्माण करता है। सौन्दर्य हर जगह और हर समय है। सौन्दर्य को समझना स्वयं एक सिद्धि है। कलाकार के लिये सब दिन सुन्दर होते हैं। मृत्यु में भी पारलौकिक सौन्दर्य है।

यदि तुम जीवन में संगीत और काव्य बोओगे तो तुम्हें संगीत और काव्य ही बदले में सौ गुना होकर मिलेगा।

शिक्षित पुरुष एक महान् धार्मिक जीवन व्यतीत करता है।

धर्म सार्वभौम सत्ता से भावनाओं का आनन्दमय संगठन है।

इस प्रकार एडवर्ड विग्गम ने शिक्षित मनुष्यों में उपर्युक्त लक्षणों की आवश्यक स्थिति स्वीकार की है। प्रत्येक अध्यापक तथा विद्यार्थी का कर्तव्य है कि इन्हीं लक्षणों की नींव पर अपने जीवन का निर्माण करें।

साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल।
भारत को दे गया है जो नेता जवाहर लाल।

(लेखक—नन्दलाल आर्य मिशनरी)

१

इस देश का बटवारा इसी ने ही कराया,
कश्मीर के अब्दुला को था यार बनाया,
अमरीका से मिल कर जो चल रहा गहरी चाल।

२

गोवा में थे जिस वक्त बलिदान हो रहे,
बच्चे जवान वृद्ध थे कुर्बान हो रहे।
ऐसे समय में नेहरू ने हथियार दिये डाल।

३

रिश्वत ब्लैक दिन ब दिन है बढ़ती जा रही,
फिरका परस्ती सारे ही भारत में छा रही।
पंजाब के हिन्दू का कर दिया है बुरा हाल।

४

प्राचीन सभ्यता का है ये नाश कर रहा,
वेदों व हवन यज्ञ का उपहास कर रहा,
इसकी जबान रोक सके किसकी है मजाल।

५

अफसोस गौओं पर भी अभी चल रही कटार,
अंडे व मांस मछली का है कर रहा प्रचार,
सहशिक्षा कोड बिल बनाके कर दिया निहाल।

६

नेहरू जी तारासिंहियों को सिर चढ़ाते हैं।
गुरु द्वारों में जो बैठ स्कीमें बनाते हैं,
ईटें जो फेंकते हैं कहके सत श्री अकाल।

७

ईसाई लाखों हिन्दुओं को जो बना रहे।
भारत में पाकिस्तान के नारे लगा रहे।
ऐसे गद्दारों की करे ये खूब देख भाल,

८

बापू ये तेरे नाम की देता दुहाई है।
मुंह पर अहिंसा दिल से ये कायर का भाई है।
मानो न मानो ठीक ही कहता है नन्दलाल।

हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता

(पं० प्रकाशवीर शास्त्री के विचार)

जिन सच्चर और पैप्सू फार्मूलों का हिन्दू लोग सात साल से विरोध करते रहे उन्हें ही क्षेत्रीय फार्मूले के ढांचे में बिठा कर भारतीय लोकसभा और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए दि. ३-४-५६ को संसद की मेज पर रखा गया था। प्रस्तावित क्षेत्रीय फार्मूले को वह ९ और १० धारायें यह थीं—

धारा नं० ९—वर्तमान पंजाब राज्य के क्षेत्र में सच्चर फार्मूला व्यवहार में आता रहेगा और पैप्सू राज्य के वर्तमान क्षेत्र में वर्तमान व्यवस्था तब तक लागू रहेगी जब तक कि उसके स्थान पर कोई दूसरी व्यवस्था लागू नहीं की जाती, तथा बाद में वह पारस्परिक समझौते से बदली नहीं जाती।

धारा नं० १०—प्रत्येक क्षेत्र की जिला स्तर और उससे नीचे की सरकारी भाषा क्षेत्रीय भाषा होगी

लोकसभा में पं० ठाकुरदास भार्गव और श्री बहादुर सिंह जी आदि सदस्यों ने स्पष्ट भाषा में इन धाराओं को अहितकर कहा। बाद में संविधान में धारा ३७१ बढ़ाकर यह प्रारूप राष्ट्रपति को भेज दिया गया। वह जो उचित समझें व्यवस्था दें। संविधान की वह धारा ३७१ इस प्रकार है—

भा० सं० धारा ३७१—इस संविधान में निहित किसी व्यवस्था के होते हुए भी राष्ट्रपति अपने आदेश से आन्ध्रप्रदेश वा पंजाब राज्य के लिए विधानसभा की क्षेत्रीय कमेटियों के संगठन और कार्यक्रम की, गवर्नमेंट की कार्य-व्यवस्था के नियमों में सुधारों की, राज्य की, विधानसभा की कार्य-प्रणाली की और क्षेत्रीय कमेटियों के सम्यक संचालन के लिये गवर्नर की विषेश उत्तरदायिता की व्यवस्था कर सकते हैं।

आर्यसमाज का सत्याग्रह ठीक ऐसे समय में छिड़ा जब पंजाब का यह क्षेत्रीय फार्मूला राष्ट्रपति के सामने विचाराधीन स्थिति में था। माननीय राष्ट्रपति ने गंभीरता पूर्वक सारी स्थिति को सुना और देखा।

राष्ट्रपति की स्वीकृति

सत्याग्रह अपने पूरे वेग से चल ही रहा था। इसी बीच राष्ट्रपति ने चार नवम्बर १९५७ को भारत सरकार के एक असाधारण गजट द्वारा क्षेत्रीय फार्मूले पर स्वीकृति दे दी। पर उसकी मूल प्रति अभी उपलब्ध भी न हो पायी थी कि इतने में ९ नवम्बर को चंडीगढ़ की एक सार्वजनिक सभा में पं० नेहरू ने घोषणा की हिन्दी सत्याग्रह की ९० प्रतिशत बात तो अब हम मान ही चुके हैं, दस प्रतिशत रह जाती है वह आपसी बातचीत से हल करली जायेगी। सत्याग्रह के संचालक श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने जब सम्बन्धित अधिकारियों से उन ९० और १० की व्याख्या पूछी तो उस ९० में राष्ट्रपति के आदेश से जारी किया वह नया क्षेत्रीय फार्मूला था जिसमें से भाषा सम्बन्धी वह १० और ९ धारायें बिलकुल निकाल दी गई थीं। इस नये फार्मूले सच्चर और पैप्सू दोनों फार्मूलों की वैधानिक स्थिति समाप्त हो गई है आज जो क्षेत्रीय फार्मूला पंजाब में चालू है उसमें वह दोनों धारायें नहीं है। सत्याग्रहियों की साधना सफल हुई। परन्तु वह शेष १० भी कुछ कम महत्व नहीं रखती थीं जिन्हें आपसी बातचीत से हल करना था। परन्तु गृहमन्त्री श्री पन्त जी के ३ मार्च को लोकसभा में दिये वक्तव्य से कुछ भ्रम फैलने लगा तो फिर यह कुछ तथ्य सामने आने आवश्यक ही हो गये।

सार्वदेशिक भाषा स्वतन्त्र्य समिति के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री घनश्यास सिंह जी गुप्त जब गृह मन्त्री पन्तजी से उनके वक्तव्य के बाद मिले तो फिर उन्होंने कहा शासन स्वीकृति फार्मूले से पीछे नहीं हटेगा आप निश्चिन्त रहें। इसी आधार पर श्री गुप्त जी ने आर्यजनों को उद्विग्न न होने का परामर्श दिया है।

मैं आर्य समाजी कैसे बना

[स्वर्गीय श्री महात्मा हंसराज जी]

अपने ग्राम में मैंने केवल एक बार किसी वृद्ध व्यक्ति से सुना था कि लाहौर में एक साधु आया हुआ है, जो ईसाइयों से वेतन पाता है तथा हिन्दू धर्म के विरुद्ध उपदेश करता है। उस समय मुझे यह ज्ञात नहीं था कि यह ऋषि दयानन्द है तथा उनका उपदेश क्या है। मेरी आयु उस समय छोटी थी और न ही विद्या की योग्यता थी। जब मैं सन १८७९ में लाहौर आया तो मेरे बड़े भाई ने जो उस समय डाकघर में कार्य करते थे, मुझे राजकीय विद्यालय में प्रविष्ट करा दिया। उस समय विद्यालय का भवन नहीं था। राजा ध्यानसिंह की हवेली में विद्यालय की श्रेणियां लगा करती थी। सरदार हरिसिंह जो बाद में निरीक्षक (Inspector) होकर विख्यात हुए, मिडल स्कूल के हैडमास्टर थे। मैं कुछ मास उनकी छत्र छाया में विद्या अध्ययन करता रहा। फिर बीमार होने के कारण मैंने राजकीय विद्यालय छोड़ दिया। स्वस्थ होने पर भाई साहब ने मुझे यूकलड की शिक्षा स्वयं दी। और फिर रंग महल में मिशन स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। मैं वहां पढ़ता रहा। बाबू काली प्रसन चटरजी जो बाद में आर्य समाज के उत्तम सेवक बने, हमारे साथ स्कूल में पढ़ते थे। वह अपनी विनोद प्रियता से हमको हंसाते रहते थे। एक बार उन्होंने उस समय की एक पुस्तक 'रसूमें दिन्द' के कुछ वाक्य पढ़ कर बताया कि इसमें हिन्दुओं की कितनी निन्दा की गई है। इस किताब में हिन्दुओं के जो चरित्र दिये गये हैं वे गंवारों और चोरों के हैं। मुसलमानों के चरित्र सज्जन और धनिकों के हैं।

मैंने होशियारपुर स्कूल में संस्कृत अन्य भाषा के रूप में ली। मैं फारसी भी पढ़ता रहा। मिशन कूल में मैं संस्कृत और फारसी दोनों का अध्ययन करता रहा। हमारे विद्यालय के मुख्याध्यापक पं० तेजभान थे। वे कहा करते थे कि एक बार उनका स्वामी दयानन्द के साथ वार्तालाप हुआ था। वह वार्तालाप में असफल इसलिए हुआ कि स्वामी दयानन्द ने कई भूत प्रेतों को सिद्ध किया हुआ था और उनकी शक्ति के कारण विरोधियों को वश में कर लेते थे। मैंने उस समय तक न आर्य समाज का मन्दिर देखा था और न ही स्वामी जी की कोई पुस्तक पढ़ी थी। आर्य समाज में उपदेश देने वाले भी बहुत कम थे इसलिये मैंने किसी आर्य समाजी का व्याख्यान भी नहीं सुना था।

उस समय मिशन स्कूल में दो मास्टर प्रसिद्ध थे पादरी फोरमैन साहब तो स्कूल के प्रिंसिपल थे। विद्यालय के हाल में सब विद्यार्थियों और अध्यापकों को एकत्रित करके नमाज पढ़ाते और अञ्जील की किसी आयत की व्याख्या करते। विद्यार्थियों के साथ उनका विशेष सम्बन्ध नहीं था। स्कूल के हैडमास्टर श्रीरामचन्द्र दास बड़े योग्य, लड़कों से प्रेम करने वाले, देश प्रेमी तथा उदार हृदय इसाई थे। सेकिण्ड मास्टर श्री बोस अपने विषय में कोई विशेष योग्यता नहीं रखते थे परन्तु मिशन स्कूल के लिए धन एकत्रित करने में बड़े निपुण थे। लड़के उनसे विनोद भी कर लेते थे। इसका कारण यह था कि अवकाश देना और शुल्क तथा जुर्माना प्राप्त करना उन का कार्य था। छुट्टी देते समय वे देख लिया करते थे कि उस दिन कोई हिन्दुओं का त्योंहार है अथवा नहीं। उदाहरणतः श्राद्धों के दिनों में जो विद्यार्थी छुट्टी लेता उससे वह दो पैसे प्रतिदिन उगा लिया करते थे। कभी-कभी झगड़ा भी हो जाता। परन्तु अध्यापक महोदय स्कूल की आर्थिक दशा का बहुत ध्यान रखते थे। मेरे सम्बन्ध में उनका यह विचार था कि मैं योग्य विद्यार्थी हूँ परन्तु साथ ही कुछ चञ्चल भी हूँ, क्योंकि मैं कह दिया करता था कि जिन त्योहारों में सम्मलित होना इसाई

पादरी ठीक नहीं समझते, उन में सम्मलित होने का टैक्स लेते हैं। टैक्स लेना उचित नहीं।

एक दिन हमारी दसवीं श्रेणी हैडमास्टर महोदय के पास अंग्रेजी की पुस्तक जिस का नाम सीनियर रीडर (Senior Reader) था, पढ़ रही थी। अध्यापक महोदय जानते थे कि मैंने हजरत ईसा के जीवन चरित्र की पुस्तक, जो हमारा कोर्स था अच्छी प्रकार पढ़ा हुआ है। अतः इस पुस्तक में से मुझ से बहुधा प्रश्न किया करते थे। मैं उनका सन्तोषपूर्ण उत्तर दे देता था और वे मुझ से प्रसन्न थे। सीनियर रीडर में प्रथम पाठ यह था कि संसार को बने हुए छः ठजार वर्ष व्यतीत हुए हैं। जो मनुष्य आरम्भ में हुए उनका अनुभव वर्तमान मनुष्यों की अपेक्षा बहुत कम था और इसलिये उनकी योग्यता और विद्या वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत कम थी।

हैडमास्टर महोदय ने मुझ से पूछा कि हंसराज ! क्या यह सच है ? मैंने बचपन की चञ्चलता में अध्यापक महोदय पर एक उल्टा प्रश्न कर दिया। मैंने पूछा कि क्या पिता का अनुभव अधिक होता है या पुत्र का ? इसका उत्तर अध्यापक महोदय क्या दे सकते थे। यह तो नहीं कह सकते थे कि पिता का अनुभव कम होता है। वे कुछ तंग से हो गये। उन्होंने कहा—'प्रचीन हिन्दुओं को ईश्वर का ज्ञान नहीं था, वे अग्नि, वायु, जल और सूर्य आदि की पूजा किया करते थे।" मैंने कहा—"श्रीमान् ! यह बात ठीक नहीं।" 'कसिस हिन्द' में मैंने पढ़ा हुआ था कि हिन्दुओं को ईश्वर का ज्ञान था। वे उस परमेश्वर को मानते थे जिसके पांव नहीं परन्तु प्रत्येक स्थान पर पहुँचता है। उसके हाथ नहीं परन्तु सब कुछ ग्रहण करता है, इत्यादि। मैंने सब कुछ सुना दिया। इसका उत्तर क्या बन सकता था। परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि अग्नि वायु की पूजा के सम्बन्ध में ठीक विचार क्या है। मैंने यूँही यह सनातनी उत्तर दे दिया कि प्राचीन आर्य लोग इन भूतों के द्वारा परमेश्वर की पूजा किया करते थे न कि भूतों की। हैडमास्टर महोदय संस्कृत से अनभिज्ञ थे वे क्या कह सकते थे। अन्त में उन्होंने कहा कि देखो इस रीडर में यह लिखा है और इसलिए यह सत्य है, यह उनकी युक्ति थी। मैंने तुरन्त कह दिया कि रीडर बनाने वाले की मूर्खता है जो उसने ऐसा लिख दिया। इस पर उन्होंने मुझे तीन चार बेंत लगाये और कक्षा से बाहर कर दिया। मैं बाहर निकल आया और अगले दिन सैकिण्ड मास्टर साहब के पास गया और कहा कि हैडमास्टर महोदय के पास शिफ़ारश करके मुझे कक्षा में सम्मलित होने की आज्ञा ले दें। वे बंगाली तो थे ही। उर्दू अच्छी प्रकार नहीं बोल सकते थे, कहा, "हंसराज ! मैं तो पहले ही ससझता था कि तुम चञ्चल हो, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था, मैं प्रयत्न करूँगा।" दो तीन दिन में मुझे कक्षा में बैठने की आज्ञा मिल गई और मैंने भी अपने हृदय में यह ठान लिया कि मैं श्रेणी में ईसाई मत के विरुद्ध कुछ नहीं कहूँगा। वास्तविकता यह थी कि मैं अपनी कक्षा में एक योग्य छात्र था और हैडमास्टर भी मुझसे प्रेम करते थे। यदि मैं भूल नहीं करता, तो उस साल मिशन स्कूल में १७ छात्रों में से केवल मैं ही मैट्रिक में उत्तीर्ण हुआ।

श्री रामचन्द्र दास का प्रेम मेरे साथ बहुत था। उनके देश प्रेम की बातों को हम बहुत पसन्द करते थे। यद्यपि वे इसाई थे फिर भी मेरे हृदय में उनका बड़ा आदर था। यह जानते हुए भी कि मैं आर्य समाजी हूँ और इसाई मत की शिक्षा को अशुद्ध समझता हूँ, वे बहुत बार यह कहा करते थे कि मुझे अपने विद्यार्थी हंसराज पर बड़ा गर्व है। मैं भी जब कभी उनसे मिलता था तो उनके घुटनों पर हाथ लगा कर उनको नमस्ते कहता था। एक बार मैंने उनकी सेवा में मिठाई अर्पित की और उन्होंने उसे स्वीकार कर मुझे सम्मानित किया।

प्रधानाध्यापक महोदय के साथ मेरा जो विवाद हुआ था उससे मेरे हृदय पर विशेष प्रभाव पड़ा और मुझे यह जानने की इच्छा हुई कि क्या हमारे पूर्वज प्रकृति के उपासक थे। अथवा केवल ईश्वर को ही मानते और पूजते थे। अतः मैंने इधर उधर पूछ कर आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में जाना आरम्भ कर दिया। मैं आर्य समाज के उपदेशों को सुनता और पत्रों को पढ़ता। लाहौर समाज के प्रधान स्वर्गीय ला० साइदास जी की दृष्टि नये व्यक्तियों पर जो समाज में आवें बड़ी जल्दी

पड़ती थी। उन्होंने मुझे बुलाया और आज्ञा दी कि मैं सन्ध्या याद कर लूँ। उन्होंने विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाने के लिये यह सूचना भी दे दी कि जो विद्यार्थी उनको सन्ध्या कण्ठस्थ सुना देगा उस को वे परितोषक देंगे। मैंने संध्या उन्हें सुना दी और उनसे दो रुपया पारितोषिक के रूप में प्राप्त कर लिया। मैं समाज के साप्ताहिक सत्संगों से कभी अनुपस्थित नहीं होता। यद्यपि समाज में उपदेश पं० अखिलानन्द जी के और पं० मूलराज जी के हुआ करते थे और उनका भाषण देने का ढंग इस इस प्रकार था कि प्रथम का तो वाक्य कभी समाप्त ही नहीं होता था और दूसरे महोदय की एक मन्त्र की व्याख्या दूसरे मन्त्र की व्याख्या से कदापि भिन्न न होती थी। इनके पश्चात भाई दत्तसिंह जी और जौहरसिंह जी के लैक्चर सिख इतिहास और ईसाई मत का खण्डन बड़े आनन्द से सुनते थे। उससमय ये दोनों महोदय आर्य समाज के सदस्य और लैक्चरार थे और आर्य समाज में उनका अच्छा मान था। बाद में विशेष कारणों से वे आर्य समाज के कट्टर विरोधी बन गये।

मुझे साप्ताहिक सत्संग में सम्मलित होने की इतनी लग्न थी कि मैं समाज के सत्संगों से अपने मैट्रिक की परीक्षा के दिनों में भी अनुपस्थित नहीं रहा।

(अनुवादक जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक)

मुरारी ब्रदर्स कमला नगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में

टिप्पणियों के संवन्ध में जो एक पृष्ठ छापकर विद्वानों को अवलोकनार्थ तथा समत्यर्थ भेजे गये थे उनमें से अनेक विद्वानों ने प्रसन्नता प्रकाशित की है, दो विद्वानों की सम्मति निम्न प्रकार है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० वैदिक अनुसन्धान कर्ता देहली

"सत्यार्थ प्रकाश के नये संस्करण का आपका भेजा नमूना ध्यान पूर्वक देखा है। निस्सन्देह ठाकुर अमरसिंह जी की टिप्पणियां अत्यन्त उपादेय होंगी। १०) रु० पर ऐसी सुन्दर संस्करण का सुलभ होना बहुत प्रशंसनीय है। प्रूफ में यदि आपने पूरी सावधानी वर्ती, जिसकी मुझे पूर्ण आशा है, तो यह संस्करण भारी त्रुटि को पूर्ण करेगा। स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द जी के संस्करण के पश्चात् यह अधिक उपयोगी बन जायगा।"

श्री पं० शिवपजन सिंह कुशवाह कानपुर

विद्यावाचस्पति, साहित्यालंकार, बी० ए० आदि अनेक उपाधियों से विभूषित

"सत्यार्थ प्रकाश के टिप्पणियों सहित संस्करण का नमूना देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। माननीय ठा० अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केसरी मेरे परम मित्र हैं आप आर्य जगत में एक उच्च कोटि के सैद्धान्तिक विद्वान हैं। आपकी टिप्पणियां अत्यन्त ऊहापोह से लिखी हुई हैं। शास्त्रार्थ करने वालों तथा समस्त आर्यों के लिए यह संस्करण परम उपयोगी होगा ऐसी आशा है।"

सूचना—टिप्पणियों में चार सम्मुलास तक की टिप्पणियां लिखी जा चुकी हैं और शीघ्रता के के साथ लिखी जा रहीं हैं।

प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट

प्रत्येक का मूल्य -) सैकड़ा ४)

१ मनुष्य बन—ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती ।
२ गायत्री माता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
४ आस्तिक नास्तिक संवाद—महर्षि दयानन्द ।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द ।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी ।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
८ कल्याणी बन - पं० गणेशदत्त 'इन्द्र' ।
९ आर्यों का आदि देश—काशी नाथ जी शास्त्री ।
१० धर्म और अधर्म पं० रामचन्द्र देहलवी ।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी ।
१३ पं० लेखराम—रामगोपाल जी विद्यालंकार ।
१४ सीता माता—सरस्वती देवी 'प्रभाकर' ।
१५ गो माता—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न
१७ चोटी का महत्व—पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस ।
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम—प्रहलाद 'प्रभाकर' ।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य ।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द ।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य प्रियव्रत ।
२४ आर्य समाज के उद्देश्य—जगदीशचन्द्र ।
२५ वेदमाता ।
२६ श्रद्धामाता ।
२७ धरती माता ।
२६ धर्म की रक्षा करो—ब्र० प्रभुदत्त जी ।
२९ मनुष्य के कर्तव्य—म० नारायण स्वामी ।
३० सत्संग भजन ।
३१ ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व ।
३२ गोपाल दयानन्द ।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा ।
३४ वैदिक भक्तिवाद ।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि ।
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द ।
३७ आर्य समाज की उन्नति का साधन' श्री लालचन्द जी
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द ।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक—शिव पूजन सिंह ।
४० पतिव्रत धर्म—एक विदूषी महिला ।
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा—राजेन्द्र जी ।
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द—भगवत शरण बी. ए. ।
४३ ईश्वरावतार—स्वामी नित्यानन्द जी ।
४४ कर्मयोगी श्री कृष्ण—प्रेमचन्द ।
४५ ईसाइयों का भयंकर षड़यन्त्र ।
४६ सामाजिक व्यवहार—श्री लालचन्द जी ।
४७ शिक्षा का उद्देश्य—श्री पूर्णचन्द जी ।
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी ।
४९ वर्ण व्यवस्था—स्वामी दर्शनानन्द ।
५०-कर्मव्यवस्था " "
५१ वेदज्ञान—विष्णु दयाल जी ।
५२ तुलसी रामायण और आर्य समाज ।
५३ सत्य की खोज—काशीनाथ शास्त्री ।
५४ मुर्दा क्यों जलावें—प्रेम शरण जी ।
५५ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य—स्वामी दर्शनानन्द ।
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य— "
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध—पं० राजेन्द्र जी ।
५८ श्रेय और प्रेय—प्रि. नित्यानन्द जी एम. ए. ।
५९ सच्ची पूजा—स्वामी सर्वदानन्द जी ।
६० झांसी वाली रानी ।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त-रविवर्मा सि. शास्त्री ।
६२ जीवन की समस्यायें—पं० रामचन्द्र देहलवी ।
६३ देवताओं की कहानी—कैलाश बिहारी ।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६५ धूम्रपान— " "
६६ सिनेमा और हम— " "
६७ दयानन्द कौन—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ।
६८ कृण्वन्तोस्वयमार्यम—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६९ चाय भयंकर विष—जगदीश चन्द्र ।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है—ज. विद्यार्थी
७१ ईश्वर सब जगह है—विष्णु दयाल जी ।
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों—रामचन्द्र देहलवी ।
७३ चरित्र निर्माण—जगदीस चन्द्र विद्यार्थी ।
७४ यज्ञोपवीत महत्व—जगरीश चन्द्र विद्यार्थी ।
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण—हरिदेव शास्त्री ।
७६ नास्तिकों को सन्देश—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
७७ वैदिक धर्म ही क्यों—हरिदेव शास्त्री ।
७८ विद्यार्थी और सदाचार—पं० रामचन्द्र देहलवी ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली—६

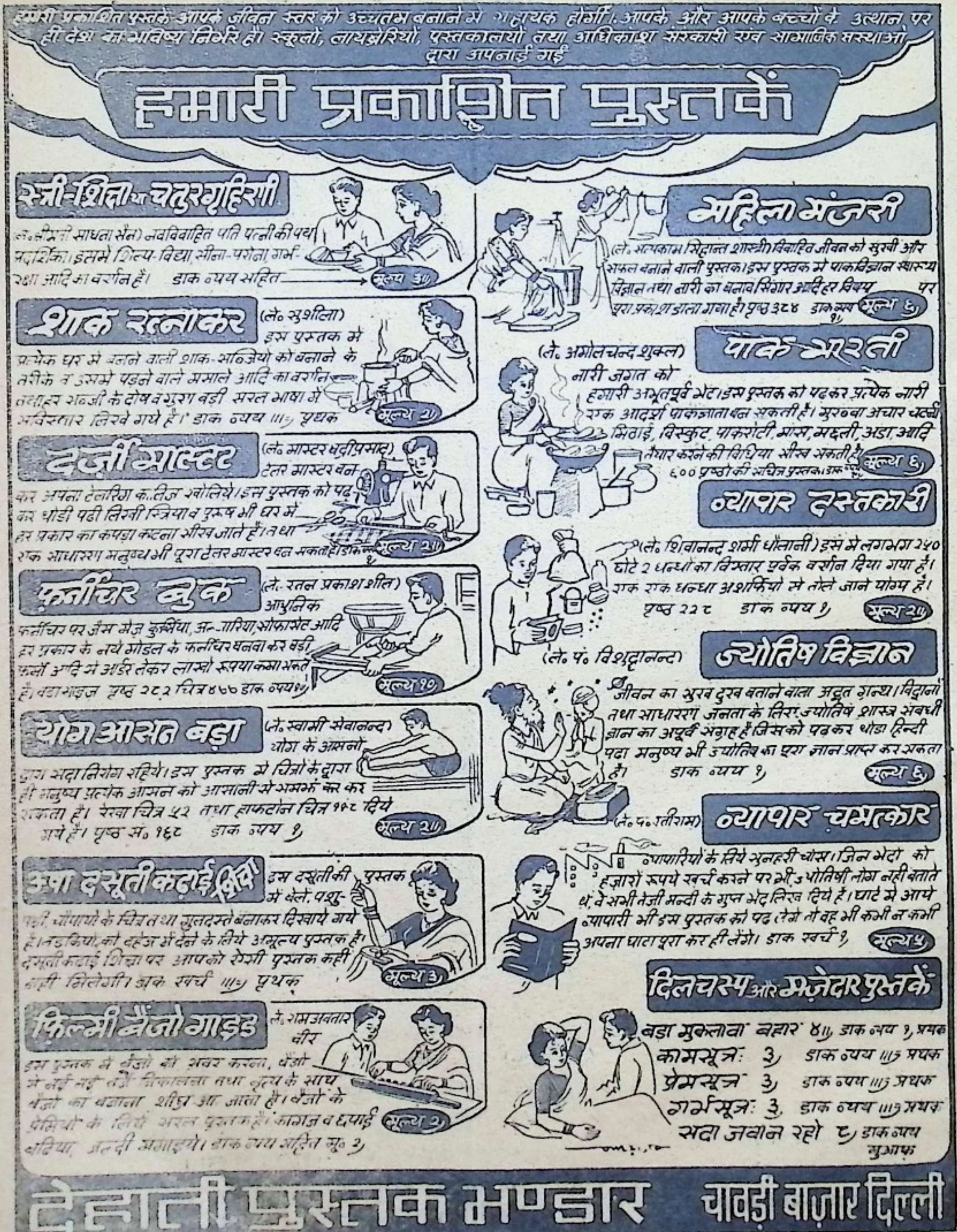

हमारी प्रकाशित पुस्तकें आपके जीवन स्तर को उच्चतम बनाने में सहायक होंगी। आपके और आपके बच्चों के उत्थान पर ही देश का भविष्य निर्भर है। स्कूलों, लायब्रेरियों, पुस्तकालयों तथा अधिकांश सरकारी एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा अपनाई गई

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

स्त्री-शिक्षा या चतुरगृहिणी

(ले० श्रीमती साधना सैन) नवविवाहित पति पत्नी की पथ प्रदर्शिका। इसमें शिल्प-विद्या, सीना-परोना, गर्भ-रक्षा आदि का वर्णन है। डाक व्यय सहित → मूल्य ३॥)

शाक रत्नाकर

(ले० सुशीला) इस पुस्तक में प्रत्येक घर में बनने वाली शाक-भाजियों को बनाने के तरीके व उसमें पड़ने वाले मसाले आदि का वर्णन तथा हर सब्जी के दोष व गुण बड़ी सरल भाषा में सविस्तार लिखे गये हैं। डाक व्यय ॥=) पृथक मूल्य २)

दर्जी मास्टर

(ले० मास्टर बद्रीप्रसाद) टेलर मास्टर बनकर अपना टेलरिंग कालिज खोलिये। इस पुस्तक को पढ़कर थोड़ी पढ़ी लिखी स्त्रियां व पुरुष भी घर में हर प्रकार का कपड़ा काटना सीख जाते हैं। तथा एक साधारण मनुष्य भी पूरा टेलर मास्टर बन सकता है। डाक व्यय १) मूल्य २॥)

फर्नीचर बुक

(ले० रतन प्रकाश शील) आधुनिक फर्नीचर पर जैसे मेज़ कुर्सियां, अलमारियां, सोफासेट आदि हर प्रकार के नये मोडल के फर्नीचर बनवा कर बड़ी फर्मों आदि से आर्डर लेकर लाखों रूपया कमा सकते हैं। बड़ा साइज पृष्ठ २८२ चित्र ४७० डाक व्यय १) मूल्य १०)

योग आसन बड़ा

(ले० स्वामी सेवानन्द) योग के आसनों द्वारा सदा निरोग रहिये। इस पुस्तक में चित्रों के द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक आसन को आसानी से समझ कर कर सकता है। रेखा चित्र ५२ तथा हाफटोन चित्र १९८ दिये गये हैं। पृष्ठ सं० १६८ डाक व्यय १) मूल्य २॥)

ऊषा दसूती कढ़ाई शिक्षा

इस दसूती की पुस्तक में बेलें, पशु-पक्षी, चौपायों के चित्र तथा गुलदस्ते बनाकर दिखाये गये हैं। लड़कियों को दहेज में देने के लिये अमूल्य पुस्तक है। दसूती कढ़ाई शिक्षा पर आपको ऐसी पुस्तक कहीं नहीं मिलेगी। डाक खर्च ॥=) पृथक् मूल्य ३)

फिल्मी बैंजो गाइड

ले० रामअवतार वीर

इस पुस्तक में बैंजो को सवर करना, बैंजो से नई नई तर्जें निकालना तथा नृत्य के साथ बैंजो का बजाना शीघ्र आ जाता है। बैंजो के प्रेमियों के लिये सरल पुस्तक है। कागज़ व छपाई बढ़िया, जल्दी मंगाइये। डाक व्यय सहित मू० ३) मूल्य ३)

महिला मंजरी

(ले० सत्यकाम सिद्धान्त शास्त्री) विवाहित जीवन को सुखी और सफल बनाने वाली पुस्तक। इस पुस्तक में पाकविज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान तथा नारी का बनाव सिंगार आदि हर विषय पर पूरा प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ ३८४ डाक व्यय १) मूल्य ६)

पाक भारती

(ले० अमोलचन्द शुक्ल) नारी जगत को हमारी अभूतपूर्व भेंट। इस पुस्तक को पढ़कर प्रत्येक नारी एक आदर्श पाकज्ञाता बन सकती है। मुरब्बा अचार चटनी मिठाई, बिस्कुट, पावरोटी, मांस, मछली, अंडा आदि तैयार करने की विधियां सीख सकती है। ६०० पृष्ठों की सचित्र पुस्तक। डाक व्यय १) मूल्य ६)

व्यापार दस्तकारी

(ले० शिवानन्द शर्मा धौलानी) इस में लगभग २५० छोटे २ धन्धों का विस्तार पूर्वक वर्णन दिया गया है। एक एक धन्धा अशर्फियों से तोले जाने योग्य है। पृष्ठ २२८ डाक व्यय १) मूल्य २॥)

ज्योतिष विज्ञान

(ले० पं० विशुद्धानन्द) जीवन का सुख दुख बताने वाला अद्भुत ग्रन्थ। विद्वानों तथा साधारण जनता के लिए ज्योतिष शास्त्र संबंधी ज्ञान का अपूर्व संग्रह है जिसको पढ़कर थोड़ा हिन्दी पढ़ा मनुष्य भी ज्योतिष का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। डाक व्यय १) मूल्य ६)

व्यापार चमत्कार

(ले० द० रतीराम) व्यापारियों के लिये सुनहरी चांस। जिन भेदों को हज़ारों रूपये खर्च करने पर भी ज्योतिषी लोग नहीं बताते थे, वे सभी तेज़ी मन्दी के गुप्त भेद लिख दिये हैं। घाटे में आये व्यापारी भी इस पुस्तक को पढ़ लेंगे तो वह भी कभी न कभी अपना घाटा पूरा कर ही लेंगे। डाक खर्च १) मूल्य ५)

दिलचस्प और मज़ेदार पुस्तकें

बड़ा मुकलावा बहार ४॥) डाक व्यय १) पृथक
कामसूत्र ३) डाक व्यय ॥=) पृथक
प्रेमसूत्र ३) डाक व्यय ॥=) पृथक
गर्भसूत्र ३) डाक व्यय ॥=) पृथक
सदा जवान रहो ८) डाक व्यय मुआफ़

देहाती पुस्तक भण्डार चावड़ी बाज़ार दिल्ली

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जय्यद प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर
वेदप्रकाश कार्यालय नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया।

ओ३म्

वेद प्रकाश

युद्ध का बिगुल पुनः बजा

आर्य जनता बलिदान की तैयारी करे

९ जून १९५८ तक मांगें स्वीकार न हुईं तो पुनः सत्याग्रह होगा

२७ अप्रैल को देहली में हुए आर्य कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन में भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त ने आर्य समाज के प्रति केन्द्रीय शासन के विश्वास घात की घोषणा कर आर्य जनता को पुनः अपनी मांगें स्वीकार कराने के लिए शासन को ९ जून तक का अलटीमेटम दे दिया। इससे आर्य जनता की श्रद्धा और विश्वास अपने नेता पर पहले से द्विगुणित हो गया।

आर्य समाज के कतिपय तथाकथित अनुत्तरदायी नेताओं द्वारा जो ९वीं व १०वीं कंडिका के निकाले जाने और आर्य समाज की पूर्ण विजय की जो घोषणायें की जा रहीं थीं जिनके कारण आर्य जनता असमंजस में थी (क्योंकि सरकार का व्यवहार सर्वथा विपरीत था।) वह असमंजस समाप्त कर श्री घनश्यामसिंह जी ने अत्यन्त दूरदर्शिता का परिचय दिया।

और अब ९ जून दूर नहीं। यदि शासन ने तब तक आर्य समाज की मांगों को स्वीकार न किया तो एक बार फिर युद्ध घोषणा होगी। अन्याय अत्याचार मिटाने का प्रण सभी को लेना होगा। इसलिए प्रत्येक आर्य समाज से हमारा निवेदन है कि वह सजग हो अग्नि परीक्षा की तैयारी आरम्भ कर दे।

अच्छा तो यही होगा कि शासन हमारी मांगें अविलम्ब स्वीकार कर ले किन्तु ऐसा न होने पर देश के लाखों आर्य, करोड़ों राष्ट्र हितैषी अपने नेता के इंगित पर बलिदान के लिये तत्पर रहें। शहीद वीर सुमेर सिंह ने जिस बलिदान पथ का अनुसरण किया था वही पथ आज भी हमारी प्रेरणा का आधार है अतः आज से ही अपने क्षेत्र में तैयारी आरम्भ कर दी जाय।

आर्ष योग प्रदीपिका

व्यास भाष्य सहित पातञ्जल योग दर्शन का सरल सारगर्भित भाषानुवाद

लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं व्यास ऋषि भाष्य का भाषानुवाद किया गया है। योग के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर लेख होने से इसका नाम "आर्ष योग प्रदीपिका रखा गया है। यहां पातञ्जलि के सूत्रों का प्रथम अर्थ और किसी किसी क्लिष्ट सूत्र पर विवरण दिया गया है। पुनः व्यास भाष्य का अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं उस पर आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण भी दिया गया है। आशा है स्वाध्यायी और योग विषयक वर्णन के जिज्ञासु जन इसका स्वागत करेंगे। लगभग २७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३॥)

मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क देहली।

RE कर्ण रोग नाशक तैल GD

कान की सभी बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये "कर्ण रोग नाशक तेल" प्रयोग करें। इससे कान बहना शब्द होना, कम सुनना, दर्द होना, खाज आना, सांय-सांय होना, मवाद आना, सीटी सी बजना, आदि शीघ्र आराम हो जाते हैं। एक बार परीक्षा करके देखिये। मूल्य १ शीशी १।), पैकिंग पोस्टेज १॥), १ दर्जन पर खर्चा फ्री और ३ शीशी कमीशन में अधिक देकर एजेंट बनाते हैं। बरेली का प्रसिद्ध रजिस्टर्ड शीतल सुरमा' भी हम से मंगावें १ शीशी १।), पत्र साफ लिखने की कृपा करें।

पता— कार्यालय 'कर्णरोग नाशक तैल'
२६३ संतो मालन मार्ग
नजीबाबाद (उ० प्र०)
NAJIBABAD U. P.

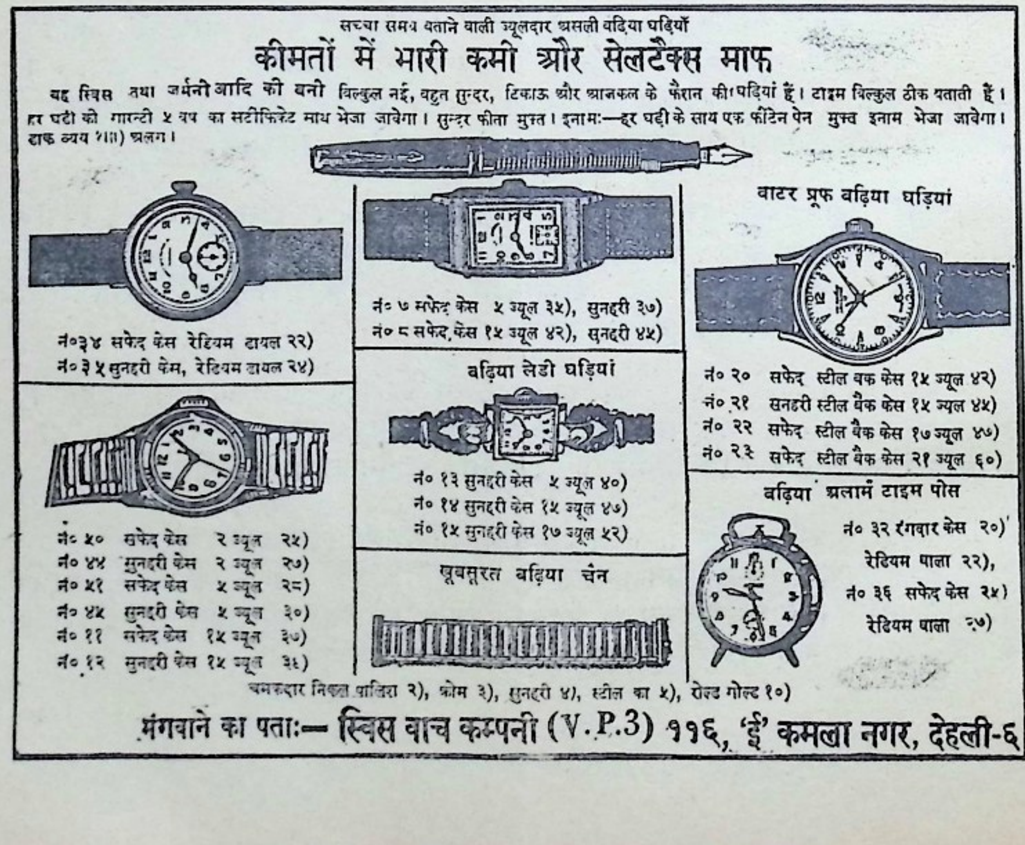

सच्चा समय बताने वाली ज्यूलदार असली बढ़िया घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी और सेलटैक्स माफ

यह स्विस तथा जर्मनी आदि की बनी बिल्कुल नई, बहुत सुन्दर, टिकाऊ और आजकल के फैशन की घड़ियां हैं। टाइम बिल्कुल ठीक बताती हैं। हर घड़ी की गारन्टी ५ वर्ष का सर्टीफिकेट साथ भेजा जावेगा। सुन्दर फीता मुफ्त। इनामः—हर घड़ी के साथ एक फौंटेन पेन मुफ्त इनाम भेजा जावेगा। डाक व्यय १॥) अलग।

नं०३४ सफेद केस रेडियम डायल २२)
नं० ३५ सुनहरी केस, रेडियम डायल २४)

नं० ७ सफेद केस ५ ज्यूल ३५), सुनहरी ३७)
नं० ८ सफेद केस १५ ज्यूल ४२), सुनहरी ४५)

वाटर प्रूफ बढ़िया घड़ियां

नं० २० सफेद स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४२)
नं० २१ सुनहरी स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४५)
नं० २२ सफेद स्टील बैक केस १७ ज्यूल ४७)
नं० २३ सफेद स्टील बैक केस २१ ज्यूल ६०)

नं० ५०	सफेद केस	२ ज्यूल	२५)
नं० ५४	सुनहरी केस	२ ज्यूल	२७)
नं० ५१	सफेद केस	५ ज्यूल	२८)
नं० ५५	सुनहरी केस	५ ज्यूल	३०)
नं० ११	सफेद केस	१५ ज्यूल	३७)
नं० १२	सुनहरी केस	१५ ज्यूल	३६)

बढ़िया लेडी घड़ियां

नं० १३ सुनहरी केस ५ ज्यूल ४०)
नं० १४ सुनहरी केस १५ ज्यूल ४७)
नं० १५ सुनहरी केस १७ ज्यूल ५२)

बढ़िया अलार्म टाइम पोस

नं० ३२ रंगदार केस २०)
रेडियम वाला २२),
नं० ३६ सफेद केस २५)
रेडियम वाला २७)

खूबसूरत बढ़िया चैन

चमकदार निकल पालिश २), क्रोम ३), सुनहरी ४), स्टील का ५), रोल्ड गोल्ड १०)

मंगवाने का पताः— स्विस वाच कम्पनी (V.P.3) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादक—गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—६ : वैशाख २०१५ मई १९५८ : वार्षिक मूल्य २॥)
अंक—१० : दयानन्दाब्द १३४ वैशाख १८८० शाके : विदेशों से ५ शि०

इन्द्रियों की चञ्चलता

वि मे कर्णा पतयतो विचक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ऋ०॥६॥९।६।

अर्थ—(मे+कर्णा+वि+पतयतः) मेरे दोनों कान इधर उधर दूर २ गिर रहे हैं। (चक्षुः+वि) मेरे नयन भी इधर उधर दौड़ रहेहैं। (हृद्ये+यद्+इदम्+ज्योतिः+आहितं) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञानरूप ज्योति है, वह भी (वि) दूर भाग रहाहै। (दूरे+आधीः+मे+मनः+वि+चरति) अतिदूरस्य विषय में ध्यान लगा कर मेरा यह मन भी दूर २ विचरण कर रहा है। ऐसी अवस्था में प्रभु के समीप (किम्+स्विद्+वक्ष्यामि) मैं क्या कहूंगा और (किम्+उ+नु+मनिष्ये) क्या मनन करूंगा।

आशय—प्रत्येक मनुष्य का यह नित्यका अनुभव है कि कर्ण, चक्षु, मन आदि इन्द्रिय किसी कार्य में स्थिर नहीं रहते। किञ्चित मात्र मौका मिलने पर झट से इधर उधर भागने लगते हैं। ऐसी अनवस्थित दशा में मनुष्य सूक्ष्म कार्य कदापि नहीं कर सकता। अतः यह प्रार्थना है कि हे परमात्मा देव ! मेरे कर्ण, नयन, हृदयस्य ज्ञान और यह मन सबही चारों तरफ भाग रहे हैं। मैं कैसे आप के गुण गाऊं कैसे मनन करूं। हे भगवान ! आशीर्वाद करो, जिससे मेरे सब इन्द्रिय समाहित हों। और उनके द्वारा आप की परम विभूतियां देखूं।

श्रद्धा-माता

(लेखक—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति)

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥
(यजु० १९।७७)

प्रजा पालक परमेश्वर अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा सत्य और असत्य के स्वरूपों को प्रथक् करता है। वह परमेश्वर असत्य में अश्रद्धा धारण कराता है और सत्य में श्रद्धा धारण कराता है।

श्रद्धा का अर्थ

श्रद्धा शब्द 'श्रत्' और 'धा' इन दो शब्दों से मिल कर बनता है। 'श्रत्' का अर्थ है सत्य और 'धा' का अर्थ है धारण करना। मनसा, वाचा, कर्मणा, प्रमाणादि से सुपरिक्षित सत्य के धारण करने का नाम श्रद्धा है, श्रद्धा हृदय की एक सूक्ष्म, पवित्र तथा भव्य भावना है।

श्रद्धा मानव जीवन की नींव है। इसके बिना जीवन रूपी भवन खड़ा ही नहीं हो सकता। जिस प्रकार सूर्य के बिना दिन नहीं हो सकता, आंखों के बिना देखा नहीं जा सकता और कानों के बिना सुना नहीं जा सकता, इसी प्रकार श्रद्धा के बिना जीवन नहीं बन सकता। जिन व्यक्तियों ने संसार में उन्नति की उनके जीवनों में श्रद्धा ओत प्रोत थी। मानव जीवन में श्रद्धा का वही स्थान है जो दिये में तैल का। यदि दाहक शक्ति न रहे तो हम उसे अग्नि नहीं कह सकते, समुद्र में तरंगें न हों तो उसे समुद्र नहीं कह सकते और जिस नवयुवक में जोश नहीं हो उसे जवान नहीं कह सकते, इसी प्रकार हम उस मनुष्य को मनुष्य नहीं कह सकते जिस में श्रद्धा न हो।

जिस प्रकार पत्र, पुष्प और फल से रहित वृक्ष ठुण्ठ होता है उसी प्रकार श्रद्धा रहित मनुष्य भी ठुण्ठ के समान ही होता है।

वर्तमान समय में अधिकांश लोग श्रद्धा से खाली हैं, यही कारण है कि आज मानव मानव नहीं रहा वह दानव हो गया है। श्रद्धा की कमी के कारण आज पुत्र पिता का अनादर करता है, शिष्य गुरुओं का तिरस्कार करते हैं। इसके विपरीत प्राचीन काल में मनुष्यों को श्रद्धा का पुतला बनाया जाता था। आचार्य शिष्यों को इस प्रकार शिक्षा दिया करते थे:—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव अतिथिदेवो भव।

(तै० उ० १।११।२)

माता का आदर करो पिता की सेवा करो, गुरुओं और अतिथियों का आदर करो और ऐसी शिक्षा के कारण ही हम प्राचीन काल के महामानवों के जीवनों को माता, पिता और गुरुओं के लिये श्रद्धा से ओत प्रोत पाते थे। आइये प्राचीन इतिहास के कुछ गौरव पूर्ण पृष्ठों का अवलोकन कीजिये।

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के राज्य तिलक की घोषणा हो चुकी है परन्तु दूसरे दिन दृश्य ही बदल जाता है। प्रातः काल कैकयी राम को बुलाती है। जब राम महल में पहुंचते हैं तो अपने पिता जी को दीन और कातर अवस्था में देख कर माता कैकयी से उस का कारण पूछते हैं। कैकयी के यह कहने पर कि यदि तुम महाराज की आज्ञा को स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बताऊं। यह सुन कर रामचन्द्र जी को बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने कहा :—

अहोधिङ् नार्हसे देवी वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हि बचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे ।
(वा० रा० अयो० १८।२७-२८)

हा धिक्कार है। हे देवी ! तुम्हें ऐसी बात कहनी उचित नहीं। अन्य बातों का तो कहना ही क्या महाराज की आज्ञा से तो मैं अग्नि में भस्म होने के लिये तैयार हूं हलाहल विष का पान कर सकता हूं तथा समुद्र में छलाँग लगा सकता हूं। यह है पिता के लिये श्रद्धा।

महाभारत के भीषण संग्राम में अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हो गया। जब अर्जुन ने यह समाचार सुना तो अपने पुत्र के मारने वाले जयद्रथ के बध की प्रतिज्ञा करते हैं। जयद्रथ को मृत्यु से बचाने के लिये आचार्य द्रोण शंकट व्यूह की रचना करते हैं। धनुर्धारी अर्जुन युद्ध करते हुए गुरु के सन्मुख पहुंचते हैं और गुरु के साथ भीषण संग्राम करते हैं। योगेश्वर कृष्ण ने यह देख कर कि यदि अर्जुन यहीं लड़ता रहा तो जयद्रथ वध असम्भव है, अर्जुन ने कहा, "हमारा अधिक समय यहीं न लग जाये अतः द्रोणाचार्य को छोड़ कर आगे चलो।" अर्जुन ने कहा, "जैसी आप की इच्छा" और तत्पश्चात् आचार्य की परिक्रमा करके लौट पड़े। यह देख कर द्रोणाचार्य ने कहा :—

ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे॥

"पाण्डव नन्दन। तुम इस प्रकार कहां जा रहे हो? तुम तो रणक्षेत्र में शत्रु को पराजित किये विना कभी नहीं लौटते थे।" यह सुन कर अर्जुन ने कहा :

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।
न चास्ति स पुमांल्लोके यस्त्वां युधिपराजयेत॥
(महा० द्रो० १९१।३३-३४)

ब्रह्मण! आप मेरे गुरु हैं शत्रु नहीं हैं। मैं आप का पुत्र के समान प्रिय शिष्य हूं इस संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो आप को पराजित कर सके। यह है शिष्य की गुरु के लिये श्रद्धा, युद्ध हो रहा है परन्तु श्रद्धा में तनिक भी कमी नहीं।

श्रद्धा में बड़ा बल और शक्ति है। श्रद्धा से सब कुछ हो सकता है। श्रद्धा से बड़े बड़े पर्वतों को हिलाया जा सकता है। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि।" श्रेष्ठ कार्यों में बहुत से विघ्न उपस्थित हो जाते हैं परन्तु श्रद्धा द्वारा जीवन की प्रत्येक रुकावट को दूर किया जा सकता है। श्रद्धा से प्रत्येक इच्छा की पूर्ति की जा सकती है।

श्रद्धा विश्वास की जननी है। जहाँ श्रद्धा है वहाँ विश्वास भी अवश्य रहता है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन में हमें इस वैदिक सत्य का साक्षात्कार होता है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ कुछ ब्रह्म कुमारियां थी, उन्होंने कहा, "हम दस पंद्रह मिनट में ही भगवान् के दर्शन कर सकती हैं।" स्वामी जी बोले, "भगवान् १०। १५ मिनट भी दूर कैसे रह सकता है? मैं उस भगवान को नहीं मानता जो चाहे थोड़ी देर के लिये क्यों न हो दूर हो जाता है? मेरा भगवान् तो हर समय मेरे पास रहता है।" ईश्वर के प्रति ऐसा अटल विश्वास श्रद्धा के कारण ही था।

सन् १९०२ से सन् १९१२ तक का समय आर्य समाज के लिये बड़ा संकट कालीन समय था। आर्य समाज के ऊपर अंग्रेज सरकार की वक्र दृष्टि थी। आर्य समाज को राजद्रोही संस्था और सत्यार्थ प्रकाश को राज द्रोही ग्रन्थ माना जाता था। आर्य समाजी आऊट ला (Out law) ठहरा दिये गये थे। राज दण्ड की सारी व्यवस्था का प्रयोग आर्य समाज और आर्य समाजियों के विरुद्ध किया जाता था। इस संकट के समय में आर्यो ने जो सरकारी नौकर थे, आर्य समाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय अपने दृढ़ ईश्वर विश्वास और श्रद्धा को प्रकट करते हुए श्रद्धानन्द जी ने अपने पत्र सद्धर्म प्रचारक में लिखा था:—

'आर्य पुरुषो! क्या तुम को परमात्मा पर सच्चा विश्वास है? यदि है तो फिर दो हाथ वालों की खातिर सहस्रबाहु वाले का क्यों अनादर करते हो? दो भुजा वाला जिस रोजी को छीन सकता है क्या सहस्रबाहु उस से बढ़कर तुम को रोजी नहीं दे सकता?" ये हैं स्वामी जी के ईश्वर के प्रति महान् श्रद्धा के उद्गार।

सब प्रकार के उत्तम कर्मों में श्रद्धा का होना आवश्यक है। क्योंकि:–

श्रद्धा आप :—

श्रद्धा जल है। जिस प्रकार जल न मिलने पर वृक्ष सूख जाता है इसी प्रकार श्रद्धारूपी जल के बिना यज्ञ दान तपादि उत्तम कर्म व्यर्थ हो जाते हैं, इसी लिये तो योगेश्वर कृष्ण ने कहा है:–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं चयत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्यनोइह॥
(गीता० १७। २८)

श्रद्धा के बिना किये हुए यज्ञ यागादि, दिये हुए दान आदि, की हुई तपश्चर्या, यहां तक की श्रद्धा के बिना किया हुआ कोई भी कर्म फल नहीं देता, व्यर्थ जाता है।

हे अर्जुन ! उससे इस लोक में कोई सिद्धि नहीं मिलती, फिर भला परलोक में कैसे मिल सकती है। अतः उपनिषद् के ऋषि ने कहा:—

श्रद्धया दयम् (तै० उ० ११ । ४)

श्रद्धापूर्वक दानादि देना चाहिये।

मनुष्य जीवन का चरमोद्देश्य आत्मा का विकास, सत्य एवं आनन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति है और यह श्रद्धा से ही सम्भव हो सकता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है:—

तस्माच्छन्तो दान्त उपर तस्तितिक्षु, श्रद्धा त्विो भूत्वा आत्मन्येवात्मना पश्येत्।

अर्थात् शान्त, उदार विषय विकारों से दूर रह कर, सहन शील तथा श्रद्धाधन का धनी बनकर अपनी आत्मा में परमात्मा का दर्शन करे।

वेद का भी आदेश है:—

श्रद्धायाग्निः समिध्यसे, श्रद्धा हूयते हविः।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥
(ऋ० १० । १५१ १)

श्रद्धा के द्वारा आत्माग्नि प्रदीप्त की जाती है, उसमें श्रद्धा से ही अहंकृति की आहुति दी जाती है। श्रद्धा समस्त कल्याण कारी साधनों के मस्तिष्क स्थान पर विराजमान है। श्रद्धा के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता और श्रद्धालु बनकर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसी भाव से वेद में अन्य स्थान पर कहा गया है:–

श्रद्धया विन्दते वसु (ऋ० १० । १५१ । ४)

श्रद्धा से धन मिलता है। विद्याधन, बुद्धिधन, ज्ञानधन, विज्ञानधन, बलधन और ऐश्वर्य सब कुछ श्रद्धा से ही मिलता है। सदाचार, सदविचार, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि आध्यात्मिक धन भी श्रद्धा से ही प्राप्त होते हैं। जिस में श्रद्धा नहीं वह किसी प्रकार का धन प्राप्त नहीं कर सकता। वह मनुष्य बड़ा भाग्यहीन है जिसके पास धन नहीं है, इसके विपरीत श्रद्धावान मनुष्य धन धान्य न रखते हुए भी बड़ा भाग्यशाली है क्योंकि श्रद्धा है तो सब कुछ प्राप्त हो जायेगा और यदि श्रद्धा नहीं तो जो कुछ है वह भी चला जायेगा। अतः मनुष्य को श्रद्धा से भरपूर होना चाहिये।

योग दर्शन में भी प्रभु प्राप्ति के लिये श्रद्धा को सब से पहला स्थान दिया गया है। जो प्रकृतिलय नहीं है ऐसे सधाकों को योग कैसे सिद्ध होता है इसका वर्णन करते हुए वहां लिखा है:—

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्
(यो० द० १।२०)

सत्य के धारण करने का नाम श्रद्धा है। जब मनुष्य में यह श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो व्यास भाष्य के अनुसार 'साहि जननीव कल्याणी योगिन पाति', वह श्रद्धा योगी की माता के समान रक्षा करती है। इस श्रद्धा से योगी के भीतर विश्वास और आह्लाद उत्पन्न होता है। उस विश्वास और आनन्द से योगी वीर्य वान्=शक्ति और उत्साह सम्पन्न होता है फिर उसकी स्मृति जागृत होती है। स्मृति की दृढ़ता से चित्त निश्चल हो जाता है, तब समाधि सिद्ध होती है जिससे विवेक बुद्धि का प्रकाश होता है। इस प्रकाश से यथार्थ ज्ञान होकर योगी तत्व ज्ञानी बन जाता है।

श्रद्धा तीन प्रकार की होती है। गीता में कहा है:—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां स स्वभावजा।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥
(गीता १७।२)

स्वभाविक रूप से मनुष्यों में तीन प्रकार की श्रद्धा होती है, तामसिक, राजसिक और सात्विक। तामसिक श्रद्धा वह होती है, जो दूसरों की हानि करने के लिए हो, संसार में अशान्ति फैलाने के लिए हो। राजसिक श्रद्धा वह है जो अपना सांसारिक कल्याण करने के लिए हो और सात्विक श्रद्धा वह है, जो मानव जीवन को सफल बनाने के लिये हो, मनुष्य मात्र का कल्याण करने वाली हो जब मनुष्य के अन्दर सात्विक श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो यह श्रद्धा मनुष्य के सारे दुर्गुणों और दुर्व्यसनों को दूर करके उसे प्रभु की ओर ले जाती है जैसा की मुण्डकोपनिषद् में कहा है :—

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥
(मुण्डक २।११)

अर्थात् वनों में रहने वाले, तप और श्रद्धा का सेवन करने वाले, शान्त, विद्वान, भिक्षा वृत्ति से अपने जीवन को पवित्र बना कर सूर्य मार्ग से उस अमृत के भण्डार और अविनाशी परमात्मादेव के दर्शन करते हैं।

इस प्रकार यजुर्वेद में एक कारण माला से सत्य की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है:—

व्रतेन दीक्षां आप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥
(यजु० १९।३०)

ब्रह्मचर्य आदि उत्तम व्रतों से दीक्षा-अधिकार प्राप्त होता है, दीक्षा से दक्षिणा-उत्साह और दक्षिणा से श्रद्धा की प्राप्ति होती है तथा श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार वेद उपनिषदादि में श्रद्धा की महिमा का उच्च स्वर से गान किया गया है।

यह है श्रद्धा का महत्व, इसके विपरीत अश्रद्धा मानव हृदय को नीरस और कुतार्किक बना कर नास्तिकता का रूप दे देती है और ऐसे लोग फिर परमात्मा को दोषी ठहराने में भी लज्जित नहीं होते।

एक बार एक ब्रजवासी घूमता फिरता काबुल पहुँच गया। वहां अंगूर की बेलें तथा अनेक प्रकार के फल और फूल तथा मेवा देखकर, और ब्रजभूमि की आक ढाक और बबूल आदि वृक्षों की याद करके परमात्मा को यूं कहने लगा:—

हाय दई ! गोपाल की पड़ी मति पे धूर।
काबुल में मेवा भई, ब्रज में बोये बबूर॥

यह है नास्तिकता का भयंकर परिणाम। और इतना ही नहीं अश्रद्धालु मनुष्य अपने आप को दीन हीन और नपुंसक समझने लगता है। स्वभाव में क्रूरता, रूखापन और चिड़चिड़ापन आ जाता है, क्रोध की मात्रा बढ़ जाती है। लोक और परलोक की बातें अच्छी नहीं लगती। श्रद्धाहीन व्यक्ति अविश्वासी हो जाता है और तब उसकी क्या दशा होती है :—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
(गीता ४।४०)

जो मूर्ख है किसी में श्रद्धा नहीं रखता—ऐसा संशय वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। महाभारत के शान्ति पर्व में भी कहा है:—

अश्रद्धा परमं पाप श्रद्धा पाप प्रमोचनी।

अर्थात् अश्रद्धा से बढ़ कर कोई पाप नहीं है और श्रद्धा पाप पुञ्ज को भस्म कर ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करने वाली है।

जब मनुष्य के मन मन्दिर में श्रद्धावृत्ति जागृत हो जाती है तो उसका फल क्या होता है, यह एक अथर्ववेद के मन्त्र में देखिये :-

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च। (अथर्व० १२।५।७)

अर्थात् श्रद्धावान् मनुष्य के जीवन में, पराक्रम, तेज सहनशक्ति, शारीरिक आरोग्यता, प्रिय और मधुर भाषण, इन्द्रियों का सयम श्री और धर्म आदि दैवी गुण प्रकट हो जाते हैं। गीता में भी कहा है :-

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति॥
(गीता ४।३९)

श्रद्धालु मनुष्य इन्द्रियों का संयम करके तत्परता से साधन करता हुआ ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है। ज्ञानोदय होने पर उसको मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वह परम सुख का अनुभव करता है।

श्रद्धा से मनुष्य को असीम आनन्द की प्राप्ति होती है परन्तु आज संसार में श्रद्धा के विषय में अनेक भ्रान्तियां फैली हुई हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि तर्क और श्रद्धा का पारस्परिक विरोध है। उनका कहना है कि तर्क और श्रद्धा एक साथ नहीं रह सकते। परन्तु यह धारणा सर्वथा मिथ्या है क्योंकि मनुष्य स्वभावतः बहुत सी बातों को बिना तर्क के मान लेता है कारण :—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः (गीता १७।२)

मनुष्य स्वभाव से ही श्रद्धालु है। यदि मनुष्य प्रत्येक बात में तर्क करने लगे तो जीवन ही असम्भव हो जाये। इसीलिये महर्षि व्यास जी ने लिखा है :-

तर्काप्रतिष्ठानात् (वेदान्त २।१।११)

यदि हम प्रत्येक बात तर्क तुला पर तोलने लग जायें तो हम एक छोटी सी क्रिया भी पूरी न कर सकें।

तर्क मस्तिष्क की वस्तु है और श्रद्धा हृदय की भावना, दोनों के मेल से ही जीवन में उन्नति और सफलता प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। इसीलिये अथर्ववेद में कहा है :-

मूर्धानमस्य संसीव्य अथर्वा हृदयञ्चयत्।
(अथर्व० १०।२।२६)

हे निश्चल आत्मन् ! मस्तिष्क और हृदय की भावना को मिला ले। महर्षि दयानन्द के जीवन में दोनों का समावेश था वे अद्भुत तार्किक होते हुए महान् श्रद्धालु थे।

श्रद्धा प्राणः (अथर्व० ९।५।२१)

श्रद्धा मानव जीवन का प्राण है। अतः अपने जीवनों में श्रद्धा का आह्वान करो।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयह नः॥
ऋ० १०।१५१।५)

बुलाओ ! श्रद्धादेवी को आमन्त्रित करो। हम प्रातः काल श्रद्धा से युक्त हों। मध्याह्न में श्रद्धा से युक्त हों। सायंकाल श्रद्धा से युक्त हों और रात्रि में भी श्रद्धा से युक्त हों। जीवन के प्रत्येक क्षण में और प्रत्येक कार्य में श्रद्धा ओत-प्रोत हो। हे श्रद्धा देवी ! हमारे जीवनों को श्रद्धा युक्त बना ॥ ओ३म् शम्॥

* छः प्रश्न *

[लेखक—प्राध्यापक श्री विष्णुदयाल जी मारीशस]

प्रश्नोपनिषद केनोपनिषद का स्मरण कराती है। इन उपनिषदों में उत्तमोत्तम प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं।

प्रश्नोपनिषद के प्रारम्भ में ही बताया जाता है कि छः विद्वान् हाथ में समिधा लेकर पिप्पलाद मुनि के सामने उपस्थित हुए। वे जिज्ञासु थे। प्रत्येक ने अनेक प्रश्न पूछा।

प्रश्नकर्ता सचमुच जिज्ञासु हो तो उत्तरदाता के प्रति उसके हृदय में भक्ति होगी। ये प्रश्नकर्ता श्रद्धा से युक्त थे, अतः ये खाली हाथ नहीं आये। कई बार देखा जाता है कि श्रोता उपदेष्टा को अपना नौकर समझते हैं। वे मन ही मन ख्याल करते हैं कि यह हमारी दया पर जीता है या यह कल्पना करते हैं कि हम फ्रेंचभाषी हैं, हम से अधिक ज्ञान संस्कृत पढ़ने वालों को हो ही कहां सकता है। ऐसी दशा में उपदेष्टा चाहे कितना उत्तम उपदेश क्यों न दे उसका श्रोता पर कोई असर नहीं पड़ता।

हमें यज्ञ के लिए समिधा चाहिये। जब उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया कि प्रश्नकर्ता समिधा लिये पहुंचे हम कैसे कह सकते हैं कि उपनिषद् यज्ञ का विरोध करता है? पश्चिमीयों ने हमारे धर्म ग्रन्थों के साथ जो अन्याय किया वह अक्षम्य है। यज्ञ का समर्थन जब प्रचलित ग्रन्थ गीता तक में पाया जाता है हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि यज्ञ त्याज्य है। यदि उपनिषद ज्ञान काण्ड पर जोर डालती है तो वह इतना ही बताना चाहती है कि यज्ञ कर्ता कभी कभी अनावश्यक बातों पर हद से ज्यादा ध्यान दे दिया करते हैं जो सरासर अनुचित है।

छः प्रश्नकर्ता अनेक परीक्षा में तुरन्त उत्तीर्ण हुए उनमें श्रद्धा* कूट कूट कर भरी थी, नहीं तो वे समिधा लेकर न आते। वे विद्वान थे, अतः वे जानते थे कि बड़े को बहुत धन देकर उनका आदर नहीं करना चाहिए जिस तरह आजकल बड़े अफसर को धन देकर लोग उन से अपना काम करवाते हैं।

श्रद्धालुओं को भी ब्रह्म ज्ञान तत्काल नहीं दिया जाता। यह देखना चाहिए कि ये अधिकारी हैं या नहीं। जब कोई सदुपदेश का अधिकारी नहीं होता वह लोकनिन्दा से बचने के लिये श्रोता बन तो जाता है पर दिये गये उपदेश को समझता नहीं क्योंकि उसका मन उसमें लगा हुआ नहीं होता। दान देना कोई सहज कार्य नहीं होता। गीता के १७ वें अध्याय में कहा गया है कि देश काल और पात्र को देखकर दान देना चाहिए। धन खूब दिया जा रहा तो है, किन्तु जिन्हें दान मिलना चाहिये उन्हें वह नहीं मिलता। आप ने किसी अफीमची को दान दे दिया तो आप पुण्य के भागी नहीं हो सकते। यही समझिये कि कुपात्र में आपने दूध डाला और वह दूध फट गया।

सब से उत्तम दान विद्या, ब्रह्मज्ञान का दान है। इसे देने से पहले बहुत सोच-विचार करना चाहिये। छः जिज्ञासुओं में सचमुच जिज्ञासा थी तब तो वे श्रद्धालु थे।

पिप्लाद मुनि ने छः प्रश्नकर्ताओं का स्वागत किया तो सही, किन्तु उन्होंने उन से अपने आश्रम में एक साल रहने को कहा—

गुरु को तुरन्त पता नहीं लगा कि ये पूरे जिज्ञासु हैं अतः उन्होंने ब्रह्म को प्राप्त करने के साधन साथ-साथ बतला दिये। गुरु ने सोचा, उन में पूर्ण जिज्ञासा होगी तो वर्ष भर आश्रम में रह कर वे अपना समय व्यर्थ न गंवायेंगे। उन्होंने कहा कि साधन हैं ब्रह्मचर्य, तप और श्रद्धा।

---

* श्रद्धा का अर्थ है, सत्य में धारण—"श्रत्" अर्थात् "सत्य" 'धा" अर्थात् "धारण करना" संसार की प्रत्येक वस्तु का विकास सत्य की तरफ है। —सत्यव्रत सिद्धातालंकार, एकादशोपनिषत्

इन विद्वानों से कम समझदार भक्त अपने घर से निकल कर तीन चार मास बाहर बिताते हैं, सब प्रकार के आदमियों से मिलते हैं। उनके दिन सुख से कटते हैं। घर लौट कर वे इतना समझ जाते हैं कि ईश्वर थे तो साथ और हम उन्हें ढूंडने निकले थे ! यात्रा यात्रियों के धैर्य, उनकी तत्परता की परीक्षा होती है। जिस में धैर्य तत्परता होती है, वही पूरी यात्रा करता है। अन्य लोग आधे रास्ते से घर लौट आते हैं। वे उन श्रोताओं की तरह हैं जिन में श्रद्धा का अभाव है, जो प्रवचन सुनने के अधिकारी नहीं होते।

एक साल आश्रम में रहकर एक भी जिज्ञासु ने घर लौटने का विचार नहीं किया। वे आनन्द से एक साल तो उस साल के बीच उन्हें नई नई बातें मालूम हुई होंगी।

एक वर्ष आश्रम में बिता कर पारी पारी से ये मुनि के पास जाकर प्रश्न पूछने लगे।

प्रथम प्रश्नकर्ता कत्य के पुत्र कबन्धी ने पूछा कि हे भगवन्❀ ये प्रजायें किस से उत्पन्न हुई ?

उन्हें उत्तर मिला कि भगवान में भी प्रजा की कामना होती है। यह कामना मनुष्यों की तुच्छ कामना के समान नहीं है। इसे ईक्षण कहा गया है। जब जगत् इस वर्तमान रूप का धारण करने वाला होता है अर्थात् जब ब्रह्म रात्रि समाप्त होने वाली होती है। परमात्मा मिले हुए अणुओं को जो विशाल जगत् का रूप धारण करते हैं, एक धक्का देते हैं और वह चल पड़ता है।

मल्लाह आप को अपनी डोंगी में बैठा कर उसे एक धक्का देता है। उस धक्के से डोंगी हिलने तो लगती है, पर वह देर तक नहीं हिलती। तब पतवार का सहारा लिया जाता है। मल्लाह पतवार चलाता रहता है और डोंगी धीरे धीरे चलती है। इससे आप जान सकते हैं कि मल्लाह में जो बल है वह कितना कम है।

परमात्मा ने एक धक्का दिया और जगत अरबों साल चलता रहा। उन में और एक फुटबाल खेलने वाले में कितना अन्तर है ! हृष्ट पुष्ट नवयुवक फुटबाल को एक लात लगा देवे तो वह ऊपर उठता है। परन्तु केवल दो तीन पल के लिये वह उड़ता हुआ ऊपर जाता है। दो ही तीन क्षण में वह गिर जाता है।

परमात्मा की याद दिलाने वाला प्राण है और प्रकृति का स्मरण कराने वाली रयि है। प्राण और रयि या पुरुष और प्रकृति के मेल को ही सृष्टि नाम दिया गया।

प्राण और देह में क्या भेद है, इसे प्रकट करने के लिये पिप्लाद ऋषि प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि प्राण आदित्य है। आदित्य सूर्य्य को कहा गया है। सूर्य अन्धकार को टिकने नहीं देता। प्राण में सत्व गुण होता है और प्रकृति में रजोगुण दोनों मिल जायें तो सत्व गुण को प्रधान रहना चाहिये।

प्राण को इसलिए भी आदित्य कहा गया कि सूर्य के उगने पर हम प्राणी होने के चिन्ह दिखाते हैं। रात्रि में तो हम लकड़ी के टुकड़े के समान पड़े रहते हैं। उस वक्त ऐसा प्रतीत होता है कि हम में प्राण होता ही नहीं।

ऋषि ने कहा:—

"विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्:
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य

सब पदार्थों में व्यापक सूर्य उदय हो कर अपनी रश्मियों द्वारा जब प्रजाओं में प्राण का संचार करता है तब सब उद्बोधित होकर अपने अपने कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं अर्थात् आदित्य ही अपने प्रकाश द्वारा सब को जाग्रतावस्था में लाकर चेष्टावान् करता है, इस लिये उसको "प्राण" कहा गया है।"

तरह तरह की उपमा देकर ऋषि ने यही समझाया कि प्राण तो गृह के दीपक के तुल्य है, प्राण शरीर को प्रकाशित करता है, प्राण प्रधान है।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में ऋषि अपने शिष्य को बताते हैं कि प्राण के रहने से इन्द्रियों में शक्ति होती है। जैसे मक्खियों को अपने राजा को घर छोड़ते देखकर उस के साथ ऊपर उडना पड़ता है वैसे ही प्राण निकल जाय

❀ जिस प्रकार गीता में श्री कृष्ण जी को भगवान कहा गया है इसी प्रकार यहां भी पिप्लाद ऋषि को भगवान कहा है जिस के अर्थ ऐश्वर्य सम्पन्न के हैं। (स्व० श्री पं० आर्यमुनि)

तो घर खाली हो जायेगा, आंख शरीर में रह कर भी देखने में अशक्त हो जायेगा, कान सुनना बन्द कर देगा, आदि।

यह कथा छान्दोग्योपनिषद में भी आती है। फ्रेंच कवि लाफोंतेन ने इस कथा को भारत से ही लिया है।

तृतीय प्रश्न प्राण के आगमन के सम्बन्ध में है। ऋषि ने उत्तर दिया कि यह मानव शरीर या दूसरे प्राणियों के शरीर में पूर्व कर्मों के भोगने लिए आता है।

जब आत्मा शरीर में प्रविष्ट होता है प्राण साथ आता है। शरीर अकेला नहीं चलता, उसके साथ उसकी छाया चलती है। शरीर स्थूल है, अतः दिन में उसकी छाया दिखाई देती है। रात्रि में भी प्रकाश हो तो छाया दिखाई देती है। आत्मा सूक्ष्म है चर्म चक्षुओं से देखने में नहीं आता। इसलिये उसकी छाया, प्राण, भी नेत्रों से दिखाई नहीं देता।

प्रथम तीन प्रश्नों में अपरा विद्या का विषय आया जो सहज में समझा जाता है। सृष्टि को हम देख सकते हैं। उसकी उत्पति को समझ न सकने से हम सवाल करते हैं। जवाब दिया जाता है जब हमें कहा जाता है कि यह दो का मेल है। इन्द्रियों का प्राण किस अर्थ में राजा है यह भी समझ में आता है। एक शरीर को जब आत्मा छोड़ कर दूसरे शरीर में जाता कैसे उसके साथ प्राण भी चलता है। यह भी समझ ने में खास दिक्कत नहीं है।

तीन प्रश्नों के उत्तर सुन लेने के पश्चात् उपनिषत् का प्रथम भाग या पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है, इसे जताने के लिए ही तीसरे उत्तर को दे कर कुछ शब्द इस प्रकार दोहराये गयेः—

विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते इति
(३. १२.)

परा विद्या के विषय में अन्य ३ प्रश्न हैं। हम छोटी कक्षाओं में अ, आ, इ, ई सीखते हैं। बड़ी कक्षाओं में जा कर सोचते-विचारने लगते हैं। तब हमारे सामने पुस्तक न हो तब भी बहुत कुछ सुना सकते हैं, समझा सकते हैं।

चौथा प्रश्न स्वप्न के सम्बन्ध में किया जाता है। आज कल मनोविज्ञान के विद्यार्थी सब केन्द्रों में पाये जाते हैं। वे सुनाते रहते हैं कि हम-स्वप्न में उन्हीं चीजों को देखा करते हैं जिन्हें जाग्रतावस्था में हमने देखा हो, जिन के सम्बन्ध में हमने कथा सुनी हो या जिन का चित्र हमने देखा हो।

पिप्लाद ऋषि सुनाते हैं कि सूर्य्य को उगते और अस्त होते देख लें तो हम जान जायेंगे कि रात में सोते वक्त क्या-क्या होता है। वे कहते हैं:—

“जैसे सायं काल को अस्त होते हुए सूर्य्य की सब किरणें सिमट कर उसकी तेजोराशि में (जो उन किरणों का केन्द्र है) लीन हो जाती हैं, जिस से वह अर्ध भूभाग जिसमें सूर्य अस्त होता है अन्धकारमय हो जाता है और वे ही किरणें फिर प्रातःकाल को (जब सूर्य का उदय होता है) तो उसमें से निकल कर सर्वत्र फैल जाती हैं जिनसे प्रकाश हो कर दर्शनादि व्यवहार प्रवृत्त होते हैं। इसी प्रकार जब निद्रा समय में इन्द्रिय रूप किरणों का ज्ञान रूप प्रकाश उत्कृष्टता से प्रकाशमान मन रूप सूर्य्य में (जो उनका केन्द्र है) लीन हो जाता है (इन्द्रियों का नेता होने से मन को परम देव कहा गया है) तब निद्रारूप रात्रि प्रवृत होती है जिसमें यह पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न चखता है, न छूता है, न छोड़ता है, न सुख का अनुभव करता है और न चलता है किन्तु “सोता है” ऐसा कहा जाता है। पुनः निद्रा के उपरत होने पर जब जागरण का समय आता है तब, जैसे सूर्य मण्डल में से किरणें निकल कर संसार को प्रकाशित कर देती हैं, ऐसे ही मन में से एकीभूत इन्द्रियों की शक्ति निकल कर उन सब को पृथक-पृथक प्रकाशित कर देती है, जिस से श्रवण, दर्शनादि सम्पूर्ण व्यवहार प्रवृत होने लगते हैं। तात्पर्य यह कि जैसे किरणों का सूर्य में लीन हो जाता ही निद्रा या स्वप्नावस्था है।”

निन्द्रावस्था में हम उन चीजों को देखते हैं जिन्हें इस शरीर से हमने जाग्रतावस्था में देखा। कभी-कभी वे वस्तुएं भी देखने में आती हैं जिन्हें जो शरीर अभी हमें मिला है, उसमें रह कर हमने कभी न देखा हो। उपनिषद् के शब्द हैं--दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चा सच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति “देखे हुए को और बिना देखे हुए को और सुने हुए को और बिना सुने हुए को और अनुभव किए हुए

को और बिना अनुभव किये हुये को और जो कूटस्थनित्य तथा परिणामी नित्य हैं उनको और जो अनित्य पदार्थ हैं और सबको देखता है, सब इन्द्रियों को अपने में लीन करके देखता है।"

मनोविज्ञान जैसा नवीन विज्ञान मानता है कि स्वप्न में देखी गई वस्तु ही दिखती है। इस विज्ञान को मानना पड़ता है कि आत्मा वास्तव में है। जब जैसी चीजें देखने में आती हैं जो इस शरीर में रह कर दिखाई न देती थीं यह सिद्ध होता है कि आत्मा इस शरीर से अलग है। उसका अलग रहना यही सिद्ध करता है कि यह विद्यमान है।

आत्मा की सत्ता में विश्वास न करने वाले सुनाया करते हैं कि ज्यों ही पाँच तत्व का शरीर आता है प्राण, आत्मा जिसे लोग कहा करते हैं, वह भी आता है। आत्मा कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वे यह उदाहरण देते हैं कि पांच आदमी एकत्र हो गए तो हम कहते हैं कि पंच आ गया। पञ्च कोई छठी चीज नहीं है। पञ्च को अलग नहीं किया जा सकता है।

उन्हें अब कहना पड़ेगा कि आत्मा उसी अर्थ में पांच तत्व में नहीं रहता जिस अर्थ में कि पञ्च पांच आदमियों के मध्य रहता है। पांच मनुष्यों का मिलन "पञ्च" कहलाता है। "मिलन" आदमियों से पृथक नहीं है। आत्मा तो शरीर से पृथक है क्योंकि स्वप्न से प्रमाणित हो जाता है कि वह कभी किसी अन्य शरीर में था, वह वर्तमान शरीर से पृथक था और वर्तमान शरीर अभी बना न था।

स्वप्नावस्था की बात दूर रही, जागृतावस्था में भी कोई-कोई आत्मा की सत्ता का अकाट्य प्रमाण पा लेते है। मनोविज्ञान की पुस्तकों में उन लोगों की चर्चा आती है जो किसी साथी के साथ चलते-चलते अचानक कह उठते हैं कि हम और ५ मिनट आगे बढ़ेंगे तो एक झील मिलेगी जिस के तट पर २० पेड़ हैं, आदि। आगे चल कर साथी सचमुच देख लेते हैं कि झील, पेड़—सब मौजूद हैं।※ कैसे इस जन्म में उस झील को न देख कर भी कोई बता दिया करता है कि यहां पर झील है? पूर्व जन्म में जब आत्मा दूसरे शरीर में था उस झील को देखा गया था।

ऐसी घटना से आत्मा का होना सिद्ध हुआ। उसे कोई न कोई सखा होना चाहिये। मित्र विहीन मनुष्य का जीवन आनन्द से खाली है। वह कोई जीवन ही नहीं होता। अगर हमारा मित्र हो और वह श्रेष्ठ मित्र हो तो हमारा जीवन आनन्दमय हो जाता है। हमारे जीने की की इच्छा इस बात का प्रबल प्रमाण है कि जीवन आनन्दमय है।

आनन्ददायक सखा के सम्बन्ध में ही पाँचवां प्रश्न है। पिप्लाद मुनि ओ३म् की महिमा का गीत गा कर सुनाते हैं कि उसका उच्चारण करना अभीष्ट है। ओ३म् नाम वाला सर्वाधार है। उसके बिना हमारे विश्व का विशाल भवन निराधार हो जायेगा। इसी सत्य को कठोपनिषद् में इस तरह प्रकट किया गया है :—

"एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीपते॥

—यही आलम्बन श्रेष्ठतम है और यही सबसे उत्तम है, इसी को जान कर पुरुष ब्रह्मलोक में पूजा जाता है।"

यही भाव छान्दोग्योपनिषद् में पूर्णतया वर्णित है।

नाम जान कर जिस का वह नाम है, उससे मिलने की उत्सुकता होती है। हम बाल्यावस्था से सुनते रहते हैं कि भारत ऋषियों की भूमि है उस भूमि का नाम सुन कर हम उसकी यात्रा करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

※ Deja Vu : a type of parawnesia when one experiences a new experience as if it had all happened before.

James Drever, "A Dichonary of Psychoeogy".

कोषकार बतलाना चाहते हैं कि भ्रम होता है जब कोई ऐसी वस्तु देख लेता है। विद्वानों में संदेह जल्दी होता है। उन्हें डर होता है कि भ्रम न कहा जाय तो दुनिया कहीं मान न लें कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त ठीक है।

ओ३म् नाम सुन कर छठे विद्वान् ने जानना चाहा कि उन से मेल कैसे होता है। उत्तरदाता समझाते हैं कि जैसे नदियां शोर गुल करके समुद्र में मिल जाती हैं ठीक वैसे ही आत्मा चिल्लाना बन्द करेगा जब परमात्मा के पास पहुँचेगा। बच्चा आंगन में अकेला खेलता है और चोट के लगने पर चिल्ला उठता है। ज्योंही माता उसे गोद में ले ले वह अपने दुःख को भूल जाता है। बच्चा माँ से मिले या आत्मा परमात्मा से तो एक सुवर्ण मेल होता है।

हम अपने को भूलना पसंद नहीं किया करते। हां, बेहोशी में अपने को भूल जायं तो भूल जाय होश रहते हम अपने को सबसे सुन्दर, सबसे चतुर, सबसे धनी आदि बनाते रहते हैं। ऐसी अवस्था में हमारा मित्र हमसे निकृष्ट, कम सुन्दर, धनवान होता है। परम मित्र मिल जाय, वे मित्र मिल जायं जिन्हें ओ३म् कहा जाता है, तो उन्हें याद कर के हम अपने आपको भूल जाते हैं। यह मेल एक बड़ा चमत्कार है।

छठे प्रश्नकर्ता से एक राजकुमार मिला था जिसने उनसे पूछा था कि क्या आप मुझे बता सकते हैं कि आप १६ कला वाले पुरुष को जानते हैं? प्रश्नकर्ता कहते हैं, मैंने उसे उत्तर दिया कि में जानता नहीं हूँ मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ कि मैं नहीं जानता क्योंकि झूठ बोलने से मानव मूल सहित नष्ट हो जाता है। यह सुन कर राजकुमार रथ पर आरूढ़ हो कर चला गया।

उस पुरुष को जानने की उत्सुकता इस घटना से भी हुई थी। ऐसे प्रश्न का उत्तर देने में ऋषि को आनन्द हुआ। उन्होंने कहा कि जैसे रथ चक्र की नाभि में छोटे दण्डाकार अरे ओत प्रोत हैं इसी प्रकार उस परमात्मदेव में सोलहों कलाएं ओत प्रोत हैं अर्थात् मुख्यतया सब कलाओं का आधार परमात्मा ही है जिसे १६ कला पुरुष कहा गया।

रथ की चर्चा इस उपनिषद् में पहले भी हुई थी जब कहा गया था कि अराओं के समान रथनाभि में प्राण में सब कुछ प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, ये तीनों प्रकार के मन्त्र इन से होने वाला यज्ञ शारीरिक बल और आत्मिक बल, ये सब प्राण के आश्रित हैं।

प्राण की महिमा दूसरे शब्दों में गायी गायी थी जब कहा गया था कि यह अंगिरस है। प्राण के अभाव में शरीर के सब अंग सूख जाते हैं, रस हीन हो जाते हैं।

प्रश्न किये जा रहे थे और उनका उत्तर दिया जा रहा था। उत्तर दाता प्रश्नकर्ता से इतने खुश हुए कि उन्हें प्रियदर्शन कहने लगे। उनके आत्मा से जो ज्ञान का भण्डार बना हुआ था जब ऋषि प्रेम करने लगे, वे अपने दर्शन से भी गुरु को मुग्ध करने लगे।

उनके प्रश्नों में से एक प्रश्न का उत्तर देते हुये ऋषि ने कहा कि जिस भांति रात्रि में पक्षीगण निवास के लिये वृक्ष का आश्रय लेते हैं उसी भांतिप्रलय रूपी महारात्रि में यह सब उस अक्षर परमात्मा में लीन हो जाता है।

उपनिषदों में जगत् की उपमा वृक्ष से दी गई है। यहां परमात्मा की तुलना वृक्ष से की गई है। परमात्मा आश्रय दाता है। जब उसे १६ कला वाला कहा जाता है यही कहा जाता है कि सब कलाएं उसमें आश्रय पाती हैं, जैसे आश्रय दाता से ही तो हम मानवों को प्रेम का नाता जोड़ना चाहिये।

मुरारी ब्रदर्स कमला नगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

श्री विद्यानन्द विदेह और उनके वेद व्याख्या ग्रन्थ

[आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री पोरबन्दर]

गत वर्ष जब मैं अफ्रीका की यात्रा पर था तो मैं लगभग उस प्रदेश की सभी आर्य समाजों में भी व्याख्यान देने गया। आर्यों ने बहुत प्रेम और चाव से मुझे सभी जगह बुलाया और वैदिक धर्म सम्बन्धी व्याख्यान कराये। इस यात्रा का उस प्रदेश में क्या प्रभाव पड़ा यह मेरे स्वयं कहने का विषय नहीं है। पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज जो मेरे रहते हुए वहां पहुंच गए थे और अब भी वे वहीं अनेक प्रदेशों के प्रचार और संगठन के कार्य में सलग्न हैं—कह सकते हैं। स्वामी जी के व्याख्यानों और संयत जीवन का यहां पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। उस यात्रा में आर्यों ने पूछा कि यहां पर आप से पूर्व आए हुए स्वामी विद्यानन्द जी विदेह क्या सचमुच महर्षि दयानन्द के अवतार हैं? मैंने कहा ससार ने अभी तक दूसरा दयानन्द नहीं दिया। यदि दूसरा दयानन्द आ जावे तो संसार का उद्धार हो जावे। वे दयानन्द के अवतार नहीं हैं—बल्कि इस प्रकार का वे एक नया ढोंग खड़ा कर रहे हैं—यदि वे ऐसा कहते हैं। ऐसे ही प्रश्न लोगों ने पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी से भी किए। वे अपने विचारों को अपने पूर्व लेखों में इस सम्बन्ध में प्रकट कर चूके हैं। पाठक इस बात से समझ सकते हैं कि विदेह जी ने वहां कितना जबर्दस्त भ्रम फैलाया है। आर्य समाज में वह आदमी दूसरा दयानन्द और अद्वितीय वेदज्ञ नाम रखकर भ्रम फैलाए जिसको दयानन्द की धूल का भी स्पर्श न हुआ हो और वेद का अक्षर मात्र भी न आता हो कितने आश्चर्य की बात है। मैंने अभी उनके वेद व्याख्या ग्रन्थ के दो पुष्प देखें है। उनमें उन्होंने जो लिखा है वह स्वयं इस बात के प्रमाण हैं कि न उनको वेद ही आता है और न वे इस कार्य के अधिकारी हैं। ऐसे व्यक्ति का वेदभाष्य करना केवल एक दुस्साहसपूर्ण कार्य है। मैं नीचे की पंक्तियों में उनकी कुछ डींगों का प्रत्याख्यान करने का प्रयत्न करूंगा। मैं चाहता हूँ कि सभी आर्य पत्र मेरे लेख को लेकर अपने पृष्ठों में स्थान दें।

वेद व्याख्या ग्रन्थ के प्रथम पुष्प में श्री विदेह जी ने अपने जो मन्तव्य व्यक्त किये हैं उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

१—अपनी धारणा को एक संन्यासी के मुख से कहलाते हुए वे कहते हैं—"ऋषि, देवता, छन्द और स्वरों में न उलझिये। इन पचड़ों ने ही वेदों का विकास रोक रखा है। वेदों के इन बन्धनों को तोडिए। वेदों को बन्धन मुक्त कीजिये।" आत्म निवेदन पृष्ठ २० प्रथम पुष्प। पुनः पृष्ठ २२ पर लिखा है बादाम का छिलका बादाम की गिरी की रक्षा करता है किन्तु सेवन केवल गिरी ही की जाती है। वेदमन्त्रों में निहित शिक्षा में गिरी हैं अन्य सब बातें छिलके हैं। इत्यादि।

२—यह मान्यता कि वेद के प्रत्येक मंत्र के त्रिविध अर्थ तो होते ही हैं, इनके अतिरिक्त अनेक विध अर्थ भी होते हैं, वेद की सम्बद्धता की सिद्धि में सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हुई।"""आत्मनिवेदन पृष्ठ १८। पुनः पृष्ठ १६ पर लिखते हैं—"मंत्रार्थ की अनिश्चितता का और परिणामस्वरूप वेदों की दिखायी पड़ने वाली असम्बद्धता का मुख्य कारण मुझे प्रतीत हुआ व्याकरणवाद (व्याकरण नहीं व्याकरणवाद), (व्युत्पत्ति शास्त्र नहीं व्युत्पत्तिवाद), प्रमाणवाद (प्रमाण नहीं प्रमाणवाद), विनियोगवाद (विनियोग नहीं विनियोगवाद), यज्ञवाद, तन्त्रवाद, इतिहासवाद और गाथावाद। प्रत्येक मंत्र का एक सुनिश्चित अर्थ है, यद्यपि गौण वृत्ति से उससे अन्य परि-

णाम भी निकाले जा सकते हैं। पुनः प्रत्येक मंत्र का एक सुनिश्चित अर्थ करके मंत्र-मंत्र, सूक्त-सूक्त, अध्याय-अध्याय और वेद-वेद की सुसम्बद्ध संगति लगायी जा सकती है। आत्म-निवेदन पृ० २४।

३—अपनी उपर्युक्त मान्यताओं के प्रकाश में मैंने १९९३ वि० से ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद आरम्भ किया। मुझे सन्तोष है कि चारों वेदों का संगयुतिक्त भावानुवाद में अपनी मान्यताओं के अनुरूप करने में सफल हो गया हूं। आत्मनिवेदन पृष्ठ २२।

श्री विदेह जी की मान्यताओं के ये थोड़े से उदाहरण हैं। इन पर ही यहां विचार करना अपेक्षित है। विदेह जी का प्रयत्न उनके वेदार्थ को स्पष्ट करने का है परन्तु वे अपने शब्दों में इतने स्वयं अस्पष्ट हैं और संदिग्ध हैं कि वेदार्थ की स्पष्टता तो दूर रही उनके विचारों का ही पता लगना कठिन हो जाता है। उनकी ये मान्यतायें ही इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं। पहली मान्यता के अनुसार देवता छन्द आदि को वे वेदार्थ में बन्धन मानते हैं और साथ ही उन्हें बादाम का छिलका समझते हैं—यह उनके लेख से अभिध्वनित होता है। वे प्रचार भी ऐसा ही करते हैं। परन्तु स्वयं अपने वेद व्याख्या ग्रन्थ के प्रथम पुष्प के पृष्ठ २१ पर लिखते हैं कि "वेद सम्बन्धी किसी भी साधन और सामग्री का लोप नहीं होने देना चाहिए ऋषि, देवता, छन्द और स्वर, चारों का ही मूल वेद संहिताओं में शुद्धरूपेण बड़ी सावधानी के साथ सुरक्षित रखना चाहिए। भाष्यकारों के लिए नितान्त आवश्यक और उपयोगी होते हुए भी जनसाधारण के लिए इनका कोई उपयोग नहीं।" कितनी बड़ी अस्पष्टता है। कहीं कुछ और कहीं कुछ कहते हैं। इसके अतिरिक्त अपने पुष्पों में मूल मन्त्रों को छापते हुए किसी मंत्र पर भी ऋषि, देवता, छन्द और स्वर नहीं दिए हैं। कैसी विचित्रता है। आपके शब्द प्रमाण नहीं प्रमाणवाद, व्याकरण नहीं व्याकरणवाद, व्युत्पत्ति नहीं व्युत्पत्तिवाद कितनी अस्पष्टता से भरे हैं।

देवता आदि बादाम के छिलके नहीं हैं

श्री विदेह जी की यह धारणा भी नितराम अनर्गल है कि वेदमन्त्रों के देवता आदि बादाम के छिलके हैं। ऋषि तो केवल मन्त्र दृष्टा होने से वेदार्थ में सहायक नहीं। उनका नाम केवल स्मरणार्थ है। वे वेदमन्त्रों के कलेवर और प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्ध नहीं रखते। परन्तु स्वर और छन्द की स्थिति इससे बहुत ही पृथक है। संहिता का वास्तविक अर्थ स्यात् विदेह जी को ज्ञान नहीं है। यदि स्वर और छन्द, जो दो पृथक विज्ञान हैं, न हों तो संहिता से, मन्त्र, पद, और अर्थ की कल्पना ही नहीं बन सकती। संहिताओं में पूर्णार्थ कहने वाले मन्त्र की सीमा वाक्य की सीमा, पद की सीमा—इन दोनों के आधार पर ही है। श्री विदेह जी वेद से वेदार्थ करने की प्रतिज्ञा तो करते हैं परन्तु उनको नहीं मालूम है कि वेदमन्त्रों में ही छन्दोविज्ञान और व्याकरण विज्ञान का वर्णन है। वेदमन्त्र स्वयं काव्यमय हैं फिर उनमें छन्द न हो अथवा हो तो व्यर्थ हो—यह कैसे ठीक हो सकता है। वेद ही से इस आपकी कल्पना का खण्डन किया जाता है। देखिये इस विषय में अथर्व १।१।२ मंत्र निम्न प्रकार है—

गायत्रेण प्रतिभिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्
वाकेन वाकम् द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमीते सप्तवानी

यहां स्पष्ट भासमान हो रहा है कि मन्त्र छन्द, वाक्य पद और अक्षर के समुचित सन्निवेश के साथ संतुलित कर रचे गए हैं। इसको व्यक्त करने लिए "मिमीते" क्रिया पद भी पड़ा है। इसके अतिरिक्त अथर्व १।१।१८ में ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तः" इस वाक्य से यह बात और भी दृढ़ हो जाती है। जब मन्त्रों का पद पद अक्षर और मात्रा से जांच कर रचित है तो फिर "छन्द" बादाम का छिलका है यह कहां से और किस समाधिस्थ बुद्धि से अनुभूत किया गया। स्वर की भी बात लीजिए। स्वर व्याकरण का एक अंश है। व्याकरण विज्ञान में स्वर का जो स्थान है वह निरर्थक नहीं। वेदार्थ के लिए स्वर का ज्ञान भी आवश्यक है। वेद में "रोदसी" पद आया है। यह स्वरनियमों के अनुसार अन्तोदात्त और आद्युदात्त दोनों प्रकार का मिलता है। साथ ही कहीं कहीं पर व्यत्यय का नियम भी बर्तना पड़ता है जैसा कि ऋग्वेद ५।४६।८ में। परन्तु साधारणतया अन्तोदात्त समय में इसका अर्थ रुद्र की पत्नी होता है

और अद्युदात्त पक्ष में द्यावापृथ्वी अर्थ होता है। स्वरनभिज्ञ कहीं का कहीं तुक मार बैठेगा। दूसरी बात यह है कि अक्षर शब्द नञ् पूर्वक क्षर (अ+क्षर) से बनता है जिस का अर्थ है कि न क्षर होने वाला अविनाशी और अशूङ्व्याप्तौ धातु से भी बनता है। दोनों के स्वरों में भेद पड़ेगा । इस प्रकार मध्यभोदात्त अक्षर पद का पहली (नञ्+क्षर=अक्षर) अक्षर सम्बन्धी प्रक्रिया के साथ समन्वय नहीं खाता। स्वर ज्ञान के बिना कुछ का कुछ बे सिर पैर का अर्थ कोई भी निकालने लगेगा। इसलिए स्वर भी बादाम का छिलका नहीं।*

रही बात देवता की। वह तो वेदार्थ के लिए अत्यन्त उपयोगी वस्तु है क्योंकि मन्त्र या प्रतिपाद्य विषय ही देवता है। श्री विदेह जी की "वेद मन्त्र का एक निश्चित अर्थ है" यह प्रतिज्ञा भी देवता माने बिना सिद्ध नहीं हो सकती। वेद अनेक ज्ञान विज्ञानों का आकार है—यह भी उनका कथन सिद्ध नहीं हो सकेगा। यह भी देवता पद के आधार पर ही बन सकता है। श्रीमान जी ने यदि वेद का नियमित अध्ययन किया होता तो ऐसा न कहते कि देवता बादाम के छिलके हैं। वेद में ही देवता की उपयोगिता बताई गई है। ऋग्वेद १०।७१।५ में निम्न मन्त्र मिलता है। उतत्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवान अफलामपुष्पाम् ।

इसमें स्पष्ट बतलाया गया है कि जो व्यक्ति वेद ज्ञान में अच्छी प्रकार प्रविष्ट है वह स्थिरपीत है वह वेदार्थ की सभी गुत्थियों में बिना किसी भय के प्रविष्ट हो सकता है परन्तु जिसने वेद वाणी के पुष्प और फल को नहीं जाना है वह व्यर्थ की निष्फल माया के साथ विचरता है। यहां पर पुष्प और फल ही वस्तुतः देवता, है अध्यात्म और यज्ञ में ही वेद वाणी के पुष्प तथा फल हैं। अतः देवता के आधार पर अध्यात्म, अधिदैव और अधियज्ञ रूप जो अर्थ वेद मंत्रों के निकलते हैं वही वाणी के पुष्प फल हैं। सभी विचारवान् विद्वान्, यास्क जैसा महामुनि, और दूसरे प्रामाणिक भाष्यकार इसके यही अर्थ समझते हैं। ऋग्वेदीय १० वें मण्डल का ७१ सूक्त वेदार्थज्ञों को कसौटी स्वयं उपस्थित कर देता है। कौन वेदार्थ करने का अधिकारी है और कौन उसे समझता है ? सभी बातों का वर्णन उसमें मिलता है। खेद है कि श्री विदेह जी में इस सूक्त में बताए गए कोई गुण भी नहीं पाए जाते। फिर भी वेदार्थ करके स्वयं वेद की अवहेलना करना चाहते हैं।

अस्तु ! यहां पर वेद वाणी का पुष्प फल ही उसका अपना अर्थ है और वही प्रतिपाद्य विषय होने से देवता कहा जाता है। वह देवता अध्यात्म अधिवेद और अधियज्ञ तीन प्रक्रिया में अर्थों का उन्नायक है। जब स्वयं यास्क और आज तक सभी अविष्कारों के अनुसार तथा स्वयं वेदमन्त्र की परिस्थिति के अनुसार देवता वेदमन्त्ररूपी वाणी का पुष्प और फल है तो आप उसे बादाम का छिल्का कहने का साहस व्यर्थ ही करते हैं। यह कितनी बड़ी अनभिज्ञाता है। आप अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि आपने निरुक्त भी पढ़ा है फिर भी देवता गिरी है या छिल्का है इसका आपको परिज्ञान नहीं।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १।४०।१। मन्त्र में निम्न बातें मिलती हैं।

प्रनूनं ब्रह्मणस्पति मन्त्रं वदत्युक्थाम । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

अर्थात् वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर निश्चय ही उन्नति के साधक मंत्रों का उपदेश करता है। जिनमें इन्द्र, वरुण, मित्र अर्यमा आदि समस्त देव निवास किए हैं। यहां मंत्र में ही स्पष्ट बता दिया गया कि देवता अर्थ रूप में मंत्रों मे ही विद्यमान हैं। मंत्रों में घर करने के लिए "ओकांसि चक्रिरे" पदों का प्रयोग किया गया है। इसका यह स्पष्ट भाव है कि शब्दमय-मत्रों-रूपी गृह में अर्थरूप से विद्यमान हैं। इसी भाव को यास्क ने स्पष्टरूप में वियक्त किया। यास्क निरुक्त में देवता की व्याख्या

[शेष पृष्ठ १६ पर]

---

*स्वर के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये वेद-प्रकाश के अगले अङ्क में श्री पं. युधिष्टिर मीमांसक का लेख पढ़ें। —सम्पादक।

श्री घनश्याम सिंह गुप्त उत्तर दें

क्या सत्याग्रह सफल हुआ ?

पंजाब हिंदी रक्षा समिति तथा भाषा स्वातन्त्र्य समिति ने श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को सर्वाधिकारी चुन कर भयंकर भूल की थी। जिसका यह परिणाम है कि आर्य समाज को जनता के सामने झुकना पड़ रहा है।

पंजाब के इस सत्याग्रह के सर्वाधिकारी का चुनाव कई महानुभावों को अरुचिकर लगा। परन्तु श्री घनश्यामसिंह जी के वार वार विश्वास दिलाने पर कि में कोई ऐसा कार्य नहीं करूंगा जिससे आर्यसमाज के मान मर्यादा को लेश मात्र भी ठेस पहुंचे।

वार वार व्याख्यानों में भी यही विश्वास दिलाते रहे कि समझौता करते समय अमर शहीद सुमेरसिंह का बलिदान, चण्डीगढ़ समाज मन्दिर यज्ञ वेदी, तथा ओ३म् की पताका का अपमान तथा फिरोजपुर, बहुअकबरपुर का अमानुषिक जुल्मी कांड, महिलाओं का अपमान इन सब को दृष्टिगत रखा जायगा।

सत्याग्रह स्थगित करने के समय उपरोक्त बातों का कोई ध्यान नहीं रखा गया। लेश मात्र भी उपरोक्त कांडों का प्रतिकार नहीं कराया गया।

श्री सुमेरसिंह की हत्या के बाद कहा जाता था कि सरकार पर एक लाख का दावा किया जायगा। फिरोजपुर काण्ड के जख्मियों को हर्जाना दिलाया जायगा, आदि २ सब मनसूबे धरे के धरे रह गये।

फारमूलों में जो ६, १०, वीं धारा के निकाल देने की बात कही जाती है, उसे भी गृह मन्त्री ने साफ शब्दों में और लिखित रूप में अस्वीकार कर दिया है। किंतु धारा २ और ११ धारा ६—१० के आशय को पूरा करती है।

सत्याग्रह स्थगित करते समय आर्य नेताओं ने कहा था कि हमारी ९० प्रतिशत मांगें स्वीकार हो गई हैं। बाकी १० मांगों के लिये गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाई जावेगी, हुआ कुछ भी नहीं। उल्टा गृह मंत्री ने कहा कि आर्य समाज को कोई आश्वासन नहीं दिया गया।

आर्य समाज के प्रति सदभावना भी झूठी निकली जब कि सत्याग्रह बन्द करने के बाद भी श्री आचार्य भगवान देव जी पर मुकदमा चलाया गया। 'वीर अर्जुन' हिन्द समाचार' पत्रों पर मुकदमे चले। गुरुद्वारों के कथित अपमान को ले कर कई आर्यों पर अत्याचार हुए। देहली के भोगल काण्ड में पकड़े गये आर्यों पर अभी तक मुकदमे चल रहे हैं। जालन्धर के काण्ड के बाद भी आर्यों के साथ न्याय नहीं हुआ।

जालन्धर काण्ड श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त के सामने घटा, इस कांड के बाद गुप्त जी ने घोषणा की थी कि इस साम्प्रदायिक गुण्डागर्दी को समाप्त करने के लिये भी एक घोर आन्दोलन होगा और वह तब तक बन्द न होगा, जब तक साम्प्रदायिकता खतम नहीं होगी। आज आर्य जनता पूछती है यह सब दृढ़ता और गुप्त जी की घोषणाओं का क्या हुआ ?

बोले नहीं सो बोरे

यह सिन्धी कहावत है इसका अर्थ है जो बोलता नहीं वह डूबोता है! ठीक इसी प्रकार गुप्त जी ने गृह मंत्री पंत तथा प्रधान मन्त्री नेहरू जी के साथ साठ गांठ करके सत्याग्रह स्थगित ही नहीं बन्द कर करा दिया। आर्य समाज के लाखों रुपयों का खर्च तथा डेढ़ दर्जन के करीब बलिदान हजारों सत्याग्रहियों की जेल यात्राओं पर पानी फेर दिया, आज तक उन गुप्त आश्वासनों को प्रकट नहीं किया। भगवान् ही आर्यों का तथा देश का रक्षक है।

सत्याग्रह बन्द होने के बाद सफलता या असफलता के विषय में श्री पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी माननीय जगदेव जी सिद्धान्ती तथा श्री आचार्य भगवान् देव जी आदि प्रमुख नेता मौन हैं सत्याग्रह की असफलता की हार्दिक वेदना ही मौन का प्रमुख कारण है।

आर्य सेवक—गोविन्दराम हासानन्द,
जगदीश चन्द्र विद्यार्थी, विद्यावाचस्पति आर्योपदेशक,
लखमीदास आर्य,
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार।

विधवा-विवाह

(लेखक—स्वामी शंकरानन्द जी महाराज)

पण्डित जी—अरे अब तो धर्म ही उठ गया ।

महात्मा—क्यों पण्डित जी क्या बात है ?

पण्डित जी–विधवाओं के विवाह होने लगे । ऐसा अंधेर–शास्त्र और वेद के विरुद्ध । इन आर्य-समाजियों ने सत्यानाश कर दिया है ।

महात्मा--पण्डित जी, अब वह समय नहीं रहा कि आप बहकाते रहें । देखिये यह मन्त्र ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १८ मंत्र ८ तथा अथर्व वेद कांड १८ सूक्त ३ मंत्र २ का है ।

उदीर्ष्व नार्यभी जीवलोकं गता सुमेतमुपशेष एहि ।
हस्त ग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्ज नित्वमभि संबभूत ॥

अर्थ--हे स्त्री ! तू इस मरे हुए पति के पास से उठ और इस पुरुष का अनुकरण कर जो तेरे साथ विवाह करने को इच्छुक है ।

मनुस्मृति अध्याय ६ श्लोक १७५–१७६ में लिखा है ।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा स्वेच्छया ।
उत्पादयेत पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥

जिस स्त्री को पति ने छोड़ दिया हो या जिसका पति मर गया हो वह अपनी इच्छा से पुनर्विवाह करके पुत्र उत्पन्न करती है तो उस पुत्र को पौनर्भव कहते हैं ।

पाराशर स्मृति अध्याय ४ श्लोक ३० में लिखा है ।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

अर्थ–पांच अवस्थाओं में स्त्री पुनर्विवाह कर ले ।

पति (१) नष्ट हो जाय, (२) मर जाय (३) सन्यासी हो, (४) नपुंसक हो जावे, (५) अधर्मी हो जाय ।

कितने स्पष्ट शब्दों में विधवा–विवाह का वर्णन है ।

वशिष्ट स्मृति में आया है ।

या च क्लीबं पतितमन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्यं
पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ।

इसमें स्पष्टतया लिखा है कि जो स्त्री नपुंसक, अद्धर्मी, पागल, या मृत पति को छोड़कर पुनः विवाह करती है उसको पुनर्भू कहते हैं ।

याज्ञवल्क्य जी लिखते हैं:–

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूःसंस्कृता पुनः

जिस स्त्री ने पति से समागम किया है और जिसने नहीं किया दोनों ही फिर से विवाह कर सकती हैं ।

पण्डित जी ! यही नहीं सैकड़ों अन्य प्रमाण मिलते हैं ।

पण्डित जी–विवाह क्यों होना चाहिये ?

महात्मा सुनिये:–

(१) विधवा विवाह न करने से आप अपनी कन्याओं के साथ अन्याय करते हैं । आप स्वयं काम को नहीं जीत सकते और वृद्धावस्था में भी विवाह कर लेते हैं पर आप अपनी कन्याओं से आशा रखते हैं कि वे काम को वश में रख लेंगी ।

(२) विधवा विवाह न करने से व्यभिचार बढ़ता है । जो विधवा सदाचारी से नहीं रह सकती वह लोगों से गुप्त सम्बन्ध रखती है ।

(३) विधवायें घर से निकलकर वेश्यायें हो जाती है ।

(४) विधवाओं के विवाह न होने से भ्रूणहत्यायें बढ़ती हैं ।

(५) विधवाओं का विवाह न होने से हमारी विधवायें मुसलमान और ईसाई हो जाती हैं क्योंकि वहाँ उनके साथ अत्याचार नहीं होता ।

(६) वेद तथा शास्त्र विधवा-विवाह के विरोधी नहीं हैं । वे विधवाओं को विवाह करने की आज्ञा देते हैं ।

मेरा नाम कमला है । जाति की कायस्थ हूं । में सोलह वर्ष की आयु में विधवा हो गई थी । तब से बराबर पिता के पास ही रहती हूँ । मेरी माता को मरे हुये ६ महीने भी नहीं बीते थे कि पिता के पास लोग ब्याह के

लिये आने लगे। पर उन्होंने मुझे इस बात का पता न होने दिया। एक दिन नौकरानी ने मुझसे कहा कि रविवार को तुम्हारे बाबू जी विवाह करने जायेंगे। पिता की अवस्था इस समय ४५ वर्ष की होगी।

मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। आज जब पिता जी घर आये तो मैंने पूछा "मैंने सुना है कि आप का ब्याह पक्का हो गया है। भय्या का ब्याह कर देते, तब अपना करते।"

यह सुनते ही मुझ पर बेहतर बिगड़े और हजारों गालियां सुनाईं। जिस लड़की की बात-चीत मेरे भाई के लिये हो रही थी उसी से अपनी शादी करली। इसका भाई पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह पागल हो गया।

अब मुझ पर रोज मार पड़ती है मेरी मां चुगली करती रहती है। मुझे हुक्म हो गया है कि रोज सवेरे उठकर घर साफ कर लिया करूं और कमरे में छिप जाया करूँ। मैं विधवा हूँ और सुबह मेरा मुँह देखने में पाप लगता है। अगर किसी दिन प्रातः मैं दिखाई पड़ गई तो दिन का खाना बन्द हो जाता है। मेरे पिता मेरी माता के साथ सुख के दिन बिताते हैं पर मेरे सुख की चिन्ता नहीं। अब मुझे जल्दी ही इस लोक को छोड़ देना पड़ेगा।

[शेष पृष्ठ १३ का]

करते हुए लिखता है—यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। अर्थात् ऋषि परमेश्वर जिस मंत्र में जिस देवता के वर्णन की कामना से कि वह मंत्र का अर्थपति हो मंत्र का उपदेश करता है वही उस मंत्र का देवता होता है। वेद और निरुक्त दोनों यहां स्पष्ट बता रहे हैं कि देवता फल (आपके शब्दों में कहें तो गिरी) है और वेदमंत्रों के रहस्य है। इतना ही नहीं यहां पर आर्थपत्य शब्द का प्रयोग है जिस का भाव है कि शब्द अनेकार्थक होता है अतः अनेकार्थ हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में वेदमंत्रों में देवता के शब्द ऐसे कहे गए हैं जो अनेकअर्थों के पति हों। अर्थात् तीनों प्रक्रियाओं में अर्थ निकल सके। इस विषय का विशेष ज्ञान मेरी लिखी वैदिकज्योति पुस्तक के देवता-प्रकरण से प्राप्त किया जा सकता है।

श्री विदेह जी कहते हैं कि बादाम की गिरी ही लोगों को देना चाहिए छिलका चबाने से क्या फायदा। लेकिन वे भूल जाते हैं कि बादाम के अस्तित्व को रखने और उसकी खेती करने में छिलके सहित बादाम की ही जरूरत होती है। गिरी गिरी मात्र वृक्ष नहीं पैदा करते कि आगे फल मिलता रहे। हां! एक बात यह अवश्य है कि गिरी में डिठोरी की गिरी मिलाकर भी अपनी दुकान चलाने वाले बादाम के भाव पर बेच लेते हैं। छिलके सहित बादाम में यह धोखा नहीं हो सकता। वेदार्थ के नाम पर यदि ऐसी ही दुकान किसी को चलानी हो तो वह देवता आदि को छिलका क्यों न कहें? वस्तुतः देवता जिसे वे बादाम का छिलका कहते हैं उसके विषय में अभी उन्हें बहुत ही अध्ययन करने की जरूरत है। यहां पर केवल एक मान्यता पर विचार किया गया।

ऋग्वैदिक नदी-विमर्श

(वैदिक गवेषक शिवपूजन सिंह कुशवाहा पथिक बी० ए०, साहित्यालंकार, कानपुर)

वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है। वेदों में किसी प्रकार का अनित्य इतिहास नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् वेदों में ऐतिहासिक गाथा, नदी, पहाड़, आदि का उल्लेख करते हैं और उनके चरण-चिन्हों पर चलने कतिपय भारतीय विद्वान् भी वैसी ही बातें लिखते व मानते हैं।

प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, जयपुर, का मासिक पत्रिका "सरस्वती" प्रयाग वर्ष ५९ फरवरी १९५८ ई० खण्ड १, संख्या २ पृष्ठ ८१ से ८४ तक ऋग्वेद में नदियों का उल्लेख "शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी के लेख के आधार पर ऋग्वेद में से नदियों का वर्णन किया है। आपके लेख का सारांश यों हैं—

पृष्ठ ८१ में:—

'....ऋग्वेद में नदियों का उल्लेख अनेक स्थानों पर आता है। पं० सत्यव्रत सामश्रमी महोदय ने ऐतरेयालोचन' नामक पुस्तक में कुछ नदियों के, जिनका ऋग्वेद में उल्लेख हैं वर्तमान अवस्थान भी दिखाने का प्रयत्न किया है। आर्यों की पुरानी आवास भूमि तुग्व सुवास्तु (ऋ० ८, २०, ३७) नदी के तट पर थी, और उसका नाम तुग्व तीर्थ था। यास्क ने यहां सुवास्तु का अर्थ इस नाम की नदी ही किया और तुग्व को तीर्थ ही माना है।

ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल में अनेक नदियों के नाम दृष्टिगोचर होते हैं।.... इस मन्त्र में रसा, कुभा, क्रुमु, सिन्धु और सरयू इन पांच नदियों के नाम आए हैं।.... १०।७५। ६ मन्त्र में 'रसा' नदी को सिन्धु से संगत कहा गया है।

पृष्ठ ८२ कौलम १—

"जुन्हुमुनि के प्रसिद्ध आश्रम के नीचे बहने वाली जाह्नवी का "पुराणमोक: सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जान्हात्याम् (३, ५८, ६) में उल्लेख है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में नव ऋचाओं का एक सूक्त है। इसमें नदियों की स्तुति होने के कारण इसको नदी सूक्त की संज्ञा दी गई है। इस सूक्त की प्रथम ऋचा का उत्तरार्ध है—

"प्रसप्त सप्त त्रेधाहि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा।" (ऋग्वेद १०. ७५. १)

अर्थात् नदियाँ सात सात की तीन श्रेणियां बना कर बहती हैं।...

त्रि: सप्त सस्रा नद्य: १०. ६४. ८ इत्यादि अन्य स्थानों में भी इन इक्कीस नदियों का उल्लेख मिलता है।

पृष्ठ ८३ कौलम १—

इस सूक्त की पाँचवीं ऋचा है—

'इमं में गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्राया।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जी कीये श्रृणुह्या सुषोमया॥"

(ऋग्वेद १०. ७५. ५.)

इस मंत्र में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, मरुद्वृधा, आर्जीकीया और सुषोमा इन सात नदियों का उल्लेख है।

इस सूक्त की छठी ऋचा में इस प्रकार है—

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः।...

(ऋ० १०. ७५. ६.)

इस मंत्र में (१) तृष्टामा ( ) सुसर्तु (३) रसा

(४) श्वेती (५) कुभा (६) गोमती (७) क्रुमु इन सात नदियों का नामोल्लेख है ।

पृष्ठ ८४ कौलम २

ऋग्वेद १, १०४, १, २, ३, में वर्णित शिफा नाम की नदी तो निषध देश में सम्भव है । आठवें मण्डल के ९६, १३, १४, १५, में अंशुमती नदी का उल्लेख है । अन्य अनेक नदियों का वर्णन ऋग्वेद में हैं ।

समीक्षा—वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं । वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं, रूढ़ि नहीं । वेदों में किसी प्रकार का इतिहास, नदी, पहाड़, के नाम आदि नहीं हैं । चतुर्वेदी जी ने ही केवल नहीं वरन् अन्य कई विद्वानों ने अपने २ ग्रंथों में 'नदियों' की कल्पना की हैं । यथा—

श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय एम० ए१, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०२ श्री निवासाचारी एम० ए० तथा श्री एम० एस० रामास्वामी आयंगर एम. ए.३ ।

श्री सम्पूर्णानन्द जी बी. एस. सी.४ श्री सत्यनारायण दूबे एम. ए. ५. मिश्रबन्धु ६. श्री श्याम किशोर मालवीय एम० ए० ७. श्री नेत्र पाण्डेय एम० ए०, एल. एल. बी. ८. श्री गंगाप्रसाद मेहता एम. ए. प्राध्यापक इतिहास विभाग काशी विश्वविद्यालय ९. श्री हरिदत्त जी वेदालंकार एम. ए. १०. पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ११. डा. राधा कुमुद मुकर्जी एम. ए. डी. लिट्१२ श्री वेनीप्रसाद एम. ए. पी. एच. डी. १३. पं. गिरीशचन्द्र अवस्थी व्याकरणाचार्य, प्रधानाध्यापक संस्कृत प्राच्य विभाग लखनऊ विश्व विद्यालय १४. श्री शिवदत्त ज्ञानी एम. ए. १५. श्री हरिराम धस्माना१६. आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री१७ पं. वलदेव उपाध्याय एम. ए. १८ श्री बी. एन. लूनिया- एम. ए. प्राध्यापक इतिहास तथा राजनीति विभाग, होल्कर कालेज, इन्दौर१९ श्री राम त्यागी एम. ए. २०. श्री भगवत शरण उपाध्याय एम. ए. २१. पं० राम गोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री २२. श्री उदयवीर शास्त्री, विद्याभास्कर २३. श्री शिवकुमार शुक्ल शास्त्राचार्य २४. पं. सत्यव्रत सामश्रमी २५. पं. श्री दामोदर सातवलेकर २६ ।

श्री चतुर्वेदी जी तथा अन्य २६ विद्वानों ने भ्रमवश वेदों में नदियों का उल्लेख किया है । वेदमंत्रों के अर्थ निरुक्त, निघण्टु, आदि की सहायता से करना उचित है । वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में महान् अन्तर है ।

चतुर्वेदी जी ने स्वयं ऊहापोह से वेदमंत्रों का अनुशीलन नहीं किया उन्होंने केवल श्री सत्यव्रत सामश्रमी की पुस्तक "एतरेयालोचन" को देखकर इस प्रकार की अनर्गल कल्पना की है ।

ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ७५ के मंत्रों में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी । प्रभृति शब्दों को देखकर लौकिक नदियों की कल्पना की जाती है ।

---

१. साप्ताहिक पत्र "दिवाकर" आगरा का 'वेदांक" भाग १, दिनांक २६।१०।१९३५ ई०, अंक २८-२९ पृष्ठ २९-३० वैदिक भूगोल शीर्षक लेख तथा 'गँगा' का "पुरातत्वांक" प्रवाह ३ जनवरी १९३३ ई० तरंग १, पृष्ठ १०८, "वैदिक भूगोल" शीर्षक लेख ।

२. मासिक पत्र 'गंगा' का वेदांक "पृष्ठ २२३" ऋग्वेद का भारतवर्ष "शीर्षक लेख ।

३. "प्राचीन भारत" (हिन्दू काल) प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३५ ।

४. "आर्यों का आदि देश" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३३ ।

५. "प्राचीन भारत का इतिहास" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २० ।

६. "वृद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास" तृतीय संस्करण, पृष्ठ १३२ तथा १५३ !

७. "भारत का राष्ट्रीय इतिहास" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३ ।

८. "भारत का बृहत् इतिहास" प्रथम भाग, प्रथम रांस्करण पृष्ठ ५७ ।

९. "प्राचीन भारत" द्वितीयावृति, पृष्ठ ३१ ।

१०. 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास" प्रथम संस्करण पृष्ठ १७ ।

११. "ऋग्वेद लोचन" प्रथम संस्करण पृष्ठ २७ से २९ तक ।

१२. "Hindu Civilization" का अनुवाद "हिन्दू सभ्यता" प्रथम संस्करण ७१-७२ ।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी महाराज ऋग्वेद १०।७५।५ के मंत्र का जो अर्थ किया है वह ठीक है। आप गंगा, यमुना आदि नदियों के सम्बन्ध में लिखते हैं—

'…… …इडापिङ्गलासुषुम्णाकूर्म्म नाडयादीनां गंगादि संज्ञास्तीति। तासां योग समाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात्। तस्य ध्यानं दुःखनाशकं मुक्तिप्रदं च भवंत्येव। तासामिडादीनां धारणा सिध्यर्थं चित्तस्य स्थिरीकरणार्थे स्वीकरणमस्तीति तत्र ग्रहणात्। एतन्मत्र प्रकरणे परमेश्वर स्यानुवर्त्तनात्। एवमेव (सितासिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति०) एतेन परिशिष्ट वचनने केचिद् गंगा यमुनयोग्रहणं कुर्वन्ति। 'संगथे' इति पदेन गंगा यमुनयोः संयोगस्य प्रयागतीर्थमिति संज्ञां कुर्वन्ति। तन्न संगच्छते।"२८

अर्थात्—"इस मंत्र में गंगा आदि इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, कूर्म्म और जाठराग्नि की नाड़ियों के हैं उनमें योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग दुःखों से तर जाते हैं, क्यों कि उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण की जाती है। इस हेतु से इस मंत्र में उनकी गणना की है। इस लिए उक्त नामों से नाड़ियों का ही ग्रहण करना योग्य है। क्यों कि इस मंत्र के प्रकरण में परमेश्वर का अनुवर्तन माना गया है। (सितासिते०) इस परिशिष्ट वचन से कई लोग गंगा यमुना का ग्रहण करते हैं और कहते हैं कि "संग्रते" इस पद से गंगा, यमुना के मिलने के स्थान का नाम ही प्रयागतीर्थ है। यह बात ठीक नहीं।"

महर्षि दयानन्द जी के लेख की पुष्टि अन्य प्रमाणों से भी होती है यथा विजय तन्त्र तथा आगम साक में लिखा कि है—

"गंगा यमुनयोर्मध्ये नत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मस्य साधकः॥"

अर्थात्—गंगा; यमुना नाम की मनुष्य शरीर में दो नाड़ियां इड़ा, पिङ्गला हैं। इनमें दो मत्स्य (श्वास-प्रश्वास) चलते रहते हैं। जो साधक इन दोनों श्वास-प्रश्वास नामक मत्स्यों को पकड़ कर खा जाता है। वह मत्स्य-साधक है। २९

महर्षि दयानन्द जी का अर्थ निरुक्त के अनुसार है। 'नदी' का अर्थ है—ये चलती हुई शब्द करती है। अतः इन्हें नदी कहते हैं। शब्दार्थक 'नद्' धातु से 'घञ्' और स्त्रीलिंग में 'ङीप्' प्रत्यय।

---

१३. "हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता" प्रथम सस्करण, पृष्ठ ३१।

१४. "वेद धरातल" प्रथमावृति, पृष्ठ ३७२, ६८३।

१५. 'भारतीय संस्कृति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २७।

१६. "वेदमाता (ऋग्वैदिक भूगोल), प्रथम संस्करण, पृष्ठ १० से २२ तक।

१७. "वेद और उनका साहित्य" प्रथमावृति, पृष्ठ ६७।

१८. "वैदिक साहित्य और सस्कृति" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३५५ से ३६२ तक।

१९. "भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति का विकास" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ४३-४४।

२०. "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५।

२१. 'प्राचीन भारत का इतिहास" प्रथम संस्करण पृष्ठ २९।

२२. "वैदिक साहित्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८५ से २९६ तक।

२३. मासिक "वेदवाणी" काशी, वर्ष ९ जुलाई १९५७ ई. अंक ९ से १३ तक "ऋग्वेद की नदियां" शीर्षक लेख तुलना को त्रैमासिक पत्रिका "राजस्थान भारती" जुलाई १९५६ ई. में "सरस्वती शीर्षक" लेख।

२४. मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वर्ष १० फरवरी १९५८ ई०, अंक ४ पृष्ठ २८ से २९ तक "ऋग्वेद की नदी-चर्चा" शीर्षक लेख।

२५. "ऐतरेयालोचन" द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, पृष्ठ २६-२७।

२६. "दैवत संहिता" प्रथम खण्ड की भूमिका, पृष्ठ ४३-४४ (सन् १९४१ ई० में मुद्रित)।

यही ऋ० १०।७५।५ मंत्र "निरुक्त" ९ अ० ३ पा० २४ खं० २० श० में आया है और महर्षि यास्क ने "गंगा" आदि शब्दों के पृथक २ निर्वचन दिए हैं। यथा–

"गंगा गमनात्। यमुना प्रयुवती गच्छतीति वा, प्रवियुतं गच्छतीति वा। सरस्वती, सरइत्युदकनाम सर्तेः तद्वती। शुतुद्री शुद्राविणीचिप्रदाविणी आशु तुन्नवे द्रवतीति वा। इरावतीं परुस्णीत्याहुः पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी। असिक्न्यशुक्ला ऽसिता, सितनिति वर्णनाम, तत्प्रतिषेधोऽसितम्। मरुद्वृधाः सर्वा नद्यः, मरुत एना वर्द्धयन्ति। विसस्ता विदग्धा, विवृद्धा महाकूला। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः। ऋजीक प्रभवा वा, ऋजुगामिनीवा। विपाड् विपाटनाद्वा। विपाशनाद्वाः विप्रापणाद्वा। पाशाअस्यां व्यपाश्यन्त बसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्मा द्विपाडुच्यते। पूर्वमासीद् उरुञ्जिर सुषोमा सिन्धुः यदेनामभि प्रसुवन्तिनद्यः। सिन्धुः स्यन्दनात्॥ ४।२४॥

पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार, पालीरत्न अर्थ करते हैं–"(गंगे यमुने) हे ईड़ा! हे पिङ्गला। (शतुद्रि परुष्णि सरस्वति) और हे शतुद्री तथा परुष्णी नामों वाली सुषम्ना नाड़ी! (मे इमं स्तोमं आसचत) तुम मेरे इस परमेश्वर स्तवन का सेवन करो। (मरुद्वृधे असिक्नय) हे सुषम्णा! तू पिङ्गला कैसा (आर्जी किये)! वितस्ततया सुषोमया) और हे इड़ा! तू वितस्ता नाम वाली सुषुम्णा के साथ मिली हुई (आशृणुहि) मेरे इस परमेश्वर स्तवन का श्रवण कर। ३०

क्रमशः

---

२७. श्री वी. एस. घाटे कृत "लेक्चर आंन ऋग्वेद" पुस्तक की भूमिका।

२८. "ऋग्वेदादि भास्य भूमिका" ग्रन्थ प्रामाण्या प्रामाण्या विषयः।

२९. पं देवी प्रसाद घिल्डियाल एम. ए. एल एल. बी. कृत "पञ्चमकार तथा भावत्रय" प्रथम संस्करण; पृष्ठ ९८।

३०. "निरुक्त भाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ५८७।

भगवान् के अनन्त दान

३—इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत॥ सहस्रं यस्य रातय उत वा शान्ति भूयसीः ऋ०।१।११।९।

अर्थ—(स्तोमाः) हमारे स्तोत्र, स्तव, प्रार्थना, गीत, गान इत्यादि सकल व्यापार (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा को ही (अभि+अनूषत) सब प्रकार से दिखलाने वाले हों, जो इन्द्र (ओजसा) बल और ज्ञान पूर्वक (ईशानम्) इस जगत् का नियामक हो रहा है अर्थात् जो बल पूर्वक इस सकल अचिन्त्य संसार को अपने नियम में रखकर शासन कर रहा है। हे! मनुष्यो (यस्य+रायतः) जिसके दान (सहस्रम) सहस्र संख्यायुक्त हैं (उत+वा) अथवा सहस्र संख्या से भी जिसके दान (भूयसीः+सन्ति) अधिक हैं।

आशय—हे मनुष्यो! हम और तुम सब कोई मिलकर उसी परमात्मा के यशोगान करें, जो इस जगत् का ईशान (ईश) है और जिसके अनन्त दान हम लोगों को सुख पहुंचा रहे हैं। देखो इस पृथिवी पर कितने प्रकार के अन्न, फल, कन्द, मूल, वृक्ष, लता औषधियां विद्यमान हैं। कितने दूध देने वाले पशु, गायक विहगगण हैं। इसके अतिरिक्त नदी, समुद्र, पर्वत इत्यादि, आकाश में सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ इत्यादि, शतशः पदार्थ हम को सुख दे रहे हैं। अतः वही एक वेद उपास्य हैं।

दिल्ली में आर्य नेताओं का अधिवेशन

सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्य समिति ने रविवार को अपनी बैठक में एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया कि पंजाब की भाषा समस्या के उचित तथा न्यायपूर्ण समाधान के लिए शीघ्र ही कोई सक्रिय पग उठाए ।

उक्त अपील आज सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बैठक में जो कि हिन्दी रक्षा सत्याग्रह के स्थगन के ठीक चार मास पश्चात् दीवान हाल में हुई, की गई । बैठक में देश भर से लगभग ५०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और इसकी कार्यवाही श्री घनश्याम सिंह गुप्त की अध्यक्षता में दोपहर ढाई बजे से सायंकाल साढे छः बजे तक जारी रही ।

बैठक के आरम्भ में समिति के मन्त्री श्री रघुवीर सिंह शास्त्री ने २७ दिसम्बर १९५७ से आज तक की स्थिति पर प्रकाश डाला । आपने बताया कि हिन्दी रक्षा सत्याग्रह सरकार द्वारा सद्भावना का आश्वासन दिये जाने के पश्चात् किया गया था । पं० नरेन्द्र जी ने इन घटनाओं पर विस्तारपूर्वक भाषण करते हुए कहा कि इस विषय पर विचार करने के लिए आगामी ९ जून को फिर बैठक होगी ।

प्रस्ताव

"सार्वदेशिक भाषा स्वातंत्र्य समिति का यह अधिवेशन अनुभव करता है कि हिन्दी सत्याग्रह के स्थगन के अवसर पर सरकार तथा कांग्रेस के उच्चतम नेताओं द्वारा अपने सार्वजनिक भाषण में तथा अन्य प्रकार से पंजाब की भाषा समस्या को शांत वातावरण में सुचारू रूप से हल करने का जो विश्वास दिलाया गया था उसे कार्यान्वित करने की दिशा में चार मास में कोई सक्रिय पग नहीं उठाया जिसके फलस्वरूप जनता में बेचैनी एवं रोष बढ़ता जा रहा है और सरकार के प्रति उनका विश्वास उठता जा रहा है । ऐसी विषम परिस्थिति में समिति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करते हुए सरकार से कहना चाहती है कि जनता की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए पंजाब की भाषा समस्या को, जो कि भाई को भाई से लड़ाने का एक कारण बन गई है, इस प्रकार हल करने के लिए निकट भविष्य में कोई सक्रिय पग उठावे जिससे उचित तथा न्यायपूर्ण समाधान हो सके । साथ ही समिति हिन्दी प्रेमी जनता को बताना चाहती है कि उसे इसका पूरा ज्ञान है कि आर्यसमाज में और उस के समर्थकों में वास्तविक समय पड़ने पर त्याग और बलिदान का अटूट सामर्थ्य है ।

प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि आगामी ९ जून को सारी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सम्बन्ध में भावी कार्यक्रम निर्धारित करने के लिये सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्य समिति तथा पंजाब हिन्दी रक्षा समिति की एक संयुक्त बैठक होगी ।"

अपनी अपनी बात

यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक का मत लेखक से मिलता हो

श्री मान् संपादक जी, वेद प्रकाश,
नमस्ते !

कल रविवार २७—४—१९५८ का आर्य संमेलन अपनी विलक्षणता में अभूतपूर्व रहा । आर्य जगत् को निमन्त्रित तो किया गया था वर्तमान परिस्थिति पर विचार करके आगामी कार्य-क्रम निर्धारण करने को पर हुआ कुछ और ही । संमेलन के प्रारम्भ में विलम्ब हुआ, सो कोई अनहोनी बात नहीं । हम इस दोष से मुक्त होने का गम्भीर प्रयत्न करना अनावश्यक समझते हैं । हमने मान लिया है कि समय का अपालन ही भारतीयता का लक्षण है ।

देरी से तो आरम्भ किया और फिर अतीत का वर्णन और उसका समर्थन करने में नेतृगण ने वृथा ही बहुत सा काल-क्षेप किया । भूलों के समर्थन का अनुचित प्रयास देख कुछ संमेलन सदस्यों का परिस्थिति की स्पष्टता की मांग करना स्वाभाविक था । सत्याग्रह के उद्देश्य की असफलता को सत्याग्रह की पूर्ण अहिंसात्मकता रूप सफलता से ढांप ने का प्रयत्न 'आम्रान पृष्ट को विदाराना चष्टे' (=प्रश्न आम का, उत्तर कचनार का) था । और यह वैसा ही अतीव हास्यास्पद था जैसा कि काश्मीर युद्ध के महान् बलिदान और प्रचुर धन व्यय को युद्ध बन्दी के आदेश (सीज फायर ओर्डर) से निरर्थक बताए जाने की चर्चा पर कोई यह उत्तर देवे कि 'नहीं । काश्मीर युद्ध परम सफल था, क्योंकि हमारी सेना बड़ी वीरता से लड़ी थी । हमारी सेना नहीं भागी थी । भागी थी पाकिस्तान की सेना ।' नेता गण अपनी ही बात रखने को इतने तुले हुए थे कि किसी को भी नहीं बोलने दिया गया । यह अनौचित्य की पराकाष्ठा थी ।

आर्य जगत् को बुलाया गया था परिस्थिति पर विचार कर भावी पुरोगम निश्चय करने को, पर महान् नेताओं ने घोषणा की कि आपके समक्ष भाषा स्वातन्त्र्य सभिति की अन्तरंग द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव रखा जायगा । पर आप इस पर सम्मति न देंगे । बस सुनाया मात्र जायगा ।'

कैसी अद्भुत बातें थीं, कल की सभा की । भला आत्म समर्थन तथा प्रस्ताव श्रावण को संमेलन बुलाए जाते हैं । इतना कार्य तो समाचार पत्रों द्वारा अधिक सुन्दरता व सुगमता से हो सकता है । पहाड़ खोदकर चूहा ही निकालना था तो आर्य जगत् के इतने महान् समय व धन के अपव्यय कराने की क्या आवश्यकता थी ? प्रतिनिधि गण भारत के दूरतर भागों से पधारे थे । और यदि बुलाना था तो सीधे शब्दों मे निमन्त्रण देना था कि अतीत कार्य के समर्थन में भाषण होंगे और आगे के लिये प्रोग्राम बनाकर सुनाएंगे ।' इस कार्य के लिये भारत भर के प्रतिनिधियों को बुलाने की क्या आवश्यकता थी और संमेलन की झूठी घोषणा क्यों की ?

दूसरा महान् झूठ यह था कि प्रस्ताव सुनाकर कहा कि 'इसे सर्व सम्मति से स्वीकार करो ।'

मैं प्रार्थना करती हूं कि आर्य नेता भविष्य में ऐसे कार्यों से विरत रहें ।

शान्ति देवी

पूर्व मन्त्रिणी महिला आर्य समाज
किशन पोल बाजार, जयपुर ।

वेदप्रकाश

का वृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला पुस्तक प्रकाशित हो गया ।

जिन के मूल्य प्राप्त हुए हैं उनको अगले महीने भेजा जावेगा। जिन्होंने २।।) नहीं भेजे हैं वे शीघ्र भेज दें। नहीं तो अगले महीने कोई अंक नहीं मिलेगा।

बृहदारण्यक उपनिषद् अन्य सब उपनिषदों से बड़ी है। इनमें कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से नहीं है और कुछ ऐसे भाग भी हैं जिनका विषय रूखा है जो कथा के रुप में पुनरुक्त भी हैं ऐसे रुखे प्रकरणों को छोड़ कर इस उपनिषद् में से १६ कथायें पुस्तक में दी गई हैं, जिनका आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है, और रोचक भी हैं।

बृहदारण्यक—उपनिषद—कथामाला

बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी, जनक तथा गार्गी संवाद बड़े ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं अहं ब्रह्मास्मी इत्यादि अनेक विचार ग्रस्त स्थलों का भी यथार्थ समाधान किया हैं, अनेक अलंकारिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है जो अपने ढंग का नया ही दृष्टिकोण प्रतीत होगा। सर्वसाधारण सांसारिक जनों के लिये बहुत ही उपयोगी है, समाजों और सत्संगों में कथा करने योग्य कथायें हैं। बढ़िया कागज़, अच्छी छपाई तथा सुन्दर आवरण सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) मात्र। वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में तथा डाक रजिस्ट्री के ।।) मिलाकर शीघ्र २।।) भेजकर पुस्तक मंगा ले वें।

पुस्तक पर दो आर्य विद्वानों की सम्मतियां

श्री पं॰ गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम॰ ए॰

वृहदारण्यक-उपनिषद-कथा माला स्वामी ब्रह्ममुनि रचित बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तक है। जनता के पढ़ने और सुनने योग्य तथा असाधारण विद्वानों के मनन और मीमांसा करने योग्य। अध्यात्म की भूखवालों के लिए यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर भोजन है।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पं॰ अमरसिंह जी आर्य पथिक

कथा माला को मैनें देखा। कथाएं श्री स्वामी जी ने बहुत ही सुन्दर रीति से लिखी है। मेरी हार्दिक कामना है कि यह पुस्तक प्रत्येक घर में पहुंचे। और सब नर नारी इससे लाभ उठावें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली।

महात्मा आनन्द स्वामी जी

की नई पुस्तक

आनन्द भगवत् कथा

अर्थात्

सत्यनारायण व्रत कथा

यह पुस्तक महात्मा जी ने हिन्दी आन्दोलन के समय धर्मशाला जेल में लिखी थी

८० पृष्ठों की बढ़िया कागज और मोटे अक्षरों में छपी इस पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) एक प्रति पर डाकखर्च रजिस्ट्री सहित ॥=)। बुक पोस्ट से =) परन्तु बुक पोस्ट से ग्राहक की जिम्मेदारी पर ही भेजी जावेगी।

१२ प्रतियों का मून्य अग्रिम आने पर ७।-) में डाकखर्च सहित भेजी जावेगो।

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन २॥) आनन्द गायत्री कथा ॥)
तत्वज्ञान ३) भगवान शंकर दयानन्द ।=)॥
प्रभुभक्ति १॥) एक ही रास्ता ।॥)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में

टिप्पणियों के सम्बन्ध में जो एक पृष्ठ छापकर विद्वानों को अवलोकनार्थ तथा समत्यर्थ भेजे गये थे। कुछ की सम्मत्तियाँ नीचे दा जा रही है।

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

पं० अमर सिंह जी गत ३५ वर्षों से महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अनुसंधान कर रहे हैं और वे वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में सहस्त्रों प्रमाण एकत्र करते रहे हैं। ऐसे ये विद्वान अब सत्यार्थ प्रकाश के भिन्न २ स्थलों पर टिप्पणियां लिख रहे हैं। जिनसे सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य और भी बढ़ जाएगा। और सर्व साधारण तथा विद्वान पूरा लाभ उठा सकेंगे। सत्यार्थ प्रकाश बड़े और सुन्दर टाइप में बड़े आकार में छप रहा है। आशा है धर्म प्रेमी इस सुन्दर ग्रन्थ का उत्साह से स्वागत करेंगे।

व्याख्यान वाचस्पति श्री पं० बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ

सत्यार्थ प्रकाश का नमूना देखा। अति उत्तम है इसके लिए मैं आपको वधाई देता हूं। सत्यार्थ प्रकाश की टीका लिखी जानी आवश्यक है इस कार्य को श्री पं. अमरसिंह जैसे स्वाध्यायशील और बहुश्रुत पण्डित ही कर सकते हैं। टिप्पणी बहुत अच्छी लिखी गई है। छापा भी बहुत अच्छा है। बहुत उपयोगी ग्रन्थ रहेगा। पाण्डित्य पूर्ण कार्य है। श्री पं. अमरसिंह जी को इस कार्य के चुनकर आपने बहुत बुद्धिमत्ता का कार्य किया है।

श्री डाक्टर सुधीर कुमार जी एम० ए०

पी० एच० डी०, गोरखपुर

सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश का नमूना देखा। मुझे विश्वास है कि आर्य समाज श्री पं. अमर सिंह जी के पाण्डित्य से लाभ उठावेगा। तथा जो विद्वान अभी अपने निर्माण मे व्यस्त है वे आप की शैली में पर्याप्त गुण पायेंगे और इस प्रकार संसार में ज्ञान का आलोक अधिक बढ़ेगा।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी एटा तथा पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने नमूना देख बहुत प्रमन्नता प्रकट की।

पत्र लिखकर सत्यार्थ प्रकाश का नमूना मंगाया जा सकता है। अग्रिम ग्राहक बनाये जा रहे हैं।—गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली

प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट

प्रत्येक का मूल्य -) सैकड़ा ४)

१ मनुष्य बन—ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती।
२ गायत्री माता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी।
४ आस्तिक नास्तिक संवाद—महर्षि दयानन्द।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्र जी देहलवी।
८ कल्याणी बन—पं० गणेशदत्त 'इन्द्र'।
९ आर्यों का आदि देश—काशी नाथ जी शास्त्री।
१० धर्म और अधर्म – पं० रामचन्द्र देहलवी।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी।
१३ पं० लेखराम—रामगोपाल जी विद्यालंकार।
१४ सीता माता—सरस्वती देवी 'प्रभाकर'।
१५ गौ माता—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न
१७ चोटी का महत्व—पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालकार।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस।
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम—प्रहलाद 'प्रभाकर'।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य प्रियव्रत।
२४ आर्य समाज के उद्देश्य—जगदीशचन्द्र।
२५ वेदमाता।
२६ श्रद्धामाता।
२७ धरती माता।
२८ धर्म की रक्षा करो—ब्र० प्रभुदत्त जी।
२९ मनुष्य के कर्तव्य—म० नारायण स्वामी।
३० सत्संग भजन।
३१ ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व।
३२ गोपाल दयानन्द।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा।
३४ वैदिक भक्तिवाद।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि।
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द।
३७ आर्य समाज की उन्नति का साधन श्री लालचन्द जी
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक—शिव पूजन सिंह।
४० पतिव्रत धर्म—एक विदूषी महिला।
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा—राजेन्द्र जी।
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द—भगवत शरण बी. ए.।
४३ ईश्वरावतार—स्वामी नित्यानन्द जी।
४४ कर्मयोगी श्री कृष्ण—प्रेमचन्द।
४५ ईसाइयों का भयंकर षड़यन्त्र।
४६ सामाजिक व्यवहार—श्री लालचन्द जी।
४७ शिक्षा का उद्देश्य—श्री पूर्णचन्द जी।
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी।
४९ वर्ण व्यवस्था—स्वामी दर्शनानन्द।
५० कर्मव्यवस्था ,, ,,
५१ वेदज्ञान—विष्णु दयाल जी।
५२ तुलसी रामायण और आर्य समाज।
५३ सत्य की खोज—काशीनाथ शास्त्री।
५४ मुर्दा क्यों जलावें—प्रेम शरण जी।
५५ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य—स्वामा दर्शनानन्द।
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य— ,,
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध—पं० राजेन्द्र जी।
५८ श्रेय और प्रेय—प्रि. नित्यानन्द जी एम. ए.।
५९ सच्ची पूजा—स्वामी सर्वदानन्द जी।
६० झांसी वाली रानी।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त-रविवर्मा सि. शास्त्री।
६२ जीवन की समस्यायें—पं० रामचन्द्र देहलवी।
६३ देवताओं की कहानी—कैलाश बिहारी।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय।
६५ धूम्रपान— ,, ,,
६६ सिनेमा और हम— ,, ,,
६७ दयानन्द कौन—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।
६८ कृण्वन्तोस्वयमार्यम—प्रेमकुमार पाण्डेय।
६९ चाय भयंकर विष—जगदीश चन्द्र।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है—ज. विद्याथी
७१ ईश्वर सब जगह है—विष्णु दयाल जी।
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों—रामचन्द्र देहलवी।
७३ चरित्र निर्माण—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी।
७४ यज्ञोपवीत महत्व—जगरीश चन्द्र विद्यार्थी।
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण—हरिदेव शास्त्री।
७६ नास्तिकों को सन्देश—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी।
७७ वैदिक धर्म ही क्यों—हरिदेव शास्त्री।
७८ विद्यार्थी और सदाचार—पं० रामचन्द्र देहलवी।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली—६

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

(रामेश्वर अशान्त लिखित पुस्तकें)

१. आधुनिक कृषि विज्ञान पृ. ७५२	६)
२. आलू की खेती	॥।)
३. टमाटर की खेती	॥)
४. गोभी की खेती	॥)
५. जीरा, धनियाँ, अजवायन	॥।)
६. तरकारियों की खेती	१॥)
७. अच्छे बीज	॥।)
८. अच्छी खाद	२॥)
९. कपास की खेती	१)
१०. फूल फुलवारी	२॥)
११. गन्ने की खेती	॥।)
१२. धान की खेती	१॥)
१३. सन्तरे की बागवानी	२॥)
१४. आम की बागवानी	३)
१५. तिलहन की खेती	॥।=)
१६. सोयाबीन खिसारी	।)
१७. खेती की तैयारी	२।)
१८, फसल रक्षक औषधियां	२।)
१९. फलव्याधियों की रोकथाम	१॥)
२०. उन्नत सिंचाई	२)
२१. भारतीय कृषि कहावतें	४)
२२. गेहूं की खेती	३)
२३. लाख की खेती	॥।=)
३४. प्याज खेतीकी खेती	१।)
२५. जौ की खेती	॥।=)
२६. मेंहदी की खेती	॥।)
२७. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
२८. मूंगफली की खेती	१)
२९. मिर्च की खेती	१।)
३०. बीज की तैयारी	१॥)
३१. मसालों की खेती	२)
३२. तम्बाकू की खेती	॥)
३३. पपीते की खेती	१॥)
३४. खेती बाड़ी (किसान गाइड)	१॥)
३५. फलों की खेती	३॥)
३६. तरकारी सागभाजी खेती	३॥)
३७. खेती और ट्रैक्टर	६)
३८. किचन गार्डन	१॥।)
३९. ट्यूब वैल गाइड	३॥)
४०. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
४१. पशुओं का इलाज	६)
४२. पोल्ट्री फार्मिंग	४)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)
४५. फल संरक्षण	२॥)

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीटूयूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूललाइब्रेरियों। पुस्तकालयों वेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ४५ पुस्तकों का सैट**

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लोकाट, सतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं. मू० ३॥) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में
हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू, अदरक, अरबी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी; घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ा, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिंघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३॥) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती बाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ (ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १॥) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

हजारों पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

देहाती पुस्तक भण्डार (V. P.) चावड़ी बाजार दिल्ली

फोन नं०- २००३०

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयदेव प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर
वेदप्रकाश कार्यालय, नई सड़क

ओ३म्

वेद प्रकाश

गत ६ वर्ष का "वेद प्रकाश" का कार्य

आगामी वर्ष के लिये सहयोग की अपील

गत ६ वर्षों से "वेद प्रकाश" का प्रकाशन हो रहा है। पं० लेखराम के वचन कि "लेख का कार्य आर्य समाज में बन्द नहीं होना चाहिए" को ध्यान में रखकर इसका प्रकाशन आरम्भ किया था। इसके पाठकों के सहयोग से ही अब तक इतना बड़ा कार्य करने में हम सफल रहे हैं।

प्रचार कार्य में ट्रैक्टों से अच्छी सहायता मिलती है गत ६ वर्षों से पूर्व ट्रैक्टों का प्रकाशन प्रायः बन्द था। "वेद प्रकाश" में विद्वान लेखकों द्वारा लिखे गये लेखों को ट्रैक्ट रूप में प्रकाशित करते रहने से इस समय तक ८० ट्रैक्ट छप चुके हैं। इन ट्रैक्टों की समाजों के उत्सव आदि पर मंगाकर कई समाजों ने बांटा और प्रचार में सफलता प्राप्त की।

आर्य साहित्य के प्रकाशन में भी "वेद प्रकाश" ने यथा शक्ति कार्य किया। पिछले वर्षों में इसके चार विशेषांक बड़े आकार के छपे।

(१) दयानन्द ग्रन्थ संग्रहः—इसमें ऋषि दयानन्द के २० ग्रन्थों का उनके इतिहास के साथ प्रकाशित किया गया।

(२ बाल्मीकि रामायणः—धारावाही हिन्दी में मूल संस्कृत सहित प्रक्षिप्त भाग निकाल कर आर्य दृष्टि कोण से प्रकाशित किया।

(३) सृष्टि का इतिहासः—पं० लेखराम जी आर्यपथिक की प्रामाणिक खोज पूर्ण पुस्तक छापी गई। जो कि इतिहास प्रेमियों के लिये विशेष लाभ की वस्तु है।

(४) अभी अभी एक नया विशेषांक छपा है। वृहदारण्यक—उपनिषद कथा माला लेखक श्री स्वामी ब्रह्ममुनी जी हैं यह उपनिषद शतपथ ब्राह्मण का एक अंग है। उसमें जो कथाएं हैं वह ज्ञानमय भी है और उपदेश प्रद भी। जिसे पढ़ना सुनना भी लाभ प्रद रहेगा।

आपका आगामी वर्ष का चन्दा भी समाप्त हो चुका होगा। कृपया वार्षिक चन्दे का २॥) तथा वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला के रजिस्ट्री डाकखर्च सहित २॥) मिलाकर ५) भेज दें। या वी० पी० भेजने का आर्डर लिख भेजें।

आशा है आगामी वर्ष आप तो ग्राहक बने ही साथ ही अपने अन्य मित्रों को ग्राहक बनाकर हमारे हाथ मजबूत करेंगे जिससे हम प्रतिवर्ष कोई उपयोगी साहित्य छापकर आप लोगों को दे सकें।

आर्ष योग प्रदीपिका

व्यास भाष्य सहित पातञ्जल योग दर्शन का सरल सारगर्भित भाषानुवाद

लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं व्यास ऋषि भाष्य का भाषानुवाद किया गया है। योग के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर लेख होने से इसका नाम "आर्ष योग प्रदीपिका रखा गया है। यहां पातञ्जलि के सूत्रों का प्रथम अर्थ और किसी किसी क्लिष्ट सूत्र पर विवरण दिया गया है। पुनः व्यास भाष्य का अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं उस पर आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण भी दिया गया है। आशा है स्वाध्यायी और योग विषयक वर्णन के जिज्ञासु जन इसका स्वागत करेंगे। लगभग २७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३॥)

मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क देहली।

$\frac{R}{E}$ कर्ण रोग नाशक तैल $\frac{G}{D}$

कान की सभी बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए 'कर्ण रोग नाशक तेल 'प्रयोग करें। इससे कान बहना शब्द होना, कम सुनना, दर्द होना, खाज आना, सांय-सांय होना, मवाद आना, सीटी सी बजना, आदि शीघ्र आराम हो जाते हैं। एक बार परीक्षा करके देखिए। मूल्य १ शीशी १।), पैकिंग पोस्टेज १॥), १ दर्जन पर खर्चा फ्री और ३ शीशी कमीशन में अधिक देकर एजेन्ट बनाते हैं। बरेली का प्रसिद्ध रजिस्टर्ड शीतल सुरमा' भी हम से मंगावें १ शीशी १।), पत्र साफ लिखने की कृपा करें।

पता—कार्यालय 'कर्णरोग नाशक तैल'
२६३ संतो मालन मार्ग
नजीबाबाद (उ० प्र०)
NAJIBABAD U. P.

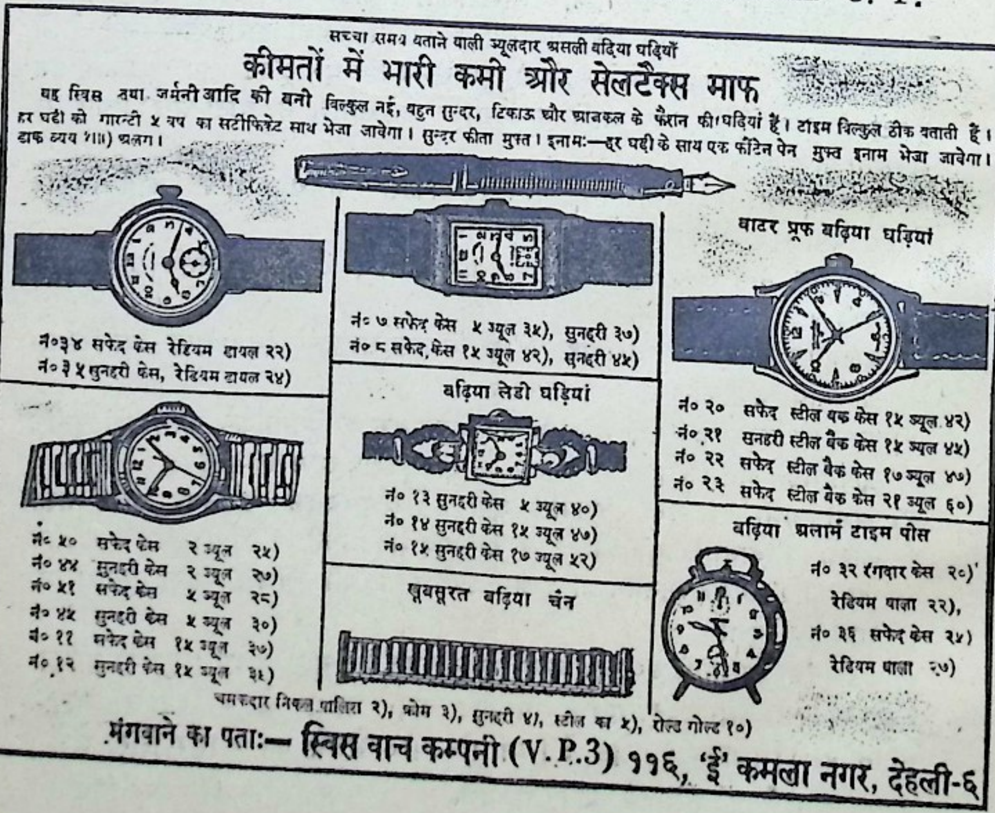

सच्चा समय बताने वाली ज्यूलदार असली बढ़िया घड़ियाँ

कीमतों में भारी कमी और सेलटैक्स माफ

यह स्विस तथा जर्मनी आदि की बनी बिल्कुल नई, बहुत सुन्दर, टिकाऊ और आजकल के फैशन की घड़ियां हैं। टाइम बिल्कुल ठीक बताती हैं। हर घड़ी को गारन्टी ५ वर्ष का सर्टीफिकेट साथ भेजा जावेगा। सुन्दर फीता मुफ्त। इनामः—हर घड़ी के साथ एक फौंटेन पेन मुफ्त इनाम भेजा जावेगा। डाक व्यय १।।।) अलग।

नं०३४ सफेद केस रेडियम डायल २२)
नं०३५ सुनहरी केस, रेडियम डायल २४)

नं० ७ सफेद केस ५ ज्यूल ३५), सुनहरी ३७)
नं० ८ सफेद, केस १५ ज्यूल ४२), सुनहरी ४५)

वाटर प्रूफ बढ़िया घड़ियां

नं० २० सफेद स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४२)
नं० २१ सनहरी स्टील बैक केस १५ ज्यूल ४५)
नं० २२ सफेद स्टील बैक केस १७ ज्यूल ४७)
नं० २३ सफेद स्टील बैक केस २१ ज्यूल ६०)

नं० ५० सफेद केस २ ज्यूल २५)
नं० ५४ सुनहरी केस २ ज्यूल २७)
नं० ५१ सफेद केस ५ ज्यूल २८)
नं० ५५ सुनहरी केस ५ ज्यूल ३०)
नं० ११ सफेद केस १५ ज्यूल ३७)
नं० १२ सुनहरी केस १५ ज्यूल ३९)

बढ़िया लेडी घड़ियां

नं० १३ सुनहरी केस ५ ज्यूल ४०)
नं० १४ सुनहरी केस १५ ज्यूल ४७)
नं० १५ सुनहरी केस १७ ज्यूल ५२)

बढ़िया अलार्म टाइम पीस

नं० ३२ रंगदार केस २०)
रेडियम वाला २२),
नं० ३६ सफेद केस २५)
रेडियम वाला २७)

खूबसूरत बढ़िया चैन

चमकदार निकल पालिश २), क्रोम ३), सुनहरी ४), स्टील का ५), रोल्ड गोल्ड १०)

मंगवाने का पताः— **स्विस वाच कम्पनी (V.P.3) ११६, 'ई' कमला नगर, देहली-६**

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादक—गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—६ : आषाढ़ २०१५
अंक—१२ : दयानन्दाब्द १३४

जुलाई १९५८ : वार्षिक मूल्य ३॥)
आषाढ़ १८८० शाके : विदेशों से ५ शि०

वेद सुधा

(ऋ० १०।१९१।—४)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥

पदानि—संऽसं । इत् । युवसे । वृषन् । अग्ने । विश्वानि । अर्यः । आ ॥
इलः । पदे । सं । इध्यसे । सः । नः । वसूनि । आ भर ॥ १ ॥

अन्वयः—(हे) वृषन् अग्ने ! (त्वं) अर्यः विश्वानि सं सं इत् युवसे, इडः (इलः) पदे सं इध्यसे, सः (त्वं) नः वसूनि आ भर।

अर्थ—हे (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशक देव अग्ने ! तू (अर्यः) स्वामी-प्रभु-होता हुआ (विश्वानि) सब को (इत्) निश्चयपूर्वक (सं) उत्तम योग्य रीति से तथा (सं) मिल कर (आ युवसे) सब प्रकार से मिश्रित करता है, तथा पृथक् भी करता है । और (इलः) भूमि के अथवा वाणी के (पदे) स्थान में (सं इध्य से) उत्तम रीति से प्रकाशित होता है । (सः) वह तू (नः) हमें (वसूनि) धनों से (आ) सब ओर से (भर) भरपूर कर ।

भावार्थ—प्रकाशक देव सब से वलवान् और सब का प्रकाशक है, वही प्रभु यहां हमारे सामने अग्निरूप से विद्यमान है। वह ईश्वर सब को योग्य रीति से मिलता है और आवश्यकता होने पर पृथक् भी करता है। वह प्रभु इस भूमि पर अग्निरूप से प्रदीप्त होता है। और वाणी की जड़ में भी उसी प्रेरक देव की प्रेरणा है। उसी ईश्वर की हम उपासना करते हैं वह देव हमें सब आवश्यक और सहायक धनों से सदा भरपूर करे।

(वृषन्) Mighty (अग्ने) FIRE Thou art real (अर्यः) Lord, and (युवसे) unitest (विश्वानि) all things (सं) with real fitness and (सं) preciousness and (युव से) separate them all (इत्) as well. Thou (सं इध्य से) art enkindled on (इलः पदे) the place of libation on this earth, as wall as in (इडः पदे) the root place of our speech. (भर) Bring (नः) us all (वसूनि) real treasures (आ) from all sides.

योगी एक महान्

आओ तुम को कथा सुनायें योगी एक महान् की।
एक अनोखी अमर कहानी है जिसके बलिदान की॥

नील गगन में भारत के अज्ञान अन्धेरी छाई थी।
सोया था यह देश सभी ने वैदिक राह भुलाई थी॥

कठिन दासता के बन्धन से मानवता घबराई थी।
भूली राह बताई जिसने मानव को भगवान की॥

टंकारा की धरती से यह उदय हुई इक ज्वाला थी।
बिखरी हिन्दु जाति की जिसने एक पिरोई माला थी॥

तलवारों के वार सहे थे हंस हंस के पी हाला थी।
देश प्रेम के लिए लगा दी बाजी अपनी जान की॥

जिसके पथ पर चलने को लाखों ने शीश कटाया था।
हंसराज ने हंस २ के अपना सर्वस्व लुटाया था॥

लेखराम नें जिसका निज खूँ से इतिहास बनाया था।
वीर लाजपत ने भी जोत जलाई अपने प्रान की॥

वेदप्रकाश के चार अमूल्य विशेषांक रियायती मूल्य में

१. दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

जिसमें ऋषि की आत्मकथा सहित २० पुस्तकों का संग्रह है, प्रत्येक पुस्तक के साथ पुस्तक की रचना काल तथा परिस्थितियों का इतिहास भी है। साथ में ऋषि के ७ असली फोटो चित्र भी हैं सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ४॥) रियायती मूल्य ३॥) है।

२. बाल्मीकि रामायण

धारावाही हिन्दी में मूल संस्कृत सहित प्रक्षिप्त भाग तथा अनावश्यक कथाओं को निकालकर आर्य-मर्यादानुकूल ग्रन्थ का संकलन किया गया है लगभग ६००० श्लोकों के साथ सरल भाषा में सजिल्द सुन्दर पुस्तक मूल्य १२) रियायती मूल्य ६) रु० मात्र है।

३. सृष्टि का इतिहास

आर्य पथिक पं० लेखराम कृत 'त्वारिखे दुनिया' का हिन्दी अनुवाद जिसमें सृष्टि उत्पत्ति वेदादि सत्शास्त्रों का समय निर्धारण करते समय जो आधुनिक इतिहासकार, पाश्चात्यों का अनुकरण कर भूल करते हैं उन्हें यह उपयुक्त मार्ग प्रदर्शक उत्तम पुस्तक है मूल्य २) रियायती मूल्य १॥)

४. बृहदारण्यक कथा माला

बृहदारण्यक उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थ का एक भाग है, उसकी कथाओं के पाठ और श्रवण से वैदिक संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त होगा पढ़ने योग्य उपयोगी पुस्तक है मूल्य ३) रियायती मूल्य २) है। प्रत्येक वेदप्रकाश के ग्राहकों को रियायती मूल्य मूल्य में।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली

व्यक्ति और समाज

(१) अथर्ववेद में एक जगह अंकित है:—

जीवेभ्यः मा प्रमदः। (अथर्व० ८ । १ । ७)

अर्थात अन्यों के सम्बन्ध में अपने कर्तव्य के पालन करने में प्रमाद न करो। अन्यों के सम्बन्ध में मनुष्य के कर्तव्यों का नाम ऋण है। ये ऋण चार प्रकार के हैं—

(१) पितृ-ऋण, अर्थात् वंश वृद्धि करना। इस सम्बन्ध में नियम यह है कि आत्म-रक्षा का मुख्य साधन आहार है और समाज रक्षा का मुख्य साधन विहार=वंश वृद्धि है। (२) देव-ऋण, अर्थात् हवन आदि के द्वारा आत्म-प्रायश्चित करते हुए समाज के स्वास्थ्य को ठीक रखने का यत्न करना, (३) ऋषिऋण, अर्थात् समाज के ज्ञान वृद्धि के लिये शिक्षा का प्रचार तथा (४) मनुष्य-ऋण, अर्थात् अन्यों के उपकार से ऋण होने के लिये समाज की सेवा करना। इन ऋणों के चुकाने से अच्छे समाज का निर्माण हुआ करता है। इनके सिवा कर्म-विज्ञान का एक पहलू भी समाज निर्माण का साधक है अथवा यों कहिए कि समाज शास्त्र (Sociology) का बुनियादी नियम यही है। उसका विवरण इस प्रकार है—

(२) संसार में मनुष्यों को सुख और दुःख दो प्रकार से प्राप्त हुआ करते हैं— (१) अपने कर्मों के फल से, (२) अन्यों के कर्म से, अन्यों के कर्मों के फल से नहीं अपितु अन्यों के कर्म मात्र से। वेद में एक जगह कहा गया है।

शन्नो सुकृतां सुकृतानि सन्तु ॥ (ऋग्वेद ७।३५।४)

अर्थात् अच्छे कर्म करने वालों के अच्छे कर्म हमारे लिये कल्याण कारी हों। अन्न-दान, वस्त्र-दान और विद्या-दान आदि के द्वारा एक व्यक्ति के कर्म अन्यों को लाभ पहुंचाया करते हैं। इसी प्रकार दुष्टों के दुष्ट कर्म चोरी आदि से अन्यों को हानि हुआ करती है एक और जगह वेद में शिक्षा दी गई है—

यदेनसो मातृ कृताच्छेषे पितृ कृतात् च यत्।
उन्मोचन प्रमोचने उभेवाचा वदामि ते ॥
(अथर्व ५ । ३० । ४)

अर्थात् माता और पिता के किये पाप से जो तू सोया=रोगी पड़ा है उससे छूटने के लिये तुझे उन्मोचन (खोलना=पापों के प्रभाव को चिकित्सा आदि के द्वारा दूर करना) प्रमोचन (दूर रहना, अर्थात् माता पिता के से पाप न करना) की शिक्षा दी जाती है।

इस मन्त्र में भी अन्यों के कर्मों से दुखी होने की बात कही गई है।

(३) कर्म विज्ञान का यह विभाग शिक्षा देता है कि मनुष्य को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये (देखो आर्य समाज का ९ वां नियम)। यह सुनहरी नियम समाज के निर्माण और उसे अच्छी स्थिति में रखने की शिक्षा देता है। क्यों समाज की इतनी चिन्ता करनी चाहिये, इसलिये कि बहुत से व्यक्तियों के अवगुण समाज की बदोलत ही छूटा करते हैं। एक उदाहरण से यह बात भली भांति समझी जा सकेगी। "चिराग तले अंधेरा" यह प्रसिद्ध कहावत है। इस अंधेरे को कोई भी कितनी ही तेज रोशनी का एक दीपक दूर नहीं कर सकता है, परन्तु दीपकों का समाज बनाने से प्रत्येक दीपक के नीचे या ऊपर का अंधेरा, अन्य दीपकों के प्रकाश से दूर हो जाया करता है। यही समाज की बरकत है। इसीलिये पश्चिमी आचार (Ethics) की यह शिक्षा है कि मनुष्य पूर्णता नहीं रखता (Man is not an organic whole in

---

१. आचार शास्त्र के रू से, व्यक्ति का अधिकार समाज से अधिक मानने वाले Egoistic और समाज का अधिकार अधिक मानने वाले Altruistic कहे जाते हैं। पहले अहंकारी और दूसरे समाज-सेवी हुआ करते हैं।

himself), अर्थात् मनुष्य समाज में रह कर ही मनुष्य बना करता है ।

(४) सन्तान के लिए जिनका और जाति के लिये व्यक्ति का बलिदान प्रकृति सिद्ध नियम है ।
"आत्मानं सततं रक्षेत दारैरपि धनैरपि ।" यह नियम पतित जाति के पतित व्यक्तियों का है ।

(५) प्रकृति की खाद्य उत्पादक शक्ति, जीवों की प्रजनन शक्ति से बहुत कम है इसलिये आबादी बढ़ जाने पर युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी आदि के द्वारा प्रकृति बढ़ी हुई आबादी का संहार करती रहती है। हक्सले ने इस संहार को वृक्षों की कांट छांट (Horicultural process) कहा है । इस संहार से अनेक अच्छे व्यक्ति भी नष्ट हो जाया करते हैं, इसलिए गृहस्थों को ऋतुगामी होकर सन्तान कम पैदा करनी चाहिये जिससे प्रकृति को कांट छांट करने की जरूरत न पड़े ।

(६) निम्न बातें उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जानी चाहिएं—

(क) युवा और युवतियों को जनन-विज्ञान का तथ्य प्रारम्भ ही में बतला देना चाहिये ।

(ख) ब्रह्मचर्य के नियम बतला कर जनता को जनेन्द्रिय के दुरुपयोग से बचाना चाहिए ।

(ग) अज्ञात स्त्री के सहवास के दोष, कि किस प्रकार इस से मनुष्य रोगी बना करते हैं, बतला कर उससे युवकों को बचाना चाहिए ।

(घ) दाम्पत्य जीवन के कर्तव्य विवाह से पहले, युवा और युवतियों को भली भांति समझा देने चाहिएँ ।

(च) जनेन्द्रिय से सम्बन्धित रोगों का विवरण कि वे क्यों और किस परिणाम पर पहुंचा देने के लिए होते हैं, युवकों को बतला देना चाहिए ।

(७) उपर्युक्त भान्ति समाज का सुधार करने से व्यक्ति और समाज दोनों अच्छे बन जाते हैं । विद्वानों ने ठीक कहा है कि सामाजिक और राजनैतिक स्वतंत्रता साथ साथ प्राप्त हुआ करती है । (Social democracy and the demand for liberty go hand in hand).

(८) प्रत्येक व्यक्ति को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अर्थशास्त्र का नियम यह है कि कोई व्यक्ति, जो समाज के लिये बोझ सिद्ध हो रहा हो, उसे जीने का अधिकार नहीं है ।[*]

(शेष पृष्ठ ५ का)

सकता है । युद्ध में न जान का प्रश्न रहता है न माल का । परन्तु सात्विक उन्नति में बाधा पड़ती है या नहीं यह प्रश्न है । स्वामी दयानन्द के नाम पर सत्याग्रह चलाना ऋषि की शिक्षाओं का दुरुपयोग है । ऋषि ने मन्दिरों पर सत्याग्रह किया, न हिन्दी के लिये, न वेदों के लिये । और यदि आर्य समाज का कोई मिशन है तो वह सत्याग्रह से पूरा न होगा । हां यदि आर्य समाज कुछ थोड़े से युद्ध-प्रिय लोगों या संस्थाओं के हाथ का खिलौना बनना पसन्द करता है तो बना रहे । जियेंगे और देखेंगे । आज जो लोग जेल जाने के लिये फिर तैयार हैं वह बाहर रह कर हिन्दी की क्या सेवा कर रहे हैं । कई हजार आदमी और कई लाख रुपया हिन्दी के प्रीतिपूर्वक प्रचार में लगता तो क्या कुछ न हो जाता । पंजाब में अब तक जो हिन्दी का प्रचार हुआ सत्याग्रह द्वारा नहीं हुआ । परन्तु हवा ऐसी चली है कि आर्य समाज को रचनात्मक कार्य करने में कोई रुचि रही ही नहीं । अतः बिना बात के भी बतंगड हो जाता है । होगा तो वही जो जनता चाहेगी और नेता लोग जनता की हां में हां मिलायेंगे । अन्यथा वह नेता नहीं रह सकते । परन्तु इन आन्दोलनों से जो नैतिकता की हत्या होती है उसे बचाना कठिन है । यह मैंने संकेत के रूप में ही लिखा है । कौन जानता है कि यह शब्द भी जनता तक पहुंच सकें या न पहुंचे । क्योंकि अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः । परन्तु क्या श्रेय मार्ग की अवहेलना करके प्रेय मार्ग हमारा कल्याण कर सकता है ?

---

[*] Principles of Political Economy, Book II, Ch. XVI B. I, p. 226

अपनी अपनी बात

सत्याग्रह फिर !

मई १९५८ का वेदप्रकाश सामने है। १४ वें पृष्ठ पर श्री गुप्त जी के नाम एक खुली चिठ्ठी है कई सज्जनों की ओर से। पृ० २२ पर एक चिट्ठी है श्रीमती शान्ति देवी, जयपुर की। पृष्ठ २१ पर कुछ विवरण और एक प्रस्ताव है। इसी प्रकार की बातें अन्य पत्रों तथा समाचारों से भी ज्ञात हुई। इस से पता चलता है कि आर्य जनता में पहले जोश था। अव जोश उतना ही है या कम, यह ज्ञात नहीं परन्तु जोश के साथ रोष भी है। रोष है अपने नेताओं के प्रति, जिन के द्वारा उत्पन्न या उद्घोषित की हुई आशायें पूरी नहीं हुई। यह रोष स्वाभाविक था और मैंने तो इस को पत्र. व्यवहार में आरम्भ में ही प्रकाशित कर दिया था। परन्तु किसी ने सुना नहीं। मैंने घर की देवियों से सुन रखा था कि जब दाल उबल रही हो तो मसाला नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि बाहर निकल जाने का डर है। हुआ वही, आंधी में किसी ने किसी की न सुनी। जिस ने हठात् कुछ कहा भी उसके कान मरोड़ कर चुप कर दिया गया। लाखों रुपये खर्च हुये, कई जानें गई, हजारों जेल की यातनाओं को सहते रहे। काम सब बन्द रहा। अभी पिछले दिनों मैंने रिफार्मर में लिखा था कि नेता लोग पहाड़ खोदते हैं। चूहा नहीं, छोटी सी चुहिया निकलती है और उसको हाथी के बराबर आकार का फोटो लेकर दिखाते हैं कि चूहा नहीं हाथी निकला। जनता कभी कभी तो मान भी लेती है। इसी के आधार पर बहुत सी लड़ाइयां सैकड़ों वर्ष चलती रही है। आर्य समाज की भी तो जनता ही है। यहां भी न तो स्वतंत्र विचार का स्थल है न स्वतन्त्र विचारों के प्रकाशन का। आश्चर्य तो यह है कि इतने बड़े आन्दोलन में दोलायमान रहने के पश्चात् आज भी किसी ने नहीं सोचा कि चाहते क्या थे और उसका मिलना सम्भव भी था या नहीं, शंकर स्वामी के शब्दों में खरगोश के सींग ढूंढने के लिये कोई अन्धेरे घर में दीपक नहीं जलाता। मैं तो इस आन्दोलन के आरम्भ से अन्त तक एक बात के भी औचित्य को नहीं समझ सका। और जिन से प्राइवेट में बात की वह भी न समझा सके। यह और बात है कि समाज के मान का प्रश्न है (question of prestige) इसलिये चुप रहा। ऐसा तर्क किया गया। इतने अनुभव के पीछे क्या सत्याग्रह का युद्ध फिर छिड़ेगा ? क्या जनता चाहती है ? या नेता ? या दो चार नेता ? या इन नेताओं पर किसी का नियंत्रण भी है ? उत्तरदायित्व तो नेताओं का ही है। परन्तु यदि वह स्पष्ट नहीं कहना चाहते और जनता स्पष्ट सुनना नहीं चाहती। तो सभी अपराधी ठहरते हैं या सभी निरपराधी। कौन किस को कहे ?

मैं यह नहीं कहता कि पंजाब में कुछ शिकायतें न थीं शिकायतें तो थीं और हर प्रान्त या हर स्थान में रहती हैं और रहेंगी। कुछ लोग कैरों सरकार के विरुद्ध थे। कुछ नेहरू सरकार के। कुछ सिक्खों की मांगों के। और कुछ ऐसे भी थे जो आन्दोलन प्रिय थे। परन्तु यह सब थीं राजनीतिक बातें। कोरी राजनीतिक सच्चर फारमूला हो या रीजनल। यदि राजनैतिक संस्थायें जनसंघ आदि इनको किसी प्रकार चलाते तो चला सकते थे। देश में सत्याग्रहों की तो नित धूम रहती है। कहीं न कहीं चला ही करते हैं। आर्य समाज ने दूसरों के सिर से यह बोझ अपने सिर क्यों ले लिया। और अपना सर्वस्व (यश भी और मर्यादा भी) स्वाहा करने के लिये क्यों तत्पर हो गये। यह आश्चर्य है। आप सत्याग्रह फिर आरम्भ कर सकते हैं। गुप्त जी को नेता न रक्खें। बहुत से नेता मिल जायेंगे। फ्रांस में यकायक नैपोलियन आ कूदा था। कौन जानता है कौन नैपोलियन बन जाय। सत्याग्रह बीसियों वर्ष जारी रह

(शेष पृष्ठ ४ पर)

जीत गया भाई जीत गया

शेर हमारा जीत गया

विधान सभा, लोक सभा तथा नगर निगम (कार्पोरेशन) के चुनावों में कांग्रेसियों की करारी हार

पंजाब विधान सभा के स्नातकों की सीट पर विजयी

श्री वीरेन्द्र जी एम० ए०
(सुपुत्र आर्य नेता महाशय कृष्ण)

लोकसभा की मौलाना अब्दुलकलाम आजाद की रिक्त महत्वपूर्ण सीट को जीतने वाले

श्री प्रकाश वीर जी शास्त्री
स्नातक ज्वालापुर महाविद्यालय

इन्दौर नगर निगम कार्पोरेशन के चुनाव में (इन्दौर का नेहरू) श्री लछमन चौहान जो १० वर्षों से निर्विरोध मेयर चना जाता था। उसे सैकड़ों वोटों से हराने वाला

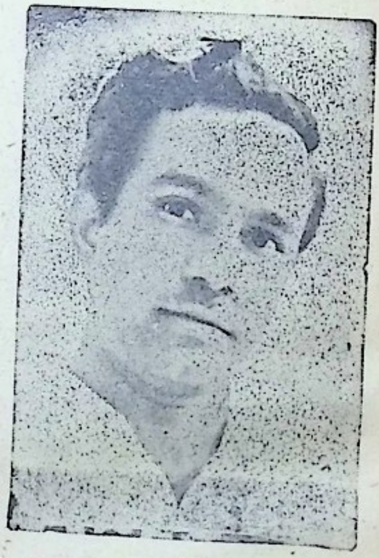

श्री पं० यज्ञदत्त शर्मा एम.ए.एल एल.बी.
सुपुत्र पं० लालाराम आर्य मंत्री हिन्दू-धर्म रक्षिणी सभा इन्दौर

कांग्रेस क्यों जनता की नजरों में गिर रही है

भारत में गरीबी कायम है, ऊंच नीच के भेद बने हुए हैं, मौका परस्तों का बोलवाला है, झूठ सच पर सवार है, इन्साफ की गर्दन अन्यायी दबोच रहा है। पैसे और ताकत ने इंसान खरीद लिया है, दलबन्दी के घरोदों में इंसानियत बन्द है। सरकार परस्ती ने आदमी का गला घोट डाला है। एक की बुलन्दी दूसरे की मौत है, एक की मौत दूसरे की जिन्दगी है, ५१ की राय ४९ की राय पर हावी है, करोड़ों लोगों के सर पर गिने चुनों का राज कायम है फिर भी हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं।

* * *

पुनः सत्याग्रह

हिन्दी प्रेमी जगत ने एक बार फिर से तप और त्याग के मार्ग पर चलने का निश्चय किया है। ९ जून को भाषा स्वातन्त्र्य समिति ने जो संघर्ष समिति बनायी थी उसका पहला अधिवेशन २२ जून को दिल्ली में हुआ। उसमें सर्वसम्मति से हिन्दी आंदोलन को तीव्र करने का निश्चय किया गया। उस दिन दोपहर बाद पंजाब हिन्दी रक्षा समिति का अधिवेशन भी हुआ जिसमें संघर्ष समिति के निश्चय को पूर्ण करने का निश्चय हुआ। लक्ष्य है—मोर्चा और हर कोई मानता है कि इसके सिवा कोई चारा नहीं परन्तु हम कांग्रेसी नेताओं ;की सद्भावना के झांसे में आकर सत्याग्रह स्थगित करने की गलती कर चुके हैं। इसलिए अब उसका दण्ड भुगतना होगा और नये सिरे से मोर्चा गर्म करना होगा। मैं मानता हूं कि नेहरू सरकार ने सच्चर फारमूला में परिवर्तन करने का कोई निश्चित वचन नहीं दिया परन्तु हमारे संकल्प को शिथिल करने के लिए कांग्रेसी नेताओं ने बहुत कुछ किया। पंडित नेहरू ने कहा कि हिन्दी रक्षा समिति की ९० प्रतिशत मांगें मानी जा चुकी हैं और शेष १० प्रतिशत मांगें बातचीत से तय हो सकती है। श्री ढेबर भी इसी प्रकार ही कहते रहे और पंडित पन्त ने भी चण्डीगढ़, लुधियाना और करनाल के भाषणों में कुछ ऐसी ही भावनायें व्यक्त कीं। और तो और सरदार प्रतापसिंह कैरो ने भी कहा अब जब कि सत्याग्रह बन्द हो गया है, शांत वातावरण में सारी बात तय हो सकेगी परन्तु जब सत्याग्रह बन्द हो गया तो छः मास व्यतीत हो जाने पर भी सरकार ने कोई करवट नहीं ली। जिससे यह समझा जा सकता है कि उसने यह विषय ठप्प ही कर दिया है और यह समझती है कि आर्यसमाज ने बिना शर्त के हथियार डाल दिये हैं। उसका यह मिथ्या भ्रम दूर करने की आवश्यकता है परन्तु स्पष्ट है कि इसमें समय लगेगा और परिश्रम भी बहुत करना होगा। पहला सत्याग्रह एक वर्ष की तैयारी से आरम्भ किया गया था। हिन्दी के पक्ष में जनमत पैदा करने के लिये संघर्ष समिति ने एक कार्यक्रम निश्चित किया है। २० जुलाई को सारे भारत में 'प्रतिज्ञा दिवस' मनाया जायेगा। उस दिन हिन्दी प्रेमी यह प्रतिज्ञा करेंगे कि वे उस समय तक चैन न लेंगे जब तक कि पंजाब में हिन्दी को उसका उचित स्थान न दिला लेंगे।

६ अगस्त को चण्डीगढ़ 'आर्य समाज मन्दिर दिवस' मनाया जायेगा। यह वह दिन है जब कि कैरों की पुलिस ने इस मन्दिर को भ्रष्ट किया था। इसी दिन वहां हिन्दी प्रेमियों का एक भारी सम्मेलन होगा। भाषा स्वातन्त्र्य समिति, संघर्ष समिति और पंजाब हिन्दी रक्षा समिति का संयुक्त अधिवेशन होगा और हो सकता है पंजाब की दोनों प्रतिनिधि सभाओं की अंतरंग सभाओं का संयुक्त अधिवेशन भी हो। फिर २६ अगस्त को सुमेरसिंह का बलिदान दिवस मनाया जायगा इस प्रकार हिन्दी प्रेमी जगत को अगला कदम उठाने के लिये तैयार किया जायेगा।

हर कोई जानता है कि सत्याग्रह करना सरल नहीं। सत्याग्रही को भी काफी परेशानी होती है। सरकार को विवश करने के लिये घर फूंक तमाशा देखना पड़ता है। यह काम आरम्भ हो गया समझो और इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी प्रेमी जगत पहले की भांति इस परीक्षा में पूरा उतरेगा।

—महाशय कृष्ण

मुरारी ब्रदर्स कमला नगर देहली
का
भीमसेनी
काजल (रजि०)
आंखों को निरोग
और सुन्दर
बनाता है
हर जगह मिलता है

श्री आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

'आनन्द भगवत् कथा अर्थात् सत्यनारायण वृत कथा'

पौराणिक पण्डित जो सत्यनारायण की कथा सुनाते हैं उसमें केवल यही सुनाते हैं कि इस कथा को सुनने से एक आदमी स्वर्ग गया और दूसरा आदमी जिसने नहीं सुनी उसको नर्क मिला। वह सत्यनारायण की कथा क्या है यह नहीं बताते।

श्री स्वामी जी ने वेद पुराण, उपनिषद्, गीता तथा अन्य कई धार्मिक ग्रन्थों को उद्धृत करते हुए सत्यनारायण की असली कथा लिखी है सत्यनारायण कौन है? उस कथा को सुनने से जो स्वर्ग मिलता है वह क्या है? सत्यनारायण का आदि और अन्त नहीं तब उसकी अनन्त कहानी क्या है? यह इस पुस्तक में आपको ऐसे मीठे और आकर्षक शब्दों में मिलेगी कि देर तक उसका चित्र हृदय से न मिट सकेगा। एक प्रति का मूल्य ॥=) मात्र है। १२ प्रतियों के लिए ७॥) भेजें।

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

तत्त्वज्ञान

वेदों, उपनिषदों, गीता और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका इत्यादि तथा अपने अनुभव के आधार पर कठिन विषयों को सरल शैली पर समझाने का सफल प्रयत्न किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। सभी विद्वानों में इस की प्रशंसा की है। पुस्तक की छपाई जिल्द सुन्दर और आकर्षक है मूल्य ३)।

एक ही रास्ता

इस पुस्तक में स्वामी जी की सात दिन की ओंकार की कथा है। प्राणायाम पर भी स्वामी जी ने अच्छी व्याख्या की है। पुस्तक रोचक है मूल्य ॥।)

प्रभुभक्ति

यह पुस्तक स्वामी जी ने अपने पूर्वाश्रम में जब वे महात्मा खुशहालचन्द थे हैदराबाद जेल में लिखी थी। पुस्तक बहुत सरल है, मोटे अक्षरों में छपी है। पुस्तक का यह आठवां संस्करण है इसी से इसकी उपयोगिता सिद्ध है। मूल्य १॥)।

आनन्द गायत्री कथा

आनन्द स्वामी जी की गायत्री पर सप्ताह भर की कथा जो कि रोचक शिक्षा प्रद दृष्टान्तों से युक्त पढ़ने पढ़ाने योग्य है पुस्तक रूप में छपी है एक बार पुस्तक हाथ में उठाकर समाप्त करनी ही पड़ती है पृष्ठ संख्या १३४ मूल्य ॥=)।

प्रभुदर्शन

प्रस्तुत पुस्तक प्रभुप्राप्ति के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है। प्रभु दर्शन के लिए क्या क्या चाहिए और उसके साधकों को किन किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए आदि आदि। प्रस्तुत पुस्तक श्री आनन्द स्वामी जी के साधनामय जीवन का निचोड़ है। कागज उत्तम जिल्द बहुत ही आकर्षक मूल्य २॥)।

भगवान शंकर और दयानन्द

यह भी आनन्द स्वामी जी की सात दिन की कथा है बहुत ही रोचक और सरल है। इसमें स्वामी जी ने अद्वैतवाद का भी अच्छा निरुपण किया है। मू.।=)॥

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली—६

महाबली दयानन्द

(ले० प्रो० "सत्यभूषण" वेदालंकार एम० ए०)

आधुनिक युग में मत मतान्तरों की विभीषिका से देश जाति का उद्धार करने वाले, आर्य संस्कृति के सूत्रधार, आर्य समाज के संस्थापक दृढ़व्रती, परम साहसी, अद्भुत सन्यासी महर्षि दयानन्द ब्रह्मचर्य के मूर्तिमान् रूप थे। आपका ब्रह्मचर्य अनुपम था। इस युग में तो आपके समान अखण्ड ब्रह्मचारी दृष्टिगोचर हुआ ही नहीं। वैसे तो उनके ब्रह्मचर्य की अनेक घटनाएं प्रचलित हैं, पर यहां हम कुछ विशेष घटनाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

(१) १८६७ ई० में स्वामी दयानन्द जी जब चासी में ठहरे हुए थे तो बुलन्दशहर के ओंकारदास नामक नामी पहलवान ने उनकी मालिश करने का हठ किया, पर उनकी टांगों की पिंडलियों को लोहे की लाट के समान पाया। सारा बल लगाकर भी वह अपनी उंगलियां उनके पैरों में न धंसा सका।

(२) १८७० ई० में स्वामी जी कासगंज में कुछ लोगों के साथ भ्रमण करने के लिये निकले। सड़क के बीच में दो विशाल काय सांड लड़ रहे थें। घंटों तक लोग खड़े खड़े तमाशा देखते रहे। स्वामी जी ने वहां पहुंचकर उनके सींग खींचकर उन्हें अलग कर दिया। सांड चुपचाप चले गये। लोग अवाक् रह गये।

(३) १८६९ ई० में फर्रुखाबाद में स्वामी जी को कुछ पहलवानों ने अधिक कसरत करने का परामर्श दिया। स्वामी जी ने अपना गीला अंगोछा निचोड़ कर उनके हाथ में देते हुए कहा कि एक बूंद ही निकाल दो। कोई पहलवान उसमें से एक बूंद भी न निकाल सका।

(४) १८७७ ई० में जालन्धर में एक सभा में स्वामी जी ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान दे रहे थे। सरदार बिक्रमसिंह ने व्याख्यान के बाद उनसे कहा, "ब्रह्मचर्य का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो दीजिये। स्वामी जी ने कहा, "कभी देखा जाएगा"। इधर जब विक्रमसिंह अपनी दो घोड़ों वाली बग्घी पर जा बैठे और कोचवान चाबुक से घोड़ों को आगे बढ़ाने लगा, तो घोड़े टस से मस न हुए। विक्रम जी ने पीछे मुड़कर देखा, तो स्वामी जी को बग्घी का पहिया पकड़े हुए खड़ा पाया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

(५) १८७८ ई० में अगस्त में जब स्वामी जी मेरठ में वास कर रहे थे, तो वहां के बेनी प्रसाद और अन्य पहलवानों ने उनसे मालिश करने की आज्ञा मांगी। स्वामी जी ने अपनी टांग पृथ्वी पर फैलाकर कहा "इसे जरा मालिश करने से पहले उठाकर देखो। सबने पूरा जोर लगाकर देख लिया, पर अंगद के पांव के समान कोई पहलवान महर्षि की टांग को टस से मस न कर पाया।

(६) १८७५ ई० में रुड़की में स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान देते हुए अपनी बाहु उठाकर कहा, कि यद्यपि मैं पचास वर्ष का हूं, कोई इसे झुका दो किसी व्यक्ति का साहस न हुआ, कि उनकी भुजा को तिल मात्र भी झुका सके।

(७) १८६९ ई० में स्वामी जी गंगा के किनारे समाधिस्थ बैठे थे। दो मुसलमानों ने आकर उन्हें घेर लिया और उन्हें पकड़ कर गंगा में फेंकने का यत्न किया। स्वामी जी ने उन्हें कोख में दबा लिया और डुबाना चाहा, पर उनके क्षमा मांगने पर उन्हें डुबकियां दे देकर छोड़ दिया।

यह था स्वामी जी के ब्रह्मचर्य का अनुपम प्रताप।

"धन्य धन्य अनुपम ब्रह्मचारी,
ऋषि तब तप पर सब बलिहारी॥

अनमोल मोती

(१) जो भेद कहने योग्य न हो उसे मुंह से मत निकालो। हृदय में रहा भेद अपना गुलाम और कहा हुआ भेद अपना बैरी हो जाता है।

(२) मूर्ख आदमी की पहचान यही है कि वह बिना पूछे बोल पड़ता है।

(३) कलह एक प्रकार की आग है जो क्रोध से सुलगती है और सहनशीलता से नष्ट होती है।

(४) धन की तीन गतियां होती है दान, भोग और नाश, इसलिये भोगो और दान करो अन्यथा संचित धन नष्ट हो ही जावेगा।

(५) मृत्यु ने हर एक की चोटी पकड़ रक्खी है। यह याद रखते हुए पुण्य कार्य करते रहना चाहिए।

(६) दुलत्ती झाड़ने वाली गौ जैसे अपना दूध चुराती है। वैश्या जैसे अपनी आयु को छिपाती है। वैसे ही अपने सत्कर्म छिपाओ।

(७) प्रायश्चित की तीन सीढियां है आत्मग्लानि, दूसरी बार पाप न करने का निश्चय और आत्मशुद्धि।

(८) ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सभी चीजों को पूर्णत: जानता हो? अतएव अपने विचारों पर अधिक निर्भर न रहो परन्तु दूसरों के विचारों को जानने के लिए नित्य स्वाध्याय करना न भूलो।

(९) आज्ञाकारिता में रहना, अपने से बड़े के नीचे रहना और अपनी इच्छा पर न चलना बहुत बड़ी बात है।

(१०) परमार्थ के साधक को चाहिए कि लोगों के फेर में कभी न पड़े। लोग दो मुहें होते हैं। ऐसा भी कहते हैं, वैसा भी कहते हैं। वमन की तरह जन-संग को त्याग दें।

(११) जो तुम्हारी बातें सुनना चाहें उन्हीं को अपनी बात सुनाओ जो तुम्हारी बातें सुनना न चाहें उनके गले मत पड़ो।

(१२) हे मनुष्य! जोश में आकर इतना जोश खरोश न दिखा। इस दुनियां में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये कितने ही बाग लग गए और सूख गये।

(१३) नम्र और सरल व्यक्तियों की संगति में रहो, दृढ़ और धर्मात्मा के साथ रहो उनके साथ ऐसी बातों के सम्बन्ध में सम्भाषण करो जो तुम्हें उन्नत बना सकें।

आर्य परिवार

वेद प्रकाश में यह नया स्तम्भ दिया जा रहा है इसका उद्देश्य यही है कि आर्य परिवारों के पुत्र तथा पुत्रियों का विवाह आर्य परिवारों में ही हो। इस प्रकार का परिचय देना चाहिए कि पुत्र व पुत्री की आयु क्या है? उनकी योग्यता क्या है तथा उनके संरक्षकों का पूरा पता। इस स्तम्भ में उन्हीं का परिचय छापा जावेगा जो किसी आर्य समाज के सदस्य होंगे इसके लिए जिस समाज के सदस्य हैं उनके अधिकारियों से लिखित प्रमाण पत्र भेजना चाहिए। (२) वे इस प्रकार की प्रतिज्ञा करेंगे कि कोई दान दहेज न मांगेगे। (३) योग्य वर या वधु मिलने पर वे जाति पांति का विचार न करेंगे।

इसी प्रकार के कुछ परिचय नीचे दिये जा रहे हैं।

वर की आवश्यकता

(१) कन्या का जन्म २४-४-३४ का है
प्रभाकर तथा एफ. ए. पास है
पिता का पता
श्री राजाराम जी चड्ढा
J-६/१८ राजोरी गार्डन, नई देहली

(२) कन्या १६ वर्ष एफ० ए०
मास्टर बालकराम जी
6/71 W. E. A. करोल बाग नई देहली

वधु की आवश्यकता

(३) आयु २३ वर्ष मैट्रिक पास
पिता का पता
श्री मुंशीलाल जी शर्मा
५१६८ किदवई पार्क रोड
राजा मंडी आगरा

(४) आयु २३ वर्ष मैट्रिक
पिता का पता
पं० भद्रसेन जी
आदर्श साहित्य निकेतन
अजमेर

साहित्य-समीक्षा

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला

स्वामी ब्रह्ममुनि जी आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं, प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अध्यात्मप्रेमी जिज्ञासुओं के लाभार्थ बृहदारण्यकोपनिषत् की १६ कथाओं पर मूल वाक्यों को उद्धृत करते हुए बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है। उन कथाओं के तात्पर्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए द्वितीय और तृतीय कथा की व्याख्या में स्वयं भी दो रोचक शिक्षाप्रद कथाएं उन्होंने बनाई हैं जिसमें कभी निराश न होने और सेवाभाव की शिक्षा दी गई है। इस प्रकार यह ग्रन्थ इन संवादादिरूप कथाओं के कारण न केवल अध्यात्म शिक्षाप्रद किन्तु रोचक भी हो गया है। आर्यसमाजों के सत्सङ्गों तथा अन्य अवसरों पर भी इस पुस्तक में सरल रीति से व्याख्यान कथाएं सर्वसाधारण को भी पर्याप्त लाभदायिनी हो सकेंगी ऐसा हमारा विश्वास है। महाविद्वान् स्वामी ब्रह्ममुनि जी का वेदों, उपनिषदों और दर्शनशास्त्रों को इस प्रकार के व्याख्यान ग्रन्थों द्वारा लोकप्रिय बनाने का यह प्रयत्न अत्यन्त अभिनन्दनीय है। चतुर्थ कथा की व्याख्या में 'अहं ब्रह्मास्मि' की प्रकरणानुसार ठीक व्याख्या करते हुए अद्वैतवाद विषयक भ्रम का उत्तमता से निराकरण किया गया है। दशम कथा की व्याख्या में भूत प्रेतादि विषयक भ्रम का निराकरण करते हुए 'गन्धर्व गृहीता' के वास्तविक अर्थ का निरूपण किया गया है। इस प्रकार यह कथा माला सब के लिए उपयोगिनी, रोचिका और लाभप्रदा बन गई है। हम इसके लिये विद्वान लेखक और उत्साही प्रकाशक का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। —पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

'वेद प्रकाश' का महत्वपूर्ण विशेषांक

बृहदारण्यक उपनिषद् शतपथ ब्राह्मण का एक भाग है, यह उपनिषद् अन्य सब उपनिषदों से बड़ा है। सर्व साधारण के लिये उपयोगी होवे इसलिये इसमें से वह स्थल जिसका आध्यात्मिकता से सम्बन्ध नहीं तथा कई पुनरुक्त कथाओं को छोड़ कर उपयोगी १६ कथाओं का सरल रीति से वर्णन किया है जो कि प्रत्येक स्वाध्याय प्रिय व्यक्ति के लिये उपयोगी एवं लाभप्रद है। कागज की महंगाई के समय में उत्तम कागज व सजिल्द उपहार देने योग्य पुस्तक का मूल्य ३) मात्र रखा है।

वेद प्रकाश के ग्राहकों को केवल २) में ही मिलेगा ।।) रजिस्ट्री खर्च अलग देना होगा जिससे सुरक्षित पुस्तक पहुंच जाये। आगामी वर्ष के वेद प्रकाश के चन्दे के साथ २॥) उपनिषद् कथा माला के मिला कर ५) शीघ्र भेज देवें।

दो और विद्वानों की सम्मतियें पढ़िये

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०

बृहदारण्यक-उपनिषद्-कथा माला स्वामी ब्रह्ममुनि रचित बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तक है। जनता के पढ़ने और सुनने योग्य तथा असाधारण विद्वानों के मनन और मीमांसा करने योग्य। अध्यात्म की भूखवालों के लिए यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर भोजन है।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० अमरसिंह जी

आर्य पथिक

कथा माला को मैंने देखा। कथाएं श्री स्वामी जी ने बहुत ही सुन्दर रीनि से लिखी है। मेरी हार्दिक कामना है कि यह पुस्तक प्रत्येक घर में पहुंचे। और सब नर नारी इससे लाभ उठावें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली

मैं आर्यसमाजी कैसे बना

ले० महात्मा आनन्द स्वामी जी

मैं आर्य-समाजी बना नहीं हूं अपितु जन्म से आर्य-समाजी हूं। इस संसार में वर्तमान शरीर के साथ आंखें खोलते ही मैंने अपने आप को आर्यसमाजी पाया। जातकर्म संस्कार से लेकर शेष समस्त संस्कार वैदिक रीति से हुए। अत: मैं मैनुफैक्चर्ड (Manufactured) आर्य-समाजी नहीं हूं। मुझे किसी दूसरे कारखाने में आर्य-समाजी नहीं बनाया गया, अपितु माता-पिता की कृपा से मेरा जन्म आर्य-समाजियों के पवित्र घर में हुआ। हां मेरे पूज्य पिता जी आर्य-समाजी बने और आर्य-समाजी भी स्वामी दयानन्द जी महाराज के हाथों बने। यह घटना इस प्रकार है:—

उन दिनों पंजाब में आर्य-समाज का नाम नहीं था, ईसाइयत जोर पकड़ रही थी। हिन्दू नवयुवक ईसाई बनते चले जा रहे थे और नवीन शिक्षा हिन्दु नवयुवकों को हिन्दु धर्म से विमुख कर रही थी। मेरे पिता लाला गणेशदास जी को आरम्भ से मतों की छान-बीन का शौक था। हमारे नगर जलाल पुर जट्टां में ईसाइयों का स्कूल था। गुजरात के पादरी प्राय: जलाल पुर जट्टाँ आते रहते थे और पिताजी उनसे बातें करते थे। इन वार्तालापों का परिणाम यह निकला कि पिता जी ईसाइयत स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये। अन्ततः इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये वे जलाल पुर जट्टां से ८ मील चलकर गुजरात जा पहुंचे। उसी दिन गुजरात में महर्षि स्वामी दयानन्द पधारे और उनका वहाँ व्याख्यान हुआ। दैवयोग से स्वामी जी ने अपने पहले ही व्याख्यान में ईसाइयत का जोरदार खण्डन किया और हिन्दुधर्म की महिमा बताई उस व्याख्यान को सुनने के लिये पिता जी भी गये हुए थे। यह व्याख्यान सुनते ही उन के विचारों ने पलटा खाया, और उन्होंने पादरियों से कह दिया कि वह ईसाइयत स्वीकार नहीं कर सकते क्यों कि वैदिक धर्म ईसाइयत की अपेक्षा बहुत महान् है यह सौभाग्य ही समझिये कि पिता जी ने स्वामी जी का व्याख्यान सुन लिया अन्यथा मैं भी आज आर्य समाज का सेवक न होता अपितु कहीं मैनुवल, सैनुवल बनकर ईसाइयत का प्रचार कर रहा होता : महर्षि दयानन्द का यह उपकार हमारा परिवार प्रलय काल तक भी भूल नहीं सकेगा और एक यह परिवार ही क्यों, ऐसे सहस्रों और लाखों परिवार हैं जिन्हें स्वामी जी ने पतित होने से बचा दिया।

ऐसे परिवारों का तो प्रत्येक सदस्य महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना एक एक इञ्च बलिदान करने के लिये प्रस्तुत होगा और मैं तो यह समझता हूं कि हमारे परिवार का एक-एक बच्चा यदि दयानन्द पर बलिदान हो जाये, तो भी उनके उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता।

पिता जी ने स्वामी दयानन्द जी से जो प्रकाश पाया, उसको स्वाध्याय से और बढ़ाया, और उन्होंने ईसाइयत की पोल खोलने के लिये अपने आप को तैयार किया। जलालपुर जट्टां में ईसाइयों का बड़ा भारी केन्द्र बन चुका था। मैं और मेरे भाई उन दिनों छोटे छोटे थे। हमारी आयु ८, १०, और १२ वर्ष से अधिक न थी। पिता जी दिन भर तो दुकान पर कार्य करते और सायंकाल वे हमें साथ लेते। एक स्टूल भी लिया जाता। हम सारे भाई ईसाइयों के विरुद्ध गीत गाते सारे बाजार से निकलते और ठीक मिशन स्कूल के समक्ष जाकर 'ओ३म्' का ध्वज गाड़ देते गीत के पश्चात् पिता जी ईसाइयत पर व्याख्यान देते। कई वार ईसाइयों से शास्त्रार्थ भी हो जाता। इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि ईसाई पादरियों ने नगर में जो खुल्लम खुल्ला प्रचार आरम्भ

कर रखा था। उसे बन्द कर दिया, परन्तु हमारी ओर से प्रचार बन्द नहीं हुआ। यह दशा देखकर ईसाई पादरियों के नौजवान लड़कों ने हमारे ऊपर डोरे डालने आरम्भ किये! मुझे वे प्रायः बुलाकर ले जाते। सुन्दर इञ्जीले देते और कहते कि क्या पड़े हो जलालपुर में, चलो तुम्हें बम्बई ले चलते हैं, परन्तु आर्य समाज की लगातार शिक्षा ने हम को सावधान कर दिया था इस लिए पादरियों की चालें विफल हुई, उल्टा उन्होंने अपनी ही हानि की और पादरी का एक पुत्र ईसाइयत के विरुद्ध हो गया।

बाल्यकाल ही में मुझे आर्य समाज के सन्यासियों और उपदेशकों के साथ विशेष प्रेम था जब भी कोई साधु, महात्मा या उपदेशक आ जाते मैं घण्टों उनके पास बैठा रहता। एक बार की बात है कि आर्य समाज के उत्सव पर बहुत से उपदेशक भजनीक आये हुए थे, मैं उन्हीं के पास बैठा रहा। पिता जी जब रात को घर गये तो माता जी ने पूछा, "कि खुशहाल प्रातःकाल से नहीं आया, उसे आप कहां छोड़ आये हैं?" पिता जी ने कहा, 'उसे समाज पर चढ़ा आये हैं।" मेरी माता जी ने कहा, "यह आप ने क्या किया। मुझ से विचार विमर्श किये बिना ही खुशहाल को समाज पर चढ़ा दिया।" माता जी ने समझा कि जिस प्रकार देवी देवताओं और महन्तों पर हिन्दु अपने बच्चे चढ़ावे के रूप में चढ़ा देते हैं उसी प्रकार आर्य समाज में भी यह रीति होगी। वह बात तो आई गई हुई परन्तु जब कभी मैं अपनी पूजनीय वृद्ध माता जी के दर्शन करने जलालपुर जाता था तो माता जी हंस कर कहा करती थीं सचमुच, तुम्हारे पिता जी ने तुम्हें समाज पर चढ़ा ही दिया है।

उन दिनों मेरी आयु १० वर्ष थी। स्वर्गवासी स्वामी नित्यानन्द जी हमारे नगर में आये तो उन्होंने मुझे गायत्री मन्त्र का जाप सिखाया, इसके पश्चात श्री स्वामी अच्युतानन्द जी पधारे तो उन्होंने मुझ को और मेरे भाई लाला त्रिलोक चन्द जी को स्तुति प्रार्थनोपासना के आठ मन्त्र याद कराये। मुझे वह दिन नहीं भूलता जब स्वामी जी ने हम दोनों भाइयों को कहा कि यदि तुम ये आठ मन्त्र शाम तक सुना दो तो तुम्हें पुरस्कार मिलेगा। मैंने खूब परिश्रम किया और एक ही दिन में सारे मन्त्र स्मरण करके स्वामी जी को चार ही बजे सुना दिये। वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा अच्छा तुम्हें पारितोषिक मिलेगा। सायंकाल आठ बजे समाज में स्वामी जी का व्याख्यान था। व्याख्यान देते देते उन्होंने हमारी चर्चा की और कहा, "देखो आर्य घराने के बच्चों के संस्कार कैसे अच्छे होते हैं। आज इस बच्चे ने एक ही दिन में आठ मन्त्र याद करके सुना दिये हैं।" यह कह कर उन्होंने मेरे भाई लाला त्रिलोकचन्द जी को मेज के पास खड़ा कर दिया और कहा, 'इस बच्चे ने आठ मन्त्र एक दिन में याद किये हैं मैं इसको एक रुपया पारितोषिक देता हूं।" यह सुन कर मैं आश्चर्य चकित रह गया। व्याख्यान के पश्चात मैंने स्वामी जी से कहा, "महाराज मन्त्र तो मैं याद करता रहा और पुरस्कार आप ने त्रिलोकचन्द को दे दिया है।" स्वामी जी हंसे और हम दोनों के मुखों की ओर देखकर कहने लगे, "तुम दोनों की आकृति एक जैसी है मैं तो तुम दोनों को अलग अलग पहचान नहीं सकता।"

बाल्यकाल में ही हमने आर्य कुमार सभा प्रारम्भ की और उसके वार्षिक उत्सव भी किये। आर्य कुमार सभा के एक उत्सव पर श्री पूज्य महात्मा हंसराज जी महाराज जलालपुर जट्टां पधारे। उन का व्याख्यान रात्रि को नौ बजे हुआ। उसके सम्पूर्ण नोट मैं ने ले लिये और प्रातःकाल उसे शुद्ध लिखकर महात्मा जी के पास पहुंचा और उन से कहा, "तनिक अपना व्याख्यान सुनने का कष्ट कीजिये।" महात्मा जी ने बड़े प्रेम से अपना व्याख्यान मेरे द्वारा सुना तो वे बड़े चकित हुए और कहने लगे, "तुम ने तो पूरा व्याख्यान लिख लिया है।" और तब उन्होंने मेरे साथ विशेष रुचि का प्रकाश प्रारम्भ किया था मेरे पिता जी से कहा कि इसे लाहौर क्यों नहीं भेज देते? यह घटना सब को विस्मृत हो गई परन्तु मुझे याद रही। इस बात को कई वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार फिर महात्मा जी जलालपुर जट्टा आर्य समाज के उत्सव पर पधारे। मैंने उन के

शेष पृष्ठ १६ पर

अप्रैल अंक से आगे

धर्म नगरी

(सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर एक मनोरञ्जक गाथा)

लेखकः श्री मदनजित् आर्य, वैदिक धर्म विशारद फिरोजपुर शहर

यात्री उक्त गृहस्थी के साथ साथ चौथे द्वार में प्रविष्ठ हुआ। चौथे द्वार के प्रत्येक मोहल्लों में अति सुन्दर भवन बने हुए हैं। वेद की आज्ञानुसार प्रत्येक गृहस्थी ने अपनी शाला को सुन्दर ढंग से सजाया हुआ है। प्रत्येक गृह के आगे और पीछे फूलों से युक्त रमणीय घास लगी हुई है बीच २ में जल के फव्वारे छूट रहे हैं। एक ओर छोटा सा सरोवर बना हुआ है जिस में कमल अपनी शोभा प्रकट कर रहे हैं उनकी अलौकिक छटा मानो गृहस्थी रूपी प्रेम जल की वर्षा कर रहे हैं। पुष्प अपनी सुगंधि से मन को उल्लासित कर रहे हैं। देखते २ सामने 'शान्ति सदन' एक स्थूलाक्षर लिखित भवन दिखाई पड़ा। यात्री ने नवयुवक को कहा कि ज्ञात होता है कि वह आपका ही दिव्य भवन है। नवयुवक ने हंस कर उत्तर दिया कि हां यह मेरा ही 'गरीब खाना' है। जिस समय वह दोनों मकान के समीप पहुँचे तो सायं काल का वेला हो गया था। गृहिणी अपने बच्चों को लेकर यज्ञशाला में हवन यज्ञ कर रही थी अति श्रद्धा भक्ति तथा प्रेम से सारा परिवार प्रभु भजन में मस्त था। हवन के उपरान्त सबने मिलकर 'पूजनीय प्रभु हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये......" हवन की आरती गाई। और पुनः माता ने अपनी बच्ची सुदेश को कहा कि पुत्री आज तेरी प्रार्थना करने की बारी है। इतने में उसके पतिदेव तथा अतिथि यात्री भीतर पधारे। सब ने अति प्रेम से नमस्ते की। पत्नि ने हाथ जोड़कर पति से कहा कि आप भी हमारी प्रार्थना में सम्मिलित होवें। पति ने स्वीकार किया और वह यात्री समेत यज्ञ शाला में बैठ गये। पुत्री सुदेश ने प्रार्थना आरम्भ की 'ओ३म् अग्ने व्रत पते व्रतं चरिष्यामि हे अग्ने व्रतपति प्रभु। आप महान हो सारे ब्रह्माण्ड के रचयिता हो अजर अमर अभय हो। हम सब परिवार के जन यह व्रत लेते हैं कि प्रति दिन कोई कुत्सित व्यवहार जिससे अपनी वा अन्यों की हानि ही नहीं करेंगे। प्रत्येक कार्य धर्म अधर्म को विचार कर इस प्रकार करेंगे जो सब के लिये कल्याणकारी हो यथा सम्भव ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करेंगे और धर्म पूर्वक धन का सञ्चय करेंगे अपने परिवार तथा अन्यों से भी ऐसा व्यवहार करेंगे जो संसार में सुख और प्रेम की माला को बढ़ाने वाला हो। "ओ३म् शान्ति शान्ति—शान्ति।"

पत्नी ने हाथ जोड़ कर पतिदेव से प्रार्थना की कि आप यात्रा में कुशल पूर्वक तो रहे। और साथ के साथी अतिथि का भी कुछ परिचय दिया जावे। पति ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि यह मेरे साथ एक श्रद्धालु भगत हैं यह हमारी धर्म नगरी में भ्रमणार्थ आये हैं अतः यह हमारे अतिथि हैं। और मैं अपनी यात्रा में अति आनन्द मंगल से रहा हाँ परिवार की चिन्ता अवश्य आती रही। अब मैं आ गया हूँ और हे मेरे पारिवारिक जनों मैं तुम्हारे लिये धन लाया हूँ और प्रत्येक गृहीजन के लिये कोई न कोई सोगात अवश्य लाया हूँ मेरे आंखो में इस समय प्रेम के अश्रु भरे हुए हैं मन में शुभ विचार हैं। आओ मेरे बच्चो मेरे पास आनकर हंसो खेलो और मुझसे भयभीत न हो।

पत्नी ने यज्ञ शाला से उठ कर सबके लिये फलादि उपस्थित किये जो सबने प्रसाद रूप से खाये। रात्री को सबने भोजन किया और पुनः विश्राम के लिये अपने २ कमरे को चले गये।

प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में सारा परिवार उठा अति

श्रद्धा से प्रातःकाल के मन्त्रों "ओ३म् प्रातरग्नि प्रातः इन्द्रं सुवामहे······" का पाठ किया शौच स्नान के उपरांत संध्या हवन स्वाध्याय किया। जब सब कार्यों से निवृत्त हो गये तो यात्री ने प्रार्थना की कृपया इस द्वार का कुछ परिचय और भी दे देवें गृहस्थी ने बताया कि यहां पर सब गृहस्थी लोग पञ्चमहायज्ञों का नियम प्रति दिन पालन करते हैं विवाह न्यून से न्यून पुरुष २५ वर्ष में तथा कन्या १६ वर्ष में ही करते हैं। गृहस्थ में भी संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। प्रत्येक गृहस्थी परिवार अपने २ कर्त्तव्य कर्मों को भली भांति करता रहता है।

सायं काल यात्री के अनुरोध करने पर वह पांचवें द्वार पर जाते हैं वहां पर "वानप्रस्थ सन्यास द्वार" लिखा था। द्वार के ऊपर लम्बे २ केश तथा दाढ़ी मूंछ वाले ऋषि महात्माओं के सुन्दर २ चित्र बने हुए थे। द्वार के भीतर आश्रम बने हुए थे। उसमें नाना प्रकार के फल-फूल, कन्द मूल मिलते थे। वेद शास्त्र तथा अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों का पाठ हो रहा था। यात्री और नवयुवक दोनों ही उसके भीतर चले गये और महात्माओं के चरणों में नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया और पुनः उपदेश देने लगे। वानप्रस्थ आश्रम के साथ आगे सन्यास आश्रम की कई कुटियां बनी हुई थी। वहां कषाय रंग को धारण किये हुए संन्यासी महात्मा वेद का स्वाध्याय कर रहे थे। उनके चेहरे पर तेजस्विता थी। और यात्री उससे बहुत ही प्रभावित हुआ। थोड़ी देर के पश्चात् उस द्वार से निकल कर अगले षष्टम् द्वार पर गया जहां मोटे अक्षरों में 'राज दरबार' लिखा था यह धर्म राज का अपना विशेष द्वार था इस पर युद्ध की सामग्री के पूरे २ चिन्ह अंकित थे। कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और नूतन ढंग के भुषण्डी आदि के चित्र थे। राज दरबार की शोभा तो अति सुन्दर थी कई प्रकार के सुन्दर भवन थे। लोक सभा का अपना कार्यालय था। विधान सभा के अपने पृथक भवन थे। भिन्न २ मंत्री गण अपने २ विभाग के साथ खूब कार्य में व्यस्त थे। धर्मराज का दरबार तो अत्यंत शोभनीय था यात्री जिस समय वहां गया तो दरबार का समय समाप्त हो गया था महाराज जी अपने मंत्रि मंडल सहित वापिस आ रहे थे वहां ही उनके दर्शन हो गये। महाराज स्वयं बहुत ही दीप्तिवान तथा प्राचीन सभ्यता में विभूषित नवयुवक व्यक्ति थे। इसके पश्चात् यात्री सातवें द्वार पर गया वहां पर "ईश्वर वेद द्वार" लिखा हुआ था उस द्वार के ऊपर ३३ देवताओं के नाम अंकित थे आठ वसु, ११ रुद्र, बारह आदित्य यज्ञ और प्रजापति। और ३४ वें देव परमात्मा का नाम था। भीतर प्रवेश करने के उपरान्त वहां अति सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। अति मनोहर हरी २ घास पर एक सभा हो रही थीं जिसमें यह प्रश्न चल रहा था कि ईश्वर की सिद्धि किस प्रकार होती है। एक विद्वान् पुरुष समझा रहे थे कि यह सृष्टि की रचना जो नियम पूर्वक हो रही है। जो समय के अनुसार होती है यह उस महान् सत्ता ईश्वर को स्मरण कराती है। ईश्वर सर्व व्यापक अन्तर्यामी है। निराकार है। जिज्ञासु ने कहा कि कई लोग प्रभु को साकार भी मानते हैं तो पण्डित जी ने उत्तर में कहा कि यदि वह साकार हो जावे तो वह व्यापक नहीं हो सकता और यदि व्यापक न हो तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में नहीं घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित ही होते हैं इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर को साकार मान लिया जावे तो उसके अवयव नाक, कान, आँख आदि का बनाने वाला दूसरा कोई होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसकी संयुक्त करने वाला कोई निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। और यदि कोई यह कहे कि ईश्वर स्वयं ही आज शरीर बना लेता होगा तो भी यह सिद्ध हुआ कि साकार से पहले ईश्वर निराकार ही था और निराकार की अवस्था में सारे ब्रह्माण्ड का निर्माण कर सकता है।

सुनने वाले सज्जनों में से एक उतावला होकर कहने लगा कि महाराज ईश्वर सर्व शक्तिमान है इसलिए वह जो कुछ भी करना चाहे कर सकता है? पण्डित जी ने गम्भीरता पूर्वक कहा कि सर्व शक्तिमान का ठीक यह अर्थ है कि वह अपने कामों अर्थात् उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयादि में किसी की सहायता नहीं लेता और जीवों के पुण्य पाप की यथावत व्यवस्था करने की शक्ति रखता है यदि तुम्हारी बात मान ली जावे कि ईश्वर जो चाहे कर ले तो क्या ईश्वर अपने आप को मार भी सकता है। या और अपने सदृश ईश्वर बना सकता है तुम कहो कि कदापि नहीं इसी भांति उस सर्वशक्तिमान के भी कुछ

नियम हैं जिनके अनुसार वह स्वशक्ति से कार्य करता ही रहता है। इतने में ही एक और व्यक्ति बीच में खड़ा हो गया और पूछने लगा कि अच्छा यह तो बताओ पण्डित जी कि क्या ईश्वर खुशामदी है जो हमारी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने से प्रसन्न हो जाता है पं० जी ने गम्भीरता से कहा कि प्यारे कि ईश्वर ऐसा नहीं करता वह तो न्यायकारी है हां स्तुति ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना होता है। परन्तु जो भाड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जावे और अपना चरित्र न सुधारे उसकी स्तुति सब व्यर्थ है। जिज्ञासु यह तर्क सुनकर अति प्रसन्न हुआ। साहस करके उसने भी प्रार्थना की कि महात्मन जब परमेश्वर के कोई नेत्रादि इन्द्रियां नहीं हैं फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है। महात्मा जी हंस कर बोले कि भाई ईश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्ति रूपी हाथ से सबकी रचना ग्रहण करता है, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान है, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत देखता है, श्रोत्र नहीं तथापि सब की बात सुनता है, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत को जानता है अर्थात् वह इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब कार्य अन्तर्यामी होने से करने की सामर्थ्य रखता है। कई भाई यह भी कहते हैं कि वह अवतार लेकर दुष्टों का संहार करता है और श्रेष्ठों की रक्षा करता है। परन्तु यह बात वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध है क्योंकि "अज एक पात्" "स पर्य्यगाच्छक्रमकायम्" प्रमाणों से यह प्रकट होता है कि वह परमात्मा जन्म नहीं लेता।

जिज्ञासु यात्री तथा हमारे नवयुवक परस्पर कहने लगे कि यह सातवें द्वार में प्रवेश करने से वास्तविक आनन्द आ गया है। नवयुवक ने कहा कि अब समय बहुत हो गया है अतः अब शीघ्र गृह को चलना चाहिये। फिर समय निकाल कर अगले द्वारों में भी भ्रमण कराऊंगा आप कुछ दिन मेरे गृह को ही सुशोभित करें। यात्री तथाऽस्तु कह कर उसके पीछे हो लिया।

(शेष पृष्ठ १३ का)

व्याख्यान का एक एक शब्द लिख लिया और व्याख्यान के पश्चात तुरन्त सुना दिया। तब तो महात्मा जी और अधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने मेरे पिता जी को प्रेरणा दी कि मुझे लाहौर भेजा जाये। मेरी आयु उस समय बीस वर्ष की थी। पिता जी महात्मा जी के बहुत भक्त थे वे उनकी आज्ञा का पालन करना अपने लिये गौरव की बात समझते थे। इसलिये उन्होंने मुझे लाहौर जाने की आज्ञा दे दी और महात्मा जी ने मुझे "आर्य गजट" में उप सम्पादक के रूप में कार्य करने की आज्ञा दे दी। तब श्री ला० रामप्रसाद जी "आर्य गजट" के सम्पादक थे। उनके चरणों में बैठकर मैंने लिखने का कार्य सीखा। महात्मा जी ला० साईं दास जी, लाला दीवान चन्द जी, ला० लाजपतराय जी और दूसरे महानुभावों से शिक्षा ली। और उसके पश्चात तो आर्य जगत मुझे जानता ही रहा और मैं आर्य जगत को। तब से लेकर आज तक कितने ही वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। केश भी सफेद हो चुके हैं, परन्तु आर्य समाज के लिये कार्य करने, वेद प्रचार में सहायक बनने और ऋषि दयानन्द के मिशन को आगे ले जाने के लिये दिन प्रतिदिन उत्साह बढ़ता ही गया है और अब भी बढ़ रहा है और मेरा आत्मा कहता है कि मरने के पश्चात् भी ऋषिदयानन्द के मिशन को बढ़ाने के लिये हमें फिर किसी आर्य समाजी के घर में जन्म लेना होगा।

(अनुवादक जगदीश चन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति)

(मई १९५८ मास के अंक का शेष)

ऋग्वैदिक नदी-विमर्श

(वैदिक गवेषक शिवपूजन सिंह कुशवाहा पथिक बी० ए०, साहित्यालंकार, कानपुर)

गङ्गा–उत्तमां गतिं गच्छन्त्यनयेति गङ्गा गम्+गम्+ड+टप्। इस नाड़ी में प्राणों को वश में करने से योगी उत्तम गति को पाता है।

यमुना–यह पूरक प्राणायाम के द्वारा अपने में प्राण को संमिश्रित करती हुई शरीर में गति करती है। अथवा इस नाणी के अभ्यास से योगी (प्रवियुतं) वियुक्तत्व को अर्थात् चित्त की स्थिरता को पाता है। एवं, मिश्रण तथा अमिश्रण, इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त 'यु' धातु से 'यमुना' की सिद्धि की गई है। यवना-यमुना।

सरस्वती—'सरस' शब्द जलवाची है। अतः गति करता है, बहता है सृ×असुन्। एवं, प्रशस्त रसवाली होने से सुषुम्णा नाड़ी को 'सरस्वती' कहा गया है।

शुतुद्री—(क) सुषुम्णा में ध्यान करने से योगी (शु) शीघ्र ब्रह्मलोक को जाता है। अतः शीघ्र ले जाने वाली होने से शुतुद्री है। शु+द्रु+उ+ङीप् और द्वित्व-शुद्रुद्री-शुतुद्री।

ऋग्वेद के इसी 'इमं मे गंगे' आदि वाले सूक्त (१०·७५) के अन्त में व्याख्या रूप से कई शाखाओं में यह मंत्र मिलता है।

सितासिते सरिते यत्र संगधे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति
ये वैतन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते

अर्थात—जो ध्यानी लोग, जहां (सित) इडा (असित) और पिंगला, ये दोनों नाड़ियें मिलती हैं। उस संगम स्थान सुषुम्णा में स्नान करते हैं। वे ब्रह्मलोक में जाते हैं। अर्थात् वे योगी शरीर को छोड़नें के पश्चात् अमृतत्व को भजते हैं। एवं यह बचन स्पष्टतया 'शुतुद्री' के आश्रय को प्रदर्शित कर रहा है।

(ख) अथवा—इस नाड़ी की गति बड़ी तेज है, अतः मानो कि यह किसी से ताड़ित होकर बड़ी शीघ्रता से दौड़ रही है। शु×'तुद्' व्यथने+द्रु+ड+ङीप्—शुतुद्री।

परुस्णी—'परुष' और 'पर्वन्' ये दोनों समानार्थक हैं। 'पर्व' धातु से 'उस' प्रत्यय और वकार-लोप (उणा० २०)।

उस 'परुष' से मतुप् अर्थ में 'न'। परुस्णी-पर्ववती-भास्वती, कुटिल गामिनी। सुषुम्णानाड़ी ब्रह्मप्राति की साधिका होने से भास्वती है, और इसकी गति वक्र है। इस परुस्णी को 'इरावती' भी कहते हैं।

असिक्नी—पिङ्गला को 'असिता' या कृष्णा' कहा जाता है।....'अशुक्ला-अशुक्नी' 'टाप्' की जगह ङी दन्त का प्रयोग है। 'सित' श्वेत का वाचक है, उसका निषेध असित है।

मरुद्वृधा—यह नाम सामान्यतया सब नाड़ियों का वाचक है अतः वायुएं इन्हें बढ़ाती हैं, फैलाती हैं। परन्तु यहां मुख्य नाड़ी सुषुम्णा के लिए प्रयुक्त हैं।

वितस्ता—(क) सुषुम्णा के द्वारा सब आन्तरिक मल विशेषतया दग्ध किये जाते हैं, अतः विदग्धा होनें से, इसे वितस्ता कहा गया है। वि+'तसु' उपक्षये+क्त वितस्ता। (ख) अथवा, यह नाड़ी बड़ी होती है, अर्थात् इसके किनारे अधिक ऊंचे होते हैं। यहाँ 'वि' का अर्थ विगत है। एवं, वितस्ता का शब्दार्थ 'क्षय रहित' यह है।

आर्जीकीया—(क) ऋजीक प्रभवा आर्जीका, आर्जीका एवं आर्जीकीया। ऋजीक=उत्पत्ति स्थान। सब नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान नाभिकन्द है। अतः यहां 'ऋजीक' का अर्थ

नाभिकन्द से 'इड़ा' की उत्पत्ति होने से उसे 'आर्जीकीया' कहा गया है। वक्र नहीं, (ख) अथवा, यह इड़ा नाड़ी पिङ्गला की तरह प्रत्युत ऋजु मामिनी है।

ऋजु गच्छतीति आर्जिकः—आर्जीकः, गच्छतों परदारादिभ्य ! (वा० ४-४-१) से 'ठक्' प्रत्यय।

ऋ० ८-७-२९ में 'आर्जीक' सुषोम (सुषुम्णा) का विशेषण है। और ऋ० ८-६४-११ में 'आर्जीकीया' सुषोमा (सुषुम्णा) का विशेषण है, जो कि सब नाड़ियों के लिए है।

इस 'इड़ा' की 'विपाट्' या 'विपाश' भी कहते हैं। इस नाड़ी में अभ्यास करने से योगी का अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानपाश कट जाते हैं, और विज्ञान की प्राप्ति होती है। विपाट यतीति विपाट् 'विगताः पाशोऽनयासा विपाश्, विशेषेण प्राप्नोति ज्ञानमनयेति विप्राप्-विपाश्।.......

सुषोभा—इस सुषोभा (सुषुम्णा) का दूसरा नाम 'सिन्धु' है, अतः इसकी ओर अन्य कई इडा पिंगला आदि नाड़ियें जाती हैं। सुषुम्णा नाड़ी कई अन्य नाड़ियों का संगम स्थान है। पंञ्चनद्यः सरस्वती मपियन्ति सस्रोतूसः (यजु० ३४। ११) से विदित होता है कि इस सरस्वती (सुषुम्णा) नाड़ी में पांच अन्य नाड़ियें आकर मिलती हैं। जिन सब का समान स्रोत नाभिकन्द है। 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'षु' धातु से 'मन्' प्रत्यय। 'सुषोमा' का ही रूपान्तर 'सुषुम्णा' है।

सिन्धु—स्मन्दन्ते नद्य एनमिति सिन्धुः 'स्यन्द' के संप्रसारण रूप 'सिन्द से 'उ' प्रत्यय (उणा० १-११) इसकी ओर कई नाड़ियें बहती हैं, अतः यह सिन्धु कहलाती है। ३१

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ— हे (गंगे यमुने) हे गंगा, अर्थात इडा नाड़ि हे (यमुने) पिंगले, शुतुद्रि, परुस्णि' सरस्वती' शुतद्रु तथा परुस्णी नाम की सुषुम्णा नाड़ी। तुम मेरे इस स्तोम स्तुति अर्थात वेद मंत्र में कहे गुण वर्णन की (आसचत) प्राप्त करते हो, यह गुण वर्णन इन नाड़ियों का ही है। ऐ मरुदवृधे। हे सुषुम्ना तू (असिन्क्या) पिंगला के साथ और हे (आर्जिकीये) आर्जिकीया, इडा तू (वितस्तया सुषोमया) वितस्या नामक सुमुम्ना के साथ मिली हुई (आशृणुहि) मेरे इस वर्णन को श्रवणकर। ३२

वैदिक अनुसन्धानकर्त्ता पं० प्रियरत्नजी आर्ष लिखते हैं—"वेदों में गंगा, यमुना आदि नामों का आ जाना किसी ऐतिहासिक घटना को सिद्ध नहीं करता है, क्योंकि ये नाम यौगिक हैं, अतएव लौक प्रसिद्ध रूढ़ व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। शरीरगत नाड़ियों के नाम भी गंगा आदि हैं और वसिष्ठ अमृत प्राण को कहते हैं ऐसा कथन श्री बाबू भगवान दास जी काशी और की पं० चन्द्र मणि जी विद्यालंकार आदि कई एक विद्वानों का है। ३३

पं० सुरेन्द्र शर्मा गौर काव्य-वेदतीर्थ ३४, पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक ३५ मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी ३६, पं० शिव शंकर शर्मा काव्यतीर्थ ३७, पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण ३८, डा० बाल कृष्ण एम. ए. पी. एच. डी. ३९ भी इसी मत के पोषक हैं।

वास्तव में वेदों मे आए हुए शब्दों को देखकर ही आर्यों ने नाम रखा है। वेदों में आए हुए दशरथ 'राम' 'कृष्ण' शन्तनु 'विश्वामित्र' 'वसिष्ठ' 'रावण' 'सीता' गंगा, यमुना, प्रभृति राजा, पहाड़, नद-नदियों के नाम रूढ़ि नहीं वरन् यौगिक हैं। ये शब्द अनादि हैं। गंगा के आने के पूर्व 'गंगा' शब्द विद्यमान था।

क्या चतुर्वेदी जी तथा अन्य विद्वान् यह बतला सकते हैं कि दशरथ, राम, कृष्ण प्रभृति के उत्पन्न होने से पूर्व इन शब्दों के क्या अर्थ थे ?

---

३१. वही पृष्ठ ५९० से ५९२ तक, तुलना करो, पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ कृत "ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य "सप्तम खण्ड प्रथमावृत्ति पृष्ठ १८२–१८३.

३२. "क्या वेद में इतिहास है ? "प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १७९

३३. "वेद में इतिहास नहीं" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११३

महर्षि यास्काचार्य भी गंगा, यमुनादि नदी वाचक शब्दों के यौगिक अर्थ करते हैं।

राजर्षि मनुभी स्पष्ट लिखते हैं:—

"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक पृथक।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे॥"

पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार, पालीरत्न इस मत की पुष्टि करते हुए लिखते हैं:—"जब वेद ही एक मात्र ज्ञान का आदिम स्रोत था, और वैदिक भाषा ही सृष्टि की आदि में मनुष्यों की भाषा थी, तब इन्हीं वेदों में से चुन चुन कर नदी आदियों के नाम रखे जाते थे। यह नाम वैदिक नामों से भिन्न कैसे हो सकते थे।" ४०

डा० बालकृष्ण जी एम०, ए० पी० एच० डी०, एफ० आर० एस० एस०, अर्थ शास्त्र महोपाध्याय, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय वेदों में अनित्य भूगोल और इतिहास की समीक्षा करते हुए लिखते हैं:—

"(क)" वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से उनका प्रत्येक शब्द आर्यों के लिए माननीय था। अतः वेदों में से ही देख २ कर ऋषियों, राजाओं, देशों नदियों, पर्वतों के नाम रखे गए। अतः वेदों में पाए जाने वाले उक्त नाम ही आज तक भारत तथा उसके आस पास की नदियों, जातियों, राजाओं व ऋषियों के हैं।

(ख) हर एक जाति अपने २ धर्म ग्रन्थों को देखकर अपने बालकों के नाम रखती हैं। क्या आदिम आर्यों का कोई अन्य तरीका होता ? हम आजकल वेदों को देखकर अपने नाम रखते हैं। गुरुकुल के विद्यार्थियों के नाम वैदिक ऋषियों के हैं। कल्पना करो कि उन में से कुछ बहुत प्रसिद्ध होने से सहस्रों वर्षों तक याद रहें। कुछ हजार वर्षों के बीतने पर यदि यह कहा जाये कि वेदों में इतिहास हैं क्यों कि उसमें मनुष्यों के नाम आए हैं तो यह मूर्खता होगी। हमने वेदों को देखकर नाम रखे वेद कारण हैं और नाम कार्य हैं। इस सम्बन्ध को उलटा देने से ही भ्रम हुए। ४१

अतएव वेदों में आधुनिक नदियों की कोई भी चर्चा नहीं है।

---

३४. "जीवन का आनन्द" प्रथम भाग तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३१-३२
३५. "सत्यार्थ-निर्णय" प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण पृष्ठ ४२
३६. मासिक पत्र "साहित्य विज्ञापक" बड़ौदा, वर्ष १४, फरवरी + मार्च १९३८ ई० संख्या २-३
३७. "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५०
३८. "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ७६ से ८१ तक
३९. "ईश्वरीय ज्ञानवेद" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ८१ ८३ तक
४०. "निरुक्त भाष्य" पूर्वार्द्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १५४ से १५५ तक
४१. "ईश्वरीय ज्ञान वेद" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ८३

विवाह और विवाहित जीवन

यह पुस्तक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत (Marriage and Married Life) का अविकल अनुवाद है अनुवादक है श्री पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक।

इस पुस्तक की आरम्भ से ही हिन्दी जनता में बड़ी मांग थी उसी मांग को देख कर पुस्तक छापी गई है।

सार्वदेशिक मासिक लिखता है:—

'आधुनिकता के रंग में रगा हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू हैं उन सब का ही इस पुस्तक में समावेश है। आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोण से उन पर विचार करते हुए बड़े २ पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थकारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है।" सुन्दर छपाई, बढ़िया कागज सुन्दर आवरण। मूल्य २॥)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

सिन्धी भाषा-देवनागरी लिपि

लेखक—श्री कृष्णलाल जी बजाज 'प्रदीप'

सिन्धी भाषा में बाईस हजार शब्द हैं जिसमें से लगभग पन्द्रह हजार शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है शेष सात हजार अरबी, फार्सी तथा अन्य भाषाओं से सम्बन्ध रखते हैं। सर जार्ज ग्रीयर्सन अपने लिंग्युस्टिक् सर्वे आफ इण्डिया (Linguistic Survey of India) में लिखते हैं कि, 'Sindhi has preserved many phonetic and grammatical peculiarities which have disappeared else where and is a typical example of the outer languges' अर्थात् 'सिंधी भाषा में उच्चारण तथा व्याकरण सम्बन्धी बहुत सी विशेषताएं सुरक्षित हैं जो अन्यत्र नहीं दीख पड़ती और बाह्य भाषाओं का एक विशेष प्रकार का उदाहरण है'। ट्रम्प (E Trumpp) अपने सिंधी भाषा के व्याकरण का आरम्भ इन शब्दों से करते हैं यथा 'The Sindhi is a pure sanskritical language, more free from foreign elements than any of the North Indian Vernaculars.' अर्थात् सिंधी शुद्ध सांस्कृतिक भाषा है। उत्तरीय भारत की भाषाओं में जितने विदेशी तत्त्व भरे हुए हैं उतने इसमें नहीं हैं। हन्टर महोदय भी इम्पीरियल गजेट में लिखते हैं कि सिंधी भाषा भारतीय आर्य भाषाओं के उत्तर—पश्चिमीय श्रेणी की भाषा है। गुजराती, मराठी, बंगाली आदि भारत की चलित भाषाओं से सिंधी का संस्कृत से अधिकतर सम्बन्ध है।

सिंधी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाने से हमारे मन पर वही विचार आते हैं कि सिंधी भाषा का सारा का सारा सम्बन्ध अरबी से ही है। किन्तु यह वास्तविकता नहीं। कैप्टन स्टैक (Capt Stack) ने सिंधी भाषा का पहला शब्दकोश लिखा है वह देवनागरी लिपि में ही है। अतः यह बात कोई बहुत मुश्किल प्रतीत नहीं होती कि फिर उसका प्रयोग देवनागरी लिपि में भी हो। यदि सिंधी भाषा देवनागरी लिपि में भी लिखी जाय तो इस योजना से कई लाभ हो सकते हैं। सिंधी भाषा देवनागरी लिपि में लिखने से—

१—हिंदी भाषा के विशाल साहित्य से सम्बन्ध बढ़ेगा।

२—कई शब्दों की वास्तविकता की ओर ध्यान आकृष्ट होगा।

३—सिंधी साहित्य का विस्तार होगा।

४—संस्कृत के अध्ययन में बहुत कुछ सुभीता होगी।

५—भाषा विज्ञान तथा अन्य कलाओं की अभिवृद्धि होगी।

६—उत्तर भारत, गुजरात और महाराष्ट्र से एकता का भाव स्पष्टतया प्रतिभासित होगा।

७—कच्छी, मारवाड़ी और मुलतानी जो हमारे निकटतम पड़ोसी हैं वे सिन्धी को अपनायेंगे जिससे सिंधी भाषा का क्षेत्र बढ़ेगा।

महात्मा गांधी जी जैसे हिन्दुस्तानी सीखने के लिए अरबी और देवनागरी दोनों लिपियों के सीखने का अनुरोध करते हैं वैसे यह अनुरोध यदि सिन्धी भाषा के साथ भी लगाया जाय तो सिन्धियों को बहुत ही कुछ लाभ हो सकता है। मेरे सिन्धी भाई इस पर कुछ विचार करेंगे ?

सटिप्पण स्थूलाक्षरी सत्यार्थ प्रकाश

इसकी टिप्पणियां आर्य जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान श्री-पं. ठाकुर अमरसिंह जी आर्य पथिक कर रहे हैं। लगभग तीन चौथाई सत्यार्थ प्रकाश पर टिप्पणियां लिखी जा चुकी है। शीघ्र ही प्रेस कापी तैयार हो जावेगी। इसके नमूने का एक कागज देखने के लिए मंगाया जा सकता है।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली

सत्याग्रह के मेरे दो प्रसङ्ग

(—यशोदा देवी आर्य)

सन् १९३२—३३ की वार्ता है जब कि स्वराज्य आन्दोलन का समय जोरों पर था, कलकत्ते के व्यापारी केन्द्र वड़ाबाजार में विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग (घरना) दिया जा रहा था। घरनें में मुख्य २ महिलाओं की ड्यूटी लगती थी। महिलाओं पर पुलिस विशेष अत्याचार नहीं करती थी सभ्यता पूर्वक गिरफ्तार कर थानों में पहुंचा देती थी। वहां से दूसरे दिन मेजिस्ट्रेटों के आगे हाजिर कर १०-१५ दिन की सजा मिलती थी वह भी महिलाओं को ए या बी क्लास मिलती थी।

मैं उन दिनों कलकत्ता में ही थी। बड़ाबाजार पिकेटिंग की इन्चार्ज (श्री विधानचन्द्र राय वर्त्तमान बंगाल के मुख्य मन्त्री ने) मुझे बना रखा था उनकी कार नित्य प्रातः मेरे स्थान पर पहुंच जाती थी, मैं महिलाओं को घरों से लाकर पिकेटिंग के स्थानों पर बैठा देती थी, गिरफ्तारी के बाद उनके घर वालों को सूचना दे देती थी। तथा समय २ पर जेल में मुलाकात भी कर आती थी।

एक दिन की बात है पूज्य गांन्धी जी की शिष्या "मीरा बेन" कलकत्ते पधारने वाली थी, उनके स्वागतार्थ, हावड़ा स्टेशन पर पुरुषों के साथ महिलाओं को भी जाने का आदेश हुआ, अनेक महिलायें मीरा बेन के स्वागतार्थ जलूस के रूप में बन्देमातरम् का नारा लगाती हुई स्टेशन जा रही थी हावड़ा पुल के निकट पुलिस दल ने हमें रोक लिया, पुरुषों पर डन्डे बरसाने लगे। महिलाओं के हाथों में तिरंगे झण्डे थे वे छीनने की कोशिशें की गई, छीना झपटी में महिलाओं को चोटें भी आई।

शाम के समय पुलिस के अभद्र व्यवहार के प्रतिवाद में कालेज स्कवायर में १४४ धारा तोड़कर सभा हुई सभा में पुरुषों पर डण्डे बरसे, अनेक महिलाओं को गिरफ्तार कर थाने पहुँचाया दूसरे दिन १५ दिन की कैद की सजा हुई, उसमें मेरे साथ अनेक प्रतिष्ठित घराने की महिलायें भी थी जिसमें कलकत्ते के प्रसिद्ध देश भक्त सर्व श्री सीताराम जी सेक्सरिया, बसन्तलाल जी मुरारका आदि की धर्म पत्नियें भी थीं। तथा हिन्दी समाचार पत्रों के प्रसिद्ध सम्पादक श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार की धर्मपत्नी अ. सौ. सुभद्रादेवी जी भी कार्य कत्रियों में थी।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद मुझे सत्याग्रह करनें का यह दूसरा प्रसंग प्राप्त हुआ जब कि पंजाब हिन्दी रक्षा आन्दोलन में देहली से सर्व प्रथम जत्था १५ महिलाओं का रोहतक गया, राष्ट्रभाषा हिन्दी की मान रक्षा के लिए अपने ही राज्य में सत्याग्रह करना पड़ा यह एक आश्चर्य की बात के साथ राज्याधिकारियों के लिए लज्जा जनक भी है।

रोहतक में पुरुष सत्याग्रहियों पर निर्मम लाठी चार्ज हुआ, हम महिलाओं को गिरफ्तार करके सारा दिन थाने के आगे कड़ी धूप में बैठा दिया, शाम को सब को ट्रक में बैठा कर दूर स्थान नरेले के पास अन्धेरी रात्रि में जंगल में छोड़ दिया, यह है अपनी सरकार का स्वराज्य में साथ देने वाले अपने ही व्यक्तियों के साथ व्यवहार।

ज्यों ज्यों सत्याग्रह जोर पकड़ता गया सरकार का रुख भी कड़ा होता गया, अत्याचार और अन्याय भी बढ़ता गया।

आज प्रतिज्ञा करते हैं हम

★

आज प्रतिज्ञा करते हैं हम, भारत के सब नर नारी।
हिन्दी का अपमान सहें ना, सहें न हम अत्याचारी ॥

वचन भंग कर पंत महोदय, मिटा सकें ना लक्ष्य महान।
सत्य मार्ग पर रुक न सकेगा, आर्यवीर का जय अभिमान ॥
माँग हमारी न्याययुक्त है, इस से कौन करे इन्कार।
फिर भी जो पथ के पत्थर हैं, उन्हें हटाना है इसबार ॥

सभी पढ़ें जो जिसकी इच्छा, यह है संविधान आदेश।
हिन्दी है भारत का गौरव, भारतीय संस्कृति का वेश ॥
उस पर भी प्रतिबंध लगाना, यह भारत का है अपमान।
सम्प्रदाय वादी से डर कर, सत्य मिटाते वे नादान ॥

किन्तु हमारा दृढ़ निश्चय है, बढ़े चलेंगे हम अभिराम।
नहीं रुकेंगे नहीं झुकेंगे भले ही छिड़े मृत्यु का गान ॥
शपथ "सुमेर" के रक्त बूंद की, शपथ धधकती ज्वालाओं की।
शपथ हमें है सत्य न्याय की, शपथ दूध की माताओं की ॥

सर्वस्व न्योछावर कर देंगे, पर नहीं सहेंगे हम अपमान।
जय हिन्दी की जब गूंजेगी, तभी करेंगे हम विश्राम ॥
विजय मिलेगी निश्चत है यह, साक्षीं है रवि चन्द्र ललाम।
हमें शक्ति दो बलदो प्रभू हे। रुके न अपना यह अभिमान ॥

"६ जुलाई के प्रतिज्ञा दिवस पर"

आभारानी गाजियाबाद

समाचार सूचना

डा० सुधीर कुमार जी गुप्त, ४ हीरापुरी, गोरखपुर से सूचित करते हैं कि उनकी रचना "वेद भाष्य पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन" जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने पी० एच० डी० की उपाधी प्रदान की है प्रकाशित करना चाहते हैं अनुमानिक व्यय ८०००) है। जिस में से लगभग ४०००) का प्रबन्ध होजाने की आशा है, यदि शेष धन के प्रबन्ध में कोई दानी और वेदप्रेमी अपना योग देना चाहें तो उनसे पत्र व्यवहार करें।

* * *

श्री मेहरचन्द जी आर्य उपमन्त्री आर्य कुमार सभा-रिवाली इस वर्ष राजस्थान इन्टर की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। वेदप्रकाश पाठकों की ओर से उन्हें वधाई है।

* * *

वेदप्रकाश के पाठक श्री प्रेमकुमार पाण्डेय आष्टा को नहीं भूले होंगे। विगत वर्ष उनके लेख धुम्रपान, रोटी कपड़ा, सिनेमा और हम, कृणवन्तो स्वयभार्यम्, आदि लेख वेदप्रकाश छपे थे। मई १९५८ में २५ वर्ष की आयु में उन्होंने गृहस्थाश्रम प्रवेश किया है। वेदप्रकाश परिवार की ओर से उन्हें वधाई है

* * *

सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति की ९ जून की बैठक के निश्चयानुसार श्री घनश्याम सिंह गुप्त द्वारा जिस संघर्ष समिति का गठन हुआ है उसमें निम्नलिखित सदस्य हैं।

श्री रघुवीर सिंह शास्त्री (संयोजक) श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती, लाला रामगोपाल, श्री वीरेन्द्र एम० एल० सी० प्रो० शेर सिंह एम० एल० ए० प्रिंसिपल भगवान् दास, वीर यज्ञदत्त शर्मा, केप्टन केशवचन्द्र, प० प्रकाशवीर शास्त्री एम० पी०, पं० नरेन्द्र और स्वामी राश्वरा नन्द जी।

* * *

इस वर्ष के लिये सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये।

प्रधान:—श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज
उप प्रधान:—श्री पं० नरेन्द्र जी
" " :—श्री बा० पूर्ण चन्द जी एडवोकेट
" " :—श्री पं० अलगूराय जी शास्त्री एम० पी०
मन्त्री :—श्री ला० रामगोपाल जी
उप मन्त्री: - श्री प्रो० रत्नसिह जी एम० ए०
" " :—श्री पं० प्रकाशवीर जी एम० पी०
कोषाध्यक्ष:—श्री ला० बालमुकुन्द जी आहूजा
पुस्तकाध्यक्ष:—श्री पं० नरेन्द्र जी स्नातक एम० पी०

* * *

८ जून को देहली में आसफअली रोड पर दयानन्द भवन का प्रवेश संस्कार हुआ। यह भवन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि के कार्यालय के लिये खरीदा गया है। इस पर लगभग ४॥ लाख रुपये व्यय हुआ। इसमें से तीन मंजिले किराये पर दी गई है जिससे लगभग साढ़े चार हजार रुपया किराया प्रतिमास मिलेगा। ऊपर की मंजिल में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यालय रहेगा।

* * *

जून मास के "वेद प्रकाश" अङ्क

के सम्बन्ध में अनेक ग्राहकों के पत्र आये हैं कि जून मास का अँक नहीं मिला" जून मास का साधारण अंक निकाला ही नहीं, इसकी सूचना मई मास के अंक में दे दी गई थी कि जून को विशेषांक बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला जिन ग्राहकों उसका मूल्य २।।) प्राप्त होगा वह भेजा जावेगा तदनुसार विशेषांक ही भेज दिया गया जिन ग्राहकों को जून में प्रकाशक विशेषांक मंगाना हो अब भी २।।) भेज कर रजिस्टरी से यह उपयोगी कथा माला का का अंक मंगा सकते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली

स्वाध्याय योग्य उत्तमोत्तम पुस्तकें

वाल्मीकि रामायण, रियायती मू०	६)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ,,	३॥)
सृष्टि का इतिहास	१॥)
उपनिषद आर्यमुनि भाष्य	६)
श्वेताश्वरोपनिषद	१)
प्रभु भक्ति (आनन्द स्वामीकृत)	१।)
प्रभु दर्शन ...	२॥)
तत्व ज्ञान	३)
आनन्द गायत्री कथा	॥=)
एक ही रास्ता	।॥)
भगवान शंकर और दयानन्द	।=)॥
ईश्वरीय नियम और मनुष्य धर्म	॥=)
वैदिक गृहस्थाश्रम (विश्वनाथ)	५)
ऋषि-गाथा महाकाव्य रियायती	४)
स्वाध्याय संग्रह (स्वा० वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ...	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
ओंकार निर्णय (शिवशंकर)	१॥)
वैदिक प्रार्थना (३१ प्रार्थनाएं)	१॥)
सचित्र योगासन	१॥)
बहनों की बातें (कवि सिद्धगोपाल)	१।)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	२॥)
दयानन्द चित्रावली	२।)
भारतीय संस्कृति (ओं-आर्य नमस्ते)	।)
आर्ष-योग प्रदीपिका सजिल्द	३॥)
कर्तव्य दर्पण (नारायण स्वामी)	१।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
संध्या, हवन प्रदीपिका	॥)
आर्य समाज क्या है (ना० स्वामी)	॥)
सन्ध्याविनय (प्रि० नित्यानन्द)	॥)

प्रार्थना प्रदीप	॥)
संस्कार विधि विमर्श (अत्रिदेव)	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
घर गृहस्थी	३॥)
सावित्री प्रकाश (वेदानन्द)	१)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
गीत श्रद्धांजलि (भजन पुस्तक)	१।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१।)
यज्ञोपवीत मीमाँसा	।॥)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (स्वामी दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक ,,	।=)
आत्म कक्षा ऋषि दयानन्द ,,	।=)
आर्याभिविनय ,,	॥)
वेद विरुद्धमत खण्डन	।=)
शिक्षा पत्री ध्वान्न निवारण ,,	।=)
भ्रान्ति निवारण ,,	।=)
भ्रमोच्छेदन ,,	।)
हुगली शास्त्रार्थ ,,	।)
वेदों का महत्व (स्वामी दर्शनानन्द)	।)
ईश्वर प्राप्ति ,,	≡)
ईश्वर विचार ,,	=)
जीवात्मा ,,	=)
वेदों की आवश्यकता ,,	-)
वेद किस पर प्रकट हुए ,,	-)
बाल शिक्षा, धर्म शिक्षा ,,	≡)
वर्ण व्यवस्था (स्वामी दर्शनानन्द)	-)
पितृ श्राद्धविचार ,,	-)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य ,,	-)
,, ,, लक्ष्य ,,	-)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)

स्वामी दयानन्द और वेद (श्री अरविन्द)	।)
भक्ष्याभक्ष्य विचार	≡)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
विश्व विज्ञान परमात्म बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।-)
धार्मिक मंत्रों के चित्र सा. १४॥×२२	
संध्या मंत्र	।-)
प्रार्थना के ८ मंत्र अर्थ सहित	।-)
आर्य समाज के नियम	।-)
जीवन मृत्यु के प्रश्न	।-)
यम नियम व्याख्या सहित	।-)
संगठन सुक्त	।-)
मंत्रों के चित्र सहित ११×१४	॥)
ऋग्वेद का प्रथम मंत्र	≡)
यजुर्वेद का प्रथम ,,	≡)
सामवेद का प्रथम ,,	≡)
अथर्ववेद का प्रथम मंत्र	≡)
दीर्घ जीवन का मंत्र	≡)
धर्मवंर, सत्यंवद	≡)

मंत्रों के चित्र छोटे ७।×५॥मू०-)॥ ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, विश्वानिदेव सहनाववतु, धृतिक्षमा, नमः शम्भवायच, त्वमेव माता च पिता, नैनंछिन्दति अहिंसा परमो धर्म, आदि आदि।

महाभारतम् संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए श्री आचार्य राजेन्द्र शास्त्री उपाध्यक्ष दयानन्द वेदविद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य सजिल्द का ३) रु०

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क देहली

प्रचार करने योग्य विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट

प्रत्येक का मूल्य -) सैकड़ा ४)

१ मनुष्य बन—ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती ।
२ गायत्री माता—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ।
३ ईश्वर सिद्धि—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
४ आस्तिक नास्तिक संवाद—महर्षि दयानन्द ।
५ पितृ श्राद्ध विचार—स्वामी दर्शनानन्द ।
६ सुख का साधन—महात्मा आनन्द स्वामी ।
७ ईश्वरोपासना—पं० रामचन्द्र जी देहलवी ।
८ कल्याणी बन – पं० गणेशदत्त 'इन्द्र' ।
९ आर्यों का आदि देश—काशी नाथ जी शास्त्री ।
१० धर्म और अधर्म – पं० रामचन्द्र देहलवी ।
११ स्वामी श्रद्धानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द—स्वामी श्रद्धानन्द जी ।
१३ पं० लेखराम—रामगोपाल जी विद्यालंकार ।
१४ सीता माता—सरस्वती देवी 'प्रभाकर' ।
१५ गौ माता—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
१६ दयानन्द दिग्विजय—श्री हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न
१७ चोटी का महत्व—पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ।
१८ गुरु विरजानन्द—रामगोपाल विद्यालंकार ।
१९ मांस खाना छोड़ दो—पायथा गोरस ।
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम—प्रहलाद 'प्रभाकर' ।
२१ देश सुधार होली—अंगनलाल आर्य ।
२२ मूर्तिपूजा विचार—महर्षि दयानन्द ।
२३ भक्ति के लाभ—आचार्य प्रियव्रत ।
२४ आर्य समाज के उद्देश्य—जगदीशचन्द्र ।
२५ वेदमाता ।
२६ श्रद्धामाता ।
२७ धरती माता ।
२८ धर्म की रक्षा करो—ब्र० प्रभुदत्त जी ।
२९ मनुष्य के कर्तव्य—म० नारायण स्वामी ।
३० सत्संग भजन ।
३१ ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य का महत्व ।
३२ गोपाल दयानन्द ।
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा ।
३४ वैदिक भक्तिवाद ।
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि ।
३६ सत्य की महिमा—स्वामी सर्वदानन्द ।
३७ आर्य समाज की उन्नति का साधन श्री लालचन्द जी
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी—श्री प्रेमचन्द ।
३९ वैदिक काल में तोप बन्दूक—शिव पूजन सिंह ।
४० पतिव्रत धर्म—एक विदूषी महिला ।
४१ ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा—राजेन्द्र जी ।
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द—भगवत शरण बी. ए. ।
४३ ईश्वरावतार—स्वामी नित्यानन्द जी ।
४४ कर्मयोगी श्री कृष्ण—प्रेमचन्द ।
४५ ईसाइयों का भयंकर षड़यन्त्र ।
४६ सामाजिक व्यवहार—श्री लालचन्द जी ।
४७ शिक्षा का उद्देश्य—श्री पूर्णचन्द जी ।
४८ ब्रह्मचर्य—जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी ।
४९ वर्ण व्यवस्था—स्वामी दर्शनानन्द ।
५० कर्मव्यवस्था " "
५१ वेदज्ञान—विष्णु दयाल जी ।
५२ तुलसी रामायण और आर्य समाज ।
५३ सत्य की खोज—काशीनाथ शास्त्री ।
५४ मुर्दा क्यों जलावें—प्रेम शरण जी ।
५५ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य—स्वामी दर्शनानन्द ।
५६ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य— "
५७ ब्राह्मण समाज और मृतक श्राद्ध—पं० राजेन्द्र जी ।
५८ श्रेय और प्रेय—प्रि. नित्यानन्द जी एम. ए. ।
५९ सच्ची पूजा—स्वामी सर्वदानन्द जी ।
६० झांसी वाली रानी ।
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त-रविवर्मा सि. शास्त्री ।
६२ जीवन की समस्यायें—पं० रामचन्द्र देहलवी ।
६३ देवताओं की कहानी—कैलाश बिहारी ।
६४ रोटी और कपड़ा—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६५ धूम्रपान— " "
६६ सिनेमा और हम— " "
६७ दयानन्द कौन—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ।
६८ कृण्वन्तोस्वयमार्यम—प्रेमकुमार पाण्डेय ।
६९ चाय भयंकर विष—जगदीश चन्द्र ।
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है—ज. विद्याथा
७१ ईश्वर सब जगह है—विष्णु दयाल जी ।
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों—रामचन्द्र देहलवी ।
७३ चरित्र निर्माण—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
७४ यज्ञोपवीत महत्व—जगरीश चन्द्र विद्यार्थी ।
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण—हरिदेव शास्त्री ।
७६ नास्तिकों को सन्देश—जगदीश चन्द्र विद्यार्थी ।
७७ वैदिक धर्म ही क्यों—हरिदेव शास्त्री ।
७८ विद्यार्थी और सदाचार—पं० रामचन्द्र देहलवी ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली—६

कृषि सम्बन्धी देहात-सुधारक पुस्तकें

१. आधुनिक कृषि विज्ञान	६)
२. आलू की खेती	।।।)
३. टमाटर की खेती	।।)
४. गोभी की खेती	।।)
५. जीरा, धनियाँ, अजवायन	।।।)
६. तरकारियों की खेती	१।।)
७. अच्छे बीज	।।।)
८. अच्छी खाद	२।।)
९. कपास की खेती	१)
१०. फूल फुलवारी	२।।)
११. गन्ने की खेती	।।।)
१२. धान की खेती	१।।)
१३. सन्तरे की बागवानी	२।।)
१४. आम की बागवानी	३)
१५. तिलहन की खेती	।।।=)
१६. सोयाबीन खिसारी	।)
१७. खेती की तैयारी	२।)
१८. फसल रक्षक औषधियां	२।)
१९. फलव्याधियों कीरोकथाम	१।।)
२०. उन्नत सिंचाई	२)
२१. भारतीय कृषि कहावतें	४)
२२. गेहूं की खेती	३)
२३. लाख की खेती	।।।=)
२४. प्याज खेतीकी खेती	१।)
२५. जौ की खेती	।।।=)
२६. मेंहदी की खेती	।।।)
२७. नीबू सन्तरा माल्टा	२।)
२८. मूंगफली की खेती	१)
२९. मिर्च की खेती	१।)
३०. बीज की तैयारी	१।।)
३१. मसालों की खेती	२)
३२. तम्बाकू की खेती	।।)
३३. पपीते की खेती	१।।)
३४. खेती बाड़ी	१।।)
३५. फलों की खेती	३।।)
३६. तरकारी सागभाजी खेती	३।।)
३७. खेती और ट्रैक्टर	६)
३८. किचन गार्डन	१।।।)
३९. ट्यूब वैल गाइड	३।।)
४०. ट्रैक्टर प्राइमर	१।)
४१. पशुओं का इलाज	६)
४२. पोल्ट्री फार्मिग	४)
४३. कमर्शियल पोल्ट्री	४)
४४. पोल्ट्री सर्जन	४)
४५. फल संरक्षण	२।।)
४६. मकई (मक्का) खेती	१।)
४७. खीरा तरबूज की खेती	१।।)
४८. चाय की बागवानी	१।।)
४९. अफीम की खेती	१।।)
५०. किसानी लोक कथायें	२।।)
५१. कलम पैवन्द लगाना	१।।)
५२. हल्दी की खेती	१।।)
५३. कत्थे की खेती	१।।)
५४. पान की खेती	१।।)
५५. चने की खेती	१।।)
५६. बाजरे की खेती	१।।)
५७. मटर की खेती	१।।)
५८. हैण्डबुक ऑफ पोल्ट्री	१०)
५९. खेती और बागवानी	३)
६०. तोरी लौकी की खेती	१।।)
६१. खीरा ककड़ी तरबूज खरबूजे की खेती	१।।)

गवर्नमेंट एग्रीकल्चर इन्स्टीटूयूटों, ग्राम पंचायतों, स्कूललाइब्रेरियों। पुस्तकालयों बेसिक ट्रेनिंग सैन्टरों तथा अधिकांश सरकारी लाइब्रेरियों संस्थाओं में खरीदा जाने वाला **कृषि सम्बन्धी ६१ पुस्तकों का सैट**

वैज्ञानिक ढंग से अधिक खेती करके सरकारी इनाम प्राप्त करें

फलों की खेती (फलदार बागवानी) ले० राजेश गुप्त जिसमें हर प्रकार के फलदार पेड़ों जैसे आम, अमरूद, शहतूत, लौकाट, सतरा आदि सैकड़ों फलों के पेड़ों को लगाने के तथा उनसे अधिक फल पैदा करने के साइन्टिफिक ढंग लिखे गए हैं, मू० ३।।) साढ़े तीन रु० डाक व्यय १)

अपने बंगले, कोठी, गुवाड़, खेत इत्यादि में हरी और ताजा सब्जी पैदा करें

शाक भाजी तरकारी की खेती

(लेखक राजेश गुप्त)

जिसमें देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की तरकारियों का बोना, जमीन की जाँच करना खाद से ज्यादा फसल तैयार करना बिना मौसम की तरकारी पैदा करने के साइन्टिफिक नियम फसलव्याधियों की रोक थाम के तरीके और हरप्रकार की सब्जी जैसे आलू, अदरक, अरबी, टिन्डे, बाकला, सीताफल, (पेठा) बन्दगोभी, मूली, बैंगन, भिन्डी, तोरी, घिया, प्याज, पालक, पोदीना टमाटर, धनियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, फूल गोभी, चुकन्दर, खरबूजा, जीरा, सिंघाड़ा, सौंफ, अजवायन, सेम शरदा शलगम, सकरकंदी, करेला आदि सब्जी बोना और उसके लिए पूरी बातें इस पुस्तक में पढ़कर चाहे चाहे आप खेती करिये या माली को समझाइये।

मूल्य केवल ३।।) डाक व्यय १)

सावधान ! जमीन सोना उगल रही है

आधुनिक कृषि विज्ञान

खेती वाड़ी, फूल-फुलवाड़ी तथा बागवानी पर ७५२ पृष्ठों का ग्रन्थ (ले.- रामेश्वर अशांत)

इसमें अनाज दलहन, तिलहन फूल-फुलवाड़ी साग-भाजी तथा फलों की बागवानी के हर विषय जैसे जुताई, सिंचाई, खाद व फसल संरक्षण आदि सभी आवश्यक बातों को अगणित छोटे-बड़े सुन्दर चित्रों द्वारा समझाया गया है यह भारत के किसान को मालदार बनाने के लिए तथा अधिक फसल उपजा कर सरकारी इनाम प्राप्त करने वाली खोजपूर्ण पुस्तक है। मूल्य ६) छः रुपये डाक व्यय १।।) पृथक।

केवल डाक खर्च वास्ते चार आने (पच्चीस नये पैसों) का टिकट लिफाफे में भेजकर

हजारों पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र

मुफ्त मंगायें

देहाती पुस्तक भण्डार (V. P.) चावड़ी बाजार दिल्ली

फोन नं०- २००३०

नोट—पुस्तक खरीदते समय हमारा पता अवश्य देखलें।

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा सम्पादित मुद्रक और प्रकाशक जयद प्रेस, बल्लीमारान देहली में छपवाकर वेदप्रकाश कार्यालय नई सड़क, देहली से प्रकाशित किया।